भारत के जलते प्रश्न

भगवान श्री रजनीश

भारत के जलते प्रश्न

भगवान श्री रजनीश

भगवान श्री रजनीश

उनका परिचय नहीं दिया जा सकता; फिर भी भाव होता है कि कुछ कहा जाए उनके विषय में।

कहा भी क्या जाए, गीत फूटते हैं उनके लिए, ऐसे हैं वे।

असमर्थ हैं हम कुछ भी कहने में, लेकिन बिना कहे भी कैसे रहा जा सकता है! उनमें प्रतिपल ऐसा कुछ घट रहा है, जो आंदोलित करता है, स्पंदित करता है। पाते हैं कि हम कुछ कह रहे हैं--नृत्य से, पुलक से, थिरक से, कह रहे हैं; निमंत्रण दे रहे हैं कि आओ, इस महोत्सव में सम्मिलित हो जाओ।

वे इस पृथ्वी पर हम मनुष्यों जैसे मनुष्य ही हैं--आकार-आकृति में! फिर भी उनमें किसी ऐसी परा सत्ता के दर्शन होते हैं, जिससे हमारी आंखें चुंधिया जाती हैं। उनके रोएं-रोएं से कोई संगीत फूटता है कि उसको केवल संगीत कह देने से ही अभिव्यक्ति पूरी नहीं हो जाती।

वे बोलते हैं। उनके शब्द, शब्द ही हैं; फिर भी जल्दी ही यह बोध होता है कि शब्द नहीं, कुछ और ही प्रवाहित हो रहा है--जो न मौन है न मुखरता है--बस कुछ है। कुछ है जो अपने में डुबा लेता है और एक अज्ञात स्वाद से भर देता है।

वे देखते हैं--कुछ उंडेलते हैं! और हम भर सकें उसे अपनी आंखों में, अपने हृदय में--हम असमर्थ हैं, असहाय हैं। उनकी प्रत्येक भाव-भंगिमा एक प्रसाद है। उसे भर लें, सम्हाल लें, संजो लें, पी लें--ऐसा पात्र कहां से लाएं!

उनका संस्पर्श होता है--मनुष्य में परमात्मा जाग उठता है। उनकी हर मुद्रा एक निमंत्रण है—पता नहीं कहां का, लेकिन रोमांचकारी है; भयावह है, फिर भी जाने जैसा लगता है; कांपते-कांपते भी, हिचकते-झिझकते भी, स्वीकारने जैसा लगता है। और इसके पहले कि निर्णय हो पाए, हम खींच लिये जाते हैं!

उनकी अनुकंपा अपार है!

भारत के जलते प्रश्न

भगवान श्री रजनीश

अगर मेरी सुनी जाये तो मैं कहूँगा कि भारत को पहला देश होना चाहिए जो राष्ट्रीयता छोड़ दे। यह अच्छा होगा कि कृष्ण, बुद्ध, पतंजलि और गोरख का देश कह दे कि हम अन्तर्राष्ट्रीय-भूमि हैं। भारत को तो संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमि बन जाना चाहिए...वसुधैव कुटुम्बकं।

सम्पादन	संकलन	संयोजन
मा अमृत साधना	स्वामी सुरेन्द्र सरस्वती	स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व

प्रथम संस्करण
२१ मार्च, १९७९
प्रतियां
५,५००

मूल्य
~~[illegible] रुपये~~
१००/-

प्रकाशक :
मा योग लक्ष्मी
रजनीश फाउन्डेशन लिमिटेड
१७, कोरेगांव पार्क
पूना ४११००१ (महाराष्ट्र)

मुद्रक :
स्वामी अशोक सत्यार्थी
स्वामी तिलक भारती
चड्ढा प्रिन्टर्स :
बम्बई बाजार
मेरठ कैन्ट २५०००१
फोन ७५३०१

रजनीश फाउन्डेशन लिमिटेड

संकलित सामग्री		पृष्ठ संख्या

पाक शास्त्री तो नहीं हो, जो तुम वक्तव्य दो ।

मैं कोई राजनीतिज्ञ तो नहीं हूं, लेकिन जन्मों-जन्मों में, लम्बी यात्रा में राजनीति के सब खेल देखे हैं । शिखर पर आज आ गया हूं, लेकिन जन्मों-जन्मों तक तो घाटियों में मुझे भी वैसे ही अंधेरे में टटोलना पड़ा है, जैसे तुम टटोल रहे हो । ये चोटें मैंने भी खायी हैं । इन गड्ढों में मैं भी गिरा हूं । ये सब परिचित गड्ढे हैं । इसलिए जो कुछ मैं कह रहा हूं, वह ऐसा नहीं है कि बिल्कुल ही अपरिचित बातों के सम्बन्ध में कह रहा हूं । कहावत है : हर संत का अतीत होता है और हर पापी का भविष्य । मैंने संसार का सब जाना है, जैसे तुम जान रहे हो । इसलिए संसार की किसी भी स्थिति और घटना के सम्बन्ध में मैं वक्तव्य देने का हकदार हूं । मेरा हक और भी बढ़ गया है, क्योंकि मैंने कुछ और भी जाना है, जो तुम नहीं जान रहे हो । और उस कुछ और के जानने से ही परिप्रेक्ष्य बड़ा हो जाता है, दृष्टि विहंगम हो जाती है, दूर की चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं, जो तुम्हें नहीं दिखाई पड़तीं ।

कोई आदमी जमीन पर खड़ा है और कोई आदमी वृक्ष पर बैठा है । एक बैलगाड़ी रास्ते पर आ रही है । जमीन पर जो आदमी खड़ा है, उसे अभी दिखाई नहीं पड़ता कि बैलगाड़ी आ रही है । अभी दूर है । लेकिन वृक्ष पर जो बैठा है, उसे दिखाई पड़ता है कि बैलगाड़ी आ रही है । जमीन पर खड़े आदमी के लिए बैलगाड़ी अभी भविष्य है, अंधकार में है । वृक्ष पर बैठे आदमी के लिए वर्तमान है, अंधकार में नहीं है, प्रकाश में है । जितनी ऊंचाई तुम्हारी चेतना की बढ़ेगी, उतनी ही चीजें, जो औरों के लिए भविष्य में हैं, तुम्हारे लिए वर्तमान हो जायेंगी । उतनी ही चीजें, जो औरों के लिए अतीत हो गयीं हैं, तुम्हारे लिए वर्तमान में होंगी । जैन कहते हैं कि महावीर त्रिकालज्ञ हैं । उसका अर्थ कुछ और नहीं है । उसका इतना ही अर्थ है कि ऊंचाई इतनी बढ़ गयी है कि अब अतीत भी वर्तमान है, भविष्य भी वर्तमान है । अब सिर्फ एक ही काल बचा है—वर्तमान । अब तीन काल नहीं बचे । लेकिन मूढ़ताएं तो ऐसी होती हैं कि लोग उसमें भी जिद् में पड़ गये हैं । लोग समझते हैं कि महावीर को हर विस्तार का पता है, कि दो हजार साल बाद चूहड़मल-फूहड़मल बंबई में एक होटल खोलेंगे, इसका भी पता है । इसका कोई मतलब नहीं है । मतलब केवल इतना ही है कि जैसे-जैसे चित्त की ऊंचाई बढ़ती है, वैसे-ही-वैसे उस ऊंचाई के कारण सारा विस्तार वर्तमान में समा जाता है । उसमें कोई चूहड़मल-फूहड़मल की दुकान नहीं होती ।

मैं जिस जगह से देख रहा हूं, वहां से राजनीति जो कर रही है इस देश में और इस देश को जिस गड्ढे में ले जा रही है, वह भी दिखाई पड़ रहा है । या तो चुप रहूं—चुप रहूं, क्योंकि अगर बोलूंगा तो मेरे काम को परेशानी होगी, मेरे काम को हानि होगी । लेकिन तब मैं तुमसे कहता हूं : मेरा चुप रहना राजनीति होगी । तुम जरा समझने की फिक्र करना । यहां मेरे एक संन्यासी हैं । जर्मन सम्राट् के पोते हैं । ग्रीस की महारानी कल बंबई से गुजरती थी, तो उसने तुम्हें बुलाया था । वह उनकी मौसी है । ग्रीस की महारानी उनकी मौसी है, इंगलैंड की महारानी उनकी मौसी हैं । यूरोप के करीब-करीब सारे राजघरों में उनके कुछ-न-कुछ सम्बन्ध हैं । महारानी ने उनको कहा कि मैंने तुम्हें सावधान करने को बुलाया है कि यह आश्रम जल्दी ही सरकार बन्द कर देगी, कि मुझे विश्वस्त सूत्र से पता है कि सरकार खिलाफ होती जा रही है । तो तुम्हें अगर कभी अड़चन आये, तुम्हें जरूरत हो, तो मैं सदा तुम्हारी सहायता को तत्पर हूं, तुम मेरे पास चले आना । फिर महारानी का भोजन था यूनान के दूतावास में, तो वहां विमलकीर्ति, मेरे संन्यासी, को रानी साथ ले गयीं । राजदूत ने भी यही कहा कि तुम्हारे आश्रम पर खतरे के बादल हैं । ये खतरे के बादल मेरे वक्तव्यों के कारण हैं । अगर मुझमें थोड़ी भी राजनीति होती तो मैं चुप रहता या जो सत्ता में हैं, उनकी झूठी प्रशंसा करता । उनकी प्रशंसा से हजार काम हो सकते हैं । अगर मैं राजनीतिज्ञ होता, राजनीति मेरे चित्त में होती, तो मुझे अपना प्रयोजन होता । उनसे मैं हजार काम ले सकता था । लेकिन मुझे किसी से कोई काम नहीं लेना है । परमात्मा मुझसे जो काम करवा ले, करवा ले……उसकी मर्जी । और कभी-कभी वह मुझसे राजनीति के वक्तव्य भी दिलवा लेता है, तो मैं क्या करूं ?"

भगवान् श्री रजनीश सम्बोधि दिवस २१ मार्च १९५३ से चुप हैं, अनबोले हैं, मौन हैं । और जो बोला जा रहा है, वह अस्तित्वगत करुणा है, जो अकारण बरस रही है और जो सहज हैं, सरल हैं, उनको क्षण-क्षण प्रेम के उत्सव में, ध्यान के आनन्द में डुबो रही है ।

रहा जनमानस, वह कब, कहां जीवित सद्गुरुओं को सुनता-समझता है । उसे अपने संसार-चक्र में घूमने दें । हां, यदि आप खुले हैं, प्रेम से भरे हैं तो सप्रेम आमन्त्रण है, आयें श्री रजनीश आश्रम, पूना, जहां भगवान् श्री रजनीश हैं, और जहां उनके ऊर्जा-क्षेत्र में नाचते-गाते, उत्सव मनाते हजारों संन्यासी हैं । यहां कुछ अलौकिक घट रहा है, जिसमें डुबकी लगाए बिना कुछ भी अनुभव नहीं होता ।

निवेदक

स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व

श्री रजनीश आश्रम, पूना—४११००१

	पृष्ठ संख्या
अनुक्रम	३

भारत के जलते प्रश्न

विषय	पृष्ठ संख्या

१—समस्याओं के ढेर

भारत समस्याओं से और प्रश्नों से भरा है। और सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि हमारे पास उत्तरों की और समाधानों की कोई कमी नहीं है। शायद जितने प्रश्न हैं हमारे पास, उससे ज्यादा उत्तर हैं और जितनी समस्याएं हैं उससे ज्यादा समाधान हैं। लेकिन, एक भी समस्या का कोई समाधान हमारे पास नहीं है। समाधान बहुत हैं, लेकिन सब समाधान मरे हुए हैं और समस्याएं जिन्दा हैं। उनके बीच कोई तालमेल नहीं है। मरे हुए उत्तर हैं और जीवन्त प्रश्न हैं। जिन्दा प्रश्न हैं और मरे हुए उत्तर हैं।

और जैसे मरे हुए आदमी और जिन्दा आदमी के बीच कोई बातचीत नहीं हो सकती ऐसे ही हमारे समाधानों और हमारी समस्याओं के बीच कोई बातचीत नहीं हो सकती। एक तरफ समाधानों का ढेर है, और एक तरफ समस्याओं का ढेर है। और दोनों के बीच कोई सेतु नहीं है, क्योंकि सेतु हो ही नहीं सकता। मरे हुए उत्तर जिस कौम के पास बहुत हो जाते हैं उस कौम को नये उत्तर खोजने की कठिनाई हो जाती है। अब प्रश्नों के साथ एक उलझन है कि प्रश्न सदा नये होते हैं। प्रश्न हमारी फिक्र नहीं करते। समस्याएं हमसे पूछकर नहीं आती हैं, आ जाती हैं। और वे रोज नयी हो जाती हैं और हम अपने पुराने समाधानों को जड़ता से पकड़कर बैठे रह जाते हैं। तब हमें ऐसा लगता है कि समाधान हमारे पास है और समस्याएं हल क्यों नहीं होतीं ? गुरू हमारे पास हैं और प्रश्न हल

नहीं होते हैं। शास्त्र हमारे पास हैं और जीवन उलझता चला जाता है।

एक बुनियादी भूल, और वह यह है कि सब उत्तर हमारे पुराने हैं। हमने नया उत्तर खोजना बन्द कर दिया है। और नये प्रश्न नये उत्तर चाहते हैं। नयी समस्याएं नया समाधान मांगती हैं। नयी परिस्थितियां नयी चेतना को चुनौती देती हैं, लेकिन हम पुराने होने की जिद्द किये बैठे हैं। हम इतने पुराने हो गये हैं और हम पुराने होने के इतने आदी हो गये हैं कि अब हमें ख्याल भी नहीं आता कि हम पुराने पड़ गये हैं।

हमारे देश के सामने इसलिए पहला जीता सवाल यह है कि हम मरे हुए उत्तरों को विदा कब करेंगे, उनसे हम छुटकारा कब पायेंगे? उनसे हम कब मुक्त होंगे? क्या कारण है कि हमने नये प्रश्न के नये उत्तर नहीं खोजे? यही कारण है—अगर हमें ख्याल हो कि हमारे पास उत्तर हैं ही रेडीमेड, तैयार, तो हम नये उत्तर क्यों खोजें? मन की तो सहज इच्छा होती है लीस्ट रेसिस्टेंस की; कम से कम तकलीफ उठानी पड़े। उत्तर तैयार है तो उसी से काम चला लें। एकबारगी हमारे देश को पुराने उत्तरों से मुक्त और रिक्त हो जाना पड़ेगा तभी हम उस बेचैनी में पड़ेंगे कि हम नयी समस्याओं के लिए नये उत्तर खोजें।

हमें अपने अतीत से मुक्त होना पड़ेगा तो ही अपने भविष्य के लिए निर्माण कर सकते हैं। हमें अपने शास्त्रों से मुक्त होना पड़ेगा तो ही हम चिन्तन के जगत् में प्रवेश कर सकते हैं अन्यथा हर चीज का तैयार उत्तर हमें किताब में मिल जाता है। मुसीबत आती है, हम गीता खोल लेते हैं। मुसीबत आती है, हम कुरान खोल लेते हैं। मुसीबत आती है, हम मुर्दा गुरुओं के पास पहुंच जाते हैं पूछने कि उत्तर क्या है? हम हमेशा अतीत से पूछते हैं, बीते हुए दिनों से पूछते हैं। लेकिन दुनिया में एक बड़ी क्रांति हो गयी है, वह समझ लेनी चाहिए। और अगर वह हम न समझ पायेंगे तो हमारे प्रश्न रोज बढ़ते जायेंगे और हम एक भी प्रश्न को हल न कर सकेंगे।

वह बड़ी क्रांति यह हो गयी है—जीसस के मरने के अठारह सौ पचास वर्षों में दुनिया में जितना ज्ञान बढ़ा, पिछले डेढ़ सौ वर्षों में उतना बढ़ा। और पिछले डेढ़ सौ वर्षों में जितना ज्ञान बढ़ा उतना पिछले पन्द्रह वर्षों में बढ़ा। आज हम पन्द्रह वर्षों में अठारह सौ वर्षों का फासला पूरा कर रहे हैं। इतनी तीव्रता से ज्ञान बढ़ रहा है। पुरानी दुनिया की एक सुविधा थी। उसमें ज्ञान कभी बदलता ही नहीं था। और बदलता था तो इतना लम्बा फासला होता था कि जिसका कोई हिसाब नहीं। हजारों वर्षों तक एक ही उत्तर काम देता था। अब दुनिया बदल गयी है। अब हर पन्द्रह वर्ष में दुनिया बदल जायेगी। हर नयी पीढ़ी नये उत्तर खोजेगी। बीस साल में एक पीढ़ी बदल जाती है। आज बाप और बेटे के बीच उम्र का तो बीस साल का फासला है, लेकिन अगर हम ठीक से गिनती करें, तो बाप और बेटे

की पीढ़ी के बीच अठारह सौ साल का फासला हो जाता है। क्योंकि पुरानी दुनिया में अठारह सौ साल में इतना ज्ञान बढ़ता था, जितना आज पन्द्रह वर्ष में बढ़ जाता है। इसलिए पुरानी दुनिया में एक सुविधा थी, पुराने उत्तर काम देते थे। जो बाप की जिन्दगी में काम दिया था वही बेटे की जिन्दगी में काम देता था। वही उसके भी बेटे की जिन्दगी में काम देता था। अब यह नहीं हो सकता है। और हमारी आदत पुरानी है। बेटा अब भी बाप से पूछने जा रहा है। बहुत कठिन है। उत्तर बाप के पास नहीं है। बाप के पास उत्तर है, लेकिन वह समस्या नहीं रही, जिसका उसके पास उत्तर है।

पुरानी दुनिया में ठीक थी यह बात, बेटा बाप से पूछता था और बाप के पास उत्तर होता भी था। सच तो यह है कि पुरानी दुनिया में बेटे के पास प्रश्न होता था, बाप के पास उत्तर होते थे। आज हालतें बिल्कुल उल्टी हो गयी हैं। बेटे के पास प्रश्न हैं, बाप के पास उत्तर हैं, लेकिन उन प्रश्नों के उत्तर हैं, जो बेटे के प्रश्न नहीं हैं। और तब दोनों के बीच एक खाई खड़ी हो गयी है। क्या आपको पता है कि इधर पिछले बीस वर्षों में सारी पृथ्वी पर पिता के आदर में कमी हुई है, गुरू के आदर में कमी हुई है? और सारी दुनिया में चिन्ता है। हमारे मुल्क में बहुत ज्यादा चिन्ता है। क्योंकि हम सबसे ज्यादा पिता को पूजने वाले और गुरू को पूजने वाली कौम हैं। हमारी पूरी संस्कृति ने पिता और गुरू और माता की पूजा सिखायी है। एकदम से कमी हुई है। हम सब चिन्तित हैं कि यह क्या हो गया? लेकिन कारण का हमें ख्याल नहीं है।

कुछ लोग सिखाते हैं कि लड़के बिगड़ गये हैं। लड़के सदा जैसे थे वैसे ही हैं लेकिन एक क्रांति जीवन में आ गयी है। वह क्रांति यह आ गयी है कि पहले पिता ज्यादा जानता था, आज बेटे ज्यादा जानने की स्थिति में हैं। और इसलिए जब पिता ज्यादा जानता था और बेटा हमेशा कम जानता था। बेटा कभी ज्यादा नहीं जानता था। क्योंकि जानना आता था अनुभव से और अनुभव करते-करते, बूढ़ा होते-होते पिता के पास ज्ञान हो पाता था। वही ज्ञान वह बेटे को देता था। आज हालतें बिलकुल बदल गयी हैं। आज हालतें यह हैं कि बेटा बहुत कुछ जानता है जो पिता ने कभी नहीं जाना। और उसके बेटे और भी बहुत कुछ जानेंगे जिनका पिता अन्दाज भी नहीं कर सकता है। तो पिता के सम्मान में अनिवार्य रूप से परिवर्तन आना था। लेकिन अगर हम समझ जायें तो हम उस परिवर्तन को समझदारीपूर्वक व्यवस्था दे सकेंगे। न समझ पायें तो हम मुश्किल में पड़ जायेंगे। गुरू अब भी पुराना आदर मांगे, यह सम्भव नहीं है। पुराना आदर नहीं मिल सकता क्योंकि गुरू को जो पुराना आदर मिलता था वह ज्ञान के कारण ही मिलता था। आज अक्सर यह होता है कि क्लास में पढ़ाने वाले प्रोफेसर में और विद्यार्थी में ज्यादा से ज्यादा घंटे भर का फासला होता है। वह घंटे भर पहले तैयार करके आये होते

हैं, वे घंटे भर पीछे तैयार हो जाते हैं। अब घंटे भर के फासले पर बहुत आदर नहीं हो सकता। कैसे हो सकता है? और अगर कोई बुद्धिमान, प्रतिभाशाली लड़का हो तो गुरू से आगे आज हो सकता है। पहले कभी नहीं हो सकता था। क्योंकि अनुभव से ज्ञान आता था। और अनुभव में जीना पड़ता था। आज हालतें एकदम बदल गयी हैं।

इन बदली हुई स्थितियों में जहां ज्ञान का तीव्रता से विस्फोट हो रहा है, एक्सप्लोजन हो रहा है वहां हमें सारे के सारे उत्तर नये खोजने पड़ेंगे। पुराने उत्तर काम नहीं दे सकते। और भी एक मजे की बात है कि कभी हमें पता नहीं चलता क्योंकि प्रश्नों के सम्बन्ध में हम कभी गहराई से सोचते ही नहीं कि प्रश्न क्या हैं। जिनके पास उत्तर तैयार हैं वे प्रश्न में खोज-बीन करने की दिक्कत में नहीं पड़ते। जैसे कोई बच्चा किताब उल्टा कर गणित का उत्तर पीछे देख लेता है, फिर वह प्रोसेस, विधि करने की फिक्र नहीं करता, फिर वह उत्तर लिख देता है। लेकिन उत्तर महत्वपूर्ण नहीं होते, महत्वपूर्ण हमेशा विधि होती है। विधि के बिना उत्तर का कोई अर्थ नहीं है। प्रश्न पर सोचना ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि उसी से उत्तर निकलता है। लेकिन जिसके पास उत्तर तैयार हो वह विधि पर सोचता ही नहीं, वह प्रश्न की गहराई में नहीं जाता है। हम किसी प्रश्न की गहराई में ही नहीं जाते। हमारे पास उत्तर तैयार हैं। हमने उल्टा के किताब के पीछे उत्तर देख लिए हैं। बीच की प्रोसेस और मैथेड का हमें कोई सवाल ही नहीं है। अगर हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो जाये तो हमारे पास उत्तर तैयार है, लेकिन हम समस्या की गहराई में जाने की इच्छा नहीं रखते।

और मजा यह है, कि शायद यह भी डर है कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि हम जो उत्तर देते रहते हैं, वही हमारे प्रश्न के आधार में बुनियादी जड़ हैं? जिसे हम समाधान कहते हैं, कहीं वही तो हमारी समस्या को पैदा करने वाला नहीं है? अगर हिन्दू-मुसलमान लड़ते हैं तो हम हिन्दू को समझाते हैं कि तुम अच्छे हिन्दू बनो। मुसलमान को समझाते हैं कि तुम अच्छे मुसलमान बनो। मुसलमान धर्म भी बहुत अच्छा है, हिन्दू धर्म भी बहुत अच्छा है। दोनों धर्म एक से हैं। तुम अच्छे मुसलमान बनो, तुम अच्छे हिन्दू बनो। तुम मस्जिद ठीक से जाओ, तुम मन्दिर ठीक से जाओ। मैं कभी सोचता हूं कि जब कच्चे मुसलमान और कच्चे हिन्दू इतने खतरनाक होते हैं तो सच्चे हिन्दू और मुसलमान कितने खतरनाक हो सकते हैं! लेकिन हमारा ख्याल यह है कि अगर हिन्दू अच्छे हिन्दू हो जायें और मुसलमान अच्छे मुसलमान हो जायें तो झगड़ा खत्म हो जायेगा।

नहीं, भ्रांति है। हमारा पुराना रटा-रटाया उत्तर है, वह हम दिये चले जा रहे हैं। वह हम कहे ही चले जा रहे हैं। हम यही समझाये चले जा रहे हैं कि अच्छे हिन्दू बनो, अच्छे मुसलमान बनो। धर्म तो किसी को लड़ना नहीं सिखाता,

और सब धर्मों से लड़ना सिखाया है। असल में जो भी आदमी-आदमी के बीच फासले पैदा करता है वह लड़ना सिखायेगा ही। जो भी आदमी-आदमी के बीच खण्ड करता है वह लड़ना सिखायेगा ही।

राजचन्द्र को गांधीजी ने कुछ पत्र लिखे थे। और गांधी जी ने एक प्रश्न में उनसे पूछा है कि आप जैन धर्म को ही श्रेष्ठ मानते हैं? राजचन्द्र जैसे बुद्धिमान, विचारशील साधु पुरुष ने भी यही उत्तर दिया है कि जैन धर्म ही श्रेष्ठ है। इसलिए मैं श्रेष्ठ मानता हूं। गांधीजी भी हिन्दू धर्म को श्रेष्ठ धर्म मानते थे और गांधीजी भी अपने को जीवन भर हिन्दू कहते रहे कि मैं हिन्दू हूँ। अभी मैंने सुना है कि जयप्रकाश ने यहां अहमदाबाद में कहा कि मैं हिन्दू हूं और हिन्दू होने का मुझे गौरव है। खतरनाक लोग हैं ये। क्योंकि जो यह कहता है कि हिन्दू धर्म श्रेष्ठ है, जो यह कहता है कि जैन धर्म श्रेष्ठ है, जो यह कहता है कि मैं हिन्दू होने की वजह से गौरवान्वित हूँ, वह उपद्रव के बीज बो रहा है—चाहे उसे पता हो और चाहे पता न हो। क्योंकि जो यह कह रहा है कि हिन्दू धर्म श्रेष्ठ है वह हिन्दू के अहंकार को फुसला रहा है, वह हिन्दू के अहंकार को रस दे रहा है और हिन्दू के अहंकार को कह रहा है कि हां, हम श्रेष्ठ हैं। और जो यह कह रहा है कि इस्लाम श्रेष्ठ है वह इस्लाम के अहंकार को फुसला रहा है। और जो जैन धर्म को श्रेष्ठ कह रहा है वह भी फुसला रहा है। और जो कह रहा है कि मैं गौरवान्वित हूं हिन्दू होकर, मुझे गौरव है कि मैं हिन्दू हूं वह दूसरे लोगों को भी हिन्दू होने के अभिमान से भर रहा है। और जहां हिन्दू का अहंकार है, जहां मुसलमान का अहंकार है, वहां शान्ति नहीं हो सकती। वहां कोई शान्ति सम्भव नहीं है।

इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूं कि जब हिन्दू-मुस्लिम दंगे होते हैं तो आमतौर से हम यह समझ कर कि गुण्डे दंगे कर रहे हैं, गुण्डों को गालियां दे लेते हैं और घरों में बैठ जाते हैं। मैं आपसे कहता हूं, बहुत समय हो गया है, गुण्डों को अब ज्यादा गालियां मत दें। और पकड़ना हो तो महात्माओं को पकड़ें, गुण्डों को पकड़ने से कुछ भी नहीं होता है। गुण्डे समस्या नहीं हैं, महात्मा समस्या हैं। लेकिन महात्मा अमन कमेटी बनाते हैं, शान्ति की व्यवस्था करते हैं, प्रवचन देते हैं, लोगों को समझाते हैं, लड़ो मत। तो महात्मा ऐसा समझ में आता है, वह तो बेचारा समझा रहा है, लड़ो मत। लड़ता तो गुण्डा है। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं, बहुत पुरानी हो गयी है यह बात। यह बात सही नहीं मालूम पड़ती क्योंकि महात्माओं की कोई कमी नहीं है। शायद गुण्डों से ज्यादा ही होंगे। लेकिन कोई कमी नहीं होती युद्ध में, संघर्ष में, वैमनस्य में, ईर्ष्या में, घृणा में। नहीं, कहीं कुछ भूल हो रही है। गुण्डे को हम व्यर्थ ही पकड़ रहे हैं। वह महात्मा की तरकीब है। वह हमें सब गुण्डों की तरफ इशारा कर देता है कि गुण्डों ने गड़बड़ की। लेकिन महात्मा पकड़ में नहीं आता। मैं आपसे कहना चाहता हूं, महात्मा जड़ में है।

क्योंकि महात्मा कह रहा है कि मैं हिन्दू होकर गौरवान्वित हूं। वह हिन्दू के अहंकार को मजबूत कर रहा है। वह महात्मा कह रहा है कि मैं हिन्दू हूं, वह महात्मा कह रहा है कि मैं मुसलमान हूं। तब फिर उपद्रव जारी है।

खान अब्दुल गफ्फार खां यहां आये, सारे मुल्क में गये। लेकिन वे पक्के मुसलमान हैं। और मैं कहना चाहता हूं कि पक्का मुसलमान होना खतरनाक है। खतरनाक इसलिए है कि आदमी को आदमी होने दो, मुसलमान और हिन्दू मत बनाओ। कृपा करो, अब आदमी-आदमी ही हो जाय तो ही दंगे बंद हो सकते हैं, अन्यथा दंगे बंद नहीं हो सकते। आदमी पर लगाया गया कोई भी लेबल दंगे में सहयोगी बनता है। लेबल लड़वाते हैं। लेकिन एक पक्का मुसलमान है, एक पक्का हिन्दू है और हम पक्के हिन्दू और मुसलमान कभी मिल नहीं पाते। वह जो मुसलमान होना है वह हिन्दू होने से कैसे मिल सकता है? वह जो जैन होना है वह मुसलमान होने से कैसे मेल खाएगा? हमारे बीच अदृश्य दीवारें खड़ी हो जाती हैं।

नहीं, मैं आपसे कहना चाहता हूं, हिन्दू मुस्लिम एक हैं—अब इस नासमझी में पड़ने की जरूरत नहीं है। पचास साल हमने काफी भुगतान किया उस नासमझी का। अब हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई हैं, इसको भी दोहराने की कोई जरूरत नहीं क्योंकि भाई भाइयों के कारण हमने बहुत नुकसान कर लिया। बल्कि सच तो यह है कि जितना हमने जोर दिया कि हिन्दू मुसलमान भाई-भाई हैं, तो उसी जोर ने हिन्दुस्तान पाकिस्तान को बंटवाने का आधार रखा। क्योंकि दो भाई जब पक्के भाई हों और लड़ें और लड़ने के बाद कोई उपाय न हो तो बंटवारे के सिवाय कोई लॉजिकल कंक्लूजन नहीं रह जाता। मैं आपसे कहना चाहता हूं, जिन्होंने समझाया हिन्दुस्तान को कि हिन्दू मुसलमान भाई-भाई हैं उन्होंने बंटवारे की नींव रख दी क्योंकि अगर भाई आखिर में न मिल सकें तो फिर उपाय एक ही है कि बांट लो। कभी कोई देश बंटा नहीं था इस तरह क्योंकि कभी किसी देश में भाई-भाई होने की पचास साल तक नासमझी नहीं दोहरायी गयी है। हिन्दू मुसलमान का भाई-भाई होना हिन्दुस्तान पाकिस्तान का आधार बना क्योंकि जब भाई आखिर में लड़ते हैं, और ध्यान रहे, भाइयों से ज्यादा खतरनाक ढंग से कोई भी नहीं लड़ सकता। जब दो भाई लड़ते हैं तो बहुत खतरनाक ढंग से लड़ते हैं। भाइयों से खतरनाक कोई भी नहीं लड़ सकता। इसलिए हिन्दू मुसलमान को भाई-भाई बनाने में खतरा है कि वह खतरनाक ढंग से लड़ भी सकते हैं। और जब दो भाई लड़ते हैं तो आखिर में बंटवारा हो जाता है, और क्या उपाय है? हिन्दुस्तान बंटा। जिन्होंने भाई-भाई कहकर समझाया उन्होंने देश को बंटवाया। अब आगे यह कहने की जरूरत नहीं है। असल में यह जरूरत ही क्यों पड़ती है कि हिन्दू मुसलमान भाई-भाई हैं? जरूरत इसलिए पड़ती है कि पहले हम स्वीकार कर लेते हैं कि एक हिन्दू है और एक मुसलमान है।

नहीं, मैं आपसे कहना चाहता हूं, ये उपद्रव बन्द न होंगे यह साम्प्रदायिक जहर समाप्त न होगा। इस देश के सामने बड़े से बड़ा जीता सवाल साम्प्रदायिक जहर का है, साम्प्रदायिकता का है, यह समाप्त न होगा। यह समाप्त एक ही तरह से होगा कि हम लेबल अलग कर दें। और जो लोग बुद्धिमान हैं वे कह दें कि हम सिर्फ आदमी हैं। अब हमें हिन्दू और मुसलमान होने से कोई वास्ता न रहा। अभी आपने यहां सब कुछ देखा, लेकिन कितनों के मन में यह ख्याल आया कि हम हिन्दू और मुसलमान होना बन्द कर दें। नहीं, किसी को ख्याल नहीं आया। वह ख्याल नहीं आता हमें। हमें यही ख्याल आता है कि गलत हिन्दू यह काम कर रहे हैं। गलत मुसलमान यह काम कर रहे हैं। हमें यह ख्याल ही नहीं आता कि मुसलमान होने, हिन्दू होने के भीतर ये बीज छिपे हैं इसलिए यह होता रहेगा। अगर आपको पता न हो कि आप हिन्दू हैं या मुसलमान हैं, तो आप किससे लड़ने जा सकते हैं?

मैं अभी एक ट्रेन में सवार हुआ। कुछ मित्र छोड़ने आये थे। उसी बगल के मेरे कम्पार्टमेंट में एक सज्जन थे, उन्होंने सोचा, कोई महात्मा होंगे। जैसे ही मैं डिब्बे के भीतर गया, उन्होंने पैर पकड़े और कहा, महात्मा जी, आपसे सत्संग करना चाहता हूं। मैंने कहा, पहली तो बात यह कि मैं कोई महात्मा नहीं हूं। महात्माओं ने इतना नुकसान पहुंचाया है कि अब कोई भला आदमी महात्मा नहीं हो सकता है। तो आपने गलती से पैर पकड़ लिए। अगर किसी तरकीब से वापस ले सकते हों तो वापस ले लें। उन्होंने कहा, क्या आप महात्मा नहीं हैं? कम से कम आप हिन्दू तो हैं? मैंने कहा, हिन्दू भी मैं नहीं हूं, मैं सिर्फ आदमी हूं। उन्होंने कहा, क्या मतलब आपका? आप हिन्दू नहीं हैं? वह इतने बेचैन हो गये, क्योंकि पता नहीं, किसके पैर छू दिये! मुससमान हो, ईसाई हो, पता नहीं कौन हो! अब लेकिन पैर छू लिए तो वापस लौटाने का उपाय नहीं है। अब क्या करेंगे? मैंने कहा, कोई तरह वापस ले सकते हों तो ले दें। हाथ धो सकते हों तो धो लें, साबुन मैं दिये देता हूं। उन्होंने कहा, नहीं-नहीं, यह बात नहीं, लेकिन आप कौन हैं? मुसलमान हैं, ईसाई हैं, कौन हैं? मैंने कहा, अगर मैं कोई न होऊं तो क्या मुझे होने का हक नहीं है? नहीं, उन्होंने कहा, हक की कोई बात नहीं है। मैंने कहा, बैठिये। आप कहते थे सत्संग करेंगे, सत्संग हो। उन्होंने कहा, नहीं मैं सुबह मिलूंगा। मैंने कहा, आप बैठें। पर वे इतने बेचैन हो गये कि उस आदमी के साथ कैसे बैठें जो न हिन्दू है, न मुसलमान है, न ईसाई है!

हम उस आदमी से सम्बन्ध कैसे जोड़ें, दोस्ती कैसे बनायें? अगर मैं हिन्दू होता तो दोस्ती बन जाती। अगर मैं मुसलमान होता तो दुश्मनी बन जाती, लेकिन अगर मैं निपट आदमी हूं तो सम्बन्ध कैसे बनायें! दो आदमी के बीच सम्बन्ध नहीं हो सकता? नहीं, हिन्दू-हिन्दू के बीच सम्बन्ध हो सकता है, मुसलमान-

मुसलमान के बीच हो सकता है। और यह भी वहीं, जहां कि हिन्दू मुसलमान हैं।

जब यहां अहमदाबाद में दंगा चलता था तो मैं काश्मीर में था, पहलगाम में था। पहलगाम तो मुसलमानों की बस्ती है। हिन्दू तो एकाध दो घर होंगे। जो आदमी मेरा खाना बनाता था उससे मैंने पूछा, तू मुसलमान है न! उसने कहा, मैं मुसलमान! नहीं। वह जो आपके कपड़े धोता है, वह मुसलमान है। मैं तो सुन्नी हूं। मैंने कहा, यह बड़ा मुश्किल सवाल है। तू सुन्नी है, मुसलमान नहीं है? उसने कहा कि नहीं, शिया मुसलमान होते हैं, हम सुन्नी हैं। उस गांव में शिया और सुन्नियों में झगड़ा है, तो दोनों एक ही लेबल लगाने को तैयार नहीं हैं। झगड़ा है शिया-सुन्नी में, तो दोनों कैसे मुसलमान हो सकते हैं? सुन्नी-सुन्नी है, शिया-शिया है। दोनों के बीच झगड़ा है,। शिया-सुन्नी के बीच झगड़ा है, श्वेताम्बर-दिगम्बर के बीच झगड़ा है, ब्राह्मण-शूद्र के बीच झगड़ा है। ब्राह्मण और ब्राह्मण के बीच भी फिरके हैं और उनके बीच भी झगड़ा है।

क्या हम लेबलों से कभी मुक्त न हो सकेंगे? आदमी कभी आदमी न हो सकेगा? समस्या यह है कि आदमी-आदमी होकर ही ठीक हो सकता है। और हम जो समाधान खोजते हैं वह कुछ ऐसे खोजते हैं कि उनसे आदमी कभी आदमी नहीं हो पाता है। वह हिन्दू हो जाता है, मुसलमान हो जाता है, ईसाई हो जाता है। और झगड़े के बीज आरोपित कर दिये जाते हैं। इस देश को अगर भविष्य की तरफ उन्मुख होना हो तो अतीत से दी गयी इन बीमारियों से छुटकारा पाना होगा। आदमी होगा भविष्य में, यह निर्णय लेना होगा।

और जो बाप अपने बेटे को हिन्दू बना रहा है वह दुश्मन है अपने बेटे का। क्योंकि वह अपने बेटे को किसी की छाती में छुरा भोंकने को तैयार करवा रहा है। और जो बाप अपने बेटे को मुसलमान बना रहा है, वह भी खतरनाक बाप है। वह या तो अपने बेटे की छाती में छुरा भोंकवायेगा, या अपने बेटे से किसी की छाती में छुरा भोंकवायेगा। लेकिन अब अगर बाप थोड़े समझदार हों तो उन्हें अपने बेटे को सिर्फ आदमी बनाना चाहिए। पचास साल बाद इस देश में आदमी हों। हिन्दू मुसलमान खोजे से न मिलें, यह निर्णय हमें लेना पड़ेगा। अन्यथा हम साम्प्रदायिकता से मुक्त नहीं हो सकते। न खान अब्दुल गफ्फार खान मुक्त कर सकते हैं, न महात्मा गांधी मुक्त कर सकते हैं क्योंकि बुनियादी जड़ की बीमारी को वे स्वीकार करते हैं। एक हिन्दू है—एक पक्का हिन्दू, एक पक्के मुसलमान हैं। वे बुनियादी जड़ को इन्कार नहीं करते। वे यह नहीं कहते हैं कि मस्जिद और मन्दिर, हिन्दू और मुसलमान बेहूदगियां हैं, एब्सर्डिटीज हैं। भगवान् का कोई मन्दिर हो सकता है? मस्जिद हो सकता है?

भगवान् अगर है तो इस पूरे जगत् में है और हर जगह मन्दिर है और हर जगह मस्जिद है। और जिसे प्रार्थना करना आता है वह किसी वृक्ष के नीचे या

किसी नदी के तट पर, अपने घर की छत पर ही मन्दिर बना ले सकता है। कहीं अलग मन्दिरों की अब जरूरत नहीं है। अलग मन्दिर बहुत मंहगे पड़ गये हैं, बहुत मंहगा सौदा सिद्ध हुआ है। अब नहीं मन्दिर चाहिए, अब नहीं भगवान् की मूर्तियां चाहिए, अब नहीं मस्जिद चाहिए, अब इनसे छुटकारा चाहिए। सिर्फ आदमी चाहिए। अगर ऐसा आदमी हम पैदा नहीं कर सकते हैं तो हम अपनी समस्याओं का हल न खोज पायेंगे। हम रोते रहेंगे, समस्याएं हमारी जान खाती रहेंगी। आज जहर यहां फूटेगा, कल जहर वहां फूटेगा, परसों वहां फूटेगा। बम्बई अहमदाबाद में जब जहर फूटेगा तो अहमदाबाद के लोगों को कहेगा, कैसे लोग हैं! और जब जबलपुर में जहर फूटेगा तो अहमदाबाद के लोग कहेंगे, कैसे लोग हैं! और जब दिल्ली में फूटेगा तो जबलपुर के लोग कहेंगे, कैसे लोग हैं! लेकिन कोई यह न सोचेगा कि हम सब ऐसे ही लोग हैं, हम सबमें कोई फर्क नहीं है। क्योंकि हम भी हिन्दू हैं, हम भी मुसलमान हैं। देर-अबेर की बात है, जहर कहीं भी फूट सकता है, लेकिन हम सब बीमार हैं।

आदमी को स्वस्थ करना है तो आदमी सिर्फ आदमी होना काफी है। असल में हिन्दू-मुसलमान होना बड़ी पुरानी बातें हो गयी हैं। एक दुनिया थी जब दुनिया खण्ड-खण्डों में विभाजित थी। न हिन्दुस्तान के आदमी को पता था बाहर का, न बाहर के आदमी को पता था हिन्दुस्तान का। लोकल सब बंटवारा था। सारी दुनिया छोटे-छोटे खण्डों में बंटी थी।

और कन्फ्यूशियस की एक किताब में लिखा है कि मेरे पूर्वज कहते थे कि गांव के पास नदी बहती थी। नदी के उस पार रात को कुत्ते भोंकते थे तो हमें आवाज सुनायी पड़ती थी लेकिन हमें यह पता नहीं था कि नदी के पार कौन रहता है? नदी बड़ी थी, और नाव ईजाद न हुई थी। नदी के पार कोई रहता है, कोई गांव है, कभी-कभी कुत्तों के भोंकने की आवाज रात के सन्नाटे में सुनायी पड़ती है लेकिन नाव न थी। वह गांव अपनी उसकी दुनिया थी, इस गांव की अपनी दुनिया थी। एक-एक गांव की अपनी दुनिया थी, एक-एक देश की अपनी दुनिया थी। सारी मनुष्यता जुड़ी न थी। उस खण्डित दुनिया में हमने जो विचार पैदा किये थे वे आज के काम के नहीं हैं।

आज सारी दुनिया एक गांव हो गयी है, एक यूनिवर्सल विलेज हो गयी है। जितनी देर में हम एक गांव से दूसरे गांव पहुंचते थे, आज उतनी देर में हम अहमदाबाद से लन्दन पहुंच सकते हैं। दुनिया एक छोटा गांव हो गयी है। उस दुनिया की धारणाएं, जब दुनिया खण्डित थी, हम अगर अभी भी पकड़ कर चलते हैं तो हम इस दुनिया में रहने के योग्य न रह जायेंगे। वे हमें छोड़ देनी पड़ेंगी। यह ऐसा ही है जैसा कि कार तो ईजाद हो गयी है, हवाई जहाज ईजाद हो गया लेकिन एक आदमी अपनी बैलगाड़ी को लेकर हवाई जहाज में बैठ गया। वह

कहे कि हम अपनी बैलगाड़ी नहीं छोड़ सकते हैं। क्योंकि बैलगाड़ी में हमारे पूर्वज चलते थे। बैलगाड़ी ने बड़ी कृपा की है। हम बैलगाड़ी नहीं छोड़ सकते, हम तो हवाई जहाज में इसको लेकर ही चलेंगे।

उस आदमी को हम पागल कहेंगे, जो आदमी बैलगाड़ी को लेकर हवाई जहाज में सवार होने की कोशिश कर रहा है। लेकिन हम सब पिछली सदियों को लेकर बीसवीं सदी में जीने की कोशिश कर रहे हैं। उन दोनों बातों में बहुत भेद नहीं है। पिछली सदियों को विदा हो जाना चाहिए। चौदह सौ साल पहले इस्लाम पैदा हुआ था। वह चौदह सौ साल पहले अरब की हालतों में उसका कोई सन्दर्भ, उसका कोई अर्थ रहा होगा ; कोई संगति, कोई रिलेवेंस रही होगी। आज उसकी कोई रिलेवेंस नहीं है। हिन्दू धर्म पांच हजार साल पहले पैदा हुआ था। पांच हजार साल की पुरानी दुनिया में उसका कोई अर्थ रहा होगा। जब बिजली चमकती होगी तो डर लगता होगा और इन्द्र की पूजा की गयी होगी। अर्थात् मन को राहत मिली थी, रात हम निश्चित सो सके थे कि इन्द्र को समझा दिया है, नारियल भी फोड़ दिया है। रात कम से कम हमारा घर सुरक्षित रहेगा। लेकिन आज कोई रिलेवेंस नहीं है। लेकिन आज भी बीसवीं सदी में यज्ञ किया जा रहा है, इन्द्र की पूजा की जा रही है, पानी बरसे, इसके लिए इन्द्र से प्रार्थना की जा रही है कि बैलगाड़ी को लेकर हवाई जहाज में चढ़ने की कोशिश...।

नहीं, हर युग अपना विचार पैदा करता है। हर युग चला जाता है और विचार अटक के रह जाता है। और विचार को हम दूसरे युग में ले जाते हैं। तब वह विचार बोझिल हो जाता है, लेकिन पहले यह बोझिल न हुआ था क्योंकि नये विचार पैदा ही न हो रहे थे। लेकिन इधर डेढ़ सौ वर्षों में मनुष्य की चेतना क्रांति में गुजर गयी है। एक बहुत बड़ा तूफान आया, विचार बदल गये, नयी दिशाएं टूटीं, नये ख्याल पैदा हुए, नये आविष्कार हुए। उन्होंने सब पुरानी स्थिति डांवाडोल कर दी। पुराना सब जमा हुआ बिखर गया। सब उखड़ गया। एक दुनिया थी जब सोचते कि पृथ्वी केन्द्र है और सूरज चक्कर लगाता है। वैसे दिखता है सूरज चक्कर लगाता हुआ। लेकिन सब दिखा हुआ सच नहीं होता। सूरज दिखता है हम सबको कि चक्कर लगाता है। एक दुनिया थी, जब स्वाभाविक किसी ने सोचा होगा कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है। उस दुनिया के लिए यह बात गलत न रही होगी। लेकिन आज, आज अगर कोई यह कहेगा तो मुश्किल हो जायेगी। हम जानते हैं कि पृथ्वी ही सूरज का चक्कर लगाती है। लेकिन जो हमने विचार पैदा किए थे पृथ्वी को केन्द्र पर मानकर वे सारे के सारे विचार वही के वही हैं और अब सब स्थिति बदल गयी है। अब पृथ्वी सूरज का चक्कर लगा रही है।

मनुष्य को एक भारी अहंकार था। पुराने सारे धर्म कहते हैं, आदमी को

विनम्र होना चाहिए लेकिन किसी धर्म ने भी आदमी को विनम्रता नहीं सिखायी। आदमी को धर्म ने भारी अहंकार सिखाया है। कोई कहता है, अहं ब्रह्मास्मि'—मैं ब्रह्म हूं। कोई कहता है, हम ईश्वर के बेटे हैं। कोई कहता है, परमात्मा ने आदमी को सृजा अपनी ही शक्ल में। अब आदमी की शक्ल देखकर अगर परमात्मा का पता लगाना हो, तो ऐसा परमात्मा न ही मिले तो अच्छा। क्योंकि मिले तो जेब काट सकता है, छुरा मार सकता है आदमी की शक्ल में। पुराने आदमी ने ऐसा सोचा था कि भगवान् ने कोई स्पेशल, कोई विशेष आदमी को पैदा किया है। पृथ्वी केन्द्र थी, आदमी केन्द्र था, चांद-तारे सब आदमी के आस-पास, इर्द-गिर्द घूम रहे थे। चांद इसलिए था कि आदमी को रात में रोशनी हो और सूरज इसलिए था कि सुबह उठकर आदमी को खेत पर काम में जाने में रोशनी करे। सब आदमी के चाकर थे। और भगवान् आदमी को व्यवस्था देने के लिए था। इसलिए आदमी छोटी-छोटी बात के लिए उसके पास जा रहा था—पानी गिराओ, धूप कम करो, बादल लाओ या न लाओ, या फसल ठीक हो, या दुश्मन की फसल न हो पाये। धर्मग्रन्थों में ये भी प्रार्थनाएं हैं कि दुश्मन की गाय दूध देना बन्द कर दे। धर्मग्रन्थ हैं कि दुश्मन के खेत में फसल न हो, कि ओले गिरें तो दुश्मन के खेत में गिरें, मेरे खेत में न गिरें। हे भगवान्, ऐसी व्यवस्था कर देना। भगवान् से भी एक तरह का नौकर का ही काम लिया जा रहा था—आदमी के नौकर का। आदमी था सेन्टर में, सब बदल गया लेकिन।

पीछे बर्नाड शा अमरीका में था। एक यूनिवर्सिटी में बोलते हुए उसने मजाक में यह बात कही कि मैं यह सिद्धान्त मानने को राजी नहीं हूं कि सूरज का चक्कर पृथ्वी लगाती है। मैं तो पुराना सिद्धान्त ही मानता हूं कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है। एक आदमी ने पूछा, आप कह क्या रहे हैं? भूल तो नहीं गये हैं? सूरज, और पृथ्वी का चक्कर लगाता, आप कह रहे हैं? कारण बतायेंगे? बर्नाड शा ने कहा, बिना कारण मैं कुछ भी नहीं कहता। बड़े से बड़ा कारण यह है कि बर्नाड शा जिस पृथ्वी पर रहता वह पृथ्वी किसी का चक्कर नहीं लगा सकती। सूरज ही चक्कर लगाता होगा। मैं यहां रहता हूं।

आदमी पृथ्वी पर रहता था। उसने पृथ्वी को सेन्टर बना लिया था। हम जानते हैं कि पृथ्वी बहुत छोटी से छोटी चीज है। सूरज साठ हजार गुना बड़ा है इस पृथ्वी से, और सूरज बहुत छोटा सूरज है, उससे करोड़, अरब गुने सूरज हैं। सूरज बहुत छोटा सूरज है और पृथ्वी का तो कोई पता ही नहीं है। अगर इस पूरे विस्तार में हम खोज करने निकलें तो पृथ्वी का कोई हिसाब नहीं है। वह कहीं नहीं आती है। उस पृथ्वी पर आदमी है, लेकिन उसने सदा अपने को केन्द्र माना था। केन्द्र मानकर उसने एक दुनिया विकसित की थी—मन्दिर और मस्जिद और भगवान् और गीता और कुरान, और दर्शन और फिलोसिफी की। वह सब गड़बड़ा

गयी। अब आदमी केन्द्र पर नहीं है। फिर पहले तो पृथ्वी चक्कर लगाने लगी, आदमी का पहला केन्द्र टूट गया। फिर डार्विन ने कहा, यह आदमी की सारी आदतों को देखकर, खोज-बीन करके ऐसा लगता है कि यह थोड़ा-सा पूंछ झड़ गया बन्दर है। कहां भगवान् की इमेज में हम थे और कहां बन्दर से सम्बन्ध जुड़ा! बहुत मुश्किल हो गयी, बहुत बेचैनी हुई, बहुत कठिनाई हुई, लेकिन डार्विन ने बहुत गहरे प्रमाण खोजे थे। और उसे गलत नहीं कहा जा सकता। भगवान् का बेटा अचानक बन्दर का बेटा सिद्ध हुआ। बहुत कठिनाई हो गयी। लाखों साल हो गये हैं बन्दर को आदमी बनने की प्रक्रिया में। कुछ बदलाहट हुई है लेकिन बहुत गहरे में बन्दर अब भी मौजूद है।

मैं एक अजायबघर में गया था। वहां काफी बन्दर एक कठघरे में बन्द हैं। मैं उस अजायबघर के एक क्यूरेटर को पूछने लगा कि जब तुम किसी नये बन्दर को लाते हो···क्योंकि उस दिन एक नया बन्दर लाया गया था, उस कठघरे में। उस नये बन्दर को बाकी बन्दर बहुत परेशान कर रहे थे। पुराने बन्दर उसको डरवा रहे थे। तो उसने कहा, यह हमेशा होता है। जब भी नये बन्दर को लाते हैं तो रस्साकशी होती है। जो पुराना बन्दरों का नेता होता है वह नये बन्दर को डरवाता है। अगर नया बन्दर डर जाय, डरा दिया जाय तो वह सब-आर्डीनेरी हैसियत का हो जाता है, नम्बर दो। और अगर वह न डरे और पुराने वाले नेता को डरा दे तो नम्बर एक की हैसियत का हो जाता है। मैंने कहा, बहुत बढ़िया है। उसने कहा, आप दिल्ली जाते होंगे, दिल्ली में भी यही होता है। एक बन्दर दूसरे बन्दर को डरा रहा है। सब-आर्डीनेरी हैसियत करने की कोशिश चलती है।

वह डार्विन ठीक कहता था। और आज के हिन्दुस्तान के नेताओं की तो शक्लें भी डार्विन को पता नहीं थीं। अगर पता होतीं तो बड़ी मुश्किल होती। वह इसको भी एक प्रमाण मानता कि आदमी जरूर बन्दर से पैदा हुआ है। असल में जब जिन्दगी कुरूप हो जाती है तो भीतर चेहरा भी कुरूप हो जाता है। हिन्दुस्तान के नेतृत्व से सौन्दर्य चला गया नेहरू के मरने के साथ। भीतर सब कुरूपता है, सब गंदगी है, चौबीस घण्टे, तो चेहरे भी कुरूप हो जाते हैं। उनका भी सौन्दर्य खो जाता है। आज हिन्दुस्तान के नेताओं को लाइन लगाकर खड़ा किया जाय तो वे किसी भी कारागृह के अपराधी कैदी मालूम हो सकते हैं। सौन्दर्य खो गया, गरिमा खो गयी। डार्विन को लेकिन इसका कुछ पता नहीं था। उसने तो इनके बिना जाने यह किया था। इनका कोई कसूर नहीं था, इनका कोई हाथ नहीं था। लेकिन डार्विन ने यह कहा कि आदमी बन्दर से पैदा हुआ है। और बड़ी खोज की, और बात सच है।

वैसे, भगवान् से पैदा होने और बन्दर से पैदा होने में—बन्दर से पैदा होना ही ज्यादा गौरवपूर्ण है। क्यों? क्योंकि भगवान् से पैदा होने का मतलब होता है

पतन, काल। बन्दर से विकसित होने का मतलब होता है विकास, उन्नति। भगवान् से पैदा होने का मतलब होता है पतन। बन्दर से पैदा होने का मतलब होता है विकास। पुरानी दुनिया पतन की छाया में जी रही थी। उसने जितने समाधान खोजे थे, वे सब पतन की छाया में खोजे थे। ओरीजन सिन था कि आदमी भगवान् से बिछुड़ गया था। एडन के बगीचे से बाहर निकाल दिया गया। पतित था आदमी। डार्विन के बाद आदमी विकास की धारा पर खड़ा हुआ। इसलिए पुराना आदमी रोज पतित हो रहा था। हमने भी जो विचार किया था वह पतन का है। हमारे अच्छे युग पहले हो चुके, गोल्डन एज पहले हो चुकी। सत्युग, द्वापर, त्रेता, सब हो चुके। पीछे कलियुग। रोज हम पतित हो रहे हैं। श्रेष्ठतम युग पहले, फिर पतन···फिर पतन···फिर पतन, कलियुग आखिरी पतन की स्थिति। हमारी भी चिन्तन की धारा यही थी कि श्रेष्ठ पहले हो गया, निकृष्ट पीछे आ रहा है। विकास की कोई धारणा न थी। दुनिया में ही न थी। इवोल्यूशन की कोई धारणा न थी, पतन की ही धारणा थी।

पतन की धारणा के नीचे जो भी हमने खोजे थे, वे आज की समस्याओं का समाधान नहीं है। क्योंकि आज हम विकास की धारणा के अन्तर्गत जी रहे हैं। आज सब कुछ विकास के अन्तर्गत है। आज आदमी विकासशील है। इसलिए पुराना समाज स्टेटिक था, ठहरा हुआ था। ज्यादा से ज्यादा पतन रुक जाय तो काफी था। आज का समाज डायनामिक होगा, गतिमान होगा। इतना काफी नहीं है कि पतन न हो, जरूरी है कि विकास हो। विकास हो मतलब, स्वर्णयुग आगे रखना होगा भविष्य में। अब तक के सब स्वर्णयुग पीछे रहे हैं। राम-राज्य हो चुका वही। जो हो चुका था वही राम-राज्य है, लेकिन स्वर्णयुग आगे है। यह हमें बदलना पड़ेगा। हमें पूरा पर्सपेक्टिव—चिन्तन की पूरी धारा बदलनी पड़ेगी।

फिर आया फ्रायड। एक हमला कोपरनिक्स ने किया, दूसरा हमला डारविन ने किया, तीसरा हमला फ्रायड ने किया। उसने कहा कि जिन चीजों की तुम निन्दा कर रहे हो वह आदमी उनसे भरा हुआ है। और जिन चीजों की तुम प्रशंसा कर रहे हो वे सिवाय सपनों के, कहानियों के और कुछ भी नहीं हैं! और जब आदमी के भीतर खोज-बीन की गयी तो फ्रायड को सही पाया गया। फ्रायड सही है। आदमी उन सब चीजों से भरा है जिन्हें हम इन्कार कर रहे हैं। हमारे इन्कार करने से कुछ फर्क नहीं पड़ता है। एक आदमी गीता पढ़ रहा है, एक आदमी कुरान पढ़ रहा है। हम सोच भी नहीं सकते कि भोला-भाला आदमी घी का दिया जलाकर कुरान और गीता पढ़ रहा है, यह किसी की छाती में छुरा भोंक सकता है। इसके चेहरे को देखकर ख्याल ही नहीं आता। लेकिन फ्रायड कहता है, थोड़ा पीछे खोजो, हो सकता है, छुरा भोंकने से बचने के लिए ही कुरान और गीता पढ़ रहा हो कि किसी तरह मन को भुला लें। राम-राम-राम-राम जप रहा है

एक आदमी। ऊपर से दिखायी पड़ता है कि राम का चिन्तन कर रहा है। हो सकता है, भीतर किसी चिन्तन को दबाने लिए वह राम-राम-राम जप रहा हो; कि भीतर कुछ दब जाय जो राम से बिल्कुल उल्टा है। नदी में लोग ठण्ड में स्नान करते हैं तो एकदम हरी-हरी, राम-राम करने लगते हैं। इस भूल में मत पड़ जाना कि राम से कुछ सम्बन्ध है। वह जो ठण्ड लग रही है, वह ठण्ड भूल जाय। यह आकुपाइड हो जाय राम-राम में तो नीचे जो ठण्ड लग रही है वह भूल जाय। फ्रायड ने पहली दफा चेताया कि भीतर आदमी कुछ और है। उसे भूलने की कोशिश कर रहा है। भजन कीर्तन कर रहा है और भीतर गालियां देना चाहता है। ऊपर प्रेम की बातें कर रहा है, भीतर घृणा के सागर भरे हैं। ऊपर से अमृत की खोज कर रहा है, भीतर जहर खुद पैदा कर रहा है।

आदमी की सफाई पहली दफा खोलकर रखी गयी। हम डरते थे आदमी को नंगा देखने में कि वह आदमी नंगा कैसा है। हमने उसे कपड़े पहना दिए थे अच्छे-अच्छे और कपड़ों में ही देखते रहे थे। इधर डेढ़ सौ वर्षों में सब बदल गया। आदमी बहुत और रूप का दिखायी पड़ा है, जैसा हमने उसे कभी न सोचा था—भीतर खोजने से। जितने हम उसके भीतर गहरे गये हैं उतना हमें पता चला है कि आदमी बहुत अद्भुत चाल है। उसके भीतर बहुत हरी जड़ें हैं, और बड़ी खतरनाक हैं लेकिन उनको दबाने से कोई छुटकारा नहीं है। उनको समझने से छुटकारा हो भी सकता है। पुरानी सारी संस्कृति दबाने वाली संस्कृति है। आज की अधिकतम समस्याएं, जिन्हें हम बर्निंग प्राब्लम्स कहते हैं, जिन्हें हम जिन्दा जलते हुए प्रश्न कहते हैं वह पुरानी सभ्यता के सप्रेशन और दमन से पैदा हुए हैं। लेकिन उनकी जलन और उनकी आग ऐसे मार्गों से भी निकल जाती हैं जिनसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

मैं दफ्तर में हूं और मेरे मालिक से झगड़ा हो गया तो मालिक पर मैं क्रोध नहीं करता हूं, लेकिन जाकर अपनी पत्नी पर टूट पड़ता हूं। और पत्नी की समझ के बाहर होता है। उसने बेचारी ने कुछ बिगाड़ा भी नहीं। दिन भर मेरे घर में मेरे बच्चों की फिक्र करे, मेरे बर्तन साफ करे, मेरे कपड़े धोये और सांझ को मैं पहुंचू कि उसकी गर्दन पकड़ लूं और उसे कुछ समझ में न आये कि क्या मामला हो गया है। लेकिन वह भी मुझ पर नहीं टूट सकती है क्योंकि पति परमात्मा है। ऐसा पतियों ने ही उसे समझाया हुआ है! और पति कैसा भी हो, उसको तो सती-सावित्री होना ही है। वह भी समझाया हुआ है। तो वह मुझे सह जाती है। लेकिन बेटे की प्रतिक्षा करती है स्कूल से आते कि बेटा फंस जाय आ के तो उसकी गर्दन पकड़ ले। बेटा चला आ रहा है, उसे पता भी नहीं है। बस्ते को झुलाते हुए, गीत गाते हुए, उसे पता ही नहीं कि मां तैयार है, कि पिता ने मां को तैयार कर रखा है। वह तैयार है, वह उस पर टूटेगी। वह आते से

टूट पड़ने वाली है। कपड़े खराब हो गये हैं, गन्दे लड़कों के साथ खेला है, और हजार कसूर है। जिन्दगी में कसूर जब खोजने हों तो मिल ही जाते हैं इसमें कोई कठिनाई नहीं है। कल भी वह इन्हीं बच्चों के साथ खेला था, कल भी कपड़े इतने ही गन्दे हो गये थे। वह बच्चा कैसा, जिसके कपड़े गन्दे होकर घर न आयें! वह कोई बूढ़ा है? बूढ़े अपने कपड़े बचाकर आते हैं इसलिए कि और कुछ नहीं बचा पाते हैं, सिर्फ कपड़े ही बचा पाते हैं। वह बच्चा है, अभी कपड़े की फिक्र कहां है। अभी कपड़े कहां बाधा डालते हैं जीने में उसके! अभी कपड़े अर्थहीन हैं। अभी कपड़ों का कोई मूल्य नहीं है। वह कल भी कपड़े बिगाड़ कर आया था, लेकिन कल नहीं पकड़ा गया था, क्योंकि कल पति ने पत्नी को तैयार नहीं किया था। आज पत्नी तैयार है। आज वह टूट पड़ती है लेकिन लड़का क्या करे, वह चौंक कर खड़ा होता है। उसने कोई कसूर तो किया नहीं, लेकिन वह क्या करे? वह एकान्त में जाकर अपनी गुड़िया की टांगें तोड़ देता है, उसकी गर्दन मरोड़ देता है।

हमारे दबे हुए विकार नये-नये मार्गों से—बहुत इन्नोसेंट, बहुत निर्दोष मार्गों से निकलना शुरू हो जाते हैं। मेरी अपनी समझ है कि हिन्दुस्तान में आजादी के बाद जो हत्याकांड हुआ, हिन्दुस्तान-पाकिस्तान की सीमाओं पर—हिन्दुओं का, मुसलमानों का, बच्चों का, औरतों का, आदमियों का कहना चाहिए—जो हत्याकांड हुआ, अंग्रेजों के प्रति हमारे दबाये हुए क्रोध का अन्तिम फल है जिसको हम नहीं निकाल पाये। जिसको हम नहीं निकाल पाये और गांधी जी और उनके साथियों ने नहीं निकलने दिया। उन्होंने अहिंसा-अहिंसा की सारी बातें कीं। वह क्रोध इकट्ठा होता चला गया। वह इकट्ठा होता चला गया तो कोई उपाय न रहा। इसलिए आजादी के बाद खुलकर निकला। हमने अगर इतनी हत्या, इतना बलिदान, इतनी कुर्बानी अगर आजादी के लिए की होती तो एक चमकदार आजादी हाथ में आती। एक आजादी भी मरी-मरायी हाथ में आयी और पीछे हमने लाखों लोगों की हत्या भी की। वह बेमानी हो गयी, इरेलेवेंट हो गयी। लेकिन वह वैसी थी जैसे बच्चा गुड्डे को मरोड़ डाले और गुड्डे का कोई कसूर न हो।

हिन्दू-मुसलमान लड़े। अगर हिन्दुस्तान अंग्रेजों से लड़ लेता दिल खोलकर तो हिन्दू-मुसलमान कभी न लड़ते। वह क्रोध ही इकट्ठा न हो पाता। अगर हिन्दुस्तान अंग्रेजों से लड़ लेता दिल खोलकर तो हिन्दू और मुसलमान साथ खड़े हो जाते और एक हो जाते। वह लड़ाई उन्हें इकट्ठा कर गयी होती, तोड़ नहीं गयी होती। लेकिन वे अंग्रेजों से लड़ न पाये। अंग्रेजों का सारा अपमान पिया। अपनी छाती पर उनके जूते सहे। वह सारा का सारा इकट्ठा हो गया, वह निकल न सका। उसको हम रोकते रहे, रोकते रहे, रोकते रहे। रुका-रुकाया, फिर कोई

उपाय न रहा आजादी की रात हत्याकांड बन गयी । सारे मुल्क में आग फैल गयी । वह बड़ी अनहोनी घटना है । लेकिन उसे समझना चाहिए कि वह कैसे घटी, वह कैसे घट गयी ? वह उस घटने में हिन्दू मुसलमान का उतना हाथ नहीं है । हिन्दू-मुसलमान तो बहाना बना । उसके पीछे कारण है डेढ़ सौ वर्ष की गुलामी, और डेढ़ सौ वर्ष की गुलामी में इकट्ठा हुआ क्रोध । और उस क्रोध को निकलने का कोई उपाय नहीं । और उस क्रोध का जब सब मामला खत्म हो गया तब वह टूट पड़ा, आपस में और जिसने जिसको कमजोर पाया उसकी गर्दन पकड़ ली । जहां मुसलमान कमजोर था वहां मुसलमान मारा गया, जहां हिन्दू कमजोर था वहां हिन्दू मारा गया । बच्चे मारे गये, औरतें मारी गयीं । लेकिन मेरी अपनी समझ यह है कि वह सवाल सप्रेशन का था । वह दबा हुआ क्रोध और हिंसा थी, जो निकली ।

हर दस साल में एक युद्ध की जरूरत पड़ती है दुनिया में । क्योंकि हर दस साल में हम इतनी बेवकूफियां इकट्ठी कर लेते हैं कि जिन्हें प्रकट करने के लिए और कोई उपाय नहीं रह जाता । हर दस साल में, पन्द्रह साल में एक हिटलर, एक माओ पैदा करना ही पड़ता है, उसके बिना काम नहीं चलता । वह हमारी बहुत नेसेसिटी, हमारी बहुत जरूरत है । वह हमें बड़ी राहत दे जाता है । दस पन्द्रह साल के लिए फिर हम निश्चिन्त जी पाते हैं । फिर इतना इकट्ठा कर लेते हैं । क्या आपको पता है, जब युद्ध होता है तो दुनिया में हत्याएं कम हो जाती हैं, आत्महत्याएं कम हो जाती हैं, चोरियां कम हो जाती हैं, डकैतियां कम हो जाती हैं, खून कम हो जाते हैं । जब युद्ध होता है तब ये क्यों कम हो जाते हैं ?

मैं बहुत सोचता था । पहले महायुद्ध में यह हुआ था । तब कुछ समझ में नहीं पड़ा कि क्यों ऐसा हुआ ? आखिर जर्मनी में युद्ध हो रहा हो, या यूरोप की जमीन पर युद्ध हो रहा हो तो चीन में चोरी कम हो जाने का क्या कारण है ? लेकिन चीन में चोरी कम हो जाती है, हिन्दुस्तान में हत्याएं कम होती हैं । यहां तक मजा है कि लोग कम पागल होते हैं—युद्ध के समय में । पागलों की संख्या नीचे गिर जाती है । इसका फिर दूसरे महायुद्ध में तो यह बहुत जोर से हुआ । तब यह ख्याल में आना शुरू हुआ कि जब सामूहिक पागलपन चल रहा हो तो प्राइवेट पागलपन की कोई जरूरत नहीं है । वह उसी में रस ले लेते हैं, उसी में निपटारा कर लेते हैं, उसी में निकास हो जाता है । तो एक-एक आदमी को अलग-अलग पागल होने की जरूरत नहीं । जब सामूहिक हत्या चल रही हो तो हत्या का मजा आ जाता है ।

ध्यान रहे, जो हत्या करता है, वही हत्या नहीं करता । जो किनारे खड़े होकर देखकर मजा लेता है वह भी हत्या का भागीदार है । वह भी रस लेता है । उसका भी हाथ है । एक हवा बनाता है जिसमें हत्या हो सकती है । हम

हत्या के लिए आतुर हैं । जब किसी की छाती में छुरा भुंकता है और खून के फव्वारे-फूटते हैं तो हमारे भीतर कोई तृप्ति होती है । हमारे भीतर कुछ शान्त होता है । रास्ते पर दो आदमी लड़ रहे हों तो हम हजार काम छोड़ कर साइकिल रोक कर वहीं खड़े हो जाते हैं ऐसे ऊपर से कहते हैं कि क्यों लड़ते हो ? भीतर से भगवान् से कहते हैं कि छूट ही न जायें, लड़ाई होनी ही चाहिए । और अगर वह दोनों मान जायें भीड़ की कि अच्छा नहीं लड़ते, आप कहते हैं तो बात खत्म है, तो सारी भीड़ उदास लौटेगी, समय बेकार गया । कोई मतलब न निकला । लेकिन अगर वे जूझ ही जायें और खून टपक जाय तो सारी भीड़ एक भीतरी रस और तृप्ति को लेकर लौटेगी ।

हम अपने भीतर बहुत इकट्ठा कर रहे हैं । पुरानी सारी संस्कृति सप्रेसिव है । वह दमन सिखाती थी । उसमें कोई, जिसको विसर्जन कहें वह नहीं सिखाया । इसलिए आदमी के सारे प्रश्न दमन से पैदा हुए प्रश्न हैं । दंगा हिन्दू-मुसलमान का होता है लेकिन स्त्री क्यों पकड़ ली जाती है ? बड़ी हैरानी की बात है । हिन्दू-मुसलमान लड़े, लेकिन स्त्री फौरन फंस जाती है ।

अभी मैं एक सभा में बोल रहा था और सभा में कुछ दंगा हो गया तो मेरे गांव का कमिश्नर भागा हुआ आया और उसने कहा कि एक काम करिये । सबसे पहले स्त्रियों को निकालने का इन्तजाम करवाइए । तो मैंने कहा, स्त्रियों से क्या मामला है ? जो लोग लड़ रहे हैं लड़ने दो । उसने कहा आपको कुछ पता नहीं । लोग लड़ इसलिए रहे हैं कि अगर उपद्रव हो जाये तो स्त्रियां अभी फंस जायें । अब यह बड़ी हैरानी की बात है । जब झगड़ा होता है तो स्त्रियां एकदम से क्यों उलझ जाती हैं ? चाहे कलकत्ते में हो, चाहे अहमदाबाद में हो, कहीं भी हो, स्त्री क्यों बीच में आ जाती है ? असल में सेक्स का इतना सप्रेशन किया है, इतना दमन किया है कि हर आदमी उबल रहा है । मौके की तलाश है । अगर उपद्रव हो जाय तो मौका पूरा है, फिर आइडिन्टिटी नहीं रह जाती है कि कौन आदमी क्या रहा है ? कोई झंझट नहीं है । फिर हम कर ही नहीं रहे, भीड़ कर रही है । इसलिए जो भी हो रहा है, हो सकता है । सब जगह हमारा दमन, हमारी समस्याएं बनता है । इस समय हिन्दुस्तान के सामने जो खास समस्याएं हैं, उनको मैं दोहराऊं, और आपसे कहूं कि वे दमन से पैदा हुई हैं ।

एक समस्या है हिन्दुस्तान के सामने, और वह है पद की, धन की पागल दौड़ । सिद्धान्त-विद्धान्त सब बातें हैं । सारी दौड़ पद की और धन की है । सब बातें हैं सिद्धान्त—धन की और पद की दौड़ हैं । लेकिन यह हिन्दुस्तान इतना पागल क्यों हो गया है धन और पद के लिए ? यह तीन हजार साल से हम धन और पद के खिलाफ हैं । हम कहते हैं कि धनी होना पापी होना है । हम कहते हैं, धन होना बड़ी बुराई है । गरीब होना बड़ी ऊंची बात है । तीन चार-हजार

साल से गरीब होना हम सिखा रहे हैं। गरीब होने के लिए कोई राजी नहीं है। गरीब होना स्वभाव के विपरीत है। गरीब होना प्रकृति के प्रतिकूल है। कोई आदमी राजी नहीं है। न किसी आदमी को राजी होना चाहिए। हां सिर्फ इस तरह के लोग राजी हो सकते हैं जिनकी गरीबी पर अमीरी से भी ज्यादा खर्च करना पड़े, ऐसे लोग राजी हो सकते हैं।

चर्चिल ने कहीं कहा है कि गांधी दुनिया के उन गरीब आदमियों में से एक हैं जिनके ऊपर अमीरों से ज्यादा खर्च होता है। और यह ठीक है, यह बात सच है। यह बात बिल्कुल ठीक है। लेकिन, गांधी की गरीबी बहुत महंगी है। अगर बहुत महंगी गरीबी मिले तो कोई भी गरीब हो सकता है। वह गरीबी बड़े मजे की है। या एक रास्ता और है कि अगर कोई आदमी अमीरी से ऊब जाय तो स्वाद बदलने को गरीब हो जाय। बुद्ध, महावीर ऐसे ही गरीब होते हैं। आज अमरीका में भी हिप्पी, बीटल और बिकनिक इसी तरह गरीब हो रहे हैं। अमीर घरों के लड़के हैं, स्वाद बदलने के लिए बनारस की सड़कों पर भीख मांग रहे हैं।

जब मैं बनारस था तो दो हिप्पी मुझे मिलने आये। मैंने उनसे कहा, पागल हो गये हो? मैंने सुना है, तुम अमीरों के लड़के हो। उन्होंने कहा, हम अमीरों के लड़के हैं, लेकिन हम अमीरी से ऊब गये हैं। सब बेस्वाद हो गया है। कोई मतलब नहीं है। सब है तो मजा ही चला गया। इधर आकर बड़ा आनन्द आ रहा है। दस पैसे के लिए आतुर खड़े होते हैं हाथ फैलाकर, पता नहीं मिलेंगे, नहीं मिलेंगे। जिन्दगी में बड़ी पुलक आ गयी। पता नहीं मिलेंगे, नहीं मिलेंगे! बड़ा दांव है। दस पैसे के लिए हाथ फैलाया। हो सकता है आदमी मना कर दे कि नहीं है। हाथ वापस लौटा लेना पड़ेगा। सुबह की चाय नहीं पी है, हाथ फैलाकर पुलक से प्रतीक्षा कर रहे हैं। और जब दो घंटे के बाद एक कप चाय पी पाते हैं तब चाय का मजा ही दूसरा है।

ये अमीरी से ऊबे हुए लोग गरीब हो सकते हैं। यानी मेरा कहना यह है कि गरीबी-अमीर आदमी की लास्ट लग्जरी है—आखिरी विलास है। जो अमीर आदमी ही अफर्ड कर सकता है, गरीब आदमी नहीं। इसलिए जब अमीरी बढ़ती है तो गरीबी के नये-नये फैड और क्रीड पैदा हो जाते हैं। आज अमरीका गरीब होने को बड़ा उत्सुक है। इसलिए कोई महर्षि को पकड़ लेता है, कभी किसी को पकड़ लेता है, कभी किसी के पीछे चला जाता है। वह गांधी के लिए भी बड़ा आतुर है। वह आतुरता अमीर अमरीका की है जो अमीरी से ऊबा हुआ है और गरीबी में रस लेना चाहता है।

अमरीका में आज उपवास की बड़ी चर्चा है। और जगह-जगह स्थान बने हुए हैं जहां लोग आकर उपवास कर रहे हैं। असल में जब ओव्हर फैड, ज्यादा खा जाते हैं लोग तो उपवास शुरू हो जाता है। लेकिन गरीब आदमी को उपवास

का क्या मतलब है? मैं उरली कांचन में कभी-कभी ठहरता हूं। वहां उपवास करने लोग आते हैं। तीस-तीस दिन चालीस-चालीस दिन लोग उपवास करते हैं। लेकिन वे वे ही लोग होते हैं जिनके पास इतनी चर्बी है कि चालीस दिन कुछ हर्जा नहीं होता, फायदा ही होता है। वह चर्बी चुक जाती है, वह आनन्दित ही घर लौटते हैं। लेकिन गरीब आदमी को चालीस दिन का उपवास करवा दो तो जिन्दा घर नहीं लौटेगा। उपवास करने के लिए ओव्हर फीडिंग चाहिए। ज्यादा खा लिया हो, उपवास बड़ी अच्छी बात है। इसलिए जो कौमें ज्यादा सम्पन्न हो जाती हैं उनमें उपवास चल जाता है—जैसे जैनियों में। इसका और कोई कारण नहीं है। जैनों में उपवास करने का कुल कारण इतना है कि इस देश में सबसे ज्यादा सुलभ, खाने की व्यवस्था, धन की व्यवस्था, तिजोरियां उनके पास हैं। तीन हजार साल से उनके पास हैं। उसकी वजह से वे उपवास में बड़े आनन्दित होते हैं। वे कहते हैं उपवास बड़ा धार्मिक कृत्य है। उपवास सिर्फ पश्चाताप है ज्यादा खाने का। जिसने ठीक-ठीक खाया है, उसे उपवास की कोई जरूरत नहीं है। ज्यादा जो खायेगा उसे उपवास करना पड़ेगा, दण्डित होना पड़ेगा। स्वाभाविक है।

गरीब, लेकिन कोई होने को राजी नहीं है, न होना चाहिए। हां, कुछ रुग्ण चित्त लोग अपने को सताने को राजी हो सकते हैं। मैंने कहा, तीन तरह की गरीबियां स्वीकृत हो सकती हैं—एक ऐसी गरीबी, जो अमीरी से भी ज्यादा अमीर हो। एक ऐसी गरीबी, जो अमीरी से स्वाद बदलने के लिए अंगीकार की गयी हो। और एक ऐसी गरीबी, जो मैसोचिस्ट होती है। कुछ लोग हैं जो अपने को सताने में रस लेते हैं—रुग्ण, बीमार; अपने को सताने में भी रस ले सकते हैं, लेकिन वे पैथोलॉजिकल हैं। उसका इलाज होना चाहिए। इन तीन तरह के लोगों के अतिरिक्त दुनिया में कोई आदमी दुख को वरण करने के लिए न राजी होता है, न होना चाहिए।

लेकिन हिन्दुस्तान तीन हजार साल से दुख की शिक्षा दे रहा है कि दुख को वरण करो। इसलिए यहां एक उपद्रव पैदा हो गया है। वह उपद्रव यह है कि जब तक हम गुलाम थे तब तक तो ठीक था। अब हम स्वतन्त्र हो गये हैं। अब हम सबको सुख की एक पागल दौड़ शुरू हुई है, जो बिल्कुल ही फैनेटिक है। क्योंकि हमने इतने दिन तक सुख को वरण करने की चेष्टा की है कि अब सब बांध तोड़कर सुख की तरफ दौड़ रहे हैं। अब सब बांध तोड़ दिये। अब सुख चाहे दूसरे को दुख देने से मिले तो भी हम लेने को तैयार हैं। हमने इतने दिन तक गरीबी को पकड़ने की, आदर देने की कोशिश की है कि अब हम अमीरी की तरफ पागल हो गये हैं। अब वह अमीरी चाहे हजारों लोगों की छाती पर खड़े होकर मिलती हो तो भी हम तैयार हैं। इसलिए रिश्वत है, इसलिए भ्रष्टाचार है, इसलिए बेईमानी है। बेईमानी, रिश्वत, भ्रष्टाचार, अमीर होने की पागल तरकीबें हैं। और यह

मुल्क इतने दिन से गरीबी का आदर कर रहा है कि यह पागल ढंग से ही अमीर हो सकता है। इसे और कोई ढंग नहीं दिखाई पड़ता है। असल में हम सुख को स्वस्थ रूप से स्वीकार नहीं करते हैं इसलिए हम बीमार होकर ही सुख की तरफ दौड़ सकते हैं। इस देश का भ्रष्टाचार, इस देश की रिश्वतखोरी, इस देश की कालाबाजारी हमारे सुख के विरोध से पैदा हुई है लेकिन गुलामी में उनका पता न चला।

असल में, सभी पता स्वतन्त्रता में चलता है। स्वतन्त्रता का मतलब यह है कि हम जो करना चाहें उसके लिए स्वतन्त्र हुए। गुलामी का मतलब यह है कि जो हम करना चाहें उसके लिए हम स्वतन्त्र नहीं हैं। तो गुलामी में हम स्वतन्त्र न थे, जो हम होना चाहें। अब हमें मौका मिला है जो हम होना चाहें। अब हम हो गये हैं पूरे अर्थों में। अब हम होने की कोशिश कर रहे हैं। और उस कोशिश को अगर हम ऊपर से सुलझाने की कोशिश करेंगे तो वह हल न होगी।

मामला ऐसा है कि एक आदमी को हम तीस दिन भूखा रखें, तीस दिन उपवास करवायें और अचानक उसको चौके में पहुंचने का मौका मिल जाय तो यह पक्का है कि वह आदमी ज्यादा खा लेगा। और यह भी पक्का है कि जितना नुकसान उसे भूखे रहने से पहुंचा होगा उससे ज्यादा नुकसान वह खाने से पहुंचा लेगा। और जब वह खाने से नुकसान पहुंचा लेगा तो वह भी सोचेगा कि खाना बुरी चीज है, फिर भूखा रहना चाहिए। हम तीन हजार साल से दमन किये हुए हैं, खुद की वृत्ति का। वह जो सुख के खोज की सहज वृत्ति है मनुष्य के भीतर उसे हमने दबाया है और काटा है। अब हम मुक्त हुए हैं, अब हम स्वतन्त्र हुए हैं। इसलिए अब स्वतन्त्रता ने हमें मौका दिया है। अब हम उस मौके से, तीव्रता से प्रयोग कर रहे हैं। अब हम फीवरिश, बुखार की तरह दौड़ रहे हैं। और किसी भी तरह सुख मिल जाये तो उसको पाने की कोशिश में हैं। लेकिन यह कोशिश स्वस्थ नहीं है। और यह तभी दूर हो सकेगी, जब हम बुनियादी परिवर्तन करने के लिए तैयार हो जायें।

मैं आपसे कहना चाहता हूं, भारत को अपनी इन बीमारियों से मुक्त होने के लिए सुख की सहज खोज को स्वीकार करना पड़ेगा। लेकिन हम स्वीकार करते हैं, आवश्यकताएं कम करो, और मन आवश्यकताएं बढ़ाता है। सच तो यह है कि जीवन का नियम ही विस्तार है, संकोच नहीं। एक बीज को गपा दें जमीन में। एक छोटा-सा बीज फैलने लगता है, अंकुर फेंक देता है, पत्ते निकल आते हैं, बड़ा वृक्ष हो जाता है। फूल आकाश में खिलने लगते हैं। एक छोटा-सा बीज फैल जाता है। जब पूरा फैल जाता है तब तृप्त हो पाता है। जब फूल खिल जाते हैं और फल लग जाते हैं तब तृप्त हो पाते हैं। बीज को सिखाओ कि आवश्यकताएं मत बढ़ाना...क्योंकि ध्यान रहे, वृक्ष की आवश्यकताएं बीज से बहुत ज्यादा हैं।

सच तो यह है कि बीज की कोई आवश्यकता ही नहीं है। बीज की आवश्यकता तभी बढ़नी शुरू होती है जब वह अंकुर बनता है और जब वह फैलता है तब उसे पानी चाहिए और खाद चाहिए और सूरज की रोशनी चाहिए और किसी माली की रक्षा चाहिए और किसी का प्रेम चाहिए। उसे सब चाहिए, तब वह फैल पायेगा। उसकी आवश्यकताएं बढ़ती चली जाती हैं।

यह देश गलत शिक्षा के अन्दर जी रहा है कि आवश्यकताओं को कम करो। आवश्यकताओं को कम करने का मतलब? चित्त का जो विस्तार का सहज नियम है उसे रोको, दबाओ। हम समझाते हैं अपने देश को कि चादर से हमेशा पैर भीतर रखो। और मजा यह है कि चादर अपने आप नहीं बढ़ती, और आदमी अपने आप बढ़ता चला जाता है। अब वह आदमी बड़ा हो रहा है और चादर उतनी की उतनी रहती है और पांव भीतर सिकोड़ो, हाथ भीतर सिकोड़ो। कभी हाथ बाहर निकलता है, कभी पैर बाहर निकलता है, कभी सिर बाहर निकलता है। और चादर? चादर बढ़ानी नहीं है। क्योंकि चादर वही बढ़ाता है जो पैर फैलाता है। जब पैर बाहर निकलते हैं तब जरूरत आती है कि चादर को बढ़ाओ। जब पैर ही बाहर नहीं निकलते तो चादर के बढ़ाने की जरूरत नहीं आती। यह देश कह रहा है अब तक कि आवश्यकताएं कम करो। फिर इसके दोहरे परिणाम होते हैं। एक तो परिणाम यह होता है कि जो आवश्यकताएं बढ़ाकर जीता है वह पापी मालूम पड़ने लगता है दूसरों को, और खुद को भी। उसको लगता है कि मैं कुछ गलती कर रहा हूं। मैं कुछ पाप कर रहा हूं। तो उसके विस्तार की जो सहजता है वह नष्ट हो जाती है। पायजनस हो जाती है, जहर मिल जाता है, पाप का बोध सम्मिलित हो जाता है। और दूसरी तकलीफ यह होती है कि वह लोगों से यह छिपाने की कोशिश करता है कि मैं आवश्यकता नहीं बढ़ा रहा। आवश्यकताएं पीछे के दरवाजे से बढ़ा रहा है। बाहर के दरवाजे पर चटाइयां लगा लेता है।

जब डा० राजेन्द्र प्रसाद पहली दफा राष्ट्रपति हुए तो मैं दिल्ली गया था। एक मित्र ने मुझे कहा, देखते हैं, कितने त्यागी पुरुष हैं! जहां वायसराय रहता था उस भवन के अन्दर उन्होंने चटाइयां लगा ली हैं। मैंने कहा, अजीब पागल हैं। और खर्चा ज्यादा किया। चटाइयों का खर्चा कम से कम वायसराय तो नहीं करता था। बाकी खर्च उतना ही है जारी। बैठक के अन्दर, वायसराय के बैठक के अन्दर चटाई लगा लीं और वे झोंपड़े के भीतर हो गये क्योंकि वह चटाई के भीतर है। और एक हजार नौकर काम कर रहे हैं और उतना बड़ा महल और वह सारा विस्तार जारी है, लेकिन राजेन्द्र प्रसाद चटाइयों के भीतर बैठे हैं। मैंने कहा, वायसराय सीधा-सादा आदमी था, राजेन्द्र प्रसाद थोड़े तिरछे आदमी मालूम पड़ते हैं। वायसराय जैसा जी रहा था, जी रहा था। यह चटाई का धोखा तो खतरनाक है। यह पाखण्ड है, यह हिपोक्रेसी है।

यह तो ऐसा है कि मैंने उनसे कहा, एक संन्यासी, एक बड़े संन्यासी मेरे साथ एक दिन कार में जा रहे थे। इम्पाला गाड़ी है। मैं तो पहले जाकर बैठ गया था। फिर संन्यासी के शिष्य आये, उन्होंने कहा, जरा उठिये क्योंकि संन्यासी जी सोफे पर नहीं बैठते हैं और गाड़ी में सोफा है। तो मैंने कहा, संन्यासी जी कैसे बैठेंगे, किस तरकीब से बैठेंगे? उन्होंने कहा, पहले सोफे पर चटाई डाल देंगे, फिर संन्यासी जी चटाई पर बैठ जायेंगे। वे चटाई पर ही बैठते हैं। वे सोफे पर कभी नहीं बैठते हैं। फिर चटाई डाल दी गयी। मैं सोफे पर रहा, संन्यासी चटाई पर हो गये। इम्पाला गाड़ी जा रही है, उन्हें मतलब नहीं है। वे अपनी जादू की चटाई पर जा रहे हैं।

यह बेईमानी पैदा होती है। जब हम आवश्यकताओं को कम करने की शिक्षा देते हैं जो कि अप्राकृतिक है, नैसर्गिक नहीं है, चित्त के विकास के अनुकूल नहीं है। कोई बीज विकसित नहीं होता संकोच से। मनुष्य भी विकसित नहीं होता है। विस्तार जीवन का नियम है। वैज्ञानिक कहते हैं कि चांद तारे भी विस्तार पा रहे हैं, एक्सपैंड कर रहे हैं। सारा जगत् एक्सपैंडिंग है, सब चीजें फैल रही हैं। चांद तारे करोड़ों-अरबों मील की रफ्तार से फैलते जा रहे हैं। विस्तार! ब्रह्म शब्द का मतलब भी विस्तार होता है। ब्रह्म का मतलब होता है, दी एक्सपेंडेड। वह जो फैला हुआ है और फैलता ही चला जा रहा है। विस्तार और ब्रह्म एक ही शब्द से बने हैं। ब्रह्मांड का मतलब, जो फैलता ही चला जा रहा है। जीवन का नियम तो फैलाव है, सब फैल रहा है। लेकिन हमको एक शिक्षा दी गयी है सिकुड़ने की—सिकोड़ो अपने को। सिकुड़ना चूंकि जीवन के प्रतिकूल है इसलिए पाखण्ड पैदा हुआ है।

हिन्दुस्तान की एक जलती समस्या है पाखण्ड, सब तरह का पाखण्ड। जो आदमी पक्का अहंकारी है, वह हाथ जोड़कर कहता है, मैं तो कुछ भी नहीं हूं, आपके पैर की धूल हूं। जरा उसकी आंखों में देखें। वह ऐसा लग रहा है कि अगर मौका मिल जाय तो आपको अभी पैर के नीचे दबा दे। लेकिन वह कह रहा है कि मैं विनम्र हूं, मैं सेवक आदमी हूं, मैं आपके पैर की धूल हूं। यह हम पाखण्ड सिखा रहे हैं। वह आदमी भीतर तिजोरी बड़ी करता जा रहा है और वस्त्र सादे पहने हुए है। वह पैदल चल रहा है और महल बड़ा किये जा रहा है। वह योरोप और अमरीका के बैंकों में धन इकट्ठा कर रहा है और यहां बैठ कर चर्खा कात रहा है। बहुत अजीब मामला है। यह भारत का जलता हुआ प्रश्न है, हिपोक्रेसी, पाखण्ड है। हर आदमी पाखण्ड के साथ खड़ा हो गया है। तोड़ेंगे कैसे इसे हम? जब तक हम उन नियमों को नहीं बदलते जिनकी वजह से पाखण्ड होता है, तब तक यह तोड़ना मुश्किल है। जीवन को सहज स्वीकार करना होगा तो हिपोक्रेसी टूट सकती है। टायनबी ने एक बात लिखी है। उसने लिखा है कि

पश्चिम की संस्कृति सेंसुअस है, सेंसेट है, ऐंद्रिक है। कोई मुझे वह किताब पढ़कर सुना रहा था। पक्के भारतीय मुझे वह किताब पढ़कर सुना रहे थे। उन्होंने कहा, देखते हैं, टायनबी जैसा विचारक कहता है कि पश्चिम की संस्कृति सेंसेट है, ऐंद्रिक है। तो मैंने कहा, इतनी अकड़ आप किसलिए दिखा रहे हैं? अगर पश्चिम की संस्कृति सेंसेट है तो पूरब की संस्कृति हिपोक्रेट है, पाखण्डी है।

और ऐंद्रिक होना पाखण्डी होने से बेहतर है। क्योंकि ऐंद्रिक होना जीवन का सहज नियम है। ऐंद्रिक व्यक्ति कभी आध्यात्मिक भी हो सकता है क्योंकि जिसने शरीर को स्वीकार किया है वह किसी दिन आत्मा को भी स्वीकार कर सकता है। जिसने द्वार में प्रवेश किया है वह कभी भीतर के घर में भी पहुंच सकता है। जो कभी सीढ़ियां चढ़ा है वह कभी मन्दिर के भीतर भी जा सकता है। लेकिन पाखण्डी कभी भी आध्यात्मिक नहीं हो सकता। हमारी संस्कृति आध्यात्मिक नहीं, पाखण्डी है क्योंकि हमने जो नियम निर्मित किये हैं वह आदमी को झूठा होने के लिए मजबूर करते हैं। और अगर वह सीधा-सीधा साफ-साफ, हो तो पापी मालूम पड़ता है, कण्डमनेशन मालूम पड़ता है, चारों तरफ निन्दा मालूम पड़ती है। वह जितना पाखण्डी हो उतना आदर, उतना सम्मान मिलता है।

मैं एक आश्रम में ठहरा हुआ था। तीन दिन वहां था। आश्रम था, तो आश्रम में जिस तरह के जीव रहते हैं वैसे जीव वहां थे। एक लड़की ने आकर मुझे रात को कहा...डरते हुए, जब सब चले गये, मैं बिस्तर पर सोने गया, वह आयी। उसने कहा, मुझे एक बात कहनी है। मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गयी हूं। मैं कालेज से निकली थी और जनता की सेवा करने के काम में आ गयी। जिस गुरू से मैंने जनता की सेवा का पाठ लिया, उन्होंने मुझे आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत दे दिया। उन्होंने कहा कि तू आजीवन ब्रह्मचारी रह। मैं जानती भी न थी। क्योंकि मैं सेक्स ही न जानती थी तो ब्रह्मचर्य कैसे जानती? मुझे कुछ पता ही न था कि ब्रह्मचर्य यानी क्या? जब इतना बड़ा महात्मा कहता है तो मैंने कसम खा ली और जीवन भर के लिए नियम ले लिया। लेकिन जिन्दगी नियम नहीं मानती। जिन्दगी बड़ी अद्भुत है। वह सब नियम तोड़ देती है, सब दीवारें तोड़ देती है। उसने कहा, उसी सेवा में लगे-लगे एक व्यक्ति से मेरा प्रेम हो गया। और जब प्रेम हुआ तब हम और निकट आना चाहे। तब मुश्किल खड़ी हो गयी। क्योंकि वह भी आजीवन ब्रह्मचर्य का पाठ लिए बैठा था। अब हम क्या करें? अब हम इतनी कठिनाई में पड़ गये हैं कि हमने अपने गुरू को जाकर कहा कि हम तो मुश्किल में पड़ गये हैं। आप हमें कृपा करके आर्शीवाद दें कि हम विवाह कर लें। हम तो बहुत कठिनाई में पड़ गये हैं। गुरु पहले तो बहुत नाराज हुए। असल में गुरुओं की गुरुता नाराजगी पर ही निर्भर है। अगर वह नाराज न हों तो गुरुता खिसक जाय। वह भारी नाराज हुए कि यह पाप है, यह

है, वह है। उन्होंने हजार उपदेश दिये, नर्क में सड़ोगे। लेकिन वे नर्क में जाने को तैयार थे लेकिन प्रेम छोड़ने को तैयार न थे। और कोई भी भला आदमी नर्क में जाने को तैयार होगा, प्रेम छोड़ने को तैयार नहीं होगा। क्योंकि प्रेम इतना बड़ा स्वर्ग है कि हजार नर्क सहे जा सकते हैं। उन्होंने कहा, जो कुछ भी हो, नर्क तो जब होगा—होगा। अभी तो हमें विवाह की आज्ञा दें।

असल में पुराने नर्क का अब प्रभाव नहीं रहा क्योंकि आदमी ज्यादा निर्भय हुआ है। पुराना आदमी बहुत भयभीत था। उसको डरवाया जा सकता था। नया आदमी निर्भय हुआ है। उसे इतने आसानी से नहीं डरवाया जा सकता है। इसलिए पुराने सब समाधान गड़बड़ हो गये। वह डरे हुए आदमी को दिये गए समाधान थे। आज का आदमी निर्भय है। वह कहता है, होगा नर्क। ठीक है, निपट लेंगे, देखेंगे। पहुंचेंगे, हड़ताल तो कर सकते हैं नर्क में! घेराव तो कर सकते हैं! देखेंगे नर्क में। और जब सभी को नर्क में जाना है तो देख लेंगे नर्क में, घेराव कर लेंगे, हड़ताल कर लेंगे, कुछ करेंगे; सत्याग्रह, कुछ उपाय करेंगे। लेकिन अब नर्क से मत डराओ।

उन दोनों ने कहा, आप हमको क्षमा करें, नर्क में जाने को तैयार हैं, हमारा विवाह कर दें। आश्रम में मीटिंग बुलाकर, पांच सौ, छः सौ लोगों के सामने गुरू ने उनका विवाह करवा दिया। तालियां बज गयीं, फूलमालाएं डलवा दीं। फिर गुरू ने आशीर्वाद दिया ओर आशीर्वाद में उसने कहा कि तुम दोनों ने विवाह किया, यह बहुत अच्छा है, यह बड़ा पवित्र कार्य है। लेकिन ध्यान रहे, जीवन भर ब्रह्मचर्य का व्रत लेना। अब वे दोनों नासमझ उस भीड़ के सामने फिर चक्कर में आ गये और भीड़ ने तालियां बजायीं। तालियां बड़ी खतरनाक हैं। किसी से गलत काम करवाना हो तो तालियां बजाकर करवाया जा सकता है। ये सारे नेताओं से जो गलत काम हो रहे हैं आपकी तालियों से हो रहे हैं। जरा तालियां बहुत कंजूसी से बजाना भविष्य में क्योंकि आपकी तालियां गलत खबर दे देती हैं। पांच लाख आदमी इकट्ठे हो जायें, किसी नेता को ताली बजा दें तो पागल हो जायेगा। वह समझेंगे पांच लाख आदमी मेरे साथ हैं। उसको पता नहीं कि उसके ही दस आदमियों ने किराये की ताली बजायी तो बाकी लोग फिर साथ दे देते हैं। तालियां बजा दी पांच सौ लोगों ने, इतना ऊंचा कार्य! उन दोनों ने फिर ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया।

मैं जब उस आश्रम में ठहरा तो उस लड़की ने मुझसे कहा, दो साल हो गये हैं, या तो मैं आत्महत्या करूं या क्या करूं? मुझे फिट भी आने लगे, हिस्टीरिया भी शुरू हो गया, और रात भर सिर घूमता है, सिर दुखता है, चक्कर आते हैं। और हम इतने डर गये हैं कि अब क्या होगा। और पति से मैं इतनी डर गयी हूं, और पति मुझसे डरता है कि कहीं ब्रह्मचर्य न टूट जाय! तो हम ताले लगा लेते हैं एक दूसरे के कमरे में और चाबियां दूसरे के कमरे में फेंक देते हैं कि रात कहीं

खोल न लें।

अब यह आदमी के जीने का ढंग है? इससे जिन्दगी सुन्दर होगी? इससे जिन्दगी प्रेमपूर्ण होगी? इससे जिन्दगी निपट पाखण्ड हो जायेगी। मैंने उनसे कहा, तुम घबराओ मत। आज शाम कोई हजार लोग मुझे भी सुनने आने वाले हैं। ताली मैं बजवा दूंगा। ब्रह्मचर्य का व्रत छुड़वा देता हूं और आशीर्वाद देता हूं कि ब्रह्मचर्य का व्रत छोड़कर स्वर्ग में प्रवेश मिलेगा। घबड़ाना मत। क्योंकि वहां मेरे ख्याल में एक भी देवता ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा हो ऐसा शास्त्रों में नहीं है। तुम बिल्कुल बेफिक्र रहो, तुम जा सकोगे।

यह जो हम अस्वाभाविक ढंग से जीवन को ढालने की जो कोशिश किये, उसने हमारे सारे प्रश्न खड़े कर दिये। एक भी प्रश्न को हम हल नहीं कर पाते हैं क्योंकि जिन समाधानों से प्रश्न पैदा होते हैं, प्रश्न पैदा होने पर उन्हीं समाधानों को हम वापस दोहराते हैं। जो दवा हमारी बीमारी है उसी दवा को हम और दिये चले जाते हैं। बीमारी और बढ़ती चली जाती है। और जैसे-जैसे इस देश में दवा होती है वैसे-वैसे बीमार और बीमार होता चला जाता है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं रीकंसीडर करने की, पुर्नविचार करने की। हमारी सारी समस्याओं के पीछे हमारे पुराने समाधान हैं। उन पुराने समाधानों से मुक्त होना पड़ेगा। और प्रत्येक समस्या का नये छोर से, नये सिरे से, फ्रेशली, बिल्कुल ताजे ढंग से—जैसे हमने उस समस्या को कभी जाना नहीं—फिर से छूना पड़ेगा और फिर से खोलना पड़ेगा।

यदि हम अपनी समस्याओं को समाधानों के पर्दे से हटकर सीधा देखना शुरू कर सकें तो भारत की ऐसी कोई भी समस्या नहीं है जो हल न हो जाय। और यदि हम समस्याओं को समाधानों को मानकर ही हल करने की कोशिश करेंगे तो भारत की ऐसी कोई समस्या नहीं है जो रोज दुगुनी बड़ी न होती चली जाय। समाधानों से हट जाना पड़ेगा और समस्याओं को सीधा लेना पड़ेगा।

समस्याएं बहुत बड़ी नहीं हैं। जिन्दगी के साथ प्रश्न होते ही हैं और जिन्हें जीना है उन्हें प्रश्न हल करने ही पड़ते हैं। हमारा कोई प्रश्न बहुत बड़ा नहीं है, न हमारी गरीबी का प्रश्न बहुत बड़ा है। अगर हमारे पुराने समाधान छोड़े जा सकें तो गरीबी इस देश की भी मिट सकती है। न हमारी नैतिकता का प्रश्न बहुत बड़ा है; अगर हम पुरानी नैतिक मान्यताओं की व्यर्थता को समझ सकें तो नयी नैतिक मान्यताएं पैदा की जा सकती हैं। न हमारे युवकों की समस्या बहुत बड़ी है। अगर हम पुराने आधारों को ही युवकों पर न थोपे चले जायें तो हमारे युवक की शक्ति मुक्त हो सकती है और देश के सृजन में लग सकती है।

इन आने वाले दिनों में जिन्दगी की जो भी जीवित समस्याएं हैं, आप मुझे लिखकर दे देंगे—जिसके जो ख्याल में जीवित समस्या है, उस पर बात करना चाहूंगा। और उसके लिए क्या नया समाधान हो सकता है, उसकी भी बात करना

चाहूंगा । मेरी बातों को मानना जरूरी नहीं है । मैं इस बात का सीधा-सीधा दुश्मन हूं कि कोई आदमी किसी को अपनी बातें मनवाये । बुरा है । वही तो पुराना ढंग है । नहीं, वह नहीं चाहिए । मेरी बातें कोई भी मानने की जरूरत नहीं है । मेरी बात सुन ली, यह भी बहुत कृपा है । उस पर सोच लिया, यह भी बहुत कृपा है । अगर आप सोचने लग जायें तो मैं मानता हूं कि आप भी उन समाधानों पर पहुंच जायेंगे जिन समाधानों से देश का हल हो सकता है ।

आप सोचने लग जायें इसकी मेरी फिक्र है । मैं अपने विचार आपको दे दूं, यह मेरी चिन्ता नहीं है । मेरी चिन्ता यह है कि आप विचार करने लग जायें । यह देश सोचने लगे तो कोई कारण नहीं है कि हम अगर सारे लोग सोचें तो हमारी कोई भी समस्या बची रह जाये और कोई भी प्रश्न ऐसा हो कि हल न हो सके । सब सवाल हल हो सकते हैं । असल में सब सवालों के भीतर ही उनके हल छिपे होते हैं, लेकिन सोचने वाला मस्तिष्क चाहिए । और हमें सिखाया गया है कि कभी सोचना मत । सोचना ही मत, सोचना पाप है । मानना, सोचना मत । मैं नहीं कहना चाहता कि आप मुझे मानना । मेरी बातें इतना ही कर दें कि आपको उकसा दें, आपके भीतर थोड़ी चोट कर दें, एक शाक लग जाय, आप थोड़े हिल जाएं और सोचना शुरू कर दें तो मेरा काम पूरा हो गया ।

आप अगर सोचते हैं, हम अगर सोचते हैं तो हम बहुत जल्दी उन निष्कर्षों पर पहुंच जायेंगे जो अनिवार्य रूप से तार्किक चिन्तन से पैदा होते हैं । तो जो भी आपके प्रश्न हों—यह तो मैंने प्राथमिक बात कही—जो भी आपको जलते हुए प्रश्न लगते हों वह आप लिखकर दे देंगे तो मैं तीन दिनों में उनकी बात करना चाहूंगा ।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शान्ति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें ।

अहमदाबाद, २३ दिसम्बर १९६९

२–गरीबी और समाजवाद

मेरे प्रिय आत्मन्,

बहुत सी समस्याएं हैं और बहुत-सी उलझनें हैं । लेकिन ऐसी एक भी उलझन नहीं है जो मनुष्य हल करना चाहे और हल न कर सके । लेकिन यदि मनुष्य सोच ले कि हल हो ही नहीं सकता तब फिर सरल से सरल उलझन भी सदा के लिए उलझन रह जाती है । इस देश का दुर्भाग्य है कि हमने बहुत-सी उलझनों को ऐसा मान रखा है कि वे सुलझ ही नहीं सकती हैं । और एक बार कोई कौम इस तरह की धारणा बना ले तो उसकी समस्याएं फिर कभी हल नहीं होती हैं ।

जैसे बड़ी से बड़ी हमारी समस्या गरीबी की, दरिद्रता की, दीनता की है । लेकिन इस देश ने दीनता, दरिद्रता को दूर करने की बजाय ऐसी व्याख्याएं स्वीकार कर ली हैं, जिनसे दरिद्रता कभी भी दूर न हो सके । बजाय दरिद्रता को समझने के कि हम उसे कैसे दूर कर सकें, हमने दरिद्रता को इस भांति समझा है कि हम कैसे उसे स्वीकार कर सकें । दूर करना दूर, स्वीकार करने की प्रवृत्ति ने उसे स्थायी बीमारी बना दिया है । सोचा नहीं ऐसा नहीं है, लेकिन गलत ढंग से सोचा । और कोई न सोचे तो ठीक ढंग से सोच भी ले, लेकिन एक बार गलत ढंग से सोचने की आदत बन जाए तो हजारों साल पीछा करती है । गरीब हम बहुत पुराने समय से हैं । सच तो यह है कि हम अमीर कभी भी नहीं थे । हो ही नहीं सकते थे । देश के सोने की चिड़िया होने की बातें हैं । वे बातें कुछ लोगों के लिए हमेशा सच रही हैं,

वे देश के लिए कभी नहीं थीं। कुछ लोगों के लिए यह देश हमेशा सोने की चिड़िया था, अभी उनके लिए है लेकिन पूरे देश के लिए सोने की चिड़िया की बात बिलकुल बेमानी है। देश हमेशा से गहरी गरीबी में रहा है। सच तो यह है कि हम इतने गरीब थे कि गरीबी के खिलाफ हम विद्रोह भी नहीं कर सके। गरीबी के खिलाफ भी विद्रोह तब शुरू होता है जब अमीरी थोड़ी सी फूटनी शुरू हो जाती है। गरीब गरीबी के खिलाफ विद्रोह भी नहीं कर सकता है। बहुत गरीब कैसे विद्रोह करेगा? अस्पताल जाने के लिए भी बिलकुल बीमार होना काफी नहीं, थोड़ा स्वास्थ्य चाहिए, ताकि अस्पताल तक जाया जा सके।

जब अमीरी की थोड़ी-सी किरणें फूटनी शुरू होती हैं तब गरीबी के खिलाफ विद्रोह शुरू होता है। जब गरीबी इतनी ज्यादा होती है कि हमारे प्राण और हमारी आत्मा सब उसमें डूब जाते हैं तो गरीबी के खिलाफ बगावत भी पैदा नहीं होती। यह देश बहुत पुराने समय से, सदा से, सनातन से गरीब है। यह गरीबी हमने सोचा इस पर, हमारे विचारकों ने न सोचा हो, ऐसा नहीं है, लेकिन हमारे विचारकों ने इस गरीबी को इस भांति सोचा ताकि यह स्वीकृत हो जाये, अंगीकार हो जाये। हमने गरीबी के लिए व्याख्याएं कीं। और हमारी सबसे खतरनाक व्याख्या यह थी कि हमने गरीबी को व्यक्ति के कर्मों से जोड़ दिया। यह इतनी खतरनाक, इतनी स्वीसाइडल, इतनी आत्मघाती व्याख्या थी कि इसके कारण हम पांच हजार साल गरीब रहे। और अगर यह व्याख्या अब भी जारी रहती है, और ऐसा लगता है कि अब भी जारी है। साधु और संत और महात्मा गांव-गांव लोगों को यही समझाते फिर रहे हैं कि आदमी गरीब है अपने पिछले जन्मों के फल के कारण। गरीबी को पिछले जन्मों से जोड़ देने का मतलब यह है कि गरीबी नहीं बदली जा सकती। उसके बदलने का कोई उपाय नहीं है, उसे भोगना ही पड़ेगा। वह अपने कर्मों का फल है। अगर मैंने आग में हाथ डाला है और जल गया हूं तो भोगना ही पड़ेगा। पिछले जन्मों के कर्मों को अब बदलने का कोई उपाय नहीं है। पिछले जन्मों के कर्म वे हैं जो हो चुके हैं और उनका फल गरीबी मुझे आज भोगना पड़ रहा है।

हमने एक व्याख्या की जिसने गरीबी पर सील मोहर लगा दी कि इसे अब कभी नहीं तोड़ा जा सकता। गरीबी भोगनी ही पड़ेगी। और अगर गरीबी मिटानी हो तो इस जन्म में अच्छे कर्म करो ताकि अगले जन्म में गरीबी न रहे, अमीर हो जायें। और अच्छे कर्मों में निश्चय ही बगावत नहीं आती। अच्छे कर्मों में विद्रोह नहीं आता। अच्छे कर्मों में क्रांति नहीं आती। अच्छे कर्मों में आती है शान्ति। क्रांति तो बुरे कर्मों का ही हिस्सा है। इसलिए शान्ति से जियो, सन्तोष से जियो, सांत्वना रखो, अगले जन्म की प्रतीक्षा करो। गरीबी तो निश्चित हो गयी, उसको बदलने का कोई उपाय न रहा।

एक बार जब हमने यह तय कर लिया कि व्यक्ति अपने कर्मों का फल भोग रहा है गरीब के रूप में, तो फिर गरीब पर दया करना भी बेमानी हो गया। गरीब के साथ सहानुभूति भी व्यर्थ हो गयी। अगर मैं अपने कर्मों का फल भोग रहा हूं तो दया और सहानुभूति की क्या जरूरत है? इसलिए यह देश गरीबी के प्रति बिलकुल इनसेंसिटिव हो गया, एकदम हीन हो गया। अगर एक आदमी सड़क पर भीख मांग रहा है तो उस पर दया करने का कोई भी तो अर्थ नहीं है, वह अपने कर्मों का फल भोग रहा है। अपने कर्मों का फल भोगना ही चाहिए। और अगर मैं उसको दो पैसे दान कर रहा हूं तो उस भिखमंगे पर दया करके नहीं, वे दो पैसे मैं दान कर रहा हूं, अगले जन्म में फिर अमीर होने के लिए वह कर्म कर रहा हूं। उस भिखमंगे से उन दो पैसों के दान का कोई सम्बन्ध नहीं है। उस गरीब पर दया करने का कोई सवाल नहीं है। यह सवाल है कि उस पर दया करके मैं स्वर्ग की सीढ़ियों पर पैर रख सकता हूं। गरीब की गरीबी मेरे लिए सीढ़ियों का काम बन सकती है, स्वर्ग तक पहुंचा सकती है। दान को बुनियादी धर्म कहा है। इसलिए नहीं कि उससे गरीब को कुछ हित होगा। गरीब अपना फल भोग रहा है। दान से अमीर को हित होगा कि वह स्वर्ग के द्वार खोल लेगा। दान चाबी है। करपात्री जी ने एक किताब लिखी है और उसमें लिखा है कि समाजवाद कभी नहीं आना चाहिए। क्योंकि जिस दिन समाजवाद आ जायेगा उस दिन कोई गरीब न होगा। दान कौन देगा और कौन लेगा? और बिना दान के स्वर्ग का दरवाजा बन्द है—स्वर्ग का दरवाजा बन्द हो जायेगा।

गरीब रहना चाहिए ताकि हम उस पर सीढ़ियां बना सकें। दीन दरिद्र रहना चाहिए ताकि उसके कन्धे पर हम अपने पैर रखकर ऊपर जा सकें। इतनी संवेदनहीनता गरीबी के प्रति हममें पैदा हुई हमारी व्याख्या के कारण। एक बार व्याख्या हम ऐसी कर लें तो फिर संवेदनहीन हो जाती है। पुराने जमाने में यज्ञों में हम गाय को, बैल को और कुछ लोग कहते हैं, आदमी को भी काटते थे। लेकिन मजे से काटते थे, काटने वाले को जरा पीड़ा न होती थी, क्योंकि मान्यता यह थी कि काटा गया बकरा, काटी गयी गाय स्वर्ग पहुंच जाती है। और जब स्वर्ग भेज रहे हैं तो काटने में तकलीफ क्या? तो यज्ञ में हिंसा के प्रति हम संवेदनहीन हो गये हैं। कोई संवेदना का सवाल न था, हम स्वर्ग भेज रहे हैं। वह तो कुछ लोग इस मुल्क में हुए—चार्वाक, और उन्होंने कहा, फिर अपने पिता को क्यों नहीं काट देते हो? स्वर्ग चला जायेगा। तब हमको ख्याल आया कि हम बकरे और गाय के साथ क्या कर रहे हैं? लेकिन उस दिन तो गाय और बकरे को काटने वाला आदमी बड़ा कीमती था।

एक शब्द आपने सुना होगा। आज कोई भी लिखता है, अपने नाम के पीछे शर्मा, लेकिन आपको पता न होगा कि शर्मा का मतलब क्या है। शर्मा का मतलब

है जो यज्ञ में गाय-बैल काटता था । शर्मन का मतलब काटने वाला । यह बड़ा
गन्दा शब्द है । इसका मतलब ही है काटने वाला, शर्मन, काट दें । वह जो काटता
था गाय-बैल को, वह बड़ा कीमती आदमी था । क्योंकि वह गाय-बैल को स्वर्ग
पहुंचाता था । वह बड़ा पूज्य था । लेकिन आज हम नहीं सोच सकते इस भाषा
में । आदमी संवेदनहीन हो सकता है अगर व्याख्या उसे ऐसी मिल जाय ।

गरीब के प्रति हम संवेदनहीन हो गये हैं, गरीबी के प्रति भी संवेदनहीन हो
गये हैं । और जब पिछले जन्मों का कर्म का फल है, तो अब कुछ भी नहीं किया
जा सकता । गरीबी को स्वीकार ही करना होगा । एक उस व्याख्या में एक दूसरी
व्याख्या भी सम्मिलित थी कि गरीबी प्रत्येक व्यक्ति की निजी जिम्मेदारी है ।
इंडीवीजुअल रिस्पोंसिबिलिटी है । मैंने बुरे कर्म किये हैं तो मैं गरीब हूं, मैंने अच्छे
कर्म किये हैं तो मैं अमीर हूं । गरीबी और अमीरी से समाज का कोई सम्बन्ध
नहीं है, व्यक्ति का सीधा सम्बन्ध है । यह व्याख्या भी बड़ी मंहगी पड़ी है । क्योंकि
वस्तुतः अमीरी और गरीबी सामाजिक सन्दर्भ में अर्थ रखती हैं । कोई व्यक्ति
अकेला न अमीर हो सकता है, न गरीब हो सकता है । समाज की व्याख्या में
कोई अमीर होता है और कोई गरीब होता है । गरीबी और अमीरी सामूहिक
दायित्व है, सोशल रिसपोंसिबिलिटी है । यह ख्याल पैदा हुआ, क्योंकि हमने व्यक्ति
को जिम्मेदार ठहरा दिया । इसलिए हम पांच हजार साल गरीब रहे । लेकिन ये
व्याख्याएं अब भी हमारे मन में चलती हैं । अब भी हमारे मन इनसे घिरे हैं, अब
भी हमारे मन इनसे मुक्त नहीं हो गये हैं । यह ध्यान रखना जरूरी है कि अगर
गरीबी को तोड़ना है तो इन व्याख्याओं में हमें आग लगा देनी पड़ेगी । यह
चिन्तन बदलना पड़ेगा ।

गरीबी हमारा सामाजिक दायित्व है । लेकिन इतने से ही गरीबी मिट न
जायेगी । इतने से सिर्फ गरीबी को मिटाने की सुविधा पैदा होगी । यह हमारी
पुरानी आदत कि गरीबी को या तो पिछले जन्मों पर छोड़ो, या व्यक्ति के कर्मों पर
छोड़ो, या भाग्य पर या भगवान् पर—हमें और भी खतरों में ले गयी । दूसरे
पर छोड़ने की आदत ने हमने कहा कि अंग्रेजों ने हमें लूट लिया, इसलिए हम
गरीब हैं । अंग्रेजों के लूटने की वजह से थोड़ी हमें परेशानी हुई है, लेकिन उस
वजह से हम गरीब नहीं हैं । अंग्रेजों के लूटने से पहले भी हम गरीब थे । और
अगर हमने ऐसा सोचा कि अंग्रेजों ने लूट लिया, इसलिए हम गरीब हैं तो फिर
हमने गरीबी को ठहरा लिया कि अब क्या कर सकते हैं ? लुट ही गये हैं, गरीब
रहना ही पड़ेगा । नहीं, मूल कारण खोजने की हमारी प्रवृति नहीं है । फिर एक
नयी बात पैदा हुई है कि पूंजीपति शोषण कर रहा है इसलिए हम गरीब हैं, यह
बात भी बहुत खतरनाक और झूठी है । पूंजीपति शोषण नहीं कर रहा था तो भी
हम गरीब थे । और अगर आज पूंजीपति के पास जितना पैसा है वह बांट दिया

जाय तो देश अमीर नहीं हो जायेगा, यह भी ख्याल में रख लेना जरूरी है ।

मुझे एक घटना याद आती है, एक अमरीकन अरबपति रथचाइल्ड से एक
साम्यवादी विचारक मिलने गया और उसने रथचाइल्ड को कहा कि तुम्हारी वजह
से मुल्क गरीब है, हम लोग गरीब हैं । रथचाइल्ड ने कागज उठाया, कलम उठायी,
कुछ हिसाब लगाया और आधा डालर उस साम्यवादी को दे दिया । कहा यह ले जाओ ।
उसने कहा, क्या मतलब आपका ? रथचाइल्ड ने कहा, जिनको और मांगना हो
वे आ जायें । मेरे पास जितनी सम्पत्ति है अगर मैं उसमें सारी दुनिया की आबादी
का भाग दूं तो आधा-आधा डालर एक-एक आदमी के जिम्मे पड़ता है । यह मैं
बांटे देता हूं । जिसको भी मांगना हो वह ले जाये । लेकिन क्या तुम सोचते हो,
दुनिया अमीर हो जायेगी ?

अगर आज हिन्दुस्तान में दस पूंजीपतियों की सम्पत्ति को बांट दिया जाय तो
क्या आप सोचते हैं यह देश समृद्ध हो जायेगा ? इन्दिराजी और उसके साथी इसी भ्रम
में पड़े हैं कि अमीरों को बांट देने से कोई देश की गरीबी मिट जाती है । हां गरीब का
क्रोध पूरा हो जायेगा, लेकिन क्रोध के पूरे होने से गरीबी नहीं मिट सकती । गरीब
की शत्रुता पूरी हो जायेगी, गरीब की ईर्ष्या पूरी हो जायेगी, लेकिन गरीब की ईर्ष्या
पूरी हो जाने से गरीबी नहीं मिट जा सकती । गरीबी के कारण गहरे हैं, और
अगर हम न समझ पाये तो हम एक बहुत बड़े खतरे की हालत में खड़े हैं । हमने
पुरानी व्याख्या के कारण बहुत परेशानी उठायी । हमारी नयी व्याख्या भी
खतरनाक सिद्ध हो सकती है । अगर हमने यह समझ लिया कि कुछ पूंजीपतियों के
कारण देश गरीब है और हमने उनको बांटने की कोशिश की तो हम सिर्फ गरीबी
को बांट लेंगे, और हम कुछ भी न कर पायेंगे । अमीरी बांटने के लिए देश के
पास है ही नहीं । धन भी तो चाहिए न बांटने के लिए । समाजवाद क्या बांट
सकता है ? धन हो तो बांट सकता है । समाजवाद गरीबी को बांट लेगा तो क्या
परिणाम होगा ? पूंजीपति जिम्मेवार हैं, अगर इस भाषा में सोचा तो गरीबी
मिटने वाली नहीं है । फिर वह मूल कारण पर नहीं जाता । विनोबा ने वैसी भूल
की है । वह गांव-गांव गये और गरीबों से जमीन मांग ली और जमीन देने वाला
भी गरीब हो गया । पांच एकड़ थी उसने दो एकड़ दान कर दी, उसके पास तीन
ही एकड़ बची ।

देश इतना गरीब है कि बांटने की बात अगर हमने की तो सिर्फ गरीबी
बंटेगी । अमीरी होनी चाहिए न, बांटने के लिए ! घर में कुछ बांटने को हो तभी
तो बांट सकते हैं । घर में बांटने को ही न हो तो क्या बांटियेगा ? देश की गरीबी
के कारण और भी गहरे हैं । लेकिन क्रोध गरीब का है । स्वाभाविक है । और
इसलिए समाजवाद की बात गरीब को बड़ी अर्थपूर्ण मालूम होती है । मैं खुद
समाजवादी हूं लेकिन मैं समझता हूं कि अभी पचास साल तक इस देश को समाज-

वादी बनाने की चेष्टा अत्यन्त अप्रौढ़, चाइल्डिश और बचकानी है। पचास साल तक इस देश को समाजवादी बनाने की कोशिश ऐसी ही है जैसे मां के पेट से पांच महीने के बच्चे को बाहर निकाल लिया जाय। वह बच्चा भी मरेगा, और मां के बचने की उम्मीद भी बहुत कम है। जब तक कोई देश ठीक से सम्पत्ति पैदा न कर ले तब तक समाजवाद सपना है। सपने देखने बहुत अच्छे हैं लेकिन उनको रूपान्तरित करना जिन्दगी में बहुत कठिन है। अगर समाजवाद के लिए कोई भी रास्ता जाता है, निश्चित ही मास्को तक पहुंचना पड़ेगा। लेकिन मैं बड़ी उल्टी बात आपसे कहना चाहता हूं, मास्को तक जो निकटतम रास्ता है वह वाया वाशिंगटन जाता है, और कोई रास्ता नहीं है। वह जो वाशिंगटन में वाल स्ट्रीट है उसके ही आखिरी छोर पर क्रेमलिन के लाल सितारे चमक सकते हैं। और कोई रास्ता नहीं है। अगर हमने वाशिंगटन से बच के जाने की कोशिश की तो यह देश आगे भी गरीब रह जायेगा, और ज्यादा गरीब हो सकता है। पूंजी होनी चाहिए, तब पूंजी बांटी जा सकती है। लेकिन हमारी पुरानी आदत है, किसी दूसरे को जिम्मेदार ठहरा देने की—भाग्य को, पिछले जन्म को, भगवान् को, ब्रिटिश साम्राज्य को, अब पूंजीपति को। लेकिन हम अपनी जीवन व्यवस्था के बुनियादी आधारों को सोचने की तैयारी नहीं दिखाते हैं जिनकी वजह से हम गरीब हैं। मैं उन कारणों के सम्बन्ध में कुछ बात आपसे कहना चाहता हूं।

इस समय चूंकि बात बहुत गरम है, लेकिन पोलिटीकल स्टंट से ज्यादा नहीं है। इस समय समाजवाद की बात बड़े जोर से चर्चा में है, लेकिन समाजवाद की बात से समाजवाद नहीं आता। समाजवाद आसामान से नहीं उतरेगा, समाजवाद तो हमें विकसित करना होगा। और हम, जो कि सम्पत्ति ही पैदा नहीं कर पाये, पूंजी ही पैदा नहीं कर पाये, कैसे समाजवाद को ला सकते हैं? पूंजीवाद समाजवाद का पहला चरण है। यह देश अभी ठीक अर्थों में पूंजीवादी भी नहीं है। ध्यान रहे, समाजवाद पूंजीवाद से उल्टी व्यवस्था नहीं है। समाजवाद पूंजीवाद का चरम विकास है। पूंजीवाद जब पूरी तरह विकसित होता है तो समाजवाद में रूपांतरित हो जाता है। जब पूंजी इतनी अतिरेक हो जाती है कि उसे व्यक्ति के पास रखने का कोई अर्थ नहीं होता तभी वह समाज में ओव्हरफ्लो करती है। तभी वह समाज में बंट सकती है। लेकिन जब तक पूंजी बहुत कम है तब तक समाजवाद स्पीसाइडल, आत्मघाती है, अपने हाथ से मर जाने का उपाय है।

लेकिन यह कठिन है आज समझना। आज बहुत कठिन है, मुश्किल है, क्योंकि हमें ऐसा लगता है कि पूंजीपति को बांट दो तो सब ठीक हो जायेगा। लेकिन पूंजीपति को बांटने से क्या ठीक हो जायेगा? पूंजीपति को बांटने से कुछ भी ठीक नहीं हो सकता। सिर्फ पूंजी को पैदा करने की जो व्यवस्था थी वह भी टूट जायेगी। पूंजी को पैदा करने का जो इनसेंटिव था, जो प्रेरणा थी, वह भी

टूट जायेगी। और हमारे जैसे आलसी, प्रमाद से भरे हुए भाग्यवादी देश में अगर पूंजी को पैदा करने की प्रेरणा भी टूट जाय तो शायद हम अपने इतिहास का सबसे दुर्दिन का दिन देखना शुरू कर देंगे। लेकिन अनुभव हमें कुछ भी नहीं सिखाता। जिन-जिन व्यवस्थाओं को सरकार ने अपने हाथों में लिया है समाजवाद के नाम पर, वे सारी व्यवस्थाएं असफल हैं। सरकार से कुछ भी चलता नहीं। क्योंकि चलाना तो आदमियों से पड़ेगा।

मैं जिस प्रदेश से हूं उस प्रदेश की रोडवेज को, मोटर सर्विसेस को, बसेस को सरकार ने ले लिया। अभी उनकी कमेटी हुई, उनकी कमेटी के चेयरमैन मुझे मिलने आये, उन्होंने कहा, हमें तीस लाख प्रति वर्ष का घाटा हो रहा है। एक आदमी के पास बस हो तो वह अमीर हो जाता है। इतना कमा लेता है। सारे प्रदेश की बसें उनके पास हैं और तीस लाख प्रति वर्ष का उनको घाटा हो रहा है। जहां-जहां सरकार ने राष्ट्रीयकरण के नाम पर जो-जो चीज अपने हाथ में ली है वहां-वहां नुकसान है। अगर पूरे देश की सम्पत्ति का उत्पादन राज्य के हाथ में चला जाय समाजवाद के नाम पर, तो यह देश आने वाले बीस वर्षों में और भी गरीब होगा, अमीर नहीं होगा। क्योंकि सिर्फ सम्पत्ति के उत्पादन के साधन हाथ में ले लेने से कुछ भी नहीं हो सकता। इस देश के मानस को बदलना जरूरी है। वह मानस गरीब होने की पूरी तैयारी लिए बैठा है। उस मानस के सम्बन्ध में मैं कुछ बात करना चाहता हूं।

पहली बात तो मैं यह कहना चाहता हूं कि समृद्ध होने के लिए एक बहुत और तरह के विचार की जरूरत है जो हमारे मन में ही नहीं है। एक छोटी-सी कहानी से मैं समझाऊं। कन्फ्यूशियस ने लिखा है कि वह एक गांव से गुजरता था और उस गांव में उसने एक माली को अपने बगीचे में पानी सींचते देखा। बूढ़ा माली है, उसका जवान बेटा है। वे दोनों बैलों और घोड़ों की तरह मौट में जुते हैं और कुएं से पानी को निकाल रहे हैं। कन्फ्यूशियस हैरान हुआ। यह तब तक ईजाद हो गयी थी कि आदमी की जगह घोड़े या बैल जोते जा सकते हैं। कन्फ्यूशियस बूढ़े के पास गया। उसने कहा, मालूम होता है, तुम्हें पता नहीं है। अब तुम क्यों जुते हो चौबीस घण्टे? इसकी जगह घोड़े और बैल जोते जा सकते हैं। बूढ़े ने कहा, धीरे बोलो, कहीं मेरा बेटा न सुन ले। कन्फ्यूशियस ने कहा, क्यों? उसने कहा, पीछे आना। बेटे के चले जाने के बाद उस बूढ़े ने कहा, अब बोलो। मुझे पता है कि घोड़े जोते जा सकते हैं। लेकिन घोड़ा जोतने से मेरा जवान लड़का विश्राम करने लगेगा, और श्रम जीवन की सबसे कीमती चीज है। मैं नहीं चाहता कि जवान लड़का विश्राम करने लगे। श्रम ही तो सब कुछ है, इसलिए मैं घोड़े नहीं लाना चाहता। मुझे यह भी पता है कि मशीन भी निकल गयी है छोटी, जिससे हम पानी बाहर फेंक सकते हैं, लेकिन वह भी मैं नहीं लाना

चाहता क्योंकि लड़का विश्राम करने लगेगा। जवानी में विश्राम बहुत बुरा है। कन्फ्यूशियस को भी यह बात जंची और उसने अपनी किताब में कहा है कि मुझे वह बूढ़ा बहुत ठीक मालूम पड़ा।

हिन्दुस्तान का मन हजारों साल से इस बात को ठीक समझ रहा है। वह यह समझ रहा है कि श्रम करना कोई बहुत ऊंची बात है! इधर पंडित नेहरू ने एक नारा दिया था 'आराम हराम है'। लेकिन कोई पूछे, आदमी आराम के लिए जीता है या किसी और चीज के लिए जीता है। श्रम भी आदमी इसीलिए करता है कि आराम को उपलब्ध हो सके। मेहनत भी इसलिए करता है कि विश्राम कर सके। विश्राम जीवन का लक्ष्य है, श्रम नहीं। श्रम केवल साधन है। भारत पांच हजार वर्षों से श्रम को साध्य बनाये हुए है, साधन नहीं। वह कहता है श्रम जीवन का लक्ष्य है। विनोबा भी वही कहते हैं, गांधी भी वही कहते हैं, नेहरू भी वही कहते हैं। श्रम जीवन का लक्ष्य है। श्रम जीवन का लक्ष्य नहीं है। जीवन का लक्ष्य विश्राम है। जीवन का लक्ष्य आराम है। और आराम हराम नहीं है क्योंकि लक्ष्य अगर हराम हो जायगा तो पूरी जिन्दगी हराम हो जाएगी। लेकिन आराम पाने के लिए श्रम करना पड़ता है। श्रम साधन है और जिसे आराम पाना हो उसे श्रम करना पड़ता है। लेकिन आराम के लक्ष्य को हटाया नहीं जा सकता। बड़े मजे की बात है, लेकिन हिन्दुस्तान श्रम को बड़ा आदर देता है।

श्रम से सम्पत्ति पैदा नहीं होती। यह आपको उल्टी बात मालूम पड़ेगी। हमें तो लगता है, श्रम से ही सम्पत्ति पैदा होती है। नहीं, जो कौम विश्राम खोजने की कोशिश करती है वह श्रम से बचने की कोशिश में टेक्नोलॉजी का विकास करती है। जो कौम श्रम से बचने की कोशिश करती है वह टेक्नोलॉजी का विकास करती है। टेक्नोलॉजी सब्स्टीट्यूट है श्रम का। अगर मुझे आपके घर तक आना है तो पैदल आ सकता हूं। पदयात्रा करूं तो आपको भी अच्छा लगेगा। अखबार भी खबर छापेंगे कि पदयात्री है। लेकिन मैं पैदल चलने से बचना चाहता हूं इसलिए साइकिल को ईजाद करता हूं। मैं पैदल चलने से बचना चाहता हूं इस-लिए कार ईजाद करता हूं। मैं पैदल चलने से बचना चाहता हूं इसलिए हवाई-जहाज ईजाद करता हूं। जो कौम श्रम से बचना चाहती है वह टेक्नोलॉजी को विकसित करती है। जो कौम श्रम का आदर करती है वह टेक्नोलॉजी को विकसित नहीं करती। टेक्नोलॉजी के अतिरिक्त धन कभी पैदा नहीं होता। धन होता है टेकनीक से पैदा, श्रम से नहीं। इसलिए जो कौम जितना विश्राम की आकांक्षा करती है उतने टेकनीक को विकसित करती चली जाती है। आप हैरान होंगे, दुनिया का सारा विकास उन लोगों ने किया है जो विश्राम के आकांक्षी हैं। दुनिया के सारे आविष्कार उन्होंने किये हैं जो विश्राम के आकांक्षी हैं। आपने यह कहावत सुनी होगी कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। वह

कहावत बहुत सच नहीं है। विश्राम की आकांक्षा आविष्कार की जननी है। विश्राम की आकांक्षा—इसलिए बुद्धिमान आदमी सब तरफ से विश्राम खोजता है।

शायद आपने सुना हो, एडीसन ने कोई एक हजार आविष्कार किये। दुनिया में किसी एक आदमी ने इतने आविष्कार नहीं किये। एडीसन एक फैक्ट्री में काम करता था प्रारम्भ में। और उसका काम इतना था केवल कि जब कोई फोन आये तो वह अपने मालिक को खबर कर दे। रात भर उसे जगना पड़ता था। किसी रात फोन आता भी था, किसी रात नहीं भी आता था। रात भर जगना पड़ता था। तो उसने एक तरकीब विकसित की रात भर सोने के लिए। उसने फोन के साथ घण्टी जोड़ी इतनी तेज कि उसकी नींद खुल जाए। और वह मालिक को खबर कर सके। फिर वह निश्चिन्त सोने लगा। महीनों बीत गए, जब भी जोर से घण्टी बजती वह उठ जाता और मालिक को खबर कर देता—ऐसे वह सोता। एक दिन उसकी घण्टी बिगड़ गयी। फोन आया और वह सोता रहा। मालिक पता लगाने आया कि क्या बात है क्योंकि मालिक ने अपनी पत्नी को ही फोन किया था, खबर करनी थी। आया तो वह मजे से सो रहा था। उसने उसे नौकरी से निकाल दिया एडीसन को। उसने कहा कि तुम आलसी हो। एडीसन ने कहा, मेरे आलस्य के कारण ही मैं घण्टी का आविष्कार कर सका। लेकिन नौकरी से निकाल दिया, वह भी सौभाग्य सिद्ध हुआ। क्योंकि फिर वह हजार आविष्कार कर सका। और एडीसन ने लिखा है कि विश्राम की आकांक्षा से ही आविष्कार विकसित होते हैं। निश्चित ही। जो कौम श्रम करने को बहुत आदर देगी — अब यह बड़ी उल्टी बात दिखायी पड़ेगी, लेकिन जिन्दगी बहुत उल्टी है। जो कौम श्रम को आदर देगी वह आलसी हो जायेगी और विश्राम को उपलब्ध न होगी। आलसी आदमी विश्राम को कभी उपलब्ध नहीं होता। विश्राम को तो वह उपलब्ध होता है जो ठीक से श्रम कर लेता है। आलसी कभी विश्राम को उपलब्ध नहीं होता।

जो कौम श्रम पर जोर देगी—श्रम मनुष्य की स्वाभाविक आकांक्षा नहीं है, आकांक्षा तो विश्राम की है। श्रम करते ही इसलिए हैं कि सांझ विश्राम कर सकें। और इसलिए निरन्तर खोज होती चली जाती है। अब ऑटोमेटिक यन्त्र पश्चिम ने खोज लिया है। अब वह सारे आदमियों को सब श्रम से मुक्त कर देगा। क्या आप सोचते हैं, आदमी श्रम से मुक्त हो जायेगा? नहीं। आदमी श्रम से मुक्त हो जायेगा, लेकिन चौबीस घण्टे विश्राम में बैठा रहना अर्थपूर्ण नहीं है। आदमी कुछ न कुछ करेगा। श्रम, क्रीड़ा और खेल और लीला हो जायेगी। दुनिया की सारी संस्कृति उन लोगों ने विकसित की है जो लीजर में और विश्राम में थे। ताजमहल के सपने उतने देखे हैं जो विश्राम में थे। और पिरामिड उन्होंने ही सोचे हैं जो विश्राम में थे। और संगीत और साहित्य और कला और मूर्तियां

और चित्र और दर्शन सब विश्राम से पैदा हुआ है। सारी संस्कृति विश्राम से जन्मी हुई है, लीजर क्लास से पैदा हुई है। अगर हम सारे जगत् को किसी दिन विश्राम में ला सकें तो संस्कृति का इतना एक्सप्लोजन होगा कि विकासों को ढूंढने को पेरिस जाने की जरूरत न होगी, वह एक-एक गांव में भी मिल सकता है। और तानसेन को पैदा करने के लिए अकबर का दरबार जरूरी न होगा। घर-घर में एक-एक बेटा तानसेन हो सकता है। लेकिन इतना लीजर, इतना विश्राम की जरूरत है जिसमें यह संस्कृति विकसित हो सके। लेकिन हमारा देश—हमारा देश श्रम को आदर दे रहा है।

श्रम को आदर देने के कारण टेकनोलॉजी विकसित नहीं हो पायी। टेकनोलॉजी विकसित न होने के कारण समृद्धि और सम्पत्ति पैदा नहीं हुई। सम्पत्ति लक्ष्मी की पूजा से पैदा नहीं होती। सम्पत्ति टेकनोलॉजी से पैदा होती है। जो देश समृद्ध हैं—अमरीका आज समृद्ध है, और पृथ्वी पर पहला देश ठीक अर्थों में समृद्ध है। रूस अभी भी गरीब है, यह ध्यान रहे। रूस अभी भी समृद्ध नहीं है। रूस की समृद्धि जो थोड़ी-बहुत है, वह भी बहुत मंहगी है। और बामुश्किल पायी गयी है। और रूस में कोई चालीस वर्षों में एक करोड़ लोगों की हत्या करके किसी तरह काम करवाया गया है। पूरा रूस एक कंसंट्रेशन कैम्प बन गया तब कहीं काम लिया जा सका है। आदमी को पीछे जबर्दस्ती बन्दूक के कुन्दे पर काम लिया जा सका है। फिर भी रूस समृद्ध नहीं हो सका। आज भी रूस की बुनियादी हालत गरीबी की है। आज भी अमरीकी अर्थों में रूस समृद्ध नहीं है। अमरीका अकेला मुल्क है जो समृद्ध हो सका। कैसे हो सका है?

अमरीका समृद्ध हो सका है तकनीक के अत्याधुनिक विकास से। तकनीक ने श्रम को बदल दिया। लेकिन हम यहां उल्टी प्रक्रिया में लगे हैं। हम कहते हैं, थोड़ा बहुत टेकनीक आ गया हो तो उसको भी श्रम से बदल दें। अगर टैक्सटाइल मिल चल रही है तो उसको हटाओ और चर्खा चलाओ। हम सिर के बल शीर्षासन करने के ऐसे आदी हो गये हैं कि हम सीधे पैर के बल खड़ा नहीं होना चाहते। हम कहते हैं, चर्खा चलाना बहुत ऊंची बात है। तो नेता रोज सुबह घर के सामने बैठकर चर्खा चला लेता है जिससे कि जनता देख ले। राजघाट पर गांधीजी के मरने के दिन बैठकर चर्खा चला लेता है कि कैमरामैन फोटो उतार ले। चर्खा चलाने में इतना क्या आदर है?

चर्खा अगर चलेगा तो मुल्क गरीब होगा। चर्खे से मुल्क अमीर नहीं हो सकते। चर्खा तो बहुत दिन से चलता है। पांच छः हजार साल से हम चर्खा चला रहे हैं। कौन-सी अमीरी आयी? अमीरी टेकनीक से आती है क्योंकि टेकनीक हजार आदमी का काम अकेला कर देता है। लाख आदमी का काम अकेला कर देता है। टेकनीक हमारा बढ़ा हुआ हाथ है। टेकनीक हमारा हजार गुना हो गया

श्रम है और हम विश्राम में हो जाते हैं। और विश्राम से बैठा आदमी नये आविष्कार कर पाता है। और एक चक्र शुरू हो जाता है, जिससे समृद्धि आती है। इस देश में वह चक्र आज तक शुरू नहीं हो पाया। और आज तक इस देश के समझदार लोग उल्टी बातें समझा रहे हैं। गांधी जी थर्ड क्लास में चलते हैं, किसी ने पूछा, आप थर्ड क्लास में क्यों चलते हैं? उन्होंने कहा, चूंकि फोर्थ क्लास नहीं है। फोर्थ क्लास की बड़ी जरूरत है। लेकिन फोर्थ में चलेंगे और कोई पूछेगा, फोर्थ में क्यों चलते हैं? तो कहेंगे फिफ्थ क्लास नहीं है। इसका अन्त नर्क में होगा, इसके पहले नहीं हो सकता। जब तक नर्क में न पहुंच जायें तब तक तृप्ति न होगी। लेकिन जो देश इस भाषा में सोचेगा—पीछे लौटने की, और नीचे गिरने की, और नीचे गिरने की, तो आगे कैसे बढ़ेगा?

मैंने सुना है कि गांधीजी जेल में थे और वल्लभ भाई उनके साथ थे। गांधीजी दस छुहारे फुलाकर सुबह नाश्ता करते थे। वल्लभ भाई ने पूछा कि बूढ़ा रोज-रोज दुबला होता चला जाता है। दस छुहारे से क्या होगा! उन्होंने बारह छुहारे फुला दिये। कौन गिनती करेगा। लेकिन गांधीजी गिनती में होशियार हैं। रात जब सब काम बन्द हो जाता, तो कौड़ी-कौड़ी का हिसाब आश्रम में वह दो बजे रात करते रहते थे। सब हिसाब करके फिर वह सोते थे। सुबह उठते से उन्होंने देखा कि मालूम होता है कि छुहारे ज्यादा हैं। गिने तो बारह निकले। उन्होंने वल्लभ भाई पटेल को कहा कि किसने बारह डाले? यह तो भारी अपराध हो गया। वल्लभ भाई ने कहा, मैंने सोचा कि थोड़ा ज्यादा आपके शरीर में चला जाय तो ठीक। शरीर की बड़ी जरूरत है आपको। लेकिन हम इस मुल्क में मानते ही नहीं कि शरीर की कोई जरूरत है। हम तो कहते हैं, सिर्फ आत्मा से रहना काफी है। अगर हमारा वश चले तो हम सब भूत-प्रेत हो जायें—वैसे हो ही गये हैं—शरीर की कोई जरूरत ही नहीं है। छुहारे को शरीर की जरूरत है? गांधीजी शुद्ध आत्मा! शरीर की जरूरत क्या है? वल्लभ भाई ने कहा, फिर दस और बारह में फर्क ही क्या है? गांधीजी ने यह बात पकड़ ली। गांधीजी ने कहा, दस और बारह में कोई फर्क नहीं तो कल से मैं आठ ही खा लूंगा। क्योंकि फिर दस और आठ में कोई फर्क नहीं है।

मैं मानता हूं कि वल्लभ भाई का दस और बारह में कोई फर्क नहीं है मुल्क को विकास की तरफ ले जायेगा, और गांधी का दस और आठ में कोई फर्क नहीं है, यह मुल्क को पतन की तरफ ले जायेगा। वल्लभ भाई उतने बड़े आदमी नहीं हैं, लेकिन सहज और सीधे और सादे आदमी हैं। दस से बारह पर जाना चाहते हैं, थर्ड क्लास से सेकेंड क्लास में जाना चाहते हैं। गांधीजी बड़े आदमी हैं, लेकिन बड़े आदमी खतरनाक हो सकते हैं क्योंकि आदमी को बड़ा होने के लिए अक्सर सामान्य आदमी से उल्टा होना पड़ता है। जब तक वह उल्टा खड़ा न हो, कोई बड़ा नहीं

मानता। थर्ड क्लास से फोर्थ क्लास में जाये तभी जनता कहेगी, हां, यह है महात्मा। दो चपाती खाये, एक चपाती खाये तो और बड़ा महात्मा। बिल्कुल न खाये तो बड़ा महात्मा है। असल में जिन्दा रहते हुए महात्मा में थोड़ी कमी ही होती है। मर के ही महात्मा पूरा होता है। इसलिए मरे हुए महात्माओं की हम सदा पूजा करते हैं। जिन्दा महात्मा में थोड़ी भूल-चूक भी देखी जा सकती है।

यह हमारा सोचना बहुत मंहगा और खतरनाक है। सिकुड़ने का सोचना है, संकोच का, दबने का, नीचे उतरने का। नहीं, टेक्नोलॉजी को श्रम में नहीं बदलना है, श्रम को टेक्नोलॉजी में बदलना है तो देश में अमीरी होगी। खेत जितनी सम्पत्ति हाथ से पैदा कर सकते थे, कर चुके। और खेत भी थक गये बुरी तरह और हाथ भी थक गये बहुत बुरी तरह। अब खेत पर हाथ की जगह मशीन चाहिए। लेकिन मशीन हमें भौतिकवादी नहीं मालूम पड़ती है। मशीन को उपयोग में लाने वाले लोग मैटीरियलिस्ट मालूम पड़ते हैं। हम अध्यातमवादी लोग हैं। मशीन का कैसे उपयोग कर सकते हैं? और अगर करेंगे भी तो बेईमानी से करेंगे। ईमानदारी से न करेंगे।

अब यह मैं माइक का उपयोग कर रहा हूं। एक जैन आचार्य हैं तुलसी, अभी
तक माइक का उपयोग न करते हैं क्योंकि ख्याल था कि आवाज जोर से पैदा होगी
तो कीटाणु मर जायेंगे। लेकिन अब सच तो यह है, अगर कीटाणु मरते हों तो थोड़ी
आवाज में भी मरते होंगे। मुंह पर पट्टी बांधने में भी मरते होंगे, थोड़े कम मरते
होंगे। असल में अगर आवाज से कोई मरता हो तो ओंठ सी देने चाहिए। लेकिन
उनको दिखायी पड़ा कि मुंह पर पट्टी बांध कर दस पांच ही लोग मुश्किल से सुन
पाते हैं। बड़ी भीड़ इकट्ठी हो, इसका भी रस नहीं छूटता। अब एक बेईमानी की
तरकीब निकाली। अभी बंगलौर में माइक से बोले तो लोगों ने कहा, आप और
माइक से बोल रहे हैं? उन्होंने कहा, मैं माइक से नहीं बोल रहा, मैं तो सिर्फ
बोल रहा हूं। किन्हीं लोगों ने माइक सामने रख दिया तो मैं क्या करूं? श्रावक
सुनना चाहते हैं, वह पाप उनके जिम्मे। उन्होंने माइक रखा। मैं तो अपनी जगह
बैठकर बोल रहा हूं। न तो मैं यह कहता कि माइक रखो, न मैं यह कहता कि
माइक मत रखो।

अब यह बेईमान तरकीबें हैं मशीन का उपयोग करने की। यह ज्यादा
डिसआनेस्ट मीन्स् है। अगर मशीन का उपयोग करना है तो सीधा करो। उसमें
पाखण्ड और बेईमानी की क्या जरूरत है? नहीं, लेकिन यह तरकीब निकालनी
पड़ेगी क्योंकि मशीन के उपयोग के साथ हमें ख्याल है कि भौतिकवाद है। यह
मैटीरियलिज्म है। यह देश भौतिकवाद का विरोधी रहा है। समृद्ध नहीं हो सकता।
अगर किसी देश को समृद्ध होना है उसे ठीक अर्थों में भौतिकवादी होना जरूरी है।
लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि भौतिकवादी होने से कोई गैर अध्यातमवादी

हो जाता है। यह एक भ्रान्त तर्क है। अगर एक मन्दिर हमें बनाना हो तो मंदिर का सोने का शिखर अकेला नहीं रखा जा सकता। नीचे नींव में पत्थर भरने पड़ते हैं। लेकिन अगर कोई यह समझ ले कि हम नींव में पत्थर न भरेंगे, हम सिर्फ स्वर्ण-कलश चढ़ायेंगे, तो मन्दिर कभी न बनेगा। स्वर्ण-कलश में और नींव के गन्दे और कुरूप पत्थर में कोई भेद नहीं है। वह नींव का पत्थर ही स्वर्ण के कलश को सम्हालता है। अध्यात्म के कलश अगर देश के मन्दिर पर चढ़ाने हों तो नींव में भौतिकवाद के पत्थर बिछाने पड़ेंगे। इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं है। देश का मन्दिर अगर बनाना है ठीक तो नींव भौतिकवाद की होगी और कलश अध्यात्म का। अध्यात्म और भौतिकवाद का विरोध बिल्कुल झूठा है। वैसा विरोध कहीं भी नहीं है। आत्मा और शरीर का विरोध झूठा है, परमात्मा और प्रकृति का विरोध झूठा है, लेकिन इस देश को इसी डुआलिज्म में समझाया जाता है। बड़े मजे की बात है। हमें यही समझाया जा रहा है कि शरीर को मारो, अगर आत्मा को पाना है। दीन-हीन बनो, दुखी बनो, दरिद्र बनो और भूखे रहो, अगर आत्मा को पाना है।

मैं नहीं सोचता कि स्वस्थ शरीर हुए बिना कोई आत्मा को उपलब्ध हो सकता है। मैं नहीं सोचता कि जीवन की सामान्य जरूरतें पूरे हुए बिना कोई आत्मा की तरफ यात्रा कर सकता है। यह असम्भव है। यह ऐसा ही है जैसे नींव के पत्थर के बिना कोई स्वर्ण-कलश चढ़ाने की कोशिश कर रहा हो। नहीं, भौतिक और अध्यात्मक विरोधी नहीं हैं। अगर कोई कहे, वीणा को हटाओ, हम तो सिर्फ संगीत को प्रेम करते हैं। सिर्फ संगीत चाहिए, वीणा तो भौतिक है। वीणा तो भौतिक है ही, वीणा को हटाओ, सिर्फ संगीत चाहिए। तो ध्यान रहे, वीणा तो बिना संगीत के हो सकती है, लेकिन संगीत बिना वीणा के नहीं हो सकता। शरीर तो बिना आत्मा के हो सकता है कि आत्मा का हमें कोई पता ही न हो तो हम सिर्फ शरीर में जीते रहें, लेकिन अकेली आत्मा बिना शरीर के नहीं हो सकती। यह ध्यान रहे।

निकृष्ट के बिना श्रेष्ठ नहीं हो सकता लेकिन श्रेष्ठ के बिना निकृष्ट हो सकता
है। यह बड़ी अद्भुत बात है, लेकिन जिन्दगी ऐसी है। यहां नींव हो सकती है
बिना कलश के लेकिन कलश बिना नींव के नहीं हो सकता है। यहां जड़ें हो सकती
हैं बिना वृक्ष के, लेकिन वृक्ष बिना जड़ों के नहीं हो सकता। जड़ें कुरूप हैं, माना,
लेकिन जड़ों में रस है जो वृक्षों के फूलों तक पहुंचता है। यह देश जड़ों को इन्कार
कर रहा है और कहता है, हम सिर्फ फूलों को प्रेम करेंगे। यह प्रेम असम्भव है,
यह प्रेम बहुत मंहगा पड़ गया है। पांच हजार साल हमने फूलों को प्रेम करने की
कोशिश की—जड़ें इन्कार करके। आत्मा को पाने की कोशिश की शरीर की दुश्मनी
करके, प्रकृति को निकृष्ट कहकर। प्रकृति को असार कहकर परमात्मा का मन्दिर
खोजा, वह हमें नहीं मिला। बल्कि फूल तो मिले ही नहीं, जड़ें भी कुम्हला गयीं

और सूख गयीं, क्योंकि जड़ों को हमने पानी न दिया। हम जड़ों के दुश्मन थे तो हम पानी कैसे देते?

समृद्धि पैदा होगी भौतिकवाद के सहज स्वीकार से। यह देश जब तक अपने थोथे अध्यात्मवाद से भरा है—थोथा अध्यात्मवाद मैं उसे कहता हूं जो भौतिकवाद का विरोधी है। ठीक, राइट स्प्रीच्युअलिज्म उसे कहता हूं जो भौतिकवाद को समाहित कर लेता है। जो कहता है आये, भौतिक भी हममें समा जाये। भौतिक हमारा कुछ न बिगाड़ पायेगा। लेकिन यह हमारी अब तक की वृत्ति रही है।

हम समृद्ध कैसे हों? हमने दरिद्रता के सब उपाय किये और हम सफल हो गये। हमने समृद्धि का कोई उपाय भी नहीं किया क्योंकि हमने मूल आधार न रखा। एक बात—भौतिकवाद का सम्यक् स्वीकार चाहिए। आने वाले भारत की नयी पीढ़ी को भौतिकवाद को आत्मसात करना होगा। यह कहकर कि पश्चिम भौतिकवादी है, इन्कार करने से नहीं चलेगा। क्योंकि जो पश्चिम भौतिकवादी है उसी के सामने हाथ फैलाने पड़ते हैं, भीख मांगनी पड़ती है। और यह बहुत अशोभन है कि अध्यात्मवादी भौतिकवादियों के सामने भीख मांगे। लेकिन हम बीस साल से भीख मांग रहे हैं। और आगे भी, अभी कोई उपाय नहीं दिखता कि भीख मांगना हमें बन्द करने की स्थिति आये। भीख हमें मांगनी ही पड़ेगी। क्योंकि हम अध्यात्मवादी हैं, हम शुद्ध आत्मा में जीना चाहते हैं। कौन गेहूं पैदा करे, कौन मशीनें लाये, कौन टेक्नोलॉजी पैदा करे? नहीं, वह हमसे नहीं होगा। वह परीश्रम करे, और हम भीख मांगें। यह हमारी पुरानी तरकीब है। पाप कोई और करे, पुण्य हम करें।

एक आदमी संन्यासी हो जाता है। वह कहता है, हम दुकान नहीं करेंगे। दुकान में पाप है। हम खेती नहीं करेंगे। खेती में पाप है। हम पैसा नहीं कमायेंगे। हम पैसा छुयेंगे नहीं, छूने में पाप है। अभी दो संन्यासी मुझे मिलने आये। उनसे मैंने कहा, आप कल सुबह आ जायें! उन्होंने कहा, बड़ी मुश्किल होगी क्योंकि हम पैसा नहीं छूते। कोई आदमी हमारे साथ रहता है जो पैसा खीसे में रखता है, वह पैसा देता है। तो हम उस आदमी को पूछ लें, अगर वह कल सुबह आ सकता हो तो हम आ सकते हैं। नहीं तो बड़ा मुश्किल है। मैंने कहा, आप पैसा क्यों नहीं छूते हैं? उन्होंने कहा, पैसा छूना पाप है। और मैंने कहा, वह आदमी आपके लिए पैसा छुयेगा, तो वह किसके लिए पाप कर रहा है? नर्क वह जायेगा, आप स्वर्ग चले जायेंगे?

मैं दुकान करूं तो पाप है, मैं दुकान न करूं, और जो दुकान करने वाले मुझे जिन्दगी भर पालें तो पुण्य है! पाप कोई और करे, पुण्य हम करें, यह हमारी पुरानी प्रवृत्ति है। पश्चिम भौतिकवादी है, पेट हमारा खाली है, रोटी पश्चिम दे। पाप अगर होगा, नर्क अगर जायेंगे तो पश्चिम के लोग जायेंगे, यह बड़े मजे की

बात है। अमरीका का किसान नर्क जायेगा, क्योंकि भौतिकवादी है और हम स्वर्ग जायेंगे क्योंकि हम अध्यात्मवादी हैं। और अमरीकी किसान हमारे लिए मेहनत करेगा। चार किसान अमरीका में मेहनत कर रहे हैं। उनमें एक किसान की मेहनत हमें मिल रही है। आज अमरीका का एक चौथाई भोजन हम ले रहे हैं, लेकिन बेशर्मी के साथ। यह हमें खुद पैदा करना पड़ेगा। लेकिन हम कैसे पैदा करेंगे? अगर भौतिकवाद की स्वीकृति नहीं है तो यह पैदा नहीं होगा।

इस देश में भौतिकवाद के अस्वीकार के कारण विज्ञान भी पैदा नहीं हो पाया। हमारी जलती हुई समस्या यह है कि हम कैसे तीव्रता से विज्ञान पैदा करें, कैसे हम साइंटिफिक हो जायें? लेकिन हमारा सब सोचना गैर-साइंटिफिक है। हमारे चिन्तन के सब आधार गैर-साइंटिफिक हैं अगर हम सोचेंगे तो हम हमेशा गैर-साइंटिफिक ढंग में ही सोचेंगे। हमारे सोचने की पूरी धारा, पूरा ढांचा ऐसा है।

अब जनसंख्या बढ़ती है, वह हमारा सवाल है आज मुल्क के सामने। हमारे विचारशील लोगों से पूछें जाकर कि जनसंख्या बढ़ती है तो क्या करें? वे कहते हैं, ब्रह्मचर्य धारण करो। गांधीजी कहते हैं ब्रह्मचर्य धारण करो। विनोबा जी कहते हैं ब्रह्मचर्य धारण करो, जनसंख्या नहीं बढ़ेगी। ब्रह्मचर्य धारण करो। और पांच हजार साल का अनुभव यह कहता है कि कितने लोगों ने ब्रह्मचर्य धारण किया? लेकिन अनुभव से हम कुछ सीखते नहीं। और कितने लोग ब्रह्मचर्य धारण कर लेंगे? वह भी हम नहीं सोचते। और खतरा तो यह है कि यह चालीस करोड़ का मुल्क एकदम से ब्रह्मचर्य धारण कर ले एक साल तो हम एक दूसरे की गर्दन घोंट डालें। इतना हमारे भीतर काम का वेग इकट्ठा हो जाये कि जिन्दा होना मुश्किल हो जाये, पूरा मुल्क पागल हो जाये। बच्चे पैदा करने से भी मंहगा पड़े। लेकिन उसका हमें कोई ख्याल नहीं है।

वैज्ञानिक साधन से हमारा विरोध है। तो बर्थ-कन्ट्रोल से हमारा विरोध है क्योंकि वह वैज्ञानिक साधन है, सोचने का वह वैज्ञानिक ढंग है, लेकिन उससे हमारा विरोध है। हम किसी भी चीज के सम्बन्ध में वैज्ञानिक बुद्धि से नहीं सोच पाते। वैज्ञानिक बुद्धि हमारे पास नहीं है। बुद्धि वैज्ञानिक हो सकती है आज भी। उसके आधार बदलने होंगे। हमारे सोचने के आधार क्या हैं? हमारा सोचने का आधार सदा शास्त्र है। जब भी हम सोचते हैं तो हम पहले यह पूछते हैं, गीता क्या कहती है? अब गीता को कब तक परेशान करेंगे, और कृष्ण ने आपका क्या बिगाड़ा है? पैदा हो गये आपके मुल्क में तो कोई कसूर हो गया, अपराध हो गया? उनका पीछा कब तक करेंगे? लेकिन पहले हम गीता खोलेंगे। समस्या आज की, शास्त्र कल का; उनका मेल क्या है? लेकिन पहले शास्त्र में खोजेंगे कि शास्त्र-सम्मत कोई रास्ता मिल जाये। शास्त्र में कुछ रास्ते हैं, वे हम खोज लेंगे। वे रास्ते लागू नहीं होंगे, क्योंकि यह बुद्धि जो शास्त्र में खोजती है, अवैज्ञानिक है। वैज्ञानिक

बुद्धि प्रयोग में खोजती है, अवैज्ञानिक बुद्धि शास्त्र में खोजती है। प्रयोग भविष्य-गामी है, और शास्त्र अतीत से बंधे हैं। प्रयोग सदा भविष्य में ले जाता है, एक्सपेरीमेंट सदा भविष्य में ले जाता है और शास्त्र सदा अतीत में ले जाते हैं। जाना है भविष्य में, और पकड़े हैं शास्त्र को, तो मुसीबत खड़ी हो गयी है। जाना है पूरब और बैलगाड़ी में बैल जुते हैं पश्चिम की तरफ। बैलगाड़ी के बैल चलते हैं तो पश्चिम चले जाते हैं और जाना है पूरब। बहुत कठिनाई हो गयी है, बहुत मुश्किल हो गयी है।

शास्त्र की तरफ देखना बन्द करना पड़ेगा। वैज्ञानिक बुद्धि शास्त्र की तरफ नहीं देखती। बल्कि ध्यान रहे, जब से कुछ लोगों ने शास्त्र की तरफ देखना बन्द किया, तभी से विज्ञान पैदा हुआ। नहीं तो विज्ञान कभी पैदा न होता। गैलेलियो को सवाल उठा कि जमीन चपटी है या गोल? बाइबिल खोलकर देख सकता था। उसमें लिखा है जमीन चपटी है, बात खत्म हो जाती। उसने कहा, बाइबिल की हम फिक्र नहीं करते। हम तो खोजने जायेंगे कि जमीन कैसी है। खोजने गया तो पाया कि बाइबिल गलत है। हिन्दुस्तान अभी भी अपने शास्त्रों के विपरीत नहीं है। और जब तक हिन्दुस्तान की प्रतिभा शास्त्र के विपरीत नहीं है तब तक गेलेलियो पैदा नहीं होगा। कोपरनिकस पैदा नहीं होगा, डार्विन पैदा नहीं होगा, मार्क्स पैदा नहीं होगा, फ्रायड पैदा नहीं होगा। वैज्ञानिक बुद्धि पैदा नहीं होगी। वह नहीं हो सकती है। हम जब भी कुछ खोजते हैं, फौरन शास्त्र में जाकर संदर्भ देख लेते हैं। बात खत्म हो जाती है। प्रयोग में नहीं उतरते, जिन्दगी देखने नहीं जाते। और कई दफे ऐसा हो जाता है, इतना कठिन है अवैज्ञानिक मन।

मैंने सुना है, अरस्तू तो बड़ा विचारक था। उसने लिखा है कि औरतों के दांत आदमियों से कम होते हैं। तो उसने अपनी किताब में भी लिख दिया है कि स्त्रियों के दांत आदमी से कम होते हैं। अब दो औरतों वाले आदमी को कितनी देर लगती थी? एक मिसेज को कहता, जरा मुंह खोलो, दांत गिन लेता। लेकिन उसने नहीं गिने, पुरानी किताब में लिखा है कि स्त्रियों के दांत कम होते हैं, और सब किताबें पुरुषों ने लिखी हैं तो स्त्रियों में बराबर दांत होते हैं यह भी कैसे मान सकते? स्त्रियों में कमी तो होनी ही चाहिए सब तरह की। वह तो पहले पक्का सिद्धान्त था। अब यह बड़े मजे की बात है कि किसने किताब लिखी। और अरस्तू ने भी अपनी किताब में लिख दिया कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं। गिना नहीं। अरस्तू के मरने के एक हजार साल तक सारा योरोप यह मानता रहा कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं। अब मजा है कि पुरुषों को छोड़ दो, पक्षपात है उनका। स्त्रियां क्या करती थीं, वे अपने दांत नहीं गिन सकती थीं? लेकिन अवैज्ञानिक बुद्धि शास्त्र में जाती है। उन्होंने भी किताब खोलकर पढ़ा होगा, स्त्रियों के दांत कम हैं, बात खत्म हो गयी। आश्चर्यजनक है, लेकिन

सत्य है, हजारों मान्यताएं चल रही हैं क्योंकि शास्त्र में लिखी हैं।

देश को एक वैज्ञानिक बुद्धि चाहिए तो हम अपने जिन्दगी के सवालों को हल कर सकेंगे। हमारी अवैज्ञानिक प्रवृत्ति ने बहुत कुछ समस्याएं खड़ी कर दी हैं, वे चारों तरफ खड़ी हैं। वह हमें घेरे हुए हैं। उनको काटना मुश्किल होगा क्योंकि विज्ञान पैदा न हो तो टेकनोलॉजी पैदा नहीं होगी। हां, हम ट्रांसप्लांट कर सकते हैं। पश्चिम से हम उधार टेकनोलॉजी ला सकते हैं। लेकिन उधार बुद्धि कहां से लाइयेगा? और बैलगाड़ी में बैठने वाले आदमी के पास एक तरह की बुद्धि होती है—बैलगाड़ी की। हवाई जहाज मिल सकता है उधार। बैलगाड़ी में बैठने वाले आदमी को हवाई जहाज में बिठाला जा सकता है, पायलट बनाया जा सकता है लेकिन बैलगाड़ी वाले की बुद्धि एकदम हवाई जहाज के पायलट की बुद्धि नहीं हो जाती। और बैलगाड़ी वाली बुद्धि के हाथ में हवाई जहाज खतरनाक सिद्ध होगा। नुकसान में ले जायेगा, फायदे में नहीं ले जा सकता। मुश्किल में डाल देगा।

नहीं, पहले इस देश की बुद्धि बदलनी चाहिए। क्या आपको पता है, तीन सौ साल में पश्चिम में जो विज्ञान का विकास हुआ, उसका जन्म का कारण सन्देह की प्रवृत्ति है। सन्देह, डाउट! तीन सौ साल में पश्चिम के युवकों ने सन्देह किया पूर्वजों पर, पुरखों पर, पिताओं पर, पिछली सदियों पर, पिछले शास्त्रों पर, जीसस पर, मुहम्मद पर, सब पर सन्देह किया—मूसा पर, जरथुस्त्र पर। उस सन्देह का परिणाम हुआ विज्ञान। आज भी हम सन्देह करने में समर्थ नहीं हो पा रहे हैं। और अगर हम सन्देह नहीं कर पाते तो विज्ञान का जन्म नहीं हो सकता। विज्ञान की बुद्धि पैदा नहीं हो सकती। अवैज्ञानिक बुद्धि का आधार है विश्वास, बिलीफ और वैज्ञानिक बुद्धि का आधार है सन्देह, डाउट। क्या आज भी हम सन्देह करने की स्थिति में हैं? नहीं, आज भी शिक्षक सिखा रहा है विश्वास करो, पिता सिखा रहा है विश्वास करो। बड़ा भाई छोटे भाई को सिखा रहा है विश्वास करो। सब तरफ विश्वास सिखाया जा रहा है। विश्वास अब आगे हमें कठिनाई में डाल दे सकता है। सन्देह सिखाने की जरूरत है। अब यह बड़े मजे की बात है कि जब कोई आदमी ठीक से सन्देह करने लगता है तो वह उन विश्वासों पर पहुंच जाता है जो असंदिग्ध है। जब कोई आदमी ठीक से सन्देह करता है तो उन विश्वासों पर पहुंच जाता है जो असंदिग्ध हैं। और जब कोई आदमी पहले से विश्वास कर लेता है, तो कभी असंदिग्ध विश्वासों पर नहीं पहुंच पाता। सन्देह की यात्रा सत्य तक ले जाती है, विश्वास की यात्रा कभी भी नहीं।

लेकिन हम विश्वास से भरे हुए लोग हैं। हम सब तरफ विश्वास पर जी रहे हैं। यह तोड़ना पड़ेगा। यह मिटाना पड़ेगा। तो आज कोई कारण नहीं है कि जो पश्चिम में सम्भव हुई समृद्धि वह यहां सम्भव क्यों न हो जाये? बेहतर जमीन है, बेहतर आकाश है, बेहतर मौसम है, ज्यादा उपलब्ध सूरज है, पहाड़ हैं,

सम्पत्ति है, जमीन है, सब है। लेकिन वह बुद्धि नहीं है, जो उसमें से कीमिया को निकाल ले और सम्पत्ति को पैदा करे। सिर्फ बुद्धि की कमी बाधा डाल रही है, और कोई बाधा नहीं है। और बुद्धि हो तो सम्पत्ति पैदा होगी, लेकिन हमको उसकी भी फिक्र नहीं है। हम कहते हैं, जो सम्पत्ति है उसे बांट लें, सब मामला हल हो जायेगा। तो हमारा सारा बुद्धिमान वर्ग एक नारे में लगा है कि सम्पत्ति को बांटो। मैं नहीं मानता कि वह बहुत बुद्धिमान वर्ग है जो इस नारे में लगा है। सम्पत्ति नहीं है, बांटियेगा क्या? पहले सम्पत्ति पैदा करो, पहले सम्पत्ति को बरसाओ, पहले सम्पत्ति से देश को भर दो। बांटना तो बहुत आसान काम है।

लेकिन अगर आज हमने जबर्दस्ती सम्पत्ति बांट भी ली—बांट लेंगे, ऐसा लगता है—ऐसा लगता है कि बांट लेंगे क्योंकि रिक्शा वाला बहुत प्रसन्न हो गया है। इन्दिराजी के आस-पास घेरा लगाकर नारे लगा रहा है। वह कह रहा है जिन्दाबाद। लगता है कि हम सम्पत्ति बांट लेंगे। सम्पत्ति नहीं है, उसको बांट लेंगे। वह बंट जायेगी। और यह देश और गरीब हो जायेगा। सम्पत्ति नहीं बांटनी है, विश्वास की हत्या करनी है और सन्देह को जन्म देना है। धर्म के अन्धेपन से मुक्त होना है और वैज्ञानिक की आंख पैदा करनी है। गरीबी का पुराना मोह छोड़ना है और सम्पत्ति को पैदा करने का स्वस्थ आग्रह पैदा करना है। दीन-हीन होने की पुरानी व्याख्याएं जला डालनी है और समृद्ध होने के नये आधार रखने हैं। भौतिकवाद को स्वीकार करना है ताकि अध्यात्म का कलश, स्वर्ण-कलश उस पर चढ़ाया जा सके।

ये काम हैं जो देश के बुद्धिमान को करने हैं, लेकिन देश का बुद्धिमान नारे-बाजी में है। नारेबाजी के साथ भीड़ भी खड़ी हो जाती है। भीड़ बहुत कम समझदार है। भीड़ को खड़ा कर लेना बहुत कठिन नहीं है। अगर भीड़ बहुत समझदार होती तो उसने अपने मसले कभी हल कर लिए होते, लेकिन भीड़ बहुत समझदार नहीं है। और इस देश में अगर भीड़ को इकट्ठा करना हो तो नासमझी की बातें करनी बहुत जरूरी हैं। नासमझी हो तो भीड़ इकट्ठी हो जाती है। इस देश में नेता होना हो तो थोड़ी मीडियाकर बुद्धि का होना बहुत जरूरी है। बहुत प्रतिभावान आदमी इस देश में नेता नहीं हो सकता। क्योंकि बहुत प्रतिभावान आदमी भीड़ की बातों पर राजी नहीं होगा। अक्सर प्रतिभावान आदमी भीड़ की बातों का विरोध करेगा।

यह भीड़ अपनी भूलों से परेशान है। उसकी भूलों को स्वीकार करना खतरनाक है। लेकिन नेता होने का सूत्र है कि जो भीड़ कहती है वही तुम भी कहो। नेता होने का कीमिया है, केमिस्ट्री है कि हमेशा भीड़ के पीछे चलो। नेता दिखता आगे है, होता हमेशा पीछे है। नेता अपने अनुयायी का भी अनुयायी होता है। अनुयायी का भी अनुयायी हो सकता है वही नेता हो सकता है।

वह अनुयायी के पीछे चलता है। वह देखता है, अनुयायी क्या मांगता है वही कहो, अनुयायी क्या चाहता है, वही कहो। नारे पैदा हो गये हैं। देश बीस साल से नारों के आस-पास जी रहा है। स्लोगनबाजी है, उसमें कोई बहुत सोच-विचार नहीं है। उसमें कोई बहुत गहरी खोज नहीं है। देश के महारोग के भीतर उतरने की कोई निष्ठावान चेष्टा नहीं है, सिर्फ नारेबाजी है। जनता को क्या नारा ठीक लगता है, वह नारा लगाओ। और जनता ही अगर समझदार होती तो पांच हजार साल की दीनता और दरिद्रता हमने न झेली होती। अब फिर जनता प्रमुख हो गयी है। अब फिर जनता जिसको साथ देगी वही इस मुल्क को आगे चलायेगा। जनता के मानस में नये विचार डालने पड़ेंगे। जनता का मानस बदलना पड़ेगा तो शायद गलत नेता उसे गलत मार्गदर्शन न दे सकें। अभी इस देश को पचास साल एक परिपक्व पूंजीवाद की जरूरत है, एक मेच्योर केपिटलिज्म की जरूरत है।

तो मैं समाजवादी हूं, जब ऐसी बात कहता हूं तो कठिन मालूम पड़ती है। समाजवादी मित्र मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, आप क्या कहते हैं? मैं यह कहता हूं कि पूंजीवाद आ जाये तो समाजवाद आ सके। पूंजीवाद ही नहीं आये तो समाजवाद नहीं आ सकता। और मैं यह कहना चाहता हूं कि रूस का प्रयोग बहुत गहरे अर्थों में असफल हुआ है और परेशानी हुई है। चीन का प्रयोग असफल हो रहा है और भीतर बहुत गहरी परेशानी है। चीन ने पहली दफा तिब्बत पर हमला किया तो मेरे एक मित्र मानसरोवर की यात्रा पर गये थे। वह लौटते थे तो एक तिब्बती गांव में उनको पकड़ लिया गया। जिन चीन के सैनिकों ने पकड़ा, वे मुझसे कहने लगे, हम बहुत हैरान हुए। वे चीन के सैनिक इनका एक-एक सामान देखने लगे। स्टोव था इनके पास। वह स्टोव नहीं समझ सके कि स्टोव क्या है। तो उन्होंने कहा कि इसे जलाकर बताओ। जलाकर बताओ कि यह है क्या, यह चीज क्या है। वे समझे कि कोई खतरनाक यन्त्र है। स्टोव, चाय बनाने का एक साधारण स्टोव—चीन का सैनिक नहीं समझ सका कि यह क्या है? गांव के किसान हैं, जबर्दस्ती भर्ती कर लिए गये हैं, जबर्दस्ती बन्दूक पकड़ा दी गयी है। स्टोव को चीन का सैनिक नहीं समझ पाये। वे मेरे मित्र कहने लगे, हम बहुत हैरान हुए। हमने स्टोव जला कर बताया तो जो आठ-दस सैनिक थे वे भाग कर दरवाजे के बाहर खड़े हो गये क्योंकि आग भभकी। उन्होंने समझा कि पता नहीं क्या विस्फोट हो जाये, खतरा हो सकता है।

चीन जबर्दस्ती समाजवादी होने की कोशिश कर रहा है इसलिए भारी रक्त-पात हो रहा है। पांच महीने के बच्चे को मां से निकालेंगे तो रक्तपात होगा। और रक्तपात के बाद भी समाधान नहीं है। समाधान इसलिए नहीं है कि समृद्धि है ही नहीं, बांटियेगा क्या? चीन भीतर से गरीब और परेशान है। मुश्किल

में है। उस मुश्किल का हल करता है आस-पास हमले करके। आस-पास हमले करने से आशा बंधती है चीन के आदमी को कि शायद कहीं से सम्पति लूट लेंगे। कहीं कुछ उपद्रव हो जाये। लेकिन कहीं से सम्पत्तियां लूटी नहीं जा सकतीं। सम्पत्ति पैदा करनी पड़ती है।

रूस चालीस साल के अनुभव के बाद नये अनुभव ले रहा है। अभी उन्नीस सौ साठ में पहली दफा रूस में व्यक्तिगत कार रखने की छूट दी गयी है। हालांकि हैं नहीं अभी कि व्यक्तिगत कारें सारे लोग रख सकें। सौ पचास लोग बड़े नगरों में रख सकते हैं। लेकिन व्यक्तिगत कार रखने की छूट उन्नीस सौ साठ में दी और यह अनुभव किया अब व्यक्तिगत छूट थोड़ी दो। क्योंकि लोगों का इनसेन्टिव मर गया, लोगों की प्रेरणा मर गयी। कोई काम नहीं करना चाहता। रूस के सामने बड़े से बड़ा सवाल है, रूस का युवक काम नहीं करना चाहता। क्योंकि काम करने का प्रयोजन नहीं है। अमरीका, मैं मानता हूं, पचास वर्षों में ज्यादा बेहतर समाजवादी मुल्क सिद्ध होगा। वह रोज समाजवाद की तरफ बढ़ेगा, बढ़ना पड़ेगा। सम्पत्ति जब अतिरिक्त हो जायेगी तो व्यक्तिगत कब्जे का कोई मतलब नहीं है। व्यक्तिगत कब्जे का एक ही अर्थ है कि कम है सम्पत्ति, न्यून है, तभी तक व्यक्तिगत कब्जे का अर्थ है। गांव में हवा पर हम कब्जा नहीं करते, क्योंकि हवा बहुत है। कब्जा करने का कोई मतलब नहीं है। जमीन पर हमने कब्जा किया, लेकिन कब किया? जब जमीन कम पड़ी और संख्या ज्यादा हुई। आज से सौ साल पहले तक जमीन पर कोई कब्जा न था। जो जितनी जमीन जोत लेता था उसकी हो जाती थी। मेरे नाना ने मुझे कहा कि उन्हें जो जमीन मिली थी वह मुफ्त मिली थी। क्योंकि कोई जोतने वाला न था। जो जोत ले उसी को जमीन मिल जाती थी। उसका कोई मूल्य न था। संख्या कम थी, जमीन ज्यादा थी तो जमीन पर कोई कब्जा न था। संख्या ज्यादा हुई, जमीन कम पड़ी, जमीन पर कब्जा आ गया। जो चीज कम हो जायेगी उस पर कब्जा हो जायेगा।

सम्पत्ति जब तक कम है तब तक व्यक्तिगत कब्जे को हटाना मुश्किल है। और अगर हटाया तो सम्पत्ति का पैदा होना बन्द हो जायेगा। सम्पत्ति पैदा होने की प्रेरणा विलीन हो जायेगी। सम्पत्ति इतनी हो जानी चाहिए जैसे हवा है, पानी है। ताकि उस पर व्यक्तिगत कब्जे का अर्थ खो जाये। अमरीका पचास वर्षों में समाजवादी हो सकता है। और वहां जो समाजवाद आयेगा वह एकदम लोकतांत्रिक और अहिंसात्मक होगा। क्योंकि तब समाजवाद सहज आ जायेगा। सम्पत्ति के अतिरेक से आया हुआ समाजवाद ही सहज समाजवाद हो सकता है। लेकिन इस मुल्क में कैसे आ सकता है? हम तो बहुत बुरी हालत में हैं। यहां सम्पत्ति नहीं है। ये सम्पत्ति पैदा करने के मूल आधार हमें सोचने पड़ेंगे।

मैंने कुछ बातें कहीं इस आशा में कि आप सोचेंगे, विचार करेंगे। निर्णय

जल्दी हमें लेना पड़ेगा देश को कि क्या करना है। निर्णय अगर हमने सोचकर लिया, नारेबाजी में नहीं लिया तो शायद सहज उपयोगी हो सके और नारेबाजी में निर्णय लिया तो खतरनाक भी हो सकता है। नारे सुन्दर लगते हैं, इससे सत्य नहीं हो जाते। और कोई बात हमारी ईर्ष्या को तृप्त करती है, इससे सहयोगी और उपयोगी नहीं हो जाती।

और भी समस्याएं हैं, कल उन पर बात करूंगा। आपके कोई सवाल होंगे, वे लिखकर दे देंगे। मेरी बातों को इतनी शान्ति और प्रेम से सुना इससे अनुग्रहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

●

अहमदाबाद, २४ दिसम्बर १९६९

३–राष्ट्रभाषा और खण्डित देश

मेरे प्रिय आत्मन्,

प्रश्नों के ढेर से लगता है कि भारत के सामने कितनी जीवंत-समस्याएं होंगी। करीब-करीब समस्याएं, समस्याएं ही हैं और समाधान नहीं है।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या भारत में कोई राष्ट्रभाषा होनी चाहिए ? यदि हां, तो कौन ?

राष्ट्रभाषा का सवाल ही भारत में बुनियादी रूप से गलत है। भारत में इतनी भाषाएं हैं कि राष्ट्रभाषा सिर्फ लादी जा सकती है और जिन भाषाओं पर लादी जायेगी उनके साथ अन्याय होगा। भारत में राष्ट्रभाषा की कोई भी जरूरत नहीं है। भारत में बहुत सी राष्ट्रभाषाएं ही होंगी और आज कोई कठिनाई नहीं है कि राष्ट्रभाषा जरूरी हो। रूस बिना राष्ट्रभाषा के काम चलाता है तो हम क्यों नहीं चला सकते। आज तो यान्त्रिक व्यवस्था हो सकती है संसद में, बहुत थोड़े खर्च से, जिसके द्वारा एक भाषा सभी भाषाओं में अनुवादित हो जाय। लेकिन राष्ट्रभाषा का मोह बहुत मंहगा पड़ रहा है। भारत की प्रत्येक भाषा राष्ट्रभाषा होने में समर्थ है इसलिए कोई भी भाषा अपना अधिकार छोड़ने को राजी नहीं होगी—होना भी नहीं चाहिए। लेकिन यदि हमने जबर्दस्ती किसी भाषा को राष्ट्र-भाषा बनाकर थोपने की कोशिश की तो देश खण्ड-खण्ड हो जायेगा। आज देश

के बीच विभाजन के जो बुनियादी कारण हैं उनमें भाषा एक है। राष्ट्रभाषा बनाने का ख्याल ही राष्ट्र को खण्ड-खण्ड में तोड़ने का कारण बनेगा। लेकिन हमें वह भूत जोर से सवार है कि राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। अगर राष्ट्र को बचाना हो तो राष्ट्रभाषा से बचना पड़ेगा। और अगर राष्ट्र को मिटाना हो तो राष्ट्रभाषा की बात आगे भी जारी रखी जा सकती है।

मेरी दृष्टि में भारत में जितनी भाषाएं बोली जाती हैं, सब राष्ट्रभाषाएं हैं। उनको समान आदर उपलब्ध होना चाहिए। किसी एक भाषा का साम्राज्य दूसरी भाषाओं पर बर्दाश्त नहीं किया जा सकता, वह चाहे भाषा हिन्दी हो और चाहे कोई और हो। कोई कारण नहीं है कि तमिल या तेलगू या बंगाली या गुजराती को हिन्दी दबाये। लेकिन गांधीजी के कारण कुछ बीमारियां इस देश में छूटीं, उनमें एक बीमारी हिन्दी को राष्ट्रभाषा का वहम देने की भी है। हिन्दी को यह अहंकार गांधीजी दे गये कि वह राष्ट्रभाषा है। तो हिन्दी प्रान्त उस अहंकार से परेशान हैं और वे अपनी भाषा को पूरे देश पर थोपने की कोशिश में लगे हुए हैं। स्वाभाविक है कि इसकी बगावत हो। हिन्दी का साम्राज्य भी बर्दाश्त नहीं किया जा सकता किसी भाषा का नहीं किया जा सकता। कोई अड़चन भी नहीं है। सिर्फ संसद में हमें यांत्रिक व्यवस्था करनी चाहिए कि सारी भाषाएं अनुवादित हो सकें। और वैसे भी संसद तो काम कोई करती नहीं है कि कोई अड़चन हो जायेगी। सालों तक एक-एक बात की चर्चा चलती है, थोड़ी और देर चल लेगी तो कोई फर्क नहीं होने वाला है। संसद कुछ करती हो तो भी विचार होता कि कहीं कार्य में बाधा न पड़ जाय।

फिर मेरी दृष्टि यह भी है कि यदि हम राष्ट्रभाषा को थोपने का उपाय न करें तो शायद बीस-पच्चीस वर्षों में कोई एक भाषा विकसित हो और धीरे-धीरे राष्ट्र के प्राणों को घेर ले। वह भाषा हिन्दी नहीं होगी, वह भाषा हिन्दुस्तानी होगी। उसमें तमिल के शब्द भी होंगे, तेलगू के भी, अंग्रेजी के भी, गुजराती के भी, मराठी के भी। वह एक मिश्रित नयी भाषा होगी जो धीरे-धीरे भारत के जीवन में से विकसित हो जायेगी। लेकिन, अगर कोई शुद्धतावादी चाहता हो कि शुद्ध हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना है तो यह सब पागलपन की बातें हैं। इससे कुछ हित नहीं हो सकता है।

एक मित्र ने यह भी पूछा है कि क्या अंग्रेजी को देश से हटाया जाय ?

अंग्रेजी को देश से हटाना बहुत आत्मघाती होगा। विगत दो सौ वर्षों में अंग्रेजी के माध्यम से हम जगत् से सम्बन्धित हुए हैं। और विगत दो सौ वर्षों में जो भी महत्वपूर्ण निर्मित हुआ है, वह अंग्रेजी भाषाभाषी लोगों के द्वारा निर्मित हुआ है। और आने वाले भविष्य में भी अंग्रेजी का जगत् निरन्तर विकास और आविष्कार और खोज करता रहेगा। यदि अंग्रेजी को भारत से हटाने की चेष्टा

की गयी तो हम अपने हाथ से जगत् से टूटकर एक कुएं में बन्द हो जायेंगे। वह बहुत महंगा पड़ेगा। लेकिन हमको सुखद लग सकता है कि अंग्रेजी अंग्रेजों की भाषा है इस-लिए हटाओ। लेकिन अब सवाल अंग्रेजों की भाषा का नहीं, अब सवाल अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का है। और हमें अच्छा लग सकता है कि अंग्रेजों की भाषा है इसलिए हटाओ, तो अंग्रेजों की मोटरें, और रेलगाड़ियां और हवाई जहाज हटाने के सम्बन्ध में क्या ख्याल है? सारी टेकनालॉजी पश्चिम से आयी है और अगर उस टेकनालॉजी में दुनिया के साथ खड़े होना है तो अंग्रेजी पर अधिकार अत्यन्त आवश्यक है। हमारे हित में है, पश्चिम के हित में नहीं है। आज सारी दुनिया धीरे-धीरे अंग्रेजी जगत् से सम्बन्धित होती जा रही है। हर युग की एक भाषा होती है। उस युवा की भाषा वही होती है जो उस युग को सर्वाधिक दान देती है। हमारे देश की कोई भी भाषा अभी जगत् भाषा नहीं बन सकती क्योंकि जगत् के विकास में हमारा आज कोई कन्ट्रीब्यूशन, कोई दान नहीं है। न हमने यन्त्र दिये हैं, न हमने समृद्धि दी है, न सुख दिया है। हमने विश्व को रूपान्तरित करने के लिए आज कुछ भी नहीं दिया है। जो भाषा आज सर्वाधिक दान करेगी वही भाषा जगत् की भाषा बनेगी। हमें इतने समर्थ होना पड़ेगा, इतने आविष्कारक, इतने वैज्ञानिक, तब हमारी कोई भाषा जागतिक महत्व की हो सकती है लेकिन आज अंग्रेजी को अपने से तोड़ना बहुत मंहगा पड़ जायेगा।

सच तो यह है कि अंग्रेजों के जाने के बाद हमें अंग्रेजी को बचाने की तीव्रतम चेष्टा करनी चाहिए। सौभाग्य से या दुर्भाग्य से ऐतिहासिक संयोग था कि हमें डेढ़ सौ या दो सौ वर्ष अंग्रेजी से सम्बन्धित होने का मौका मिला। इस मौके को हम अपना वरदान सिद्ध कर सकते हैं। आज दुनिया में गैर-अंग्रेजी भाषी देशों में हमारा देश अकेला देश है जो ढंग से अंग्रेजी में सोच सकता है, विचार सकता है, बात कर सकता है। इस मौके को खो नहीं देना चाहिए। यह मौका हमने खोया है। बीस वर्षों में अंग्रेजी की क्षमता हमारी निरन्तर कम हुई है क्योंकि हमको यह ख्याल है कि अब अंग्रेजी की कोई जरूरत नहीं है। अंग्रेजी की जरूरत रोज-रोज बढ़ती चली जायेगी। न केवल अंग्रेजी की जरूरत बढ़ेगी बल्कि भविष्य में हमें रूसी भी सीखनी पड़ेगी, चीनी भी सीखनी पड़ेगी। जिस पर है, देश के नासमझ नेता उसको छोड़ने की बात कर रहे हैं, जिन पर नहीं है उन पर अधिकार करने की बात बहुत दूर है। अंग्रेजी बचाने की चेष्टा अत्यन्त जरूरी है। लेकिन अंग्रेजी को कोई राष्ट्र-भाषा बनाने की जरूरत नहीं है। अंग्रेजी हमारी भाषा नहीं है इसलिए राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। राष्ट्रभाषा की जरूरत ही नहीं है। देश की सभी भाषाएं राष्ट्र-भाषा की हैसियत से काम करें, अंग्रेजी हमारे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की भाषा रहे और उसमें जितने निष्णात हो सकें, उतना अच्छा है। लेकिन अंग्रेजी के साथ गुलामी का दंश जुड़ गया है। उस दंश से हमें बचना चाहिए और गुलामी ने कुछ

अच्छाइयां भी दी हैं और कुछ बुराइयां भी दी हैं। बुराइयों को काट डालना जरूरी है अच्छाइयों को बचा लेना जरूरी है। सिर्फ इसलिए कि वे गुलामी के क्षणों में हम पर आयीं, उनसे छूट जाना अपने ही हाथों अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारना होगा।

ठीक से समझा जाय तो मुसलमानों की हुकूमत इस देश में एक हजार साल चली और उसका कुल कारण इतना था कि मुसलमान संस्कृति ने भारत को कुछ भी शिक्षित करने की कोशिश नहीं की। अंग्रेज भी भारत में एक हजार साल तक चल सकते थे, ज्यादा चल सकते थे लेकिन अंग्रेजों ने एक भूल की, उन्होंने भारत को शिक्षित करने की कोशिश की। उनकी शिक्षा ही ज्यादा बगावत का कारण बनी। हिन्दुस्तान में जो बगावत, विद्रोह और क्रांति की भावना पैदा हुई, लोकतंत्र, स्वतन्त्रता का जो ख्याल पैदा हुआ वह पश्चिम से आया। भारत की कांग्रेस संस्था जिसने इस क्रांति को अगुआयी दी, अंग्रेजों द्वारा निर्मित संस्था थी। और भारत के सारे नेता, जिन्होंने इस देश को विचार दिये और क्रांति में ले गये, पश्चिम में शिक्षित हुए थे और पश्चिम से स्वतन्त्रता का ख्याल लेकर लौटे थे और क्रांति का ख्याल लेकर लौटे थे।

क्रांति का ख्याल भारतीय नहीं है। भारत ने कभी क्रांति नहीं की है। विद्रोह और बगावत की बात भारतीय नहीं है। भारतीय मन संतोष और तृप्ति को मानता है, क्रांति और बगावत को नहीं। भारतीय मन सब स्थितियों में राजी होने को तैयार है, तोड़ने को बदलने को नहीं। परिवर्तन की आकांक्षा बिल्कुल अभारतीय है और अंग्रेजों के द्वारा इस देश में आयी। विज्ञान की भी सारी क्षमता उनके मार्ग से हम तक आयी। निश्चित ही गुलामी बहुत दुखद थी और गुलामी से जो भी हमारे पास आया उससे हमारे दुख का सम्बन्ध हो गया। लेकिन हमें सोच समझकर काम करना पड़ेगा। माना कि पैर में घाव हो जाये तो बहुत दुख होता है, हम घाव को अलग कर देते हैं, पैर को बचा लेते हैं। लेकिन पैर को ही अलग नहीं कर देते।

बहुत घाव लगे गुलामी में, लेकिन उन घावों के साथ कुछ पश्चिम की संस्कृति का श्रेष्ठ भी हम तक आया है। उसे बचा लेने की अत्यंत जरूरत है। क्यों? क्योंकि आधुनिकीकरण में भारत के माडर्नाइजेशन में, वह पश्चिम से जो आया है उसकी अनिवार्य जरूरत पड़ेगी। अन्यथा हम अपने को बहुत पीछे पायेंगे। आज विज्ञान की श्रेष्ठतम शाखाओं में जो भी उपलब्ध किया जा रहा है उसके अगर हम अनुवाद करने बैठें तो हम दो सौ वर्ष तो अनुवाद में लगा देंगे। और दो सौ वर्ष जब तक हम इसका अनुवाद करेंगे तब तक विज्ञान ठहरा नहीं रहेगा। वह दो सौ वर्ष आगे निकल जायेगा। इतने जोर से क्रांति हो रही है कि अनुवाद के द्वारा काम नहीं हो सकता। हमें सीधा ही सम्पर्क बांधना होगा अन्यथा हम सम्पर्क से खो जायेंगे। और इस सीधे सम्पर्क के लिए अंग्रेजी को बचा लेना अत्यन्त जरूरी

है । और हम अंग्रेजी को हिम्मत से और प्रेम से बचा सकते हैं क्योंकि अब वह गुलामी की बात नहीं है, अब वह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की और सीखने की बात है। अंग्रेजी तो अनिवार्य होनी ही चाहिए, उससे तो छुटकारा नहीं है । उससे छुटकारे की बात ही महंगी हो सकती है ।

हमारा मन करता है क्योंकि अंग्रेजी सीखने की कठिनाई है । हमारा मन करता है इससे छुटकारा हो जाय । युवक पसन्द करेगा अंग्रेजी से छुटकारा जाय । असल में कठिनाई से बचने की कौन कोशिश नहीं करता है ? लेकिन कठिनाई से बचने की जो कौम कोशिश करती है वह धीरे-धीरे कमजोर हो जाती है और नष्ट हो जाती है । पिछले, अतीत, इतिहास में भी हमने कठिनाइयों से बचने की कोशिश में बहुत कुछ गवांया है । अब आगे हम कठिनाइयों से बचेंगे तो बहुत बुरी बात हो जायेगी । कठिनाइयों से नहीं बचना है । कठिनाइयों को स्वीकार करना पड़ेगा, उनकी चुनौती माननी पड़ेगी और उन कठिनाइयों से गुजर कर देश की नयी पीढ़ी को ठीक से निर्मित करना होगा ।

अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की तरह हमें सीखनी ही है, उससे छुटकारा नहीं लेना है । और राष्ट्रीय भाषा विकसित हो सकती है, अगर थोपी न जाय । हिन्दी धीरे-धीरे विकसित हो रही है । उसके प्रति प्रेम था दक्षिण में भी, बंगाल में भी, गुजरात में भी, सब तरफ उसके प्रति प्रेम था । लेकिन जैसे ही राष्ट्रभाषा का ख्याल आया और हिन्दी ने कोशिश की कि राष्ट्रभाषा बन जाय और हिन्दी साम्राज्यवादी कुछ नेतागण पागल की तरह उसको राष्ट्रभाषा बनाने में लग गये, वैसे ही तनाव पैदा हो गया और रेसिस्टेंस शुरू हो गया । सारा मुल्क तन गया और उसने कहा, यह बर्दाश्त नहीं किया जा सकता । नहीं करना चाहिए । गलत है बर्दाश्त करना ।

कोई भी चीज थोपी नहीं जा सकती और भाषाएं थोपने से विकसित नहीं होतीं । भाषाएं प्रेम से, अन्तर्सम्बन्धों से विकसित होती हैं । वे अपने आप विकसित होती चली जाती हैं । अगर देश साथ-साथ जियेगा तो धीरे-धीरे एक भाषा आम बोल-चाल की भाषा विकसित हो जायेगी । वह हिन्दुस्तानी होगी । उसमें सब भाषाओं के शब्द होंगे और वह हिन्दी से ज्यादा बहुमूल्य होगी, समृद्ध होगी । क्योंकि सभी भाषाओं की धाराएं उसमें आकर मिल जायेंगी । वह अकेली हिन्दी नहीं होगी, वह एक बिल्कुल ही नयी भाषा होगी । उस नयी भाषा की दिशा में कदम उठाये जा सकते हैं ।

पहला कदम है, राष्ट्रभाषा की बात बन्द कर दें ।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि देश की एकता के लिए क्या किया जाय ? देश का इंटीग्रेशन, राष्ट्रीय एकता कैसे हो ?

उसमें कुछ बातें सोचनी जरूरी हैं । पहली बात तो यह कि देश की सारी

राजनीति देश को खण्ड-खण्ड बनाये रखने पर जीवित है और वे ही राजनीतिज्ञ बातें करते हैं कि राष्ट्र एक कैसे हो ? गुजरात का राजनीतिज्ञ जिन्दा है गुजरात की अलग इकाई पर, महाराष्ट्र का राजनीतिज्ञ जिन्दा है महाराष्ट्र की अलग इकाई पर । मैसूर का राजनीतिज्ञ मैसूर की अलग इकाई पर जिन्दा है । मैसूर और महाराष्ट्र लड़ते रहेंगे, कि एक जिला मैसूर में हो कि महाराष्ट्र में, और ऊपर दिल्ली में बैठकर वे विचार करेंगे वे ही लोग, कि राष्ट्र की एकता कैसे हो ? असल में राजनीतिज्ञ लोकल, स्थानीय स्वार्थ पर जिन्दा है और राष्ट्रीय स्वार्थ की बात कर रहा है, इसलिए यह एकता सम्भव नहीं हो सकती है ।

यह एकता एक ही तरह से सम्भव हो सकती है कि देश में स्थानीय सरकारों को विदा किया जाय, सिर्फ केन्द्रीय सरकार हो; उसके अतिरिक्त देश की एकता नहीं हो सकती । देश में केन्द्रीय सरकार हो, लेकिन राजनीतिज्ञ पसन्द न करेगा । क्योंकि फिर इतने गवर्नर कैसे होंगे, इतने मुख्यमंत्री कैसे होंगे, इतने मंत्री, उपमंत्री कैसे होंगे ? बहुत कठिनाई हो जायेगी । थोड़े से लोगों के हाथ में सत्ता होगी । इतने लोग सत्ताधिकारी होने का मजा नहीं ले सकेंगे । उनकी सत्ताधिकारी होने की इच्छा देश को खण्ड-खण्ड तोड़ती चली जाती है । फिर तेलंगाना चाहता है अलग राज्य बन जाय, पंजाब चाहता है अलग राज्य बन जाय, चारखण्ड चाहता है बिहार में अलग राज्य बन जाय, बरार चाहता है विदर्भ अलग राज्य बन जाय । क्योंकि राजनीतिक देखते हैं कि एक प्रदेश दो हिस्सों में टूटे तो फिर दो मुख्यमंत्री होते हैं, दो मन्त्रालय होते हैं, दो गवर्नर होते हैं । राजनीतिज्ञ को सुविधा मिलती है देश जितने हिस्सों में टूटे । राजनीतिज्ञ का हित इस पर निर्भर है कि देश टूटता चला जाय और फिर राजनीतिज्ञ ऊपर बैठकर बातें करते हैं कि राष्ट्र की एकता कैसे हो ? सेमिनार बुलाता है, विचार करता है । वह विचार बेकार है, उनसे कुछ हल नहीं हो सकता है । अगर देश को एक बनाना है तो देश में एक केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त और सरकारों की कोई जरूरत नहीं है । एक सरकार के रहते ही—एक सरकार के रहते ही लोकल हित समाप्त हो जायेंगे, स्थानीय हित समाप्त हो जायेंगे । फिर नर्मदा का जल गुजरात का है कि मध्यप्रदेश का, यह सवाल नहीं रहेगा । फिर नर्मदा का जल नर्मदा का होगा । अभी बहुत झंझट है । फिर कौन-सा जिला मैसूर में रहे कि महाराष्ट्र में, इस पर गोली नहीं चलेगी । क्योंकि जिला अपनी जगह है, अपनी जगह रहेगा । वह पूरे देश का होगा । एक केन्द्रीय सरकार निर्मित होते ही देश एक होने लगेगा ।

हां, देश का विभाजन एडमिनिस्ट्रेशन के आधार पर होना चाहिए—जोनल । चार टुकड़े हो जायें । जोनल एडमिनिस्ट्रेशन की बात है, राजनीतिक विभाजन की बात नहीं है । इकाइयां हो जायें, जैसे रेलवे की इकाइयां हैं । रेलवे में कोई झगड़ा नहीं है कि वैस्टर्न रेलवे और सेन्ट्रल रेलवे से युद्ध कर रही हो । कोई झगड़ा नहीं है,

एडमिनिस्ट्रेटिव विभाजन है। देश का विभाजन प्रशासनिक होना चाहिए, राजनीतिक नहीं। पोलिटीकल विभाजन खतरनाक है। और अगर पोलिटीकल विभाजन चलता है तो एक-एक राज्य को हमें और छोटे राज्यों में तोड़ना ही पड़ेगा क्योंकि छोटे राजनीतिक छुटभैयों के लिए क्या किया जाय ? उन्हें भी प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री और गवर्नर होना है। फिर उनको रोकने का कारण भी क्या है ? फिर गुजरात एक क्यों हो ? चार गुजरात क्यों न हो ? सौराष्ट्र अलग क्यों न हो ?

आखिर सौराष्ट्र के भी राजनीतिज्ञ हैं, उनको भी मजा लेने का हक है। जबसे गुजरात बना, तबसे वे बेचारे बड़े परेशान हैं। वे मुझे मिलते हैं। मेरे कई मित्र हैं उनमें। वे बड़े परेशान हैं। जब सौराष्ट्र था तो उनमें कोई मुख्यमंत्री था, कोई मंत्री था, कुछ था। वे कुछ भी नहीं रह गये। तो उनकी चेष्टा अगर हो कि सौराष्ट्र अलग हो तो बुरा क्या है ? मैं यह कहता हूं कि या तो फिर देश को फिर टुकड़े-टुकड़े में तोड़ दें, एक-एक गांव में भी मिनिस्ट्री बना दें तो तृप्ति हो सकती है। फिर भी होगी पक्का नहीं है, क्योंकि मुहल्ले लड़ सकते हैं। मुश्किल है मामला। राजनीति कहां रुकेगी कहना मुश्किल है।

तो एक रास्ता तो यह है कि एक-एक पंचायत एक-एक मंत्रालय हो जाय और या एक रास्ता यह है कि राष्ट्र की एक ही केन्द्रीय सरकार हो। एक केन्द्र होते ही देश के विभाजन की जो हमें शक्ल दिखायी पड़ती है, वह विदा हो जायेगी। चर्चिल ने हिन्दुस्तान की आजादी मिलते वक्त एक बहुत दुखद भविष्यवाणी की थी। उसने कहा था कि दे तो रहे हो आजादी इनको, लेकिन बीस साल में ये वही हालत कर लेंगे जो अंग्रेजों से लेते समय मुसलमान साम्राज्य की थी कि बाप-बेटे को मार रहे थे, बेटा बाप को कैद कर रहा था। सारा देश खण्ड-खण्ड में बंट गया था। दिल्ली का सम्राट कहलाता जरूर था लेकिन आगरा भी वश में नहीं है। नाम ही रह गया। सारा मुल्क खण्ड-खण्ड था। एक-एक सिपहसालार, एक-एक सेनापति अपना राज्य बनाये हुए बैठ गया था। चर्चिल ने कहा था, बीस साल में। हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञ उसकी भविष्यवाणी को पूरा करने को जी-जान से लगे हुए हैं। वे सब चेष्टा कर रहे हैं कि चर्चिल गलत न हो जाये। देश को खण्ड-खण्ड तोड़े चले जा रहे हैं। निपट मूढ़ता की बातें हैं। चंडीगढ़ कहां हो ? गोलियां चलें, आदमी मरें छोटी-छोटी बातों पर !

लेकिन उनका मूल कारण क्या है ? मूल कारण है कि हम छोटे-छोटे सभी राजनीतिज्ञों को सत्ता अधिकार का रस देने की तैयारी दिखला रहे हैं। और फिर वे ही लोग मिल कर कहते हैं कि राष्ट्र की एकता कैसे हो, तब बहुत कठिनाई हो जाती है। जैसे चोर मिलकर विचार करें कि देश में चोरी कैसे बन्द हो ? सब एक-दूसरे की तरफ देखें, हंसें, भाषण करें और विदा हो जायें। चोर कैसे देश में चोरी बन्द करवाने का विचार कर सकते हैं ? हां, कर सकते इसलिए सिर्फ ताकि

पूरा देश सुन ले कि हम भी चोरी के खिलाफ हैं, ताकि चोरी करने में सुविधा हो जाये। अक्सर चोर ऐसा करते हैं। अगर कहीं चोरी हो जाये तो जिसने चोरी की है, उसके बचने का सबसे सरल उपाय यह है कि वह जोर से चिल्लाने लगे चोर के खिलाफ कि किसने चोरी की है, पकड़ो। तो फिर उसको कोई न पकड़ेगा क्योंकि इतना तो पक्का है कि इस आदमी ने चोरी नहीं की है। राजनीतिज्ञ चिल्लाते हैं कि देश की एकता चाहिए तो ख्याल में आता है कि इन बिचारों का कोई हाथ नहीं है, ये निर्दोष मासूम हैं। और इनका ही हाथ है। इन्होंने देश को खण्ड-खण्ड किया है। देश खण्ड-खण्ड कहां है ? सिवाय राजनीतिज्ञों के स्वार्थ के देश का कोई खण्ड-खण्ड होना नहीं है।

राजनीतिज्ञों को विदा करना पड़ेगा। छोटे-छोटे राजनीतिज्ञों की सबकी तृप्ति को रोकना पड़ेगा। एक राष्ट्र एक केन्द्रीय सरकार के निर्मित होते ही बन जायेगा। एडमिनिस्ट्रेटिव प्रशासनिक विभाजन होने चाहिए। जिले हों, प्रदेश हों, जोन हों, लेकिन उनकी कोई अपनी राजनीतिक केन्द्रीय व्यवस्था न हो। अन्यथा कोई खतरा नहीं है, कोई कठिनाई नहीं है कि मद्रास कल कहे कि हम अलग होना चाहते हैं, रोकने का क्या हक है किसी को ? और बंगाल कहे कि हम अलग होना चाहते हैं, रोकने का हक क्या है किसी को ? जितनी सत्ता इन छोटे टुकड़ों के हाथ इकट्ठी होती चली जायेगी उतना देश खंड-खंड होता चला जायेगा। और देश इतना बड़ा है। यह हमारा सौभाग्य है लेकिन इतने बड़े देश को हम उसका बड़ा होना दुर्भाग्य में भी बदल सकते हैं। छोटे-छोटे टुकड़े भी काफी बड़े हैं हमारे। उन टुकड़ों में भी हम तृप्त हो सकते हैं।

पहला खतरा हमने हिन्दुस्तान-पाकिस्तान को बांटकर किया है। बंटवारा शुरू हो गया। वह भी राजनीतिक बंटवारा था, उसमें भी गहरे में राजनीतिक बंटवारे की ही बात थी। दो गवर्नर जनरल होने चाहिए, दो प्रधानमंत्री होने चाहिए, दो राष्ट्रपति होने चाहिए। वह मजा भी गहरे में राजनीतिज्ञों का था। और हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञ जो निरन्तर कहते रहे कि हम बंटने न देंगे, हमारी लाश पर से बंटवारा होगा, वे सब जिन्दा रहे। किसी की लाश से बंटवारा न हुआ। बंटवारा हुआ—आम आदमी की लाश से बंटवारा हुआ। और जो कहते थे बंटवारा हमारी लाश पर होगा उन्होंने बंटवारे पर दस्तखत किये। क्यों किये दस्तखत ? कारण था; हिन्दुस्तान के सब राजनीतिज्ञ बूढ़े हो गये थे। बूढ़े राजनीतिज्ञ खतरनाक सिद्ध हुए। उनको लगा कि दो-चार-पांच वर्ष और आजादी की लड़ाई चलानी पड़ी तो कम से कम हम राष्ट्र को मुक्त करने वाले न होंगे, कोई और होगा। और कम से कम सत्ता न कर पायेंगे, कोई और करेगा।

हिन्दुस्तान जिद्द कर सकता था कि या तो स्वतन्त्र होंगे तो अखण्ड या गुलामी भी बेहतर है; लेकिन खण्ड-खण्ड नहीं होंगे। लेकिन हिन्दुस्तान का

राजनीतिज्ञ बूढ़ा हो गया था उस बूढ़े को डर था कि कहीं मैं मर न जाऊं तो न मालूम किसके सिर पर सेहरा बंधे आजादी का, कि किसने आजादी ली ! वे जल्दी में थे। वे अपने मरने के पहले इन्तजाम कर लेना चाहते थे अपने ऐतिहासिक मूल्य का। उन्होंने जल्दी में स्वीकार कर लिया। फिर इसके बाद एक पागल दौड़ शुरू हुई। और हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञ को गांधीजी कुछ हथियार दे गये हैं जो बड़े खतरनाक हैं। वे सिखा गये हैं कि अनशन कर दो, सब हो जायेगा। बस अनशन करो और बंटवारा करवा लो। अनशन करो और जो मांग पूरी करवानी हो वह करवा लो। हर आदमी को वह सिखा रहे हैं कि अपने मरने की धमकी दो और फिर सब पूरा हो सकता है। तो देश भर बंट रहा है। जो भी मरने की धमकी दे सकता है वह देश को दो टुकड़ों में, कहीं भी किसी भी प्रदेश को, दो टुकड़ों में बंटवा सकता है। बस मरने की धमकी चाहिए।

इतना कमजोर हमारा मन हो गया है कि हम किसी भी धमकी, बलवे, हिंसा सब पर राजी हो जाते हैं और जो करना है यह करने नहीं देते हैं। नहीं हिन्दुस्तान के छोटे-छोटे राजनीतिज्ञ हिन्दुस्तान को खण्ड-खण्ड में बांट देंगे। इनसे बचने की जरूरत है। हिन्दुस्तान एक है। कृपा करके राजनीतिज्ञ बीच से हट जायें और हम पायेंगे हिन्दुस्तान एक है। यह बंटा कहां है ? लेकिन बांटने वाले लोग ही कह रहे हैं कि देश बंट गया है और इसको एक करना है। उनकी एक करने की भाषा से ऐसा पता चलता है कि कम से कम ये बिचारे बंटवाने वाले नहीं हैं। राजनीतिज्ञ को अलग कर दें, देश कहां बंटा हुआ है ? देश इकट्ठा है। कौन लड़वा रहा है ? वह राजनीतिज्ञ लड़वा रहा है। और बिना लड़वाये राजनीतिज्ञ के हाथ की ताकत कम हो जाती है। जब वह लड़वाता है तभी ताकत में होता है। जब वह एक जिले के लिए मैसूर और महाराष्ट्र को लड़वाते हैं तो मैसूर के राजनीतिज्ञ की भी ताकत बढ़ती है और महाराष्ट्र के राजनीतिज्ञ की भी ताकत बढ़ती है और वे अपने वोटर को समझाते रहते हैं कि जिला हम लेकर रहेंगे। और अगर जिला लेना हो तो मुझे मुख्यमंत्री बनाओ, तभी जिला आ सकता है, नहीं तो नहीं आ सकता है। और मजा यह है कि जनता को जिला कहां रहता है, इससे क्या फर्क पड़ता है ?

मैंने सुना है कि हिन्दुस्तान-पाकिस्तान बंटा तो एक पागलखाना था दोनों मुल्कों की सीमा पर। उसके बंटवारे का भी सवाल आ गया। उसको बांटना पड़ेगा। अधिकारियों ने जाकर पागलों से कहा कि तुम कहां रहना चाहते हो, हिन्दुस्तान में कि पाकिस्तान में ? उन्होंने कहा हम तो यहां रहना चाहते हैं। उन्होंने कहा, यह सवाल नहीं है, तुम्हें कहीं जाना नहीं पड़ेगा, रहोगे तुम यहां लेकिन तुम यह बताओ कि हिन्दुस्तान में जाना है कि पाकिस्तान में ? पागल बड़ी मुश्किल में पड़ गये। उन्होंने कहा, जब रहेंगे यहां तो जाने का सवाल ही क्या है ? अधिकारियों ने कहा, तुम समझते नहीं, ये बड़ी गहरी गम्भीर बातें हैं। तुम तो यह बताओ, तुम जाना कहां चाहते हो ? उन्होंने कहा, हम जाना नहीं चाहते। अधिकारियों ने कहा, घबराओ मत, रहना यहां पड़ेगा लेकिन फिर भी तुम कहां जाना चाहते हो ? वे पागल कहने लगे, हम सोचते थे, हम पागल हैं, आप कब से पागल हो गये हैं ? फिर तो रास्ता न मिला। अब पागलों को समझाया न जा सका कि रहोगे यहीं, लेकिन हिन्दुस्तान या पाकिस्तान चले जाओगे। तब फिर यह हुआ कि बीच से पागलखाना बांट दिया गया। तब पागलखाने के दो हिस्से हो गये। एक हिस्सा हिन्दुस्तान में चला गया, एक पाकिस्तान में चला गया। बीच में एक दीवार खींच दी गयी। अब भी वह पागल कभी-कभी दीवार पर चढ़ कर एक-दूसरे से बातें करते हैं और वे कहते हैं, बड़ी अजीब बात है। हम सब वहीं के वहीं हैं, सिर्फ एक दीवार बीच में आ गयी। हम हिन्दुस्तान में हो गये, तुम पाकिस्तान में हो गये। कुछ समझ में नहीं आता। ये बाहर के पागल क्या करते रहते हैं, कुछ समझ नहीं आता।

हम और छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटते चले जायेंगे। राजनीतिज्ञ की ताकत हमें पागल बनाने में निर्भर है। जब वह हमें पागल बनाने में समर्थ हो जाती है तब उसमें ताकत आ जाती है लेकिन राजनीतिज्ञ हमको किसी भी चीज पर पागल बना सकता है—हिन्दू होने पर, मुसलमान होने पर, गुजरातीभाषी होने पर, मराठीभाषी होने पर, ब्राह्मण होने पर, शूद्र होने पर, किसी भी तरह से हमें पागल बना सकता है। राजनीतिज्ञ की ताकत हम किस मात्रा में पागल हो सकते हैं, इसी पर निर्भर है। अगर देश को एक करना है तो देश के पागल होने की क्षमता कम करनी पड़ेगी। देश में सेनेटी बढ़ानी पड़ेगी, पागलपन कम करना पड़ेगा। हम छोटी-छोटी बातों पर इतने जल्दी पागल होते हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं। किसी ने खबर कर दी कि गाय की पूंछ कट गयी, कुछ लोग पागल हो जायेंगे। अब गाय की पूंछ कट भी गयी हो तो भी दो-चार हजार लोगों को मरने और मारने की जरूरत समझ में नहीं आती। और हमारे बच्चे अगर कभी भविष्य में पढ़ेंगे तो बहुत हंसेंगे कि हमारे बाप-दादे सब पागल थे। गाय की पूंछ कट गयी तो चार हजार लोगों को मरने-मारने की क्या जरूरत थी ? गाय की पूंछ कट गयी थी तो इलाज करवा देना था, प्लास्टिक सर्जरी करवा देनी थी। गाय की पूंछ फिर से जुड़ सकती थी, लेकिन गाय की पूंछ पर यह हो सकता है। एक पत्थर की मूर्ति का हाथ कट जाये तो हजारों लोग मर सकते हैं। औरतों के स्तन काटे जा सकते हैं, बच्चों की हत्या की जा सकती है, लोगों को आग लगायी जा सकती है।

अगर हम इस तरह पागल होने को तत्पर हैं तो यह देश इकट्ठा नहीं हो सकता। पागलपन तो लड़वाता है। और राजनीतिज्ञ की ताकत ध्यान रहे, हमें पागल बनाने में है। वह जितने दूर तक हमें पागल बना सकता है उतना शक्ति-

शाली रहेगा। जिस दिन हम पागल बनने से इन्कार कर देंगे, एक बड़ी अद्भुत घटना घटेगी, हमको राजनीतिज्ञ पागल मालूम होगा। हमें दिखायी पड़ेगा कि यह क्या पागलपन की बातें चला रखी हैं! राजनीतिज्ञ पागल मालूम होगा अगर जनता थोड़ी सेनिटी, थोड़ा स्वस्थ होने की कोशिश करे। राष्ट्र को एक करना हो तो उसे स्वस्थ करना होगा। उसके पागलपन के बुनियादी कारण हटाने पड़ेंगे।

अब एक मित्र ने पूछा है अभी कि आप कहते हैं कि कोई हिन्दू न रहे, कोई मुसलमान न रहे तो फिर शादी हो जायेगी और खून अशुद्ध हो जायेगा, तब सब पतन ही हो जायेगा?

अब यह पागलपन की बातें हैं। खून सभी शुद्ध होता है, हिन्दू का भी और मुसलमान का भी। एक मुसलमान का खून निकाल कर लेबोरेटरी में चले जायें और अगर कोई डाक्टर बता दे कि यह मुसलमान का खून है तो आश्चर्य, मिरेकल समझना। कोई खून नहीं बताया जा सकता कि हिन्दू का है, कि मुसलमान का है, कि ईसाई का है, कि ब्राह्मण का है, कि शूद्र का। खून सिर्फ खून है। खून शुद्ध और अशुद्ध नहीं होता, चमड़ी शुद्ध और अशुद्ध नहीं होती, हड्डियां शुद्ध और अशुद्ध नहीं होतीं। दो हड्डियां निकाल कर जांच नहीं की जा सकती कि ब्राह्मण की शुद्ध हड्डी कौन-सी है और भंगी की अशुद्ध हड्डी कौन-सी है? खून से कोई शुद्धता का सम्बन्ध नहीं है।

और आश्चर्य की बात यह है कि जितने निकट का खून होता है उतने ही अस्वस्थ बच्चे पैदा हो सकते हैं, जितना ही दूर का खून होता है उतना ही स्वस्थ बच्चे पैदा होते हैं। हम भी मानते हैं सामान्यतया। अपनी बहन से हम शादी नहीं करते हैं। क्यों? क्या तकलीफ है? एक ही तकलीफ है कि खून बहुत करीब है और करीब खून से उतना टेंशन पैदा नहीं होता कि बच्चा स्वस्थ हो सके इसलिए दूर शादी करते हैं। बचाते हैं कि बहन से शादी न हो जाये, फ़ासले पर शादी करते हैं। अगर बहन से शादी करने में बचाव करते हैं तो क्या उचित न होगा, और फासले पर शादी करने से और स्वस्थ बच्चे पैदा होंगे? अब तो प्राणिशास्त्री जानते हैं कि क्रास ब्रीडिंग का कितना बेहतर परिणाम है। एक अंग्रेज सांड को ले आयें और हिन्दू गाय से दोस्ती करवा दें तो जो बच्चा पैदा होगा, वह हिन्दू बैल से कभी पैदा नहीं हो सकता। इतना फासले का ब्रीडिंग जब होता है तो स्वस्थ जानवर पैदा होते हैं।

आदमी के साथ भी नियम वही है। जितना फ़ासले का सम्बन्ध होगा उतने स्वस्थ लोग पैदा होंगे। हिन्दू-मुसलमान का सम्बन्ध ज्यादा अच्छा है बजाय हिन्दू और हिन्दू के। हिन्दुस्तानी और चीनी का सम्बन्ध ज्यादा अच्छा है बजाय हिन्दुस्तानी-हिन्दुस्तानी के। एशिया के रहने वाले का सम्बन्ध योरोप के निवासी

से ज्यादा बेहतर है बजाय एशिया के भीतर। और अगर किसी दिन हमने चांद-तारों पर कोई जाति खोज ली तो इन्टरप्लेनेटरी विवाह जितने अच्छे होंगे उतने और कहीं नहीं हो सकते हैं। क्योंकि उस प्लेनेट पर करोड़ों वर्षों से जो विकास हुआ होगा और इस प्लेनेट पर जो विकास हुआ है, अगर एक लड़की और लड़का हिम्मत करके शादी कर लेंगे तो ये दोनों विकास की धारायें मिलकर जिस बच्चे को पैदा करेंगी, वह दोनों विकास की धाराओं का वंशज है। वह उतना ही कीमती समृद्ध बुद्धि और शरीर लेकर पैदा होगा।

मगर हमें पागल बनाने की तरकीबें हैं कि शुद्ध खून खोजना चाहिए। शुद्ध खून का कोई मतलब नहीं होता है। बीमार खून और स्वस्थ खून होता है, लेकिन शुद्ध और अशुद्ध खून नहीं होता है। कोई खून शुद्ध नहीं है खून की तरह; सभी शुद्ध हैं या सभी अशुद्ध हैं। चमड़ी के फासले बनाये हुए हैं कि गोरी चमड़ी और सफेद चमड़ी। और पता है यह फासला कितना होता है? एक पिगमेंट होता है छोटा-सा, जो काली चमड़ी को काला बना देता है—और मुश्किल से छटांक का चौथाई हिस्सा। उतना पिगमेंट जिसके शरीर में होता है उसकी चमड़ी काली हो जाती है; उतना नहीं होता है तो गोरी हो जाती है वह जो चौथाई छटांक का हिस्सा है पिगमेंट का, वह भी इसलिए है कि ज्यादा और कम धूप भीतर न जाने दे। काली चमड़ी प्रोटेक्टिव है, सुरक्षा करती है, भीतर धूप को नहीं जाने देती है। सफेद चमड़ी सर्द हो जगह तो ठीक है, गर्म जगह हो तो बड़ी गलत है। वह धूप को भीतर घुस आने देती है और मुश्किल में डाल देती है। काली और सफेद चमड़ी में कुछ ऊंचा और नीचा नहीं है।

आप बाहर निकलते हैं, काला छाता लगाकर नहीं निकल जाते हैं। क्यों? सफेद छाता बेमानी हैं क्योंकि काला छाता रोशनी को रोकने का काम करता है, किरणों को वापस लौटा देता है। सफेद छाता सब किरणों को पी जाता है। उस काले छाते में काला पिगमेंट है, जो किरणों को वापस भेज देता है। वह काला छाता हम लगाते हैं बिना फिक्र किये कि काला क्यों लगायें, सफेद छाता लगायें। गोरा छाता बहुत अच्छा होगा लेकिन धूप में काला छाता ही बेहतर है। जहां गर्म मुल्क हैं, श्रम करने वाले लोग हैं, जिन्हें दिन भर धूप में रहना हो उनकी चमड़ी अगर काली न होगी तो वे जिन्दा नहीं रह सकते।

लेकिन किसने कहा कि काली चमड़ी सुन्दर नहीं होती है? काली चमड़ी का अपना सौंदर्य है, सफेद चमड़ी का अपना सौंदर्य है। कोई नीचा-ऊंचा नहीं है। हमने कृष्ण को काला बनाया है। कृष्ण का मतलब ही काला है, सांवला। और हमने काला इसलिए बनाया है कि हमने काले के रंग का सौंदर्य भी समझा है। सच बात यह है कि गोरे रंग में एक विस्तार होता है लेकिन गहराई नहीं होती, काले रंग में एक गहराई होती है जो गोरे रंग में नहीं होती है। गोरे रंग में

एक हमला होता है, गोरा रंग अग्रेसिव है, हमलावर है। अगर सड़क से गोरा रंग निकल जाये तो हमें देखना ही पड़ता है, वह आक्रमक है, हिंसात्मक है। काला रंग अनाक्रामक है, वह हमला नहीं करता है। आपको देखना हो तो देखें, प्रतीक्षा करता है, वेट करता है, अहिंसात्मक है। वह काला रंग है, वह हिंसा नहीं करता है। देखा है, नदी जब गहरी हो जाती है तब सांवली हो जाती है, उथली होती है तो सफेद हो जाती है। गहराई आ जाती है नीले रंग में। आकाश नीला दिखायी पड़ता है बहुत गहराई के कारण, और कोई कारण नहीं है। काले रंग में एक गहराई है। काले रंग का अपना सौंदर्य है, सफेद रंग का अपना सौंदर्य है। लेकिन कौन कहता है कि सफेद अच्छा और काला बुरा है। जब कोई ऐसा कहता है तो भूल की बातें करता है। गलत बातें करता है और इस तरह से पागलपन पैदा होता है।

अब अमरीका में पागलपन है कि नीग्रो को मारो, क्योंकि वह काला है। बड़ी अजीब बात है। हिन्दुस्तान में भी वही है। हमने तो वर्ण की जो व्यवस्था की वह कलर पर निर्भर है। वर्ण का मतलब रंग। असल में काले रंग के लोगों को हमने शूद्र बना दिया है, नीचे धक्का दे दिया है। वर्ण का मतलब है रंग। वह भी रंग के आधार पर तय हुआ था कभी। गोरी चमड़ी के लोग ऊपर बैठ गये, वह ब्राह्मण हो गये, क्षत्रिय हो गये, वैश्य हो गये। काली चमड़ी के लोगों को उन्होंने धक्के देकर शूद्र बना दिया, अस्पृश्य बना दिया कि छूने योग्य नहीं है। वह रंग का ही विभाजन था। लेकिन रंग से कोई सम्बन्ध है? काले रंग का अपना आनन्द है, सफेद रंग का अपना आनन्द है। फिर स्वार्थ-स्वार्थ की बात है। किसी को काला रंग अच्छा लग सकता है, किसी को सफेद रंग अच्छा लग सकता है। लेकिन इसमें कोई वैल्युएशन नहीं हो सकता है, इसमें कोई ऊंचा-नीचा नहीं है। यह सब पागलपन हैं, छोड़ने पड़ेंगे। वर्ण का पागलपन हमें छोड़ना पड़ेगा, जाति का पागलपन छोड़ना पड़ेगा, धर्म का पागलपन छोड़ना पड़ेगा तो देश राजनीतिज्ञ के हाथ से अभी मुक्त हो जाये। और देश अगर राजनीतिज्ञ के हाथ से मुक्त हो जाये तो देश सदा एक है, देश को बांटा कहां है?

बंटा कहां है देश? सच तो यह है कि अगर सारी दुनिया राजनीतिज्ञों से मुक्त हो जाये तो पूरी मनुष्यता एक है। इसलिए मुझसे यह मत पूछें कि देश को एक कैसे करें। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि देश को अनेक करने की तरकीबें भर पहचान लें और उन तरकीबों में न फंसें, देश एक हो जायेगा।

जैसे मैंने यह मुट्ठी बांधी और किसी से जाकर पूछूं कि यह मुट्ठी कैसे खोलूं? तो वह आदमी कहेगा कि खोलने का कोई सवाल ही नहीं है। कृपया बांधें मत। मुट्ठी अपने से खुल जायेगी। मुट्ठी को खोलना नहीं पड़ता है, बांधना पड़ता है। बांधना क्रिया है, खोलना क्रिया नहीं है। शब्द में मालूम पड़ता है खोलना

क्रिया है। खुलना अपने से हो जाता है। खोलना स्वभाव है। एक होना मनुष्य का स्वभाव है, बांटना, खंडित होना हमारी तरकीब है। बहुत व्यवस्था और मेहनत से बंटना पड़ता है। अगर हम न बंटें तो हम एक तो अभी हो जायेंगे। अगर मैं अपनी लड़की को न समझाऊं कि तू हिन्दू है और मेरा पड़ोसी अपने लड़के को न समझाये कि तू मुसलमान है, तो उनको प्रेम से रोकने वाला कोई न होगा। वे आपस में पास आ सकते हैं और प्रेम कर सकते हैं। लेकिन मैं समझा रहा हूं कि तू हिन्दू है और उसका आदमी समझा रहा है कि तू मुसलमान है। हम दीवारें खड़ी कर रहे हैं बीच में। वे लड़की और लड़के के बीच एक फासला खड़ा कर रहे हैं, वे फासले करीब न आ सकेंगे, उनके बीच एक सख्त दीवार खड़ी हो गयी है।

नहीं, यह मत पूछिये कि एक कैसे हों, इतना ही पूछिये कि अनेक कैसे हो गये हैं? और अनेक होने की तरकीब समझ लीजिये और उससे मुक्त हो जाइये। एकता स्वाभाविक रूप से फलित हो जायेगी। मनुष्य एक है, शैतानों ने उसे अनेक किया हुआ है। वे बड़े मेहनती हैं। शैतान सदा से मेहनती हैं। वह भारी श्रम करके अनेक करते हैं। वे दिन-रात चेष्टा में लगे हैं कि आदमी को कैसे तोड़ूं। और जब शैतान देखता है कि अब तोड़ना इतना ज्यादा हो गया है कि आदमी घबराता है तो शैतान ही नयी शक्ल लाकर कहता है कि सब एक हो जाओ। भाइयो, हिन्दू-मुसलमान सब भाई बन जाओ। वह देखता है कि अब तोड़ा नहीं जा सकता है आगे, तो एक करने की बात करो। थोड़ा लोग रिलेक्स हो जायें, फिर तोड़ो। फिर तोड़ने की बात करो।

एक सज्जन ने पूछा है कि हिन्दू और मुसलमान एक क्यों नहीं हो सकते हैं?

हिन्दू-मुसलमान हैं इसीलिए एक नहीं हो सकते। आदमी-आदमी एक हो सकता है, हिन्दू-मुसलमान एक नहीं हो सकते। वह हिन्दू-मुसलमान होने का बोध ही उन्हें दो कर रहा है और अगर वे चेष्टा करके एक भी हो जायें—जैसा कभी-कभी होता है, गले मिलने का भी तो इन्तजाम करते हैं न कि हिन्दू-मुसलमान गले मिल रहे हैं, फोटो उत्तर जाती है, अखबार में छप जाती है, बस इससे ज्यादा एक कुछ भी नहीं होता है। वह जो गले मिले थे, दूसरे दिन फिर छुरे खींच लेते हैं। वह जो एक होने की बात है, उसकी बुनियाद में हमने मान रखा है कि अनेक को हम स्वीकार करते हैं। हम हिन्दू को हिन्दू मानते हैं, मुसलमान को मुसलमान मानते हैं।

वह बड़े मजे की बात है, कोई बच्चा हिन्दू की तरह पैदा होता है कि कोई बच्चा मुसलमान की तरह पैदा होता है? बच्चे सिर्फ आदमी की तरह पैदा होते हैं। पुरानी पीढ़ी उनको बिगाड़ने का उपाय करती है। और जहर डाल कर बड़े होते-होते उनको पक्की तरह से हिन्दू-मुसलमान बना देती है। अगर मैं हिन्दू हूं

और मेरे घर में एक बच्चा पैदा हो और मैं मुसलमान मित्र को दे दूं और वह मुसलमान के घर बड़ा हो, तो क्या अपने आप वह बच्चा कभी भी पता लगा पायेगा कि वह हिन्दू है ? कोई उपाय नहीं है । उस बच्चे को कभी भी पता नहीं चलेगा क्योंकि बच्चा कोई होता ही नहीं । बच्चा तो खाली होता है बिना लेबल के । लेबल हम लगाते हैं । बच्चा कोई लेबल लेकर नहीं आता है, वह सिर्फ आदमी की तरह आता है । फिर हम लेबल लगाते हैं और लेबल लगाने से उपद्रव शुरू हो जाते हैं ।

नहीं, लेबल लगाने बन्द करने पड़ेंगे । जो बाप अपने बेटे को प्रेम करता हो, कृपा करके उस पर लेबल न लगायें । जो मां अपने बेटे को प्रेम करती है वह कृपा करके उस पर लेबल न लगाये । अगर हम यह तय कर लें कि हम अपने बच्चे को लेबल नहीं लगायेंगे और लगे-लगाये लेबल को उखाड़कर फेंक दें तो कौन है, जो हमें अलग करे ? कोई हमें अलग करने को नहीं है । इसका यह मतलब नहीं कि मैं कहता हूं कि आप गीता न पढ़ें, कुरान न पढ़ें । मैं मुसलमान नहीं हूं, मैं कुरान पढ़ता हूं । मैं हिन्दू नहीं हूं, मैं गीता पढ़ता हूं । मैं ईसाई नहीं हूं, मैं बाइबिल पढ़ता हूं । मुझे कौन रोकता है ? सच बात तो यह है कि जब मैं कोई न रह जाऊंगा तो मैं निष्पक्ष मन से गीता, कुरान, बाइबिल तीनों को पढ़ सकूंगा । जब तक मैं मुसलमान हूं, तब तक मैं कुरान एक ढंग से पढ़ता हूं, और गीता दूसरे ढंग से पढ़ता हूं । जब तक मैं हिन्दू हूं तब तक गीता को मैं पवित्र ढंग से पढ़ता हूं और कुरान को ऐसे पढ़ता हूं जैसे—जैसे स्टैप मदर, दूसरी मां दूसरे के बेटे को देखती है । स्टेपमदरली ढंग से पढ़ता हूं । उसको मैं ऐसे नहीं पढ़ता, जैसे गीता को पढ़ता हूं । नहीं, जिस दिन मैं कोई नहीं हूं उस दिन मैं सबको पढ़ूंगा, उस दिन सारी दुनिया की संस्कृति का, सारा अतीत का मैं वारिस हो जाऊंगा । अभी मैं सारी दुनिया की संस्कृति का वारिस नहीं हूं । अभी मैं एक धारा का वारिस हूं । जब मैं सारी दुनिया का वारिस हो जाऊंगा तब जीसस से मुझे कुछ सीखना है तो मैं मुक्त हूं, और मोहम्मद से कुछ सीखना है तो मैं बंधा नहीं हूं और कृष्ण से मुझे कुछ सीखना है तो मेरे मन के द्वार खुले हैं । मैं सबसे सीख सकूंगा । सारी दुनिया का सारा अनुभव मेरा हो जायेगा ।

क्या हमारे बच्चे ज्यादा समृद्ध न हो जायेंगे अगर वे आदमी हो जायें ? नहीं, हम उन्हें दरिद्र बनाते हैं क्योंकि हम उन्हें हिन्दू बना देते हैं, मुसलमान बना देते हैं और हमारा लेबल का मोह इतना गहरा है कि उसके कारण हम करीब-करीब अन्धे हो जाते हैं, हम दूसरे की तरफ कभी देखते ही नहीं । अब जीसस जैसे प्यारे आदमी को पढ़ने से हम वंचित रह जायेंगे क्योंकि हम ईसाई नहीं हैं । जीसस जैसा आदमी बहुत अद्भुत है । उससे जो वंचित रह गया, वह दुनिया के बहुत बड़े महत्वपूर्ण ढंग से वंचित रह गया । मोहम्मद की अपनी शान है जो उनसे

वंचित रह गया, वह एक बहुत प्यारे आदमी को जानने से वंचित रह गया । जिसने कृष्ण को नहीं जाना, वह चूक गया एक हीरे से, जो मुफ्त में मिल सकता था । जो महावीर को प्रेम नहीं कर पाया, उसकी जिन्दगी में, उसकी आत्मा में कुछ कमी रह जायेगी । जिसने बुद्ध के चरणों में बैठकर थोड़ी देर राहत की सांस न ली, उसकी शांति में कुछ कमी रह जायेगी ।

और मजा यह है कि इनमें से जो एक दे सकता है वह दूसरा नहीं दे सकता । वे सब यूनिक हैं, वे सब बेजोड़ हैं । बुद्ध कुछ और दे सकते हैं, मोहम्मद कुछ और । जीसस कुछ और, जरथुस्त्र कुछ और । लेकिन अब तक हमने अपने बच्चों को एक धारा से जोड़कर बाकी दुनिया की धारा से वंचित किया है । भविष्य में एक नागरिक पैदा करना है जो विश्व का नागरिक हो तो हमें धर्मों से, जातियों से, रंगों के पागलपन से मुक्त होने पड़े और तब हम एक हैं । एक होना हमारा स्वभाव है । अनेक हम किये गये हैं तरकीब से । तरकीब से हम सावधान हो जायें, हमें एक होने से कोई भी नहीं रोक सकता ।

एक-दो छोटे प्रश्न और । एक मित्र ने पूछा है, वह भी एक जीवित सवाल है, हिन्दुस्तान में साधु-संन्यासी, सज्जन जिनको हम कहें, वे सब आधुनिकता के बड़े विपरीत हैं । वे कहते हैं, आधुनिक हुए तो अपना सत्व खो जायेगा, भारतीय न रह जाओगे । अतीत की सम्पदा है, वह खो जायेगी । वे कहते हैं कि आधुनिक होने से बचना, अन्यथा अपनी संस्कृति खो जायेगी ।

असल में जो संस्कृति जिन्दा होती है, वह आधुनिक होकर ही बचती है । जैसे मैंने कल भी सांसें ली थीं और अगर मैं यह सोचूं कि अगर मैं आज भी सांस लूंगा तो कल वाला आदमी मर जायेगा, तो फिर मैं मरूंगा । मुझे आज सांस लेनी पड़ेगी तो ही मैं जिन्दा रह सकता हूं । आधुनिकता का मतलब है कि आज वर्तमान में सांस लेने की क्षमता । और जिन्दगी रोज बदलती जाती है, जिन्दगी को रोज आधुनिक होना पड़ता है । उसे रोज नये कदम उठाने पड़ते हैं, उसे नये रास्तों पर चलना पड़ता है, नयी बातें सीखनी पड़ती हैं, नये वातावरण, नये माहौल से समायोजित होना पड़ता है । भारत एक अगर कसम लेकर बैठ जाये कि हम तो सब पक्के वही रहेंगे, जो हम पीछे थे, हम तो अपनी चोटी बढ़ाकर रखेंगे, नहीं तो भारतीय नहीं रह जायेंगे, हम तो जनेऊ पहनेंगे नहीं तो भारतीय नहीं रह जायेंगे...... ।

और यह छोटे-मोटे भारतीय का मामला नहीं है, जिनको हम बड़े-बड़े भारतीय कहते हैं, उनकी बुद्धि भी उतनी ही छोटी होती है । उसमें कोई बड़ा फर्क नहीं होता है । मदनमोहन मालवीय जैसा आदमी अंग्रेज से हाथ मिलाने में डरते थे कि कहीं अपवित्र न हो जायें । जो कौम इतनी घबरायी हुई हो जायेगी कि किसी से हाथ न मिला सके, उस कौम का कोई भविष्य नहीं हो सकता । इंगलैण्ड

गये थे गोलमेज कान्फ्रेंस में, तो गंगाजल साथ में ले गये थे पीने के लिए। टेम्स नदी का जल जो है, वह भगवान् का बनाया हुआ नहीं है। वह गंगा ही का जल भगवान् ने बनाया हुआ है। वह गंगा का जल उनको जाता रहा पीने के लिए। क्या पागलपन है? ऐसी कौम जिन्दा नहीं रह सकती है। इधर शंकर जी की पिण्डी छिपाये हुए थे पगड़ी में भीतर, जिससे शंकर जी रक्षा करते रहें। कोई अपवित्र छू न जाये। ऐसे आदमी के साथ शंकर जी भी अपवित्र हो जायेंगे। जो ऐसा अपवित्रता से डरा हुआ है, वह जिन्दा कैसे रहेगा? यह आदमी जिन्दा रहने की कोशिश नहीं कर रहा है, पूरी कौम हमारी ऐसी हो गयी है तो हम ऐसे डर गये और हम अपनी प्राचीनता को किसी भी तरह घसीटने के लिए कुछ भी दलीलें दिये चले जाते हैं।

मैंने एक किताब पढ़ी। एक सज्जन ने वह किताब लिखी है। हिन्दू धर्म वैज्ञानिक है, उसने सिद्ध किया है। उसने बड़े मजे की बात लिखी है। इतने मजे की बातें कि पश्चिम के वैज्ञानिकों को पता चल जाये तो उनको भी बड़ा लाभ हो। उसने लिखा है कि हमने चोटी क्यों बढ़ायी, उसका वैज्ञानिक कारण है। जैसे कि मकानों के ऊपर लोहे के डंडे लगाते हैं बिजली गिराने को, जिससे बिजली का असर न हो। हम बड़े वैज्ञानिक थे। हमने चोटी बांध कर खड़ी कर ली थी जिससे बिजली पार हो जाये। हमारी चोटी की वैज्ञानिकता सिद्ध कर रहे हैं। हम सारी दुनिया में अपने को हंसी योग्य सिद्ध कर लेने में लगे हैं। हम पागलपन में लगे हैं। इस भांति हम जिन्दा न रह सकेंगे। उस किताब में लिखा है, खड़ाऊं हिन्दू क्यों पहनते हैं। नस दब जाती है पैर की, उस नस के दबने के कारण आदमी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है। वैसी नस को पैर से काट ही डालो तो बड़ा ही अच्छा हो जाये। उसको दबा ही दो। अब तो दबाने के बड़े उपाय हैं, खड़ाऊं पहनने की जरूरत नहीं है। नस को दबा ही दो, नसबन्दी बहुत अच्छी होगी। यह इस तरह की नसबन्दी बहुत अच्छी हो जायेगी, बर्थ-कन्ट्रोल के लिए बड़े फायदे की होगी। हम अपने व्यर्थता को भी आधुनिक ढांचा पहनाने में उत्सुक हैं।

नहीं, जो व्यर्थ है उसे छोड़ना पड़ेगा और अगर उसे हम नहीं छोड़ें तो उसके साथ हम मूढ़ बनते हैं। हम सारे जगत् में हंसने योग्य हुए चले जा रहे हैं। हम व्यर्थ ही अपने आप हंसने योग्य बनने की कोशिश में लगे हुए हैं। हमें आधुनिक होना पड़ेगा। आधुनिक होना जीवन का धर्म है। आधुनिक होने का मतलब है कि जो आज है, जिन्दगी, हमें उसके योग्य होकर खड़े होना पड़ेगा। इसका यह मतलब नहीं है, आधुनिक होने का मतलब पाश्चात्यीकरण नहीं। मॉडर्नाइजेशन का मतलब वेस्टर्नाइजेशन नहीं है। पाश्चात्यीकरण की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन आधुनिकीकरण तो करना ही पड़ेगा। जिन्दगी को सब तरफ से

नया करना पड़ेगा। नहीं करेंगे तो हम मरेंगे। किसी और को उससे नुकसान नहीं होगा।

एक मित्र ने पूछा है कि सभी साधु-संत फिल्मों के विरोध में हैं। आपका क्या कहना है?

यह अन्तिम प्रश्न। इस सम्बन्ध में बात कर लेनी उचित है क्योंकि इधर भारत में ऐसा समझा जा रहा है कि फिल्मों के कारण लोग बिगड़े जा रहे हैं। यह उल्टी बात है। बिगड़े हुए लोगों की वजह से अच्छी फिल्में बनानी मुश्किल हो रही हैं। फिल्मों की वजह से कोई नहीं बिगड़ रहा है। कोई फिल्म किसी को बिगाड़ नहीं सकती, लेकिन लोग अगर बिगड़े हों तो अच्छी फिल्म को चलानी मुश्किल है, कठिन है। और फिल्म एक अर्थ में बहुत बड़ा काम कर रही है कि जो काम आप करना चाहते हैं, और नहीं कर पाते, वह फिल्म में देख कर राहत मिलती है। और शान्ति से घर लौट आते हैं। अगर फिल्में न हों तो आप यह काम सड़कों पर खड़े होकर करेंगे और उपद्रव बढ़ेगा, कम नहीं होगा। इसके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण हैं।

अगर फिल्म में एक आदमी डिटेक्टिव फिल्म देखता है और हत्या की घटना देखता है और एक बार को दौड़ते देखता है और उसके पीछे पुलिस को लगे देखता है तो जब तेज गति हो जाती है तो आपने देखा है कि फिल्म के सारे लोगों की रीढ़ सीधी हो जाती है, फिर कोई कुर्सी से टिका नहीं रह जाता। उनके भीतर भी कुछ हो रहा है, वे भी तैयार हो रहे हैं, जैसे कार की स्टेयरिंग पर वे खुद ही बैठे हों। उनके हाथ-पैर तैयार हो गये हैं, सांस बन्द हो गयी है, पलकों ने झपकना बन्द कर दिया है। एक क्षण चूक जायें तो चूक जायें। इतने फिल्म में उनके भीतर जो उत्तेजना की आकांक्षा है, वह तृप्त हो जाती है। अगर फिल्में अलग कर दी जायें तो यह उत्तेजना हमें और रास्तों से लानी पड़ेगी। विनोबा जी, आचार्य तुलसी और इस तरह के लोग फिल्मों के बड़े विरोधी हैं। वे कहते हैं फिल्में अश्लील हैं और अश्लील फिल्में नहीं होनी चाहिए। और मैं आप से कहता हूं अश्लील फिल्मों के कारण आदमी कम अश्लील है। अगर फिल्में अश्लील न हों तो आदमी को अश्लील होना पड़ेगा।

और कौन कहता है कि फिल्मों की वजह से अश्लीलता है? कालिदास ने तो फिल्म नहीं देखे थे, जहां तक मेरा ख्याल है। लेकिन अगर उनके नाटक पढ़ें तो आज की कोई फिल्म उतनी अश्लील नहीं है जितना कालिदास रहे हैं। कालिदास जंगल में भी जायें तो पत्तों में उन्हें फल नहीं दिखायी पड़ते हैं, स्त्रियों के स्तन ही दिखायी पड़ते हैं। तो यह दिमाग फिल्म से लिया गया था? कालिदास का दिमाग फिल्म ने खराब किया था? कि खुजराहो के मन्दिर को कोई फिल्म एक्टरों ने खोदा है? खुजराहो के मन्दिरों पर मैथुन के चित्र किसने खोदे हैं? यह तो आज के नहीं हैं। कामसूत्र किसने लिखा है? यह तो आज का नहीं

है और भर्तृहरि के श्रृंगारशतक किसने रचे हैं ? यह तो इसमें फिल्म प्रोड्यूसर का कोई भी हाथ सिद्ध नहीं किया जा सकता है। आदमी जो चाहता रहा है हमेशा से वह अलग-अलग माध्यम में उसे देना पड़ा है। आदमी बदले तो बदलाहट हो सकती है, माध्यम बदलने से कुछ भी नहीं हो सकता। अब वे कहते हैं कि नग्न तस्वीरें न हों, लेकिन आदमी नग्न तस्वीरें देखना चाहता है।

मैं दिल्ली में था। साधुओं ने एक जलसा किया था अश्लील पोस्टरों के खिलाफ। भूल से वे मुझे भी बुला ले गये। कई लोग भूल से मुझे बुला लेते हैं तब पीछे बहुत पछताते हैं। उन्होंने समझा, अश्लील पोस्टर के खिलाफ कौन न बोलेगा ? तो मैं बड़ा हैरान हुआ। मैंने उन साधुओं से कहा कि पहली तो बात यह है कि आप साधु हो, आप अश्लील पोस्टर देखने गये कहां, आप किसलिए गये ? तुम्हें किसी ने बुलाया था अश्लील पोस्टर देखने को ? तुम किसलिए अश्लील पोस्टर देखने जाते हो, तुम्हें किसलिए परेशानी है ? उन्होंने कहा कि हम तो इसलिए देखने जाते हैं कि लोग उनको देखकर बिगड़ न जायें। कुछ लोग ऐसे हैं, अगर आप सिनेमा में पकड़ जायें और विद्यार्थी हैं तो आपका शिक्षक आपको समझायेगा और अगर शिक्षक पकड़ा जाये तो वह कहेगा कि हम जरा देखने आये थे कि कौन-कौन विद्यार्थी आये थे। बड़े मजे की बात है, ये साधु आदमी पोस्टर देखने जाते हैं बेचारे कृपा करके कि दूसरे लोग न बिगड़ जायें और सच बात यह है कि साधु जितने नग्न तस्वीरें देखना चाहते हैं उतना कोई भी नहीं देखना चाहता क्योंकि साधु ने जिन्दगी से अपने को तोड़ लिया है। उसकी आकांक्षाएं भीतर दबी रह गयी हैं।

एक संन्यासी मेरे पास मेहमान थे तो मैंने यह घटना वहां कही। वे संन्यासी मेरे पास रहे दो-चार दिन, निकट से बातें कीं तो फिर वे सच्चा बोल सके। साधु से सच्ची बातें निकलवानी बहुत मुश्किल है क्योंकि उसे झूठी जिन्दगी जीनी पड़ती है। वह सच्ची बात नहीं कह सकते। मेरे पास रहे, उनको लगा कि नहीं, सच्ची बात कही जा सकती है। फिर उन्होंने मुझसे कहा कि मैं नौ साल का था तब मैं साधु हो गया। मेरे पिता दीक्षित हुए और घर में कोई न था, मां मर गयी थी इसलिए पिता दीक्षित हुए होंगे। स्त्रियां जिन्दा रहें तो भी साधुता की प्रेरणा देती हैं और मर जायें तो भी। जिन्दा स्त्रियों से भी कई लोग भागकर साधु होते हैं और कुछ लोग मरी हुई स्त्रियों की वजह से साधु होते हैं। पिता साधु हो गये, मां मर गयी। अब बेटा कहां जाये ? तो उन्होंने उसे भी दीक्षा दे दी। नौ साल के बच्चे को दीक्षा दे दी। अब उन संन्यासी की उम्र ब्यालीस वर्ष है लेकिन उनकी बुद्धि नौ वर्ष पर रुक गयी है, उससे आगे नहीं बढ़ी। बढ़ भी नहीं सकती क्योंकि जिन्दगी से अलग खड़े हो गये। तो उन्होंने मुझसे कहा कि मेरे मन में सदा होता है कि टाकीज से बाहर इतनी भीड़ रहती है, भीतर होता क्या है ?

कभी मैं भीतर नहीं गया और आपसे मैं दिल की बात कह सकता हूं। ऐसा नहीं हो सकता है, कोई तरकीब से मैं टाकीज़ के भीतर जाकर एक दफा देख लूं कि वहां हो क्या रहा है। इतनी भीड़ लगी रहती है। मन्दिर के सामने तो क्यू लगती नहीं, कोई आता ही नहीं। मगर वहां पैसा दे देकर लोग खड़े हैं, मुश्किल से टिकट मिलती है, फिर भी भीतर जाते हैं। वहां भीतर हो क्या रहा है ? हमें समझ में नहीं आयेगी उनकी तकलीफ, क्योंकि हमने भीतर जाकर देखा है। उनकी तकलीफ वही समझ सकेंगे। मैंने कहा, मैं भिजवा देता हूं। पड़ोस से एक मित्र को बुलवाया। उन्हीं की जाति के वे संन्यासी थे। उन मित्र से मैंने कहा, मुझे तो तीन घंटा खराब करने का समय नहीं। आप इन्हें किसी फिल्म में ले जायें। उन्होंने कहा माफ करिये, अगर किसी ने मुझे देख लिया कि साधु महाराज को फिल्म दिखला रहा हूं तो मैं तो परेशानी में पड़ जाऊंगा। उन्होंने कहा कि मैं कैंटूनमेंट एरिया में ले जा सकता हूं, वहां मेरी जाति का कोई भी नहीं है। मगर वहां अंग्रेजी फिलम चलती है। साधु अंग्रेजी नहीं जानते। पर उन साधु ने कहा, कोई हर्जा नहीं, देख तो लेंगे। समझेंगे नहीं तो कोई बात नहीं। वह बेचारे जब रात अंग्रेजी फिल्म देखकर लौटे तो उनके मन से जैसे बोझ उतर गया। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं हल्का हो गया। मेरे मन में मोक्ष जाने की इतनी आकांक्षा न थी जितनी टाकीज के भीतर जाने की थी। और अगर मैं मर जाता इसी आकांक्षा को लेकर तो पता नहीं टाकीज में डोरकीपर की जगह पैदा होता अगले जन्म में, या क्या होता !

मैंने उन संन्यासी से कहा, आप क्यों परेशान हैं अश्लील पोस्टरों से ? और ध्यान रहे, आदमी नग्न स्त्री को देखना चाहता है। क्यों ? बजाय पोस्टर को मिटाने के यह सोचना जरूरी है कि आदमी नग्न स्त्री में इतना उत्सुक क्यों है ? उत्सुकता का कारण क्या है ? उत्सुकता का कारण है, और कारण साधु-संतों ने ही दिया है। कारण यह है कि हम स्त्री पुरुष को इतने दूरी पर खड़ा करते हैं कि करीब-करीब वे एक जाति के प्राणी नहीं, दो जाति के अलग जानवर हो जाते हैं। अलग-अलग खड़ा करके इतने फासले को बड़ा करते हैं कि एक दूसरे को जानने की उत्सुकता शेष रह जाती है। और फासले इतने ज्यादा होते हैं कि जानने का मौका ही नहीं मिलता है एक दूसरे को कि जान पायें, परिचित हो पायें। अगर लड़के और लड़कियों को क़रीब और निकट खड़ा किया जा सके, वे एक दूसरे के साथ खेलते हों, दौड़ते हों, तैरते हों तो अश्लील पोस्टर धीरे-धीरे विदा हो जायेंगे।

अभी मैंने एक घटना पढ़ी। सिडनी में एक नग्न अभिनेत्री को लाया गया प्रदर्शन के लिए। बीस लाख की आबादी का गांव है। बहुत प्रचार किया लेकिन दो आदमी टाकीज में देखने गये, सिर्फ दो आदमी। अहमदाबाद में कितने आदमी जाते, सोच सकते हैं ? अगर दो आदमी भी पीछे रह जाते तो चमत्कार है। सभी

लोग जाते । जाना ही पड़ता । उसमें कोई उपाय न था । वहां विकल्प नहीं था । फिर इतना फर्क पड़ता कि कुछ लोग सामने के दरवाजे से जाते, कुछ सज्जन लोग पीछे के दरवाजे से जाते । यह फर्क पड़ सकता था, लेकिन जाना तो पड़ता । दो आदमी देखने आये सिडनी में, एक मिरेकल है, चमत्कार है । एक नग्न सुन्दरी का नृत्य हो रहा हो और पूरी टाकीज खाली हो और दो आदमी देखें, यह बात क्या है ? सिडनी में क्या बात हो गयी है ? स्त्री और पुरुष इतने निकट खड़े हो गये हैं कि यह बात बेहूदी है । अगर हम यह घोषणा करें कि एक आदमी का नंगा नाच दिखाया जायेगा तो आप देखने जायेंगे ? नहीं देखने जायेंगे, क्योंकि नंगे आप तो देख चुके हैं और कोई कारण नहीं है ।

लेकिन एक जमाना ऐसा था, बर्टेन्ड रसल ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि एक जमाना ऐसा था कि इंगलैण्ड में विक्टोरियन एज में स्त्रियां इतना बड़ा घाघरा पहनती थीं कि उनका पैर का अंगूठा भी नहीं दिखायी पड़ता था । घाघरा चारों तरफ जमीन को छूता था । तो बर्टेन्ड रसल ने लिखा है कि उस जमाने में बड़ी अजीब बात थी कि अगर किसी स्त्री का पैर का अंगूठा दिख जाये तो बड़ी रस-विमुग्धता पैदा हो जाती थी । चित्त रसमग्न हो जाता था, काव्य का झरना बहने लगता था, एकदम कविता निकलने लगती । पैर का अंगूठा देखकर कविता निकलती थी ! पागल हो गये हैं । अब तो पैर के अंगूठे सब तरफ दिखायी पड़ रहे हैं कोई कविता नहीं निकलती । सिडनी में नंगी स्त्री को देखकर भी कोई कविता नहीं निकली । हिन्दुस्तान में अभी भी निकलती है ।

अश्लील फिल्म बनानी पड़ती है, अश्लील पोस्टर लगाना पड़ता है । हमारी मांग है । और अगर अश्लील पोस्टर न लगेगा और नंगी फिल्म न होगी तो खतरा है । हम सड़क पर स्त्री को वस्त्र पहने चलने देंगे या न चलने देंगे । हम उसके वस्त्र छीन सकते हैं । स्त्रियां सड़क पर निर्वस्त्र नहीं की जा रही हैं क्योंकि निर्वस्त्र स्त्रियों को देखने की टाकीज में व्यवस्था है, नहीं तो खतरा पूरा है । यह जो हमारे मन की मांग है उसको पूरा करेंगे । और हम कर भी लेते हैं । मौका मिलता है तो फिल्म पर हम निर्भर रहते भी नहीं हैं । वह तो मौका नहीं मिलता है तब तक हम फिल्म पर निर्भर रहते हैं । मौका मिल जाये, हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो जाये, फिर हम फिल्म की फिक्र करते हैं ? फिर जो स्त्री मिल जाये, नंगी कर लेते हैं । हम कर लेंगे । वह हमारे भीतर है । साधु-संन्यासी उससे छुटकारा नहीं दिला सकते क्योंकि वे ही उस वृत्ति को जन्माने में मूलभूत कारण हैं । स्त्री और पुरुष को निकट लाना पड़ेगा, सरलता से निकट लाना पड़ेगा । वे जितने निकट आ जायेंगे उतने ही उनके फासले से पैदा हुई बीमारियां दूर हो जायेंगी ।

भारत में जलता हुआ प्रश्न वह भी है । विशेषकर युवकों के सामने बहुत बड़ा सवाल है । वे बड़ी कठिनाई में पड़ गये हैं । पुरानी सारी व्यवस्था उनकी

निन्दा करती है और उनके चित्त और उनकी शिक्षा उन्हें मुक्त करने की व्यवस्था करती है । वे बहुत कठिनाई में हैं । कल उस सम्बन्ध में मैं बात करना चाहूंगा कि युवकों की पीढ़ी, उनकी भूखी पीढ़ी, उत्तप्त पीढ़ी, विद्रोही पीढ़ी, वह एक सवाल है । उस सम्बन्ध में भी सवाल पूछे गये हैं ।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना उससे अनुग्रहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं । मेरे प्रणाम स्वीकार करें ।

अहमदाबाद, २५ दिसम्बर १९६९

४–पूंजीवाद की अनिवार्यता

मेरे प्रिय आत्मन,

एक मित्र ने पूछा है कि क्या आप बता सकते हैं कि हमारे देश की वर्तमान परिस्थिति के लिए कौन जवाबदार है ?

सदा से हम यही सोचते रहे हैं कि कौन जवाबदार है। इससे यह भ्रांति पैदा होती है कि कोई और हमारे सिवाय जवाबदार होगा। इस देश की परिस्थिति के लिए हम जवाबदार हैं। यह बहुत क्लीव और नपुंसक विचार है कि सदा हम किसी और को जवाबदार ठहराते हैं। जब तक हम दूसरों को जवाबदार ठहराते रहेंगे तब तक इस देश की परिस्थिति बदलेगी नहीं क्योंकि दूसरे को जवाबदार ठहरा कर हम मुक्त हो जाते हैं और बात वहीं की वहीं ठहर जाती है।

हम ही जवाबदार हैं। यदि हम गुलाम थे तो हम कहते हैं, किसी ने हमें गुलाम बना लिया, वह जवाबदार है। और हम यह कभी नहीं सोचते कि हम गुलाम बन गये इसलिए हम जवाबदार हैं। इस दुनिया में कोई भी किसी को गुलाम नहीं बना सकता, अगर गुलाम स्वयं गुलाम बनने को तैयार नहीं है तो। असम्भव है। मैं मर सकता हूं, अगर मुझे गुलाम नहीं बनना है। मैं कम से कम मर तो सकता ही हूं। लेकिन मैं जिन्दगी को पसन्द कर रहा हूं, चाहे वह गुलामी की जिन्दगी हो, तब फिर मुझे गुलाम बनाया जा सकता है। इस जगत में कोई

भी आदमी उसके सहयोग के बिना गुलाम नहीं बनाया जा सकता। थोड़े से अंग्रेज इस मुल्क को दो सौ साल तक गुलाम बनाये रहे और फिर भी हम कहते हैं कि जवाबदार वह हैं, क्योंकि उन्होंने हमको गुलाम बनाया। और हम चालीस करोड़ लोग जवाबदार नहीं थे, जो गुलाम बने रहे ?

इस भाषा में सोचना ही गुलाम मस्तिष्क का लक्षण है। वह गुलाम भी खुद नहीं बनता और गुलाम भी उसे कोई और ही बनाता है। फिर स्वतन्त्र भी वह खुद नहीं हो सकता। हम हुए भी नहीं हैं स्वतन्त्र, कोई और ही हमें स्वतन्त्र भी कर गया। पूछना चाहिए हमारी स्वतन्त्रता के लिए कौन जिम्मेवार है, हम ? हमें शक है क्योंकि हम गुलामी के लिए ही जिम्मेवार नहीं हैं, फिर स्वतन्त्रता के लिए कैसे जिम्मेवार हो सकते हैं ? जब गुलामी दूसरे ने थोपी थी तब आजादी भी दूसरे ने थोप दी है, ऐसा मालूम पड़ता है। हम आजादी के नीचे भी मुक्त नहीं हुए हैं, दबे-दबे हो गये हैं।

ऐसा लगता है कि आजादी का भी पत्थर छाती पर चढ़ गया है। वह भी एक मुसीबत मालूम होती है। असल में सैकड़ों वर्षों से हमने जिम्मेवारी दूसरों पर डालना सीख ली है। या तो भगवान् पर छोड़ देंगे, भगवान् बहुत ही दयनीय है। उस पर कोई भी जवाबदारी डाली जा सकती है। वह बेचारा बहुत परेशान होगा, जितनी जवाबदारियां हमने उस पर डालीं, अगर उसमें थोड़ी भी बुद्धि होगी तो जब तक उसने आत्महत्या कर ली होगी। सारी जवाबदारियां भगवान् पर छोड़ देने में हम बड़े कुशल हैं। बीमारी हो, अकाल हो, महामारी हो, गरीबी हो, दीनता हो, दासता हो, हम भगवान् पर छोड़ते हैं। भाग्य पर थोप देंगे, कर्मों के फलों पर थोप देंगे, लेकिन एक को हम हमेशा बचा जायेंगे—अपने को। हमारी कोई जिम्मेवारी नहीं है। जीते हम हैं और जिम्मेवारी सब टूट सकती है।

नहीं, इस भाषा में प्रश्न ही उठाना उचित नहीं है कि हमारी परिस्थिति के लिए कौन जिम्मेवार है ? यह प्रश्न ही गलत इंगित देता है कि कोई जिम्मेवार होगा। हमारी परिस्थिति में तो हमीं जिम्मेवार होंगे, कौन जिम्मेवार होगा ? अगर देश में गरीबी है तो मैं जिम्मेवार हूं, आप जिम्मेवार हैं। और अगर देश में बीमारी है तो मैं जिम्मेवार हूं, आप जिम्मेवार हैं। जिम्मेवारी दूसरों पर टाल देना बड़ा आसान है, सुलभ है, कन्वीनिएंट है, सुविधापूर्ण है। झंझट मिट जाती है, जिम्मेवारी किसी और की हो जाती है। और हमें जैसे जीना, हम जीते चले जाते हैं।

रास्ते पर एक आदमी भीख मांग रहा है, हम पूछते हैं तुम्हें भीख मंगवाने के लिए कौन जिम्मेवार है ? फिर किसी एक आदमी का नाम ले लेते हैं, कोई बिड़ला, कोई और करोड़पति, वह जिम्मेवार है। हम अपने रास्ते पर चले गये। बिड़ला के बिड़ला होने में भी हम जिम्मेवार हैं सड़क पर हम जिम्मेवार नहीं हैं।

भीख मांगने वाले आदमी के भिखमंगेपन में भी हम जिम्मेवार हैं। और जब तक हम सीधी जिम्मेवारी अपने ऊपर न लेंगे तब तक भारत के पास अपना व्यक्तित्व नहीं हो सकता। हम अपना व्यक्तित्व उपलब्ध तभी कर सकेंगे जब......ध्यान रहे, व्यक्तित्व आता है रिसपोंसिबिलिटी से। दायित्व की स्वीकृति से व्यक्तित्व पैदा होता है। जो व्यक्ति जितना दायित्व स्वीकार कर लेता है उतने बड़े व्यक्तित्व का उसके भीतर जन्म होता है। जो सारी जिम्मेदारियां दूसरों पर छोड़ देता है उसकी आत्मा मरती चली जाती है।

स्वतन्त्रता सबसे बड़ा दायित्व है और इसीलिए स्वतन्त्रता बहुत घबराने वाली बात है। इसीलिए बीस साल से हम बड़े बेचैन हैं। अंग्रेज थे तो हमें एक सुविधा थी। कुछ भी मुसीबत हो तो हम अंग्रेजों पर टाल देते थे। गोली चले जलियां वाले बाग में तो वह अंग्रेज चला रहा है। और बीस साल से गोली चल रही है, वह कौन चला रहा है? अंग्रेजों ने इतनी गोली कभी नहीं चलायी थी जो हमने बीस साल में चलायी है। अंग्रेज को इस मुल्क को गुलाम रखने के लिए इतनी गोली न चलानी पड़ी जितनी हमें इस मुल्क को स्वतन्त्र रखने के लिए चलानी पड़ रही है। आश्चर्यजनक है। लेकिन अब हम किसको जिम्मेवार ठहरायें, इसलिए बड़ी बेचैनी होती है। अब किसको जिम्मेवार ठहरायें? अंग्रेज था तो मुल्क गरीब था क्योंकि अंग्रेज सोना लूटकर ले जा रहा था, जहाज भर-भर के सोना यूरोप ले जा रहे थे, तो हम गरीब थे। अब बीस साल से हमको कौन गरीब बनाये हुए हैं? अब बड़ी मुश्किल है, बड़ी बेचैनी है। अब हम किस पर जिम्मेवारी डालें? बड़ी सुविधा थी गुलामी में कि सदा जिम्मेवारी किसी और की होती है अगर हम कमजोर थे, अगर वैज्ञानिक न थे, अगर स्वस्थ न थे तो कोई जिम्मेवार था सदा। जिम्मेवारी के लिए खूंटी थी जिस पर हम टांग देते थे और निश्चिन्त सो जाते थे।

आजाद हो जाने से बड़ी मुसीबत हो गयी है। सब जिम्मेवारी हमारी है। सच तो यह है, सदा ही सब जिम्मेवारी हमारी थी। एक बार इस मुल्क को भी ठीक से समझ लेना होगा कि जो भी चारों तरफ हो रहा है, हम सब उसमें साथी, सहभागी हैं। यह मुल्क कुरूप है तो इसकी कुरूपता में मैं भागीदार हूं। अगर मुल्क में दंगा होता है तो उस दंगे में मैं भागीदार हूं। अगर अहमदाबाद में है तो, किसी की छाती में छुरा भोंकता है तो मेरे सफेद चादर पर भी उसका खून का दाग है क्योंकि मैं भी इस मुल्क में हूं। और मैं जैसा मुल्क बना रहा हूं उस मुल्क में कोई किसी की छाती में छुरा भोंकना सम्भव बना पाता है। उसमें मैं भागीदार हूं, उसमें मैं बच नहीं सकता। और अगर मैं बचने की कोशिश करूंगा तो फिर ठीक है, बहुत आसान है। कुछ लोग पकड़े जा सकते हैं कि ये गुण्डे हैं, तो उनको सजा दे देंगे। बात खत्म हो जाती है, लेकिन मुल्क फिर वही रहेगा, हम फिर वही रहेंगे,

फिर किसी दूसरे गांव में छुरा चलेगा, क्योंकि हम परिस्थितियां मौजूद करते रहेंगे जिनमें छुरे भोंके जाते हैं।

नहीं, इस देश को सामूहिक दायित्व की धारणा को सीखना पड़ेगा। हम सब जिम्मेवार हैं। अमीर ही जिम्मेवार नहीं है, गरीब को गरीब बनाने में। गरीब भी उतना ही जिम्मेवार है। मुझसे लोग पूछते हैं, स्त्रियां मुझसे आकर पूछती हैं कि हमारी गुलामी के लिए कौन जिम्मेवार है? पुरुष जिम्मेवार हैं, उनका ख्याल है। और स्त्रियां जिम्मेवार नहीं हैं? आधी स्त्रियां हैं पृथ्वी पर, आधी से थोड़ी ज्यादा ही होती हैं क्योंकि पुरुष तो कुछ युद्धों में मर जाते हैं, कहीं और मर जाते हैं, मरने की कई तरकीबें खोज लेते हैं। स्त्रियां थोड़ी ज्यादा ही बढ़ जाती हैं। ऐसे भी लड़कियां पुरुष से बचने में ज्यादा शक्तिशाली हैं, उनका रेसिस्टेंस ज्यादा है। इसलिए प्रकृति भी एक सौ सोलह लड़के पैदा करती है और सौ लड़कियां पैदा करती है। लेकिन शादी की उम्र होते-होते तक सोलह लड़के मर जाते हैं। सौ रह जाते हैं और लड़कियां सौ की सौ रह जाती हैं। लड़के की ताकत कम है जिन्दगी से लड़ने की, हालांकि ख्याल है पुरुष को कि हम बड़े ताकतवर हैं, लेकिन रेसिस्टेंस कम है। अगर बीमारी आये तो पुरुष जल्दी फंस जायेगा बीमारी के चक्कर में, स्त्री देर में फंसेगी। असल में स्त्री को प्रकृति ने मां बनने के लिए खड़ा किया है तो बहुत झेलने की क्षमता होनी चाहिए।

स्त्रियां आधे से ज्यादा हैं, और गुलामी के लिए पुरुष जिम्मेवार है और वे खुद जिम्मेवार नहीं हैं? तो अगर स्वतन्त्रता पुरुष उनको देगा तो वे स्वतन्त्र हो जायेंगी। ध्यान रहे, दी हुई स्वतन्त्रता दो कौड़ी की है, क्योंकि दी गयी स्वतन्त्रता कभी भी वापस ली जा सकती है। आज भी दुनिया में स्त्रियों को मुक्त करने के जो आन्दोलन चलते हैं वे पुरुष चलाते हैं। उसकी बात भी पुरुषों को करनी पड़ती है। अजीब लड़ाई है, पुरुषों को पुरुषों से ही लड़ना पड़ता है। स्त्रियां देखती हैं कि पुरुष स्वतन्त्र कर दें उसे। लेकिन दी गयी स्वतन्त्रता कितनी कीमत रखती है? ली गयी स्वतन्त्रता का ही कोई मूल्य होता है। जो हम लेते हैं संघर्ष से, उससे शक्ति आती है। लेकिन वह तो हम तभी लेंगे जब जिम्मेवार हम अपने को समझें। अगर दुनिया की स्त्रियां समझ लें की हम जिम्मेवार हैं गुलामी के लिए तो उन्हें कोई गुलाम नहीं रख सकता है। अगर हम अपने दायित्व को समझ लें तो हमारा परिवर्तन अभी शुरू हो जाता है। तो वह जो मित्र मुझसे पूछते हैं, उनसे कहना चाहता हूं कि हम जिम्मेवार हैं, हम जवाबदार हैं, हम रिसपोंसिबिल हैं—हम इकट्ठे; किसी एक का इशारा नहीं किया जा सकता।

जिन्दगी सामूहिक है। जिन्दगी सहजीवन है। हम साथ इकट्ठे खड़े हैं। दुख में, पीड़ा में, सुख में, गुलामी में, आनन्द में, हम सब सहभागी हैं। इसलिए जिम्मेवारी कहीं और खोजने अगर हम गये तो वह जिम्मेवारी से बचने का रास्ता

है बचने से बदलाहट नहीं होगी। हमें स्वीकार करना ही होगा। हम ही जिम्मेवार हैं। और यह स्वीकृति क्रांति शुरू कर देती है, क्योंकि जब मुझे लगता है कि मैं जिम्मेवार हूं तो फिर मेरे हाथ उस सहयोग से पीछे हटने लगते हैं, जो देश में बुराई लाता है। जब मुझे लगता है कि मैं जिम्मेवार हूं, तब मैं पीछे हटने लगता हूं, कम से कम अपने सहयोग को तो अलग कर लूं। कम से कम मैं तो इस भांति जिऊं कि इस देश को बदलने के लिए कुछ छोटा-सा रास्ता बना सकूं। और अगर एक-एक आदमी जिम्मेवारी समझे तो यह देश बदल सकता है। यह अब तक नहीं बदला क्योंकि जिम्मेवारी सदा दूसरे की थी।

एक-दूसरे मित्र ने पूछा है कि इन्दिरा गांधी आदि नेता समाजवाद लाने में सफल नहीं हो सकेंगे, ऐसा आप क्यों कहते हैं?

कहने का कारण है। अगर किसी बच्चे को बूढ़ा बनाना हो तो भी जवानी से गुजारना जरूरी होगा। जिन्दगी स्टेजेज में चलती है जिन्दगी में छलागें नहीं हैं। बचपन से कोई आदमी छलांग लगाकर बूढ़ा नहीं हो सकता है, जवानी से गुजरना पड़ेगा। समाजवाद आसमान से नहीं उतरता है, समाजवाद पूंजीवाद का अन्तिम फल है। पूंजीवाद परिपक्व हो तो ही समाजवाद आ सकता है। और पूंजीवाद पका हुआ न हो तो समाजवाद नहीं आ सकता। और अगर लाने की कोशिश की गयी तो समाजवाद तो आयेगा ही नहीं, पूंजीवाद तक लाना मुश्किल हो जायेगा। और देश की स्थिति सामन्तवादी रह जायेगी, पूंजीवाद से भी पीछड़ी अवस्था रह जायेगी। आदमी पूंजीवाद से भी पीछे की अवस्था में है। हम पूंजीवाद की अवस्था में भी नहीं हैं। इसलिए मैं कहता हूं, अभी समाजवाद की बातें प्रीमीच्योर हैं, अप्रौढ़ है। समाजवाद का लक्ष्य ठीक है। समाजवाद लाना है यह भी ठीक है, लाना ही पड़ेगा, लाना ही चाहिए। लेकिन देश पूंजीवाद की प्रक्रिया से न गुजरे तो समाजवाद ऊपर से थोपा गया होगा। जैसे प्लास्टिक के फूल लगा दिये जायें। असली फूल के लिए जड़ें चाहिए, मिट्टी चाहिए, पौधा चाहिए। अगर कोई हमसे कहे कि प्लास्टिक के फूल में क्या हर्ज है? तो मैं नहीं कहता कि कोई हर्ज है, लेकिन प्लास्टिक का फूल ठीक समझा जाये तो फूल है ही नहीं।

हम समाजवाद को ऊपर से थोप सकते हैं जबकि मुल्क की आत्मा अभी पूंजीवादी भी नहीं हो पायी है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आप पूंजीवाद की भी बात करते हैं, समाजवाद की भी। आप बड़ी विरोधी बातें करते हैं।

वह मित्र को अन्दाज नहीं है, पूंजीवाद और समाजवाद में विरोध नहीं है। पूंजीवाद की ही विकसित अवस्था समाजवाद है। जवानी में, बुढ़ापे में विरोध दिखायी पड़ सकता है। बूढ़ा कह सकता है कि बड़ा दुख है कि अब मैं जवान न रहा। लेकिन उसकी जवानी ही उसको बुढ़ापे तक लायी है। बुढ़ापे और जवानी

में विरोध नहीं है। बुढ़ापा जवानी की ही विकसित अवस्था है। कच्चे फल में और पक्के फल में विरोध नहीं है। पका फल कच्चे फल की अवस्था है। बाकी दोनों में बुनियादी फर्क है। कच्चा फल कभी गिर नहीं सकता। पका फल वृक्ष से गिर जायेगा। लेकिन कच्चा फल ही पके फल के लिए रास्ता बनता है। यह ख्याल में मत लें कि पूंजीवाद और समाजवाद में विरोध है। पूंजीवाद और समाजवाद दुश्मन नहीं हैं। पूंजीवाद की ही प्रक्रिया का परिणाम समाजवाद है। असल में पूंजीवाद ही समाजवाद को उस स्थिति में लाता है, जहां समाजवाद सम्भव हो सके। और इसलिए समाजवाद जब आयेगा तो हमें पूंजीवाद को धन्यवाद ही देना पड़ेगा। उसके बिना कभी समाजवाद नहीं आ सकता है।

लेकिन हम जिन्दगी को सदा दो हिस्सों में तोड़कर देखने के आदी हैं। हम विरोध में ही सोचते हैं। हम सब चीजों को विरोध में तोड़ लेते हैं कि यह-यह विरोध है। लेकिन विरोध कहां है? अगर पूंजीवाद पूंजी पैदा करेगा तो ही पूंजी का वितरण हो सकता है। पूंजीवाद के पहले समाजवाद दुनिया में क्यों न आ सका? मार्क्स के पहले बुद्धिमान लोग पैदा न हुए थे? कोई बुद्ध में कम बुद्धिमानी थी कि महावीर में, कि कन्फ्यूशियस में, कि क्राइस्ट में? लेकिन किसी को समाजवाद का ख्याल न आया। तो उसका कारण था कि पूंजीवाद ही न आया हो तो समाजवाद का ख्याल पैदा भी नहीं हो सकता।

मार्क्स कोई कृष्ण, बुद्ध या महावीर से ज्यादा बुद्धिमान आदमी न था। लेकिन मार्क्स एक नयी स्थिति में था, जहां पूंजीवाद आना शुरू हो गया था। इसलिए मार्क्स सोच सकता था समाजवाद की बात। और मार्क्स के ख्याल में भी समाजवाद पूंजीवाद का विरोधी न था। वह पूंजीवाद की ही चरम सीमा थी जहां से पूंजीवाद के भीतर की शक्तियां बिखर कर समाजवाद को ले आयी हैं। मार्क्स ने कभी सोचा भी न था कि रूस में समाजवाद पहले आ जायेगा। रूस पूंजीवादी देश था। मार्क्स की भविष्यवाणी रूस के लिए न थी। मार्क्स की कल्पना में भी नहीं हो सकता था कि चीन में समाजवाद पहले आ जायेगा। चीन बहुत पिछड़ा हुआ मुल्क है। सामंतवादी मुल्क है। चीन में अभी पूंजीवादी नहीं था। और इसलिए चीन को जबर्दस्ती पूंजीवादी बनाने की जो चेष्टा चल रही है, जैसे बच्चे को बूढ़े बनाने की चेष्टा में जितनी तकलीफ उठानी पड़े, उतना खून गिराना पड़ रहा है, उतनी परेशानी हो रही है। रूस में भी वही हुआ।

अगर मार्क्स जिन्दा हो जाये तो बहुत हैरान होगा कि रूस में समाजवाद आया कैसे? क्योंकि रूस तो पूंजीवादी ही न था। रूस तो पूरा फ्यूडल था, वहां कभी पूंजी की कोई उन्नति न हुई थी, औद्योगीकरण न हुआ था। लेकिन रूस के क्रांतिकारियों ने जबर्दस्ती समाजवाद थोपने की कोशिश की। चालीस साल जबर्दस्ती समाजवाद थोपने के परिणाम में रूस को इतनी पीड़ा झेलनी पड़ी, जितनी पूंजीवाद—इतनी

पीड़ा—कभी भी किसी को नहीं दे सकता है; न कभी दी है । इतनी कंडेस वाय-
लेंस, इतनी सघन पीड़ा से रूस को गुजरना पड़ा । अगर हम उतनी ही पीड़ा से
गुजरने को तैयार हों तो इंदिरा जी समाजवाद ला सकती हैं । लेकिन उतनी पीड़ा
से गुजरने को भारत तैयार नहीं है । और न तैयार किया जाना चाहिए । और न
इंदिरा जी की समझ में है कि उतनी पीड़ा से गुजारना पड़ेगा, तब समाजवाद आ
सकता है ।

असल में अगर हमें पानी को भाप बनाना है तो सौ डिग्री तक गर्म होने देना
पड़ेगा । सौ डिग्री तक पानी गर्म हो जाये तो भाप बन सकता है । भाप पानी की
उल्टी नहीं है, सौ डिग्री के बाद की अवस्था है । भाप विरोधी नहीं है, सौ डिग्री के
बाद की अवस्था है । पूंजीवाद जब सौ डिग्री पर उबलता है तो समाजवाद आना
शुरू होता है । एक तो नैसर्गिक प्रक्रिया है कि पानी धीरे-धीरे गर्म होकर सौ डिग्री
पर पहुंचे, और एक व्यवस्था यह है कि सारे घर में आग लगाकर एकदम पानी को
गर्म कर लिया जाये । सारे घर में आग लगाकर भी पानी गर्म हो सकता है । लेकिन
उसमें पानी ही भाप नहीं बनेगा, घर के मेहमान भी सब, मित्र भी, सब रहने वाले
भी भाप बन जायेंगे ।

मैं चाहता हूं कि यह देश समाजवादी हो । कोई भी सहानुभूति, थोड़े भी प्रेम
से, थोड़ी भी करुणा से, थोड़ी भी समझ से भरा हुआ आदमी हो तो समाजवाद के
विरोध में नहीं हो सकता । सब बुद्धिमान आदमियों को साम्यवादी, समाजवादी,
बनना ही पड़ेगा । वह अनिवार्यता है । लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कहूं
कि आज समाजवाद थोपने की चेष्टा की जाये । हालांकि पूरा मुल्क का मन कहेगा
कि ठीक है । बहुत सुखद है । यह गरीब को आश्वासन लगता है ।

आजादी से भी गरीब को आश्वासन लगा था । हिन्दुस्तान के गरीब ने बड़े
सपने बांधे थे कि आजादी आने पर स्वर्ग आ जायेगा । लेकिन गरीब बहुत डिसइ-
लूजंड हुआ । जब आजादी आयी तो पता चला कि स्वर्ग वगैरह कुछ भी न आया ।
दो-चार दिन प्रतीक्षा की पन्द्रह अगस्त के बाद, कि आता होगा, थोड़ी देर लग सकती
है । हिन्दुस्तान में सभी चीजें समय के थोड़ी देर से आती हैं, लेट हो जाये गाड़ी
शायद स्वर्ग की । दो-चार दिन प्रतीक्षा की, लेकिन झोंपड़े वाले ने पाया कि झोंपड़ा
झोंपड़ा है । उसका भूखा बच्चा भूखा है । उससे कोई फर्क नहीं पड़ा । कितने सपने
आजादी के साथ जोड़ थे, ख्याल है आपको ? नयी पीढ़ी को कुछ ख्याल में नहीं
आता, पुरानी पीढ़ी ने कितने सपने देखे थे । आजादी आने से सब आ जायेगा ।
आजादी आने से कुछ भी नहीं आ जाता । आजादी आने से सिर्फ गुलामी मिटती
है । और आजादी आने से सवाल आये, हल नहीं आ गया । हल आ भी नहीं सकता ।

अभी सारा मुल्क इसे नये नशे से पीड़ित होगा कि समाजवाद आ जाये तो
सब आ जायेगा । वह समाजवाद की बातें बहुत मोहक लगेंगी, जैसे आजादी की

बातें बहुत मोहक लगी थीं । अगर हम अपने मुर्दा शरीरों को जिन्दा कर सकें,
भगत सिंह को, राजगुरू को, चन्द्रशेखर को अगर वापस कब्रों से उठाकर खड़ा कर
सकें और कहें कि तुम इस मुल्क के लिए फांसी पर चढ़े थे, यह आजादी आ गयी ।
तो भगत सिंह भगवान् से प्रार्थना करेगा कि बड़ी गलती हो गयी । इस मुल्क के
लिए हम मरे थे ? इस आजादी के लिए ? इसी आजादी के लिए हमने कुर्बानी
की थी ? भगतसिंह ने कौन से सपने देखे होंगे कारागृह में, जिनके लिए मरना
आसान हो गया ? बड़े सपने देखे होंगे । यही मुल्क है, जिसके लिए सौ वर्षों से
लोग मरे थे ? नहीं, वह सपने का मुल्क कभी नहीं आया । अब यह समाजवाद का
सपना नया सपना पैदा हो रहा है । असल में बीस साल में देश के नेताओं को ऐसा
अनुभव हुआ कि आजादी के आ जाने के बाद देश के पास कोई सपना नहीं रह
गया । तो समाजवाद का सपना ही एक सपना हो सकता है । समाजवाद के सपने
में मुल्क पीड़ित होगा । लेकिन मैं जानता हूं कि मुल्क की स्थितियां ऐसी नहीं हैं
कि समाजवाद आज फलित हो सके । देश को सम्पत्ति पैदा करनी बड़े, पूंजी पैदा
करनी पड़े । अगर देश सम्पत्ति और पूंजी पैदा न करे तो बांटने का सवाल नहीं
उठता । बंटेगा क्या ? सिर्फ गरीबी बंट जायेगी, हम और गरीब मालूम पड़ेंगे, और
कुछ भी नहीं हो सकता है ।

इसलिए मैं कहता हूं इंदिरा जी, या इंडीकेट या कोई इस मुल्क को अभी
समाजवादी नहीं बना सकते, लेकिन समाजवाद के नाम पर एक इलेक्शन और जीत
सकते हैं । इससे ज्यादा कुछ भी नहीं हो सकता है । एक इलेक्शन बहत्तर का वह
जीत जायेंगे, और उनके सामने बहत्तर से आगे कोई इरादे भी नहीं हैं । बहत्तर का
इलेक्शन ही जीत जायें तो बहुत है । बहुत जोर से बात करेंगे । अभी तो समाज-
वाद की बात बहुत जोर से चलेगी । इतने जोर से कि सारा मुल्क एकदम समाज-
वाद से ही चिन्तन करता हुआ मालूम पड़ेगा कि समाजवाद, समाजवाद, समाज-
वाद ! लेकिन समाजवाद की छलांग यह मुल्क नहीं लगा सकता ।

यह मुल्क अभी फ्यूडल सिस्टम के बाहर आ रहा है । फ्यूडल सिस्टम के,
सामन्तवादी व्यवस्था के अभी यह बाहर नहीं हो पाया है । पूंजीवादी नहीं हो
पाया । क्योंकि पूंजीवाद की प्रक्रिया की बड़ी हिस्सा है इण्डस्ट्रियल रेव्यूलूशन, एक
औद्योगिक क्रांति हो जानी चाहिए । तो मुल्क में औद्योगिक क्रांति अभी भी नहीं
हो गयी । अभी भी हमारा अस्सी प्रतिशत व्यक्ति खेत पर निर्भर है । अस्सी प्रति-
शत आदमी खेत पर ही जिन्दा है । बाकी बीस प्रतिशत आदमी भी, वह जो अस्सी
प्रतिशत आदमी खेत पर जिन्दा हैं, उसके शोषण पर जिन्दा हैं । अभी देश औद्यो-
गिक नहीं हो गया । अभी गांव है, अभी गांव नगर नहीं बन गये । अभी देश का
गरीब आदमी मध्यवर्गीय भी नहीं हो गया है कि वह सोच सके सम्पत्ति के सम्बन्ध
में, धन के सम्बन्ध में । और धन पैदा कैसे हो ? क्योंकि हमारे सारे उपकरण आज

भी प्रीमिटिव हैं, आज भी आदिम हैं। आज भी हम आदिम बातों पर बैठे हुए हैं और आदिम बातों से सम्पत्ति पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं। एक आदमी खेत में बैल को लगाकर जुता हुआ है। बैल का ईजाद हुए कोई पांच हजार साल हो गये। पांच हजार साल पहले जिस आदमी ने बैल जोता था खेत में, वह बड़ा क्रांतिकारी आदमी रहा होगा। लेकिन पांच हजार साल बाद भी जो बैल जोत रहा है, उसकी बुद्धि पर शक होता है।

हम अभी औद्योगिक क्रांति से न गुजरे। उद्योग बढ़े, सम्पत्ति इतनी आये कि देश में बांटी जा सके तो समाजवाद चरितार्थ हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिए मैं कहता हूं कोई अभी समाजवाद नहीं ला सकता है। इसमें कोई इंदिरा जी या उनके साथियों की कमजोरी नहीं है, इसमें देश की वैज्ञानिक स्थिति जैसी है, उसकी मौजूदगी कारण है। इसलिए मैं चाहूं, या कोई भी चाहे तो समाजवाद नहीं ला सकता। और अगर लाना हो तो फिर एक ही रास्ता है। फिर स्टैलिन जैसा नेता चाहिए, या माओ जैसा नेता चाहिए जो समाजवाद लाने के लिए इतना खून कर सके, इतनी हत्या कर सके। इतनी हत्या की हमारी तैयारी नहीं दिखायी पड़ती है कि हम इतनी हत्या के लिए राजी हो जायें।

फिर लोकतन्त्र नहीं चाहिए क्योंकि लोकतन्त्र समाजवाद नहीं ला सकेगा, इस हालत में। लोकतन्त्र समाजवाद ला सकता है अमरीका जैसी हालत में, इस हालत में नहीं ला सकता है। इस हालत में तो बन्दूक का कुन्दा हो, और छाती के पीछे तोप लगी हो और पूरे वक्त मरने का डर हो, जबर्दस्ती काम लिया जा सके और जबर्दस्ती धन पैदा करवाया जा सके, तो शायद पचास वर्ष की हत्या और हिंसा के बाद हम थोड़ी बहुत सम्पत्ति पैदा कर सकें। लेकिन आज भी रूस अमीर नहीं हो सका है। पचास साल के अनुभव के बाद भी रूस एक गरीब देश है। हमें लगेगा कि अगर रूस गरीब देश है तो चांद पर पहुंचने की कोशिश कैसे करता है? वह कोशिश ऐसे ही है जैसे एक गरीब आदमी सिल्क का कुर्ता पहनकर और सामने के पड़ौसी धनी आदमी के सामने अकड़ कर निकले। चाहे घर में भूखा रह जाये। रूस की कोशिश वैसी है इसलिए रूस पिछड़ भी गया है उस दौड़ में। क्योंकि वह दौड़ इतनी मंहगी थी कि अमरीका के लिए शौक था, रूस के लिए जान की बन गयी, इसलिए पिछड़ना भी पड़ा उस दौड़ में। और फिर नीचे जनता का दबाव भी बढ़ा कि घर में खाने को न हो···।

पिछले कुछ वर्षों से रूस को भी गेहूं कनाडा से खरीदना पड़ रहा है। चालीस साल के समाजवाद के बाद गेहूं बाहर से खरीदना पड़े तो थोड़ा सोचने की बात है। थोड़ा विचारने की बात है। मैं आपसे कहता हूं कि आने वाले पांच वर्षों के बाद अमरीका ही रूस को गेहूं दे सकेगा। अमरीका के ही गेहूं पर रूस को भी पलना पड़ेगा जैसा हमको पलना पड़ रहा है। और यह बात साफ होती चली जा

रही है क्योंकि पचास वर्ष की जबर्दस्ती के कारण प्रेरणा तो बिल्कुल मर गयी है। कोई काम नहीं करना चाहता है रूस में। अब जबर्दस्ती कब तक काम लिया जा सकता है? पूरा रूस एक कंसंट्रेशन कैम्प हो गया है, एक कारागृह हो गया है जिसमें जबर्दस्ती काम लिया जा रहा है। जिसमें आदमी को मरने के डर से काम लिया जाता है। कब तक ऐसा चल सकता है? थोड़ी देर चल सकता है। बहुत देर के बाद मुश्किल हो जाता है, आदमी इन्कार कर देता है। या इतना मृत्यु से भी राजी हो जाता है कि कहता है कि ठीक है मर ही जायें, जो कुछ होगा, होगा। लेकिन रूस अमीर नहीं है। आज रूस के पास कितनी कारें हैं, कितने लोगों के पास कारें हैं? कितने लोगों के पास ठीक कपड़े हैं, कितने लोगों के पास ठीक भोजन है? जो यात्री जाते हैं वे गलत खबरें लेकर आ जाते हैं, क्योंकि उनके ठहरने के लिए खास होटलें हैं, खास दुकानें हैं खरीदने के लिए, खास आदमी हैं बात करने के लिए, जिससे वे बात करके लौटते हैं। लेकिन इधर-उधर भटक कर थोड़ा रूस में खोजना बड़ा सवाल है, और तरह का सवाल है।

रूस अमीर नहीं हो सका यह अनुभव में आ रहा है उन्हें, कि कहीं कोई भूल हो गयी है। फिर भी स्टैलिन बहुत हिम्मत का आदमी था। उतने हिम्मत का आदमी हिन्दुस्तान में कृष्ण के बाद तो पैदा नहीं हुआ। अगर कृष्ण हमको फिर से मिल जायें तो कृष्ण हिम्मत के आदमी हैं। वे कहते हैं, कोई फिक्र नहीं, मारो, क्योंकि आत्मा मरती ही नहीं है इसलिए कोई चिन्ता नहीं है। कृष्ण हमको मिल जायें तो समाजवाद लाया जा सकता है। और रूस से ज्यादा हत्या करनी पड़ेगी भारत में, रूस से बहुत ज्यादा हत्या करनी पड़ेगी क्योंकि भारत रूस से बहुत ज्यादा आलसी है। इतने आलस्य में हमें हत्या के सिवाय कोई रास्ता न रह जायेगा।

लेकिन इंदिरा जी को और उनके साथियों को कोई अन्दाज नहीं है। अन्दाज का कोई कारण भी नहीं है क्योंकि भीड़ जिस बात से राजी, वह बात कहनी चाहिए—नेता तभी नेता बना रह सकता है। नेता को कोई दूरदर्शी होने की जरूरत नहीं है। दूरदर्शी आदमी नेता नहीं हो सकता। नेता को शार्ट साइटेड होना चाहिए, पास दिखायी पड़ना चाहिए, दूर दिखायी पड़ना ही नहीं चाहिए, तभी नेता हो सकता है। और अगर नेता अन्धा हो तो और भी अच्छा नेता हो सकता है। क्योंकि बिल्कुल दिखायी न पड़े तो वह ऐसे नारे लगा सकता है जो कि देखने वाला कभी भी नहीं लगा सकता। और अन्धों के देश में नेता होने के लिए अन्धा होना क्वालीफिकेशन है। योग्यता है।

इसलिए मैं कहता हूं कि न ही इंदिरा जी और न कोई और समाजवाद ला सकता है। समाजवाद आयेगा, लेकिन पचास साल मुल्क को औद्योगीकरण से गुजारना जरूरी है। पचास साल मुल्क को पूंजीवाद की ठीक-ठीक शीघ्रतम अवस्था

पानी जरूरी है। पचास साल बाद समाजवाद की बातें अर्थपूर्ण हो सकती हैं। लाना तो पड़ेगा ही। पूंजी की व्यवस्था संक्रमण की व्यवस्था है, अन्तिम फल तो समाजवाद होना ही चाहिए। लेकिन पूंजीवाद भी लाना पड़ेगा।

अब ये बातें मेरी उल्टी दिखायी पड़ सकती हैं। ये बातें उल्टी दिखायी पड़ सकती हैं कि मैं कहता हूं कि समाजवाद लाना है और पूंजीवाद लाना पड़ेगा। आपको दिखायी पड़ती होंगी उल्टी, उल्टी नहीं हैं। क्योंकि मैं उनको विकास के चरण मानता हूं। लेकिन हम कैसे ला पायेंगे पूंजीवाद ? गांधीजी ने इस देश को जो विचार दिया है वह सामन्तवादी है। वह पूंजीवाद तो नहीं लाता, वह पूंजीवाद से नीचे गिराता है। क्योंकि सब व्यवस्थायें उपकरणों पर निर्भर होती हैं। चर्खा सामन्तवादी व्यवस्था का उपकरण है। चर्खे के द्वारा इतना ही पैदा हो सकता है कि किसी तरह अधपेट भरा आदमी सो सके। इससे ज्यादा पैदा नहीं हो सकता। चर्खे के द्वारा पूंजी अतिरिक्त पैदा नहीं हो सकती है। हाथ के द्वारा खेत में काम करने से कोई बहुत पूंजी पैदा नहीं हो सकती। हाथ से कपड़ा बुनने से पूंजी पैदा नहीं हो सकती। ये सामन्तवादी उपकरण हैं, इनके द्वारा राम राज्य लाया जा सकता है, समाजवाद नहीं लाया जा सकता है।

रामराज्य का मतलब है बहुत पीछे लौट जाना। तीन हजार साल पीछे लौट जाना। गांधीजी इतने डरे हुए थे पूंजीवाद से कि वे सामन्तवाद की बात करने लगे, पीछे लौट चलें। पीछे लौट जाओ। बड़े उद्योग का उन्हें बड़ा खतरा लगा, तो छोटे उद्योग रखो जिनसे ज्यादा सम्पत्ति ही पैदा न होगी तो खतरा न होगा। पीछे लौट चलो। इतना कम सामन्तवादी व्यवस्था में आदमी एक अर्थ में बड़ा अच्छा आदमी था। अच्छा इसलिए था कि उसके पास बुरे होने की ताकत न थी। आखिर बुरे होने के लिए भी ताकत चाहिए। और मेरा मानना है कि जो आदमी बुरा नहीं हो सकता, उसकी अच्छाई का कोई मतलब नहीं है। एक बीमार आदमी अगर सड़क पर जाकर उपद्रव न करता हो, और एक बीमार बच्चा अगर बाप की चुपचाप आज्ञा मान लेता हो, तो शुभ नहीं है। उस बच्चे की आज्ञा का कोई अर्थ है, जो चाहे आज्ञा तोड़ना तो तोड़ सके। उस आदमी के अच्छे होने का प्रयोजन है, जो चाहे बुरा होना तो हो सके। सामन्तवाद ने इतनी दीन-हीन व्यवस्था दी आदमी को कि बुरे होने तक का उपाय न था। तो आदमी अच्छा है।

गांधीजी को लगता है कि उन्हीं अच्छे दिनों में वापस लौट चलें। वे दिन अच्छे न थे, सिर्फ रुग्ण, कमजोर दिन थे। अच्छे दिन आगे आ सकते हैं। अच्छे दिनों की सम्भावना आगे है, पीछे नहीं। तो अगर गांधीजी का विचार मानकर हम चलते हैं तो पूंजीवाद भी त्वरित नहीं हो पायेगा, पूंजीवाद भी धीमी गति पकड़ लेगा। और पूंजीवाद जितना धीमा होगा, समाजवाद का नक्शा उतना ही दूर मानना चाहिए। पूंजीवाद में त्वरा, स्पीड लाने की जरूरत है। औद्योगीकरण में स्पीड

लाने की जरूरत है। चर्खे से वह स्पीड में बाधा पड़ रही है। वह चर्खा हटना चाहिए बीच से। पचास साल में औद्योगीकरण हो सकता है देश का। मशीन लायी जा सकती है, उनसे उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। केन्द्रित सम्पत्ति पैदा हो सकती है। समाजवाद भी सम्भव है।

गांधीजी को अगर हम केन्द्र पर रखकर चलते हैं तो देश पूंजीवादी ही नहीं हो पायेगा, समाजवादी होने की बात तो बहुत दूर है। इसीलिए गांधीजी को सारी दुनिया में वे सारे लोग, जो समाजवाद से डरे हुए हैं आदर दे रहे हैं। कुल कारण इतना है कि गांधी ही दुनिया को समाजवाद से बचा सकते हैं। बिड़ला नहीं बचा सकते हैं। बिड़ला तो समाजवाद में ले ही जायेंगे। दुनिया का कोई पूंजीपति दुनिया को समाजवाद से नहीं बचा सकता। अमरीका के पूंजीपति दुनिया को समाजवाद से नहीं बचा सकते। सब पूंजीवादी मिलकर जो कर रहे हैं, अन्तिम परिणाम समाजवाद ही होगा। लेकिन गांधीजी बचा सकते हैं, क्योंकि वे पूंजीवाद से पीछे की व्यवस्था में लौटने की बात करते हैं। जितना तीव्र ओरिंटेंस होगा उतनी जल्दी समाजवाद का सपना पूरा हो सकता है।

लेकिन हमारा चिन्तन बहुत अजीब है। एक तरफ हम समाजवाद की बात भी करेंगे, दूसरी तरफ गांधीजी का जयकार भी करते रहेंगे। यह दोनों में विरोध है, क्योंकि गांधीजी का समस्त चिन्तन सामन्तवादी प्रक्रिया में ले जायेगा। वह पूंजीवाद के पहले की व्यवस्था है, पूंजीवाद के बाद की व्यवस्था नहीं है। मैं पूंजीवाद का विरोधी नहीं हूं, इस अर्थों में कि पूंजीवाद समाजवाद में ले जाने वाला है। मैं पूंजीवाद का विरोधी हूं, इस अर्थों में कि पूंजीवाद पर नहीं रुक जाना है, समाजवाद तक पहुंचना है। मैं समाजवाद का पक्षपाती हूं क्योंकि समाजवाद के बिना जगत से गरीबी और दुख और दारिद्रय नहीं मिट सकता है। लेकिन मैं पूंजीवाद का समर्थन करता हूं क्योंकि पूंजीवाद के पूर्ण विकास के बिना समाजवाद नहीं आ सकता है। इनको सोचना पड़ेगा, ये विरोधी बातें नहीं हैं। ये विरोधी दिखायी पड़ सकती हैं।

एक और मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं, अमरीका जैसी समृद्धि देश में लानी है, तो अमरीका में तो मानसिक अशांति बढ़ी है, व्यभिचार बढ़ा है, आचरण का पतन हुआ है, चारित्र्य नीचे गया है। हमारे देश का चरित्र और आचरण तो बहुत ऊंचा है।

यह थोड़ा सोचना पड़ेगा। यह हमारे देश के चरित्र और आचरण के सम्बन्ध में बहुत विचार करने की जरूरत है। तीन बातें उन्होंने कही हैं, वह विचार करनी चाहिए। पहली बात तो यह कि आम ख्याल यह है, और ठीक है कि अमरीका में मानसिक अशांति बढ़ी है। लेकिन मानसिक अशांति आपको पता है कब बढ़ती है ? मानसिक अशांति तब बढ़ती है अब शरीर की सब जरूरतें पूरी हो जाती हैं,

उसके पहले नहीं बढ़ती है। जानवरों में मानसिक अशांति नहीं होती है। लेकिन इसलिए हम जानवर होना पसन्द न करेंगे। आदिवासियों में मानसिक अशांति नहीं होती है, लेकिन हम आदिवासी होना पसन्द न करेंगे। असल में मानसिक अशांति तब होती है जब शरीर की सब जरूरतें पूरी हो जाती हैं, तब मन की मांग शुरू होती है। अब जो आदमी भूखा बैठा है, खाना नहीं है, कपड़ा नहीं है, मकान नहीं है उसको मानसिक अशांति नहीं हो सकती है। उसकी शारीरिक अशांति इतनी बड़ी है कि मानसिक अशांति का उपाय नहीं है।

जब शारीरिक अशांति मिटती है तो मानसिक अशांति शुरू होती है। मानसिक अशांति एक अर्थ में विकास है। और जब मन की भी सब जरूरतें पूरी हो जाती हैं तो आत्मिक अशांति शुरू होती है। वह और बड़ा विकास है। आत्मिक अशांति तीसरी बात है। बुद्ध और महावीर आत्मिक रूप से अशांत थे, मानसिक रूप से नहीं। बुद्ध और महावीर की शरीर की जरूरतें पूरी थीं, मन की भी जरूरतें बहुत पूरी थीं। मन की हमारी जरूरतें पूरी नहीं हैं, अमरीका की भी जरूरतें पूरी नहीं हैं। तो बुद्ध और महावीर ने एक नयी अशांति अनुभव की—मानसिक नहीं, आध्यात्मिक, एक स्प्रीच्युअल अनरेस्ट पैदा हो गया।

अब बुद्ध को जितनी भी उस देश में सुन्दर स्त्रियां हो सकती थीं—उनके पिता ने सब उनके महल में इकट्ठी कर दी थीं। अब मानसिक अशांति का उपाय न रहा। मानसिक अशांति अब क्या करे? सब स्त्रियां, जो चाही जा सकती थीं, मिल गयीं। सुन्दरतम मकान मिला, सुन्दरतम निवास मिला, सब सुविधा मिली, शरीर की सब जरूरतें पूरी हो गयीं। संगीत मिला, साहित्य मिला, चित्रकला मिली नृत्य मिला, सब मिल गया। शरीर और मन की सब जरूरतें पूरी हो गयीं। बुद्ध को एक नयी अशांति ने पकड़ा, स्प्रीच्युअल अनरेस्ट—कि हमको परमात्मा पाना है। हमको सत्य पाना है। हम बिना सत्य पाये नहीं रह सकते। तो क्या आप कहेंगे कि बुद्ध की हालत अच्छी नहीं है?

ध्यान रहे, अशांतियों के भी तल हैं। शारीरिक अशांति निकृष्टतम अशांति है। मानसिक अशांति उससे ऊंची अशांति है। अध्यात्मिक अशांति और भी ऊंची अशांति है। और ध्यान रहे, जिस तल पर हम शांत होंगे उसी तल पर शांत हो सकते हैं। जिस तल पर हम अशांत भी नहीं हुए उस तल पर हम शांत कैसे होंगे?

भारत मानसिक रूप से अशांत होने में अभी समर्थ नहीं है। अभी शारीरिक तल पर अशांति है। अभी पेट भूखा है। शरीर के तल पर अशांति है। तो हम सोचते हैं कि शायद हम मानसिक रूप से शांत हैं, आप गलती में हैं। मानसिक रूप से शांत होने के लेबल तक भी हम अभी नहीं पहुंचे हैं। इसलिए हम शांत मालूम पड़ रहे हैं। हमारी शांति वास्तविक नहीं है। हमारी शांति बिल्कुल झूठी

है क्योंकि हम अशांत ही नहीं हुए जिस तल पर, उस पर हम शांत कैसे हो जायेंगे?

अमरीका शरीर के तल पर शांत हुआ है तो मन के तल पर अशांत हुआ है। यह मनुष्य के एव्योल्यूशन का दूसरा कदम है। बेचैन है, तकलीफ है, लेकिन ध्यान रहे, जब वे मानसिक रूप से अशांत हुए हैं, तो वे मानसिक शांति की तलाश में लग गये हैं। बहुत जल्द वे सारे उपाय खोज लेंगे जिनसे मन में शांति हो जाये। एक नयी अशांति अमरीका में शुरू होगी, जो अध्यात्मिक होगी। वे ईश्वर, सत्य और निर्वाण और मोक्ष की खोज से बेचैन हो जायेंगे। तब क्या हम कहेंगे, वे लोग अध्यात्मिक रूप से अशांत हो गये हैं तो हम उनसे बेहतर हैं? नहीं, मैं आपसे कहता हूं, वे हमसे बेहतर हैं क्योंकि हमसे ऊंचे तल पर अशांत हैं। वे ऊंचे तल पर शांत भी हो सकते हैं। इसको नियम मानता हूं मैं कि जिस तल पर हम अशांत होंगे, उसी तल पर शांत हो सकते हैं। लेकिन, तल के नीचे हैं हम। हम शरीर के तल पर अशांत हैं।

मेरे पास लोग आते हैं। वे पहले आते हैं कि हमें ध्यान सीखना है। बहुत अशांति है। फिर कुछ दिन मेरे पास रुकते हैं, मैं उनसे और बात करता हूं कि किसी को लड़की की शादी करनी है असल में, इसलिए अशांति है। वह कहता है कि ठीक है, जब निकट आता है तो पहले तो वह ध्यान और परमात्मा की बात करता है। जब निकट आता है तब वह धीरे से बात करता है कि लड़की बड़ी हो गयी है और शादी करनी है। किसी के लड़के को नौकरी नहीं मिल रही है, वह बेकार है। किसी को बीमारी है जो ठीक नहीं हो रही है। किसी के घर मे इतनी अव्यवस्था है कि कोई उपाय नहीं रह गया। उससे वह कह रहे हैं कि हम मानसिक रूप से अशांत हैं। खोजने आते हैं ध्यान लेकिन बहुत जल्दी पता चलता है कि उनको अगर धन मिल जाये तो वह ध्यान से ज्यादा कीमती सिद्ध होगा। धर्म की बात करते आते हैं, भगवान् के मन्दिर की तरफ आते हैं, लेकिन भगवान् से हाथ जोड़कर क्या मांगते हैं वे? अगर हम आदमी, जो मन्दिर में हाथ जोड़े खड़े हैं उनको ऊपर से देखकर लौट आये तो हम समझेंगे कि बड़े धार्मिक आदमी हैं। हो सकता है वे भीतर कह रहे हों कि मेरा जिससे प्रेम है उसी से विवाह करवा दिया जाये। नौकरी नहीं मिल रही है, नौकरी दिलवा दी जाये। रिटायरमेंट हुआ जा रहा है और दो चार साल नौकरी चल जाये तो अच्छा है। शादी नहीं हो रही है बच्चे की—तो बच्चे की शादी हो जाये। बीमारी है, बीमारी दूर हो जाये।

एक आदमी मेरे पास आया और उसने कहा, मुझे भगवान् पर पक्का विश्वास आ गया है। क्योंकि मैंने प्रार्थना की थी कि मुझे नौकरी मिल जाये और मुझे नौकरी मिल गयी। तो मैंने कहा, सस्ता विश्वास है। आगे अब इसकी दुबारा फिर

से परीक्षा मत करना भगवान् से, नहीं तो गड़बड़ हो जायेगी। उसने कहा, क्या मतलब है ? आपका ? मैंने कहा, जब भूल-चूक से किसी तरह मिल गयी है नौकरी तो ठीक है, तुम विश्वास ही रखना। अब आगे परीक्षा मत करना। नहीं तो भगवान् हर परीक्षा में सही न निकलेगा। अब यह जो आदमी है, इसकी शारीरिक तकलीफ है। हमें इस देश में तकलीफ शारीरिक है, मानसिक नहीं। लेकिन हमारे देश के साधु-सन्त समझाते हैं, देखो अमरीका में कितनी मानसिक अशांति है। उनको पता नहीं है कि अमरीका में मानसिक अशांति हमसे विकसित होने के कारण है, वह अविकसित अवस्था नहीं है। वह हमसे विकसित अवस्था है।

असल में जीवन में ऊंची अशांतियां पैदा होनी शुरू होती हैं। एक जंगली आदमी है, उसको अगर संगीत सुनने को न मिले तो कोई अशांति न होगी। उसे अगर कालिदास और शेक्सपीयर पढ़ने को न मिले तो कोई अशांति न होगी। वह मजे से अपने जंगल में जो कर रहा था, करता रहेगा। उसे कभी ख्याल में न आयेगा कि शेक्सपीयर को भी पढ़ने का एक आनन्द है और एक मौज है, उसको सुनने का भी एक आनन्द है, और पिकासो के चित्रों को भी देखने का एक आनन्द है। लेकिन जिस आदमी ने पिकासो के चित्रों में आनन्द लिया है उस आदमी को पिकासो के चित्र देखने को न मिलें तो अशांति शुरू हो जायेगी। और जिसने वीणा के रस में डुबकी ली है उसे अगर वीणा सुनने को न मिले तो अशांति शुरू हो जायेगी। अशांतियों के तल हैं। जितना आदमी विकसित होता है, ऊंची अशांतियां पकड़ती हैं।

सौभाग्यशाली हैं वे, जिनके नीचे अशांतियां शांत हो गयी हैं और ऊंची अशांतियां जिन्होंने पकड़ लिया है। क्यों ? क्योंकि ऊपर की अशांतियां उन्हें ऊपर की शांतियों की खोज में ले जायेंगी। अमरीका खोज पर निकल पड़ा है। आज अमरीका में सारा गहरे से गहरा चिन्तन इस बात का है कि हम शांत कैसे हो सकें? ध्यान रहे, उनका मन अगर शांत होगा तो हम और उनमें जमीन आसमान का फर्क होगा आज वे इस चिन्ता से पड़े हैं कि क्या एल० एस० डी० से मन शांत हो सकेगा ? कोई केमिकल तरकीब खोजी जा सकती है ? कोई ध्यान का रास्ता हो सकता है, कोई मेडीटेशन हो सकती है ? कोई उपाय हो सकता है जिससे मन शांत हो सके ? पच्चीस तीस वर्षों में मन के शांत के उपाय उनमें विकसित हो जायेंगे। वे मन के विज्ञान को भी खोज लेंगे और हम वहां बैठकर प्रशंसा का अनुभव करते रहेंगे—आत्मप्रशंसा, कि हम बड़े शांत हैं, वे बड़े अशांत हैं।

उन्हीं मित्र ने पूछा है कि यहां आत्महत्या बढ़ रही है। ध्यान रहे, आत्महत्या मनुष्य के भौतिक विकास के साथ बढ़ती है जितना मानसिक रूप से, बौद्धिक रूप से अविकसित आदमी होगा उतनी आत्महत्या नहीं करता। आदिवासी आत्महत्या नहीं करते हैं। जितनी जंगली कौम होगी, जितनी गहरे जंगल में रहती होगी,

जितनी प्राचीन होगी, आत्महत्या नहीं करेगी। क्योंकि आत्महत्या करने के लिए बड़ा आत्मवान व्यक्तित्व चाहिए। पहली तो बात यह है कि इतना बोध चाहिए कि जीवन व्यर्थ है तो मैं अपने को समाप्त कर लूं। यह बोध साधारण बोध नहीं है। आदिवासी दूसरे की हत्या कर सकता है। अगर जीवन गड़बड़ है तो दूसरे की हत्या करो। लेकिन अगर जीवन मुझे व्यर्थ मालूम पड़े तो मैं अपने को समाप्त कर दूं, इसके लिए बड़े आत्मबल की जरूरत है।

जैसे-जैसे बुद्धि विकसित होती है, आत्महत्या बढ़ेगी। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि आत्महत्या कोई गौरव की चीज है। और बुद्धि विकसित होगी तो और हत्या के बाद आत्मसाधना शुरू होगी। वे ही सभ्यताएं, जो आत्महत्या करने की स्थिति में पहुंचती हैं, आत्मसाधना की स्थिति में संलग्न होती हैं। आत्महत्या यह कहती है कि कुछ बदलना पड़ेगा, मिटाना पड़ेगा। सबसे पहला ख्याल यही आता है कि अपने शरीर को मिटा दो। अगर जिन्दगी ठीक नहीं है, आनन्द नहीं देती है, रस नहीं देती है तो शरीर को मिटा दो। लेकिन, धीरे-धीरे यह भी ख्याल आयेगा कि शरीर को मिटाने में भी क्या होगा ? तो शायद यह भी ख्याल आयेगा कि अपनी आत्मा को बदल डालो, मिटा डालो अहंकार को। आत्मा को बदल डालो तो शायद जिन्दगी बदल जाये। असल में जो व्यक्ति आत्महत्या करने की स्थिति में पहुंचता है वहां से दो रास्ते निकलते हैं—एक आत्महत्या का, एक आत्मसाधना का। पहले आत्महत्या की जायेगी, धीरे-धीरे आत्मसाधना में रुचि बढ़ेगी। क्योंकि आत्महत्या बहुत लम्बी देर तक खींची नहीं जाती। अमरीका में आत्महत्याएं बढ़ी हैं। मैं आपसे कहता हूं, आने वाले पचास वर्षों में आत्मसाधनाएं बढ़ेंगी, क्योंकि आत्महत्या स्थायी चीज नहीं हो सकती, वह संक्रमण की बात है।

उस मित्र ने पूछा कि वहां व्यभिचार बढ़ा है, आचरणहीनता आयी है। यह सवाल बहुत ज्यादा जटिल है। पहली तो बात यह है कि अमरीका जैसे मुल्क में पहली दफा आंकड़े उपलब्ध हुए हैं। हमारे मुल्क में आंकड़े न होने से हमें बड़ी सुविधा है। अगर मैं आपसे, एक-एक आदमी से जाकर पूछूं कि आपने अपनी जिन्दगी में अपनी पत्नी को छोड़कर और किन-किन स्त्रियों से प्रेम किया है तो कोई भी राजी नहीं होगा। हां, बता देगा कि पड़ोसी यह कह रहे हैं, लेकिन अपन दूर हैं। लेकिन अमरीका में अगर पूछने जाते हैं तो लोग बता देगें कि मैंने अपनी पत्नी को छोड़कर तीन स्त्रियों से मेरे सम्बन्ध थे। वे नाम गिना देगें, हिसाब लिखा देंगे। तो अमरीका के पास आंकड़े हैं इस बात के आज कि कौन आदमी एक जिन्दगी में कितनी स्त्रियों से सम्बन्ध जोड़ता है। कौन आदमी विवाह के पहले सम्बन्ध जोड़ता है ? कौन आदमी विवाह के भीतर भी सम्बन्ध जोड़ता है। इन सबके आंकड़े हैं। उन आंकड़ों की वजह से यहां के साधु-सन्त प्रसन्न होते हैं। वह आंकड़े उठा लेते हैं और कहते हैं, देखो, अमरीका में यह हो रहा है। चालीस परसेन्ट लड़कियां कहती हैं

कि हमने विवाह के पहले संभोग का अनुभव किया है। हद हो गयी व्यभिचार का। लेकिन आंकड़ों की कमी तथ्यों की कमी नहीं है। असल में आंकड़े भी सभ्यता के विकास के साथ ही उपलब्ध होते हैं। अमरीका का व्यक्ति आज इतना समर्थ है कि बेफिक्र है, निश्चिन्त है, वह सच बात कह सकता है। हम सच बात कहने में भी समर्थ नहीं हैं।

व्यभिचार उतना ही है, लेकिन पर्दे के पीछे है, वह पर्दे के बाहर नहीं है। वह पीछे-पीछे सरकता है। पीछे सरकता है, आंकड़े नहीं मिलते। तो आंकड़े न मिलने की वजह से हम बड़े निश्चिन्त होते हैं। आंकड़े बहुत नयी घटना है, स्टेटिस्टिक की साइंस बहुत नयी चीज है। अगर हम पता लगाने जायें कि आज से हजार साल पहले हिन्दुस्तान में कितनी वेश्याएं थीं तो कोई पता नहीं लग सकता था। इसका मतलब यह नहीं है कि वेश्याएं नहीं थीं। अगर हम आज भी पता लगाने जायें कि हिन्दुस्तान में कितने लोगों में जिन्दगी में मास्टरबेशन, हस्तमैथुन किया है तो आंकड़े नहीं मिल सकते। लेकिन अमरीका में मिल सकते हैं। उसका कारण यह है कि जिन्दगी को सीधा-सादा, पाखण्ड की तरह नहीं जिया जा रहा है। एक आदमी से पूछें तो वह कह देगा कि हां, ऐसा-ऐसा हुआ। उसकी वजह से मनुष्य को समझने में बड़ी सुविधा हुई। सच्चाइयां सामने आयीं, ठहराने के तथ्य प्रगट हुए। और नए तथ्यों में जीवन को संवारने, सुधारने की नयी सुविधा जुटायी है। उसका परिणाम यह हुआ है कि हम आदमी के वास्तविक व्यक्तित्व को जानने में जितने समर्थ आज हो गये हैं उतने कभी भी नहीं थे। क्योंकि आदमी ऊपर एक शक्ल बनाये था, भीतर कुछ और था। कहता कुछ और था, करता कुछ और था।

आज अमरीका में हम पता लगा सकते हैं कि वह करता क्या है। और अगर करने का पता लगे, तो बहुत हैरानी की बात है, अनुभव किया गया—अभी दस जो वर्षों में खोज-बीन होती है अमरीका में, उसके बहुत अजीब परिणाम हैं। उसके परिणाम यह हैं कि करीब-करीब सत्तर प्रतिशत लोग जीवन में कभी न कभी हस्तमैथुन करते हैं। तो अब यह हमको आंकड़ा मिल गया। यह आंकड़ा अमरीका के आदमी पर ही लागू नहीं है, यह सारी दुनिया के आदमी पर लागू है। और जैसे-जैसे आदमी विकसित होगा, सारी दुनिया में ये आंकड़े कमोबेश दो-चार-दस परसेन्ट के फर्क से मिलने शुरू हो जायेंगे।

लेकिन, अभी हमारे पास आंकड़े नहीं हैं। आंकड़े तो दूर हैं, हस्तमैथुन की पब्लिक रूप से चर्चा करनी मुश्किल है। आंकड़ा तो बहुत मुश्किल है और अगर हम किसी से पूछने जायेंगे तो वह डण्डा उठा लेगा कि आप पागल हो गये हैं, मैं ऐसा काम करूंगा? यह आप किसी और से पूछिये, यहां कहीं कोई नहीं करता। हम जिन्दगी को उसकी सच्चाई में, उसकी नेचरलनेस में, नग्नता में स्वीकार करने को राजी नहीं हैं। अगर हम किसी पत्नी से पूछें कि तुझे कोई पुरुष सुन्दर मालूम

पड़ता है तो वह कहेगी, आप कैसी बातें करते हैं? और अगले जन्म में भी इसी पति को पाने की प्रार्थना कर रही हूं। कभी कोई पुरुष मुझे सुन्दर मालूम पड़ता ही नहीं। मेरे पति से ज्यादा सुन्दर कोई है ही नहीं। अब यह असम्भव है बात। यह बिल्कुल असम्भव है। और पुरुष भी सुन्दर हैं। और सड़क पर वे दिखायी पड़ते हैं तो सुन्दर मालूम ही पड़ेंगे, यह स्वाभाविक है। इसमें न कुछ पाप है; न कोई आचरण-हीनता है। पति ने कोई सुन्दर होने का ठेका नहीं ले लिया है और न पत्नी ने सुन्दर होने का ठेका ले लिया है। लेकिन दूसरे की पत्नी से अगर मैं कहूं कि आप बहुत सुन्दर हैं तो झगड़ा हो सकता है। हालांकि झगड़ा होना नहीं चाहिए। मैं सिर्फ एप्रीसिएशन कर रहा हूं। मुझे धन्यवाद मिलना चाहिए। आपके बगीचे में आऊं और कहूं कि आपका गुलाब का फूल बहुत सुन्दर है तो झगड़ा नहीं करते आप। और आपसे कहूं कि आपकी लड़की बहुत सुन्दर है तो झगड़ा शुरू हो जायेगा। अगर गुलाब के फूल से आप प्रसन्न हुए थे तो लड़की के सौंदर्य की चर्चा सुनकर आपको और भी प्रसन्न होना चाहिए। सौंदर्य सहज तथ्य है जीवन का। लेकिन हमने उसे स्वीकार नहीं किया है।

हमारी अस्वीकृति हमारा आचरण बनी हुई है और हम सोचते हैं कि हम बहुत आचरणवान हैं। मैं इधर साधु-संन्यासियों से निरन्तर मिलता हूं। मैं बहुत हैरान हुआ। एक आंकड़ा मेरी नजर में आना शुरू हुआ तो मैं मुश्किल में पड़ गया। जब साधु-संन्यासी मुझे मिलते हैं—और मुल्क में हजारों लोगों से सम्बन्ध है—तब वे मुझसे सबके सामने आत्मा-परमात्मा की ही बातें करते हैं। कहते हैं, कुछ एकांत में बातें करनी हैं, साधना के सम्बन्ध में। फिर वे एकांत में मिलते हैं तो सिवाय सेक्स के उनका कोई प्रॉब्लम नहीं होती। वे कहते हैं कि हम बड़ी मुश्किल में पड़े हैं।

अभी छः सात दिन पहले एक साधु मुझे मिलने आये थे और उन्होंने मुझसे कहा कि मैं मुश्किल में पड़ा हुआ हूं। ब्रह्मचर्य के लिए जो भी नियम कहे गये हैं, सबका पालन करता हूं, लेकिन ब्रह्मचर्य सधता नहीं। स्त्री को देखता नहीं हूं, आंखें झुकाकर चलता हूं, लेकिन सपने में स्त्रियां आ जाती हैं। अब दिन भर तो किसी तरह सम्हाल लेता हूं, लेकिन सपने में मैं क्या करूं? मेरे वश के बाहर है। इधर यह नहीं खाता हूं, यह नहीं खाता हूं, कम खाता हूं लेकिन स्वप्नदोष बन्द नहीं होते। अब एक साधु यह कहेगा, लेकिन वह सबके सामने स्वीकार करने को राजी नहीं है। मैंने कहा, तुम इसे सबके सामने कहो ताकि लोगों को पता चल सके कि साधु भी क्या मुसीबत है ताकि और लोग साधु न बन जायें। लेकिन वह यह कहने को राजी नहीं होगा। सबके सामने वह ब्रह्म की बातें करेगा और सबके सामने समझायेगा कि ब्रह्मचर्य महान आनन्द है। और किस कष्ट में और किस नर्क में वह पड़ा है, वह यह भीतर अनुभव करेगा। उन संन्यासी ने मुझसे कहा कि आप ठीक कहते हैं, लेकिन अगर मैं यह सबके सामने कहूं तो उससे कुछ भी सिद्ध न होगा।

सिर्फ इतना ही सिद्ध होगा कि ब्रह्मचर्य तो ठीक है, मैं गड़बड़ हूं, और कुछ सिद्ध न होगा। मैं इस झंझट में क्यों पड़ूं ? जब कोई दूसरा नहीं पड़ रहा है तो मैं क्यों पड़ूं ? लोग मेरे पैर छूते हैं, नमस्कार करते हैं, आदर करते हैं। सब मेरा आदर खो जायेगा। सब सम्मान खो जायेगा।

सम्मान और आदर के डर से सत्य खो रहा है, खोता रहा है। इस देश को अपने व्यक्तित्व के सम्बन्ध में तथ्य खोजना पड़ेगा। तो मैं आपसे कहना चाहता हूं कि दुनिया में न कोई आचरणहीन है, न कोई आचरणवान है। मनुष्य करीब-करीब एक जैसा है। सारी पृथ्वी पर एक जैसा है। थोड़े बहुत फर्क हैं, हवाओं की वजह से, गर्मी और ठण्ड की वजह से। वह फर्क आदमी के फर्क नहीं हैं, क्लायमैटिक फर्क हैं, लेकिन आदमी सारी दुनिया में एक जैसा है। आदमी-आदमी में कोई बुनियादी फर्क नहीं है। और इस भ्रम में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है कि कोई हम कुछ ज्यादा चरित्रवान है और कोई दूसरा कम चरित्रवान है।

फिर हमारी चरित्र की अपनी व्याख्याएं हैं। अगर हिन्दुस्तान में किसी के सम्बन्ध में कह दिया जाये कि वह आदमी चरित्रहीन है तो आप समझते हैं, क्या समझेंगे आप ? आप फौरन समझेंगे कि कुछ सेक्स के मामले की गड़बड़ है। अगर किसी की बाबत कह दिया जाये कि फलां आदमी चरित्रहीन है तो हमें यही ख्याल आयेगा कि उसके यौन सम्बन्धों की कोई गड़बड़ है। हमें कभी ख्याल में नहीं आयेगा कि वह आदमी झूठ बोलता होगा। हमें कभी ख्याल में नहीं आयेगा कि वह आदमी वचन के लिए कभी प्रतिबद्ध नहीं रहता। हमें कभी ख्याल न आयेगा कि वह आदमी आचरण की और कोई भूलें करता होगा। हमें फौरन सेक्स का ख्याल आयेगा। चरित्रहीन का मतलब ही हमारे मन में यह है कि कुछ न कुछ उसके सेक्सुअल सम्बन्धों में कोई गड़बड़ है।

लेकिन दूसरी कौमें चरित्रहीन का दूसरा मतलब लेती हैं और इसलिए उन्होंने कई अर्थों में आचरण को सुधारा है। कई अर्थों में आचरण को सुधारा है। आज अगर इंगलैण्ड या अमरीका में चौरस्ते पर अखबार रख दिया जाये तो लोग पैसा डाल जाते हैं पेटी में, अपना अखबार ले जाते हैं। अगर हमारे यहां रखा जाये तो अखबार भी ले जायेंगे, पेटी भी ले जायेंगे। कोई पता ही नहीं चलेगा, दूसरे आदमी का सवाल ही नहीं उठेगा। दूसरे आदमी को कोई कठिनाई ही न आयेगी, पहला आदमी ही निपटा देगा। डिपार्टमेंटल स्टोर्स हैं, लोग चीजें चुन लेते हैं, पैसा डाल देते हैं। अगर कोई किसी को वचन देता है तो पूरे करने की कोशिश करता है। यहां इतना ही कह देना काफी है कि भूल गये। बात खत्म हो गयी। इसमें कुछ आचरणहीनता नहीं है ? एक आदमी मुझसे कह दे कि वह पांच बजे आयेगा, वह नौ बजे रात आ रहा है। शाम पांच बज का आया हुआ, वह कहता है कि जरा काम में लग गया। मेरे चार घण्टे उसकी प्रतीक्षा में खराब हुए इसका कोई हिसाब

नहीं है, इससे कोई सम्बन्ध नहीं है, इससे कोई प्रयोजन नहीं है।

हमारी आचरण की सारी केन्द्रितता सेक्स से बंध गयी है। सारी दुनिया में सेक्स से धीरे-धीरे आचरण को मुक्त किया जा रहा है और आचरण के दूसरे आयाम पकड़े जा रहे हैं। क्योंकि ठीक से समझा जाये तो सेक्स दो व्यक्तियों के बीच का सम्बन्ध है। दूसरे आयाम बहुत महत्वपूर्ण हैं। दूसरे आयाम, सत्य बोलने के, वचन प्रतिबद्धता के नियम, समय के पालन के ज्यादा महत्वपूर्ण हैं, आश्वासन के ज्यादा महत्वपूर्ण हैं।

अगर मैं किसी के पास जाऊं और उससे कहूं कि मेरा फलां काम कर देना तो वह कहेगा कि हां, कर देंगे। कोई नहीं तो कहेगा ही नहीं। और कोई काम करेगा भी नहीं। बल्कि मैंने लोगों से कहा, कभी मैं किसी के घर बैठा हूं…एक वाइसचांसलर के घर ठहरा था। कोई आया, उसने कहा कि मेरा फलां लड़का है, वह आपके यहां नौकरी के लिए दरखास्त दिया है। उन्होंने कहा, हां, मैं सब देख लूंगा। घबराइए मत। वे चले गये तो मैंने कहा, सच में आप देखेंगे ? उन्होंने कहा, देखने का कहां सवाल है ? जो आता है उससे यही कहना पड़ता है। क्योंकि अगर हम देखने लगें तो मुश्किल में पड़ जायें और अगर न करें तो वह आदमी पीछे पड़ जाये। तो हम हां बोल देते हैं और झंझट के बाहर हो जाते हैं।

सब राजनीतिज्ञ हां बोल रहे हैं। सब नेता हां बोल रहे हैं। कुछ भी कहिये, वे कहते हैं, हां, हम करेंगे। और उनके हां का मतलब ठीक से समझ लेना। जैसे पहले कहा जाता था कि स्त्री नहीं कहे तो उसका मतलब हां होता है। ऐसा नेता हां कहे तो उसका मतलब नहीं होता है। हमारे आचरण के और आयाम हैं, उनका हमें ख्याल नहीं है। हमने सेक्स पर उसे केन्द्रित किया है। सच बात तो यह है कि जो कौम सेक्स पर आचरण को केन्द्रित करती है, वह एक अर्थ में आचरणहीन है। सेक्स कोई अर्थ नहीं रखता—इतना बड़ा, जितना हम सोच रहे हैं। जितना हम उसे महत्व दे रहे हैं उतना अर्थ नहीं रखता। जिन्दगी के और तथ्यों में एक तथ्य वह भी है। और उसके सम्बन्ध में आब्सेस्ड होने की जरूरत नहीं है कि हम उसी को सोचते रहें और दिन-रात उसी की फिक्र रखें, दूसरों की खिड़कियों में से झांक कर देखते रहें कि कहां क्या हो रहा है ? कहीं आचरणहीनता तो नहीं हो रही है ? सब एक दूसरे की तलाश में लगे हुए हैं कि कहीं कोई आचरणहीनता तो नहीं हो रही है ? यह पूरी बात आचरणहीनता की है।

मेरे एक मित्र डाक्टर हैं दिल्ली में, सरदार हैं। वे गये हुए थे लन्दन एक मेडिकल कान्फ्रेन्स में भाग लेने। मैं उनसे बात कर रहा था, लौटकर वे कहने लगे। आपकी बात ठीक लगती है, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। एक बड़े पार्क में कोई पांच सौ डाक्टर की कान्फ्रेन्स थी तो हम कुछ मिलने-जुलने, कुछ खाने-पीने इकट्ठे हुए थे। पांच सौ लोग हैं पार्क में, डाक्टर आपस में बातें कर रहे हैं। मेरे

सरदार मित्र भी वहां हैं, वे बड़े बेचैन हैं। बाकी सारे लोग बातों में लगे हैं, वे बातों में नहीं हैं। वह किसी दूसरी खोज में लग गये हैं। एक लड़का और एक लड़की एक बेन्च पर पार्क में एक दूसरे के गले में हाथ डाले, आंख बन्द किये बैठे हैं। वे बड़े बेचैन हुए जा रहे हैं कि बड़ी आचरणहीनता हो रही है। अब आपको इस आचरणहीनता से क्या लेना-देना है? आप अपना आचरण सम्हाल रहे हैं, इतनी काफी कृपा है। एक युवक और एक युवती गले में हाथ डाले बैठे हैं, आपका क्या बिगड़ रहा है? और उनका गले में हाथ डाले बैठना और उनका आंख बन्द करके बैठना एक पवित्र क्षण भी हो सकता है। प्रेयरफुल भी हो सकता है, प्रेमपूर्ण भी हो सकता है।

और सच तो यह है कि जब दो व्यक्ति प्रेम में एक दूसरे के निकट होते हैं तो इतनी पवित्रता जन्मती है, जितनी पवित्रता और कभी नहीं जन्मती है। मगर उनको कहां फुर्सत है, वे तो परेशान हुए जा रहे हैं। उन्होंने बगल के डाक्टर से कहा कि यह क्या आचरणहीनता हो रही है, पार्क में? उस डाक्टर ने कहा, आपको क्या मतलब है? और मैं हैरान हूं कि आप बार-बार वहीं क्यों देख रहे हैं? और आप ज्यादा वहां मत देखिये, नहीं तो पुलिस वाला आ के आपको उठाकर ले जा सकता है। क्या अशिष्ट व्यवहार कर रहे हैं आप? वह उन दो व्यक्तियों की बात है। वह उनकी जिन्दगी की बात है। यह उनका लेना-देना है, उससे आपको क्या प्रयोजन है? वह आपको कहां बाधा डाल रहे हैं। वे बेचारे चुपचाप आंख बन्द किये न मालूम किस काव्य में खो गये हैं! आप क्यों उपद्रव बीच में बन रहे हैं? आपसे क्या लेना-देना है? उन्होंने कहा, नहीं, यह मेरे बर्दाश्त के बाहर है, पब्लिक पार्क में ऐसी आचरणहीनता हो रही है!

अब हमारी बुद्धि है। हम इसको आचरणहीनता कहें? किसको आचरणहीनता कहेंगे? डाक्टर आचरणहीन है, या एक युवक और युवती का एक दूसरे के पास बैठना आचरणहीनता है। अगर एक युवक और युवती का प्रेम करना आचरणहीन है तो यह पृथ्वी ज्यादा दिन नहीं चल सकती। फिर तो यह डूबेगी। फिर इसको बचने का उपाय नहीं है और यह पृथ्वी डूबेगी तो डाक्टर भी नहीं बच सकता, यह भी जायेगा। नहीं, मेरी दृष्टि में यह डाक्टर आचरणहीन है। दूसरे व्यक्तियों के जीवन में इतनी ज्यादा घुसपैठ, आचरणहीनता है। दूसरे व्यक्तियों का अपना जीवन है। उस जीवन में हम इतनी आतुरता से प्रवेश करें, यह हमारे भीतर किसी गहरी कमी का द्योतक है।

मेरी अपनी समझ है—मैंने उस डाक्टर को कहा कि ऐसा प्रतीत होता है कि तुम किसी स्त्री को कभी प्रेम नहीं कर पाये। काश, तुमने किसी स्त्री को प्रेम किया होता! काश, तुम किसी स्त्री के पास बैठकर किसी स्वप्न में खो गये होते तो तुम्हें आचरणहीनता मालूम न होती। लेकिन तुमने किसी स्त्री को कभी प्रेम

नहीं किया। इसलिए तुम्हें आचरणहीनता दिखायी पड़ी है। और तुमने कभी किसी स्त्री को नहीं चाहा इसलिए तुम दूसरे बहाने खोजकर उस लड़की को देखते रहे। वह तुम्हारा देखना, वह तुम्हारा झांकना, वह चोरी से तुम्हारा बार-बार उसकी तरफ रुख करना एकदम चरित्रहीनता का लक्षण है।

हम चरित्र की क्या परिभाषा करते हैं, इस पर सब कुछ निर्भर करता है। आप हैरान होंगे, हमारे शास्त्रों में जिनमें बड़े-बड़े साधु संन्यासियों ने, बड़े महात्माओं ने किताबें लिखी हैं, उसमें स्त्रियों की भारी निन्दा की है और निन्दा के साथ-साथ स्त्रियों के एक-एक अंग की रसपूर्ण चर्चा भी की है। असल में साधु-संन्यासी स्त्रियों की निन्दा के बहाने उनके अंगों की चर्चा का रस भी ले लेते हैं। वह चर्चा भी साथ चलेगी, वह निन्दा भी साथ चलेगी—वह चर्चा भी साथ चलेगी।

कौन है चरित्रवान? चरित्र के हमें सारे आधार बदलने पड़ेंगे। अब तक हम जिसको चरित्र कहते रहे हैं, वह चरित्र कम है, वह दूसरे को दुश्चरित्र सिद्ध करने की चेष्टा ज्यादा है। अब तक जिसको हम आचरण कहते रहे हैं वह आचरण कम है, वह दूसरे को निन्दित करने की, नर्क भेजने का उपाय और व्यवस्था ज्यादा है। सांझ इस सम्बन्ध में मैं थोड़ी बात करना चाहूंगा कि चरित्र क्या है क्योंकि वह भी हमारा जिन्दा सवाल है।

मेरी बातों को इतनी प्रेम और शान्ति से सुना उससे अनुग्रहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

●

अहमदाबाद, २६ दिसम्बर १९६९

५–भारत के भटके युवक

मेरे प्रिय आत्मन्,

हमारी चर्चाओं का आज अन्तिम दिन है, और बहुत से प्रश्न बाकी रह गये हैं। मैं बहुत थोड़े-थोड़े में जो जरूरी प्रश्न मालूम होते हैं, उनकी चर्चा करना चाहूंगा।

एक मित्र ने पूछा है कि कहा जाता है कि भारत का जवान राह खो बैठा है। उसे सच्ची राह पर कैसे लाया जा सकता है?

पहली तो यह बात ही झूठ है कि भारत का जवान राह खो बैठा है। भारत का जवान राह नहीं खो बैठा है, भारत की बूढ़ी पीढ़ी की राह अचानक आकर व्यर्थ हो गयी है, और आगे कोई राह नहीं है। एक रास्ते पर हम जाते हैं और फिर रास्ता खत्म हो जाता है, खड्डा आ जाता है। आज तक जिसे हमने रास्ता समझा था वह अचानक समाप्त हो गया है, और आगे कोई रास्ता नहीं है। और रास्ता न हो तो खोने के सिवाय मार्ग क्या रह जायेगा? भारत का जवान नहीं खो गया है, भारत ने अब तक जो रास्ता निर्मित किया था, इस सदी में आकर हमें पता चला है कि वह रास्ता है नहीं। इसलिए हम बेराह खड़े हो गये हैं। रास्ता तो तब खोया जाता है जब रास्ता हो और कोई रास्ते से भटक जाये। जब रास्ता ही न बचा हो तो किसी भटकने के लिए जिम्मेवार नहीं ठहराया जा सकता। जवान को रास्ते पर नहीं लाना है, रास्ता बनाना है। रास्ता नहीं है आज। और

रास्ता बन जाये तो जवान सदा रास्ते पर आने को तैयार है, हमेशा तैयार है। क्योंकि जीना है उसे, रास्ते से भटक कर जी थोड़े सकेगा! बूढ़े रास्ते से भटके, भटक सकते हैं। क्योंकि जब उन्हें जीना नहीं है। और सब रास्ते—भटके हुए रास्ते भी कब्र तक पहुंचा देते हैं।

लेकिन जिसे जीना है, वह भटक नहीं सकता। भटकना मजबूरी है उसकी। जीना है तो रास्ते पर होना पड़ेगा क्योंकि भटके हुए रास्ते जिन्दगी की मन्जिल तक नहीं ले जा सकते हैं। जिन्दगी की मन्जिल तक पहुंचने के लिए ठीक रास्ता चाहिए, लेकिन रास्ता नहीं है। मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि युवक नहीं भटक गया है, हमने जो रास्ता बनाया था वह रास्ता ही विलीन हो गया; वह रास्ता ही नहीं है अब। आगे कोई रास्ता ही नहीं है। और अगर हम युवक वर्ग को ही गाली दिये चले जायेंगे कि तुम भटक गये हो, तो वह हमसे सिर्फ क्रुद्ध हो सकता है क्योंकि उसे कोई रास्ता दिखायी नहीं पड़ रहा है और आप कहते हैं भटक गये हो। हमने कुछ रास्ता बनाया था, जो बीसवीं सदी में आकर व्यर्थ हो गया है। हमने एक रास्ता बनाया था। वह रास्ता ऐसा था कि उसका व्यर्थ हो जाना अनिवार्य था।

पहली तो बात यह है कि हमने पृथ्वी पर चलने लायक रास्ता कभी नहीं बनाया। हमने रास्ता बनाया था, जैसे बैबीलोन में टावर बनाया था कुछ लोगों ने स्वर्ग जाने के लिए। वह जमीन पर नहीं जाता था, वह ऊपर आकाश की तरफ जा रहा था। स्वर्ग पहुंचने के लिए कुछ लोगों ने एक टावर बनाया था। हिन्दुस्तान ने पांच हजार सालों में जमीन पर चलने लायक रास्ता नहीं बनाया, स्वर्ग पर पहुंचने के रास्ते खोजे हैं। स्वर्ग पर पहुंचने के रास्ते खोजने में हम पृथ्वी पर रास्ते बनाने भूल गये हैं। हमारी आंखें आकाश की तरफ अटक गयी हैं। और हमारे पैर तो मजबूरी से पृथ्वी पर ही चलेंगे। बीसवीं सदी में आकर हमको अचानक पता चला है कि हमारी आंखों और पैरों में विरोध हो गया है। आंखें आकाश से वापस जमीन की तरफ लौटी हैं तो हम देखते हैं, नीचे कोई रास्ता नहीं है। नीचे हमने कभी देखा ही न था।

इस देश में हमने एक पारलौकिक संस्कृति बनाने की कोशिश की थी। बड़ा अद्‌भुत सपना था, लेकिन सफल नहीं हुआ, न सफल हो सकता था। इस पृथ्वी पर रहने वाले को इस पृथ्वी की संस्कृति बनानी पड़ेगी, पार्थिव। इस पृथ्वी की संस्कृति हम निर्मित नहीं किये।

मैंने सुना है, यूनान में एक बहुत बड़ा ज्योतिषी एक रात एक गड्ढे में गिर गया। चिल्लाया है, बड़ी मुश्किल से पास की किसी किसान औरत ने उसे निकाला है। जब निकाला है तब उस ज्योतिषी ने कहा है कि मां, तुझे बहुत धन्यवाद। मैं एक बहुत बड़ा ज्योतिषी हूं, तारों के सम्बन्ध में मुझसे ज्यादा कोई भी नहीं

जानता । अगर तुझे तारों के सम्बन्ध में कुछ भी जानना हो तो मैं बिना फीस के
तुझे बता दूंगा, तू चली आना । मेरी फीस भी बहुत ज्यादा है । उस बूढ़ी औरत
ने कहा, बेटे, तुम निश्चिन्त रहो, मैं कभी न आऊंगी क्योंकि जिसे अभी जमीन के
गड्ढे नहीं दिखायी पड़ते हैं उसके आकाश के तारों के ज्ञान का भरोसा मैं कैसे करूं ?
उस बूढ़ी औरत ने ठीक कहा । और वह ज्योतिषी गिरा इसीलिए गड्ढे में,
कि वह रात को आकाश के तारों का अध्ययन करता हुआ चला जा रहा था ।
पैर भटक गये और वह गड्ढे में गिर गया ।

भारत कोई तीन हजार साल से गड्ढे में पड़ा है आकाश की तरफ आंखें उठाने के कारण । नहीं, मैं यह नहीं कहता हूं कि किन्हीं क्षणों में आकाश की तरफ न देखा जाये, लेकिन आकाश की तरफ देखने में समर्थ वही है जो जमीन पर रास्ता बना ले और विश्राम कर सके । वह आकाश की तरफ देख सकता है । लेकिन हम जमीन को भूलकर अगर आकाश की तरफ देखेंगे तो गहरी खाई में गिरने के सिवाय कोई मार्ग नहीं है । लेकिन पूछा जा सकता है कि भारत के जवान ने इसके पहले यह भटकन क्यों न ली ? बीसवीं सदी में आकर क्या बात हो गयी ? रास्ता मैं कह रहा हूं, तीन हजार साल से हमारी पूरी संस्कृति ने जमीन पर रास्ता ही नहीं बनाया । अगर हम पुराने शास्त्र पढ़ें तो उनमें हमें मिल जायेंगी किताबें, जिनका नाम है, मोक्ष-मार्ग, मोक्ष की तरफ जाने वाला रास्ता । लेकिन पृथ्वी पर चलने वाले रास्ते के सम्बन्ध में एक किताब भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में नहीं है । स्वर्ग जाने का रास्ता भी है, नर्क जाने का रास्ता भी है, लेकिन पृथ्वी पर चलने के रास्ते के सम्बन्ध में कोई बात नहीं है ।

पूछा जा सकता है, आज ही क्यों यह सवाल उठा ? इसके पहले जवान ने इन्कार क्यों न किया ? उसका कारण था । हमने एक और तरकीब की थी । हमने एक तरकीब की थी कि हम जवान को जवान होने ही न देते थे । बच्चों की शादियां कर देते थे और जब बच्चों की शादियां हो जाती थीं, वे जिम्मेवार हो जाते थे । सत्रह और अठारह साल का होते-होते लड़का बाप बन जाता था । बाप जवान नहीं हो सकता, बाप बूढ़ा होना शुरू हो जाता है । और जब कोई व्यक्ति बाप बन जाता है तो बूढ़ों की तरह सोचने लगता है । हिन्दुस्तान में जवान भी नयी घटना है, नया फिनोमिना है । हिन्दुस्तान में जवान पहले कभी नहीं था । बच्चे थे और बूढ़े थे । और दोनों के बीच में हमने ऐसा ताल-मेल बिठाया था कि बीच की सीढ़ी को बिल्कुल गोल कर दिया था । उसका पता ही नहीं चलता था कि कहां है । आठ और नौ साल के बच्चे की शादी कर देंगे तो जवान कैसे पैदा होगा ?
जवान भी बीसवीं सदी की घटना है । क्योंकि अब शादी होती है पच्चीस और छब्बीस वर्ष में । बचपन चला जाता है बारह, तेरह, चौदह साल में । फिर चौदह साल के बाद दस साल का वक्त बचता है जब आदमी बच्चा भी नहीं होता और बूढ़ा

भी नहीं होता । यह दस साल का वक्त है जब वह युवा होता है । यह पीढ़ी पहली दफे पैदा हुई है । यंगर जनरेशन नयी घटना है । यह कभी थी ही नहीं दुनिया में । और इसलिए उसके साथ नये सवाल आ गये हैं । उस नयी पीढ़ी ने पूछना शुरू किया है । उस नयी पीढ़ी ने संदेह करना शुरू किया है । उस नयी पीढ़ी ने कहा कि हमें पृथ्वी पर रहना है । ये स्वर्ग की बातें बन्द करो । हमें जमीन पर रहने का रास्ता बताओ । और जमीन पर रहने का हमारे पास कोई रास्ता नहीं है, इसलिए वह भटक गयी है । और अगर आज भारत की नयी पीढ़ी पश्चिम का अनुकरण कर रही है तो मजबूरी में; क्योंकि हमारे बाप-दादों ने उसके लिए कोई रास्ता नहीं बनाया । उसे मजबूरी में दूसरों की तरफ देखना पड़ रहा है । वह मजबूरी है । उसके लिए जवान को दोषी मत ठहराना । और अगर हमने देर की तो शायद हो सकता है कि हम सदा के लिए इमीटेटिव हो जायें, सदा के लिए हम नकल करने लगें ।

हमें जल्दी करनी चाहिए और जमीन के रास्ते अपने बना लेने चाहिए ताकी हम अपने पैर पर खड़े हो सकें । आज हमें हर चीज के लिए पश्चिम की तरफ देखना पड़ रहा है । हर चीज के लिए हमें उनकी तरफ आंख उठानी पड़ती है । और उसका कारण है । उसका कारण यह है कि हमारे पास कुछ भी नहीं है । सच यह है कि हमारे मां-बाप हमारे लिए वसीयत में सिवाय अध्यात्म के और कुछ भी नहीं छोड़ गये हैं । अकेले अध्यात्म से जिया नहीं जा सकता । हां, मरना हो तो मरा जा सकता है । अकेले अध्यात्म से जीना नहीं निकलता है । और ध्यान रहे, अध्यात्म की उत्सुकता जवान की नहीं होती है, आमतौर से बूढ़े की होती है। क्योंकि जैसे आदमी मरने के करीब पहुंचता है, विचार करने लगता है, मरने के बाद क्या ? जवान पूछता है जिन्दगी में क्या है ? बूढ़ा पूछता है, मरने के बाद क्या है ? उनके सवाल अलग, उनके जवाब अलग होंगे । हमारे सारे शास्त्र बूढ़ों के लिए लिखे गये हैं । कोई परीक्षित मरते समय सुनता है । वे बूढ़े के शास्त्र हैं जो पूछ रहा है कि मरने के बाद क्या होगा—स्वर्ग होंगे, नर्क होंगे, देवता होंगे, आत्मा बचेगी, नहीं बचेगी, मैं कहां जाऊंगा, नहीं जाऊंगा ? वह मरते आदमी के शास्त्र हैं । जिन्दा आदमी, जिसे जीना है उसके लिए हमने कौन-सा शास्त्र निर्मित किया है ? इसलिए हम विज्ञान पैदा नहीं कर पाये । विज्ञान जवान का शास्त्र है, धर्म बूढ़े का शास्त्र है ।

तो हमारा जवान जरूर मुश्किल में है, बहुत कठिनाई में है । और मेरी अपनी मान्यता है कि करुणा के योग्य है, क्रोध के योग्य नहीं । बहुत दया के योग्य है क्योंकि उसको कोई वसीयत नहीं छोड़ गया है। एक अर्थ में हमारा युवक अनाथ है । अनाथ इस अर्थों में कि उसकी जमीन की कोई वसीयत उसके पास नहीं है । उसकी पुरानी पीढ़ियां उसके लिए जीने योग्य, जिन्दगी से रस निकालने योग्य, कोई भी

तकनीक, कोई साइंस नहीं छोड़ गयी हैं। हां, उसे एक तरकीब बता दी है कि अगर तुम्हें मरना हो तो मोक्ष जाने का रास्ता है। अभी वह मरना नहीं चाहता है, वह जीना चाहता है उसके लिए व्यर्थ है। इसलिए मन्दिरों में, मस्जिदों में जवान दिखायी नहीं पड़ता। हां, लड़कियों वगैरह के ख्याल से कोई जवान पहुंच गया हो तो बात अलग है। लेकिन मन्दिर और मस्जिद के लिए जवान नहीं जाता, वहां बूढ़े इकट्ठे हो रहे हैं।

वहां बूढ़े क्यों दिखायी पड़ रहे हैं, उसका कारण है। उसका कारण है, बूढ़े की उत्सुकता बदल गयी। अब वह जिन्दा रहने में उत्सुक नहीं है। अब वह ढंग से मरने में उत्सुक है। ठीक है, उसकी उत्सुकता गलत नहीं है। उसकी उत्सुकता की भी तृप्ति होनी चाहिए और उसके चिन्तन को भी मार्ग मिलना चाहिए कि मृत्यु के बाद क्या है? लेकिन वह जवान का चिन्तन नहीं है। तो हम कठिनाई में पड़ गये हैं। रास्ता नहीं है। रास्ता बनाना पड़ेगा।

कौन बनायेगा यह रास्ता? बड़ी जटिलता का सवाल है क्योंकि बूढ़े विरोध में हैं, वृद्ध पीढ़ी विरोध में है और जवान पीढ़ी अनुभवहीन है। रास्ता कौन बनायेगा? रास्ता बनाने के लिए दो चीजों की जरूरत है—अनुभव की और शक्ति की। शक्ति जवान के पास है, अनुभव बूढ़े के पास है। उन दोनों के बीच कोई ताल-मेल नहीं है। रास्ता बनेगा कैसे? रास्ता बनाने के लिए हिन्दुस्तान की बूढ़ी पीढ़ी को जवान के प्रति सहानुभूतिपूर्ण होना पड़ेगा। अपने अनुभव से उसे सचेत करना पड़ेगा, जवान की शक्ति को नियोजित करना पड़ेगा। लेकिन बूढ़ी पीढ़ी निन्दा में संलग्न है। वह सिर्फ निन्दा कर रही है, वह सिर्फ गालियां दे रही है कि सब बिगड़ गये हैं। लेकिन यह कहने से कुछ फल नहीं होता। इससे अगर कोई बिगड़ भी गया हो तो उसे कोई सुधरने का मार्ग नहीं मिलता। अगर कोई न भी बिगड़ा हो तो बार-बार कहने से कि बिगड़ गया है, उसके चित्त में बिगड़ने की दिशा पैदा होती है।

नहीं, वृद्ध पीढ़ी का बहुत ही कीमती समय यह है कि—वह अपने सारे अनुभव पर ध्यान देकर भारत के लिए नया रास्ता बनाने में युवक की शक्ति का नियोजन कर सके। लेकिन यह तभी हो सकता है जब वृद्ध—पुरानी पीढ़ी—नयी पीढ़ी की तरफ निन्दा से न देखे, करुणा और प्रेम से देखे। लेकिन वृद्ध नाराज है। नाराज वह इसलिए है कि उसकी पुरानी सारी दुनिया अस्त-व्यस्त हो गयी है। नाराजगी का कारण दूसरा है। नाराजगी का कारण युवक नहीं है। नाराजगी का कारण उसका अब तक का बनाया हुआ सारा ढांचा गिर गया है। जैसे मैं एक मकान बनाऊं और पूरा मकान गिर जाये और मैं अपने बेटे की पिटायी शुरू कर दूं। मेरा क्रोध तो उस मकान के गिर जाने के लिए है।

पुरानी संस्कृति का पूरा मकान गिर रहा है, गिर गया है। नाराजगी बेटे

पर है। ऐसा लग रहा है कि ये बेटे मकान को गिराये दे रहे हैं। मकान, जैसा हमने बनाया था, वह गिरने ही वाला था। हां, बेटों ने अब तक उसे सहारा दिया था क्योंकि बेटों को हम बहुत जल्दी बूढ़ा बना देते हैं। अब बेटे उसको बचाने में सहायता नहीं दे रहे हैं। गिरा नहीं रहे, सिर्फ बचाने में सहायता नहीं दे रहे। और बूढ़े हाथ कैसे किसी मकान को बचा सकते हैं? वह गिर रहा है। वे बेटों पर नाराज हैं। उस नाराजगी को छोड़ना पड़ेगा। और मेरी दृष्टि में अगर पिछली पीढ़ी नाराजगी को छोड़ दे तो नयी पीढ़ी उसके प्रति आदर से भर सकती है। जो निन्दा करे उसके प्रति आदर नहीं हो सकता। नयी पीढ़ी का आदर नहीं है पुरानी पीढ़ी के प्रति क्योंकि पुरानी पीढ़ी सिवाय निन्दा के और कुछ भी नहीं कर रही है।

मैं एक घर में जाता हूं, जब भी जाता हूं वे सज्जन अपने लड़के को सामने लाकर खड़ा कर देते हैं अपराधी की तरह, कहते हैं, देखिये साहब, अभी कितनी उम्र है तुम्हारी? और मुंह सूंघिये, सिगरेट की बास आ रही है। और उस लड़के को सामने खड़ाकर देते हैं। वह आंख झुकाये हुए खड़ा है। अपराधी अनुभव कर रहा है। वह बाप का दुश्मन हुआ जा रहा है। बुढ़ापे में इस पिता को वह ठीक करेगा। छोड़ नहीं सकता है। यह इकट्ठा हो रहा है क्रोध। उन्होंने न मालूम कितनों के सामने उस लड़के को खड़ा किया होगा और भूल से मेरे सामने भी खड़ा कर दिया।

मैंने उनसे पूछा, यह लड़का सिगरेट अभी नहीं पियेगा तो कब पियेगा? उन्होंने कहा, क्या कहते हैं आप? उस लड़के ने आंख उठाकर मुझे गौर से देखा। पहली दफा एक आदमी आया है कि जिसने सहानुभूति प्रगट की। वह लड़का रात मुझसे अलग से मिलने आया और उसने कहा कि आप मुझे बतायें कि मैं सिगरेट कैसे छोड़ूं? मैं भी परेशान हूं। लेकिन मेरे पिता इतने क्रुद्ध हैं कि मैं सिर्फ उनका क्रोध तोड़ने के लिए, सिर्फ उनके खिलाफ बगावत करने के लिए सिगरेट पिये चला जा रहा हूं। और मैं पीता रहूंगा। वे कितना इन्कार करते हैं, देखते हैं। चोरी से पिऊंगा, छिपकर पिऊंगा, पीता रहूंगा। मेरे पास और कोई उपाय नहीं है इन्कार करने का, तो मैं सिगरेट पीकर डिनाई कर रहा हूं, अपने पिता को इन्कार कर रहा हूं। लेकिन आपको कैसे इन्कार करूं? आपने कहा कि यह उम्र है पीने की, तो मैं पछता रहा हूं। सच में सिगरेट पीने में कोई हर्ज नहीं है? मैं छोड़ना चाहता हूं, लेकिन मेरे पिता मुझे नहीं छोड़ने दे रहे हैं।

पिताओं को पता नहीं है कि उनकी निन्दा उनके बच्चों में उनके प्रति घृणा पैदा करती है, सम्मान नहीं। फिर जब घृणा पैदा करती है और आदर नहीं मिलता तो वे कहते हैं, बेटे आदर नहीं दे रहे हैं। नयी पीढ़ी अनादर से भरी है। गलत है यह बात। मेरे अनुभव में ऐसा नहीं आया। सच तो यह है कि नयी पीढ़ी बहुत आदर देना चाहती है, लेकिन आदर-योग्य लोग खोजने मुश्किल हैं। नयी पीढ़ी

आदर देने को आतुर है, लेकिन न गुरू आदर योग्य मालूम पड़ता है, न पिता आदर योग्य मालूम पड़ता है, न मां आदर योग्य मालूम पड़ती है। क्यों ? क्योंकि पिता, मां और गुरू इस तरह के झूठ बोल रहे हैं जिनको बच्चे बहुत जल्दी आविष्कृत कर लेते हैं। पिता बच्चे को समझा रहा है कि सिगरेट पीना बुरा है, और पिता खुद सिगरेट पी रहा है। कितनी देर तक यह बात छिपायी जायेगी ? पिता बेटे को कह रहा है कि गाली देना बुरा है, और पिता खुद गालियां दे रहा है। और पिता बेटे को कह रहा है कि दूसरे की स्त्रियों को मां-बहन समझना चाहिए, और पिता खुद नहीं समझ पा रहा है। लड़के इसका पता लगा लेते हैं, यह बहुत देर नहीं लगती। लड़के बहुत बुद्धिमान हैं, उनको दिखायी पड़ने लगता है कि क्या हो रहा है ?

यह जो सब हमें दिखायी पड़ता है तो आदर असम्भव हो जाता है । हमें आदर योग्य कोई भी नहीं मिलता। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि नयी पीढ़ी पिता के कारण परमात्मा तक को भी मानने से इन्कार कर रही है क्योंकि परमात्मा सदा ही परम-पिता की तरह सोचा गया है। जब पिता धोखेबाज निकला तो परम पिता परम धोखेबाज हो सकता है। पुरानी पीढ़ियों ने पिता के आदर के कारण ही परमात्मा को आदर दिया था इसलिए उसको हम परम-पिता, गॉड-फादर और सब कहते थे। पिता को इतना आदर था कि ऐसा लगता था कि सारा जगत् भी किसी पिता के प्रोटेक्शन में है। लेकिन पिता गया कि परम-पिता को भी उनके पीछे विदा होना पड़ रहा है। वह नहीं बच सकते। नहीं, पुरानी पीढ़ी को बहुत सोच-समझ की जरूरत है कि वह नये बच्चों का आदर कैसे उपलब्ध कर सकें ! आदर के योग्य पात्र होने की जरूरत है।

मैं अभी एक शिक्षकों के सम्मेलन में गया था। वहां सबसे बड़ा सवाल यही था। सब शिक्षकों के मन में यही सवाल है कि विद्यार्थी शिक्षक को आदर नहीं देते, आदर मिलना चाहिए। पहली तो बात है कि आदर मांगने की इच्छा बहुत आदरयोग्य नहीं है। क्योंकि जब मैं कहता हूं कि मुझे आदर मिलना चाहिए तभी मैं अपात्र और अनधिकारी हो जाता हूं। जो आदर मिलने योग्य है, उसे आदर मिलता है, वह चाहता नहीं, वह मांगता नहीं। शिक्षक बहुत परेशान है, आदर मिलना चाहिए। असल में आदर मिलने चाहिए की आकांक्षा तभी पैदा होती है, जब भीतर हम आदरयोग्य नहीं रह जाते। उनमें से एक शिक्षक ने वहां कहा कि पुराने शास्त्रों ने लिखा है कि गुरू को आदर दिया जाना चाहिए। मैंने उनसे कहा, आपने या तो शास्त्र को गलत पढ़ा होगा, या शास्त्र में गलत लिखा होगा। फिर से शास्त्र लिखना पड़ेगा। उन्होंने कहा, क्या मतलब आपका ? मैंने कहा, मैं यह नहीं कहता कि गुरू को आदर दिया जाना चाहिए; मैं कहता हूं, जिसको आदर देना पड़ता है, वह गुरू है। गुरू को आदर दिये जाने का सवाल नहीं है, जिसे

आदर देना पड़ता है वह गुरू है। हमें परिभाषा बदल देनी पड़ेगी। जो आदर उपलब्ध कर लेता है वह गुरू है। गुरू को आदर देने का कोई सवाल नहीं है। गुरू कोई प्रोफेशन थोड़े ही है, कोई धन्धा थोड़े ही है कि आदर देने की बात को मजबूरी कर दी जाये, कानून बना दिया जाये कि गुरू को आदर दो। वह एक प्रेम का हार्दिक नाता है।

पिता भी अनादृत हुआ है, दुखी है। दुख स्वाभाविक है। लेकिन उसके कारण नहीं खोज रहा है। उसके कारण खोजेगा तो पायेगा कि अनादर के कारण अपने पास हैं। अभी मैं एक घर में रुका। उनके पिता ने कहा कि मेरे लड़के को आप समझाइए। वह किसी लड़की के प्रेम में पड़ा हुआ है और पिता नहीं चाहता कि इस लड़की से सम्बन्ध हो। और मैं हैरान हुआ, क्योंकि ये जो पिता हैं, इन्होंने भी प्रेम-विवाह किया था। तो मैंने उनसे कहा, आप यह क्या कह रहे हैं ? तो उन्होंने कहा कि हमारी बात और थी। सब पिता यही सोचते हैं कि हमारी बात और थी। ये लड़के भी कल पिता होकर यही सोचेंगे कि हमारी बात और थी।

नहीं, इस तरह नहीं चलेगा। इस तरह नहीं चल सकता है । नया युवक भटक नहीं गया है, पुरानी पीढ़ी मार्ग देते में असमर्थ है। अगर हम यह असमर्थता स्वीकार कर लें तो मार्ग बन सकता है, कोई कठिनाई नहीं है । इतना स्वस्थ, इतना विचारशील, इतना बुद्धिमान युवक कब था पृथ्वी पर ? यह पहला मौका है, जो सौभाग्य बनना चाहिए वह दुर्भाग्य बन रहा है। इतना विचारशील युवक कब था पृथ्वी पर ? कभी भी नहीं था। जो सौभाग्य बन सकती है घटना, वह दुर्भाग्य में बदलती जा रही है।

बुद्धिमत्ता खतरनाक है एक अर्थों में, कि अगर उसे ठीक मार्ग न मिले तो विध्वंसात्मक हो जाती है। घर में दो बेटे हों, एक बेटा अगर गोबर गणेश है तो आज्ञाकारी होगा, सदा आज्ञाकारी होगा क्योंकि आज्ञा तोड़ने के लिए थोड़ी बुद्धि की जरूरत पड़ती है। हां कहने के लिए किस बुद्धिमत्ता की जरूरत है ? न कहने के लिए बुद्धिमत्ता की जरूरत है, क्योंकि न कहने के लिए कारण भी बताने पड़ेंगे, तर्क भी देना पड़ेगा, न कहने के लिए खड़ा भी होना पड़ेगा, पिता से टक्कर भी लेनी पड़ेगी । तो गोबर-गणेश बेटा होगा तो चुपचाप राजी हो जाता है कि हां, पिता खुश होते हैं। बहुत प्रसन्नता की बात है, लड़का बड़ा आज्ञाकारी है। लेकिन उन्हें पता नहीं कि लड़का बिल्कुल मरा हुआ है, लड़का जिन्दा नहीं है।

अगर लड़के में थोड़ी बुद्धिमत्ता होगी तो हजार सवाल उठायेगा, सब बातों से राजी नहीं हो जायेगा, इन्कार करेगा। और अगर पिता को ख्याल हो कि मैं सर्वज्ञ हूं तो कष्ट शुरू हो जायेगा। लेकिन कोई सर्वज्ञ नहीं है, पिता होने से कोई सर्वज्ञ नहीं होता। असल में पिता होना इतना सरल है कि उसके लिए बुद्धिमत्ता की कोई जरूरत नहीं पड़ती। पिता होने के लिए कौन-सी बुद्धिमत्ता की जरूरत

है ? पिता होना इतनी सरल घटना है, इतनी टेकनीकल, कि उसके लिए किसी बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है, लेकिन पिता होने के साथ एक अहंकार जुड़ा रहा है अब तक कि मैं सब जानता हूं ।

नहीं, ये बच्चे अब राजी नहीं हो सकते कि आप सब जानते हैं । यह झूठ है बात । अब पिता को जो वह जानता है, उतना ही कहना पड़ेगा, इतना मैं जानता हूं । जो नहीं जानता वह कहना पड़ेगा कि नहीं जानता हूं । और जीवन के सारे सत्य खोल देने पड़ेंगे तो बाप और बेटे के बीच सेतु बन सकता है । लेकिन बाप और बेटे के बीच कोई सेतु नहीं मालूम होता है क्योंकि डायलाग ही नहीं होता है । उनके बीच कोई चर्चा ही नहीं है । ऐसा नहीं है कि बाप अपने बेटों को बिठा-कर बात कर रहा हो जिन्दगी के मसलों की । अपनी तकलीफें बता रहा हो, अपनी भूलें बता रहा हो, अपनी जिन्दगी की मुसीबतें बता रहा हो, नहीं, ऐसा नहीं है । बाप एक सख्त रुख रखता है कि मैं सब जानता हूं, मैंने कभी भूल नहीं की, मैं सदा ठीक हूं ।

अन्यायपूर्ण है यह बात । इससे बेटों से सम्बन्ध बनेगा नहीं, टूट जायेगा । और इसका रिएक्शन, प्रतिक्रिया यह होगी कि बेटे यह समझेंगे कि कुछ भी नहीं जानता है । नहीं, इसे तोड़ना पड़ेगा । और इसे तोड़ने में कौन शुरूआत करे ? बेटे शुरूआत करें कि पिता शुरूआत करे ? मैं मानता हूं, बेटे शुरूआत करेंगे, जरा मुश्किल है । बेटे आखिर बेटे हैं, बच्चे आखिर बच्चे हैं । उनसे हम वृद्धों से ज्यादा बुद्धिमानी की अपेक्षा एकदम से करें तो कठिन है । नहीं, पिता को ही शुरूआत करनी पड़ेगी । उसे मार्ग बनाना पड़ेगा, बेटे से सम्बन्ध और मित्रता जोड़नी पड़ेगी तो हम जिन्दगी के सम्बन्ध में सवाल उठा सकते हैं, सीख सकते हैं, हल कर सकते हैं ।

नयी पीढ़ी भटक नहीं रही है, नयी पीढ़ी सिर्फ अतिरिक्त ऊर्जा से भरी हुई सामने खड़ी है और हम कोई मार्ग नहीं खोज पा रहे हैं । जैसे कोई झरने में ताकत हो, पानी फूट पड़ने को हो और कोई मार्ग न मिलता हो, पानी सब तरफ से बिखर जाता हो, व्यर्थ हो जाता हो । जैसे आकाश में बिजली चमकती है और हम बिजली को मार्ग न दे सकें तो सिर्फ चमकती है और व्यर्थ हो जाती है । युवकों के पास बड़ी शक्ति है, होनी ही चाहिए । वह बड़ी शक्ति बिलकुल अनियोजित भटक रही है । उसे कोई नियोजन नहीं है, कोई दिशा नहीं है । दिशा-हारा युवक खड़ा है, लेकिन जिम्मेवार युवक नहीं है । और ध्यान रहे, यह मैं किसी खास पीढ़ी से नहीं कह रहा हूं । आज जो युवक हैं, कल वे पिता हो जायेंगे और वे भी इसी तरह अपने बेटों को जिम्मेवार ठहराने लगेंगे । वही गलती फिर शुरू हो जायेगी ।

नहीं, पुरानी पीढ़ी को बहुत शान्ति से विचार करना चाहिए । क्रोध छोड़कर बच्चों के निकट आना पड़ेगा और जिन्दगी कैसे बने, उसकी दिशायें सोचनी पड़ेंगी,

और साथ खड़े होना पड़ेगा । आज्ञा देने वाले की तरह नहीं, सह-यात्री की तरह, एल्डर ब्रदर्स की तरह । पिता भी अब बड़े भाई से ज्यादा नहीं है । इसी भांति उसे खड़ा होना पड़ेगा । पुरानी दृष्टि और पुराने आदर सम्मान का केन्द्र अब नहीं चल सकता है । वह बात गयी । उस बात को भूल जाना चाहिए । वह इतिहास का अध्याय समाप्त हो गया है ।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि क्या विद्यार्थी राजनीतिक में भाग लें ?

सवाल बहुत महत्वपूर्ण है, और राजनीतिक दो तरह से उत्तर देंगे । अगर राजनीतिज्ञ के हित में होगा तो कहेगा, राजनीति में भाग लेना चाहिए । जैसे, आजादी के पहले कांग्रेस के नेता कहेंगे कि राजनीति में भाग लेना चाहिए । और आजादी के बाद कांग्रेस के नेता कहेंगे विद्यार्थी को राजनीति में भाग कभी नहीं लेना चाहिए । जो पार्टी हुकूमत में है वह कहेगी, राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए । जो पार्टी हुकूमत में नहीं है, वह कहेगी राजनीति में भाग लेना चाहिए । राजनीतिज्ञ अपना हित देखकर चलता है । और राजनीतिज्ञ देखता है कि जब युवक की ताकत मिलने से उसे फायदा होगा तो वह कहता है कि भाग लो । और जब उसे दिखता है कि अब हम ताकत में आ गये, और युवक ने अगर भाग लिया तो वह कुर्सी से नीचे उतार सकता है । वह कहता है, भाग मत लो । विद्यार्थियों का काम यूनिवर्सिटी में अध्ययन करना है ।

मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं और मैं मानता हूं कि चाहे सत्ता में, चाहे सत्ता के बाहर जो लोग भी कहते हैं कि राजनीति में भाग लो, उनके कहने में भी राज-नीति है । और जो कहते हैं राजनीति में भी मत लो, उनके इस कहने में भी राजनीति है । ये दोनों ही पोलिटिकल—दोनों ही वक्तव्य । लेकिन मेरी दृष्टि यह है कि विद्यार्थी जिन्दगी की तैयारी कर रहा है, उसे जिन्दगी में अभी उतरना नहीं चाहिए, तैयारी करनी चाहिए । राजनीति को समझना चाहिए पूरी तरह । राजनीति में भाग लेने का अभी कोई अर्थ नहीं है । राजनीति को समझना चाहिए ताकि अगर वह कल भाग लेने की स्थिति में आये तो उसका शोषण न किया जा सके । राजनीतिज्ञ उसका शोषण न कर पायें । लेकिन गांधीजी ने एक गलत आदत इस मुल्क में डाली ।

गांधीजी पहले आदमी हैं जो विद्यार्थी को राजनीति में लाये । रवीन्द्रनाथ ने विरोध किया था लेकिन रवीन्द्रनाथ की कौन सुनता ! बल्कि रवीन्द्रनाथ को लोगों ने देशद्रोही कहा, कि यह आदमी देशद्रोही है । गांधीजी ने कहा कि विद्यार्थी छोड़ दें यूनिवर्सिटी, और कालेज छोड़कर आजादी की लड़ाई में आ जायें । रवीन्द्र-नाथ ने कहा, यह बहुत गलत बात सिखा रहे हैं आप । क्योंकि एक बार विद्यार्थी यूनिवर्सिटी को छोड़कर बाहर आ आयेगा तो भीतर ले जाना फिर बहुत मुश्किल पड़ेगा । अब मुश्किल पड़ रहा है । लेकिन लोगों ने कहा कि रवीन्द्रनाथ देशद्रोही हैं । गांधीजी देश-प्रेम की बातें कर रहे हैं, विद्यार्थी को अभी पढ़ने का वक्त नहीं है ।

जब देश गुलाम है तो पढ़ाई कैसी ! लड़कों को बाहर आ जाना है। लड़के बाहर आ गये और जब से वे बाहर आये हैं तब से उन्होंने भीतर जाने का नाम ही नहीं लिया है।

आजादी तो आ गयी, अब वे भीतर नहीं जाते। अब वे लड़के यह कहते हैं कि अब हमें समाजवाद लाना है। कोई लड़का कहता है, हमें साम्यवाद लाना है, कोई कुछ और कह रहा है। वह कह रहा है, पढ़ना-लिखना कैसा ? जब तक साम्यवाद न आ जाये, जब तक समाजवाद न आ जाये ? अब पढ़ना-लिखना कभी नहीं हो सकता। एनी बेसेंट ने गांधीजी का विरोध किया कि एनी बेसेंट की सारी इज्जत खत्म हो गयी। जनता बहुत अद्‌भुत है। एनी बेसेंट की सारी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल गयी क्योंकि उसने कहा कि यह बात गलत है। विद्यार्थी का विश्वविद्यालय से बाहर लाना बहुत महंगा काम है। आजादी के लिए लड़ने के लिए और कोई नहीं है, विद्यार्थी हैं सिर्फ ? यह इतना बड़ा मुल्क है, सिर्फ विद्यार्थी ही आजादी के लिए लड़ने के लिए हैं ? लेकिन गांधीजी विद्यार्थियों को बाहर ले आये।

असल में गांधीजी तो शिक्षा के विरोधी थे। उन्होंने अपने बेटों को पढ़ाया-लिखाया नहीं, सबकी जिन्दगी खराब की। उनके बड़े बेटे ने इसीलिए बगावत की, और उनके बड़े बेटे ने लिखा कि हमारी जिन्दगी तुम खराब कर रहे हो। गांधीजी से उसने कहा, कि तुम खुद तो पढ़-लिख गये हो और हमें पढ़ा-लिखा नहीं रहे हो। तो गांधीजी कहते थे कि बुनियादी शिक्षा काफी है। बुनियादी शिक्षा से एक आदमी ठीक अर्थों में आदमी ही नहीं बन सकता। बुनियादी शिक्षा का मतलब है, अशिक्षित रहने का उपाय। बुनियादी शिक्षा का मतलब है, चर्खा चलाना सीख लो, तकली चलाना सीख लो, जूता सीना सीख लो, कपड़ा बुनना सीख लो, काम पूरा हो गया। फिर आइन्स्टीन कैसे पैदा होगा ? और फिर अणु-शक्ति कौन खोजेगा और चांद पर कौन पहुंचेगा ? अभी तक चर्खे पर बैठकर चांद पर पहुंचने का कोई उपाय तो निकला नहीं। नहीं, लेकिन इतना काफी है। गांधीजी मानते थे, शिक्षा की कोई जरूरत नहीं है। गांधीजी समझते थे, यह शिक्षा बहुत बड़ा रोग है, तो ठीक था कि उन्होंने लोगों को शिक्षा के बाहर ले आये और वे विद्यार्थी अब तक नहीं गये। और हिन्दुस्तान की प्रतिभा को काफी नुकसान पहुंच रहा है।

मैं विद्यार्थियों से कहना चाहूंगा, उनके सामने सबसे बड़ा सवाल है, देश की प्रतिभा में रोज नये चांद लगाना। देश की प्रतिभा कैसे निखरे, इसके लिए देश उनको पच्चीस वर्ष तक भोजन की, कपड़े की सारी व्यवस्था कर रहा है। उनसे देश और कोई अपेक्षा नहीं करता। उनसे सिर्फ एक अपेक्षा करता है कि वह देश की प्रतिभा को ऊंचाइयों पर ले जायें। गौरीशंकर तक पहुंचा दें, शिखरों को छुआ दें। दुनिया में कोई प्रतिभा उनसे आगे न हो। पूरा देश उनके लिए मेहनत करके इस आशा से पच्चीस वर्ष सुरक्षित कर रहा है, और वे—वे अगर राजनीतिक

नेताओं के पीछे नारेबाजी में लगे हैं और झंडे लेकर जयजयकार कर रहे हैं तो वे देश के साथ बहुत नुकसान की बात कर रहे हैं, और अपने साथ भी नुकसान की बात कर रहे हैं।

मैं विद्यार्थियों के राजनीति में भाग लेने के एकदम विरोधी हूं। इसलिए विरोधी हूं कि विद्यार्थी का मतलब ही खतम हो जाता है। हां, विद्यार्थी राजनीति समझे, और ठीक से समझे ताकि कल जब वह पच्चीस साल का होकर यूनिवर्सिटी के बाहर आये और जिन्दगी में उतरे, तो उसे कोई दो कौड़ी के आदमी राजनीति में धोखेबाजी न कर सके। कोई भी मुल्क के ऊपर हावी न हो सके। लेकिन, जो हुकूमत में नहीं हैं वे राजनीतिज्ञ उसको कहते रहेंगे कि राजनीति में आओ। उसे लगाते रहेंगे। आखिर उनकी इतनी आतुरता विद्यार्थी के प्रति क्यों है ? उसका कारण है कि विद्यार्थी शक्ति का स्रोत है। विद्यार्थी जिसके साथ खड़ा हो जाये वह गलत हो कि सही, उसके पास शक्ति उपलब्ध हो जाती है। इसलिए जवान का शोषण हमेशा किया जाता रहा है। चाहे कोई भी मूवमेंट हो, आन्दोलन हो, जवान को पकड़ने की कोशिश की जाती है। हिटलर ने नाजी पार्टी बनायी, उसने दूसरों की फिक्र न की। वह छोटे-छोटे बच्चों और जवानों के पास गया। उसने उनको पकड़ने की कोशिश की क्योंकि कल वे जवान होंगे, कल उनके हाथ में ताकत आयेगी और फिर उनके द्वारा सब कुछ करवाया जा सकता है।

सब राजनीतिज्ञ उत्सुक हैं युवकों में, लेकिन युवकों को राजनीतिज्ञों में उत्सुकता बिलकुल छोड़ देनी चाहिए। हां, राजनीति में उत्सुकता लेनी चाहिए, लेकिन इस हिसाब से कि हम समझ पायें। भाग लेने का कोई सवाल नहीं है। भाग लेने का वक्त आयेगा। इतनी जल्दी भी क्या है ? भाग लेने का वक्त जल्दी आ जायेगा। उसके पहले बुद्धि परिपक्व हो, हम ठीक से समझ पायें देश का हित क्या है, अहित क्या है, जगत की व्यवस्था क्या है ? अभी हम नहीं समझ पा रहे हैं। अगर हिन्दुस्तान का विद्यार्थी राजनीति को ठीक से समझे तो बहुत हैरान होगा। हिन्दुस्तान में राजनीति के नाम से क्या हो रहा है, बहुत अजीब बात है। हिन्दुस्तान का कांस्टीट्यूशन अगर हम उठाकर देखें तो जिसको पहले भानुमती का पिटारा कहते थे वही है। सारी दुनिया के सारे कांस्टीट्यूशंस में से चुनकर जो भी ठीक मालूम पड़ा है, इकट्ठा कर लिया है। जैसे कि बिल्ली की आंख अच्छी लगी तो आंख ले ली, कुत्ते की टांग अच्छी लगी तो टांग ले ली, सब इकट्ठा कर लिया, कौवे के पंख अच्छे लगे तो पंख ले लिए। अब एक जानवर बना है जिसमें कोई जान ही नहीं है। और वह कोई जानवर भी नहीं है। भगवान् भी नहीं पहचान सकता है कि यह कौन है ? राजनीतिक बोध हमारा बहुत कम है, अत्यन्त कम है।

वह राजनीतिक बोध हिन्दुस्तान को कौन देगा ? हिन्दुस्तान में आने वाली पीढ़ी अगर राजनीति को ठीक से समझती है तो बोध पैदा होगा। कैसा दुर्भाग्य है

कि एक राजनीतिक पार्टी खड़ी होती है तो चुनाव चिह्न पर भी जीत जाती है। चिह्न बहुत महत्वपूर्ण है। गांवों में जाकर समझाया जा सकता है कि अगर बैल न रहेंगे तो तुम खेती कैसे करोगे ? और बेचारा किसान सोचता है कि बात तो ठीक है, अगर बैल न रहे तो खेती कैसे करेंगे ? बैल जोड़ी को वोट देनी चाहिए।

जहां राजनीतिक चेतना इतनी कम है वहां हिन्दुस्तान के युवकों में राजनीतिक चेतना में निष्णात होने की जरूरत है। राजनीति में भाग जितना जल्दी आप लेंगे, उतने अपरिपक्व होंगे। रुकें, अध्ययन करें, जानें, समझें, चारों तरफ की जिन्दगी को देखें। दुनिया का इतिहास देखें, दुनिया की आज की व्यवस्था देखें और सोचें कि इस देश के लिए हमें क्या करना है। कल वक्त आयेगा, उसके लिए तैयार हो जायें। लेकिन अगर आज आप कूद जाते हैं तो सिर्फ आपका शोषण होगा, और कुछ भी नहीं हो सकता है। विद्यार्थी राजनीति में भाग लेंगे, देश का दुर्भाग्य ही हो सकता है, सौभाग्य नहीं।

लेकिन राजनीतिज्ञ चाहते हैं। वे चाहते हैं कि भाग लो, कुछ चाहते हैं कि मत लो; लेकिन वे दोनों की राजनीतिक चालें हैं। जो आज कहता है मत लो, अगर कल अपदस्थ हो जायेगा तो वह कहेगा, लो। और जो आज कहता है राजनीति में भाग लो, कल हुकूमत में पहुंच जायेगा, वह कहेगा, बस अब ठीक है, काम पूरा हो गया, अब तुम पढ़ने जाओ। अब तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है। नहीं, इन दोनों राजनीतिज्ञों से सावधान हो जाने की जरूरत है। हिन्दुस्तान को राजनीतिज्ञों से सावधान होना ही पड़ेगा, अन्यथा हिन्दुस्तान का राजनीतिज्ञ हिन्दुस्तान को रोज नर्क में ले जायेगा। वह यात्रा करवा रहा है। बीस साल में उसने बड़ी कुशलता से यह कार्य किया है। आगे भी वह अपनी कुशलता बढ़ाये चला जा रहा है। देश को नर्क में ले जाने के लिए उसकी कुशलता बढ़ती चली जा रही है।

कौन इसे रोकेगा ? हम इतने दिन गुलाम थे कि हमारा कोई राजनीतिक बोध—पोलिटिकल कांसिसनेस नहीं है, इसलिए हम नारेबाजी से जीते हैं। नारा पकड़ जाये, फिर बस बात खत्म हो जाती है। फिर हम बहुत गहरे कारणों में नहीं उतरते कि क्या कारण होगा ! क्या करने से हित होगा, अहित होगा, वह सब हम नहीं सोचते। हिन्दुस्तान आजाद हुआ, अगर हममें राजनीतिक चेतना होती कि जो लोग जेल गये थे, आजादी की लड़ाई लड़ी थी, झंडा उठा के क्रांति की थी, हम कभी भी उनके हाथ में सत्ता न देते क्योंकि जेल जाना एक तरह का क्वालिफिकेशन है, सत्ता में होना बिल्कुल दूसरी तरह की योग्यता चाहिए। जेल जाना योग्यता नहीं है, सत्ता में होने की। लेकिन हमने कहा कि जो जेल गये हैं वे महान् हैं। वे तो निश्चित महान् हैं, लेकिन जेल जाने में महान् हैं। उनको सत्ता देना खतरनाक भी हो सकता है। जो आदमी जिन्दगी के बीस साल जेल में गुजारे, उसके हाथ में राजनीति की पूरी बागडोर सौंप देनी मंहगी पड़ सकती है। और

मंहगी पड़ी।

इंगलैण्ड में एक चेतना है राजनीति की। मुल्क युद्ध में गया, चर्चिल को उन्होंने बुला लिया कि आ जाओ, सम्हाल लो। क्योंकि वे जानते हैं कि युद्ध में चर्चिल कुशल है। युद्ध खतम हुआ, फिर उन्होंने नहीं कहा कि चर्चिल हमारे राष्ट्रपिता हैं, अब उनको हम कभी न छोड़ेंगे। अब तो तुम रहो। युद्ध खतम हुआ, उन्होंने चर्चिल को ऐसे विदा कर दिया कि जैसे पता ही नहीं चला कि चर्चिल ने कुछ बड़ा काम किया हो। चर्चिल ने इतना बड़ा काम किया जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है, लेकिन चर्चिल को चुपचाप विदा कर दिया। क्योंकि जो युद्ध में योग्य था वह कोई राष्ट्र के निर्माण में योग्य होगा, यह जरूरी नहीं है।

हिन्दुस्तान में एक राजनीतिक बोध नहीं है। अगर एक आदमी ने जाकर मजदूरों के पैर दबाये, कोढ़ियों की सेवा की—बहुत अच्छा काम किया, उनके फोटो छापो, उनको भारत-रत्न की पदवियां दे दो लेकिन कृपा करके उनको सत्ता मत सोंपो। लेकिन...जिन्होंने खेत में पैर नहीं रखा, वे खाद्य मंत्री हैं ! जिन्होंने कभी सोचा नहीं कि भोजन क्या बला है, वे स्वास्थ्य मंत्री होंगे। क्यों ? उनकी योग्यता यह है कि वे दस दफा जेल में गये। कुछ समझ में नहीं आता। दस दफा जेल में जाने से किसी को डाक्टर बनाइएगा ? दस दफे जेल में जाने से कोई सर्जन बन जायेगा ? लेकिन दस दफा जेल में जाने से वह मंत्री बन सकता है। मंत्री क्या सबसे अयोग्य काम है ? इसके लिए कोई योग्यता की जरूरत नहीं है ? इस वक्त हिन्दुस्तान में, अगर चपरासी भी होना हो तो एक विशेष योग्यता की जरूरत है। लेकिन प्रधानमंत्री भी मुल्क का होना हो तो किसी योग्यता की कोई जरूरत नहीं है। सबसे अयोग्य काम, जिसके लिए शिक्षित होने की, योग्य होने की, किसी तरह के विशेष ज्ञान की कोई जरूरत नहीं है, वह राजनीति है। इसलिए राजनीति अशिक्षित, अयोग्य, जो कुछ भी न कर सके, सब तरह से पंगु, बुद्धिहीन, उन सबका धन्धा बन गया है। उनका अड्डा वहां खड़ा हो गया है। इससे मुल्क को बचाना पड़ेगा।

आज अजीब हालत है। जो सोच सकते हैं, विचार सकते हैं उनकी कोई आवाज नहीं है। जो जोर से चिल्ला सकता है, मुक्का पटक कर टेबल बजा सकता है, दस-पांच आदमियों को किसी भांति राजी कर सकता है अपने को कि ये बाबूजी हैं पिताजी हैं कहने के लिए, वह आदमी जीत जायेगा। वह मुल्क में ताकत में पहुंच जायेगा। वह फिर बैठ जायेगा वहां। और एक अजीब जाल है जो बहुत हैरान करने वाला है।

दिल्ली में मैं होता हूं, देखकर बड़ी हैरानी होती है। बड़े नेताओं से मिलना होता है तो बड़ी हैरानी होती है कि नेता का बड़ा होना क्या जरूरी रूप से बुद्धि का छोटा होना होता है ? शरीर तो जरूर नेताओं के बड़े हो गये हैं। और शरीर फैलते जा रहे हैं, अत्यन्त कुरूप और बेढंगे होते जा रहे हैं, लेकिन बुद्धि भीतर

सिकुड़ती जा रही है। बुद्धि का कोई पता नहीं चलता।

एक बड़े नेता के घर में मैं मेहमान था। वे मेरे साथ यात्रा कर रहे थे, फिर कहीं हम रुके थे। तो सुबह-सुबह दूध के लिए घर वालों ने पूछा। तो उन्होंने कहा, मैं गाय का ही दूध पीता हूं, भैंस का नहीं पीता। मैंने कहा, क्या हुआ ? उन्होंने कहा कि भैंस का दूध पीने से बुद्धि खराब हो जाती है। तो मैंने कहा, उसके लिए कम से कम बुद्धि होनी चाहिए, तभी खराब हो सकती है। बेफिक्र हों, आपको कोई भी दूध पीने में डर नहीं होना चाहिए। कोई डर की जरूरत नहीं है। मगर आप हंसे, वे हंसे भी नहीं। उसको भी समझने की तो बुद्धि चाहिए न ? वे मुझे मुंह बाकर देखते रह गये कि मैं क्या कह रहा हूं ?

एकदम बुद्धिहीन नेतृत्व मिलकर ऊपर बैठा है। कौन उसे अलग करेगा ? आने वाले दस वर्षों में देश की राजनीतिक चेतना विकसित हो तो यह हो सकता है। स्पष्ट रूप से राजनीतिक चेतना विकसित होनी चाहिए। बहुत हैरानी का मामला हुआ है, लेकिन चारों तरफ घटित हो रहा है। और इसे कैसे रोका जाये ? युवकों को राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए, लेकिन राजनीति पर गहरी नजर रखनी चाहिए। समझना चाहिए, पहचानना चाहिए, अध्ययन करना चाहिए। जब वह कल जिन्दगी में भाग लेने आयें तो जो भूल पिछले हमने बीस सालों में की है वह आगे न हो, इसका बोध, इसकी मेहनत, इसका श्रम उन्हें उठाना है। लेकिन अगर वे नारेबाजी में लगे, और नेताओं के स्वागत करने में लगे, और बाजार में शोर-गुल मचाने में लगे, और वोट देने और दिलवाने में लगे, तो यह राजनीतिक बोध कौन विकसित करेगा ? नहीं, इससे यह नहीं हो सकेगा। देश के युवक के सामने बड़ा सवाल है कि राजनीतिक चेतना को देश में उन्नत करने का। वह हमारी बिल्कुल नहीं है। एक हजार साल तक गुलाम रहने का परिणाम है कि हमने राजनीतिक बोध खो दिया। हम धीरे-धीरे यही कहने लगे, कुछ भी हो, हमें क्या मतलब है ? अपना खाना-पीना, कपड़ा-लत्ता सब ठीक है। बाकी जो हो रहा है होने दो। 'कोई नृप होय हमें का हानी' ! हमारा ऐसा भाव होता चला गया। कोई भी होता रहे।

अब यह नहीं चल सकता क्योंकि अब सारे देश की जिन्दगी हमारे निर्णय पर निर्भर है। और हम निर्णय लेने वाले कितने बुद्धिमान हैं, इस पर देश का भविष्य निर्भर है।

एक दूसरे युवक ने पूछा है—जरूरी सवाल है, और आज की जिन्दगी में महत्वपूर्ण सवाल है। उन्होंने पूछा है कि आज की अर्धनग्न कालेजियन लड़कियों के बारे में आपका क्या ख्याल है ?

सवाल महत्वपूर्ण है। सवाल इसलिए महत्वपूर्ण है कि कपड़े हमें लगते हैं कि बहुत महत्वपूर्ण नहीं हैं लेकिन वे हमारे व्यक्तित्व को निर्मित करते हैं। दो-तीन बातें ध्यान में रखनी पड़ेंगी। पहली बात तो यह ध्यान में रखनी जरूरी है कि

जैसे-जैसे शरीर स्वस्थ होता है और अनुपात में आता है, सुन्दर होता है वैसे-वैसे पूरे शरीर को ढंकने का ख्याल मिटने लगता है। सिर्फ अत्यन्त गरीब, दीन-हीन अविकसित समाज की स्त्रियां अपने शरीर को ढांकती हैं। जैसे-जैसे शरीर सुन्दर होगा वैसे-वैसे शरीर उघड़ना शुरू होगा। जहां-जहां शरीर का सौष्ठव आयेगा वहां-वहां कपड़े कम होंगे। इसमें बहुत घबराने की जरूरत नहीं है।

असल में कपड़ों के कम होने से इतनी घबराहट हमें क्यों होती है ? उस घबराहट के पीछे कोई कारण है। उस घबराहट के पीछे कारण क्या है ? उस घबराहट के पीछे यही कारण है कि हम शरीरों को अर्द्ध-नग्न देखना चाहते हैं। देखना चाहते हैं—वह हमारी चाह तभी मिटेगी जब शरीर धीरे-धीरे उघाड़े होंगे तभी हमारी चाह मिटेगी। अगर लड़कियों ने हिम्मत की और बीस साल वे ऐसे ही कपड़े पहने रहीं तो हमारी बुद्धि में काफी फर्क पड़ेगा। लेकिन सभी लड़कियों के लिए छोटे कपड़े, कम कपड़े सुन्दर नहीं हैं, काव्यपूर्ण नहीं हैं। और कुछ स्त्रियां भी लड़कियां बनने की कोशिश करती हैं, तब जरा मुश्किल हो जाता है।

लड़कियां हल्के-फुल्के कपड़े पहनें, लड़के हल्के-फुल्के कपड़े पहनें, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। बूढ़ों की तरह गम्भीर कपड़े पहनना उचित भी नहीं है। हल्के-फुल्के कपड़े पहनें, दौड़ सकें, कूद सकें, फांद सकें, तैर सकें, वृक्षों पर चढ़ सकें, ऐसे कपड़े पहनें, यह उचित है। बच्चों के कपड़े उसी तरह के होने चाहिए। लेकिन जब रोज चलना शुरू होता है तो उसका पता नहीं चलता है, वह कहां पहुंच जाता है। भारी-भरकम मोटी स्त्रियां सड़कों पर ऐसे कपड़े पहने चली जा रही हैं जैसे—वे छोटी लड़कियां हों। उन्हें देखकर बहुत बेहूदा मालूम होता है, बहुत असंस्कृत मालूम होता है। इसलिए नहीं कि शरीर पर चुस्त कपड़े सदा बुरे मालूम पड़ते हैं लेकिन शरीर भी तो चुस्त कपड़ों के योग्य होना चाहिए।

अब हमारे नेता हैं, वे भी हमारी मोटी स्त्रियों से कम नहीं हैं। चुस्त कपड़े वे भी पहने हुए हैं, पेट तो बहुत बड़ा हो रहा है, चूड़ीदार पाजामा पहने हुए हैं, ऊपर से वह कोट पहने हुए हैं। वह चुस्त पाजामा पहने हुए खड़ा हुआ है, उसको देखकर तो अब कोई कार्टून बनाने की जरूरत नहीं है, फोटो उतार लेना काफी है। बेहूदी है वह बात। बिल्कुल बेहूदी है। कपड़ों की अपनी शालीनता है और प्रत्येक तल पर कपड़ों का अपना उपयोग है। एक गम्भीर आदमी अगर चुस्त कपड़े पहने तो ठीक नहीं मालूम पड़ता है क्योंकि ढीले कपड़े की अपनी गौरव गरिमा है। चुस्त कपड़ों का एक हलकापन है।

छोटी-छोटी चीजों का अर्थ है। अगर आपको चुस्त कपड़े पहना दिये जायें तो आपकी चाल में तेजी आ जायेगी। आप सीढ़ियों पर दो सीढ़ियां एक साथ चढ़ जायेंगे। और अगर आपको ढीले कपड़े पहना दिये जायें तो आप दो सीढ़ियां इकट्ठी कभी नहीं चढ़ेंगे, आप एक-एक सीढ़ी चढ़ेंगे। सड़क पर आप आहिस्ता से चलेंगे।

कपड़े ढीले होंगे तो एक गम्भीरता लाते हैं। लेकिन गम्भीरता की एक उम्र है, और गम्भीरता के अपने आयाम हैं। कपड़े की चुस्ती एक बात लाती है। अगर हम मिल्ट्री में लोगों को ढीले-ढाले कपड़े पहना दें, साधु संन्यासियों के वस्त्र पहना दें तो फिर लड़ाई झगड़ा नहीं हो सकता, फिर लड़ाई झगड़े के उपाय नहीं हैं। उसके लिए चुस्त कपड़े चाहिए। बंधे हुए कपड़े चाहिए। शरीर और कपड़े में फासला न रहे, यह पता ही न चले कि कपड़ा कोई बाधा दे रहा है, वैसे कपड़े चाहिए।

लड़कियां, युवक चुस्त कपड़े पहनें, बुरा नहीं है। लेकिन चुस्त कपड़े पहनने की दृष्टि पर जरूर विचार करना चाहिए कि क्या दृष्टि होगी चुस्त कपड़े पहनने की? चुस्त कपड़ा पहनने का एक हल्कापन है, ताजगी है, गति है, तीव्रता है, श्रम करने की सुविधा है, यह ठीक है। लेकिन अगर चुस्त कपड़े का केवल अर्थ सेक्सुअल एक्सप्रेशन है, अगर केवल यौन अभिव्यक्ति है तो बात जरा बेहूदी है। लेकिन है, वह बात भी है। और वह बात इसलिए है कि हम चीजों को सीधे नहीं लेते तो उनको हमको उल्टे रास्ते से लेना पड़ता है। अब, एक स्त्री रास्ते से गुजरती हो चुस्त कपड़े पहनेगी, लेकिन आप उसको गौर से देखें तो नाराज होगी। और कोई पूछे कि फिर इतने चुस्त कपड़े पहन के वह इस रास्ते से निकली किसलिए है? वह निकली इसलिए है कि आप गौर से देखें। अब बड़ा कंट्राडिक्ट्री मामला है। अगर कोई न देखे तो दुखी घर लौटेगी, अगर कोई देखे तो नाराज होगी। तो मुश्किल की बात हो गयी। तब कठिनाई की बात हो गयी। अगर कालेज में एक लड़की पढ़े और कोई उस पर कंकड़ न फेंके तो भी दुख होता है, अगर कंकड़ फेंके तो भी दुख होता है। हालांकि कंकड़े फेंकने से न कंकड़ फेंकने वाला दुख ज्यादा होता है। क्योंकि न कंकड़ फेंकने का मतलब है, कोई ध्यान नहीं दे रहा है। कंकड़ इतनी चोट कभी नहीं पहुंचाता, जितना कोई ध्यान न दे तो चोट पहुंचती है। यह भी स्वाभाविक है। दूसरों का ध्यान हमारे ऊपर पड़े, यह कुछ अस्वाभाविक नहीं है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। आदमी एक सामाजिक प्राणी है, वह दूसरों की आंखों में भी देखना चाहता है, लोग हमें प्रेम करें, पसन्द करें, चाहें, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। उनकी चाह के योग्य हम हों, यह भी बड़ा स्वाभाविक है।

एक बहुत अद्भुत घटना मुझ याद आती है। गांधीजी रवीन्द्रनाथ के पास मेहमान थे। सांझ को घूमने निकलते थे तो रवीन्द्रनाथ ने कहा, थोड़ा रुकिये, मैं थोड़े बाल बना आऊं। एक बूढ़ा आदमी बाल बनाये, गांधीजी की समझ के बिल्कुल बाहर है। उन्होंने कहा, बाल! लेकिन रवीन्द्रनाथ से कुछ कह भी न सके। कोई और होता तब तो वह उपदेश देते, लेकिन रवीन्द्रनाथ को उपदेश देना जरा मुश्किल था। रवीन्द्रनाथ जब तक जा भी चुके थे। दस मिनिट बीत गये, पन्द्रह मिनिट बीत गये, गांधीजी का गुस्सा बढ़ता चला गया। भीतर जाकर देखा, वे आदमकद आइने के सामने बड़े मन्त्रमुग्ध, बाल संवार रहे हैं। गांधीजी ने कहा, आप और इस उम्र

में बाल संवार रहे हैं? यह कर क्या रहे हैं? तो रवीन्द्रनाथ ने कहा, जब मैं जवान था तो बिना संवारे भी चल जाता था, जबसे बूढ़ा हो गया, तबसे संवारना पड़ता है। और फिर मैं सड़क पर निकलूं और किसी को असुन्दर मालूम पड़ूं, तो भी मैं मानता हूं, मैंने दूसरे को दुख पहुंचाया। मेरी दृष्टि में हिंसा ही है। मैं सड़क पर चलूं और किसी को अच्छा लगूं तो मैं उसे मानता हूं, मैंने सुख पहुंचाया। वह मेरी दृष्टि में अहिंसा ही है। गांधीजी के पकड़ में ऐसी अहिंसा कभी नहीं आ सकती थी। लेकिन रवीन्द्रनाथ कुछ बात बड़ी कीमत की कह रहे हैं। गांधीजी की अहिंसा से कहीं ज्यादा कीमत की अहिंसा की बात कह रहे हैं। वह यह कह रहे हैं कि आपकी आंख को भी मैं अप्रीतिकर लगूं, अरुचिकर लगूं, बेहूदा लगूं तो मैंने आपको चोट पहुंचायी है। मैं आपको प्रीतिकर लगूं, आनन्दपूर्ण लगूं अच्छा है।

मैं मानता हूं, हिन्दुस्तान के बच्चे ऐसे कपड़े पहने जो प्रीतिकर हों, आनन्द-पूर्ण हों और चारों तरफ एक सुगन्ध फैलाते हों, एक हल्कापन लाते हों, प्रफुल्लता लाते हों, अच्छा है। हिन्दुस्तान बहुत दिन से गम्भीर है, इसकी गम्भीरता तोड़नी है। इसे थोड़ा हलका फुल्कापन लाना है। यह थोड़ा हंस सके, मुस्कुरा सके, यह जिन्दगी में थोड़ा रस ले सके, ऐसी जिन्दगी में स्थिति पैदा करनी है। इसमें बुरा नहीं है। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति को अपने कपड़े कन्फर्मिटी से नहीं चुनने चाहिए। क्योंकि सभी लड़कियां चुस्त कपड़े पहने हैं इसलिए बाकी लड़कियों को भी चुस्त कपड़े पहनने हैं, तो फिर मूढ़ता हो जाती है। सभी लड़के चुस्त पाजामे पहने हैं, पैंट पहने हैं, तो बाकी को भी पहनने हैं तो मूढ़ता हो जाती है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के अनुकूल कपड़े चुनने चाहिए। हर व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व है। उसे अपने ढंग से सोचना चाहिए। अगर सारे लोग एक से कपड़े पहनने लगें तो यह भी एक बुद्धिहीनता का सबूत है। क्योंकि यह इस बात की खबर है कि हम अपने कपड़े भी इनवेंट नहीं कर सकते। हम इनवेंट क्या करेंगे? हम अपने कपड़े भी नहीं खोज सकते कि मेरे लिए क्या सुखद है, क्या आनन्दपूर्ण है। मुझे क्या अच्छा है, वह मुझे खोजना चाहिए।

लेकिन यह मैं मानता हूं कि इधर कपड़ों के सम्बन्ध में हमारी रुचि में परिवर्तन हुआ है। और शुभ है परिवर्तन क्योंकि कपड़े उदासी से थोड़े मुक्त हुए हैं, थोड़े प्रफुल्लता के निकट आये हैं। लेकिन हमारी जो दृष्टि है पुरानी, घूर-घूर कर देखने की उसके लिए बड़ी मुसीबत हो गयी है। उसके लिए बड़ी अड़चन आ गयी है। अगर एक स्त्री बुर्का ओढ़कर जाती हो तो घूरने में बड़ा आनन्द आता है क्योंकि घूरने के लिए बड़ा उपाय रहता है। तांगे के चारों तरफ घूमा जा सकता है, झांका जा सकता है। अगर एक स्त्री सीधे-सादे कपड़े पहने हुए बैठी है, उघड़ी हुई, अब उसको घूर कर देखना मुश्किल हो जायेगा। उसको घूर कर देखो तो अभद्रता मालूम होती है। बुर्का घूरने को सुविधा देता है।

क्या आपको पता है, हम ऐसे लोगों को लुच्चा कहते हैं। लुच्चे का मतलब होता है, घूर कर देखने वाला। लुच्चा, संस्कृत में लोचन, आंख को कहते हैं। आलोचक कहते हैं जो खूब किसी चीज को सोच-विचार कर देखता है। लुच्चा उसको कहते हैं, जो देखते ही चला जाता है, आंख हटाता ही नहीं। लुच्चे का मतलब है एकदम देखते चले जाना। लुच्चे को बड़ी तकलीफ हो गयी है क्योंकि अब घूरने को, बहुत देर देखने को कुछ बचा नहीं। चीजें साफ हो गयी हैं। जितनी चीजें साफ हो जायेंगी, उतने लुच्चे विदा हो जायेंगे। चीजें साफ हो जानी चाहिए।

अच्छा समाज शरीर के सौष्ठव और अनुपात के प्रति भी रस लेता है। अच्छा समाज शरीर को भी फूल की तरह सुन्दर मानता है। शरीर को अस्वीकार नहीं करता, शरीर के आनन्द को भी स्वीकार करता है। लेकिन हमारे देश ने हजारों साल से शरीर को अस्वीकार किया है। यहां शरीर को गन्दा रखना अध्यात्म है। यहां शरीर को बीमार और पीड़ा बना देना स्वर्ग जाने का उपाय है। यहां ऐसे साधु हैं जो स्नान नहीं करते हैं। ऐसे साधु हैं जो दतुन नहीं करते हैं, ऐसे साधु हैं जो हाथ का मैल नहीं छुड़ाते हैं। ऐसे साधु मुझे कभी मिलने आ जाते हैं तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। उनके पास बैठना कठिन है। उनका मुंह बांस छोड़ता है, उनके शरीर से गन्दगी आती है। लेकिन, वे अपने अध्यात्म में बड़े प्रतिष्ठित हैं। ये सब अध्यात्म के सबूत हैं।

नहीं, शरीर के प्रति हमारा विरोध समाप्त करना पड़ेगा। शरीर जिन्दगी का एक अद्‌भुत तथ्य है। सच तो यह है कि शरीर इतना बड़ा रहस्य है कि अगर हम शरीर को पूरी तरह जान पायें तो हम परमात्मा के एक बड़े रहस्य को समझने में समर्थ हो जायेंगे, शरीर के रहस्य का हमें पता ही नहीं है कि शरीर कितना बड़ा रहस्य है। इससे बड़ी मिस्ट्री हुई नहीं। चांद-तारे इतनी बड़ी मिस्ट्री नहीं हैं जितना शरीर। उतना बड़ा रहस्य। आप रोटी खाते हैं, वह कैसे खून बन जाती है और सत्तर साल तक अनवरत सांस चलती है। सत्तर साल अगर लोहे का फेंफड़ा भी हो तो सत्तर साल में जवाब दे दे, लेकिन फेंफड़ा काम किये चला जाता है सत्तर साल तक मस्तिष्क चौबीस घण्टे काम करता है, एक क्षण विश्राम नहीं करता है। लेकिन काम करता रहता है। लोहे के तार भी थक जायें लेकिन बारीक और महीन रेशे कभी नहीं थकते। शरीर बहुत अद्‌भुत व्यवस्था है। इतना बड़ा यन्त्र है कि अगर हम उसे फैलाकर देखने जायें तो एक बड़ी फैक्ट्री भी उतना काम पूरा नहीं कर सकती, जितना शरीर—एक छोटा-सा शरीर कर रहा है। लेकिन हम उसके प्रति दुष्टता, कठोरता और क्रोध से भरे हैं।

फिर हम फूल के सौन्दर्य में आनन्दित होते हैं। एक वृक्ष जब हरा हो उठता है तब हम आनन्दित होते हैं। जब आकाश में बादल घिरते हैं तब आनन्दित होते

हैं, और जब एक मोर नाचता है तब हम आनन्दित होते हैं, और जब बगुलों की सफेद कतार आकाश से निकल जाती है तब हम प्रसन्न हो जाते हैं। तो आदमी के शरीर का ही क्या कसूर है कि उसे देखकर हम प्रसन्न न हो जायें? बगुले का शरीर आनन्द देता है, एक तोते की लाल चोंच आनन्द देती है, वृक्षों के हरे शरीर आनन्द देते हैं, मोर का नाचते हुए पंखों का फैलाव आत्मा के भीतर भी कुछ फैला देता है, फिर आदमी के शरीर से ही क्या नाराजगी है? सच तो यह है कि कोई भी शरीर आदमी के शरीर के इतना अद्‌भुत रहस्यपूर्ण नहीं है। लेकिन हमें गलत तरह के धार्मिक लोगों ने शरीर की दुश्मनी सिखायी और इसलिए शरीर के सौन्दर्य को तोड़ने के लिए हम आतुर हैं कि शरीर सुन्दर न हो। शरीर आकर्षक न हो, शरीर सुगन्धित न हो इसलिए हम बड़े आतुर हैं। क्योंकि हम शरीर के दुश्मन हैं।

मैं शरीर का दुश्मन नहीं हूं। और मैं मानता हूं, जो शरीर का दुश्मन है वह आत्मा का प्रेमी क्या हो पायेगा! क्योंकि इसी शरीर में उस आत्मा का वास है। इसी शरीर में उस आत्मा ने अपना निवास चुना है। हम इस शरीर को भी प्रेम करें और इस शरीर के भीतर प्रेम करके प्रवेश करें तो शायद उस आत्मा तक भी पहुंच सकते हैं। तो मैं खिलाफत में नहीं हूं कि कोई सुन्दर वस्त्र न पहने। मैं इसकी भी खिलाफत में नहीं हूं कि शरीर के बहुत से अंग उघाड़े हों। मैं इसकी जरा भी खिलाफत में नहीं हूं। खिलाफत मैं इस बात के हूं कि हमें यह बेचैनी क्यों होती है? एक आदमी को सुख है कि वह जैसा कपड़ा उसे पहनना है, पहन रहा है। हम सब चिन्ता में क्यों पड़े हुए हैं?

वाइस चांसलर बैठकर कमेटियां करते हैं और विचार करते हैं कि लड़कियों को कैसे कपड़े पहनकर आने देना है और कैसे कपड़े पहनकर नहीं आने देना है। वाइस चांसलर को और कोई काम नहीं बचा है सोचने का? लड़कियों के कपड़ों की इतनी चिन्ता है? वाइस चांसलरों के दिमाग का कुछ इलाज होना चाहिए। लड़कियां कपड़े पहनती हैं, यह उनका सुख है। धीरे-धीरे हम उसके लिए राजी हो जायेंगे, धीरे-धीरे हम उन्हें स्वीकार कर लेंगे। कपड़े कम होंगे। आप ध्यान रखें। हैरान होंगे, मेरी अपनी समझ ऐसी है कि शरीर में जो-जो कुरूप है उसे ढांकने के लिए हमने कपड़े ईजाद किये हैं। जो-जो सुन्दर हैं उसे हमने प्रगट रखा है। जो-जो कुरूप है उसे हमने दबा लिया है।

महावीर जैसा आदमी नग्न खड़ा हो गया। कोई और समझता होगा, कुछ लोग समझते हैं कि महावीर का शरीर इतना सुन्दर था, इतना प्रपोर्शनेट, इतने अनुपात में था कि ढांकने की कोई जरूरत न थी। वे पूरे के पूरे सुन्दर थे। पूरा शरीर नग्न खड़ा हो गया। उसका सौन्दर्य मन को मोहने वाला होगा। ढांकने को कुछ भी न था। सिर्फ कुरूपता ढांकी जाती है। जैसे-जैसे मनुष्य जाति सुन्दर होगी,

समृद्ध होगी—और निरन्तर समृद्ध और सुन्दर हो रही है, वैसे-वैसे मनुष्य के कपड़े कम होते चले जायेंगे और मनुष्य नग्न खड़े होने में भी एक तरह का आनन्द ले सकेगा। नदी पर, घास पर, फूल पर, स्नान में, वह नग्न भी हो सकेगा और हमारी बेचैनी खत्म हो जायेगी। हमने शरीर में कुछ कुरूप अंगों को छिपाया है। अगर शरीर पूरे सुन्दर हो जायें...इसलिए जैसे कुरूप आदमी बहुत कपड़े डाल-डूल के चलता है, वह कपड़ों में अपनी कुरूपता को छिपाता है।

कोई अपने कोट के कन्धों में रूई भरे हुए है। अब कन्धे उठे हुए होने चाहिए, स्वस्थ पुरुष का लक्षण होना चाहिए। अब वह तो कन्धे तो दबे हुए हैं। अब रूई भरके कन्धे उठा लिए तो कोट कैसे निकालें? कोट को पहनकर ही चलना पड़ेगा। तो कोट में आदमी ज्यादा सुन्दर मालूम पड़ता है। क्योंकि रूई भरे हुए कन्धे, रूई भरी हुई छातियां आदमी को वह दे देती है जो शरीर से मिलना चाहिए। अगर हम सौ आदमियों को नंगा खड़ा करें तो हम बहुत हैरान हो जायेंगे, जो बहुत सुन्दर मालूम पड़ते थे, नंगे खड़े होकर एकदम बेहूदे मालूम पड़ेंगे। उसका कारण यह है कि बाकी शरीर में कुछ भी सुन्दर नहीं है, हमने सिर्फ चेहरे की थोड़ी बहुत फिक्र कर ली, बाकी शरीर को बिल्कुल छोड़ दिया है। बाकी शरीर निर्लिप्त है। अगर आप भी आइने के सामने नंगे खड़े होंगे तो हैरानी मालूम पड़ेगी कि अपना ही शरीर है, जल्दी ढांको। शरीर सुन्दर होगा, स्वस्थ होगा अनुपात में होगा तो नग्न होने में हमारा डर कम हो जायेगा। डर का और कोई कारण नहीं है। शरीर उघड़ेगा, शरीर थोड़ा प्रगट होगा। छिपाने की कोई जरूरत नहीं है। आदमी अकेला है पृथ्वी पर जिसने कपड़े पहने हुए है। लेकिन कभी आपको ख्याल आया, मोर नंगा है। आ सकता है...।

मैंने सुना है, लंदन में महिलाओं की एक समिति है। उसने एक प्रस्ताव किया है कि कुत्तों को कपड़े पहनाना चाहिए। यह दिमाग इनका खराब हो गया है, इन औरतों का। इनको कुत्ते भी नंगे दिखाई पड़ रहे हैं! इनके दिमाग की खराबी है, और कोई कारण नहीं है। यह कुत्ता बेचारा...! आदमी अब तक नंगा दिखायी पड़ता था आज कुत्ता नंगा दिखायी पड़ा, कल बैल नंगे दिखायी पड़ेंगे, तो मुश्किल हो जायेगी। हम कहां-कहां नग्नता को ढांकते फिरेंगे। सारी प्रकृति नंगी है, परमात्मा नग्न है, आदमी भर ढंका हुआ है।

नहीं, इतने ढंकने का मोह भी क्या है, इतनी बेचैनी भी क्या है? जिन्दगी को सरलता, हल्केपन से, प्रसन्नता से लिया जा सके। ऐसे कपड़े चाहिए, ऐसा रहने-सहने का ढंग चाहिए, इतनी मुक्ति चाहिए...। और एक दूसरे की शरीर में आंखें डालने की चेष्टा बहुत ही कुरूप है लेकिन सप्रेसिव सोसाइटी है, इसलिए होती है। हम एक दूसरे के कपड़े के भीतर भी देखने की कोशिश करते हैं। अगर आंखें कपड़े के भीतर प्रवेश कर सकें तो हम आंखों को भीतर ले जा सकते हैं। यह बहुत दमन से भरा

हुआ चित्त है हमारा। बहुत कुरूप अग्ली है, यह सुन्दर नहीं है। नहीं, इतनी हमें बेचैनी नहीं लेनी चाहिए। आदमी के स्वास्थ्य के साथ सौन्दर्य के साथ कपड़ों में रूपांतरण निश्चित है, हो रहा है, होगा। उसे प्रेम से स्वीकार कर लेंगे, उसे कलात्मक और सांस्कृतिक ढंग दे सकेंगे। अगर हम प्रेम से स्वीकार न करेंगे तो वह असांस्कृतिक, कुरूप और गंदा हो जायेगा।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है—वह अन्तिम सवाल, फिर मैं अपनी बात पूरी करूं—उन्होंने पूछा है, कुटुम्ब नियोजन के बाबत, बर्थ-कण्ट्रोल के बाबत आपके क्या ख्याल हैं?

यह अन्तिम बात, क्योंकि यह भारत की अन्तिम और सबसे बड़ी समस्या है। और अगर हमने इसे हल कर लिया तो हम सब हल कर लेंगे। यह अन्तिम समस्या है। यह अगर हल हो गयी तो सब हल हो जायेगी। भारत के सामने बड़े से बड़ा सवाल जनसंख्या का है; और रोज बढ़ता जा रहा है। हिन्दुस्तान की आबादी इतने जोर से बढ़ रही है कि हम कितनी प्रगति करें, कितना ही विकास करें, कितनी ही सम्पत्ति पैदा करें, कुछ परिणाम न होगा। क्योंकि जितना हम पैदा करेंगे उससे चौगुने हम वह पैदा कर देते हैं। और सब सवाल वहीं के वहीं खड़े रह जाते हैं, हल नहीं हो सकते हैं।

मनुष्य ने एक काम किया है कि मौत से एक लड़ाई लड़ी है। मौत को हमने दूर हटाया है। हमने प्लेग, महामारियों से मुक्ति पा ली है। हम आदमी को ज्यादा स्वस्थ कर सके। बच्चे जितने पैदा होते हैं, करीब-करीब बचाने का हमने उपाय कर लिया है। हमने मौत से लड़ाई लड़ ली, लेकिन हम यह भूल गये कि हमें जन्म से भी लड़ाई लड़नी पड़ेगी। इकतरफा लड़ाई मंहगी पड़ जायेगी। हमने मौत का दरवाजा तो क्षीण कर दिया और जन्म का दरवाजा पुरानी रफ्तार से, बल्कि और बड़ी रफ्तार से जारी है। तो उपद्रव मुश्किल हो गया। प्रकृति में एक सन्तुलन था कि प्रकृति उतने ही लोगों को बचने देती थी इस पृथ्वी पर, जितने लोगों के बचने का उपाय है।

आपको शायद पता न हो, आपने घर में छिपकली देखी होगी दीवारों पर। छिपकली एक बहुत पुराने जानवर का वंशज है। आज से कोई दस लाख साल पहले हाथियों से भी कोई पांच-पांच गुने छिपकलियां थीं, वह सब खत्म हो गयीं। क्योंकि उन्होंने इतने बच्चे पैदा कर लिए कि आत्मघात हो गया। उनके मरने का और कोई कारण नहीं है। न कोई भूकम्प आया, न कोई अकाल पड़ा। उनका कुल कारण यह है कि उन्होंने इतने बच्चे पैदा कर लिए कि उन बच्चों के लिए भोजन जुटाना असम्भव हो गया और सारी छिपकलियां मर गयीं। उनका एक वंशज बहुत छोटे रूप में हमारे घरों में रह गया। हाथियों से बड़े जानवर थे वे। और भी बहुत से जानवरों की जातियां पृथ्वी से तिरोहित हो गयी हैं, सदा के लिए विलीन हो गयी हैं। कभी थीं, अब नहीं हैं। और उसका कुल कारण एक

था कि वे बच्चे पैदा करते चले गये। सीमा वहां आ गयी, जहां भोजन कम पड़ गया और लोग ज्यादा हो गये और मृत्यु के सिवा कोई रास्ता न रहा।

प्रकृति आदमी के साथ भी अलग तरह का सलूक न करेगी, आदमी इस भूल में न रहे। अगर हम संख्या बढ़ाते चले जाते हैं तो हमारे साथ भी वही होगा जो सब पशुओं के साथ हो सकता है। हमारे साथ कोई भगवान् अलग से हिसाब नहीं रखेगा। आज पृथ्वी पर साढ़े तीन अरब लोग हैं। हिन्दुस्तान की आबादी पाकिस्तान के बंटने के वक्त जितनी थी, पाकिस्तान बंटने से अगर किसी ने सोचा होगा कि हम कम हो जायेंगे तो गलती में है। हमने एक पाकिस्तान को तब तक फिर पैदा कर लिया। आज पाकिस्तान-हिन्दुस्तान की आबादी मिलकर बहत्तर करोड़ है। हिन्दुस्तान की आबादी उन्नीस सौ तीस में तैंतीस करोड़ थी। तैंतीस करोड़ से बहत्तर करोड़ हो गयी। सिर्फ चालीस वर्षों में! इस सदी के पूरे होते-होते हम कहां खड़े होंगे, कहना बहुत मुश्किल है। सभा करने की कोई जरूरत न रह जायेगी, जहां भी होंगे सभा में ही होंगे। कोहनी हिलाने की जगह नहीं रह जाने वाली है। लेकिन इतने लोग कैसे जी सकते हैं?

सारे जगत् के सामने सवाल है, हमारे सामने सबसे ज्यादा। सबसे ज्यादा इसलिए है कि समृद्ध कौमें बच्चे कम पैदा करती हैं, गरीब कौमें ज्यादा बच्चे पैदा करती हैं। इसका कारण है। अमरीका में कोई जनसंख्या बढ़ नहीं रही। फ्रांस में तो घट रही है। फ्रांस की सरकार चिन्तित है कि कहीं हमारी संख्या न घट जाये। बड़ी अजीब दुनिया है। इधर हम मरे जा रहे हैं कि संख्या बढ़ी जा रही है, उधर फ्रांस में संख्या कम पड़ी जा रही है। फ्रांस की सरकार चिन्तित है कि कहीं संख्या कम न हो जाये। बीस साल में ठहरी हुई है संख्या। क्या कारण था? असल में जैसे आदमी समृद्ध होता है, सम्पत्तिवान होता है, बुद्धिमान होता है, वैसे ही उसकी जिन्दगी में मनोरंजन की बहुत सी दिशाएं खुल जाती हैं। और गरीब के पास मनोरंजन की एक ही दिशा है, सेक्स। और कोई मनोरंजन की दिशा नहीं है। और मुफ्त है; कोई टिकट नहीं, कोई पैसा नहीं। वह दिन भर का थका-मांदा, सिनेमा जाये तो पैसा खर्च हो जाते हैं, नृत्य देखे तो पैसा खर्च हो जाते हैं, रेडियो कहां से लाये, टेलीविजन कहां से लाये। सेक्स एकमात्र उसके पास मुफ्त मनोरंजन है। उसकी वजह से गरीब बच्चे पैदा करता चला जाता है। पहले कोई खतरा न था। पहले भी गरीब बच्चे पैदा करता था। एक आदमी बीस बच्चे पैदा करता था, एकाध बचा लिया तो बहुत, दो बच गये तो बड़ी कृपा भगवान् की। वह भी गण्डे ताबीज वगैरह बांधकर मुश्किल से बच पाते थे। लेकिन अब खतरा है, गरीब का बच्चा भी बचेगा। अमीर बच्चे कम पैदा करता है। उसके पास मनोरंजन के साधन ज्यादा हैं। इसलिए अमीरों को पहले भी बच्चे गोद लेने पड़ते थे, अब भी लेने पड़ते हैं। उसके पास मनोरंजन के साधन बहुत हैं।

और बड़े मजे की बात है कि आदमी जितने आराम में रहे, विश्राम में रहे, उसकी सेक्सुअल इनर्जी उतनी एब्जार्ब हो जाती है। जितने विश्राम में आदमी रहेगा उतनी उसकी काम शक्ति शरीर में विसर्जित हो जाती है। और जितना आदमी श्रम करेगा उतनी काम शक्ति बाहर निकलने के लिए आतुर हो जाती है। इसलिए श्रमिक की तकलीफ है क्योंकि इसके सारे शरीर की काम शक्ति निचोड़कर इकट्ठी हो जाती है और बाहर फिकना चाहती है। विश्राम करने वाले आदमी को उतनी काम शक्ति बाहर निकलने के लिए आतुर नहीं करती। इसलिए सम्पन्नता बढ़ने के साथ नये आयाम मिलते हैं—मनोरंजन के, सृजन की नयी दिशाएं मिलती हैं। और तनाव और श्रम कम हो जाने से शरीर की यौन शक्ति शरीर में विसर्जित हो जाती है।

गरीब मुल्क के सामने बड़ा सवाल है। गरीब मुल्क क्या करे? हम क्या करें? हमारे सज्जन, अच्छे आदमी, जो हमें बड़े मंहगे पड़ते रहे हैं, और अब भी मंहगे पड़ रहे हैं। वे हमें समझाते हैं कि ब्रह्मचर्य रखो, संयम रखो तो ठीक हो जायेगा। कोई ब्रह्मचर्य रख नहीं सकता, न रखता है। कोई रख सके करोड़ में, दो करोड़ में तो उसके लिए उसे इतने शीर्षासन और इतनी चेष्टाएं और इतनी विधियां करनी पड़ती हैं कि सम्भव नहीं है कि आम मास स्केल पर कभी ब्रह्मचर्य हो जाये। और फिर अगर किसी को ब्रह्मचर्य रखना हो तो फिर वह एक ही काम कर सकता है कि ब्रह्मचर्य रखे। चौबीस घण्टे उसी काम में लगा रहे, फिर दूसरा काम नहीं कर सकता। इसलिए साधु-संन्यासी संसार छोड़कर भागते हैं, उसका और कोई कारण नहीं है, एक ही काम, पूरा का पूरा एब्जार्बिंग है—ब्रह्मचर्य साधना। इतना खाना खाओ, इतना खाना मत खाओ, यह पानी पियो, यह पानी मत पियो, इस तरह सोओ, इस तरह मत सोओ, यह पढ़ो, यह मत पढ़ो, यह देखो यह मत देखो—चौबीस घण्टे वह ब्रह्मचर्य ही साध लें तो पर्याप्त उनके जीवन की यात्रा हो गयी। लेकिन यह बड़ी बेहूदी यात्रा है कि अगर सिर्फ ब्रह्मचर्य सधा तो क्या सध गया? यह मास स्केल पर नहीं हो सकता।

मासेस के स्केल पर, बड़े जन-समूह के पैमाने पर तो कृत्रिम साधनों का, वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करना पड़ेगा। लेकिन भारत का मन उन साधनों का उपयोग करने की तैयारी नहीं दिखा रहा है। अगर हमने तैयारी नहीं दिखायी तो हम मरेंगे, अपने हाथ से मरेंगे। और अगर हम तैयारी नहीं दिखाते तो मेरी अपनी समझ यह है कि बर्थ-कण्ट्रोल कम्पलसरी होना चाहिए। अगर शिक्षा कम्पल्सरी हो सकती है, जो कि उतनी जरूरी बात नहीं है आज। अगर कुछ लोग अशिक्षित रह जायें तो नुकसान होगा, लेकिन भारी नुकसान नहीं हो जायेगा। लेकिन संतति नियमन, बोर्ड लगे हैं जगह-जगह—'दो या तीन बच्चे बस'; उससे कुछ होने वाला नहीं है। समझाने से भी कुछ होने वाला नहीं है क्योंकि अगर हम समझाने

में लगे तो...मैं अभी एक आंकड़ा पढ़ रहा था कि अगर हिन्दुस्तान के एक-एक आदमी को समझाने की कोशिश की जाये बर्थ-कण्ट्रोल के लिए तो कम से कम हमको सौ साल लगेंगे समझाने में और सौ साल में वे इतने बच्चे पैदा कर देंगे कि उसको कौन सुलझायेगा ? वह सौ साल रुके तो नहीं रहेंगे कि हम जब समझ लेंगे तब बच्चे पैदा करेंगे। तो बच्चे तो पैदा करते रहेंगे। पूरी जमीन पर डेढ़ लाख बच्चे रोज पैदा हो रहे हैं। बड़ा हिस्सा एशिया पैदा कर रहा है। एशिया में भी बड़ा हिस्सा चीन के बाद हम पैदा कर रहे हैं।

नहीं, बर्थ-कण्ट्रोल, संतति-नियमन समझाने की जरूरत नहीं है क्योंकि वह जीवन मरण का सवाल है। वह अनिवार्य होना चाहिए। अनिवार्य का मतलब यह है कि दो बच्चे के बाद ऑप्रेशन अनिवार्य होगा। अनिवार्य का यह भी मतलब है कि दो बच्चों के बाद, जिनके पास ज्यादा और बच्चे हैं उन बच्चों पर सरकार सुविधाएं कर देगी। जितने जिसके पास कम बच्चे हैं उनको उतनी ज्यादा सुविधाएं मिलनी चाहिए लेकिन हालतें उल्टी हैं।

अभी हालतें यह हैं कि एक अविवाहित आदमी पर टैक्स ज्यादा है और विवाहित होने पर टैक्स कम है। बच्चे हो जायें तो और कम है। बड़ी उल्टी बात है। बच्चों को कम करना है तो यह उल्टा हिसाब लग रहा है। अविवाहित आदमी पर टैक्स बिल्कुल नहीं होना चाहिए। या कम से कम होना चाहिए। विवाहित पर ज्यादा टैक्स होना चाहिए और बच्चे पर टैक्स बढ़ता जाना चाहिए, तब हम रोक पायेंगे। और अविवाहित व्यक्ति, और जो नि:संतान रहने को तैयार हैं उनको हमें प्रतिष्ठा देनी चाहिए, आदर देना चाहिए, सम्मान देना चाहिए, पुरस्कार देना चाहिए। और सब तरफ से दो बच्चे के बाद सख्त से सख्त कदम उठाकर रोक देना चाहिए उन्नीस सौ अठत्तर तक हमारी संख्या इतनी हो जायेगी कि एक बड़े अकाल की सम्भावना है जिसमें दस करोड़ लोगों को मरना पड़ेगा। कम से कम ज्यादा भी मर सकते हैं। अगर सारी दुनिया ने भी हमें खाने की सहायता दी तो भी बीस वर्षों के भीतर एक बड़े अकाल से गुजरने की आशा माननी चाहिए। घबराने वाली बात है। ऐसा न हो, अच्छा है, लेकिन सारी स्थितियां यह कहती हैं कि यह हो जायेगा।

क्या यह अच्छा होगा कि दस करोड़ लोग अकाल में मरें ? या हम पहले ही बच्चों को रोकें ? लेकिन धर्म-गुरू उल्टी बातें सिखाते हैं। वे यह कहते हैं कि बच्चे भगवान् देता है। भगवान् का इसमें कोई हाथ नहीं है, कोई अपराध नहीं भगवान् पर मुकदमा चलाया ही नहीं जा सकता है इस मामले पर। मजे की बात यह है कि जो धर्म-गुरू यह समझाते हैं कि भगवान् देता है बच्चे, वे यह नहीं समझाते कि बीमारी भी भगवान् देता है, इलाज नहीं करवाना चाहिए। बीमारी के लिए इलाज करवाने के लिए संन्यासी भी अस्पताल में भर्ती हो जाते हैं। बीमारी भगवान्

ने दी है, इलाज किससे करवा रहे हो ? नहीं, बीमारी भगवान् की नहीं है, बीमारी डाक्टर से दूर करवायी है, और बच्चे भगवान् पर थोप देंगे।

बहुत मिरेकल की घटना है कि एक आदमी के शरीर में इतने वीर्याणु बनते हैं एक जिन्दगी में, कि एक पुरुष से आज पृथ्वी पर जितनी संख्या है उतने बच्चे पैदा हो सकते हैं। एक संभोग में एक पुरुष से इतने वीर्याणु निकलते हैं कि एक करोड़ बच्चे पैदा हो सकते हैं। और एक पुरुष सामान्य रूप से जिन्दगी में अगर चार हजार बार संभोग करे तो चार हजार करोड़ बच्चों का बाप बन सकता है। यह तो स्त्री की कृपा है कि वह एक ही बच्चे को साल में दे सकती है, नहीं तो हम बड़ी मुश्किल में कभी के पड़ जाते।

यह रोकना पड़ेगा। न केवल रोकना पड़ेगा बल्कि दो तीन बातें मेरे ख्याल में और हैं जो मैं कहना चाहूंगा। हमें न केवल संतति पर नियमन करना पड़ेगा, हमें संतति वैज्ञानिक रूप से पैदा हो उसका विचार करना होगा। अन्धे, लूले, लंगड़े, कोढ़ी, पंगु, बुद्धि-भ्रष्ट, पागल, वे सब बच्चे पैदा करते जायें, यह सब बहुत खतरनाक है। यह सब बहुत मंहगा है। यह तो सारी रेस को खराब करने की व्यवस्था है। हमें इसके लिए भी फिक्र करनी पड़ेगी कि दो व्यक्ति यदि विवाह करते हैं तो विवाह तो कोई भी व्यक्ति किसी से भी कर सकता है क्योंकि प्रेम के सम्बन्ध में कोई भी कानून नहीं लगाया जा सकता। लेकिन दो व्यक्ति अगर विवाह करते हैं तो विवाह के बाद उनको सर्टिफिकेट लेना ही चाहिए मेडिकल बोर्ड का कि वे बच्चे पैदा कर सकते हैं या नहीं। हर आदमी को बच्चा पैदा करने का हक बहुत खतरनाक है; आगे ठीक नहीं है। साइंटिफिक ब्रीडिंग के लिए उचित नहीं है। क्योंकि कोई भी बच्चे पैदा करता है। एक आदमी सड़क पर भीख मांग रहा है, मस्तिष्क खराब है, पागल है, वह भी बच्चे पैदा करता है। तो हम आगे की रेस को खराब करते चले जाते हैं। हमारी प्रतिभा, शक्ति, सौंदर्य नष्ट होता चला जाता है। वह हमें रोकना पड़ेगा।

और अब, अब चूंकि आर्टिफीशियल इनसेमनेशन में, कृत्रिम गर्भाधारण में नयी दिशाएं खोज दी हैं, जो बहुत अद्भुत हैं। अब यह सम्भव है कि मैं मर जाऊं तो मेरे मरने के दस बारह साल बाद मेरा बेटा पैदा हो सके। इसमें कोई कठिनाई नहीं रह गयी। अब बाप की मौजूदगी बेटे के लिए जरूरी नहीं है। धीरे-धीरे अणु संरक्षित किये जा सकते हैं। इसका यह मतलब है कि अब हम श्रेष्ठतम व्यक्तियों के, आइंस्टीन के, या बुद्ध के या महावीर के वीर्य अणु सुरक्षित कर सकते हैं। श्रेष्ठतम स्त्रियों के वीर्य अणु सुरक्षित हो सकते हैं। और उन अणुओं से हम नये तरह के ज्यादा श्रेष्ठतम व्यक्तियों को जन्म दे सकते हैं। अब हर व्यक्ति को बच्चे पैदा नहीं करने चाहिए। लेकिन हम कहेंगे कि मेरा बच्चा और अणु किसी और का ? यह नहीं हो सकता। लेकिन मेरा बच्चा—उसके लिए साइकिल कोई और बनाता

है तो चढ़ता है। मेरा बच्चा—गुड्डी कोई और बनाता है। मेरा बच्चा—कपड़े कोई दर्जी सीता है। मेरा बच्चा—दवाई कोई डाक्टर बनाता है। मेरा बच्चा—शिक्षा कोई शिक्षक देता है। जब हम सारी बातों में किसी और से इन्तजाम करवा लेते हैं तो व्यक्ति का जो मौलिक अणु है वह मेरे बच्चे के लिए श्रेष्ठतम मिले, यह जो बाप अपने बेटे को प्यार फरता है, इसकी फिक्र करेगा। करना चाहिए। अब यह सम्भव है। लेकिन आदमी की कठिनाई यह है कि विज्ञान जिसे सम्भव बना देता है, आदमी की बुद्धिहीनता के कारण वह सैंकड़ों वर्ष तक सम्भव नहीं हो पाता। अब यह सम्भव है कि मनुष्य की प्रतिभा बढ़ायी जा सके, बुद्धि बढ़ायी जा सके और श्रेष्ठतम, स्वस्थतम, सुन्दरतम मनुष्य को पैदा किया जा सके।

लेकिन वे तो दूर के सपने हैं। अभी तो हमारे सामने सवाल यह है कि हम किसी तरह आती हुई भीड़ को रोक सकें। भीड़े एकदम आकाश से उतर रही हैं, पूरे मुल्क को भरती चली जायेगी। अगर हमने पचास साल में हिम्मत न दिखायी तो हम अपने हाथ से मर सकते हैं। किसी एटम की, किसी हाइड्रोजन बम की हमारे ऊपर फेंकने की जरूरत न पड़ेगी। हमारा पापुलेशन एक्सप्लोजन ही हमारे लिए हाइड्रोजन बम बन जायेगा। वह जो जनसंख्या फूट रही है, वही हमारी मृत्यु बन सकती है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने इन चार दिनों में कहीं, बहुत बातें कहने को शेष रह गयीं। लेकिन जिन्होंने मेरी बातें सुनी हैं वे उन प्रश्नों पर भी इस दिशा में विचार कर सकेंगे जिन पर मैं नहीं बोल सका हूं। मेरी बातों को इतने प्रेम और शान्ति से सुना उससे अनुग्रहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अहमदाबाद, २६ दिसम्बर १९६९

समाजवाद से सावधान

विषय	पृष्ठ संख्या

६—समाजवाद अर्थात् पूर्ण विकसित पूंजीवाद

मेरे प्रिय आत्मन्,

एक छोटी-सी कहानी से मैं अपनी बात शुरू करना चाहता हूं।

एक महानगरी में भीड़ थी। रास्ते पर लाखों लोग खड़े थे जो आतुरतापूर्वक सम्राट् के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछ समय पश्चात् सम्राट् की सवारी आयी। भीड़ के सभी लोग सम्राट् के वस्त्रों की चर्चा करने लगे और मजा यह कि सम्राट् बिल्कुल नग्न था, उसके शरीर पर वस्त्र थे ही नहीं। केवल एक छोटे-से बच्चे को, जो अपने बाप के कन्धे पर बैठकर आ गया था, बड़ी हैरानी हुई। उसने अपने बाप से कहा कि लोग सम्राट् के सुन्दर वस्त्रों की चर्चा कर रहे हैं, लेकिन मुझे तो सम्राट् नग्न दिखाई पड़ रहा है। उसके बाप ने उससे कहा, चुप नासमझ, कोई सुन लेगा तो बड़ी मुसीबत हो जायेगी और वह उस बच्चे को लेकर भीड़ से बाहर हो गया।

सम्राट् नग्न था और लोग उसके वस्त्रों की चर्चा कर रहे थे। बात क्या थी?

कुछ माह पूर्व एक आदमी ने उस सम्राट् से कहा था कि आपने सारी पृथ्वी जीत ली, लेकिन आपके पास देवताओं के वस्त्र नहीं हैं। मैं लाकर दे सकता हूं। सम्राट् का मन लोभ से भर गया। सब उसके पास था, पर देवताओं के वस्त्र न थे। उस आदमी ने कहा फिक्र न करें, थोड़ा खर्च तो होगा, लेकिन वस्त्र लेकर

मैं आ जाऊंगा। छह महीने की उसने मोहलत चाही। छह महीने तक सम्राट् ने एक महल में उसे बन्द कर दिया। चारों तरफ से नंगी तलवारों का पहरा बैठा दिया। वह आदमी कभी लाख, कभी दो लाख रुपये मांगने लगा। उसने छ: महीने में कई करोड़ रुपये सम्राट् से लिए वस्त्र लाने के लिए; लेकिन सम्राट् निश्चिन्त था, क्योंकि महल में वह कैद था और भाग नहीं सकता था। छ: महीने पूरे होने पर वह आदमी एक बहुमूल्य पेटी में वस्त्र लाकर उपस्थित हुआ। राजमहल आया बड़े सम्राट् आमंत्रित थे, उसने ताला खोला, सम्राट् से कहा, अपनी पगड़ी मुझे दे दें। सम्राट् की पगड़ी पेटी के भीतर डाली, फिर पेटी के भीतर से कोई पगड़ी निकाली, लेकिन हाथ उसका खाली था। सम्राट् ने गौर से देखा। उसने कहा, पगड़ी आपको दिखायी पड़ रही है? और धीरे से कहा कि जब मैं चलने लगा तो देवताओं ने कहा था कि ये वस्त्र उन्हीं को दिखायी पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुए हैं। हाथ खाली था, लेकिन सम्राट् को तत्काल पगड़ी दिखायी पड़ने लगी। उसने कहा, इतनी सुन्दर पगड़ी मैंने कभी नहीं देखी। फिर सम्राट् के एक-एक वस्त्र उस पेटी में डाले गये और झूठे वस्त्र सम्राट् पहनता चला गया और झूठे वस्त्रों से कोई अर्थ न था, वह नंगा होता चला गया। फिर जब आखिरी वस्त्र के उतारने की बात आयी, तब सम्राट् घबराया। लेकिन उस आदमी ने कहा कि अब घबराने से कोई फायदा नहीं। झूठ की यात्रा शुरू हो जाये तो पूरी ही करनी पड़ती है, वापस नहीं लौट सकते, लोग क्या कहेंगे? आखिरी वस्त्र भी सम्राट् का उतर गया। दरबारी भी बड़े जोर से प्रशंसा करने लगे कि इतने सुन्दर वस्त्र हमने कभी नहीं देखे, क्योंकि उस आदमी ने कहा कि ये वस्त्र सिर्फ उसी को दिखायी पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुआ है। सब दरबारियों को वस्त्र दिखायी पड़ने लगे जो नहीं थे। प्रत्येक दरबारी को ऐसा लगा कि जब सबको दिखायी पड़ रहे हैं तो वस्त्र होंगे ही। जरूर सिर्फ मुझे नहीं दिखायी पड़ रहे हैं तो अपना बाप संदिग्ध हुआ, लेकिन अब इस बात को खोलने से कोई मतलब नहीं। लेकिन यह बात राजमहल के भीतर की थी। उस आदमी ने कहा, महाराज, देवताओं ने कहा है कि यह वस्त्र पहली दफा पृथ्वी पर जा रहे हैं, इनका जुलूस, इनकी शोभा-यात्रा भी निकालना जरूरी है। रथ तैयार है, आप बाहर चलें। सम्राट् घबराया। लेकिन उस आदमी ने कहा, आप बिल्कुल न घबरायें, आपके रथ के सामने ही डुग्गी पीटते हुए लोग चलेंगे कि यह वस्त्र उन्हीं को दिखायी पड़ेंगे जो अपने बाप से पैदा हुए हैं। ये वस्त्र सबको दिखायी पड़ेंगे, आप घबरायें नहीं। सम्राट् रथ पर सवार हुआ। सभी को नग्न दिखायी पड़ा, लेकिन कौन कहे कि सम्राट् नग्न है। एक छोटे-से बच्चे ने यह कहा था तो उसके बाप ने कहा, नासमझ, अभी तुझे अनुभव नहीं है, जब तू बड़ा होगा तब वस्त्र तुझे दिखायी पड़ने लगेंगे। यहां कोई सुन लेगा तो मुसीबत हो सकती है।

इस कहानी से क्यों अपनी बात शुरू करना चाहता हूं? समाजवाद के नाम से आज सारी दुनिया में शोर है, उस भीड़ के बीच में मेरी हालत उस बच्चे जैसी है जो कहे कि सम्राट् नंगा है। लेकिन मुझे लगता है कि किसी को यह बात कहनी चाहिए। मनुष्य का मन ऐसा है कि प्रचारित असत्य भी सत्य मालूम होने लगते हैं, बहुत बार बोले गये झूठ भी सच मालूम होने लगते हैं और पहली बार बोला गया सच भी सच नहीं मालूम पड़ता है। इधर सौ वर्षों से समाजवाद शब्द के आस-पास एक मिथ, एक कहानी गढ़ी जा रही है। उसके निरन्तर प्रचार ने, जो समाजवादी नहीं हैं, उन्हें भी समाजवादी बना दिया है। जो भीतर से समाज-वादी नहीं हैं, बाहर से वे भी उसका गुणगान करते दिखायी पड़ते हैं। समाजवाद के विरोध में बोलने का साहस किसी को नहीं मालूम पड़ता। सब अनुभवी हैं, मैं एक गैर-अनुभवी आदमी हूं। इसलिए उसके विपरीत बोलने की कोशिश करूंगा। लेकिन मनुष्य जाति के इतिहास में भीड़ कुछ मान ले, इससे सच नहीं हो जाता है। भीड़ ने हमेशा बड़े-बड़े झूठ स्वीकार किये हैं और हमेशा उन्हीं के साथ जीती रही है। एक नया असत्य मनुष्य के मन को पकड़े है समाजवाद के नाम से। उसकी पूरी व्याख्या समझ लेनी जरूरी है। पहली बात तो यह है कि समाजवाद पूंजीवाद के विरोध में शत्रु की भांति खड़ा हुआ है। समाजवाद जो कुछ भी हो, वह पूंजी-वाद की सन्तान है। सामन्तवाद की व्यवस्था से, फ्युडिलिज्म से पूंजीवाद पैदा हुआ। अगर पूंजीवाद ठीक से विकसित हो तो उससे समाजवाद पैदा हो सकता है, अगर समाजवाद ठीक से विकसित हो तो उससे साम्यवाद पैदा हो सकता है, अगर साम्यवाद ठीक से विकसित हो तो उससे अराजकतावाद पैदा हो सकता है। लेकिन ठीक से विकसित हो तब। बच्चे मां के पेट से समय से पहले भी पैदा हो सकते हैं और मां आतुर हो सकती है कि नौ महीने क्यों प्रतीक्षा करूं। पांच ही महीने में बच्चा अगर निकल आये पेट से तो ज्यादा अच्छा है। चार महीने का कष्ट भी बचेगा, चार महीने की प्रतीक्षा भी बचेगी और बेटे से अभी मिलना हो जायेगा। लेकिन पांच महीने के बेटे मुर्दा पैदा होते हैं, जिन्दा नहीं; और अगर जिन्दा पैदा हो जायें तो जिन्दगी भर मुर्दे से भी बदतर उनकी हालत होती है।

रूस में जो समाजवाद पैदा हुआ, वह भी प्रीम्योच्योर है। वह भी जरूरत से पहले पैदा हुआ है। रूस पूंजीवादी मुल्क था, इसलिए रूस में समाजवाद को जबर्दस्ती पैदा करने की कोशिश की गयी। समाजवाद तो पैदा हुआ, लेकिन मुर्दा पैदा हुआ। और समाजवाद के पैदा होने में, जिन गरीबों के लिए समाजवाद पैदा हुआ, उनकी ही लाखों की संख्या में हत्या भी करनी पड़ी। शायद मनुष्य-जाति, के इतिहास में समाजवादी मुल्कों ने जितनी हत्यायें की हैं, उतनी किसी ने भी नहीं की और आश्चर्य तो यह है कि जिन गरीबों के लिए, जिन मजदूरों और

शोषितों के लिए समाजवाद खड़ा हुआ था, उन्हीं की हत्या की गयी है। रूस में एक करोड़ पूंजीपति नहीं थे, एक करोड़ तो पूंजीपति आज अमरीका में भी नहीं है—फिर रूस में अन्दाजन एक करोड़ लोगों की जो हत्या हुई वह किसकी हत्या है? वह उनकी ही हत्या थी जिनके लिए कि समाजवाद लाना था। हत्या करना आसान हो जाता है अगर आप के ही हित में हत्या करनी हो। जब कोई हत्यारा आपके ही हित में हत्या करता है तो आप भी निहत्थे हो जाते हैं, बचाव भी नहीं कर सकते। एक करोड़ लोगों की हत्या के बाद भी रूस आज एक गरीब मुल्क है, अमीर मुल्क नहीं है। अभी भी समाजवाद मरा-मरा है और पिछले दस वर्षों से रूस रोज पूंजीवाद की तरफ कदम उठा रहा है। वह जो भूल हो गयी उसकी तरफ वापस कदम उठाये जा रहे हैं। माओत्से तुंग का रूस से जो विरोध है, वह यही है कि रूस रोज पूंजीवादी होता चला जा रहा है। लेकिन रूस का पचास साल का अनुभव यह है कि समाजवाद लाने में थोड़ी जल्दी कर दी। देश पूंजी पैदा ही नहीं कर पाया था। यह ध्यान रहे, पूंजीवाद ठीक से विकसित न हो तो समाजवाद उसका सहज परिणाम है। नौ महीने का गर्भ हो तो बच्चा सहज और चुपचाप पैदा हो जाता है। पूंजीवाद ठीक से विकसित न हो तो समाजवाद की बात स्वीसाइडल है, आत्मघाती है मैं खुद समाजवादी हूं और जब समाजवाद से सावधान करने की बात करूंगा तो हैरानी होगी। हैरानी यह है कि मैं भी चाहता हूं कि बच्चा पैदा हो, लेकिन नौ महीने पूरे हो जायें। यह देश अभी समाजवादी भी नहीं है और इस देश में समाजवाद की बातें उतनी ही खतरनाक हैं जितनी रूस में थी, उतनी ही खतरनाक हैं जितनी चीन में हैं। चीन में फिर लाखों लोगों की हत्या करने का उपाय करना पड़ रहा है और फिर भी समाजवाद नहीं आयेगा, क्योंकि समय के पहले कुछ भी नहीं लाया जा सकता। जीवन की व्यवस्था में जल्दी नहीं हो सकती। भारत अभी पूंजीवादी नहीं है। इस बात को थोड़ा समझ लेना जरूरी है कि पूंजीवाद का क्या मतलब है?

पूंजीवाद हमारे मन में सिर्फ एक गाली की तरह आता है, एक निन्दा की तरह, बिना यह जाने हुए कि पूंजीवाद ने मनुष्य-जाति के लिए क्या किया है। बिना यह समझे हुए कि पूंजीवाद ही मनुष्य-जाति को समाजवाद तक पहुंचाने की प्रक्रिया है, बिना यह समझे हुए कि अगर मनुष्य कभी समान होगा और अगर कभी सारे मनुष्य खुशहाल होंगे और अगर कभी सारे मनुष्य दीनता और दरिद्रता से मुक्त होंगे तो उसमें सौ प्रतिशत हाथ पूंजीवाद का होगा।

पूंजीवाद के सम्बन्ध में दो-तीन बातें समझ लेनी जरूरी है। पहली तो यह कि पूंजीवाद पूंजी उत्पन्न करने की व्यवस्था का नाम है। 'ए सिस्टम दैट क्रिएट्स वेल्थ''—एक ऐसी व्यवस्था जो सम्पत्ति का सृजन करती है। दुनिया में पूंजीवाद के पहले किसी व्यवस्था ने पूंजी पैदा नहीं की थी। पूंजीवाद ने पूंजी

पैदा की है। पैदा करने का मतलब यह है कि ऐसी पूंजी जमीन पर पैदा की है, जो आदमी अगर पैदा न करता तो खदानों से न निकलती, जमीन से न निकलती, आकाश से न निकलती। आज जमीन पर जो पूंजी है वह पैदा की गयी पूंजी है। वह कोई प्राकृतिक सम्पत्ति नहीं है जो कि किसी खदान से मिलती हो, जमीन से मिलती हो, किसी झरने से मिलती हो, किसी प्रकृति से, किसी जगह से मिलती हो। पूंजीवाद ने पिछले डेढ़ सौ वर्षों में पूंजी पैदा करने की व्यवस्था ईजाद की। इसके पहले जो भी व्यवस्थाएं थीं ये लुटेरी व्यवस्थाएं थी। चंगेज हों कि तैमूरलंग हों, कि दुनिया के कोई भी सम्राट् हों, सामंतों ने पूंजी को लूटा था, शोषण किया था। लेकिन पूंजीवाद ने पूंजी पैदा की है। लेकिन हम सामंत-वादियों के साथ ही पूंजीवाद को भी रखने के आदी हो गये हैं। हम सोचते हैं, पूंजीवाद ने भी पूंजी का शोषण किया है। पूंजीवाद ने पूंजी निर्मित की है और पूंजी निर्मित हो जाये तो बंटवारा हो सकता है। पूंजी अगर निर्मित न हो तो बंट-वारा किस चीज का होगा? आज इन्दिरा जी और उनके नासमझ साथी समझते हैं कि समाजवाद आ सकता है, सम्पत्ति बांटी जा सकती है। उनकी बातें ऐसी हैं कि सम्पत्ति के बिना ही सम्पत्ति को बांटने का वे विचार कर रहे हैं। देश के पास सम्पत्ति नहीं है। अगर आज हम बांटेंगे तो सिर्फ गरीबी बंटेगी, धन नहीं बंट सकता। धन है ही नहीं। धन होना चाहिए बांटने के लिए। बंटना चाहिए जरूर एक दिन, लेकिन बंटने के पहले होना चाहिए। पूंजीवाद सम्पत्ति पैदा करता है, समाजवाल सम्पत्ति बांटता है। लेकिन पैदा करना पहला काम है, बांटना दूसरा काम है और अगर पूंजीवाद सम्पत्ति पैदा न कर पाये तो समाजवाद सिर्फ गरीबी बांट सकता है। अगर हमारे देश ने यह निर्णय लिया समाजवादी होने का तो हम सदा के लिए गरीब होने का निर्णय लेंगे, क्योंकि हम गरीबी बांट के रह जायेंगे और कुछ भी न कर पायेंगे, क्योंकि पूंजी को पैदा करने की व्यवस्था के सूत्र हमारे ध्यान में नहीं हैं।

पहली बात यह समझ लेना जरूरी है कि दुनिया के सारे लोगों ने मिलकर पूंजी पैदा नहीं की है, बिल्कुल थोड़े-से लोगों ने पूंजी पैदा की है। कोई एक राकफेलर, कोई एक मार्गन, कोई एक फोर्ड, कोई रथचाइल्ड, कोई बिड़ला, कोई टाटा, कोई साहू पूंजी पैदा करता है। अगर हम अमरीका के दस बड़े नाम निकाल दें तो अमरीका भी भी हमारे जैसा ही गरीब देश होगा। हेनरी फोर्ड लंदन गया था। उसने स्टेशन पर आकर इन्क्वायरी ऑफिस में पूछा कि कोई सस्ता-सा होटल हो तो बता दो। क्लर्क ने कहा, आपके चेहरे को मैंने अखबारों में देखा है। लगता है कि आप हेनरी फोर्ड हैं। आप सस्ता होटल खोज रहे हैं? आपके बेटे और बेटियां आती हैं तो वे सबसे महंगे होटल खोजते हैं।

हेनरी फोर्ड ने कहा, मैं गरीब आदमी का बेटा हूं और मेरे बेटे हेनरी फोर्ड

के बेटे हैं, अमीर आदमी के बेटे हैं। मैंने सम्पत्ति पैदा की है, मैं गरीब आदमी का बेटा हूं। मुझे सस्ता होटल बता दें, मैं किसी फोर्ड का बेटा नहीं हूं। अमरीका से दस बड़े नाम हम छांट दें तो अमरीका भी गरीब होगा। अमरीका के पास जो आज सम्पत्ति है वह कुछ लोगों के मस्तिष्क का आविष्कार और कुछ लोगों की सम्पत्ति को पैदा करने की कला का परिणाम है। सारी दुनिया ने सम्पत्ति क्यों पैदा नहीं कर ली? अभी हिन्दुस्तान सम्पत्ति पैदा क्यों नहीं कर पाया? हम सबसे पुरानी कौम हैं और जमीन पर सबसे पुरानी हमारी संस्कृति है, लेकिन हम सम्पत्ति क्यों पैदा नहीं कर पाये? सम्पत्ति को पैदा करने की कला हम विकसित न कर पाये, क्योंकि हम सम्पत्ति-विरोधी देश हैं, इसलिए सम्पत्ति पैदा करने की दिशा में हमारी प्रतिभा नहीं जा सकी। हमारी प्रतिभा गयी संन्यास की दिशा में। जो आदमी फोर्ड बन सकता था, वह जंगल चला गया। हमने अपनी सारी प्रतिभा को चैनेलाइज किया संन्यास की तरफ। तो हमने बड़े संन्यासी पैदा किये—बुद्ध पैदा किया, शंकर पैदा किया, नागार्जुन पैदा किया, महावीर पैदा किया; लेकिन हम सम्पत्ति पैदा करने वाले बड़े कुशल लोग पैदा न कर सके। उस तरफ हमारी प्रतिभा न गयी सम्पत्ति के विरोध के कारण।

हिन्दुस्तान से एक यात्री वापस लौटा। वह था काउन्ट केसरलिन। उसने एक छोटा-सा वाक्य लिखा है। पढ़ा तो बहुत हैरान हुआ। उसने लिखा, 'इण्डिया इज ए रिच लैंड ह्वेयर पूअर पीपुल लिव।' अर्थात् 'हिन्दुस्तान एक अमीर देश है जहां गरीब लोग रहते हैं।' यह आदमी पागल तो नहीं है? अगर हिन्दुस्तान अमीर देश है तो गरीब लोग वहाँ कैसे रहेंगे और अगर वहाँ गरीब लोग रहते हैं तो देश अमीर कैसे है? लेकिन उसका मजाक मैं समझ गया। उसका मजाक यह था कि हिन्दुस्तान कभी अमीर हो सकता था, लेकिन अमीरी पैदा करनी पड़ती है। प्रतिभा नियोजित करनी पड़ती है, जीनियस को यात्रा पकड़ानी पड़ती हैं, तब सम्पत्ति पैदा होती है; अन्यथा सम्पत्ति पैदा नहीं होती। सम्पत्ति के उत्पादक मजदूर और श्रमिक नहीं हैं। अन्यथा आदिवासी श्रम कर रहे हैं जन्मों-जन्मों से और सम्पत्ति पैदा नहीं कर पाये। अफ्रीका का गरीब भी श्रम कर रहा है, लेकिन सम्पत्ति पैदा नहीं हो पायी। अगर श्रम सम्पत्ति पैदा करता तो सारी दुनिया में सम्पत्ति पैदा हो जाती। उत्पादक कोई और है। कोई और प्रतिभा है पीछे। पूंजीवाद ने उस तरह की प्रतिभाओं को अवसर दिया है जो सम्पत्ति को पैदा करें और पूंजीवाद ने सम्पत्ति को पैदा करने का इन्तजाम किया। बड़ा इन्तजाम तो उसने यह किया है कि मनुष्य की जगह मशीन को लाने की कोशिश की, क्योंकि मनुष्य के हाथ से सम्पत्ति पैदा नहीं हो सकती। मनुष्य कितना ही श्रम कर ले, पेट भर ले तो बहुत है।

बुद्ध के जमाने में हिन्दुस्तान की आबादी दो करोड़ थी यह आबादी दो करोड़

ही रहती, ज्यादा नहीं हो सकती थी, क्योंकि दस बच्चे पैदा होते और नौ बच्चों को मारना ही पड़ता। क्योंकि न तो भोजन था, न दवा थी न जगह थी, न मकान था, न इन्तजाम था। उनके शरीर को बचाने का कोई उपाय न था, पिछले डेढ़ सौ वर्षों में दुनिया में एक्सप्लोजन हुआ मनुष्य जाति का। आज साढ़े तीन अरब लोग हैं। ये साढ़े तीन अरब लोग पूंजीवाद की व्यवस्था के कारण जीवित हैं, अन्यथा ये जीवित नहीं रह सकते थे। पूंजीवादी व्यवस्था के बिना कल्पना के बाहर है कि साढ़े तीन अरब आदमी इस पृथ्वी पर जी जायें। पूंजीवाद ने क्या किया? मनुष्य की जगह मशीन को ईजाद किया, मनुष्य को हटाया श्रम से और मशीन को लगाया श्रम में। इसके दो परिणाम हुए। मशीन मनुष्य से हजारगुना काम कर सकती है, लाखगुना काम कर सकती है, करोड़गुना भी कर सकती है। मशीन की सम्भावनाएं अनन्त हैं, मनुष्य की सम्भावनाएं बहुत सीमित हैं। मशीन की वजह से सम्पत्ति का इतना ढेर लगना शुरू हुआ और दूसरा काम, जैसे ही मशीन आयी, मनुष्य गुलामी से मुक्त हो सका। पूंजीवाद की दूसरी बड़ी देन है दासता का अन्त, गुलामी की समाप्ति। अगर मशीन न आती तो आदमी की गुलामी कभी भी मिट नहीं सकती थी। आदमी की गुलामी मिटाना असम्भव था, आदमी को गुलाम रहना ही पड़ता, क्योंकि आदमी से काम लेना और आदमी से पीछे उसकी छाती पर या तो सवार हो कोई, पीछे कोड़े लेकर, तभी उससे हड्डी तोड़ कर काम लिया जा सकता है। मशीन स्थापित हुई, सब्स्टिट्यूट हुई, तो ही आदमी गुलामी से मुक्त हो सकता है।

आज पृथ्वी पर आदमी गुलाम नहीं है, आज आदमी मुक्त है। लेकिन समाजवाद ने एक झूठी और भ्रामक बात पैदा करना शुरू की है कि सम्पत्ति और पूंजी श्रमिक पैदा कर रहा है। श्रमिक सम्पत्ति पैदा नहीं कर रहा है, श्रमिक सिर्फ सम्पत्ति के पैदा करने का बहुत गौण हिस्सा है और आज नहीं कल, श्रमिक सुपर-फ्युलअस, व्यर्थ हो जायेगा, क्योंकि मशीन उसे पूरी तरह से सब्स्टिट्यूट कर देगी। पचास साल के भीतर दुनिया में लेबर, श्रमिक जैसा आदमी नहीं होगा, होने की जरूरत भी नहीं है। अशोभन है कि किसी आदमी को मशीन का काम करना पड़े जो मशीन कर सकती है। श्रमिक व्यर्थ हो जायेगा। सम्पत्ति के पैदा करने में श्रमिक धीरे-धीरे व्यर्थ होता गया और पचास साल में बिल्कुल बेकार हो जायेगा। श्रमिक की कोई जरूरत नहीं रह जायेगी, क्योंकि श्रम नानएसेंशियल, गैरजरूरी हिस्सा है। जरूरी हिस्सा उत्पादक बुद्धि है, प्रोडक्टिव माइंड है। लेकिन समाज-वाद ने एक भ्रम पैदा किया है कि सम्पत्ति मसलस से पैदा हुई है। झूठी है यह बात। सम्पत्ति मस्तिष्क से पैदा हुई है, मसलस से नहीं। और अगर समाजवाद ने यह जिद की और मसलस को मस्तिष्क के ऊपर बिठा दिया तो मस्तिष्क विदा हो जायेगा और मसल्स वहीं पहुंच जायेगी जहां हजार साल पहले गरीबी और

भुखमरी थी, उससे आगे नहीं। सारी सम्पत्ति मस्तिष्क की ईजाद है और ध्यान रहे, सारे लोगों ने सम्पत्ति के पैदा करने का श्रम भी नहीं उठाया है। एक आइंस्टीन ईजाद करता है, सारे लोग फायदे लेते हैं। एक फोर्ड सम्पत्ति पैदा करता है, सारे लोगों तक सम्पत्ति बिखर जाती है। लेकिन ऐसा समझाया जा रहा है कि पूंजीपति जो है वह लोगों से सम्पत्ति शोषित करता है। इससे बड़ी झूठी कोई बात नहीं हो सकती है। जो सम्पत्ति है ही नहीं, उसका शोषण होगा कैसे? उस सम्पत्ति का शोषण हो सकता है जो कहीं हो, लेकिन जो सम्पत्ति कहीं है ही नहीं उस सम्पत्ति का शोषण कैसे हो सकता है? पूंजीवाद सम्पत्ति का शोषण नहीं करता है, सम्पत्ति पैदा करता है। लेकिन जब सम्पत्ति पैदा होती है तो दिखायी पड़नी शुरू होती है और हजारों-आंखों में ईर्ष्या का कारण बनती है।

समाजवाद के प्रभाव का कारण यह नहीं है कि हर आदमी हर दूसरे आदमी को समान समझता है। समाजवाद के बुनियादी प्रभाव का कारण मनुष्य की जन्मजात ईर्ष्या है—उनके प्रति जो सफल हैं, उनके प्रति जो समृद्ध हैं, उनके प्रति जिन्होंने कुछ पाया, जिन्होंने कुछ खोजा, जिन्होंने कुछ बनाया। मनुष्य-जाति का बड़ा हिस्सा एकदम तमस में रहा है, उसने कुछ भी पैदा नहीं किया है। मनुष्य-जाति के बड़े हिस्से ने न तो ज्ञान पैदा किया है, न सम्पत्ति पैदा की है, न शक्ति पैदा की है। लेकिन मनुष्य-जाति का यह बड़ा हिस्सा ईर्ष्या से पीड़ित जरूर हो गया है। उसे दिखायी पड़ रहा है—सम्पत्ति है, ज्ञान है, बुद्धि है, लोगों के पास कुछ है और निश्चित ही करोड़ों लोगों की ईर्ष्या को जगाया जा सकता है। रूस में जो क्रांति हुई है वह ईर्ष्या से, चीन में जो क्रांति हुई वह ईर्ष्या से और इस देश में भी जो समाजवाद की बातें हो रही हैं वे ईर्ष्याजन्य हैं। लेकिन ध्यान रहे, ईर्ष्या से कोई समाज निर्मित नहीं होता और यह भी ध्यान रहे, ईर्ष्या से समाज का किया गया रूपांतरण फलदायी, सुखदायी, मंगलदायी नहीं होगा। यह भी ध्यान रहे कि ईर्ष्या से हम किसी व्यवस्था को तोड़ तो देंगे, लेकिन नयी व्यवस्था का सृजन नहीं कर पायेंगे। ईर्ष्या क्रियेटिव नहीं है, डैस्ट्रक्टिव है। ईर्ष्या कभी भी सृजनात्मक शक्ति नहीं है। वह तोड़ सकती है, मिटा सकती है, बना नहीं सकती। बनाने की कल्पना ही ईर्ष्या में नहीं होती है।

मैंने सुना है कि एक आदमी मरा। मरते समय उसने अपने बेटों को इकट्ठा किया और उनसे कहा कि मुझ मरते हुए बाप की एक इच्छा है, उसे तुम पूरा कर देना। मेरे पास आओ और मुझे वचन दो। लेकिन उसके बड़े बेटे चुपचाप दूर ही बैठे रहे। वे अपने बाप को भली-भांति पहचानते थे। लेकिन छोटा बेटा नहीं जानता था, वह बाप के पास चला गया। बाप ने उसके कान में कहा कि तू ही मेरा असली बेटा है और तुझे मैं एक बड़ा दायित्व सौंप जाता हूं। जब मैं मर जाऊं तो मेरी लाश के टुकड़े-टुकड़े करके पड़ोसियों के घर में फेंक देना।

उसने कहा, क्या मतलब है आपका? तो उस आदमी ने कहा कि जब मेरी आत्मा जा रही होगी स्वर्ग की तरफ तो पड़ोसियों को जेलखाने की तरफ जाते देख कर मुझे बड़ी शान्ति मिलेगी। मेरा दिल बड़ा तृप्त हो जायेगा। जिन्दगी भर से चाहता हूं इन्हें जेल भेज दूं। मकान एक पड़ोसी के पास बड़ा है, मेरे पास छोटा है। दूसरे पड़ोसी के पास सुन्दर घोड़े हैं, मेरे पास नहीं। तीसरे पड़ोसी के पास यह है, चौथे के पास वह है और मेरे पास नहीं। लेकिन इतना तो कर ही सकता हूं मैं कि मरने के बाद मेरी लाश के टुकड़े-टुकड़े करके पड़ोसियों के घर में फिंकवा दूं?

अब यह जो आदमी है, ईर्ष्या में जी रहा है। मकान बड़े हो सकते हैं सृजन से, ईर्ष्या से नहीं। हां, ईर्ष्या से बड़े मकान छोटे बनाये जा सकते हैं; लेकिन ईर्ष्या से छोटे मकान बड़े नहीं बनाये जा सकते। ईर्ष्या के पास सृजनात्मक शक्ति नहीं है। ईर्ष्या जो है मृत्यु की साथी है, जीवन की नहीं। लेकिन सारी दुनिया में समाजवाद का जो प्रभाव है उसकी बुनियाद में ईर्ष्या आधार है। लेकिन मजा यह है कि जिस गरीब को यह ईर्ष्या सता रही है और शायद गरीब को उतनी नहीं सता रही है जितनी अमीर और गरीब के बीच के जो नेता खड़े हैं उनको सता रही है। यह जो ईर्ष्या इनको सता रही है, वह ईर्ष्या अमीरों के खिलाफ जितना नुकसान पहुंचायेगी वह बड़ा नहीं है। इसका अन्तिम नुकसान गरीबों को ही पहुंचने वाला है। क्योंकि अमीर जो सम्पत्ति पैदा कर रहा है वह सम्पत्ति अन्ततः गरीब तक पहुंच रही है, पहुंचती है, पहुंच ही जाती है। उसे रोकने का कोई उपाय नहीं है।

मैं निकल रहा था, एक ट्रेन से। दिल्ली जा रहा था। मेरे कम्पार्टमेंट में एक सज्जन थे, रास्ते में एक बड़ा मकान था और उस मकान के आस-पास दस-पांच छोटे झोंपड़े थे। उन्होंने मुझे देखकर कहा देखते हैं आप, यह मकान बड़ा हो गया है, इन मकानों को छोटा करके। मैंने उनसे कहा आप गलत देख रहे हैं। इस बड़े मकान को बीच से हटा दें तो यह जो आस-पास दस मकान हैं ये बड़े नहीं हो जायेंगे, ये मकान नदारद हो जायेंगे। उस बड़े मकान के बनने की वजह से ये दस मकान भी आस-पास बन जाते हैं, बनने ही पड़ते हैं। कोई मकान अकेला नहीं बनता है। एक बड़ा मकान जब बनता है, दस छोटे मकान बन ही जाते हैं, क्योंकि उस बड़े मकान को बनायेगा कौन? उस बड़े मकान को बीच से हटा दें तो ये दस मकान विदा हो जायेंगे। दुनिया में दस बच्चे पैदा होते, नौ मरते थे। पूंजीवाद ने उन नौ बच्चों को भी बचा लिया। आज दस बच्चे होते हैं, सिर्फ एक बच्चा मरता है, नौ बच्चे बच जाते हैं। उन नौ बच्चों की भीड़ इकट्ठी हो गयी है। उनके पास छोटे मकान हैं, दुखद है यह बात। उनके पास अच्छे मकान होने चाहिए। लेकिन अच्छे मकान होने का यह सूत्र नहीं है कि बड़े मकान मिटा दिये

जायें। अगर बड़े मकान मिट गये तो मैं आपसे कहता हूं कि ये छोटे मकान विदा हो जायेंगे। ये बड़े मकान के पीछे आये हैं। ये नौ मकान जो बच रहे हैं दस में से, ये बड़े मकान के बनाने में बच रहे हैं। मजदूर को काम है, नौकरी है, रहने की जगह है, वह पूंजी के पैदा होने के कारण हुई है। इस पूंजी को बिखेर देने से मजदूर बचेगा नहीं। कोशिश हमें यह करनी चाहिए कि मजदूर भी कैसे पूंजीपति हो जाये। कोशिश हमें यह करनी चाहिए कि छोटे मकान कैसे बड़े हों और अगर छोटे मकान बड़े बनाने हैं तो और बहुत बड़े मकान बनाने पड़ेंगे, तभी ये बड़े हो पायेंगे, अन्यथा ये बड़े नहीं हो पायेंगे। लेकिन कई बार बड़े भ्रांत तर्क पैदा हो जाते हैं।

चीन में जो चल रहा है यह यही ख्याल है कि हम सब बड़े मकान मिटाकर छोटे मकानों को बड़ा कर देंगे। नहीं, बड़ा मकान मिट जायेगा और छोटा मकान जिसके पास है अगर वह बड़ा मकान बना सकता होता तो उसने बहुत पहले बड़ा मकान बना लिया होता। वह अपनी लिथार्जी में, अपने तामस में वापस लौट जायेगा। ख्रुश्चेव ने रूस से विदा होने से पहले अपने पद से जो एक महत्वपूर्ण बात कही है, वह सोचने जैसी है। उसने कहा है, आज रूस के सामने जो सबसे बड़ा सवाल है वह यह है कि रूस में कोई भी काम करने को तैयार नहीं है। रूस के जवान काम करने में बिल्कुल उत्सुक नहीं हैं। बड़ी अजीब बात है कि रूस के मजदूर काम करने में उत्सुक न हों; रूस का जवान काम करने में उत्सुक न हो। लिथार्जी में, आलस में, तामस में वापस लौट रहा है वह। स्टैलिन ने जो उससे काम लिया था वह भी जबर्दस्ती था, इसलिए स्टैलिन के मरने के बाद जो व्यवहार स्टैलिन के साथ रूस में हुआ वह बिल्कुल ही तर्कसंगत मालूम पड़ता है। जिस क्रेमलिन के चौराहे पर, जिस रेडस्क्वायर पर जिन्दगी भर सलामी ली स्टैलिन ने, उसी स्क्वायर से उसकी गड़ी हुई लाश को उखाड़ कर हटा दिया गया है, क्योंकि जितने दिन स्टैलिन जिन्दा था रूस पर प्रेत की भांति छाया रहा और गहरी हत्या करता रहा। गहरी हत्या के भय से काम चला, लेनिन हत्या का भय ढीला हुआ, काम बन्द हुआ। पूंजीवाद ने इंसेंटिव पैदा किया है, एक प्रेरणा पैदा की है व्यक्ति के भीतर कि वह सम्पत्ति को पैदा करे। सम्पत्ति को पैदा करने का आकर्षण पैदा किया है। वह आकर्षण पूंजीवाद के विदा होते ही विदा हो जायेगा। हां, एक ही शर्त पर अगर पूंजीवाद पूरी तरह विकसित हो जाये और पूंजीवाद से समाजवाद सहज आये तो यह घटना नहीं घटेगी। ऐसा हो सकता है। अमरीका में ऐसा सम्भव हो जायेगा। यह कितना विरोधाभासी है, पैरोडौक्सिकल मालूम पड़ता है, लेकिन यही सत्य है कि आने वाले पचास वर्षों में अमरीका रोज समाजवाद की तरफ कदम उठायेगा और रूस रोज पूंजीवाद की तरफ कदम उठायेगा। अमरीका रोज समाजवादी होता जा रहा है बिना जाने, बिना किसी क्रांति के।

क्यों? क्योंकि सम्पत्ति जब अतिरिक्त हो जाती है तो व्यक्तिगत मालकियत व्यर्थ हो जाती है। व्यक्तिगत मालकियत तभी व्यर्थ होती है, जब सम्पत्ति अतिरिक्त हो जाये, जरूरत से ज्यादा हो जाये। अभी एक गांव में हम जायें, वहां पानी पर कोई कब्जा नहीं है। लेकिन गांव में पानी बहुत ज्यादा है, लोग कम हैं। कल गांव में पानी कम हो जाये और लोग ज्यादा हो जायें तो पानी पर व्यक्तिगत मालकियत शुरू हो जायेगी। आज हवा मुक्त है सबके लिए, कल हवा छोटी पड़ जाये, लोग ज्यादा बढ़ जायें, कल ऑक्सीजन कम हो जाये और लोग ज्यादा हो जायें तो जिनके पास सुविधा है, समझ है वे ऑक्सीजन के टैंक अपने घरों में बन्द कर लेगें। व्यक्तिगत मालकियत शुरू हो जायेगी। सम्पत्ति पर तब तक व्यक्तिगत मालकियत रहेगी ही जब तक सम्पत्ति कम है और लोग ज्यादा हैं। एक ही तर्कसंगत, एक ही स्वाभाविक सम्भावना है व्यक्तिगत सम्पत्ति के विदा होने की और वह यह है कि सम्पत्ति पानी और हवा की तरह अतिरिक्त मात्रा में पैदा हो जाये।

यह सम्भव हो जायेगा। आज भी अमरीका में हम जिसे गरीब कहते हैं वह रूस के मापदण्डों के हिसाब से अमीर है। आज जिसे रूस में हम बहुत सुविधा-सम्पन्न कहें वह भी अमरीका के गरीब से पीछे खड़ा हुआ है। लेकिन यह बहुत आकस्मिक नहीं है। लेकिन चिन्तनीय तो है ही। क्या यह बहुत विचारणीय नहीं मालूम होता कि पचास वर्ष की समाजवादी व्यवस्था के बाद भी रूस एक बड़ा गरीब मुल्क है? दस सालों से तो अपना भोजन भी खुद पैदा नहीं कर पा रहा है। आप ही अपना भोजन बाहर से मंगा रहे हैं ऐसा नहीं, रूस भी दस सालों से पूंजीवादी मुल्कों से भोजन खरीद रहा है। समाजवादी पेट को भी पूंजीवादी हाथों को ही भरना पड़ेगा, तो समाजवाद का क्या होगा? रूप में लिथार्जी वापस लौट आयी है। असल में पूंजीवाद एक व्यक्तिगत प्रेरणा देता है प्रत्येक व्यक्ति को सम्पत्ति पैदा करने की। वह प्रेरणा खत्म हो जाये तो फिर एक ही रास्ता है पीछे से बन्दूक लगाओ, लेकिन पीछे से बन्दूक की व्यवस्था स्थायी व्यवस्था नहीं हो सकती है।

मैंने सुना है ख्रुश्चेव के सम्बन्ध में एक मजाक। ख्रुश्चेव एक पार्टी-मीटिंग में बोल रहा था और बोलते वक्त वह स्टैलिन की निन्दा कर रहा था। तो एक आदमी ने पीछे से खड़े होकर कहा कि महाशय, स्टैलिन के जिन कामों की आप निन्दा कर रहे हैं और कह रहे हैं कि लाखों लोगों की हत्या की, साइबेरिया भेजा, जेल में डाला, मार डाला, सारे मुल्क को खून में डुबो दिया। जो ये बातें आप कह रहे हैं, जब स्टैलिन यह सब कर रहा था तब भी आप स्टैलिन के साथ थे। तब आप कहां चले गये थे? ख्रुश्चेव एक मिनट के लिए चुप हो गया। फिर उसने कहा, जिन महाशय ने यह बात कही है कृपा करके अपना नाम और पता

बता दें। लेकिन वह आदमी फिर नहीं उठा। फिर ख्रुश्चेव ने कहा, आप कृपा करके उठकर अपनी शक्ल ही दिखा दें, लेकिन उस आदमी का कोई पता नहीं चला। फिर ख्रुश्चेव ने कहा कि जिस वजह से आप अब दोबारा नहीं उठ रहे हैं उसी वजह से मैं भी चुप रह गया था। जिन्दा रहना था तो चुप रहना जरूरी था।

पूंजीवाद सम्पत्ति पैदा करवाता है बड़े सहज ढंग से। किसी के पीछे कोई कोड़ा नहीं है, किसी के पीछे बन्दूक नहीं है, लेकिन व्यक्ति की अपनी एक छोटी-सी दुनिया है, उसकी अपनी प्रेरणा है। अगर मेरी पत्नी बीमार है तो मैं रातभर काम कर सकता हूं, लेकिन अगर कोई मुझसे कहे कि मनुष्यता बीमार है तो मैं सोचूंगा : होगी। मनुष्यता इतने दूर की बात हो जाती है कि उससे कोई सम्बन्ध नहीं बनता। उससे कोई प्रेरणा पैदा नहीं होती। अगर मुझसे कोई कहता है कि मेरे बेटे को पढ़ाना है तो मैं गड्ढा खोद सकता हूं भरी धूप में, लेकिन कोई मुझे कहता है कि मनुष्यता को शिक्षित करना है, तो बात धुएं में खो जाती है। कहीं मेरे ऊपर उसकी कोई चोट नहीं पहुंचती है। अगर कोई मुझसे कहता है कि एक घर बनाना है अपने लिए। अपने लिए एक छाया करनी है और बगिया बनानी है जिसमें फूल खिलेंगे, तो समझ में आती है बात। जब कोई राष्ट्र के बगीचे की बात करने लगता है तब बात खो जाती है। आदमी की चेतना का दायरा बहुत छोटा है, वैसे ही जैसे दिये का प्रकाश चार-पांच फुट के आस-पास पड़ता है। ऐसे ही आदमी की चेतना है। उसकी चेतना बहुत छोटे-से घेरे पर पड़ती है। जिस घेरे पर पड़ती है, उसी का नाम परिवार है। अभी आदमी परिवार से ज्यादा बड़े घेरे के योग्य नहीं है। परिवार के बाहर जैसा बड़ा घेरा होता जाता है, वैसा ही आदमी सुस्त होता चला जाता है, उसकी प्रेरणा खोती चली जाती है। राष्ट्र, मनुष्यता, मनुष्य जाति, विश्व इतने बड़े घेरे हैं कि मनुष्य की चेतना पर इनका कोई कहीं परिणाम नहीं होता। पूंजीवाद ने उसकी व्यक्तिगत चेतना के आधार पर सम्पत्ति के सृजन की एक दौड़ पैदा की है और पूंजीवाद ने सम्पत्ति पैदा की है, ज्ञान पैदा किया है। ईसा के मरने के अठ्ठारह सौ पचास वर्ष में जितना ज्ञान दुनिया में पैदा हुआ, पूंजीवाद के डेढ़ सौ वर्षों में उतना ज्ञान पैदा हुआ। पिछले डेढ़ सौ वर्षों में जितना ज्ञान पैदा हुआ, इधर पन्द्रह वर्षों में उतना ज्ञान पैदा हुआ। पिछले पन्द्रह वर्षों में जितना ज्ञान पैदा हुआ, उतना इधर पांच वर्षों में ज्ञान पैदा हुआ है। पुरानी दुनिया जहां अठ्ठारह सौ पचास वर्ष में जितना काम करती थी वह पूंजीवाद की दुनिया पांच वर्ष में पूरा कर रही है। एक चमत्कार है, लेकिन हम पूंजीपति को गाली दिये जा रहे हैं बिना यह समझे कि वह मार्ग तैयार कर रहा है जहां से सम्पत्ति बरस जायेगी। वह मार्ग तैयार कर रहा है जहां वह प्रत्येक व्यक्ति को सम्पत्ति के सृजन में संलग्न कर देगा। वह मार्ग तैयार कर रहा है जहां से

धीरे-धीरे सम्पत्ति अतिरेक में, एफ्लुएंन्स में हो जायेगी और जिस दिन सम्पत्ति अतिरिक्त हो जायेगी, उस दिन पूंजीवाद का बेटा सहज पैदा होगा।

मैं जब समाजवाद से सावधान की बात करता हूं तो मेरा मतलब है गर्भ का काल पूरा होने दें। पूंजीवाद गर्भ का काल है, उसके नौ महीने पूरे हो जाने दें। पूंजीवाद की ऐतिहासिक प्रक्रिया को पूरा हो जाने दें। मार्क्स को भी कल्पना न थी कि रूस से पूंजीवाद समाप्त होगा, क्योंकि रूस में तो पूंजीवाद था ही नहीं। मार्क्स की कल्पना ही नहीं थी कि चीन साम्यवादी हो जायेगा, क्योंकि चीन तो अत्यन्त दरिद्र था। मार्क्स की भी कल्पना थी कि अमरीका या जर्मनी में पूंजीवाद पहले टूटेगा, लेकिन टूटा रूस में; टूटा चीन में। तोड़ने की कोशिश चलती है हिन्दुस्तान में। ये सब गरीब मुल्क हैं जिनके पास पूंजी की व्यवस्था ही नहीं है, लेकिन इनके पास गरीबों का बहुत बड़ा समूह है। उस समूह की ईर्ष्या को जगाया जा सकता है। मार्क्स का चिन्तन तो बहुत वैज्ञानिक था। वह ठीक कह रहा था कि जहां पूंजीवाद अपनी ठीक व्यवस्था को विकसित कर लेगा, वहां से उसको विदा हो जाना पड़ेगा; क्योंकि जब सम्पत्ति ज्यादा हो जायेगी तो व्यक्तिगत सम्पत्ति का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। लेकिन उसे पता नहीं था कि जब क्रांतियां होंगी तब पूंजीवाद का, सम्पत्ति का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। लेकिन उसे पता नहीं था कि जो क्रांतियां होंगी वह पूंजीवाद के सम्पत्ति के पैदा करने से नहीं, वह गरीब की ईर्ष्या को भड़का कर हो जायेगी। जिन मुल्कों में समाजवाद आया, वे गरीब हैं। आना चाहिए था अमरीका में, वहां वैसा समाजवाद नहीं आया, लेकिन वहां एक अर्थ में समाजवाद आ रहा है चुपचाप, साइलेंटली। असल में जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है वह बैण्ड-बाजा बजाकर नहीं आता, जो भी महत्वपूर्ण है वह चुपचाप आता है। बाज टूटता है तो कोई खबर नहीं होती और सूरज निकलता है तो कोई घोषणा नहीं होती। जिन्दगी में जो भी महत्वपूर्ण है, चुपचाप आता है। आ जाता है तभी पता चलता है कि आ गया। लेकिन जो भी बैण्ड-बाजे बजाकर आता, समझना कि कुछ जल्दी आने की कोशिश चल रही है। समाजवाद बैण्ड-बाजे बजाकर आना चाहता है और बिना इस बात को जाने हुए कि पूंजीवाद पूरा न हो तो समाजवाद नहीं आ सकता है। आज हिन्दुस्तान में वह सम्पत्ति को बांट ले और पूंजी की बढ़ती हुई, बनती हुई बिल्कुल प्राथमिक व्यवस्था को तोड़ दे, तो क्या होगा। गरीब की ईर्ष्या तुष्ट होगी, लेकिन गरीब और गरीब होगा। गरीब की ईर्ष्या तृप्त होगी, लेकिन गरीब भूखों मरेगा। गरीब की ईर्ष्या तृप्त होगी, लेकिन गरीब अपने हाथ से आत्मघात कर लेगा। हिन्दुस्तान में पूंजी की बनती हुई व्यवस्था को सब तरह का सहयोग चाहिए। आज तो हिन्दुस्तान को पूंजीवादी होने का ठीक अर्थों में निर्णय लेना चाहिए कि हम पचास वर्ष में ठीक पूंजीवाद पैदा कर लें। समाजवाद उसके पीछे आने ही वाला है, वह अपने

आप आ जायेगा। उसे लाने की किसी इन्दिरा जी की जरूरत नहीं पड़ेगी, उसे लाने के लिए किसी की जरूरत नहीं पड़ेगी। वह आ जायेगा, क्योंकि मेरी समझ ऐसी है कि पूंजीवाद कौन लाया? पूंजीवाद आया। जब सामन्तवाद की व्यवस्था उस जगह पहुंच गयी तो पूंजीवाद आया। समाजवाद को लाने की जरूरत नहीं है। समाजवाद भी आयेगा लेकिन धैर्य चाहिए। वह धैर्य बिलकुल नहीं है और अधैर्य इतना नुकसान कर सकता है, जिसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल हो जायेगा। फिर कौन हिसाब लगायेगा?

मैंने सुना है एक बार रथचाइल्ड के पास एक समाजवादी गया और उसने जाकर कहा कि तुमने सारे देश की सम्पत्ति हड़प कर ली है। बांट दो तो सारा देश अमीर हो जायेगा। रथचाइल्ड ने उसकी बात सुनी, कागज पर कुछ हिसाब लगाया और उससे कहा कि यह छः पैसे आपके हिस्से पड़ते हैं, आप लीजिए और जो जो आयेंगे उनके हिस्से जो पड़ता है, उनको देता जाऊंगा। मेरे पास जितनी सम्पत्ति है, अगर मैं सारी दुनिया में बांटूं तो एक-एक आदमी को छः-छः पैसे बांट दूंगा। जो भी आयेगा इन्कार नहीं करूंगा, लेकिन क्या आप सोचते हैं कि ये छः पैसे आपको मिल जायेंगे तो समाजवाद आ जायेगा? लेकिन रथचाइल्ड तो छः पैसे भी दे सकता था। बिड़ला, टाटा, साहू, डालमिया के पास छः पैसे भी नहीं हैं। हमारे पास पूंजीपति ही नहीं हैं, हमारे पास पूंजीपति बिलकुल अंकुरित हो रहा है। आज बम्बई में थोड़ी सुविधा दिखायी पड़ती है, लेकिन बम्बई हिन्दुस्तान नहीं है। हिन्दुस्तान पूरा का पूरा गरीब देश है और हिन्दुस्तान पूरा का पूरा इस तरह जी रहा है जैसे औद्योगिक क्रांति के पहले यूरोप था। अभी औद्योगिक क्रांति भी यहां नहीं हो पायी और हम सपने देख रहे हैं आगे के। औद्योगिक क्रांति हो, सारा मुल्क उद्योग से भर जाये, सारा मुल्क सम्पत्ति पैदा करे, सारे मुल्क में करोड़ों छोटे-बड़े टाटा, बिड़ला हों तो ही वे सपने पूरे हो सकते हैं। सम्पत्ति मुल्क में पैदा हो जाये तो कोई टाटा, कोई बिड़ला सम्पत्ति के विभाजन को न रोक पायेंगे। बल्कि मेरी समझ तो यह है कि वे ही सम्पत्ति इतनी पैदा कर जायेंगे कि वह बांटी जा सके, अन्यथा वह बांटी भी नहीं जा सकती। समाजवाद से सावधान होने का यह मतलब नहीं है कि मैं समाजवाद का शत्रु हूं, मैं तो समझता हूं, आज जो समाजवादी हैं वे समाजवाद के शत्रु हैं, क्योंकि उन्हें पता नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं। वे जिस शाखा को काट रहे हैं उसी पर बैठे हुए हैं। वे गिरेंगे, अपने साथ सबको लेकर डूब जायेंगे। हिन्दुस्तान बहुत लम्बे समय से गरीब है। सोच-विचार के कदम उठाना। कहीं ऐसा न हो कि जो सम्पत्ति पैदा हो रही है, उसकी व्यवस्था टूट जाये। और उसे रोज टूटता देखते हैं, लेकिन हम अंधे मालूम होते हैं। ऐसा मालूम होता है कि हमने तय कर लिया है कि हम आंख खोलकर नहीं देखेंगे। सरकार जिस काम को हाथ में लेती है, वही नुकसान पहुंचाने लगता है। निजी उद्योगों में

जितनी सम्पत्ति लगी है, सरकारी उद्योगों में उससे दुगुनी लगी है; लेकिन सब सरकारी उद्योग नुकसान पहुंचा रहे हैं और सरकार कहती है कि बाकी जो निजी उद्योग हैं वे भी सरकार के हो जायें तो हम लाभ ही लाभ पहुंचा देंगे।

यह भी ध्यान रहे कि समाजवाद की आड़ में कौन खड़ा है। समाजवाद की बात चलती है, लेकिन जो आता है वह होता है राज्यवाद। समाजवाद का नाम चलता है, सोशलिज्म का, लेकिन जो आता है वह होता है स्टेट कैपिटलिज्म, वह होता है राज्य पूंजीवाद। समाजवाद का मतलब है समाज के हाथ में सम्पत्ति हो, लेकिन समाज के हाथ में सम्पत्ति कहां आती है? हां, समाज के हाथ सारी सम्पत्ति राज्य के हाथों में पहुंच जाती है। जहां बंटे हुए पूंजीपति थे बहुत, वहां एक ही पूंजीपति रह जाता है राज्य, और राज्य की कुशलता हम देख रहे हैं। हमारे मुल्क में राज्य जितना अकुशल है, उतना गांव का छोटा-सा दुकानदार भी अकुशल नहीं है। आज राज्य कितना मूढ़ सिद्ध हो रहा है उतना हिन्दुस्तान का साधारण-सा किराना बेचने वाला और ठेले पर काम करने वाला आदमी भी उतना मूढ़ नहीं है। इस राज्य के हाथ में सारी सम्पत्ति दे देने का ख्याल है, सारे उत्पादन के स्रोत दे देने का ख्याल है! अगर हिन्दुस्तान ने मरने का ही तय कर रखा है, तब बात दूसरी है।

इस राज्य के हाथों में जाकर खतरा होगा और यह भी ध्यान रहे कि राज्य की सत्ता जिनके हाथ में है, वे वैसे ही पागल हो जाते हैं। लेकिन अब वे सम्पत्ति की सत्ता को भी दूसरों के हाथों में देखने के लिए राजी नहीं हैं इसलिए सम्पत्ति की सत्ता भी अपने हाथ में चाहते हैं। असल में राज्य के मद में जो पागल हैं, वे चाहते हैं कि सम्पत्ति की ताकत भी उनके हाथ में हो, तब सम्पूर्ण शक्ति उनके हाथ में हो जाती है—धन की भी, राज्य की भी। अकेले राज्य की शक्ति ही उन्हें दीवाना कर देती है, धन की शक्ति भी उनके हाथ में पहुंच जाये तब वे निरंकुश हो जाते हैं। फिर उनके ऊपर कुछ भी नहीं किया जा सकता। आखिर स्टैलिन को हटाने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सका, हिटलर को हटाने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सका। क्या आपको पता है, हिटलर भी सोशलिस्ट था? उसकी पार्टी का नाम भी नेशनल सोशलिस्ट पार्टी था! वह भी समाजवादी था। माओ को हटाने के लिए भी कुछ नहीं किया जा सकता। और यह भी ध्यान रहे कि आज दुनिया में राज्य के हाथ में इतनी ताकतें हैं कि अगर धन की ताकत भी उसके हाथ में चली जाये तो व्यक्ति बिलकुल नपुंसक (इम्पोटेंट) हो जाता है। पूरा राष्ट्र नपुंसक हो जाता है। फिर व्यक्ति के पास कोई शक्ति नहीं रह जाती। यह शायद आपको पता न हो कि राजनीतिक स्वतन्त्रता हो, आर्थिक स्वतन्त्रता हो, तो ही व्यक्ति की वैचारिक स्वतन्त्रता शेष रहती है। अगर आर्थिक और राजनीतिक शक्तियां एक ही ग्रूप के हाथ में चली जायें तो व्यक्ति के पास विचार की कोई

स्वतन्त्रता नहीं रह जाती। रूस में विचार की कोई स्वतन्त्रता नहीं है। चीन में भी नहीं है, हिन्दुस्तान में भी कल नहीं होगी। लेकिन यह एक-एक कदम आती हैं बातें, पहले से पता नहीं चलता है।

एक व्यक्ति की सम्पत्ति छीन लो, सम्पत्ति के छिनने के साथ ही उसके व्यक्तित्व का नब्बे प्रतिशत हिस्सा समाप्त हो जाता है। नब्बे प्रतिशत विदा हो गया! सम्पत्ति छिनते ही उसके सोच-विचार की क्षमता भी छिन जाती है, क्योंकि उसके पास व्यक्ति होने की सामर्थ्य ही क्षीण हो गयी। राज्य के पास सारी ताकत पहुंच जाये तो व्यक्ति की हत्या हो जायेगी। इस समय सारी दुनिया में, इस देश में भी, सबसे बड़ा सवाल जो है वह यह है कि व्यक्ति को कैसे बचाया जाये। राज्य हड़प लेना चाहता है सब, लेकिन इस ढंग से हड़पता है और वह लोगों को समझा कर हड़पता है। वह कहता है, तुम्हारे ही हित में हड़प रहे हैं। यह जो हम सम्पत्ति और उत्पादन के साधन अपने हाथ में लेते हैं वह तुम्हारे लिए, इसलिए जयजयकार भी होगा और वे ही लोग जयजयकार करेंगे जिनकी गर्दन पर फंदा कसा जा रहा है। वे ही लोग जयजयकार करेंगे जो फांसी पर लटक जायेंगे। उन्हें पता भी नहीं चलेगा। सम्पत्ति एक बार राज्य के हाथ में चली गयी तो राज्य निरंकुश है, फिर राज्य के सामने व्यक्ति की क्या सामर्थ्य है, फिर व्यक्ति की क्या हैसियत, व्यक्ति की क्या आत्मा है? रूस में पचास साल से पचास आदमियों का एक छोटा-सा ग्रुप, एक छोटा-सा समूह मालिक बना बैठा है। उस ग्रुप के हाथ के बाहर ताकत नहीं जाती है। स्टैलिन मरे, चाहे ख्रुश्चेव आ जायें, चाहे कोसीगिन रहें, चाहे ब्रझनेव हों, कोई भी हो, वह एक पचास आदमियों का छोटा-सा ग्रुप सारे मुल्क की छाती पर हावी है। कोई इन्कार नहीं हो सकता, क्योंकि विरोध करने के पहले जबान कट जाये, इन्कार करने के पहले आदमी का कोई पता न चले। राज्य के हाथ में जब पूरी शक्ति हो तो व्यक्ति क्या कर सकेगा? इसलिए ध्यान रहे, राज्य की शक्ति निरन्तर कम करनी है, बढ़ानी नहीं है; क्योंकि अंततः एक ऐसा समाज चाहिए जिसमें राज्य एक कामचलाऊ व्यवस्था मात्र रह जाये। मैं नहीं सोचता कि एक खाद्यमन्त्री का कोई ज्यादा मूल्य होना चाहिए। क्या मूल्य होना चाहिए? घर में एक रसोइए का जो मूल्य होता है, प्रान्त के लिए रसोइए का वही मूल्य है खाद्यमंत्री का। वह एक बड़ा रसोइया है। अगर अच्छा खाना प्रांत को खिलाता है तो कभी-कभी उसकी प्रशंसा करनी चाहिए, लेकिन रसोइए से ज्यादा नहीं। कभी टिप भी देनी चाहिए उसको, लेकिन रसोइये से ज्यादा नहीं। लेकिन खाद्यमंत्री रसोइया नहीं है। उसके पास ताकत है। लेकिन वह यह जानता है कि उसकी ताकत में एक कमी है और वह कमी यह है कि लोगों के पास व्यक्तिगत सम्पत्ति है और व्यक्तिगत सम्पत्ति बगावत कर सकती है और व्यक्तिगत सम्पत्ति विरोध कर सकती है और जिसके पास व्यक्तिगत सम्पत्ति है उसके पास व्यक्तिगत सोच-विचार का मौका है। यह भी वह छीन लेना चाहता है।

राजनीतिज्ञ बहुत एम्बीशियस है। वह बहुत महत्त्वाकांक्षी है। वह सारी शक्ति को अपने हाथ में ले लेना चाहता है। जिस दिन राज्य के हाथ में पोलिटिकल पावर और इकनामिक पावर दोनों हो जाते हैं, उस दिन क्रांति का, बगावत का, विद्रोह का कोई उपाय नहीं रह जाता। यह कैसे मजे की बात है कि रूस में क्रांति हुई, लेकिन रूस अब अकेला मुल्क है जहां क्रांति नहीं हो सकती; क्योंकि राज्य के पास इतने अद्भुत साधन हैं। सब दीवारों के पास कान हैं। राज्य का जाल सब तरफ फैला हुआ है। पति भी अपनी पत्नी से बोलते वक्त दो दफा सोच लेता है कि वह जो कह रहा है वह कहना है नहीं कहना है; क्योंकि क्या भरोसा, पत्नी खबर कर दे। बाप अपने बेटे से भी खुल कर बात नहीं कर पाता, क्योंकि खुलकर बात करना खतरनाक है। हो सकता है बेटा यंग कम्युनिस्ट हो, जवान कम्युनिस्ट के ग्रुप का सदस्य हो और खबर पहुंचा दे। क्योंकि एक-एक बेटे को समझाया जा रहा है कि बाप की कोई कीमत नहीं है, कीमत है राष्ट्र का। पत्नी की कोई कीमत नहीं है, कीमत है समाज की। समाजवाद एक बड़ी भ्रांत बात समझा रहा है कि व्यक्ति की कोई कीमत नहीं है, जब कि एकमात्र कीमत व्यक्ति की है। समाज है क्या? समाज एक कोरा शब्द है, व्यक्ति है वास्तविक, व्यक्ति है यथार्थ। समाज तो सिर्फ जोड़ है। लेकिन समाजवाद ने इतना शोरगुल मचाया है कि जो नहीं है उसकी कीमत है, समाज की; और जो है उसकी कोई कीमत नहीं है व्यक्ति की कोई कीमत नहीं है। इसलिए व्यक्ति को समाज की बलिवेदी पर चढ़ाया जा सकता है। हमेशा से व्यक्ति को चढ़ाया जाता रहा है ऐसे देवताओं के लिए, जो नहीं हैं। कभी भगवान् के लिए, कभी काली के लिए, कभी किसी यज्ञ में। अब नया देवता है समाज और उसके पीछे असली देवता खड़ा है राज्य। इन पर व्यक्ति को चढ़ाया जा रहा है। काट डालो सबको, क्योंकि व्यक्ति की कोई कीमत नहीं है, कीमत है समाज की। समाज कहां है? उससे कहीं मिलना नहीं हुआ। बहुत खोजता हूं, सब जगह जाता हूं। पूछता हूं, समाज कहां है? जगह-जगह पता मिलता है कि वहां मिलेगा। वहां जाता हूं, वहां भी व्यक्ति ही मिलते हैं। जब भी मिलेगा, व्यक्ति मिलेगा। व्यक्ति का मूल्य चरम है। अल्टीमेट वेल्यू है। व्यक्ति के मूल्य को खोना खतरनाक है। हां, निश्चित ही किसी दिन समाजवाद आयेगा, लेकिन व्यक्ति को समाप्त करके नहीं, व्यक्ति को तृप्त करके, व्यक्ति को फुलफिल करके, व्यक्ति को पूरा करके। व्यक्ति को मिटा करके जो समाजवाद आता है, उससे सावधान होने की जरूरत है। वह समाजवाद नहीं है, वह व्यक्ति की हत्या है और समाजवाद के पीछे खड़ा है स्टेट, खड़ा है राज्य और खड़े हैं राजनीतिज्ञ। उनको कठिनाई मालूम होती है कि ताकत कहीं भी बंटी हो। सारी ताकत उनके हाथ में होनी चाहिए। और यह ध्यान रहे, यह अन्तिम बात आज कहना चाहता हूं कि राज्य के पास इतनी

ताकतें कभी भी न थीं, जितनी आज हो सकती है। क्योंकि टेक्नोलोजी ने ऐसा विकास किया है, जिसका हमें पता नहीं।

अभी मेरे एक मित्र ने एक चित्र मेरे पास भेजा। वह चित्र देख कर मैं कांप गया। उस रात मैं सो नहीं सका, बहुत चिन्तित हो उठा, लेकिन शायद ही कहीं कोई चिन्ता उस सम्बन्ध में हुई हो। सारी दुनिया में खबरें छपीं। एक वैज्ञानिक ने एक घोड़े की खोपड़ी को काट कर उसमें एक इलेक्ट्रोड रख दिया है, एक यंत्र रख दिया है भीतर, खोपड़ी बन्द कर दी गयी। घोड़े को कुछ पता नहीं। अब वायरलेस से उस घोड़े को कहीं से हजारों मील दूर से इशारा किया जा सकता है। जो भी इशारे किये जायेंगे घोड़े को वही करना पड़ेगा, क्योंकि घोड़े को लगेगा कि वे इशारे उसके भीतर से आ रहे हैं। हजार मील दूर से वह वैज्ञानिक कहे कि घोड़ा पैर उठाये, इशारा करे पैर उठाने के तो घोड़ा पैर उठायेगा। कहे, नाचो, तो वह नाचेगा। एक मित्र ने मुझे वह तस्वीर भेजी और उसने कहा कि कितना बड़ा आविष्कार है। मैंने उसे वापस तस्वीर भेजी और लिखा कि अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण! क्योंकि राज्य यह इलेक्ट्रोड आज नहीं कल आदमी की खोपड़ी में भी लगा देगा। पता नहीं चलता न। फिर विद्रोह असम्भव है। केमिकल रैवोल्यूशन हो रहा है, कुछ ऐसे ड्रग्स खोज लिये गये हैं जो क्रांति को असम्भव कर दें, क्योंकि यह बात पकड़ ली गयी है कि जो लोग विद्रोही होते हैं, उनके शरीर में, उनके व्यक्तित्व में कुछ तत्त्व होते हैं जो गैर-विद्रोही में नहीं होते। तो अब ऐसे ड्रग्स एल० एस० डी० मेस्केलीन हैं ये, और और ड्रग्स भी खोजे जा रहे हैं। कल यह हो सकता है कि आपके गांव के रिजरवायर में, तुलसीलेक में, पवईलेक में केमिकल्स डाल दिये जायें, पूरा गांव पिये, पता भी न चले कि पानी में कुछ है और गांव में सारे व्यक्तियों के भीतर से वे तत्त्व क्षीण हो जायें जो बगावत कर सकते हैं, जो कह सकते हैं 'नो', नहीं, वे तत्त्व विदा हो जायें। राज्य के हाथ में आज पूरी ताकत जाना बहुत खतरनाक है, क्योंकि उसके पास इतनी टेक्नोलोजी है कि व्यक्ति को बिल्कुल ही पोंछ सकता है। माइण्डवाश की नयी-नयी ईजादें हैं। किसी भी आदमी की स्मृति पोंछी जा सकती है छः महीने आदमी को बन्द कर दिया जाये और इलेक्ट्रिक के शॉक हैं, केमिकल्स ड्रग्स हैं और माइण्डवाश के मेथड्स हैं, उससे उसकी स्मृति पोंछी जा सकती है। अगर वह कहता है कि मैं विरोधी हूं तो उसकी स्मृति विदा हो जायेगी, उसे पता ही नहीं रहेगा कि मैं कौन हूं। अगर वह कहता है कि मेरा यह ख्याल है तो उसका वह ख्याल खो जायेगा, क्योंकि वह यही नहीं बता सकेगा कि मैं कौन हूं, मेरा ख्याल क्या है। वह छोटा बच्चा हो जायेगा, उसको क ख ग से फिर सीखना पड़ेगा। उसे भाषा, नाम सब फिर से सीखने पड़ेंगे।

जब इतनी ताकत विज्ञान दे रहा हो राज्य को और धन की भी सारी ताकत राज्य के हाथ में हो और प्रशासन की भी सारी ताकत राज्य के हाथ में हो तो हम

अपने हाथ से मनुष्य की हत्या का आयोजन कर रहे हैं। राजनीतिज्ञ इस योग्य नहीं है। सच तो यह है कि राजनीतिज्ञ ने मनुष्य के इतिहास में जो किया है, उससे सिवाय अयोग्यता के उसने योग्यता कभी भी सिद्ध नहीं की। राजनीतिज्ञ के हाथ से सत्ता वापस लौटनी चाहिए, उसे बढ़ाने की कोई भी जरूरत नहीं है। वह भी जानता है कि अगर वह कहे कि राज्य के हाथ में सब होना चाहिए तो लोग कहेंगे कि नहीं, तो वह एक दूसरा चेहरा बनाता है, वह कहता है समाज के हाथ में सब होना चाहिए। समाज के पास तो कोई हाथ नहीं है, इसलिए फिर राज्य के हाथ में ही सब चला जाता है। आज सोशलिज्म के नाम से दुनिया में जो भी चल रहा है, वह स्टैट कैपिटलिज्म है, वह राज्य-पूंजीवाद है और मैं मानता हूं कि राज्य-पूंजीवाद से व्यक्ति-पूंजीवाद श्रेष्ठ है। श्रेष्ठ इसलिए है कि व्यक्ति स्वतन्त्र है, श्रेष्ठ इसलिए है कि प्रत्येक व्यक्ति को पूंजी पैदा करने की प्रेरणा है, श्रेष्ठ इसलिए है कि शक्ति विभाजित और विकेंद्रित है, श्रेष्ठ इसलिए है कि सम्पत्ति अगर कल अतिरिक्त मात्रा में पैदा हुई तो समाजवाद आयेगा, आना चाहिए। लेकिन लाना नहीं है, आना चाहिए। लाया हुआ समाजवाद खतरनाक सिद्ध होगा। आने दें, लेकिन आयेगा कैसे? एक माली को बीज में से अंकुर निकालना है तो अंकुर आयेगा कि निकालना पड़ेगा? अगर निकाला तो सम्भावना है बीज भी टूट जाये और अंकुर न निकले। लेकिन आने देना है तो माली क्या करे? माली वह व्यवस्था करे जिससे अंकुर आता है। व्यवस्था करे खाद की, बीज को डाले जमीन में, पानी डाले, सूरज को आने दे, झाड़ को हटा दे, आयेगा बीज, जरूर आ जायेगा, अंकुर भी फूटेगा, वृक्ष भी बड़ा होगा।

अगर समाजवाद लाना हो तो पूंजीवाद के बीज को ठीक से सिंचित करने की जरूरत है। यह मेरी बात लोगों को उल्टी मालूम पड़ती है। पर यह उतनी ही सीधी और साफ है। अगर पूंजीवाद ठीक से विकसित होता है तो उसके भीतर से समाजवाद आता ही है, लेकिन पूंजीवाद अपना काम पूरी तरह कर ले तब विदा हो। लेकिन आज तो पूंजीवाद जो है वह भी डरा हुआ है। वह भी हिम्मत से नहीं कह सकता कि पूंजीवाद के होने का भी कोई कारण है। वह भी कहता है कि नहीं, समाजवाद ठीक है। उसके पास भी अपना दर्शन नहीं है। वह भी भयभीत है, वह भी चारों तरफ भीड़ से डरा हुआ है। वह भी नारे और झंडे और आवाजों से घबरा गया है। वह कहता है, तो समाजवाद ही ठीक। बड़े से बड़ा पूंजीपति, मैं देखता हूं, वह घबरा रहा है। उसे लग रहा है कि उसने कोई पाप किया है। बड़े आश्चर्य की बात है। पूंजीपति ने इतने बड़े समाज को जिन्दा रखने की व्यवस्था की, इतने अधिक मनुष्यों को जीवित रखने का उपाय किया, सम्पत्ति पैदा की, गुलामी खत्म की, मनुष्य की जगह मशीन को लाने का उपाय किया और अन्ततः समाजवाद उससे आयेगा, लेकिन वही

पूंजीवाद की व्यवस्था में जो कारीगर है वह भी घबरा गया है । आइजनहावर ने लिखा है कि एक कम्युनिस्ट से मैं बातें करता था तो मैं उत्तर नहीं दे पाता था, क्योंकि मुझे भी लगता तो यही था कि यही ठीक कह रहा है । आइजनहावर के पास भी तर्क नहीं है । पूंजीवाद के पास तर्क नहीं है, पूंजीवाद के पास दर्शन नहीं है तो पूंजीवाद मरेगा । मैं चाहता हूं, पूंजीवाद के पास अपना तर्क हो, अपना दर्शन हो, ताकि वह ठीक से जी सके और समाजवाद को जन्म देने योग्य हो सके । समाजवाद पूंजीवाद की सन्तान है और बाप अगर अस्वस्थ रहे तो ध्यान रखना, बेटा स्वस्थ होने वाला नहीं है । लेकिन बाप को मार कर बेटे को पैदा करने की कोशिश चल रही है । मां की हत्या करके गर्भ निकालने की कोशिश चल रही है । इन सब नासमझों से सावधान होने की जरूरत है ।

सम्बन्धित विषय पर आगे हर कोण से, हर पहलू से चार लम्बी वार्ताओं में अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न कर रहा हूं । एक-एक बात पुर्नविचार करने के योग्य है, एक-एक विचार से ठीक समझ लेने, सोचने योग्य है । जरूरी नहीं है कि जो मैं कहूं वह ठीक ही हो । वह गलत हो सकता है, इसलिए सोचने के लिए निमन्त्रण से ज्यादा मेरा कोई आग्रह नहीं है । सुहृदय श्रोता यदि समाजवाद पर इस दृष्टि से सोच सकें, तो शायद वह पूरे देश के भी काम आ सकता है ।

क्रास मैदान, बम्बई, १३ अप्रैल १९७०

७—धर्म-विरोधी तथाकथित समाजवाद

मेरे प्रिय आत्मन्,

एक मित्र ने पूछा है कि हम तो स्वयं की आत्मा को पाना चाहते हैं और आपने कल जो बातें कहीं, उनसे स्वयं की आत्मा को पाने का क्या सम्बन्ध है ?

सम्बन्ध अवश्य है । आज रूस में या चीन में अपनी आत्मा को पाने का कोई उपाय नहीं रह गया है और अगर आज रूस या चीन में मार्क्स भी पैदा होना चाहे तो पैदा नहीं हो सकता । महावीर, बुद्ध, मोहम्मद और क्राइस्ट के पैदा होने की तो बात बहुत दूर है । स्वयं मनुष्य की आत्मा की खोज भी स्वतन्त्रता की एक हवा में सम्भव है । मनुष्य की आत्मा की स्वीकृति भी, जिसे आप समाजवाद कहते हैं, वह नहीं देता है । समाजवाद मौलिक रूप से भौतिकवादी जीवन-व्यवस्था है । समाज की मौलिक धारणाओं में एक यह भी है कि मनुष्य पदार्थ से ज्यादा नहीं है । इस बात को थोड़ा समझ लेना आवश्यक है, क्योंकि मेरी समझ में ऐसा समाजवाद, जो मनुष्य की आत्मा को स्वीकृति नहीं देता, बहुत घातक सिद्ध होगा ।

उन मित्र ने आगे पूछा है कि यदि हमें अपनी आत्मा को खोजना है तो समाजवाद की आलोचना का इससे क्या सम्बन्ध है ?

यह सम्बन्ध गहरा और सीधा है । समाजवाद मनुष्य-जाति के इतिहास में आत्मा के विरोध में खड़ा हुआ सबसे बड़ा विचार है । दुनिया में नास्तिकता कभी

भी सफल नहीं हो पायेगी और दुनिया में कोई नास्तिक समाज, कोई नास्तिक संगठन, कोई नास्तिक देश चरम आत्मिक सम्भावनाओं को प्राप्त नहीं कर सका। इसका कारण यह है कि नास्तिकों ने सीधे ही आत्मा और परमात्मा पर हमला बोल दिया। वे हार गये, जीत नहीं सके; लेकिन साम्यवाद ने पीछे के रास्ते से हमला बोला है और साम्यवाद ने पहली बार जमीन पर एक नास्तिक देश और एक नास्तिक समाज को पैदा कर दिया है। चार्वाक नहीं जीता, एपीकुरस नहीं जीता। जहां दुनिया के नास्तिक हार गये वहां मार्क्स, लेनिन और एंजिलस जीत गये। रहस्य क्या है? रहस्य यह है कि साम्यवाद पीछे के दरवाजे से नास्तिकता को लाता है। वह धर्म का सीधा विरोध नहीं करता है, वह सीधा विरोध धनपति का करता है और पीछे से वह यह कहता है कि अगर धनपति को मिटाना है तो धर्म को मिटाना जरूरी है, क्योंकि धर्म को बिना मिटाये धनपति को नहीं मिटाया जा सकता। वह यह भी कहता है कि अगर धनपति को समाप्त करना है तो अब तक की जो विचारधाराएं धनपति को खड़े होने का आधार बनती थीं, उनको भी गिरा देना होगा। मार्क्स की भी मान्यता थी कि सब दृष्टिकोण वर्गीय होते हैं। अगर धनपति धर्म की बात करता है तो सिर्फ इसीलिए करता है कि धर्म उसकी सुरक्षा बन जायेगा। यह धारणा आमूल भ्रांत है। धर्म का वर्ग से कोई सम्बन्ध नहीं है, न ही दर्शनों का। उत्पादन व्यवस्थाओं से बंधा है। लेकिन मार्क्स की अतिस्थूल भौतिकवादी दृष्टि ऐसा ही देख सकती थी। इसलिए उसने पूंजीवाद को हटाने के लिए धर्म को हटाने का भी विचार दिया। उसकी दृष्टि मनुष्य के भीतर आत्मा जैसी कोई वस्तु नहीं है। इस विचार के कारण ही तो स्टैलिन इतनी हत्याएं करने में सफल हुआ है, क्योंकि यदि आदमी केवल पदार्थ है, तो गर्दन काटने में कोई भी नहीं कटता है। पदार्थ न मरता है, न कटता है। माओ भी सुविधा से हत्या कर सकता है, क्योंकि आदमी सिर्फ पदार्थ है, वहां पीछे कोई आत्मा नहीं है। साम्यवादी पहली बार दुनिया में निस्संकोच बिना अन्तःकरण की किसी पीड़ा के हत्या करने में सफल हो सके। उसका कारण केवल यही है कि आदमी की आत्मा को इन्कार ही कर दिया गया है और आदमी की आत्मा के विकास और आविष्कार की जो सम्भावनाएं हैं वे भी क्षीण करने का प्रयत्न निरन्तर चलता रहा है। इस सम्बन्ध में भी दो बातें समझ लेनी आवश्यक है।

पहली बात तो यह समझ लेनी आवश्यक है कि मनुष्य के भीतर जो आत्मा है उसको भी प्रकट होने के लिए सुविधायें और परिस्थितियां चाहिए। एक बीज के भीतर पौधा छिपा हुआ है, लेकिन अभी बीज को तोड़ देंगे तो पौधा मिलेगा नहीं। पौधा छिपा है जरूर, लेकिन प्रकट होने के लिए व्यवस्था चाहिए, पानी चाहिए, खाद चाहिए, जमीन चाहिए, सूरज की किरणें चाहिए, कोई प्रेम करने

वाला चाहिए जो उस बीज के भीतर से पौधे को प्रकट कर पाये। प्रत्येक आदमी के भीतर आत्मा बीज की तरह है। आदमी को काटने से मिलेगी नहीं, इसलिए प्रयोगशाला में आदमी की आत्मा कभी भी न पायी जा सकेगी। मैंने सुना है, मार्क्स ने कभी मजाक में कहा था कि मैं तुम्हारे ईश्वर को मान लूंगा अगर प्रयोगशाला की टेस्टस्ट्यूब में ईश्वर को पकड़ के बताया जा सके और फिर उसने यह भी कहा, ध्यान रहे, भूल कर कहीं अपने ईश्वर को प्रयोगशाला की टेस्टस्ट्यूब में ले मत आना, क्योंकि जो ईश्वर टेस्टस्ट्यूब की पकड़ में आ जायेगा वह ईश्वर ही क्या रह जायेगा।

नहीं, ईश्वर को टेस्टस्ट्यूब में नहीं पकड़ा जा सकेगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह नहीं है। टेस्टस्ट्यूब बहुत छोटी चीज है और आदमी के शरीर को काट कर भी हम उसकी आत्मा को नहीं पकड़ पायेंगे। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह नहीं है। अगर मेरे मस्तिष्क को अभी काट दिया जाये तो वहां कोई विचार जैसी चीज नहीं मिलेगी। लेकिन विचार है। अगर आपके हृदय को काटा जाये तो वहां प्रेम जैसी कोई चीज नहीं मिलेगी, लेकिन प्रेम है। प्रमाण क्या है? प्रयोगशाला में कहीं पकड़ में आता है? आप सिद्ध नहीं कर सकते हैं कि प्रेम है, क्योंकि हृदय के खोजने से, तोड़ने-फोड़ने से कहीं उसका कोई पता नहीं चलता, लेकिन फिर भी आप जानते हैं कि वह है और आप कहेंगे कि दुनिया भर की प्रयोगशालाएं सिद्ध कर दें कि प्रेम नहीं है तो भी मैं मानने को राजी नहीं हूं, क्योंकि मैंने प्रेम को जाना है। अनुभव है, पदार्थ के पार है, लेकिन समाजवाद का बुनियादी आधार अनात्मवाद है और एक बार किसी समाज ने यह स्वीकार कर लिया कि आत्मा नहीं है तो वह बीज बोना बन्द कर देगा, क्योंकि जब बीज अंकुर है ही नहीं तो फिर बीज को बोने की जरूरत नहीं है। मनुष्य-जाति के ऊपर सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह होगा कि यदि यह स्वीकृत हो जायेगा, कि आत्मा नहीं है तो आत्मा का प्रकट होना निरंतर धीरे-धीरे बन्द हो जायेगा, बीज पड़े-पड़े सड़ जायेंगे, लेकिन उनसे अंकुर नहीं आयेंगे। अगर लोगों ने यह मान लिया कि बीजों में वृक्ष होते ही नहीं तो कौन बीज को बोयेगा, कौन बीज को पानी देगा, कौन बीज को बड़ा करेगा? समाजवाद की सबसे खतरनाक धारणा उसकी शरीरवाद है। और यह भी ध्यान रहे कि आत्मा को प्रकट होने के लिए जो सुविधाएं चाहिए वह समाजवाद छीन लेता है। अभी जो समाजवाद आयेगा वह निश्चित छीन लेगा, क्योंकि अभी समाजवाद को लाने के लिए पहली आवश्यकता तो यह है कि आदमी की स्वतन्त्रता छीन ली जाये। और आदमी की स्वतन्त्रता का बहुत बड़ा हिस्सा उसकी आर्थिक स्वतन्त्रता है। अर्जन की स्वतन्त्रता, अर्जित के स्वामित्व की स्वतन्त्रता आदमी की मूलभूत स्वतन्त्रता है। मैं जो पैदा करूं वह मेरा हो सके, मैं जो निर्मित करूं वह मेरा हो सके।

मनुष्य की बुनियादी स्वतन्त्रता है उसकी आर्थिक स्वतन्त्रता। उसके हाथ से आर्थिक स्वतन्त्रता के छीने बिना समाजवाद स्थापित नहीं हो सकता। हां यदि पूंजीवाद ठीक से विकसित हो जाये तो किसी आदमी की स्वतन्त्रता बिना छीने समाजवाद का जन्म हो सकता है। वह जन्म होगा पूंजी के अत्यधिक हो जाने पर, उसके पहले नहीं। इसलिए अभी दुनिया में कोई भी देश, अमरीका भी, अभी उस हालत में नहीं आ सका है जहां समाजवाद सहज जन्म ले ले। लेकिन अमरीका शायद पचास वर्षों में उस जगह आ जाये। अभी तो हमें बलपूर्वक समाजवाद आरोपित करना पड़ेगा। आरोपित समाजवाद में स्वतन्त्रता का हनन होगा और जितनी स्वतन्त्रता मरती है, उतनी ही भीतर आत्मा के फैलने की सम्भावना कम हो जाती है। आत्मा के लिए स्वतन्त्रता का आकाश चाहिए और जब आर्थिक स्वतन्त्रता छिनती है तो दूसरा हमला मनुष्य की वैचारिक स्वतन्त्रता पर होता है, क्योंकि समाजवाद के पक्षधर यह कहते हैं कि अगर हम वैचारिक स्वतन्त्रता दें तो हम समाजवादी व्यवस्था का निर्माण नहीं कर पायेंगे। इसलिए हम समाजवाद से विपरीत विचारधारा को स्वीकार नहीं करेंगे। रूस में एक ही दल है और कैसे मजे की बात है कि एक ही दल चुनाव भी लड़ता है। इसी कारण स्टैलिन को दुनिया में जितने वोट मिलते थे, उतने किसी आदमी को कभी नहीं मिले। सौ प्रतिशत वोट स्टैलिन को मिलते थे और उसका प्रचार सारे विश्व में किया जाता था कि स्टैलिन को सौ प्रतिशत वोट मिल रहे हैं। कोई यह पूछेगा नहीं कि उसके विपरीत कौन खड़ा था। उसके विपरीत कोई खड़ा ही नहीं है। इस बात का अर्थ क्या है? इस बात का अर्थ यह है कि विचारों की कोई स्वतन्त्रता नहीं है।

पिछले पचास वर्षों में रूस में अद्भुत घटनाएं घटी हैं। वैज्ञानिकों को भी सरकार आज्ञा देती है कि किस भांति सोचो। उनको भी कहती है कि कौन-सा सिद्धान्त निकालो, उनको भी कहती है कौन-से सिद्धान्त मार्क्स के अनुकूल नहीं हैं। तो रूस में पिछले तीस वर्षों में बायोलोजी में इस तरह के सिद्धान्त भी चलते रहे जो सारी दुनिया में कहीं मान्य नहीं हैं। सारी दुनिया में प्रयोगकर्त्ता कह रहे थे कि यह गलत है, लेकिन स्टैलिन की आज्ञा के अनुसार वे सही थे। स्टैलिन के मरने पर वे गलत हो गये, उसके पहले वे गलत नहीं हो सके। रूस के वैज्ञानिक भी हां में हां भर रहे थे कि यही ठीक है, क्योंकि वैज्ञानिक को भी पार्टी-निर्देश पर जीना है। उन्नीस सौ सतरह के पहले रूस ने दुनिया के श्रेष्ठतम बुद्धिमान लोग पैदा किये। उनके नाम भी स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं। लेकिन उन्नीस सौ-सतरह के बाद उस हैसियत का एक आदमी भी रूस पैदा नहीं कर सका। लियो टाल्स्टाय, मैक्सिम गोर्की, तुर्गनेव, गोगोल, दॉस्तोवस्की या चैखव आदि की हैसियत का एक आदमी भी रूस पचास वर्षों में पैदा नहीं कर पाया। बात क्या

है? रूस ने लेखक पैदा किये, पुरस्कार दिये, विचारक पैदा किये, पुरस्कृत किये, लेकिन एक भी विचारक उस गरिमा का नहीं है जो रूस ने अपनी गरीबी के और अत्यन्त परेशानी के दिनों में पैदा किये थे, जो उसने जारों की अत्यन्त हीन व्यवस्था में पैदा किये। उतने विचारशील, उतने बुद्धिमान्, उतने सृजनात्मक व्यक्तित्व भी रूस पैदा नहीं कर पाया। बात क्या है? वह पैदा होने की जो मूल-भूत सम्भावना है आत्मा के जन्म और विचार की स्वतन्त्रता; वही छीन ली गयी है। तुर्गनेव कैसे पैदा हो? दॉस्तोवस्की कैसे पैदा हो? लेनिन भी वापस रूस में पैदा नहीं हो सकता। लेनिन को भी पैदा होने के लिए अमरीका या इंगलैण्ड खोजना पड़ेगा। लेनिन भी रूस में पैदा नहीं हो सकता। सच तो यह है कि जो जानते हैं, वे कहते हैं कि लेनिन को भी जहर देकर ही मारा गया। जिस आदमी ने क्रांति की थी, जिस आदमी ने रूस को समाजवादी बनाना चाहा था, वह भी मारा ही गया। दूसरा आदमी था ट्राटस्की, जिसने क्रांति में दूसरा बड़ा हिस्सा लिया था, वह भागता फिरा था। उसका कुत्ता छूट गया था। रूस में तो कम्युनिस्टों ने उसके कुत्ते की भी हत्या कर दी और फिर मैक्सिको में जाकर उसकी भी हत्या कर दी। मनुष्य-जाति के इतिहास में इतने बड़े पैमाने पर हत्या का खेल कहीं भी नहीं हुआ। सरल था, क्योंकि आत्मा है ही नहीं, सिर्फ पदार्थ है। तो गुड्डे गुड्डियों को मारने और काटने में क्या अन्तर पड़ता है? और फिर यह भी जरूरी है कि जिनके भीतर आत्मा ही नहीं, उन मनुष्यों की स्वतन्त्रता की भी क्या जरूरत है? समाजवाद अगर ठीक से सफल हो, जैसा समाजवाद आज है, तो वह प्रत्येक आदमी को मशीन में बदल लेने को तैयार है।

मैंने पीछे एक बात कही है; उसे पुनः इस सन्दर्भ में दोहराना चाहूंगा कि मनुष्य की गुलामी पूरी तरह से तभी समाप्त होगी, जब मनुष्य के श्रम का स्थान हम पूरी तरह यन्त्र से बदल डालेंगे। जिस दिन मनुष्य को श्रम करने की आवश्यकता ही न रह जायेगी और सारे स्वचालित यन्त्र उसकी जगह काम करने लगेंगे, उस दिन ही श्रमिक सब तरह की दीनता से मुक्त हो सकेगा। एक मार्ग तो यह है जो कि पूंजीवाद के विकास से सम्भव हो सकता है। दूसरा मार्ग यह है कि यदि हम शीघ्रता करें और आज ही समाजवाद लाना हो तो हम आदमी को ही मशीन बना सकते हैं जो कि रूस और चीन में किया जा रहा है। वह दूसरा विकल्प है कि आदमी को मशीन में बदल दो। उसे सोचने की क्या जरूरत है, और जिनकी समझ यह है कि आदमी सिर्फ शरीर ही है उनका कहना भी फिर ठीक है, तर्कयुक्त है। उचित भोजन मिलना चाहिए, अच्छे कपड़े मिलने चाहिए, सुविधाजनक निवास मिलना चाहिए। लेकिन ठीक आत्मा भी मिलनी चाहिए, यह भी किसी समाजवादी नारे में सुना है? रोटी मिलनी चाहिए, कपड़ा मिलना चाहिए, मकान मिलना चाहिए, आत्मा भी मिलनी चाहिए। यह भी कोई समाज-

वादी नारा है ? नहीं; आदमी को रोटी मिल जाये, कपड़े मिल जायें, मकान मिल जाये—बात समाप्त हो गयी। इससे ज्यादा आदमी को जरूरत क्या है ? बल्कि जो लोग इस सम्बन्ध में सोचते हैं वे तो कहते हैं, सोच-विचार से आदमी को परेशानी होती है। अच्छा है कि सोच-विचार छीन लिया जाये तो आदमी बिल्कुल निश्चिन्त पशु की भांति जी सके। खाने-पीने को खूब हो, मकान हो, कपड़े हों, रहें, काम करें, सुख से जीयें। सोचने की क्या जरूरत है ? सोचने से चिन्ता पैदा होती है, सोचने से परेशानी पैदा होती है, सोचने से बगावत पैदा होती है, सोचने से आदमी के भीतर हजार तरह की बातें उठती हैं। सुख में बाधा पड़ती है। सोचना छोड़ दो। समाजवादी कहेगा कि सुख से रहो, सोचने की क्या जरूरत है और इन्तजाम करेगा कि सोचने की कोई आवश्यकता न रह जाये। व्यवस्था उसने की भी है। सबसे बड़ी व्यवस्था तो यह की है कि प्रत्येक बच्चे के मन में इसके पहले कि बुद्धि पैदा हो, समाजवाद की गलत-सही धारणाओं को ठूंस कर डाल दो, ताकि जब उसमें विचार पैदा हो तब तक उसकी आत्मा जंजीरों में कस गयी हो।

रूस में जाकर छोटे-से बच्चे से पूछो, ईश्वर है ? वह कहेगा नहीं है। मेरे एक मित्र उन्नीस सौ छत्तीस में रूस गये और उन्होंने एक स्कूल में जाकर पूछा कि ईश्वर है ? तो उस स्कूल के बच्चों ने कहा, आप इतनी उमर के होकर भी ऐसा नासमझी का सवाल पूछते हैं। ईश्वर हुआ करता था, अब नहीं है। छोटे बच्चों को सिखाया जा रहा है कि कोई आत्मा नहीं, कोई ईश्वर नहीं, कोई धर्म नहीं, कोई जीवन का बड़ा मूल्य नहीं। जीवन का एक ही मूल्य है कि किसी तरह आदमी को ठीक छप्पर, ठीक मकान, ठीक भोजन, ठीक कपड़ा मिल जाये।

रूस में एक अद्भुत तरह की अव्यवस्था पैदा हो गयी है। रूस में दो वर्ण हैं। एक सत्ताधिकारियों या व्यवस्थापकों का और एक मैनेज्ड या व्यवस्थापितों का। रूस में वर्ग मिटे नहीं, सिर्फ नकाब बदल गयी है। रूस में कुछ लोग हैं जो व्यवस्था कर रहे हैं और कुछ लोग हैं जो व्यवस्थित किये जा रहे हैं और दो वर्ग स्पष्ट बंट गये हैं। और वर्ग ही नहीं हैं। मैं कहता हूं, वह वर्ण है। वर्ग और वर्ण में थोड़ा-सा फर्क होता है। वर्ग तरल होता है, एक वर्ग से दूसरे वर्ग में जाना आसान होता है। वर्ण निश्चित होता है, ठोस होता है। लचीला या तरल नहीं होता। जैसे कि शूद्र वर्ण है, वर्ग नहीं। क्योंकि शूद्र कुछ भी कोशिश करे तो ब्राह्मण नहीं हो सकता। कुछ भी उपाय करे तो ब्राह्मण में प्रवेश नहीं कर सकता। ब्राह्मण वर्ण है, वर्ग नहीं। उसका घेरा निश्चित है, बंधा है। रूस में एक नयी वर्ण-व्यवस्था पैदा हो रही है, जैसे हिन्दुस्तान में कभी पैदा हुई थी। वह वर्ण-व्यवस्था व्यवस्थापक और व्यवस्थापित की है। उसको तोड़ने का कोई उपाय नहीं है। समस्या बहुत जटिल है और वह जो व्यवस्थापक है, वह क्यों नीचे वालों को प्रवेश करने दे ? उसके अपने हित है, अपने न्यस्त स्वार्थ हैं। इस भूल में मत पड़िये कि

रूस में स्टैलिन को भी वही अधिकार थे जो रूस के एक गरीब मजदूर को है। इस भूल में भी मत पड़िये कि रूस में समानता है या चीन में समानता है या माओ और माओ के चपरासी में कोई समान अधिकारों की बात है। आज समान हुआ ही नहीं जा सकता है, जब तक सम्पत्ति अतिरिक्त नहीं हो जाती। जब तक सम्पत्ति इतनी नहीं हो जाती कि सम्पत्ति का स्वामित्व खोखला मालूम पड़े, तब तक दुनिया में सिर्फ वर्ग बदलेंगे, वर्ग मिटेंगे नहीं। वर्गविहीन समाज कभी पैदा होगा तो वही समाज होगा, जिसमें सम्पत्ति व्यर्थ हो गयी होगी। सम्पत्ति जब तक सार्थक है, तब तक वर्गविहीन समाज पैदा नहीं हो सकता। जिनके हाथ में सम्पत्ति आयेगी, ताकत आयेगी, वे नया वर्ग बना लेंगे। तब मेरी अपनी दृष्टि यह है कि बजाय वर्ण के वर्ग बेहतर है; क्योंकि वर्ण सुस्थिर हो जाता है, कठोर हो जाता है। गतिमयता खो जाती है। कम-से-कम वर्ग में गतिमयता रहती है। एक गरीब अमीर हो सकता है, एक अमीर गरीब हो सकता है। गरीब और अमीर वर्ग हैं, वर्ण नहीं। लेकिन रूस में जो व्यवस्था है, वह वर्णों को जन्म दे रही है और स्थापित होती चली जा रही है। स्थापित-हितों और व्यवस्थापित लोगों के बीच इतनी बड़ी दरार है कि जिसको पार करना असम्भव होता जा रहा है। लेकिन समाजवाद की बुनियादी धारणा पर भी थोड़ा सोच लेना जरूरी है।

एक मित्र ने पूछा कि क्या आप समाजवाद की इस धारणा को नहीं मानते कि सबको समान होने का हक है ?

इस पर थोड़ा विचार करना जरूरी है। पहली बात तो यह है कि सारे लोग समान नहीं हैं और सारे लोग समान नहीं हो सकते। समान होने के हक की बात नहीं है। सारे लोग समान हैं नहीं। यह तथ्य है। और सारे लोग समान हो भी नहीं सकते। फिर भी मैं कहता हूं, सारे लोगों को समान अवसर होना चाहिए विकास का। इसका क्या मतलब होगा ? इसका मतलब होगा कि प्रत्येक व्यक्ति को असमान होने की समान सुविधा होनी चाहिए। हर आदमी जो होना चाहता है, उसे होने का समान हक होना चाहिए; लेकिन एक हक पूंजी पैदा करने का हक भी है, एक हक ज्ञान अर्जित करने का हक भी है। सारी दुनिया के लोग आइंस्टीन नहीं हो सकते, न सारी दुनिया के लोग बुद्ध या महावीर हो सकते हैं। कोई एक व्यक्ति जन्मजात आइंस्टीन होने की क्षमता लेकर पैदा होता है। लेकिन धन के सम्बन्ध में हमने कभी यह नहीं सोचा कि धन पैदा करने की क्षमता भी उतनी ही जन्मजात है, जितनी कि कविता पैदा करने की, जितनी गणित की, जितनी दर्शन की, जितनी धर्म की। धन पैदा करने की क्षमता जन्मजात है। कोई फोर्ड पैदा नहीं किया जाता, पैदा होता है। कुछ लोग धन पैदा करने की प्रतिभा लेकर पैदा होते हैं और कुछ लोग धन पैदा करने की प्रतिभा लेकर पैदा नहीं होते। यह तथ्य है। और अगर उन लोगों को जो धन पैदा करने की प्रतिभा लेकर पैदा होते

हैं, धन पैदा करने से रोका जाये, तो दुनिया दीन बनेगी, दरिद्र बनेगी, समृद्ध नहीं बन सकती। यह ऐसा ही है जैसे कल हम कहने लगें कि सारे लोगों को समान कविता करनी पड़ेगी, कोई जरूरत नहीं कि कालिदास और शेक्सपीयर ऊपर चढ़ कर बैठ जायें। यह बर्दाश्त के बाहर है। हम वर्गविहीन कविता का समाज बनायेंगे, हर आदमी को एक-सी कविता करनी पड़ेगी। तुकबन्दी हो सकती है, शेक्सपीयर और कालिदास पैदा नहीं होंगे। फिर कविता हम सब कर सकते हैं, शब्द जोड़ सकते हैं, तुकबन्दी कर सकते हैं; लेकिन कालिदास और शेक्सपीयर तुकबन्द नहीं हैं। बात कुछ और है। रंग तो हम भी फेंक सकते हैं किसी पोस्टर पर, रंग हम भी पोत सकते हैं किसी कैनवस पर, लेकिन पिकासो या वानगॉग जन्मजात पैदा होते हैं।

सोशलिज्म मनुष्य जाति की जन्मजात भिन्नता को स्वीकार नहीं करता, यह बड़ी खतरनाक बात है। एक-एक व्यक्ति अपनी तरह का पैदा होता है, दूसरी तरह का नहीं। सच तो यह है कि हर आदमी अनूठा, अद्वितीय, यूनिक, बेजोड़ है; जिससे किसी दूसरे का कोई मुकाबला नहीं किया जा सकता है। इस दुनिया में सब आदमी एक जैसे पैदा भी नहीं होते। कभी पैदा नहीं हुए, इसीलिए तो प्रत्येक आदमी के पास आत्मा है। आत्मा का मतलब है भिन्न होने की क्षमता। शमशानों में समानता हो सकती है, फियेट कारें एक लाख बिल्कुल एक जैसी हो सकती हैं; लेकिन दो आदमी एक-जैसे नहीं हो सकते। फिएट कार के पास आत्मा नहीं है, सिर्फ यंत्र है। यंत्र समान हो सकते हैं और अगर आदमियों को समान करने की जबर्दस्ती कोशिश की गयी तो आदमी यन्त्र के तल पर ही समान हो सकता है। उससे ऊपर के तल पर समान नहीं हो सकता। या तो आदमी को यंत्र बनाओ, वह समान हो जायेगा। आदमी जितना ऊपर चढ़ेगा, असमान हो जायेगा। जितना नीचे उतरेगा, उतना समान हो जायेगा। नींद के मामले में हम करीब-करीब समान हैं। भूख के मामले में हम करीब-करीब समान हैं। छाया और धूप के मामले में हम करीब-करीब समान हैं। सबको मकान चाहिए, खाना चाहिए, भोजन चाहिए, स्त्री चाहिए। इन मामलों में हम पशुओं से भी समान हैं। लेकिन जैसे ही हम ऊपर उठते हैं, एक बुद्ध, एक महावीर, एक कालिदास, एक पिकासो, एक आइंस्टीन, एक बर्ट्रेंड रसेल—असमानता शुरू हो जाती है। जितने ऊपर जाती है आत्मा, उतनी असमान होने लगती है। जितने ऊपर जाती है, उतनी सिर्फ अकेली रह जाती है। फिर महावीर या बुद्ध जैसा आदमी अकेला रह जाता है जो करोड़-करोड़ वर्षों तक दूसरा आदमी उस जैसा नहीं होगा, लेकिन हम सबको भीड़ की ईर्ष्या कह सकती है कि अब हम नहीं होने देंगे। हम सबको समान रखेंगे, अगर एक भी समानता का यह पागलपन पैदा हो जाये जो कि सारी दुनिया में पैदा हो रहा है, तो हम मनुष्य की ऊंचाइयों को नष्ट कर देंगे और सबकी लेवलिंग कर देंगे जमीन

पर। सबके पास मकान, सबके पास कपड़े, सबके पास औरतें, सब काम करें। खाना खायें, सो जायें, सिनेमा देखें, मनोरंजन करें। इस तल पर जीवन समान हो सकता है, लेकिन समान अवसर प्रत्येक को मिलना चाहिए। समाजवाद समान अवसर पर पहला हमला बोल देता है। वह सम्पत्ति पैदा करने वाले को काट देता है, छांट देता है। फिर इसके बाद वह जो विचार में असमान हैं, उनको छांटने की कोशिश में लग जाता है। वह कहता है कि हम समान करके रहेंगे, तो हम असमान विचार भी नहीं पैदा होने देंगे। अब आश्चर्य है कि रूस के पचास साल के इतिहास में कोई बड़ा विवाद नहीं हुआ। पचास साल, जबकि सच बात यह है कि मनुष्य की जिन्दगी में एक भी विचार ऐसा नहीं है जिस पर विवाद न हो सके। सब विचार अपनी-अपनी जगह से देखे जाते हैं, और दूसरा आदमी जरूरी नहीं है कि राजी हो। श्रेष्ठतम विचारों का विरोध भी निश्चित है। जितनी बुद्धिमत्ता बढ़ती है, उतना विरोध भी बढ़ता है। लेकिन पचास साल में कोई बड़ा विवाद रूस के वर्णों को मथ डाले, ऐसा कोई विचार, कोई आन्दोलन, कोई विरोध कोई बगावत, कोई विद्रोह, कोई भी नहीं। क्योंकि वे कहते हैं, हम समाजवादी व्यवस्था बनाने में लगे हैं। अभी हम विरोध नहीं कर सकते, अभी हम विद्रोह नहीं सह सकते। अभी स्वतन्त्र चिन्तन की सुविधा नहीं है हमारे पास। वी कैन नॉट अफर्ड। अभी हम सब स्वतन्त्र चिन्तन बन्द रखेंगे, फिर जब सब ठीक हो जायेगा, तब हम छोड़ेंगे स्वतन्त्र चिन्तन को। लेकिन ध्यान रहे, अगर पचास साल तक लोगों के पैर बांध दिये जायें और पचास साल बाद उनसे कहा जाये कि ठीक है तुम मुक्त हो, दौड़ो, चढ़ो पहाड़; लेकिन पहाड़ तो बहुत दूर है। घर के सामने वह निकल कर चल पाये, यह भी असम्भव है। चिन्तन भी रुक जाये तो बन्द होना शुरू हो जाता है। चिन्तन को सुविधा न हो, बगावत को, तो मरना शुरू हो जाता है।

जिन मित्र ने पूछा है कि आतमा को पाने का इससे क्या सम्बन्ध है, उनसे मैं कहना चाहता हूं कि मनुष्य की आत्मा पर सबसे बड़ा खतरा है और वह यह है कि सारी दुनिया में धीरे-धीरे राजनीतिज्ञ सारे अधिकार राज्य के हाथ में केन्द्रित कर लेना चाहता है। मनुष्य की आत्मा ही अपनी मुट्ठी में कर लेना चाहता है और इसके खिलाफ आवाज, इसके खिलाफ विचार जरूरी है; लेकिन जब समाजवाद स्वतन्त्रता पर हमला करता है, तब बड़ी तरकीब से करता है। उसकी तरकीब यह है कि हम समानता लाना चाहते हैं, इसलिए स्वतन्त्रता पर हमला करना जरूरी है; क्योंकि स्वतन्त्रता रहेगी तो हम समानता कैसे लायेंगे। समाजवाद फ्रीडम की बात नहीं, इक्वलिटी की बात करता है। वह कहता है, समानता पहली चीज है। जब तक समानता नहीं है, तब तक स्वतन्त्रता नहीं होगी। पहले समानता चाहिए, समानता के लिए स्वतन्त्रता की हत्या करनी पड़ेगी। यह चुनाव हमें ठीक से समझ लेना चाहिए कि पहला मूल्य किसका है? समानता का या स्वतन्त्रता का?

प्रिफरेंस किसको देना है ? पूरी मनुष्य जाति को यह निर्णय जल्दी ही लेना पड़ेगा। क्या हम समानता को ज्यादा मूल्य देते हैं या स्वतन्त्रता को ? ध्यान रहे, अगर स्वतन्त्रता रहे तो समानता की आगे भी सम्भावना है, लेकिन समानता के लिए अगर स्वतन्त्रता खो दी जाये, तो आगे स्वतन्त्रता की कोई सम्भावना नहीं रह जाती, क्योंकि स्वतन्त्रता एक बार खोकर वापस लाना बहुत कठिन है और समानता की जो बात है, वह बहुत अवैज्ञानिक है, अमनोवैज्ञानिक है, एंटी-साइकोलॉजिकल है। आदमी समान नहीं है और इसलिए आदमी पर जबर्दस्ती अगर हम समानता का आरोपण करेंगे तो वह आदमी को मारेगी, मिटायेगी, नष्ट करेगी। आदमी को असमान होने की, भिन्न होने की, विभिन्न होने की, विपरीत होने की, विद्रोह करने की, इन्कार करने की सारी सुविधा होनी चाहिए, तभी मनुष्य की आत्मा उस स्वतन्त्रता से फलती है, फूलती है, विकसित होती है। समाजवाद अभी मनुष्य की आत्मा के विरोध में सबसे बड़ी आवाज है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि समाजवाद गरीबों का कल्याण करना चाहता है। क्या आप गरीबों के कल्याण का विरोध करते हैं ?

मैं, और गरीबी के कल्याण का विरोधी भला कैसे हो सकता हूं ? कोई भी क्यों होगा ? लेकिन यह ध्यान रहे कि गरीबों का कल्याण करने की आवाज हजारों सालों से चलती है और न मालूम कितने गरीबों के कल्याण करने वाले पैदा हो गये; लेकिन कल्याण गरीबों का नहीं होता, सिर्फ गरीबों के कल्याण की आवाज पर वह जो कल्याण करने वाले हैं, अपना कल्याण कर लेते हैं। और गरीब अपनी जगह पड़ा रह जाता है। उस गरीब के कल्याण से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। लेकिन गरीब साथ जरूर दे देता है। साथ दे देता है, यह आवाज सुनकर कि हमारे कल्याण के लिए यह सब हो रहा है, कुर्बानी भी कर देता है, गोली भी खा लेता है, मर भी जाता है। समाजवाद के लिए जो शहीद होते हैं, वे और हैं और समाजवाद की ताकत जिनके हाथ में आती है, वे और हैं। समाजवाद के लिए जो मरेगा, वह गरीब होगा। समाजवाद की जिसके हाथ में ताकत आयेगी, वह गरीब नहीं है। वह फिर अमीरों का नया वर्ग होगा। असल में ताकत जिसके हाथ में आ जायेगी, वह तत्काल अमीर हो जायेगा। आदमी आदमी में फर्क क्या है ? आज जो गरीब की तरफदारी कर रहा है, जैसे ही वह कल शक्ति में पहुंचता है, उसके अपने न्यस्त स्वार्थ हो जाते हैं। अब उसे शक्ति में रहना जरूरी हो जाता है, तो वह जिनके ऊपर सीढ़ी बना कर आया था, उन सीढ़ियों को काटना शुरू कर देता है, क्योंकि उन्हीं सीढ़ियों से कल दूसरा भी कोई ऊपर आ सकता है। गरीब का कल्याण कभी भी नहीं हुआ। हां, गरीब के कल्याण पर आन्दोलन बहुत हुए, क्रांतियां बहुत हुईं हत्याएं बहुत हुईं। और गरीब का कल्याण नहीं हुआ। अभी गरीब के कल्याण से थोड़ा चौंकने की जरूरत है। अब

जब भी कोई आदमी कहे कि मैं गरीब का कल्याण चाहता हूं, तब जरा सम्भल जाने की जरूरत है कि कोई खतरनाक आदमी आया है। अब यह फिर गरीब की छाती पर पैर रखेगा और गरीब नासमझ है, नासमझ न होता तो गरीब न होता। नासमझ होने की वजह से गरीब है। इसलिए वह फिर नया मसीहा उसे मिल जाता है। नये पैगम्बर मिल जाते हैं। नये नेता मिल जाते हैं। ये फिर उसकी छाती पर चढ़ जाते हैं। हिटलर भी गरीबों का कल्याण करके छाती पर चढ़ता है, मुसोलिनी भी गरीबों का कल्याण करने के लिए छाती पर चढ़ता है। माओ भी, स्टैलिन भी। सारी दुनिया में सब गरीबों का कल्याण करना चाहते हैं और गरीब का कोई कल्याण होता दिखायी नहीं पड़ता। नहीं, गरीब का कल्याण इन कल्याण करने वालों से नहीं होगा। गरीब का कल्याण न होने का कारण क्या है ? कारण सिर्फ एक है कि सम्पत्ति कम है और लोग ज्यादा हैं। गरीब का कल्याण ऐसे नहीं हो सकता। किसी को भी बिठा दो सत्ता में। उसके बैठ जाने से कुछ भी नहीं होने वाला है। सवाल असली यह है कि सम्पत्ति कम है और लोग ज्यादा हैं। सम्पत्ति ज्यादा होनी चाहिए। सम्पत्ति लोगों से ज्यादा होनी चाहिए। उनकी जरूरत से ज्यादा होनी चाहिए। यह सम्पत्ति कैसे पैदा हो, यह सवाल है। लेकिन जो सम्पत्ति पैदा कर सकते हैं। गरीब उनके खिलाफ खड़ा हो जाता है। जो गरीब के लिए हितकर हो सकते हैं; गरीब उनके खिलाफ खड़ा हो जाता है। आदमी की यह आदत बहुत पुरानी है। यह बहुत आश्चर्य है। गेलेलियो को फांसी पर लटका दिया और आज गेलेलियो की खोज से सारी दुनिया लाभान्वित हो रही है। जीसस को हमने सूली पर लटका दिया, लेकिन जीसस की खोज सारी दुनिया को मनुष्य बनाने का कारण बन रही है। सुकरात को हमने जहर पिला दिया, लेकिन सुकरात ने जो कहा, वह अनन्त काल तक मनुष्य की आत्मा के विकास के लिए अनिवार्य रास्ता है। आदमी बहुत अजीब है। वह अपने कल्याण करने वालों को कभी नहीं पहचान पाता है कि कौन उसका कल्याण कर रहा है। असल में जो जितना शोरगुल मचाता है कल्याण करने का, वह उतना ही आगे दिखायी देने लगता है और जो कल्याण कर रहे हैं वे चुपचाप काम में लगे रहते हैं। उनका शोरगुल कुछ पता भी नहीं चलता कि कौन कल्याण कर रहा है। और हम तो प्रचार से प्रभावित होते हैं। मैं आप से कहना चाहता हूं कि जिन लोगों ने कल्याण किया, वे लोग कुछ और हैं। कोई वैज्ञानिक जो अपनी लेबोरेटरी में बैठ कर खोज कर रहा है, वह कल्याण कर सकता है, लेकिन एक राजनीतिज्ञ नहीं—जो दिल्ली में बैठा है और तिकड़मबाजियां भिड़ा रहा है कि किसकी टांग खींचें, किसकी कुर्सी उलटायें ? इससे हित होने वाला नहीं है। एक लेबोरेटरी में अनजान आदमी जिसका गरीब कभी नाम भी नहीं जानेगा कि उसका बच्चा किस पेश्योर की खोज से बच रहा है ?

कौन उसकी टी० बी० के लिए इन्तजाम कर रहा है ? कौन उसकी कैंसर के लिए फिक्र कर रहा है, कौन उसकी उम्र बढ़ा रहा है ? उसका उसे पता भी नहीं चलेगा। कौन उसके घर बिजली की रोशनी जला रहा है ? उसे पता भी नहीं चलेगा। लेकिन राजनीतिज्ञ ऐसा है जो कुछ भी नहीं कर रहा है, केवल झंडा पकड़ना जानता है और जोर से चिल्लाना जानता है। असल में कुछ लोगों को जोर से चिल्लाने में बहुत मजा आता है।

मैंने सुना है, एक सड़क के किनारे एक लड़का जोर से चिल्ला रहा है। अखबार बेच रहा है। एक आदमी ने उससे पूछा कि क्या बचा लेते हो ? एक-एक आने में अखबार बेच रहे हो, तुम्हें क्या बच जाता है ? उसने कहा—बचता कुछ भी नहीं। एक-एक आने में वह जो सड़क पर दूसरी तरफ लड़का अखबार बेच रहा है, उससे खरीदता हूं और एक-एक आने में बेच देता हूं। उस आदमी ने कहा—तुम बड़े पागल हो। लड़के ने कहा—पागल नहीं हूं। फिर उसने पूछा—तुम्हें मिलता क्या है ? लड़के ने कहा—मुझे जोर से चिल्लाने का मजा मिलता है। उस आदमी ने कहा कि तुम बड़े होकर राजनीतिज्ञ हो सकते हो।

मनुष्य का कल्याण करने वाले कौन लोग हैं ? वे चुपचाप अपने काम में संलग्न हैं। उनकी खोजें जिन्दगी के अन्धेरे कोनों में काम कर रही है। वे मर जायेंगे, आपके लिए। आपको पता भी नहीं चलेगा कि कौन वैज्ञानिक आपके लिए जहर चख कर मर गया, इसलिए कि वह जहर किसी की जिन्दगी न ले ले। आपको पता न चलेगा कि कौन वैज्ञानिक बीमारियों के कीटाणु की परीक्षा करते-करते बीमार होकर मर गया कि वह कीटाणु किसी दूसरे को बीमार न कर सके। आपको पता न चलेगा कि कौन वैज्ञानिक ऑटोमेटिक यंत्र खोज रहा है, जिससे किसी आदमी को श्रम करने की जरूरत न रह जाये। लेकिन राजनीतिज्ञ चिल्लाता रहेगा कि हम कल्याण करने वाले हैं, हम कल्याण कर रहे हैं। राजनीतिज्ञ से कल्याण नहीं होता, क्रांतियों से कल्याण नहीं हुआ। बड़े मजे की बात है कि क्रांतियों से कोई कल्याण नहीं हुआ, बल्कि क्रांतियों ने कई अर्थों में हजार तरह की हानियां पहुंचायी हैं। मनुष्य के विकास में व्यवधान पैदा किये, बाधायें खड़ी कीं। जो सहज गति से जीवन की धारा जाती थी, उसे बहुत जगह से तोड़ा और रोका। अब ऐसी क्रांति की जरूरत है जो बाकी की क्रांतियों को भुला दे। अब एक ऐसी क्रांति की जरूरत है, जो कल्याण करने वालों से कहे कि आप क्षमा करें। बहुत कल्याण हो चुका। पांच हजार साल से जो हमारा कल्याण करते हैं, अभी तक नहीं कर पाये, अब आप चुप हो जायें। अब आपकी कोई जरूरत नहीं है।

गरीब के कल्याण का मतलब है, सम्पत्ति का उत्पादन और गरीब के कल्याण का मतलब है, ऐसे यंत्रों का उत्पादन जो सम्पत्ति को हजारगुना रूप से पैदा करने लगे। गरीब के कल्याण का मतलब है, पृथ्वी को वर्ग-विद्वेष से विहीन करने का

उपाय, वर्ग-विद्वेष नहीं। लेकिन सारे समाजवादी वर्ग-विद्वेष पर जीते हैं। उनका सारा जीना क्लास-कान्फ्लिक्ट पर है। गरीब को अमीर के खिलाफ भड़काओ, कारखाना कम चले, कारखाने बन्द हों, हड़ताल हो, बाजार बन्द हों, मोर्चे हों,—इनमें लगे रहें। गरीब को पता नहीं कि जितने मोर्चे होते हैं, जितनी हड़तालें होती हैं, जितना कारखाना बन्द होता है गरीब अपने हाथों से गरीब होने का उपाय कर रहा है; क्योंकि ऐसे देश की सम्पत्ति कम होगी। कौन कर रहा है कल्याण ? अगर कल्याण करना है तो जोर से लग जाओ सम्पत्ति पैदा करने में। जोर से कर्म में लगो, जोर से उत्पादन करो। वर्ग-विद्वेष की आग लगा कर उत्पादन की व्यवस्था को मत रोको; बल्कि वर्गों को निकट लाओ। लेकिन नेता वर्गों को निकट लाये तो नेता को कौन पूछे ? नेता तभी पूछा जाता है जब वह किसी को लड़ाता है। बिना लड़ाये नेता का कोई अस्तित्व नहीं। इसलिए दुनिया में जब तक नेता रहेंगे, तब तक लड़ाई रहेगी। नेता को विदा करिये, लड़ाई विदा हो जायेगी। नेता लड़ाई निर्माण करता है। वह नेता का भोजन है—उसका आधार, उसका प्राण, उसकी आत्मा, उसका परमात्मा है।

हिटलर ने लिखा है अपनी आत्मकथा में कि अगर बड़ा नेता होना हो तो बड़ी लड़ाई की जरूरत है और अगर असली लड़ाई न चल रही हो तो कोल्डवार, (ठंडी लड़ाई) चलाते रहो; लेकिन लड़ाई जारी रखो और लोगों को भयभीत रखो। क्योंकि भयभीत हालत में लोग नेता को पकड़ते हैं। जब लोग निश्चिन्त हो जाते हैं, तब कहते हैं—हम निश्चिन्त हैं, नेता की क्या जरूरत ? नहीं, लड़ाई जारी रखो तो वे कहेंगे, कोई अगुवा चाहिए, कोई नेता चाहिए। लड़ाई जारी रखो तो वे कहेंगे, कोई आगे चाहिए—बुद्धिमान्, समझदार, जो लड़ सके। हम गरीब हैं, हम कैसे लड़ सकेंगे ? इधर हिन्दुस्तान में आजादी के बाद के बीस-बाईस वर्षों में वर्ग-विद्वेष की आग पैदा करके हिन्दुस्तान के औद्योगीकरण में इस भांति पीठ में छुरा भोंका गया है; लेकिन यह गरीब को कभी पता न चलेगा कि उसने अपनी ही पीठ में छुरा भोंका है।

एक मित्र ने पूछा है कि आप यह जो बातें कर रहे हैं, ये पूंजीपतियों के बड़े पक्ष में हैं। आप उनके खिलाफ कुछ न कहेंगे ?

जरूर, उनके खिलाफ बहुत-कुछ कहूंगा। कहना ही पड़ेगा। क्योंकि पूंजीपति भी वर्ग-विद्वेष को पैदा करने में आधारभूत बनता है। असल में जो आदमी धन कमा लेता है, वह तत्काल अपने को अलग दुनिया का हिस्सा समझने लगता है जो कि गलत बात है। धन कमाने से कोई आदमी बड़ा नहीं हो जाता है। धन कमाने से कोई आदमी किसी ऊंचे पहाड़ पर नहीं चढ़ जाता है। अगर एक आदमी चित्र बना लेता है तो वह पहाड़ पर नहीं चढ़ जाता है। एक आदमी मूर्ति बना लेता है तो पहाड़ पर नहीं चढ़ जाता है। लेकिन आदमी धन कमा लेता है

तो अहंकार के पहाड़ पर चढ़ जाता है। जब तक अमीर धनपति धन के माध्यम से अपने अहंकार की तृप्ति करेगा, तब तक अनिवार्य रूप से वह गरीब को ईर्ष्या से जन्म देगा। मैंने कल कहा कि गरीब की ईर्ष्या को भड़काया जा रहा है। लेकिन गरीब में इतनी ईर्ष्या क्यों है ? गरीब में इतनी ईर्ष्या का पचास प्रतिशत कारण गरीबी है। पचास प्रतिशत कारण पड़ोस में खड़े अमीर का अहंकार है। अमीर को अहंकार छोड़ना पड़ेगा। धन कमाना उसका आनन्द है; लेकिन धन कमा कर वह किसी अहंकार को अर्जित करके किसी पहाड़ पर खड़ा हो जाये तो फिर आस-पास के लोग भी उसे पहाड़ से नीचे उतारने की कोशिश करेंगे। असल में धन कमा लेना अहंकार की तृप्ति का मार्ग या माध्यम नहीं बनना चाहिए। बल्कि सच तो यह है कि जितना धन हो, उतना आदमी को निरहंकारी हो जाना चाहिए। जितना धन हो—उतना निरहंकारी इसलिए हो जाना चाहिए कि उसने धन की बहुलता को देख लिया और यह भी पा लिया कि बहुत धन मिलने से भी क्या मिल जाता है ! आखिर महावीर और बुद्ध अमीरों के बेटे थे; लेकिन लात मार कर वह अमीरी के बाहर चले गये। क्या कारण था ? बुद्ध जब दूसरे गांव में ठहरे तो उस गांव का सम्राट् आया और उसने कहा—मैं तुम्हें समझाने आया हूं। तुम पागल हो गये हो। तुम यह धन, यह इज्जत और यह प्रतिष्ठा और यह राजमहल छोड़ कर क्यों भागे ? मैं तुमसे अपनी लड़की का विवाह कर देता हूं। लौट आओ ! मेरे राज्य को सम्भालो ! बुद्ध ने कहा—जो राज्य मैं छोड़ कर आया वह बड़ा था। अब मुझे प्रलोभन मत दो। सम्राट् ने कहा—लेकिन छोड़-कर क्यों आये ? बुद्ध ने कहा कि मैंने देखा, सब था, लेकिन फिर भी भीतर कोई कमी थी जो धन से पूरी नहीं हुई। मेरी अपनी समझ है कि निर्धन का अहंकार छूटना बहुत मुश्किल है, क्योंकि उसे पता नहीं कि धन के मिलने पर कुछ नहीं मिलता। लेकिन धनी का अहंकार छूट जाना चाहिए। ठीक अर्थों में वही आदमी धनी है जिसे यह भी दिखायी पड़ गया है कि धन मिल गया, मकान मिल गया। बड़ी फैक्टरी है, बड़ी कार है। सब है, लेकिन भीतर फिर भी कोई जगह खाली रह गयी है। उस खाली जगह को जो धन से भर लें तो अहंकार पैदा होता है। उस खाली जगह को जो धन पृष्ठभूमि में से देख लें तो निरहंकार पैदा होता है। धनी को अहंकार छोड़ना पड़े तो गरीब को ईर्ष्या छोड़ने में बड़ी सुविधा हो जाये, लेकिन धनी अपने अहंकार में अकड़े तो गरीब के पास सिवाय ईर्ष्या के क्या बचता है ? और तब नेता को सुविधा मिल जाती है कि गरीब की ईर्ष्या को भड़काये और गरीब की ईर्ष्या को भड़काता है तो धनी और अकड़ता है। वह अपने बचाव में लगता है, वह अपने अहंकार की और सुरक्षायें चाहता है। यह सब खतरनाक उपाय हैं। इससे ईर्ष्या और भड़केगी। आग और फैलेगी। नहीं, अगर इस देश को समृद्ध बनाना हो तो वर्ग-विद्वेष को कम करना पड़ेगा। धनी का पहला काम

यह है—गरीब से भी पहले; क्योंकि गरीब की ईर्ष्या बड़ी स्वाभाविक है; लेकिन धनी का अहंकार बिल्कुल अस्वाभाविक है। धनी का अहंकार बहुत थोथा है और गरीब की ईर्ष्या बड़ी वास्तविक है।

एक छोटी-सी कहानी मुझे याद आती है। मैंने सुना है, एक अस्पताल है। उसमें जेलखाने के कैदियों को रखा जाता है। लेकिन अस्पताल में भी, जेलखाने के कैदियों की खाटों में नम्बर हैं। एक नम्बर की खाट पर जो कैदी जरा मज-बूत है और अधिकारी जिसे मानते हैं, उसे रखा जाता है। नम्बर एक की खाट है फिर नम्बर दो, सौ नम्बर की खाट वाला आदमी अपने को ना-कुछ समझता है, नो बडी। जो कैदी, नम्बर एक की खाट पर रहता है जंजीर से बंधा है, जकड़कर बंधा है, लेकिन अकड़ कर जीता है कि मैं कुछ हूं। नम्बर एक की जो खाट है उस अस्पताल में, दरवाजे के पास है और वह नम्बर एक का जो कैदी है सुबह उठ कर कहता है—अहा, कितना खूबसूरत सूरज निकला है और निन्यानवे खाटों पर बंधे हुए मरीज वहीं अकड़ कर रह जाते हैं कि सूरज हमें दिखायी नहीं पड़ रहा है। धन्य है एक नम्बर की खाट वाला आदमी। वह नम्बर एक की खाट वाला आदमी गौर से देखता है। कभी कहता है—रात कैसा चांद निकला है, गुलमोहर के फूल खिले हैं। कभी कहता है—सुगन्ध आ रही है रातरानी की, कभी कहता है, आकाश में बगुलों की कतार उड़ गयी। वह हमेशा बात करता रहता है, दरवाजे के पास। सारे मरीज उससे कहते हैं कि धन्यभागी हो तुम और मन में रोज भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि कितने लोग मर रहे हैं। नम्बर एक की खाट का आदमी कब मरेगा ? वैसे उससे कहते हैं—तुम धन्यभागी हो। पिछले जन्म में अच्छे कर्म किये होंगे, इसलिए नम्बर एक की खाट मिली। हम अभागे हैं, हमको निन्यानवे नम्बर की खाट है। किसी को पचास नम्बर की। लेकिन मन में कहता है—कब मरोगे ! कई दफा उसे हृदय का दौरा आता है। नम्बर एक की खाट के लोगों को अक्सर हृदय का दौरा आता है। उसे कई दफे हृदय का दौरा आता है, तो उन सबके प्राणों में खुशी दौड़ जाती है कि अब मरा, अब मरा। लेकिन नम्बर एक की खाट के मरीज बड़ी मुश्किल से मरते हैं। वह फिर ठीक हो जाता है और फिर कहने लगता है कि आज तो तोते इकट्ठे हो गये हैं गुलमोहर के वृक्ष पर। उनके गीत सुनते हो ? लेकिन किसी को कुछ सुनायी नहीं पड़ता। लोग कानों को समेट कर दुख में भरे रह जाते हैं। लेकिन नम्बर एक का मरीज भी कब तक बचेगा ? वह भी मरा। जब वह मरा तो निन्यानवे मरीजों में दौड़ मच गयी। जैसे दिल्ली में मचती है, किसी नम्बर एक के आदमी के मरने पर। खूब दौड़े वे, अफसरों की खुशामद की, पैर पकड़े। डाक्टरों के पैर पड़े। जो उनके पास रिश्वत थी, देने लगे। फिर एक आदमी रिश्वत में जीत गया और नम्बर एक की खाट पर पहुंच गया। जाकर उसने पहला काम किया,

जो कि कोई भी करेगा। जब कोई राष्ट्रपति के पद पर पहुंचेगा, तब करेगा। जब नम्बर एक की जगह पर पहुंचेगा, तब करेगा। उसने जाकर दरवाजे के बाहर देखा, देखते ही मुश्किल में पड़ गया। न वहां कोई गुलमोहर का पौधा था, न वहां कोई रातरानी थी, न वहां से सूरज दिखायी पड़ता था। न वहां से आकाश दिखायी पड़ता था। बाहर भी परकोटे की बड़ी मजबूत पत्थर की दीवार थी। उसके अतिरिक्त वहां से कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता था। लेकिन उसने कहा—आप जानते हैं, उसने क्या कहा ? लौट कर उसने यह कहा कि धन्य है मेरे भाग्य, सूरज निकला है, पक्षी गीत गा रहे हैं। फूल खिले हैं। बाकी निन्यानवे मरीज फिर उसकी मृत्यु की प्रार्थना करने लगे। आखिर तुम भी मरोगे ही। कब मरोगे ? मैंने सुना है, उस अस्पताल में ऐसा सैंकड़ों वर्ष से चला आ रहा है। लेकिन वह नम्बर एक का आदमी हिम्मत नहीं जुटा पाता कि कह दे कि बाहर कोई फूल नहीं है, कोई सूरज नहीं है। वह जो धन की नम्बर एक की व्यवस्था में पहुंच जाता है, उसको हिम्मत जुटा कर कहना चाहिए कि धन मिल गया, आत्मा नहीं मिल गयी। धन मिल गया, कोई सत्य नहीं मिल गया। धन मिल गया, प्रेम नहीं मिल गया, और तब उस धनिक को अत्यन्त निर्धन भीतर अनुभव करना चाहिए। अगर यह अनुभव हो तो वह अहंकार का केन्द्र न बने। अगर वह अहंकार का केन्द्र न बने, तो नीचे चारों तरफ ईर्ष्या की आग न पैदा करे। अमीर को अहंकार छोड़ना पड़े अगर वर्ग-विद्वेष मिटाना हो और अमीर को सिंहासनों से नीचे आना पड़े यदि ईर्ष्या की व्यर्थ आग बुझानी है तो।

मनुष्यता धन के कारण ऊंची नहीं हो जाती। अगर दफ्तर में कोई चपरासी है तो इसी वजह से वह छोटा आदमी नहीं हो जाता। आदमियत अलग बात है और जिस आदमी को आदमियत का ध्यान नहीं, वह आदमी समाज को बहुत तरह का नुकसान पहुंचाता है। धनी को ध्यान रखना पड़ेगा कि धन आदमियत नहीं है और एक मजदूर के भीतर भी परमात्मा है और जब मजदूर की तरफ देखता है तो इस भांति नहीं देखना है जैसे की पशु की तरफ देखता हो। तो हम वर्ग-विद्वेष की आग को बुझा सकेंगे। बुझ सकती है आग, और अगर आग बुझे तो देश सृजन में लग सकता है। सम्पत्ति पैदा हो सकती है।

एक मित्र ने पूछा है कि हिन्दुस्तान क्यों सम्पत्ति पैदा नहीं कर पाया ?

नहीं कर पाने के कुछ कारण हैं। एक-दो पर मैं बात करूं। पहला तो कारण यह है कि हमने न मालूम किस दुर्भाग्य के क्षण में सम्पत्ति के विरोध में निर्णय ले लिया है। हमने गरीबी की पूजा की है हजारों साल से। हम गरीब को आदर देते हैं। शायद इसका कारण यह है कि हम बहुत गरीब थे और अमीर की ईर्ष्या के कारण हम गरीब को आदर देने लगे। अगर हम भिखमंगे हैं और हमें सम्राट् होने का कोई उपाय न हो तो आखिर में हमारा मन यही इन्तजाम

करेगा कि हम सम्राट् होना ही कब चाहते हैं। हम तो भिखारी होने में ही आनन्दित हैं। यह हमारे अहंकार की आखिरी तरकीब होगी। हजारों साल से भारत गरीब है। उसकी गरीबी इतनी लम्बी हो गयी है कि उसकी गरीबी में भी अहंकार को तृप्त करने का उपाय खोजना जरूरी था। इसलिए हमने उपाय खोज लिया। हम गरीबी को 'सादगी' कहने लगे। हम गरीबी को 'अपरिग्रह' कहने लगे। हम गरीब आदमी को आदर देने लगे और अगर कोई गरीब गरीबी स्वीकार कर ले स्वेच्छा से तो हम उसके चरण छूने लगे, पैर पकड़ने लगे। जैनियों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के बेटे हैं। गरीब का कोई बेटा तीर्थंकर की तरह क्यों स्वीकृत नहीं हो सका ? न होने का कारण था; क्योंकि गरीब के पास त्याग करने को कुछ भी नहीं है और हम त्याग तौल सकते हैं कि कौन आदमी कितना बड़ा है। हम धन से ही मानते हैं, धन हो तो धन से तौलते हैं और कोई धन छोड़े तो धन से तौलते हैं। महावीर बड़े आदमी हैं; क्योंकि उन्होंने बहुत धन छोड़ा। बुद्ध बड़े आदमी हैं; क्योंकि उन्होंने बहुत धन छोड़ा। बुद्ध अगर गरीब के घर में पैदा हों तो कौन फिक्र करता है; क्योंकि छोड़ा क्या ? हम पूछते कितनी मुहरें छोड़ी, कितने घोड़े, कितने हाथी ? वह कहते कुछ था नहीं हमारे पास। तो हम कहते, भाग जाओ। तुम तीर्थंकर नहीं हो सकते। तीर्थंकर होने के लिए हजारों-करोड़ों रुपये चाहिए। हम रुपये से ही तौलते हैं, गरीब आदमी रुपये से ही तौलता है। धन को भी रुपये से तौलता है। त्याग को भी रुपये से तौलता है।

मैं जयपुर में मेहमान था। एक आदमी ने मुझसे कहा, एक भारी संन्यासी हैं, उनसे आप मिलें। बहुत अद्भुत आदमी हैं। मैंने कहा—तुमने किस तराजू से पता लगाया है कि बहुत बड़े संन्यासी हैं ? उन्होंने कहा—खुद जयपुर-महाराज उनके पैर छूते हैं। तो मैंने कहा—तुम्हारे मन में जयपुर-महाराज का आदर है, संन्यासी का तो कोई आदर नहीं है। अगर जयपुर-महाराज पैर न छुएं तो संन्यासी गया।

मैं एक संन्यासी के पास कभी रुका था। वह दो-चार बातचीत के बाद जरूर यह चर्चा चलाते कि मैंने लाखों रुपये पर लात मार दी। मैंने उनसे एक दिन पूछा कि लात आपने कब मारी ? उन्होंने कहा—कोई तीस साल हो गये। मैंने कहा—लात ठीक से लग नहीं पायी। तीस साल के बाद भी आपको याद है, कि आपने लाखों रुपये पर लात मार दी। तो अभी भी मजा वही है। लाखों थे तो भी अकड़ लाखों की थी। अब भी जो अकड़ है, वह लाखों के छोड़ने की अकड़ है। लेकिन है पैसा ही आधार। गरीब आदमी पैसे को आधार बना लेता है; लेकिन दुर्भाग्य के क्षण में हमारी गरीबी को अंगीकार कर लिया और हमने कहा कि गरीबी भी सौभाग्य है। सन्तोष करो इसलिए सम्पत्ति पैदा न हो सकी। सम्पत्ति पैदा करने के लिए गरीबी का आदर छोड़ना पड़ेगा। दरिद्र को नारायण नहीं

कहना है। बहुत हो चुकी यह नासमझी। दरिद्र नारायण नहीं है। दरिद्रता महा-रोग है। प्लेग, हैजा को जैसे मिटाना है, वैसे ही दरिद्रता को भी मिटा देना है। दरिद्रता नहीं बचने देनी है। सम्पत्ति की स्वीकृति हमारे मन में आये तो हम सम्पत्ति पैदा कर लेंगे। हम वही पैदा करते हैं, जो हम पैदा करने की आकांक्षा जगा लेते हैं। हमने गरीबी पैदा कर ली, क्योंकि हमने गरीबी को स्वीकार कर लिया है। गांधीजी से कोई पूछता था कि आप थर्ड क्लास में क्यों चलते हैं, तो वह कहते थे चूंकि फोर्थ क्लास नहीं है। अब गांधीजी का मन तृप्त न होगा, जब तक नर्क की रेलगाड़ी में न चलें। क्योंकि फोर्थ क्लास में क्यों चलते हैं? वे कहेंगे, फिफ्थ क्लास नहीं है इसलिए। हम कहेंगे गांधी महात्मा है; क्योंकि वे थर्ड क्लास स्वीकार कर रहे हैं। हम सब थर्ड में चलते हैं तो हमें लगेगा कि यह है महात्मा असली। क्योंकि थर्ड क्लास में हमारे प्राण ही परेशान हो रहे हैं। हम भी चाहते हैं कि फर्स्ट क्लास में चलें, लेकिन फर्स्ट क्लास में चलना नहीं हो पाता है। तो अब थर्ड क्लास में जो चलेगा, उसको हम कहेंगे, यह है महात्मा। अब हम किसको आदर देंगे? हम अब थर्ड क्लास को आदर का आधार बनाने की कोशिश करेंगे कि थर्ड क्लास में चलना भी बड़े महत्व की बात है। इससे हमारे अहंकार को तृप्ति मिलती है।

इस अहंकार की भूखी तृप्ति ने इस देश में सम्पत्ति को पैदा करने में बाधा डाल दी। इसको हटा देना पड़ेगा। सम्पत्ति की अपनी जरूरत है सम्पत्ति सब-कुछ नहीं है, लेकिन बहुत-कुछ है। सम्पत्ति से आत्मा नहीं मिल जायेगी, लेकिन सम्पत्ति के बिना आत्मा को पाना भी बहुत मुश्किल है। सम्पत्ति से कम-से-कम जो सबसे बड़ी कीमती बात मिलती है, वह यह है कि शरीर को भूलने की सुविधा मिलती है। रोटी का उपयोग एक ही है कि शरीर भूल जाता है। भूख में शरीर भूलना मुश्किल है। सिर में दर्द हो तो सिर नहीं भूल सकता। दर्द न हो तो सिर भूल जाता है। पैर में कांटा गड़ा हो तो आत्मा पैर में ही चली जाती है, वहीं कांटे के पास निवास करने लगती है। कांटा निकल जाये, आत्मा पैर से विदा हो जाती है। जहां अभाव है, वहां खटकता रहता है। गरीब शरीर में ही जी पाता है। क्योंकि शरीर ही खटकता रहता है। अमीर के लिए एक सुविधा है कि वह शरीर को भूल सकता है और मैं मानता हूं इसीलिए सारी दुनिया को अमीर किया जाना जरूरी है, ताकि एक-एक आदमी शरीर को भूल सके। जिस दिन हम शरीर को भूल पाते हैं, उसी दिन आत्मा की सुधि आनी शुरू होती है। उस दिन ख्याल आना शुरू होता है कि फिर मैं क्या हूं? जब शरीर की कोई जरूरत नहीं बचती है तो सवाल उठता है, अब मेरी क्या जरूरत है? अब मैं क्या खोजूं? धर्म की और आत्मा की खोज मनुष्य की सभी सुविधाओं की तृप्ति के बाद पैदा हुई खोज है। वह लास्ट लक्जरी है। वह आखिरी विलास है। वह सुविधाओं के बाद की

अन्तिम चरम यात्रा है। लेकिन हमने जो निर्णय लिया था, वह भ्रांत था। वह निर्णय यदि हम बदल दें तो आज सारी स्थिति बदल सकती है।

और एक बात। हमने एक और निर्णय भी लिया था, इस गरीबी के साथ राजी होने के लिए। वह निर्णय यह था कि आदमी गरीब है अपने पिछले जन्मों के पापों के कारण। वह भी सन्तोष की व्यवस्था थी। हम कहते थे, अमीर अपने पिछले जन्मों के पुण्यों के कारण अमीर है। गरीब अपने पिछले जन्मों के पापों के कारण गरीब है। इससे तृप्ति मिलती थी, सन्तोष मिलता था और हम गरीबी में ही जी लेते थे। इसलिए गरीबी का मिटना मुश्किल हो गया। गरीबी हमारे पिछले जन्मों के कर्मों का परिणाम नहीं है। गरीबी हमारी इसी जन्म की भूलों का फल है। इस जन्म में हम जो कर रहे हैं, वह अगर सम्पत्ति पैदा नहीं कर रहा है, तो गरीबी अनिवार्य हो जायेगी। दूसरी बात, गरीबी एक-एक व्यक्ति की व्यक्तिगत व्यवस्था का भी फल नहीं, हमारी सामूहिक अन्तर्व्यवस्था का भी फल है। ये दो बातें अगर ख्याल में आ जायें तो गरीबी मिटायी जा सकती है। जब तक हम सोचते थे, आदमी की उम्र भाग्य से तय है, तब तक आदमी की उम्र नहीं बढ़ायी जा सकी। लेकिन अब उम्र बढ़ी है, क्योंकि भाग्य का विश्वास घटा है।

तिब्बत में एक रिवाज था। बच्चे जब पैदा होते तो पहले उन्हें बर्फीले पानी में डुबा देते। फिर निकाल लेते। सात दफा डुबकी देते। दस में से सात बच्चे मर जाते, तीन बच्चे बचते; लेकिन उनका मानना यह था कि जो मर गया, वह मर ही जाता है, इसलिए मर गया। जो बच गया है, वह बच ही जाता है। और हमने परीक्षा कर ली कि कौन बचने को आया, कौन मरने को आया। तो चलता रहा तिब्बत में यह रिवाज। करोड़ों-करोड़ बच्चे मरते रहे। जरूरी नहीं था कि जो बच्चा जिन्दा पानी में पैदा होते ही डुबा दिया जाये, वह मर ही जाता। हां, रेसिस्टेंस उसका थोड़ा कम जरूर था। लेकिन रेसिस्टेंस थोड़ा बढ़ाया जा सकता था, इलाज किया जा सकता था। लेकिन मारने का इन्तजाम कर लिया। उम्र तब बढ़नी शुरू हुई, जब हमें ख्याल आया कि उम्र कोई भाग्य का निर्णय नहीं है। तो उम्र बढ़ गयी। पहले हम सोचते थे कि बीमारी भी पिछले जन्मों के कर्मों का फल है तो हम बीमारी से नहीं लड़े। जिस दिन ख्याल आ गया कि बीमारी पिछले जन्मों के कर्मों का फल नहीं है, बीमारी को बदल दिया गया। आज बहुत-सी बीमारियां विदा हो गयीं। एक वक्त आयेगा कि जमीन पर बीमारी बहुत असम्भव बात हो जायेगी। गरीबी को हमने स्वीकार किया, इसलिए गरीब हैं। हमें पूरे मन से गरीबी को अस्वीकार करना पड़ेगा तो ही गरीबी मिट सकती है और अगर सारे मुल्क तय कर लें तो कोई भी कठिनाई नहीं है गरीबी को मिटा देने में। क्योंकि गरीबी को मिटाने का मतलब है पहले तो गरीबी को मिटाने का संकल्प लें। लेकिन अब गरीब को नयी नासमझियां समझायी जा रही हैं। उसे

समझाया जा रहा है कि तेरा शोषण किया जा रहा है, इसलिए तू गरीब है। तो तू शोषक को मिटा। शोषक मिट जायेगा, तो तू अमीर हो जायेगा। यह बड़ी नासमझी की और आत्मघाती दलील है।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या आप कहते हैं कि गरीब का शोषण नहीं हो रहा है? आप गलत कहते हैं। गरीब से दस रुपये का काम लिया जाता है और उसे दो रुपये दिये जाते हैं।

मैं उनसे पूछता हूं, वह काम न करे दस रुपये का। वह दो रुपये का काम न करे। वह अपनी मजदूरी को, अपने इस श्रम को जहां दस रुपये में बिकता हो, बेच दे। वह कहां बेचेगा दस रुपये में? वह जो दो रुपये में बेच रहा है, अगर न बेचे तो दो पैसे में भी नहीं बेच पायेगा। दस रुपये का मूल्य कैसे है उसका? मूल्य कैसे तय होता है? मूल्य के तय होने का मतलब क्या है?

मार्क्स ने एक बहुत ही अजीब बात लोगों को समझायी कि गरीब जितने का काम कर रहा है उससे कम का पैसा उसे दिया जा रहा है। लेकिन गरीब को जो पैसा दिया जा रहा है, अगर वह काम न करे तो उसके श्रम का पैसा उसे मिलने वाला कहां है और उसे ज्यादा कहां मिल जायेगा? जितना मिल रहा है उससे ज्यादा की तलाश की जा सकती है, उससे ज्यादा का उत्पादन किया जा सकता है। लेकिन अगर इस ढंग से सोचा जाये कि यह शोषण किया जा रहा है, तो हम गरीब और अमीर के बीच एक दुश्मनी खड़ी करते हैं और उत्पादन की व्यवस्था अगर दुश्मनों की व्यवस्था हो जाये, तो देश समृद्ध नहीं हो सकता। उत्पादन की व्यवस्था मित्रों की व्यवस्था होनी चाहिए। इसमें गरीब को सोचना चाहिए कि छीनने का नहीं, सम्पत्ति को और ज्यादा पैदा करने का ख्याल है। इसमें अमीर को सोचना चाहिए कि वह जितना मुनाफा इकट्ठा करता है, उतना मुनाफा इकट्ठा करने का सवाल नहीं, उस मुनाफे को भी नियोजित करने का सवाल है और सम्पत्ति पैदा करने में; तो हम इस देश को कल अमीर बना सकते हैं। लेकिन आज समाजवादी जो बातें कर रहे हैं, अगर उनकी बात मान ली गयी तो आज जितना मुल्क गरीब है, बीस साल बाद और भी ज्यादा गरीब होगा; क्योंकि वे सम्पत्ति-उत्पादन की तरफ सोच ही नहीं रहे हैं, वे सम्पत्ति-विभाजन, वितरण, बांट लेने की तरफ सोच रहे हैं और गरीब को बिल्कुल ठीक लगता है कि सम्पत्ति बंटे और मुफ्त मिल जाये। वह गरीब इसलिए है कि श्रम करने की, सृजन करने की, पैदा करने की, जो प्रबल आकांक्षा होनी चाहिए वह उसमें नहीं है। तो वह कहता है, अगर बंट कर मिल जाये तो बहुत अच्छा है। तो वह कहता है—काम-धाम बन्द करो, मोर्चा लगाओ, हड़ताल करो! सम्पत्ति बंटनी चाहिए, सम्पत्ति मिल जानी चाहिए।

यह जो हम आकांक्षा पैदा कर रहे हैं गरीब में, अगर हिन्दुस्तान के गरीब

की आत्मा में यह आकांक्षा प्रवेश कर गयी तो हिन्दुस्तान सदा के लिए गरीब होने की सील-मुहर अपनी छाती पर लगा लेगा। फिर गरीबी से छुटकारा पाना बहुत असम्भव हो जायेगा।

एक मित्र ने पूछा है कि आप पूंजीपतियों के पक्ष में बोल रहे हैं, तो आपको पूंजीपतियों से पैसे तो नहीं मिल रहे हैं?

बड़ा मजा है, हमारे सोचने का सारा ढंग ऐसा है। अगर मैं समाजवाद के पक्ष में कोई बात करता हूं तो मेरे पास पत्र आते हैं कि आपको चीन से पैसे तो नहीं मिल रहे हैं? आप माओ के ऐजेंट तो नहीं हैं? अगर मैं समाजवाद की आलोचना करता हूं तो वे कहेंगे, आपको अमरीका से तो पैसे नहीं मिल रहे हैं, आप किसी पूंजीपति के एजेंट तो नहीं हैं? क्या इस दुनिया में सोचना गुनाह है? सिवाय एजेंट के और कोई नहीं सोचता, सिर्फ एजेंट ही सोचते हैं? असल में जिन्होंने यह पूछा है वे जरूर कहीं-न-कहीं एजेंसी से सम्बन्धित होंगे, क्योंकि हमारी कल्पना में यह बात नहीं आती कि कोई आदमी सीधा भी सोच सकता है। हम पूछेंगे, जरूर किसी का एजेंट होगा। इसका मतलब हुआ कि आदमी के पास अपनी आत्मा नहीं है, अपने सोचने का ढंग नहीं है।

एक और मित्र ने पूछा है कि आप कभी समाजवाद के पक्ष में कहते हैं, कभी पूंजीवाद के पक्ष में कहते हैं। आप ऐसी विपरीत बातें करके हमें परेशानी में डाल देते हैं।

असल में हमारी कठिनाई यह है कि समाजवाद और पूंजीवाद को जो विपरीत समझता है, वह गलत समझता है। पूंजीवाद की विकसित अवस्था समाजवाद है। वह विपरीत नहीं है और जब मैं पूंजीवाद के पक्ष में कहता हूं तो मैं उस प्रक्रिया की बात कर रहा हूं जिससे कि अन्त में समाजवाद उपलब्ध होगा। उन दोनों में विरोध नहीं है। लेकिन चूंकि हम दुश्मनी की भाषा में सोचने के आदी हो गये हैं, इसलिए हम और तरह से सोच ही नहीं पाते हैं। को-आपरेशन नहीं, कॉन्फ्लिक्ट, सहयोग नहीं, संघर्ष की भाषा में सोचो,—यही हमें सिखाया जा रहा है। नेता संघर्ष की भाषा में सोचता है। मैं कोई नेता नहीं हूं। मुझे लगता है कि समाजवाद लक्ष्य है, लेकिन पूंजीवाद प्रक्रिया है और इसलिए मैं समाजवाद के पक्ष में हूं और पूंजीवाद के विपक्ष में नहीं हूं। इसे ठीक से समझ लेना जरूरी है। न मालूम कितने मित्रों ने यही लिख कर पूछा है कि आप कभी यह कहते हैं, कभी वह कहते हैं। आप कल जवान थे, आज बूढ़े हो गये। पहले बालक थे, फिर जवान हुए, फिर बूढ़े हो गये। आपसे कोई कहे कि बड़े इनकंसिस्टेंस आदमी मालूम पड़ते हैं। कभी बच्चा होते हैं, कभी जवान होते हैं, फिर बूढ़े हो जाते हैं। नहीं, इसको आप इनकंसिस्टेंस नहीं कहेंगे, इसको कहेंगे ग्रोथ। यह विकास है। बचपन से जवानी आती है, जवानी से बुढ़ापा आता है। पूंजीवाद से समाजवाद आयेगा, समाजवाद

से साम्यवाद आयेगा, साम्यवाद से अराजकतावाद आयेगा। जिस दिन साम्यवाद ठीक से व्यवस्थित होगा, राज्य की कोई जरूरत नहीं रह जायेगी। लेकिन यह क्रमिक अवस्थाएं हैं समाज की। ये विरोध नहीं हैं, ये विकास हैं। मैं कोई भी असंगति की बात नहीं कह रहा हूं। मेरी दृष्टि में उसकी संगति है, इसलिए मेरी अपनी समझ यह है कि हिन्दुस्तान में समाजवाद की बातें करने वाले लोग समाजवाद नहीं लायेंगे। हो सकता है वे समाजवाद के आने में बाधा डालें; क्योंकि पूंजी का तंत्र तोड़ दें और हिन्दुस्तान में समाजवाद कभी न आ सके; लेकिन कोई सोच भी न पायेगा कि बिड़ला या टाटा समाजवाद ला रहे हैं। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, वे ला रहे हैं। लाने का मतलब यह है कि वे जो सम्पत्ति पैदा कर रहे हैं, अगर वह बड़े पैमाने पर फैलायी जाये तो सम्पत्ति के उत्पादन की अन्तिम परिणति समाजवाद ही है। समाजवाद आ जायेगा, वह सहज परिणाम होगा पूंजीवाद का, लेकिन मार्क्स ने थीसिस और एंटीथीसिस की भाषा समझा दी है। वाद और प्रतिवाद के कलह की, सर्वहारा की क्रांति की और बगावत की बात उसने समझा दी है। मार्क्स के पास विकास की कोई धारणा नहीं है, और इसलिए मार्क्स में एक बुनियादी कमजोरी है जब कि जीवन का बुनियादी नियम विकास है। क्रांति तो तब जरूरी होती है जब विकास को कोई रोकने को आमादा हो जाये, लेकिन विकास ही न हुआ हो तो समझ लें कि मैंने कल कहा कि मां के पेट से पांच महीने का बच्चा निकालना पड़े तो इसको मैं गलत कहूंगा। यह खतरनाक है। बच्चा मरेगा, मां भी मर सकती है और अगर बच्चा किसी तरह बचा तो मरा हुआ बचेगा। लेकिन यह भी हो सकता है कि मां के पेट में नौ महीने के बाद भी बच्चा पैदा न हो और मां का पेट काटना पड़े। क्रांति तब की जाती है जब विकास में कोई अवरोध डाल दे। अवरोध हटाने के लिए क्रांति की जरूरत है। क्रांति समय के पहले जरूरी नहीं है। अमरीका में अगर पचास साल के बाद समाजवाद न आया तो क्रांति की जरूरत हो सकती है। न तो अभी रूस में जरूरत थी, न अभी चीन में जरूरत थी और न अभी हिन्दुस्तान में जरूरत है। लेकिन जहां जरूरत नहीं वहां हो रही है। लेनिन ने भविष्यवाणी की थी कि लंदन तक कम्युनिज्म का जो यात्रा-पथ है—वह मास्को से पेकिंग—पेकिंग से कलकत्ता और कलकत्ता से लंदन की तरफ जायेगा। बड़ी खतरनाक भविष्यवाणी थी, लेकिन पूरी होती मालूम पड़ती है। पेकिंग तक तो पक्का सीमेंट-रोड बन गया है, कलकत्ते तक भी पगडंडियां आनी शुरू हो गयी है। यदि लेनिन की भविष्यवाणी पूरी हो गयी तो वह पूरे एशिया के लिए, पूरी दुनिया के लिए दुर्भाग्य की बात होगी। अभी वे पगडंडियां तोड़ी जा सकती हैं। अभी वे पगडंडियां पक्की, मजबूत हिस्सा नहीं बन गयी हैं, लेकिन कोई दृष्टि न हो, तो कैसे तोड़ी जायें? सबसे बड़े मजे की बात यह है कि कम्युनिज्म के पास आन्दोलन है, समाजवाद के पास विचार है, लेकिन पूंजीवाद के

पास कोई विचार नहीं, कोई फिलासफी नहीं, इसलिए वह खड़ा नहीं हो पाता, वह सरकता जाता है। वह डिफेंसिव है और जब तक पूंजीवाद रक्षा का उपाय करेगा, तब तक मरेगा। पूंजीवाद की रक्षा का उपाय करने का मतलब यह है कि हार अब स्वीकृत हो गयी। जिस आदमी को, जिस व्यवस्था को जीतना हो, उसे रक्षा का उपाय नहीं पकड़ना चाहिए, लेकिन पूंजीवादी रक्षा कर रहा है। वह कहता है—कलकत्ता गया तो कोई बात नहीं, अभी बम्बई सम्हालो। कल बम्बई जाये, तो दिल्ली सम्हालो। कल दिल्ली जाये तो सम्हालते चले जाओ और पीछे हटते चले जाओ।

नहीं, इस तरह नहीं होगा। जब कोई आन्दोलन हिंसात्मक ईर्ष्या पर खड़ा होता है, उसके पास बड़ी आग की लपटें होती हैं, वह फैलती चली जाती है। आग की उन लपटों के खिलाफ विचार की प्रबल शक्ति हो सकती है; क्योंकि मेरी समझ यह है कि पूंजीवाद बिना अपनी दलील दिये मरा जा रहा है। वह बिना गवाह उपस्थित किये ही हारता जा रहा है। एक ही विपक्षी उपस्थित होकर सारा निर्णय लिए ले रहा है। पूंजीवाद को अपनी फिलासफी सामने रखनी चाहिए और पूंजीवाद को यह स्पष्ट घोषणा करनी चाहिए कि समाजवाद पूंजीवाद का हिस्सा है, उसके विकास का हिस्सा है। समाजवाद पूंजीवाद का पहला नहीं, उसका अन्तिम चरण है और जिस दिन पूंजीवाद इस व्यवस्था, इस विचार को सामने रख पाये, उस दिन हम कलकत्ता से भी पीछे हटा सकते हैं और पेकिंग से भी पीछे हटा सकते हैं, और पेकिंग से भी वापस मास्को और मास्को से भी वापस लौटा सकते हैं। उसमें कोई ज्यादा कठिनाई नहीं है। बेचैनी है आज रूस में भी। आज रूस में भी बहुत परेशानी है, बहुत तनाव है। रूस का युवा-वर्ग आज उत्तेजित और परेशान है, लेकिन बगावत की वहां सुविधा नहीं है। वह बगावत वहां भी पहुंचनी चाहिए। अमरीका का भी कसूर यही है कि उसके पास भी कोई आक्रामक विचार नहीं है, सिर्फ रक्षात्मक विचार है, इसलिए वह परेशानी में है। लेकिन मुझे लगता है कि समाजवाद पेकिंग और कलकत्ता होता हुआ लंदन नहीं जायेगा। अगर समाजवाद को कहीं से भी फैलना है दुनिया में, तो वह केन्द्र वाशिंगटन होगा। समाजवाद वाया वाशिंगटन; उसके सिवाय कोई सम्यक् रास्ता नहीं हो सकता है। वाशिंगटन के ही माध्यम से अगर दुनिया में समाजवाद फैलेगा तो सुखद, स्वस्थ और सहज हो सकता है।

क्रास मैदान, बम्बई, १४ अप्रैल १९७०

८—नैसर्गिक व्यवस्था—पूंजीवाद

मेरे प्रिय आत्मन्,

एक मित्र ने पूछा है कि पूंजीवाद तो स्वार्थ की व्यवस्था है और फिर भी आप उसका समर्थन कर रहे हैं ?

इस सम्बन्ध में थोड़ी-सी बात समझ लेना जरूरी है। पहली बात तो यह समझ लेना जरूरी है कि आज तक मनुष्य को जो बहुत-सी गलत बातें सिखायी गयी हैं, उनमें एक गलत बात यह है कि अपने लिए जीना बुरा है। मनुष्य पैदा ही इसलिए होता है कि अपने लिए जिये। मनुष्य को समझाया जाता रहा है कि दूसरे के लिए जीयो, अपने लिए जीना बुरा है। बाप बेटे के लिए जिये और बेटा फिर अपने बेटे के लिए जिये; और इस तरह न बाप जी पाये, न बेटा जी पाये। समाज के लिए जियो, राष्ट्र के लिए जियो, मनुष्यता के लिए जियो, भगवान् के लिए जियो, मोक्ष के लिए जियो। बस, एक भूल भर मत करना—अपने लिए मत जीना। यह बात इतनी बार समझायी गयी है कि हमारे प्राणों में गहरी पैठ गयी है कि अपने लिए जीना जैसे पाप है, जब कि कोई भी आदमी अगर जिये तो सिर्फ अपने लिए ही जी सकता है और अगर दूसरे के लिए जीना भी निकलता है तो वह अपने लिए जीने की गहराई का परिणाम है, वह उसकी सुगन्ध है।

कोई आदमी इस जगत् में दूसरे के लिए नहीं जी सकता, असम्भव है यह। माँ भी बेटे के लिए नहीं जीती है और अगर बेटे के लिए मरती है तो वह मां का

आनन्द है। बेटा सिर्फ बहाना है। अगर नदी में एक आदमी डूब रहा हो और आप किनारे पर खड़े हों और दौड़ कर जब आप उस आदमी को बचाते हैं तो शायद आप लोगों से कहें कि इस आदमी को मरने से बचाने के लिए मैंने अपना जीवन दांव पर लगा दिया। आप बिल्कुल गलत कह रहे हैं। सच्चाई कुछ और है। सच्चाई यह है कि आप उस आदमी को डूबते हुए न देख सके। यह आपकी पीड़ा है, यह आपका कष्ट था। इस कष्ट को मिटाने के लिए आप कूदे हैं और उस आदमी को आपने बचाया है। उस आदमी से आपका कोई सम्बन्ध नहीं है और अगर आपको यह पीड़ा नहीं होती, तो आप न बचाते। दूसरे लोग भी थे नदी के किनारे, जिन्हें कोई पीड़ा न हुई थी। वे अपने रास्ते चले गये। जब कोई आदमी किसी को नदी में डूबने से बचाता है, तब भी अपनी ही पीड़ा के निवारण के लिए। वह उस आदमी को डूबते हुए देख कर अपने को नहीं देख सकता, यह उसके लिए असम्भव है। बहुत गहरे में अपनी पीड़ा का ही वह निवारण कर रहा है। अगर एक आदमी जाकर गरीबों की सेवा कर रहा है तो वह गरीबों की सेवा नहीं कर रहा है। अगर कह रहा है तो गलत कह रहा है। वह आदमी गरीब को गरीब देखना असम्भव पा रहा है। उसके भीतर एक पीड़ा जन्म ले रही है, जिसे दूर किये बिना वह नहीं रह सकता। वह अपनी पीड़ा दूर करने को गरीब की सेवा करने गया है। आज तक कोई मनुष्य दूसरे के लिए नहीं जिया है, सब मनुष्य अपने लिए जीते हैं। लेकिन अपने लिए जीना दो तरह का हो सकता है। एक अपने लिए ऐसा जीना जिसमें दूसरे को मारना भी आ जाये, मिटाना भी आ जाये। एक ऐसा जीना जिसमें दूसरे का जीवन भी विकसित होता हो। लेकिन परोपकार की बात बहुत खतरनाक है। जब भी हम किसी आदमी को सिखाते हैं कि दूसरे के लिए जियो, तभी वह आदमी रुग्ण बीमार और अस्वस्थ होना शुरू हो जाता है।

मैंने सुना है, एक बाप अपने बेटे को समझा रहा था। वह उसे अच्छी शिक्षायें दे रहा था और अच्छी शिक्षायें बड़ी खतरनाक होती हैं बहुत बार। वह अपने बेटे से कह रहा है कि भगवान् ने तुझे इसलिए पैदा किया है कि तू दूसरे की सेवा कर। पुराने जमाने का बेटा होता तो मान लेता और सेवा करने निकल जाता। उस नये जमाने के बेटे ने कहा—मैं समझ गया, भगवान् ने मुझे दूसरों की सेवा के लिए पैदा किया है। मैं यह पूछना चाहता हूं, भगवान् ने दूसरों को किसलिए पैदा किया ? इसलिए कि मेरी सेवा लें ? तो भगवान् ने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया या इसलिए कि दूसरे मेरी सेवा करें और मैं उनकी सेवा करूं ? तो भगवान् बहुत कन्फ्यूज्ड मालूम होता है। यह उल्टी झंझट क्यों करनी ? एक-एक आदमी अपनी कर ले, यह सरल व्यवस्था है। मैं आपकी करूं और आप मेरी करें—ऐसी उलझन में पड़ने का प्रयोजन ही क्या है ? और ध्यान रखें, जब भी कोई आदमी किसी की सेवा करता है तो नीचे पैर भी दबाता है, ऊपर गर्दन भी पकड़ लेता

है। सेवा करने वाला हमेशा गर्दन पकड़ लेता है, हालांकि गर्दन पकड़ने की यात्रा पैर दबाने से शुरू करनी पड़ती है। सेवक से सदा सावधान रहना; क्योंकि सेवक कहेगा—मैंने सेवा की है। मैंने कुर्बानी की है तुम्हारे लिए। जो माँ अपने बेटे से कहती है—मैंने कुर्बानी की है तुम्हारे लिए, वह मां अपने बेटे को क्रुपिल्ड करके रहेगी, पंगु कर देगी, जान ले लेगी। जो बाप अपने बेटे से कहेगा तेरे लिए मैंने सब गंवाया है, वह इस बेटे की गर्दन जिन्दगी भर दबायेगा। स्वाभाविक है दबाना। स्वाभाविक इसलिए है कि उसने कुर्बानी की है, शहीद हुआ है और शहीदी का बदला किससे ले? उसने कुर्बानी की है, वह बदला किससे ले? वह किससे कहे कि मैंने इतनी कुर्बानी की है। लेकिन किसी मां ने अगर कभी कहा हो कि मैंने कुर्बानी की है बेटे के लिए, तो मां ही नहीं है। उसे मां होने का पता नहीं चला। मां होने का आनन्द है वह। बेटे से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है और अगर बेटा न होता तो वह मां जिन्दगी भर तड़पती कि किसके लिए न्योछावर कर दूं, किसके लिए परेशान हो जाऊं, किसके लिए जागूं किसकी प्रतीक्षा करूं?

मनुष्य का व्यक्तित्व, मनुष्य का स्वभाव अपने लिए जीने का है; लेकिन यह सीधी, साफ बात स्वीकृत नहीं है। हम इसे गाली देते हैं। हम कहते हैं यह स्वार्थ है। स्वार्थ ही स्वाभाविक है। अस्वाभाविक नहीं है स्वार्थ। अस्वाभाविक वहां होता है जहां मेरा स्वार्थ आपके स्वार्थ की हत्या करना शुरू करे। इसलिए समाज की व्यवस्था ऐसी नहीं होनी चाहिए जिसमें हम कहें कि समाज के लिए कुर्बानी करो। समाज की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि हम प्रत्येक को अपने हित के लिए जीने का मौका दें और समाज तथा कानून एवं राज्य सिर्फ वहीं बाधा बनें, जहां कोई व्यक्ति किसी के स्वार्थ की हत्या करता हो, अन्यथा समाज को बीच में आने की कोई भी जरूरत नहीं। लेकिन तथाकथित समाजवादी, साम्यवादी चिन्तन कहता है कि व्यक्ति का बलिदान करेंगे समाज की बलिवेदी पर। समाज है लक्ष्य, व्यक्ति को जीना है समाज के लिए और जब भी ये बड़े लक्ष्य पैदा किये जाते हैं तो व्यक्ति की कुर्बानी दी जा सकती है। फिर व्यक्ति निहत्था हो जाता है। वह कहता है—क्या कर सकते हैं? इतना बड़ा समाज है, उसके हित में कुर्बानी देनी है। आज तक मनुष्य-जाति ने जितनी हत्यायें की हैं, वह इसी तरकीब से की हैं। कोई इस्लाम के लिए मर रहा है, कोई इस्लाम के लिए मरवा रहा है कि जाओ मरो इस्लाम के लिए तो बहिश्त निश्चित है। अपने लिए मत जियो, जियो इस्लाम के लिए। कोई कह रहा है हिन्दू होने के लिए जियो, हिन्दू के मन्दिर की मूर्ति के लिए जियो। मूर्ति बचे, तुम मिटो, कोई फिक्र नहीं। तुम मर जाओ, लेकिन मूर्ति को बचाओ, मन्दिर को बचाओ। कोई कहता है हिन्दुस्तान के लिए जियो, कोई कहता है पाकिस्तान के लिए। कोई कहता है चीन के लिए, कोई कहता है समाजवाद के लिए जियो। कोई भी नहीं कहता कि प्रत्येक अपने लिए जियो। जब

कि वही सहज और सरल है। लेकिन सरल और सहज सत्य छूट जाते हैं, हमारे ख्याल से उड़ जाते हैं उनका ख्याल ही भूल जाता है। हर आदमी अपने लिए ही जी सकता है और अगर हमने जोर-जबर्दस्ती की तो वह पाखण्डी हो जायेगा, इसलिए हमारे सेवक निश्चित अनिवार्यरूपेण पाखण्डी हो जाते हैं; क्योंकि वह जीते तो अपने लिए हैं, लेकिन दिखाते फिरते हैं कि वह किसी और के लिए जी रहे हैं। एक दोहरी जिन्दगी हो जाती है। भीतर कुछ होते हैं, बाहर कुछ होते हैं। होगा ही। नेता दिखाता है कि वह सारे राष्ट्र के लिए मरा जा रहा है। अपनी कुर्सी के लिए मरता है, लेकिन सारे राष्ट्र की बात करता है। सारा राष्ट्र यानी वह कुर्सी, जिस पर वह बैठा है। यदि वह कुर्सी नहीं, तो सारा राष्ट्र कहीं भी जाये, उससे फिर कोई मतलब नहीं। राजनीतिक मरा जा रहा है देशों के लिए, वादों के लिए, संस्कृतियों के लिए, सभ्यताओं के लिए। धर्मगुरु मरे जा रहे हैं धर्मों के लिए, सम्प्रदायों के लिए, लेकिन कोई भी इन सबके लिए नहीं मर रहा है। ये सब बातें हैं। मर रहा है अपने पद, अपनी प्रतिष्ठा, अपने अहंकार के लिए—लेकिन इस सीधे सत्य को हम कब स्वीकार करेंगे? स्वीकार न करने के कारण हिपोक्रेसी पैदा होती है, स्वीकार न करने के कारण पाखण्ड पैदा होता है और पाखण्ड इतने जाल बुनता है कि जिन्दगी बिल्कुल गलत रास्ते पर भटक जाती है।

मैं आपसे कहना चाहता हूं कि स्वार्थी होना स्वस्थ होना है, इसमें कुछ भी पाप नहीं है और मैं तो मानता हूं कि महावीर, बुद्ध या क्राइस्ट से ज्यादा स्वार्थी आदमी पृथ्वी पर दूसरे नहीं हुए हैं। क्यों? क्योंकि वे निपट अपने आनन्द, अपने मोक्ष, अपनी आत्मा, अपने परमात्मा की खोज के लिए जी रहे हैं और मजे की बात यह है कि उनसे बड़े परोपकारी कहीं भी नहीं हुए; क्योंकि जो आदमी अपने को पा लेता है वह अपने को बांटना शुरू कर देता है। जब अपने को पा लेता है तो एक नया आनन्द शुरू होता है अपने को बांटने का। और जब कोई आदमी भीतर आनन्द से भर जाता है तो करेगा क्या? कभी आपने ख्याल किया है? आनन्द जब भी भीतर भर जाता है तो जैसे बादल बरसना चाहते हैं वैसे आनन्द भी बंटना चाहता है; लेकिन वह भी स्वार्थ है। इसी तरह जब कोई आदमी भीतर दुख से भर जाता है तो दुख भी बरसना चाहता है। वह दूसरे को दुखी करेगा, इसलिए ये जो शहीद तरह के लोग चारों तरफ घूमते रहते हैं—कोई मां-बाप की शक्ल में घूम रहा है, कोई शिक्षक की शक्ल में घूम रहा है, कोई नेता, कोई गुरु तो कोई महात्मा की शक्ल में। असल में ये जो शहीद दूसरे के लिए जीने की कोशिश कर रहे हैं ये बड़े खतरनाक लोग हैं; क्योंकि पहले तो ये अपने फूल को न खिला पायेंगे और भीतर दुखी होते चले जायेंगे; और जितने दुखी होंगे उतनी ज्यादा सेवा करेंगे और जितनी ज्यादा सेवा करेंगे उतनी आपकी

गर्दन दबायेंगे कि मैंने आपकी सेवा की है, अब इसका बदला चाहिए । उन्नीस सौ सैंतालिस के पहले जिन-जिन लोगों ने इस देश की सेवा की थी, वे उन्नीस सौ सैंतालिस के बाद बदला ले रहे हैं । सेवा का बदला चल रहा है । वह जेल गये, वह सर्टिफिकेट लेकर खड़े हैं कि यह है मेरे पास सर्टिफिकेट । अब राष्ट्रपति का पद चाहिए । लेकिन हमने कब कहा कि जेल जाने से राष्ट्रपति का पद मिलता है ? आपकी बड़ी कृपा थी, आप जेल गये, आपको मजा आया होगा । आप आजादी के लिए लड़े, यह आपकी खुशी रही होगी । किन्तु परिणामस्वरूप अब तुम क्या सदा के लिए मुल्क की गर्दन बांधोगे ? किसने तुमसे कहा था ? लेकिन सेवक बदला मांगता है । बदले के सिक्के कोई भी हो सकते हैं । इसलिए सेवक कब एकदम से मालिक हो जाता है, पता नहीं चलता । सेवक, मालिक होने की तैयारी ही कर रहा है । दुनिया में सच्ची सेवा केवल वे ही लोग कर पाते हैं जो परम स्वार्थी हैं । परम स्वार्थी का मतलब—जो अपने हित, अपने कल्याण को पूरी तरह खोजते हैं । जिस दिन उन्हें अपना मंगल, अपना सुख, अपना आनन्द मिल जाता है अनिवार्यरूपेण दूसरे के जीवन में उनका सुख फैलना शुरू हो जाता है । करियेगा क्या ? जिस दिन सब भीतर होगा—बहेगा, बंटेगा । लेकिन तब वैसा व्यक्ति जानता है कि मैं जो कुछ कर रहा हूं, वह मेरी खुशी है ।

बुद्ध एक गांव में गये । उस गांव के लोगों ने कहा, आपने बड़ी कृपा की है कि इतने मील चल कर आये हमें समझाने । बुद्ध ने कहा—ऐसी बात मत करो । तुमने बड़ी कृपा की है कि मैं बोलने आया और तुम सुनने आ गये हो । मैं भर गया हूं और कुछ बरसना चाहता हूं । तुम न आओ तो मैं तुम्हें खोजता हुआ आऊंगा, जैसे बादल खोज रहा हो सूखी जमीन, कहां बरस जाये ! नदी खोज रही हो सागर कि कहां ढलक जाये ! फूल खोज रहा हो सूरज कि कहां बिखर जाये ! बुद्ध ने कहा कि मैं भर गया हूं किसी चीज से और उसे बांटने के लिए तुम्हें खोजता आ रहा हूं, तुम मुझे धन्यवाद मत दो । अनुग्रहीत मैं हूं कि तुम आ गये और तुम्हें मैं बांट सकूंगा ।

जो जानते हैं वे भली-भांति जानते हैं कि सेवा भी बहुत गहरा स्वार्थ है । वह सेवा करने वाले का आनन्द है; लेकिन यह आनन्द तभी होगा, जब हम स्वार्थ को स्वीकार कर लें । पूंजीवाद की व्यवस्था अत्यन्त नैसर्गिक व्यवस्था है । वहां हम किसी को किसी पर बलिदान नहीं कर रहे हैं । प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए जी रहा है, जीने की खोज कर रहा है । इस खोज से दूसरे के लिए भी जियेगा; क्योंकि कोई भी आदमी अकेला नहीं जी सकता है । जीने का मतलब ही संघर्षों में जीना है । और जब सारे लोग अपना सुख खोजते हैं, तब अनिवार्यत: वे शेष के लिए भी सुख का स्रोत बन जाते हैं । अगर हजार आदमी यहां बैठकर अपना सुख खोजें तो हजारगुना सुख कल पैदा हो जायेगा । वह सुख बंटेगा, वह जायेगा कहां ?

लेकिन प्रत्येक आदमी दूसरे के लिए कुर्बानी करे, अपना सुख न खोजे और हजार आदमी में हर आदमी नो सौ नियानबे के लिए कुर्बानी करता रहे, वहां दुख ही दुख इकट्ठा हो जायेगा । वहां सुख इकट्ठा नहीं हो सकता । मेरे मित्र, जिन्होंने पूछा है—उन्होंने यही कहा है कि स्वार्थ के कारण ही तो दुनिया बर्बाद है । मैं आपसे कहना चाहता हूं कि स्वार्थ के कारण नहीं, परोपकार की अस्वाभाविक, अवैज्ञानिक शिक्षाओं के कारण दुनिया परेशान है । अगर आप सहज अपना ही सुख खोज सकें तो काफी है । इतना ही कर दें दुनिया में आप, तो बहुत काफी है । जन्म और मृत्यु के बीच में अपना सुख खोज लें तो यह दुनिया आपको धन्यवाद देगी; क्योंकि जो आदमी अपना सुख खोज लेता है, वह दूसरे को दुख देना बन्द कर देता है । क्यों ? क्योंकि जो जानता है कि उसे सुख चाहिए, वह यह भी जान लेता है कि दूसरे को दुख देकर सुख लाना असम्भव है । वह दूसरे को दुख देना बन्द कर देता है; और जो आदमी यह जान लेता है कि दूसरे को दुख देने से मेरा सुख कम होता है, वह यह भी बहुत जल्दी जान लेता है कि दूसरे को सुख देने से मेरा सुख बढ़ता है । यह गणित है सीधा । यह जिस दिन दिखायी पड़ जाता है, उस दिन जिन्दगी में क्रांति हो जाती है । लेकिन दुनिया के सारे धर्म त्याग सिखा रहे हैं । वे कह रहे हैं, त्याग करो, वे कहते हैं स्वयं को छोड़ो, वे कहते हैं, स्वार्थ छोड़ो । वैसे स्वार्थ शब्द का अर्थ बड़ा साफ है । स्वार्थ का अर्थ है, स्व के लिए जो अर्थपूर्ण हो । स्व का मतलब है आत्मा, जो अपने हित में, लेकिन जो मेरे हित में है क्या जरूरी है कि वह आपके अहित में हो ? जितनी गहराई में उतरेंगे, उतना ही पायेंगे कि जो मेरे हित में हो सकता है वह वस्तुतः आपके अहित में नहीं हो सकता है, क्योंकि बहुत गहरे में हम सबके प्राण कहीं सम्बन्धित और एक हैं । यह असम्भव है कि जो मेरा हित हो बहुत गहरे में वह आपका अहित हो जाये । उल्टी बात सच है कि जो आपका अहित हो, वह अनजाने में मेरा भी अहित हो जाये ।

मैं एक पहाड़ पर गया था । उस पहाड़ पर एक इकोप्वाइंट था । मेरे साथ दस-पांच मित्र गये थे । उनमें एक मित्र थे । उस इकोप्वाइंट पर जैसी आवाज की जाये, पहाड़ वही आवाज दोहराता था । वह मित्र कई जानवरों की आवाज जानते थे । उन्होंने कुत्ते की आवाज में भोंकना शुरू कर दिया । उस पहाड़ से कई हजार कुत्ते भोंकने लगे । सौ गुनी आवाजें होकर लौटने लगीं । कुत्ते ही कुत्ते पहाड़ पर फैल गये । मैंने उन मित्र से कहा—देख रहे हैं ? आपने एक कुत्ते की आवाज की, चारों तरफ से हजार कुत्ते भोंकने लगे । अपनी ही आवाज के कारण आप हजार कुत्ते की आवाज में घिर गये । कितना अच्छा हो कि कोयल की आवाज में बोलो ! वह जानते थे । उन्होंने कोयल की आवाज निकाली । पहाड़ कोयल की मधुर आवाज से गूंजने लगा । फिर वह उठ आये और सहज चुप हो गये । कोई घड़ी भर बाद उन्होंने मुझसे कहा कि मुझे ऐसा लगता है कि आपने कुछ इशारा किया ।

मैंने पूछा—क्या लगा ? उन्होंने कहा—मुझे ऐसा लगा कि यह प्रतिध्वनि वाला पहाड़ पूरी जिन्दगी की तस्वीर है। हम वहां जो हो जाते हैं वही लौट आता है हजार-हजार गुना होकर। कुत्ते की आवाज बोलेंगे तो कुत्तों से घिर जायेंगे। दुख देंगे तो दुख बरस जायेगा, कांटे फेंकेंगे तो कांटे लौट आयेंगे, आनन्द बांटेंगे तो आनन्द हजारगुना होकर बहने लगेगा, प्रेम देंगे तो प्रेम लौट आयेगा, क्रोध लौट आयेगा। जिन्दगी एक प्रति-ध्वनि है। लेकिन इसलिए मैं कहता हूं कि मैं स्वार्थ के विरोध में नहीं हूं। यदि आप अपना ही स्वार्थ खोज लें, तो इस जगत् के लिए इतने परोपकारी सिद्ध होंगे कि और किसी भांति नहीं सिद्ध हो सकते हैं। इसलिए मैं स्वार्थ की व्यवस्था का विरोध नहीं करता हूं, पूरा समर्थन करता हूं। और स्वार्थ की व्यवस्था ही विकसित होते-होते समाजवादी व्यवस्था बन सकती है; क्योंकि सारे लोग अपना स्वार्थ खोजें, नहीं तो कल उन्हें दिखायी पड़ जायेगा कि बहुत-सी जगह हम एक-दूसरे के स्वार्थ में व्यर्थ बाधक बन रहे हैं। वह बाधाएं भी हटा लें। अपने स्वार्थ को, सुख को, हजारगुना कर लें, तो आज नहीं तो कल, मनुष्य-जाति समाजवाद के करीब पहुंच सकती है—स्वार्थों के संघर्ष से नहीं, बल्कि स्वार्थ के सहयोग की खोज से।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि पूंजीवाद में भ्रष्टाचार, ब्लैक मार्केटिंग है, रिश्वत है। इन सबके लिए आप क्या कहते हैं ?

इस सबका कारण पूंजीवाद नहीं है। इस सबका कारण पूंजी का कम होना है। जहां पूंजी कम होगी वहां भ्रष्टाचार नहीं रोका जा सकता। लोग होंगे बहुत, पूंजी होगी कम, तो लोग सब तरह के रास्ते खोजेंगे पूंजी की मालकियत करने के। अगर दुनिया से भ्रष्टाचार मिटाना हो तो भ्रष्टाचार मिटाने की फिक्र ही न करें। भ्रष्टाचार सिर्फ बाइ-प्रोडेक्ट है, उससे कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन सारे नेता भ्रष्टाचार मिटाने में लगे हैं, सारे साधु भ्रष्टाचार मिटाने में लगे हैं। वे कहते हैं, हम भ्रष्टाचार मिटायेंगे, जब कि असली सवाल यह है कि सम्पत्ति कम है, भ्रष्टाचार होगा। भ्रष्टाचार सम्पत्ति के कम होने का स्वाभाविक परिणाम है। अगर हम हजार लोग यहां हैं और खाना दस आदमियों के लिए है, तो क्या आप समझते हैं कि खाना चोरी से प्राप्त करने की कोशिश नहीं की जायेगी ?

एक मनोवैज्ञानिक समाजवादी हिटलर के किसी कारागृह में बन्द था। उसने लिखा है कि वहां जाकर मुझे आदमी की असली तस्वीरों का पता चलना शुरू हुआ, क्योंकि चौबीस घण्टे में एक ही बार रोटी मिलती थी और वह भी अत्यन्त अल्प होती थी कि पेट न भर पाये। मैंने ऐसे लोगों को जो कवि थे, लेखक थे, डाक्टर थे, इंजीनियर थे, प्रतिष्ठित थे, कोई किसी गांव का मेयर था, उसको भी रात में दूसरों के बैग में से रोटी का एक टुकड़ा चुराते हुए देखा। जिनकी नैतिकता की सदा चर्चा थी, जिनके अभिनन्दन होते थे, हजारों की थैलियां जिनको भेंट की

जाती थीं, उस आदमी को भी एक सिगरेट के लिए घुटने टेक कर गिड़गिड़ाते देखा और किसी को कुछ नहीं लग रहा है कि क्या गलत हो रहा है। उसने खुद लिखा है कि मुझे जो पूरी रोटी मिलती थी वह पूरी तो नहीं थी, एक वक्त का भी पेट नहीं भरता था और एक दफे उसे खा लो तो दिन भर तकलीफ होती थी; क्योंकि पेट भरा भी नहीं है, भूख बुझी भी नहीं है। और रोटी भी खत्म हो गयी। उसने लिखा है कि एक टुकड़ा फिर खा लिया; थोड़ी देर भूख को सहा। फिर इस आशा में मन में कल्पना देखते हुए कि अब थोड़ी देर में फिर एक टुकड़ा खा लेंगे, और थोड़ा रुको, और थोड़ा रुको। ऐसे चौबीस घण्टे में कई बार छोटा-छोटा टुकड़ा। उसने यह भी लिखा है कि यहां आकर मुझे पता चला है कि मैं चौबीस घण्टे रोटी के सम्बन्ध में ही सोचने लगा हूं। ईश्वर, आत्मा, चेतन, अचेतन, साइकोलॉजी, एनालिसिस सब खो गये हैं। फिलासफी—सब गये। सदा से मैं सोचता था यही महत्त्वपूर्ण है, वहां जाकर अचानक पता चला कि रोटी ही सब-कुछ है और उसने कहा—मैं भी नहीं कह सकता हूं कि अगर मुझे मौका मिल जाये तो मैं किसी की रोटी न चुरा लूं।

यह जो भ्रष्टाचार है, यह जो रिश्वतखोरी है, इस बात का सबूत है कि देश में लोग ज्यादा हैं और सम्पत्ति कम है। इस सीधे से तथ्य को हम न समझेंगे। एक आदमी को जब बुखार चढ़ता है, तो कुछ लोग बुखार की बीमारी समझ लेते हैं। वे कहते हैं—इस आदमी का शरीर गरम हो गया है, एक सौ दो डिग्री बुखार है। ठण्डा पानी डाल कर इसका बुखार इसी वक्त ठीक करो। वह उसको मार डालेंगे। बुखार बीमारी नहीं है, सिर्फ खबर है कि भीतर अव्यवस्था हो गयी है। यह जो भ्रष्टाचार हमें दिखायी पड़ता है—यह बीमारी नहीं है, यह सिर्फ खबर है कि पूंजी कम और लोग ज्यादा हैं; लेकिन भ्रष्टाचार खत्म करना है, पूंजी बढ़ानी नहीं है, लोग कम करने नहीं हैं। लोगों को भगवान् पैदा कर रहा है तो भगवान् से बड़ा भ्रष्टाचारी इस वक्त फिर कोई भी नहीं है; क्योंकि लोग जितना पैदा होते जायेंगे, भ्रष्टाचार बढ़ेगा। संख्या बढ़ती जायेगी, सम्पत्ति पैदा नहीं करनी है और सम्पत्ति हम पैदा करेंगे और जनसंख्या भगवान् पैदा करेगा तो बड़ी मुश्किल हो जायेगी। हम पैदा करेंगे और जनसंख्या भगवान् पैदा करेगा तो बड़ी मुश्किल हो जायेगी। तालमेल बैठाना असम्भव हो जायेगा। इधर हमको भगवान् के इस निरन्तर के वरदान पर रोक लगानी पड़ेगी। उनसे हाथ जोड़ कर कहना पड़ेगा कि अब बस, अब लोग नहीं चाहिए और अगर लोग भेजते हो तो सबके हाथ दस एकड़ जमीन और एक-एक फैक्टरी एक-एक आदमी के साथ भेजो, अन्यथा यह काम नहीं चलेगा।

लोग अनैतिक नहीं हैं, जैसा कि सारे धर्मगुरु और नेता समझते हैं। लोग अनैतिक नहीं हैं, स्थिति अनैतिक है। कोई अनैतिक नहीं है। न कोई नैतिक होता है, न कोई अनैतिक। इस अनैतिक स्थिति में भी कोई अगर बहुत श्रम करे तो

नैतिक हो सकता है; लेकिन तब उसकी कुल जिन्दगी नैतिक होने में ही व्यय हो जायेगी। वह कुछ और नहीं कर पायेगा। बस किसी तरह अपने को चोरी से रोक ले, आंख बन्द करके हाथ-पैर रोक कर खड़ा हो जाये। श्वांस रोक ले, चोरी से रोक ले, बस यही उनकी उपलब्धि होगी। इसमें बहुत श्रम करके कोई नैतिक हो सकता है, लेकिन यह स्थिति अनैतिक है। सिचुएशन इज इममॉरल, और इसलिए इस स्थिति को बदलने का सवाल है, न कि भ्रष्टाचार रोको, भ्रष्टाचार रोको आन्दोलन चलाओ, नारे लगाओ, भाषण दो। कोई भी नहीं रोक जायेगा। रुकेगा अपने आप अगर सम्पत्ति बढ़ती है, विकसित होती है। अगर हम सम्पत्ति इतनी पैदा कर लेते हैं कि सम्पत्ति काफी हो, तो कोई चोरी करने नहीं जायेगा।

एक मित्र ने पूछा है कि बुद्ध, महावीर, कृष्ण, राम—वे सब तो त्याग की बात कर रहे हैं। वे तो कहते हैं त्याग करो और आप कहते हैं सम्पत्ति बढ़ाओ।

मैं आपसे कहता हूं सम्पत्ति बढ़ाओ। बुद्ध, राम, कृष्ण क्या कहते हैं पक्का तय करना मुश्किल है; लेकिन अगर वे यह कहते हैं कि सम्पत्ति मत बढ़ाओ तो गलत कहते हैं। मजा तो यह है कि जिनके पास सम्पत्ति ही न हो वे त्याग क्या करेंगे? बुद्ध कह सकते हैं कि त्याग करो। बुद्ध सम्पत्ति में पैदा हुए हैं। बुद्ध, यशोधरा को छोड़ कर जा सकते हैं जंगल में बारह वर्ष तपश्चर्या के लिए। यशोधरा के लिए पीछे महल है और सब सुरक्षा है। अगर आज का कोई बुद्ध यशोधरा को छोड़ कर जायेगा बारह वर्ष, तो बारह वर्ष के बाद यशोधरा चकले में मिलेगी, घर पर नहीं मिलेगी। और बुद्ध अपने बेटे राहुल को छोड़ कर जा सकते हैं, लौट कर वह घर पर ही मिलता है; किन्तु यदि आज छोड़ कर जायेंगे तो किसी यतीमखाने में या बम्बई के किसी रास्ते पर भीख मांगता मिलेगा। पता लगाना मुश्किल होगा कि बेटा कहां है। बुद्ध के पास बहुत था। जिसके पास भी बहुत है वे छोड़ने की बात कर सकते हैं लेकिन दुर्भाग्य यह है कि जिनके पास बहुत हैं उनकी बात उन्होंने मान ली है जिनके पास कुछ भी नहीं है। इस देश के सारे मनीषी धनपति घरों से आये और इस देश की सारी जनता दीन और दरिद्र है। लेकिन उसने उन्हें मान क्यों लिया? उसका भी तर्क है। उससे उसे बड़ा सुख मिला। उसने कहा—देखो धन कमाकर क्या करना है। बुद्ध के पास इतना धन था, वे छोड कर सड़कों पर भीख मांग रहे हैं; तो हम तो पहले ही से बुद्ध हैं, हम तो पहले ही से भीग मांग रहे हैं। हिन्दुस्तान के दरिद्र मन को तृप्ति मिली। बुद्ध और महावीर ने जब सड़कों पर भीख मांगी, तो हम बड़े खुश हुए। हमने जो बुद्ध और महावीर के चरणों में श्रद्धा का सिर रखा उसका कारण बुद्ध और महावीर न थे, उसका कारण हमारी दीनता और दरिद्रता को मिली तृप्ति थी। क्या रखा है इन महलों में, कुछ भी सार नहीं है, नहीं तो महल वाले महलों को छोड़ कर कैसे आते? तो हम तो धन्य हैं कि पहले से ही महल में नहीं हैं। लेकिन ध्यान रहे, महल को छोड़ कर सड़क पर खड़ा होना एक अलग अनुभव है और सड़क पर ही खड़ा रहना हो और महल पर कभी न गये हों तो यह बिल्कुल दूसरी स्थिति है। इसलिए बुद्ध भिखारी नहीं हैं, बुद्ध के भिखारीपन में भी एक सम्राट् की हैसियत है और बुद्ध की चाल में एवं उनकी आंखों में भिक्षु का ख्याल कहीं भी नहीं है। मालकियत है, वे छोड़ कर आये हैं, वे ठुकरा कर आये हैं। कुछ चीजें बेकार हो गयी हैं, और एक हम हैं जिन्होंने उन चीजों को जाना ही नहीं। बेकार नहीं हुई, भीतर प्राण कह रहे हैं कि महल मिल जाये, लेकिन न महल खोजने की ताकत है, न महल खोजने का श्रम करना है, न महल खोजने की बुद्धिमत्ता जुटानी है। फिर हम कहते हैं क्या करेंगे महल खोज कर? जिनके पास महल था वे महल छोड़ कर सड़क पर भीख मांग रहे हैं। बेकार है महल, इस तरह हम अपने को समझा रहे हैं।

भारत अपने को समझाता रहा और समझा-समझा कर मरता चला गया है। यह बड़ी कठिन बात है भारत के मन के सामने। किसी-न-किसी रूप में हमें यह समझ लेना चाहिए कि बुद्ध और महावीर और इस तरह के सारे लोग सम्पन्नता को छोड़कर आये हुए लोग थे। इन्हें विपन्नता का पता नहीं हो सकता है। बुद्ध के पास बुद्ध के बाप ने सारी सुन्दर स्त्रियां इकट्ठी कर दी थीं—जो भी उस समय राज्य में उपलब्ध हो सकती थीं वह सब खोज कर इकट्ठी कर दीं। अब बुद्ध जब स्त्रियों की तरफ नहीं देखते हैं तो बात और है। बुद्ध देख चुके स्त्रियों के आर-पार कि अब स्त्री में कुछ नहीं है। अब ऐसे आदमी, जिनको स्त्री कभी छूने को नहीं मिली, देखने को नहीं मिली, वह भी अपने घर में बैठ कर बुद्ध बनने की कोशिश कर रहे हैं। ऐसे लोग फंस जायेंगे इस कोशिश में। उनके चित्त को स्त्रियां ही स्त्रियां घेर लें तो आश्चर्य तो नहीं है न? स्त्री को आर-पार देख जाने के बाद एक छुटकारा है। लेकिन स्त्री से दूर खड़े होकर जो ब्रह्मचर्य साध रहे हैं, ये यदि स्त्री से बुरी तरह बंध जायेंगे तो इसमें अस्वाभाविक कुछ भी नहीं है न? अभाव में सन्तोष को पकड़ लेना एक बात है, लेकिन सम्पन्नता को विवेक से छोड़ देना बिल्कुल दूसरी बात है। लेकिन नेतृत्व मिल गया उनको और पूरा देश राजी हो गया, इसलिए देश सम्पन्न नहीं हुआ, समृद्ध नहीं हुआ और हमने ऐसी फिलासफी पकड़ ली 'ए फिलासफी ऑफ पावर्टी, जिसको पकड़ कर बैठ गये और अब उसमें बड़ा रस ले रहे हैं। बहुत हो चुका यह रस। खुजली खुजलाने का यह रस काफी हो चुका। इससे अब छुटकारा चाहिए। देश की प्रतिभा को स्पष्ट रूप से समझ लेना पड़ेगा कि धन चाहिए और धन के चाहने में सबसे बड़ी जरूरत यह है कि धन मिल जाये तो ही आदमी धन के आर-पार जा सकता है। अन्यथा बहुत कठिन है। मैं यह नहीं कहता कि कोई एकाध आदमी नहीं जा सकता। किसी ने लिख कर भेज दिया कि फलां संत गरीब थे और वह चले गये। एकाध आदमी जा सकता है लेकिन नियम नहीं बनाया जा सकता एक आदमी के आधार पर। इस गांव में मलेरिया फैल जाये

और एक आदमी बिना मलेरिया के इंजेक्शन के बच जाये तो इसको नियम नहीं बनाया जा सकता कि देखो, एक आदमी को इंजेक्शन नहीं लगा, उसको मलेरिया नहीं हुआ, इसलिए किसी को इंजेक्शन मत लगाओ। वह एक आदमी बच गया है, कुछ भूल-चूक हो गयी मलेरिया के कीटाणुओं की; लेकिन यह नियम नहीं हो सकता और अगर इसको नियम बनाया तो पूरा गांव मरेगा और अगर पूरा गांव मरेगा तो इस आदमी के भी मरने के सम्भावना बढ़ जायेगी। हो सकता है दूसरों को जो इंजेक्शन लगे हैं, वे ही इसको बचाने में कारगर हुए हों। इस तक बीमारी पहुंचने में रुकावट पड़ी हो। एक आदमी को इस अपवाद का नियम बनाने की भूल नहीं करनी चाहिए। लेकिन हमारा देश कर रहा है। हमारा देश सामान्य मनुष्य से नियम नहीं बनाता। हमारा देश नियम बनाता है अपवादों को, एक्सेप्शन को। वह जो असामान्य है और अकेला है, उसको हम नियम बना लेते हैं। उसके अनुसार हम साधारण-साधारण-जनों को व्यवस्थित, बदलने, नियमित करने की कोशिश करते हैं। असाधारण व्यक्तियों को साधारण आदमी के लिए आदर्श बनाना, साधारण आदमी की हत्या करने जैसा है; लेकिन यह हो रहा है आज तक। अब महावीर को आदर्श बना लो कि वह नग्न खड़े हैं और सारे लोगों को नग्न खड़ा कर दो तो कठिनाई हो जायेगी। महावीर वस्त्रों में रह चुके, महावीर वस्त्रों का सुख ले चुके, महावीर वस्त्रों में जी चुके। महावीर को नग्न होने में जो आनन्द है, उस आनन्द में पहने गये वस्त्रों का हाथ है। इसलिए एक आदमी जो नंगा ही पैदा हुआ है, नंगा ही बड़ा हुआ है, वस्त्र देखे नहीं, दूर से देखी है चमक वस्त्रों की, उससे कहो नग्न रहने में आनन्द है—तो वह कहेगा नग्न होने में क्या आनन्दित होना है ? वह कहेगा, महावीर कुछ विशेष होंगे, भगवान् होंगे, तीर्थंकर होंगे, इसलिए नग्न रहे। मुझे तो कपड़े में बहुत आनन्द आता है। लेकिन ध्यान रहे, महावीर कपड़ों के कारण नग्नता में आनन्द ले पा रहे हैं, यह आदमी नग्नता के कारण कपड़ों में आनन्द ले पायेगा। दोनों की चित्त-दशा में बहुत फर्क नहीं है। दोनों का तर्क एक ही है कि जो अनजाना है, अपरिचित है, वह सुखद है। जो परिचित है, वह व्यर्थ है। इसकी नग्नता परिचित होकर व्यर्थ हो गयी है।

इन शिक्षाओं से मुक्त होना पड़ेगा। ये शिक्षायें नान-डाइनामिक सोसाइटी, स्टेटिक सोसाइटी पैदा करती हैं। इन शिक्षाओं ने एक मरा एवं रुका हुआ जड़-समाज पैदा किया है, जिसमें कोई बहाव नहीं है। एक बढ़ता हुआ, गतिमान समाज इनसे पैदा नहीं हो सका। अगर गतिमान समाज पैदा करना हो तो संतोष पर नहीं, असंतोष पर आधार रखना पड़ेगा। यह जो हम निरन्तर पूछते हैं कि हम गरीब क्यों हैं, हम गरीबी से सन्तुष्ट थे तो हम गरीब रहेंगे; क्योंकि अमीरी पैदा करनी पड़ेगी और पैदा वह करेगा जो गरीबी से असन्तुष्ट हो। तभी अमीरी पैदा हो पायेगी, अन्यथा पैदा नहीं हो पायेगी। सम्पत्ति पैदा करनी है। सम्पत्ति कहीं रखी नहीं है

कि हमें मिल जाये, अभी हम जायें और मिल जाये। सम्पत्ति ह्यूमन क्रिएशन है और जो चीज मानवी सृजन है उसे पैदा करने के लिए उसकी मूलभूत जो जरूरत है, वह है एक असन्तुष्ट खोजने वाला चित्त। हमारे पास चाहिए एक डिस्कंटेंट माइंड, एक ऐसा मन जो असन्तुष्ट है और सदा खोज रहा है। हमारी सारी शिक्षायें सन्तोष दिलाने वाली हैं। सन्तोष दिलाने वाली शिक्षायें देश को जड़ बनाती हैं, गतिमान नहीं बनाती हैं।

मेरे एक मित्र ने पूछा कि गांधीजी की कल मैंने बात की। उन्होंने पूछा है कि गांधीजी तो चाहते थे कि देश सुखी हो, देश समृद्ध हो, देश के लोग मंगल को, कल्याण को उपलब्ध हों।

जरूर चाहते थे। लेकिन नर्क का रास्ता अच्छी चाहों से पटा हुआ है। अकेली अच्छी चाह का सवाल नहीं है। मैं बहुत चाहता हूं कि आपकी कैंसर ठीक हो और पानी पिला रहा हूं, तो कैंसर ठीक होने वाली नहीं है। मैं बहुत चाहता हूं कि आपकी टी० बी० ठीक हो, लेकिन ताबीज बांधता हूं तो चाह से टी० बी० ठीक न होगी। टी० बी० ठीक करने के विज्ञान को समझना पड़ेगा। गांधीजी कहते थे कि देश सम्पन्न हो, सुखी हो, लोग अच्छे हों, लेकिन गांधीजी जो भी तरकीबें बताते थे वह विपन्नता की, दरिद्रता की होती थीं। गांधीजी अगर सफल हो जायें तो हिन्दुस्तान का भाग्य सदा के लिए दरिद्र रह जायेगा। सच तो यह है कि अगर गांधीजी की बात मान ली जाये तो अभी पचास करोड़ की संख्या में से कम-से-कम हिन्दुस्तान में पच्चीस करोड़ आदमी आज ही मरने की हालत में छोड़ देने पड़ेंगे। अगर सारी दुनिया गांधीजी की बात मान ले, तो इसी समय साढ़े तीन अरब आबादी में से कम-से-कम दो अरब आदमी को गांधी की शिक्षा मानने से इसी वक्त मरना पड़ेगा। न तो चंगेज, न हिटलर, न स्टैलिन, न माओ और न सब दुनिया के हत्यारे मिलकर जितना मनुष्य को मार सके, उतना गांधीजी का विचार अकेला मार सकता है। क्यों ? क्योंकि गांधीजी जो बातें कर रहे हैं, वह औद्योगिक युग के पहले की, सामन्ती युग की बातें हैं। उस सामन्ती युग के जिन उपकरणों की वे बात कर रहे हैं, चर्खा और तकली की, वह सारे-के-सारे उपकरण इतनी बड़ी मनुष्यता के लिए उपयोगी नहीं हैं। वे इसे जिन्दा नहीं रख सकते। ये आदमी मर जायेंगे अभी। तो गांधीजी जो देखने में इतनी बड़ी अहिंसा की बात करते हैं, भूल कर उनकी बात मत मान लेना, नहीं तो बाद में इतिहास लिखेगा कि इससे बड़ा हिंसक आदमी नहीं हुआ; क्योंकि इतने लोग इसने मार डाले। इतने लोगों को जीने के लिए तकनीकी उत्पादन की वैज्ञानिक व्यवस्था चाहिए। लेकिन गांधीजी जो व्यवस्था सुझा रहे हैं, वह रामराज्य के जमाने की है, जब दुनिया की आबादी इतनी छोटी थी कि उस व्यवस्था से काम चल सकता था। उस दिन चर्खा-छाप धीमी और शिथिल व्यवस्था से काम चल सकता था। आज

तीव्र व्यवस्था चाहिए। इतने मुंह हैं, इतने सिर हैं, इतने लोग हैं। आदिम व्यवस्था से गांधीजी इन्हें नहीं बचा सकते हैं। गांधीजी की बात मानी तो दरिद्रता पक्की हो जायेगी और उन मित्र ने पूछा है कि आप गांधीजी की आलोचना करते हैं, जब कि उनका व्यक्तित्व और उनके विचार और आचार में सदा एकरूपता थी।

इससे बड़ी झूठी कोई और बात नहीं हो सकती है। गांधीजी के आचार और विचार में इतनी बड़ी खाई थी कि जितनी दुनिया में शायद ही किसी आदमी के विचार और आचार में रही हो। आप कहेंगे, कैसी हैरानी की बात करते हैं?

गांधीजी जिन्दगी भर रेलगाड़ी का विरोध करते रहे और जिन्दगी का ज्यादा समय रेलगाड़ी में ही बिताया। जिन्दगी-भर विरोध किया एलोपैथी का और कहते थे, रामनाम ही सबसे बड़ी दवा है, लेकिन जब भी मरने के करीब पहुंचे, एलोपैथी की सहायता ली और बचे। न तो रामनाम से बचे, न नेचरोपैथी से बचे। मरने के पहले जरूर सब उपाय कर लेते थे। नेचरोपैथी, रामनाम सब जब हो गया और जब मरने के करीब पहुंचे तो एलोपैथी ने बचाया। पूरी जिन्दगी एलोपैथी का विरोध करते रहे और पूरी जिन्दगी एलोपैथी उनको बचाती रही। पूरी जिन्दगी रेलगाड़ी का, तार का, पोस्ट ऑफिस का विरोध किया और जितनी चिट्ठियां उन्होंने लिखीं, पोस्ट ऑफिस का उपयोग किया। मैं नहीं समझता मनुष्य-जाति के इतिहास में किसी और आदमी ने ऐसा किया हो। गांधीजी दुश्मन हैं ट्रेन के। ट्रेन में नहीं चलना है, ट्रेन का होना पाप है, ट्रेन इस दुनिया से हट जानी चाहिए। सारे नये उपकरण के विरोधी और सब नये उपकरणों का उन्होंने पूरी तरह उपयोग किया और लोग कहते हैं उनके आचार-विचार में बड़ी एकता है। कैसी एकता है आचार-विचार में? वे जो कह रहे हैं कर कभी नहीं पा रहे हैं और जो कर रहे हैं वह बहुत भिन्न है—अगर उनकी पूरी जिन्दगी की व्यवस्था को ठीक से देखें। लेकिन जिसको हम महात्मा मान लेते हैं उसकी तरफ हम आंख बन्द कर लेना जरूरी समझते हैं। मेरी तो उनसे एक ही दफा मुलाकात हुई और दोबारा नहीं हुई। मुझे आकांक्षा भी नहीं हुई। बहुत छोटा था, तब उनसे मिलने गया था। मेरे गांव से वे निकल रहे थे। सारा गांव जा रहा था तो मैं भी गया और बहुत छोटा था। मेरी मां ने मेरी जेब में तीन रुपये रख दिये थे कि वहां स्टेशन पर भीड़-भाड़ होगी, खाना-पीना, आना-जाना, तीन-चार मील का रास्ता भी था। स्टेशन के प्लेटफार्म पर बहुत भीड़ थी तो यह सोच कर कि इतनी भीड़ में मुझ छोटे-से बच्चे को तो उन्हें देखना भी मुश्किल होगा, इसलिए मैं प्लेटफार्म की दूसरी तरफ चला गया जहां प्लेटफार्म नहीं था। गांधीजी की गाड़ी आयी, मैं उनकी खिड़की में चढ़ कर भीतर भी चला गया। उनकी नजर मुझ पर नहीं गयी। मेरे मलमल के कुर्ते में वह जो तीन रुपये का वजन लटका हुआ था और रुपये दिखायी पड़ रहे थे, उन पर गयी। उन्होंने जल्दी से कहा, यह क्या है? तीन रुपये निकाल

लिए और कहा कि हरिजन-फण्ड में दे दो बेटे और हरिजन-फण्ड की पेटी में डाल दिये। मैंने कहा, ठीक है। मैं इससे खुश भी हुआ। सोचा कि अच्छा हुआ कि मैंने रुपये पहले ही खर्च नहीं कर दिये। लेकिन जैसी कि मेरी बुद्धि है, तो चलते समय मैंने वह पेटी उठा ली और कहा कि यह पेटी मैं ले जाता हूं। मेरे स्कूल के गरीब बच्चों के काम ये रुपये आ जायेंगे। ले जाने की कोई बात न थी। ले भी मैं नहीं जाता, लेकिन जानना चाहता था कि गांधीजी क्या कहते हैं। उन्होंने कहा—नहीं-नहीं। पेटी मत उठाओ। यह हरिजन-फण्ड की पेटी है। मैंने उनकी आंखों में झांका। जिस व्यक्ति को मैं खोजने आया था, वह व्यक्ति वहां नहीं था!

मैं नीचे ट्रेन से उतर कर खड़ा हो गया। ट्रेन चली गयी और उस भीड़ में वह मुझको देखते रहे, क्योंकि उनकी समझ में भी शायद ख्याल आया हो कि क्या हो गया है? घर लौटने पर मेरी मां ने मुझसे पूछा कि महात्माजी से मिले? मैंने कहा, महात्माजी आये ही नहीं। उसने कहा, क्या मतलब? सब लोग तो कह रहे थे, निकले ट्रेन से। मैंने कहा, निकले श्री मोहनदास कर्मचन्द गांधी, महात्माजी नहीं। मेरी मां नहीं समझी। उसने कहा—क्या मतलब है तुम्हारा? मैंने कहा—श्री मोहनदास कर्मचन्द गांधी कुशल दुकानदार हैं, सफल बनिया हैं। और उसके बाद मैंने गांधीजी को बहुत समझने की कोशिश की और जितना मैंने समझने की कोशिश की, मेरी जो पहली उनके सम्बन्ध में धारणा बनी वह धारणा मिटी नहीं, और मजबूत होती गयी। मैं यह नहीं कहता कि मेरी धारणा को कोई माने लेकिन इतना मैं जरूर कहता हूं कि किसी भी आदमी के सम्बन्ध में पथरीली धारणायें नहीं बनानी चाहिएं, अन्यथा देश के चिन्तन को धक्का पहुंचता है, और अंततः यह धक्का घातक हो जाता है।

अब सबको यही ख्याल है कि वह जो कहते थे, उससे देश का कल्याण होगा ही; क्योंकि वे महात्मा थे। महात्मा होने से ही कल्याण होता है, ऐसा भी नहीं है। अभी मैं गया राजकोट। वहां जिस मैदान में मेरी सभा थी, वहां मैंने बहुत गाय-बैल खड़े देखे। मरी हालत में थे। मैंने पूछा, ये क्यों इकट्ठे हैं? तो पता चला कि जहां-जहां पानी की कमी है वहां-वहां से इनको इकट्ठा कर लिया गया है। इनको बचाने की कोशिश की जा रही है। जिनसे मैंने पूछा, उन्होंने कहा कि एक बहुत अद्भुत बात आपको बताऊं? एक महात्मा अभी आये और उन्होंने इन सबको मोतीचूर के लड्डू खिलाये। उस दिन चालीस गायें मर गयीं। महात्मा का फोटो अखबार में छपा कि कितनी महान् आत्मा है। गायों को मोतीचूर के लड्डू खिला रहे हैं! लेकिन महात्मा होने में ऐसा लगता है कि अक्ल का न होना जैसे बहुत जरूरी है। भूखी गरीब गाय को, जिसको पानी नहीं, भोजन नहीं मिलता है उसको मोतीचूर के लड्डू खिला रहे है तो इससे तो छाती में छुरा मारना ज्यादा आसान है। उससे गाय सुविधा से मरेगी, शांति से मरेंगी। मोतीचूर के लड्डू से

चालीस गायें मरीं, लेकिन महात्मा ने मोतीचूर के लड्डू खिलाये और लोगों ने कहा कितना अद्भुत गऊभक्त महात्मा है, मोतीचूर के लड्डू खिला रहा है !

हिन्दुस्तान की गरीबी गांधीजी की बात से मिटेगी नहीं, क्योंकि गरीबी मिटाने के लिए टेक्नोलॉजी चाहिए और गांधीजी टेक्नोलॉजी के सबसे बड़े दुश्मन हैं। वे कहते हैं, टेकनीक नहीं चाहिए, टेकनीक शैतान का आविष्कार है । जब कि टेक्नोलॉजी ही मनुष्य को बचायेगी और टेक्नोलॉजी ही मनुष्य की दरिद्रता मिटायेगी और टेक्नोलॉजी ही कल जब जमीन पर ज्यादा लोग हो जायेंगे तो उनको चांद पर पहुंचायेगी, मंगल पर पहुंचायेगी, क्योंकि पचास साल के बाद जमीन पर रहने योग्य जगह नहीं रह जायेगी । मैं नहीं जानता गांधीजी के चर्खे के द्वारा किस भांति आदमी को चांद पर पहुंचाया जा सकेगा । मैं नहीं जानता कि गांधीजी के चर्खे के द्वारा किस तरह अरबों, खरबों लोगों को भोजन और कपड़े दिये जा सकेंगे । लेकिन डर कोई नहीं है, क्योंकि गांधीजी की जय बोलने वाले भी उनको मानते नहीं हैं । लेकिन खतरा हो सकता है । अगर उन्हें माना जाये तो दुनिया को दो हजार साल पीछे लौटा के वे रख दें । जिसे वे रामराज्य कहते हैं, वह अत्यन्त पिछड़ी हुई व्यवस्था का नाम है । आज की इस व्यवस्था से बहुत ज्यादा पिछड़ी हुई व्यवस्था का नाम है, लेकिन वे उसकी ही आकांक्षा करते हैं ।

एक मित्र ने पूछा है कि आप जो कह रहे हैं यही तो पुरानी हिन्दू संस्कृति कहती है, यही तो पुरानी हिन्दू संस्कृति का असली समाजवाद है ।

मैं कुछ समझा नहीं कि वे क्या पूछ रहे हैं । उन्होंने यह भी लिखा है कि असली समाजवाद हिन्दुस्तान में पहले हो चुका है ।

दुनिया में कभी नहीं हुआ और हिन्दुस्तान में तो बिल्कुल नहीं हुआ, न अतीत में कभी होने की सम्भावना ही थी । जिसको आप पुरानी संस्कृति कहते हैं उससे जितनी जल्दी छूटें, उतना अच्छा है । सिर्फ अपनी होने से बीमारी अच्छी नहीं हो जाती । लेकिन जिस जाल में हम जकड़े होते हैं हजारों साल से, वह अच्छा लगने लगता है । किस चीज को आप कह रहे हैं ? कब था समाजवाद भारत में ? जिन्होंने यह पूछा है उन्होंने यह कहा है कि सब अच्छी बातें भारत में थीं, वहीं लौट चलना चाहिए ।

कोई अच्छी बात नहीं थी जहां लौटने की जरूरत हो । अगर अच्छी बात होती तो हम उसे छोड़ कर ही न आये होते । अच्छी बात छोड़ कर कभी भी कोई नहीं जाता है और अगर जाता है तो और अच्छे की तलाश में ही जाता है। लेकिन हम बड़े भ्रम में हैं । हमारा ख्याल है कि भारत सोने की चिड़िया थी । कभी नहीं थी । हां, कुछ लोगों के लिए थी, कुछ लोगों के लिए आज भी है, सबके लिए कभी भी नहीं थी । हम सोचते हैं कि भारत में कभी ताले नहीं पड़ते थे ।

लोग इतने अच्छे और ईमानदार थे कि घरों में ताले नहीं पड़ते थे । मुझे नहीं समझ में आता है कि यह बात सच हो सकती है । होगी सच तो कारण कुछ और होंगे, जो हम सोचते हैं वह नहीं है । क्योंकि बुद्ध लोगों को समझा रहे हैं कि चोरी मत करो, महावीर समझा रहे हैं कि चोरी मत करो । अगर लोग इतने अच्छे थे कि ताले की जरूरत नहीं थी तो बुद्ध और महावीर का दिमाग खराब रहा होगा किसको समझा रहे हैं कि चोरी मत करो ? चोरी बराबर थी । तब एक ही मतलब निकलता है कि ताले उन घरों पर नहीं होंगे जिनके भीतर चुराने को कुछ भी न हो, और कोई कारण दिखायी नहीं पड़ता । या ताले बनाने की अक्ल पैदा न हुई होगी या घर के भीतर ताले लगाने जैसा कुछ न होगा । लेकिन ताले नहीं थे, यह इस बात का सबूत नहीं है कि लोग चोर न थे; क्योंकि सारे शास्त्र कह रहे हैं कि चोरी मत करो । बुद्ध सुबह से शाम तक यही समझाते हैं कि चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, यह मत करो, वह मत करो । यह सारे लोग क्यों समझा रहे हैं यह बातें ? सुकरात ढाई हजार साल पहले भी यूनान में यही कहता गया है कि लड़के बिगड़ गये हैं, कोई मां-बाप की नहीं सुनता, शिक्षक का कोई आदर नहीं है । लोग बेईमान हो गये हैं भ्रष्टाचारी हो गये हैं । छह हजार साल पुरानी किताब है चीन में उसकी भूमिका अगर पढ़ें तो ऐसा लगता है कि आज के ही सुबह के अखबार का एडिटोरियल है । उसमें लिखा है कि लोग बहुत बिगड़ गये हैं, नैतिक ह्रास हो गया है । लोग भौतिकवादी हो गये हैं, भ्रष्टाचार फैल गया है, कोई किसी की सुनता नहीं, ऐसा लगता है कि महाप्रलय निकट है । वह छह हजार साल पहले की किताब है और उसमें लिखा भी है कि पहले के लोग अच्छे थे। पहले के लोग अच्छे थे, यह मिथ और कल्पना से ज्यादा नहीं है । असल में पहले के लोगों को हम भूल चुके और जो थोड़े-से लोग हमें याद रह गये हैं, उनके कारण ही सब गड़बड़ होती है । महावीर याद हैं, महावीर के समय का आम आदमी हमें याद नहीं है तो लगता है कि महावीर के जमाने में सब लोग अच्छे रहे होंगे । महावीर के जमाने में अगर सब लोग अच्छे होते, तो महावीर की हमें याद भी न आती अब तक । महावीर अब तक दिखायी इसीलिए पड़ रहे हैं । स्कूल में तख्ते पर मास्टर लिखता है तो काले तख्ते पर सफेद खड़िया से लिखता है । सफेद दीवार पर लिखे तो लिख भी सकता है, लेकिन दिखायी नहीं पड़ेगा, काले तख्ते पर दिखायी पड़ता है । महावीर ढाई हजार साल तक दिखायी पड़ते हैं कि एक महापुरुष थे । जब तक समाज का तख्ता बिल्कुल ब्लैकबोर्ड न रहा हो, तब तक ढाई हजार साल तक दिखायी नहीं पड़ सकते कि वे महापुरुष थे । दस-पांच महापुरुष मनुष्य-जाति में दिखायी पड़ते हैं । बाकी सारी मनुष्यता एक काले तख्ते की तरह है जिसके ऊपर लकीरें उभरी हुई दिखायी पड़ती हैं; लेकिन कोई मनुष्यता कभी अच्छी नहीं थी । जितनी अच्छी आज है, उतनी अच्छी भी नहीं थी । हम रोज

अच्छाई की तरफ विकास कर रहे हैं। लेकिन एक धारणा हमारे मन में है कि पतन हो रहा है। पहले सतयुग हो चुका, गोल्डन एज हो चुकी, अब कलियुग है, अब तो पतन ही पतन है। जिस कौम के मन में यह भाव बैठ जायेगा कि आगे पतन है उसका पतन निश्चित है, क्योंकि भाव ही गतिमान करते हैं। हम अपने स्वर्णयुग को पीछे रखे बैठे हैं। सब अच्छा हो चुका। अब तो सब बुरा होना है, यह हमने पक्का मान लिया है, यह हमारे प्राणों में बैठ गया है। यह हमारा संस्कार बन गया कि आगे बुरा और बुरा होना है। तो बगल में जब कोई किसी को छुरा भोंकता है तो कहते हैं आ गया कलियुग। जब कोई किसी की स्त्री को लेकर भाग जाता है, तो हम कहते हैं आ गया कलियुग और आपके ऋषि-मुनि लेकर भागते रहे तब सतयुग था और आपके देवी-देवता आकाश से उतर कर दूसरों की स्त्रियों के साथ व्यभिचार करते रहे तब सतयुग था और अब कलि-युग आ गया, क्योंकि बगल का कोई आदमी ले गया है। अजीब बातें हैं। राम की औरत चोरी चली जाये तब सब अच्छी दुनिया है और अभी कोई दूसरे रामचन्द्रजी पड़ोस में आपके रहते हों, उनकी औरत चोरी चली जाये तो कलियुग आ गया !

नहीं, आदमी रोज अच्छा हो रहा है। अगर भविष्य में अच्छा बनना है तो स्वर्णयुग आगे है, अन्धेरा पीछे है, प्रकाश आगे है। अगर भविष्य को निर्मित करना है तो आशा चाहिए और आशा न हो तो भविष्य निर्मित नहीं हो सकता। मेरी दृष्टि में मनुष्य के पैर जो इतने डगमगाये मालूम पड़ते हैं, उसका एक कारण यही है। आशा आगे नहीं मालूम पड़ती, आगे अन्धेरा है, अन्धेरा हम पैदा किये हुए हैं। इतना अच्छा आदमी पृथ्वी पर कभी नहीं था, जितना अच्छा आदमी आज है। अभी बिहार में अकाल पड़ा। दो करोड़ आदमी मर सकते थे उस अकाल में लेकिन मरे केवल चालीस। यह दो करोड़ आदमी कैसे बचे ? सारी दुनिया दौड़ पड़ी। दूर-दूर देश के अनजान बच्चों ने अपने खाने के पैसे बचाये, आइसक्रीम के पसे बचाये, सिनेमा देखने के पैसे बचाये। सारी दुनिया दौड़ पड़ी। बिहार में कोई अनजान आदमी मर रहा है, जिससे कोई सम्बन्ध नहीं है। उसको बचाना है। ऐसा कभी नहीं हुआ था, पहली दफा हुआ है। आज वियतनाम में युद्ध हो तो भी यहां बम्बई का प्राण भी कंपता है कि गलत हो रहा है। कहीं कुछ गलत हो रहा है, तो सारी दुनिया पीड़ा अनुभव करती है। मनुष्यता पहली दफा बोध को उपलब्ध हुई है। मनुष्य विकसित हुआ है, मनुष्य की समझ विकसित हुई है, मनुष्य का सुख विकसित हुआ है। लेकिन एक अन्तिम बात।

दो-तीन मित्रों ने पूछा है—आप अमरीका की इतनी तारीफ करते हैं, लेकिन वहां हिप्पी बढ़ रहे हैं, बीटल बढ़ रहे हैं, बीटनिक बढ़ रहे हैं, कोई एल० एस० डी० ले रहा है, कोई मेस्कलीन ले रहा है, कोई शराब पी रहा है। लेकिन इतने अशान्त हैं, नींद नहीं है। ट्रेंकोलाइजर चाहिए। ये सारी स्थितियां हैं और आप

इतनी तारीफ करते हैं और कहते हैं कि अमरीका में समाजवाद आयेगा। वहां तो इतनी अशान्ति है।

आपको पता होना चाहिए, कोई जानवर अशान्त नहीं होता है। सुना है कभी किसी भैंस को अशान्त होते ? सुना है कभी किसी गधे को रात में कभी नींद न आयी हो ? नहीं सुना होगा। कभी सुना है कोई गधा बोर हुआ हो, ऊबा हो। कभी सुना है कि किसी बैल ने आत्महत्या कर ली कि जिन्दगी बेकार है ? कोई पशु न तो ऊबता है, न अशान्त होता है, न चिंतित होता है, न आत्महत्या करता है। क्या कारण है ? बुद्धि बहुत अविकसित होती है। बुद्धि जितनी विकसित होती है, उतनी सेंसिटिव होती है, उतनी संवेदनशीलता होती है, उतनी चीजें दिखायी पड़नी शुरू होती हैं, उतनी समझ बढ़ती है। जितना चारों तरफ का फैलाव होता है, उतनी अर्थ और मीनिंग की खोज शुरू होती है। आज अमरीका में वह जो हिप्पी है या बीटल है या बीटनिक है या जो और तरह के बगावती लड़के हैं, वे इस बात की खबर है कि चेतना नये स्तर छू रही है। वहां चेतना नयी चीजों को देख रही है जो हमें कभी दिखायी नहीं पड़ी। मनुष्य की बुद्धि ज्यादा विकसित हुई है। उसकी ज्यादा विकसित बुद्धि उसे चिन्ता दे रही है। लेकिन ध्यान रहे, जितनी ज्यादा चिन्ता होगी उतनी बड़ी शान्ति को उपलब्ध किया जा सकता है। शान्ति और अशान्ति का तल हमेशा बराबर होता है। अगर कोई आदमी सिर्फ दो इन्च तक अशान्त हो सकता है तो वह दो ही इन्च तक शान्त भी हो सकता है। अगर कोई आदमी हजार मील तक अशान्त हो सकता है, तो हजार मील तक शान्त होने की क्षमता भी विकसित हो जाती है। हमारे जीवन की क्षमता, हमारी पात्रतायें, दोनों दिशाओं में एक साथ बढ़ती हैं। अगर मेरे मन में कुरूप का बोध स्पष्ट हो जाये तो सौन्दर्य का बोध भी उतना ही विकसित होता है। जिस आदमी को बहुत सौन्दर्य का बोध होगा उस आदमी को कुरूपता का भी उतना ही बोध हो जायेगा, क्योंकि सौन्दर्य उसे सुख देगा। जिस आदमी की जितनी बड़ी चेतना का विस्तार होगा, उतनी चिन्ता उसको घेरने लगेगी, क्योंकि दूसरे की चिन्ता भी उसके घेरे के भीतर आ जायेगी। आज मनुष्यता ज्यादा बुद्धिमान् है, इसलिए ज्यादा चिन्तित है। लेकिन ज्यादा चिन्तित होने के कारण पीछे नहीं लौटना है, और आगे जाना है कि जितनी मनुष्यता चिन्तित है उतने हम शान्ति के नये मार्ग खोज सकें। पुरागे मार्ग काम नहीं देंगे, नये मार्ग खोजने पड़ेंगे। मनुष्य एक कगार पर है, चेतना एक नयी छलांग के निकट है।

उदाहरण के लिए जब पहली दफा बन्दर झाड़ के नीचे उतरा होगा और चार हाथ-पैर को छोड़कर दो हाथ-पैर से चला होगा तो पहली बात यह कि बड़ा अकवर्ड मालूम हुआ होगा और जो बन्दर चार हाथ-पैर से चलने वाले वृक्षों पर बैठे होंगे उनके बुजुर्ग, उन्होंने कहा होगा, मूर्ख यह क्या कर रहा है, कितना बेहूदा

मालूम पड़ रहा है ? कहीं बन्दर ऐसा चलते हैं, दो हाथ से ? और जो दो हाथ से चला होगा उसको तकलीफ भी हुई होगी, चिन्ता भी हुई होगी, उसकी रात रीढ़ दुखी होगी, जिन्दगी खराब हुई होगी, वह परेशानी में भी पड़ गया होगा । लेकिन उसी बन्दर से मनुष्यता विकसित हुई । आज जो विकसित चेतना पीड़ा अनुभव कर रही है, आत्महत्या तक पहुंच गयी है, वही मनुष्य चेतना एक नयी मनुष्यता को जन्म देने के करीब है । मनुष्य में एक नयी चेतना का उद्‌भव निकट है, और ध्यान रहे इसमें आदिवासी जंगल के भागीदार न हो पायेंगे और ध्यान रहे, इसमें आपके मन्दिरों और मस्जिदों में बैठे लोग भजन-कीर्तन कर लें, लेकिन भागीदार न पायेंगे । ये सब सन्तोष खोज रहे हैं, वे असन्तोष से भयभीत है । आज तो असन्तोष की आग में कूदने को जो राजी है और उस आग को भी पार करने की क्षमता दिखायेगी, वही नये मनुष्य को जन्म देने के सौभाग्य का भागीदार हो सकता है । हम अभागे हैं उस अर्थ में । अभी हम हिप्पी पैदा नहीं कर सकते, अभी हम उतने गहरे शान्त भी नहीं हो सकते । अमरीका उस जगह खड़ा है एक वेंगार्ड की तरह, एक आगे की सीमा-रेखा पर जहां छलांग करीब है । इस छलांग के पहले बहुत बार मन होगा कि पीछे लौट जायें । इसलिए तो श्री महेश योगी जैसे लोगों का वहां प्रभाव पड़ता है । यह पीछे लौटने वाले लोग श्री महेश योगी जैसे व्यक्तियों से प्रभावित हो रहे हैं । वे कह रहे हैं कि कहां के झंझट में पड़ते हो, छोड़ो चिन्ता, आंख बन्द करके राम-राम भजो, माला फेरो, पीछे लौट चलो । श्री गांधीजी का भी प्रभाव अमरीका पर पड़ा है—हिन्दुस्तान से ज्यादा । उसका भी कारण यह है कि वह जो पीछे लौटने वाला—बैकवर्ड माइंड है, वह घबरा गया है छलांग से । वह कहता है, आगे खाई है, पीछे लौट चलो । ठीक कहते हैं गांधीजी, क्या जरूरत है टेक्नोलॉजी की, इतने बड़े मकान का क्या करोगे, वापस लौटो ।

लेकिन यह वापस लौटने वाला नारा सदा से था । इससे कोई हित नहीं हुआ है । जाना है आगे, पीछे लौटा नहीं जा सकता । उपाय भी नहीं है । हो भी उपाय तो लौटना खतरनाक है, क्योंकि अब पीछे लौटकर कुछ नहीं पाया जा सकता है । एक बार एक बच्चा चौथी क्लास में आ गया, अब कितना ही मन कहता हो, पहली क्लास में लौट चलो, बड़े सरल सवाल थे वहां, तो भी कोई मतलब नहीं । उसे लौटा भी दो तो अब सवाल बेमानी दिखायी पड़ेंगे । पहली क्लास को तीन क्लास की प्रौढ़ता आ गयी । मनुष्य का चित्त इतना विकसित हो गया है कि उसे रामराज्य में नहीं ले जाया जा सकता है, उसे कोई प्रोमोटिव सोसाइटी में नहीं ले जाया जा सकता है । हां, यह हो सकता है, एक-दो दिन के लिए अच्छा लगे, जंगल चला जाये, लेकिन दो दिन के बाद ऊब जायेगा ।

अभी यहां बीस-पच्चीस मित्र मेरे साथ कश्मीर गये । वे बम्बई से भागे कश्मीर के लिए, पहलगांव में मेरे साथ थे । पहलगांव में जो रसोइया मेरा खाना

बनाता था, वह रोज मुझसे कहता कि पीर बाबा मुझे किसी तरह बम्बई पहुंचा दें । मैंने कहा, तू क्या पागल है ? यह बम्बई के लोग मेरे साथ यहां आये हुए हैं पहलगांव । तू धन्यभागी है, तू पहलगांव में ही मजे में रह । उसने कहा, बिल्कुल मजा नहीं आता है, बल्कि कई बार ऐसा लगता है कि यहां लोग क्या देखने आते हैं । यहां कुछ भी तो नहीं है, मुझे बम्बई पहुंचा दो । मैं मानता हूं कि उसे बम्बई मिलनी चाहिए । क्यों ? क्योंकि एक तो बड़ा फायदा यह होगा कि तब वह पहलगांव कभी-कभी देखने में आनन्द उठा सकेगा ।

मनुष्यता आगे जाती है । पीछे कभी-कभी दिन-दो-दिन के लिए हाली डे मनाया जा सकता है । वह सुखद है, लेकिन पीछे जाया नहीं जा सकता है । हां, किसी दिन मौज में आ जाये, राजघाट पर बैठकर चर्खा चलायें जैसा नेतागण चलाते हैं, वह ठीक है । लेकिन अगर कोई कहता हो कि चर्खे को इण्डस्ट्री का सेण्टर बना लें, तो गलत बात है । कोई कहता हो, चर्खा ही चलाओ तब खतरा है । हां, वैसे कभी-कभी फोटो उतरवाने के लिए चर्खा चलाना काफी सुखद है, अच्छी हाबी है और बढ़िया हाबी है, सस्ती हाबी है और फायदा ज्यादा लाती है । लेकिन पीछे लौटना असम्भव है । न कोई भारतीय संस्कृति, न कोई मुसलमान संस्कृति, न कोई ईसाई संस्कृति—कोई संस्कृति पीछे लौटकर मनुष्य को सुख नहीं दे सकती है । आगे और आगे और जहां आगे है वहां न हिन्दू बचेगा, न ईसाई बचेगा, न मुसलमान बचेगा । वहां मनुष्य बचेगा । भविष्य मनुष्य का है और इस भविष्य को लाने के लिए कितनी सृजनात्मकता चाहिए, उसका हम विचार करें, कितनी सम्पत्ति पैदा करें, कितना स्वस्थ आदमी पैदा करें, कितना शरीर बलशाली हो, कितना सुख जन्मा सकें कि उस सुख से संगीत आये, उस सुख से आत्मा की तलाश भी आये । उस सुख से हम किसी दिन प्रभु के मन्दिर पर भी खड़े हो सकें ।

क्रास मैदान, बम्बई १५ अप्रैल १९७०

९–कोरा शब्द—लोकतांत्रिक समाजवाद

मेरे प्रिय आत्मन,

पिछली चर्चाओं के सम्बन्ध में बहुत-से प्रश्न पूछे गये हैं। एक मित्र ने पूछा है कि आप समाजवाद या साम्यवाद की जो आलोचना कर रहे हैं उसमें डेमोक्रेटिक सोशलिज्म (लोकतांत्रिक समाजवाद) के सम्बन्ध में शायद आपने विचार नहीं किया।

डेमोक्रेटिक सोशलिज्म या लोकतांत्रिक समाजवाद आत्मविरोधी शब्दों से निर्मित हुआ है। जैसे कोई कहे वन्ध्या-पुत्र। बांझ स्त्री का बेटा, अगर कोई कहे तो जैसी गलती होगी, वैसी ही यह गलती है। अगर बच्चा है तो स्त्री बांझ न रही होगी, अगर स्त्री बांझ है तो बच्चा नहीं हो सकता है। इसलिए वन्ध्या-पुत्र शब्द तो बनता है, सत्य नहीं होता। डेमोक्रेटिक सोशलिज्म जैसी कोई चीज नहीं है, लोकतांत्रिक समाजवाद जैसी कोई चीज नहीं है, शब्द भर है; क्योंकि समाजवाद लाने में ही लोकशाही की हत्या करनी पड़ती है। लोकशाही की बिना हत्या के तथा-कथित समाजवाद नहीं लाया जा सकता। इस बात का फर्क समझ लेना उचित होगा कि लोकशाही की हत्या क्यों करनी पड़ती है।

डेमोक्रेसी या लोकशाही का पहला सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीने, कमाने, खाने, अर्जित करने, इकट्ठा करने की स्वतन्त्रता रहे। लोकशाही का बुनियादी आधार यह है कि किसी व्यक्ति के साथ अन्याय न हो पाये और

लोकशाही का यह भी बुनियादी आधार है कि बहुमत अल्पमत पर अन्याय न कर सके। अगर एक गांव में सौ मुसलमान हों और दस हिन्दू हों और वे दस हिन्दुओं की हत्या करना चाहें और कहें कि हम लोकशाही ढंग से हत्या कर रहे हैं क्योंकि सौ लोग कहते हैं कि हत्या करो और दस लोग कहते हैं कि मत करो। ज्यादा लोग हत्या करने के पक्ष में हैं, इसलिए यह हत्या जो है एक डेमोक्रेटिक है, तो हम कहेंगे, गलत है यह बात। लोकशाही का मतलब ही यह है कि बहुमत भी अल्पमत पर अन्याय न कर पाये। पूंजीवाद या पूंजीपति अल्पमत है। समाजवाद जिस बहुमत की बात कर रहा है और जिस बहुमत की बात लेकर चलता है, वह अल्पमत को नष्ट करने के लिए लोकशाही का उपयोग करे तो लोकशाही का बुनियादी आधार गिर जाता है। और आज एक अल्पमत है, कल दूसरा अल्पमत है। आज कुछ लोग कहते हैं सम्पत्ति बंटनी चाहिए, किसी के पास ज्यादा, किसी के पास कम न हो, क्योंकि सम्पत्ति ने ईर्ष्या को जन्म दिया है। लेकिन पूछना जरूरी यह है कि जिन लोगों ने सम्पत्ति पैदा नहीं की, जिन लोगों ने सम्पत्ति के उत्पादन में और सृजन में कोई हाथ नहीं बंटाया, जो चुपचाप खड़े देखते रहे, लेकिन अर्जित हो जाने के बाद सम्पत्ति की मांग और बंटवारे की बात जरूर कर रहे हैं—क्या यह अन्यायपूर्ण नहीं है?

यह बड़े मजे की बात है कि जब भी कोई नया आविष्कार हुआ, जिससे दुनिया में सम्पत्ति आयी, तो उस आविष्कार को बेचना भी मुश्किल हुआ। आवि-ष्कारक हमेशा पागल मालूम पड़े। मनुष्य-जाति का बड़ा हिस्सा—बहुमत—सदा ही रूढ़िवादी रहा है। विकास किया है इक्के-दुक्के लोगों ने। लेकिन अन्त में भागीदार सब हो जाते हैं। मैंने सुना है, एक बहुत बड़े आविष्कार को लेकर एक वैज्ञानिक कई लोगों के पास गया। वह पचास रुपये में भी बेचने को राजी था, लेकिन कोई लेने को राजी नहीं था; क्योंकि बात पागलपन की मालूम पड़ती थी। कार की पहली डिजाइन भी पागलपन था, कोई लेने को तैयार नहीं था। जिस आदमी ने उस डिजाइन को लेने की हिम्मत जुटायी और हिम्मत दिखाकर सम्पत्ति के उत्पादन का एक नया द्वार खोला और वह आदमी जब सम्पत्ति पैदा कर लेगा, तो वे जो चुपचाप देख रहे थे कि यह डिजाइन पागलपन की है, यह सम्भावना गलत है। जब सम्पत्ति अर्जित हो जायेगी, तब वे कहेंगे कि हम भी इसमें भागीदार हैं, क्योंकि सम्पत्ति सबकी है।

सम्पत्ति बहुत थोड़े-से लोगों ने पैदा की है और उन थोड़े-से लोगों ने जब पैदा कर ली है तो जिन्होंने पैदा नहीं की है, वे मालकियत के लिए जरूर दावे-दार हैं। लोकशाही का मतलब यह है कि जिसने पैदा किया है वह उसका मालिक है। अगर वह बांटता है तो उसकी खुशी है, लेकिन मांगने वाले का हक नहीं हो सकता। अगर इसे मांगने वाले का अधिकार बताया जाता है तो यह बात कहां

रुकेगी, कहना कठिन है। सम्पत्ति भी प्रतिभा से पैदा हुई है। आज हम सम्पत्ति-शाली की प्रतिभा से पीड़ित हैं। हम कहते हैं कि सम्पत्ति बांट दो। कल हम कहेंगे कि कुछ लोगों के पास सुन्दर स्त्रियां हैं, कुछ लोगों के पास कुरूप स्त्रियां हैं, यह अन्याय नहीं सहा जा सकता, यह असमानता नहीं देखी जा सकती। सुन्दर स्त्रियों पर सबका समान अधिकार होना चाहिए। गलती नहीं होगी, तर्क वही है, तर्क में कोई भेद नहीं है। परसों हम कहेंगे, कुछ लोग प्रतिभाशाली हों, बुद्धिमान् हों और कुछ लोग मूढ़ और अज्ञानी हों, यह बरदाश्त के बाहर है। असमानता नहीं सही जाती। बुद्धि का ठीक-ठीक वितरण होना चाहिए। तर्क वही है, लेकिन तर्क बिल्कुल एन्टीडेमोक्रेटिक है। एक-एक आदमी अलग है। एक-एक आदमी की अलग-अलग क्षमता है। हर आदमी की सृजनशीलता, क्षमता और प्रतिभा अलग है और उसी के अनुसार वह सम्बन्धित वस्तुयें बनायेगा, जिनकी मालकियत भी उसकी ही होगी। अगर वह बांटता है, तो यह उसकी खुशी है; लेकिन मांगने का हक अन्याय है। समाजवाद बहुत-से अन्यायों की स्वीकृति देता है, क्योंकि अन्याय के लिए बहुमत को तैयार किया जा सकता है बहुमत के तैयार होने से अन्याय न्याय नहीं हो जाता और न असत्य सत्य हो जाते हैं। व्यक्तिगत सम्पत्ति व्यक्ति का मौलिक अधिकार है और लोकशाही उस अधिकार को स्वीकार करती है और जब कोई कहता है 'लोकशाही वाला समाजवाद' तो झूठी बात कहता है; क्योंकि लोकशाही की बुनियादी बात उसने तोड़नी शुरू कर दी है। दूसरी मजे की बात है कि समाजवाद जिन मूल्यों पर खड़ा हुआ है, वह मूल्यों की सिर्फ बात करता है, उन्हें ला नहीं सकता। विषय के स्पष्टीकरण के लिए थोड़े-से मूल्यों की चर्चा कर लेना उपयोगी होगा।

स्वतन्त्रता शायद मनुष्य के जीवन में सर्वाधिक मूल्यवान् तथ्य है, सम्भवतः उससे बड़ा कोई मूल्य नहीं है; क्योंकि स्वतन्त्रता पहला आधार है जिससे व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास हो सके। इसलिए परतन्त्रता मनुष्य के जीवन की सबसे बुरी दशा है और स्वतन्त्रता सबसे सुन्दर और श्रेष्ठ। समाजवाद स्वतन्त्रता पर हमला किये बिना स्थापित नहीं हो सकता। हां, यह हो सकता है कि बहुमत राजी हो अल्पमत की स्वतन्त्रता को काट देने के लिए। लेकिन तब भी यह अनुचित है। स्वतन्त्रता की हत्या लोकशाही नहीं हो सकती? लोकशाही का प्राण या आत्मा है, विचार की स्वतन्त्रता। समाजवाद विचार की स्वतन्त्रता बरदाश्त नहीं कर पाता, क्योंकि विचार की स्वतन्त्रता में पूंजीवाद के समर्थन की स्वतन्त्रता भी सम्मिलित है। वह उसे कठिन मालूम होने लगता है, वह उसे आमूल तोड़ देना चाहता है। व्यक्ति की सम्पत्ति और व्यक्ति के विचार की स्वतन्त्रता की हत्या करने के बाद भी अगर समाजवाद लोकतान्त्रिक हो सकता है, तो वह बहुत आश्चर्य है, वह कैसा लोकतांत्रिक हो सकता है? लोकतांत्रिक समाजवाद झूठा शब्द है।

असल में लोकतन्त्र 'शब्द' का आदर है। समाजवाद उस आदर को भी छोड़ना नहीं चाहता। रूस भी लोकतान्त्रिक है, चीन भी। सब लोकतान्त्रिक हैं। शब्दों के साथ आदमी बड़ा खिलवाड़ करता है। वह शैतान के ऊपर भी भगवान् का लेबल लगा सकता है। रोके कौन, रोकना बहुत कठिन है। साफ समझ लेना चाहिए कि डेमोक्रेसी पूंजीवाद का मूल्य है, समाजवाद का मूल्य नहीं है और डेमोक्रेसी बचेगी तो पूंजीवाद के साथ बचेगी। समाजवाद के साथ लोकतन्त्र नहीं बच सकता। लोकतन्त्र पूंजीवादी जीवन-व्यवस्था का अनिवार्य हिस्सा है। वह पूंजीवाद के साथ बचेगा। ऐसे ही और भी मूल्य हैं जो हमें दिखायी नहीं पड़ते, हमारे ख्याल में नहीं आते, लेकिन उन सारे मूल्यों की हत्या बड़ी सुविधा से की जा सकती है। उनकी हत्या की जा रही है। व्यक्ति का अपना पृथक् चरम मूल्य (अल्टीमेट वैल्यू) है, लेकिन समाजवाद व्यक्ति को नहीं, समाज को, भीड़ को मूल्य देना चाहता है। वह मूल्य देना चाहता है कि मूल्य है समाज का और समाज के लिए व्यक्ति का बलिदान स्वीकर-योग्य है। हमेशा से व्यक्ति का बलिदान होता रहा है बड़े-बड़ सिद्धान्तों, बड़े-बड़े नामों के आधार पर—कभी राष्ट्र के लिए, कभी धर्म के लिए, कभी कुरान के लिए, कभी गीता के लिए। न मालूम किन-किन बातों के लिए आदमी का बलिदान होता रहा। लेकिन आदमी ऐसा प्राणी है जो इतिहास से कुछ भी नहीं सीखता। पुराने शब्द हट जाते हैं, तो वह नयी बलिवेदियां बना लेता है और फिर उन पर व्यक्ति को काटना शुरू कर देता है। समाजवाद नयी बलिवेदी है और अगर मनुष्य के इतिहास से कोई भी एक शिक्षा लेनी हो तो वह एक शिक्षा लेने जैसी है और वह यह है कि व्यक्ति को किसी के लिए बलिदान नहीं किया जा सकता है। बड़े-से-बड़ा राष्ट्र भी एक व्यक्ति को बलिदान करने का हकदार नहीं है और बड़े-से-बड़ा सिद्धान्त भी एक व्यक्ति को बलिदान करने का हकदार नहीं है; क्योंकि व्यक्ति जीवन्त चेतना है और इस जीवन्त चेतना की किसी भी व्यवस्था, किसी भी संस्था और किसी भी संगठन के लिए बलिदान करना खतरनाक है। क्योंकि संगठन एक मृत आयोजन है, एक मरी हुई व्यवस्था है और व्यवस्था के लिए जीवित आदमी को बलिदान करना उचित नहीं है। लेकिन हम आदी हैं व्यक्ति की हत्या करने के और अब भी हम नये उपाय निकाले जा रहे हैं कि व्यक्ति को किस मन्दिर की वेदी पर चढ़ा दें। नयी वेदी समाजवाद की है।

समाजवाद लोकशाही नहीं है। समाजवाद अगर हम बलपूर्वक लाते हैं, लाने की चेष्टा करते हैं, तब तो वह लोकशाही हो ही नहीं सकती। एक ही अर्थ में समाजवाद किसी दिन जीवन में अनायास, सहज अपने आप आये, तो जीवन की स्वतन्त्रता की हत्या बिना किये आ सकता है अन्यथा सम्भव नहीं है।

आज मेरे एक मित्र ने मुझे सूचना दी कि किसी अखबार में उन्होंने पढ़ा कि

पैसिफिक महासागर में एक छोटा-सा द्वीप है उस द्वीप की आबादी ज्यादा नहीं है। कुछ ही सौ लोग वहां हैं। लेकिन उस द्वीप के पास फासफोरस की खदानें हैं और इतनी सम्पत्ति उन खदानों से पैदा हो जाती है कि एक-एक व्यक्ति को करीब आठ हजार रुपये उससे उपलब्ध हो जाते हैं। उन छोटे-से द्वीप पर कोई गरीब नहीं है, कोई अमीर नहीं है, क्योंकि लोग कम हैं और सम्पत्ति ज्यादा है। वह द्वीप शायद पृथ्वी पर अभी पहला समाजवादी है। लेकिन वह समाजवादी है ऐसा उसे पता भी नहीं है। समाजवाद के पैदा होने की भी कोई जरूरत नहीं है। सम्पत्ति इतनी ज्यादा है और लोग इतने कम हैं। उन्होंने मुझे खबर दी कि वहां अगर कोई मेहमान होता है किसी के घर में और इतना कह देता है कि यह रेडियो बहुत सुन्दर है तो उस घर के लोग तत्काल उसे रेडियो दे देते हैं, क्योंकि वह कह देते हैं कि जिसे पसन्द आ गयी चीज, उसकी हो गयी। सम्पत्ति है बहुत और सम्पत्ति की पकड़ हो गयी है क्षीण। किसी दिन इस पृथ्वी पर समाजवाद आ सकता है, आना चाहिए, आयेगा अगर समाजवादियों ने जल्दी नहीं की। अगर समाजवादियों ने जल्दी की तो यह हो सकता है कि कभी भी न आ सके। सदा के लिए अवरुद्ध हो जाये। सम्पत्ति ज्यादा हो और व्यक्ति कम, इसकी व्यवस्था हम जिस दिन कर लेंगे, उस दिन लोकतन्त्र की हत्या किये बिना समाजवाद आ सकता है। लेकिन तब उसका हमें पता भी नहीं चलेगा कि वह कब आया। वह चुपचाप आ जायेगा, जैसे, जिन्दगी में सब महत्वपूर्ण चीजें आती हैं। एक बात और ध्यान देने जैसी है। इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए, क्योंकि कई मित्रों ने पूछा है कि आप कहते हैं कि श्रम का कोई उपयोग ही नहीं है पूंजी के उत्पादन में। ऐसा मैंने नहीं कहा कि श्रम का उपयोग नहीं ? । मैंने कहा यह कि श्रम आज नहीं कल, गैर जरूरी तत्व होता चला जायेगा। रोज होता चला गया। श्रम ने पूंजी के अर्जन में साथ दिया है, लेकिन सृजन का मूल केन्द्र वह नहीं है। सृजन का मूल केन्द्र मनुष्य का मस्तिष्क है, मनुष्य की बुद्धि है और मनुष्य की प्रतिभा है जिसने सृजन के नये-नये आयाम खोजे। और यह भी ध्यान रहे कि श्रम जो है, वह बहुत जल्दी मर जाने वाली चीज है। अगर मैं आज दिन भर काम करूं तो आज दिन भर काम न करने से मेरे पास श्रम बचेगा नहीं कि मैं उसे तिजोरी में रख लूं और कल उसका उपयोग कर लूं। अगर मैंने आज दिन भर काम नहीं किया तो आज मैं जो काम कर सकता था, वह मैं कभी न कर सकूंगा, क्योंकि श्रम को बचाया नहीं जा सकता। श्रम रोज खो जाता है। ऐसा नहीं कि एक मजदूर काम करे जिन्दगी भर तो उसका शोषण नहीं होगा, वह तो मर ही जायेगा। क्योंकि श्रम बचाया नहीं जा सकता। वह यह नहीं कह सकता कि मैंने अपने श्रम को तिजोरी में बन्द कर रखा है। मैंने बचा लिया है।

पूंजीवाद ने पहली दफा श्रम को बचाने की व्यवस्था सोची। वह जो पैरी-

सेवल कमोडिटी थी, उसको सुरक्षा-योग्य बनाया। धन की ईजाद से श्रम बचने योग्य हुआ। आज मैं श्रम करता हूं और पांच रुपये तिजोरी में बन्द कर लेता हूं, पांच रुपये की शक्ल में मेरा श्रम स्थायी हुआ, बचा। अगर पांच रुपये की शक्ल में न मिले तो श्रम गया। ऐसा नहीं है कि मेरे पास श्रम होता, लेकिन मजा यह है कि मैं कहूंगा कि मैंने दस रुपये का श्रम किया और मुझे सिर्फ पांच रुपये मिले, जब कि अगर मैं नहीं करता तो एक पैसे का भी श्रम नहीं होता। यह जो पांच रुपये मुझे मिले हैं, निश्चित ही किसी दिन मुझे दस रुपये मिलने ही चाहिए। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि पूंजी-उत्पादन की जो व्यवस्था है, उसको तोड़कर रुपये मिल जायेंगे। इस पूंजी-उत्पादन-व्यवस्था को और विकासमान करना होगा। पूंजीवाद जैसा आज है वैसा पर्याप्त नहीं है। आप ऐसा मत सोच लेना, जैसा कई मित्रों ने कहा है कि जो पूंजीवाद आज है, आप उसका समर्थन कर रहे हैं।

नहीं, जो पूंजीवाद आज है, उसमें बहुत परिष्कार की गुंजाइश एवं अनिवार्यता है। आज तो पूंजीवाद है, वह बिल्कुल प्राथमिक है—वह पूंजीवाद का क ख ग है। अभी उसे बहुत विकसित होना है, लेकिन समाजवादी शोरगुल उसे विकसित नहीं होने देगा। यह हो सकता है कि कल पांच रुपये की जगह दस रुपये भी श्रमिक को दिये जा सकें और यह भी हो सकता है कल दस रुपये के श्रम की जगह बीस रुपये दिये जा सकें और यह भी हो सकता है कि जो आदमी श्रम न करे, उसे भी दिया जा सके और अंततः ठीक से हम टेक्नॉलाजिकल रेवोल्यूशन से गुजर जायें तो यह भी हो सकता है कि जो आदमी श्रम की मांग करे उसे कम पैसे मिलें, और जो आदमी आराम करने के लिए राजी हो जाये उसे ज्यादा पैसे मिल जायें। यह भी हो सकता है। यह इसलिए हो सकता है कि श्रम की मांग बढ़ी और बहुत-सी चीजों से जुड़ी है। अगर कल आपके गांवों में सारे स्वचालित यन्त्र लगा दिये जायें तो हजारों-लाखों लोग बेकार हो जायेंगे, लेकिन स्वचालित यन्त्र जो सम्पत्ति पैदा करेंगे, उसका करियेगा क्या ? इन बेकार लोगों को ही वह देनी पड़ेगी। उनको बेकारी का मुआवजा देना पड़ेगा। लेकिन कोई आदमी कह सकता है कि मैं चौबीस घण्टे बेकार नहीं रह सकता। मैं पागल हो जाऊंगा। मुझे दो घण्टे काम चाहिए तो इस आदमी को कम पैसा देना पड़ेगा, क्योंकि यह दोनों बातें मानता है। पैसा भी मांगता है और काम भी मांगता है। जो बेकाम होने के लिए बिल्कुल तैयार हों जो कहते हैं हम सिर्फ पैसे ही मांग लेते हैं, हम काम नहीं मांगते, उन्हें ज्यादा भी मिल सकता है। वह पचास साल के भीतर सम्भव हो सकता है—अगर उत्पादन की व्यवस्था को परिष्कृत किया जाये और उसे जगह-जगह तोड़ने का उपाय न किया जाये। तोड़ने के उपाय बड़े मजेदार हैं और बड़ी तरकीब से भरे हैं, लेकिन दिखायी नहीं पड़ते हैं। एक तरफ देश के नेता चिल्लाते हैं कि देश गरीब है। सम्पत्ति उत्पादित होनी चाहिए, दूसरी

तरफ जो सम्पत्ति का उत्पादन करे, उस पर जितनी ज्यादा सम्पत्ति उत्पादन करे, उतना ज्यादा कर वे लगाते चले जाते हैं। यह बिल्कुल मूढ़तापूर्ण बात है। अगर सम्पत्ति ज्यादा चाहते हैं तो जो आदमी एक लाख पैदा करे, उस पर ज्यादा टैक्स। जो दो लाख पैदा करे उस पर कम, जो तीन लाख पैदा करे, उस पर और कम। दस लाख करे, उस पर बिल्कुल नहीं। जो करोड़ करे, उसको उल्टा सरकार टैक्स दे तो सम्पत्ति ज्यादा पैदा हो सकती है। सम्पत्ति के ज्यादा पैदा होने का सीधा सूत्र यह है कि लोगों के इंसेंटिव को जगाओ। इंसेंटिव को मारते हैं आप। आप कहते हैं, लाख पैदा किया। आपने दो लाख यदि पैदा किया तो नब्बे हजार टैक्स हो जायेगा। तीन लाख किया तो और टैक्स हो जायेगा, चार लाख किया तो जो कमाया, वह टैक्स में जायेगा और टैक्स के भरने के इन्तजाम की जो दौड़-धूप है, वह अलग है; तो आदमी सोचता है कमाने की जरूरत ही क्या है। जो कमा सकते हैं, उनको आप रोक रहे हैं और जो नहीं कमा सकते हैं, वह जो बड़ा बृहत् समाज है हमारा, जो लिथारजी से भरा है, जो कुछ नहीं कमा सकता है, उसके आप गीत गा रहे हैं। मुल्क को मार डालने की तरकीब है। ये गीत अच्छे लग सकते हैं, लेकिन यह महंगे और खतरनाक हैं। मनुष्य-समाज का बहुत बड़ा हिस्सा बिल्कुल ही सृजनात्मक नहीं है। मनुष्य-समाज का बहुत बड़ा हिस्सा रोटी मिल जाये, भोजन मिल जाये और बच्चा पैदा करने की सुविधा मिल जाये तो तृप्त है। उसे और कुछ नहीं करना है। मनुष्य-जाति के बड़े हिस्से ने खाना खाने, बच्चा पैदा करने के अतिरिक्त कोई बड़ा काम नहीं किया है। मनुष्य-जाति के बहुत थोड़े-से हिस्से ने सृजन के फूल खिलाये हैं। चाहे वह दिशा कोई भी हो, कविता हो, चित्र हो, धन हो, विज्ञान हो, धर्म हो, हर क्षेत्र में बहुत थोड़े-से मनुष्यों ने सृजन के शिखर पाये हैं। इनको रोकने की चेष्टा चल रही है, यह बहुत 'एब्सर्ड लाजिक' है। कहते तो यह हैं कि सम्पत्ति चाहिए देश को और प्रशंसा उसकी करते हैं जिसके पास सम्पत्ति नहीं है। जिसके पास सम्पत्ति नहीं है, उसके पास क्यों नहीं है? करोड़ों साल से वह भी पृथ्वी पर है। उसके भी पुरखे जमीन पर थे। उसके पास सम्पत्ति क्यों नहीं है? कभी इस पर सोचा है? उसने सम्पत्ति पैदा नहीं की, बच्चे पैदा किये। वह दरिद्र होता चला गया, उसकी दरिद्रता बढ़ती चली गयी, लेकिन बहुत आश्चर्य है कि जिन्होंने सम्पत्ति पैदा की, वे आज अपराधी हैं। उनको आज समाज की सूली पर लटकना पड़ेगा। उनका भी एक ही अपराध है कि तुमने भी बच्चे पैदा क्यों नहीं किये? तुम भी चुपचाप बिना धन सृजन किये क्यों न बैठे रहे? तुम्हारा बहुत बड़ा पाप है कि तुमने धन पैदा किया। अब वह जिन्होंने नहीं पैदा किया है, वे बदला लेंगे और कहेंगे कि हम तुम्हारी गर्दन दबायेंगे। तुमने हमें चूस लिया, यह बड़े आश्चर्य की बात है। यह धन चूस कर पैदा नहीं हुआ है। यह धन कुछ लोगों ने बड़ी

प्रतिभा और बड़े श्रम से पैदा किया है। इसमें बड़ी बुद्धि और बड़े नये आयामों की खोज है, लेकिन वह हमारे ख्याल में नहीं है। इनको हम मिटाने पर तुले हैं। इनको हम काटेंगे, हमारा बस यही अन्धा तर्क है।

अभी मैं एक परिवार-नियोजन केन्द्र को देखने गया। सारा शासन चिल्ला रहा है। सारा देश कोशिश में लगा है कि परिवार-नियोजन हो, लेकिन हमारे तरीके बड़े अजीब हैं। अगर परिवार-नियोजन करना है तो फिर हमें सोचना चाहिए, उस पूरे सन्दर्भ में। जैसे मैंने कहा कि अगर सम्पत्ति उत्पादित करनी है तो जितनी ज्यादा जो सम्पत्ति पैदा करे, वह पुरस्कृत होना चाहिए। अभी वह दण्डित होता है। जब दण्डित होगा तो सम्पत्ति किसलिए पैदा करेगा और जो पैदा नहीं करने वाला है, वह तो करेगा नहीं। जो कर सकता था, वह रुकेगा। मुल्क गरीब होगा रोज-रोज। मुल्क अमीर नहीं हो सकता। मैं गया उस परिवार-नियोजन केन्द्र में। मैंने उस अधिकारी से पूछा कि तुम्हें पता है कि सरकार बैचुलर पर कम टैक्स लगाती है या ज्यादा? शादीशुदा पर कम टैक्स लगता है कि ज्यादा? जिसके दो बच्चे हैं, उस पर कम टैक्स लगता है कि ज्यादा? उसने कहा कि इससे परिवार-नियोजन का क्या सम्बन्ध है? मैंने कहा, तब तो इसका मतलब हुआ परिवार-नियोजन से बुद्धि का ही कोई सम्बन्ध नहीं है। अगर बच्चे बढ़ते हैं किसी के घर में तो टैक्स बढ़ना चाहिए, तो बच्चे रुकेंगे। बच्चे बढ़ते हैं, तो टैक्स कम होता है और सरकार कहती है कि हमको बच्चे कम पैदा करने हैं। बच्चे अगर बढ़ते हैं तो टैक्स बढ़ना चाहिए। जिसके घर में तीन बच्चे हों, उस पर कम टैक्स, जिसके चार हों, उस पर और ज्यादा, पांच हों तो और ज्यादा। छठवां हो तो उसकी फीस कई गुनी होनी चाहिए स्कूल में। उसको दवाई महंगी मिलनी चाहिए, क्योंकि जितने बच्चे ज्यादा होंगे, उतने उस पर टैक्स बढ़ने चाहिए तो वह डरेगा और बच्चे रोकेगा। लेकिन जितने बच्चे बढ़ेंगे टैक्स कम हो जायेगा। गैर-शादीशुदा आदमी पर टैक्स ज्यादा है। शादीशुदा होने पर कम हो जायेगा। अजीब बेवकूफी है। गैर-शादीशुदा आदमी पर टैक्स बिल्कुल मत लगाओ। कम करो, ताकि लोग ज्यादा देर तक शादी न करें और शादीशुदा पर जोर से टैक्स लगाओ, ताकि शादी महंगी पड़ने लगे, लोग देर से करें, कम करें। हर बच्चे के साथ टैक्स को बढ़ाओ। एक तरफ चिल्लाओ कि बच्चे कम, दूसरी तरफ जो बच्चे ज्यादा पैदा करे, उस पर टैक्स कम करो, तो इसका अर्थ क्या हुआ? सम्पत्ति के मामले में भी यही हो रहा है। जीवन के बहुत पहलुओं पर यही हो रहा है कि हमारे सामने कोई साफ उद्देश्य न होने से कुछ भी हम किये जा रहे हैं। देश गरीब है तो सम्पत्ति पैदा करने की सुविधा जुटाओ। देश गरीब है तो सम्पत्ति को सारी दुनिया से निमंत्रित करो, लेकिन इस मुल्क का ख्याल है कि दूसरे मुल्क से लोग आ जायेंगे तो हमें चूस लेंगे। मैंने आपसे कहा कि श्रम अगर उपयोग में न आये,

तो बिना चूसे ही खत्म हो जाता है। अगर सारी दुनिया की सम्पत्ति इस मुल्क में निमंत्रित हो तो इस मुल्क का जो बहुत-सा श्रम रोज व्यर्थ मर रहा है, वह सारा का सारा श्रम पूंजी में परिवर्तित हो जाये। लेकिन हमारा ख्याल यह है कि अगर दूसरे मुल्क की पूंजी हिन्दुस्तान में आयी तो हमारा शोषण हो जायेगा। शोषण नहीं हो जायेगा, वरन् हमारा जो श्रम रोज गंगा के पानी जैसा समुद्र में गिरता जा रहा है, उसका उपयोग कर लो तो ठीक है, अन्यथा वह नष्ट हो जायेगा। नर्मदा का पानी भी रोज गिरा जा रहा है समुद्र में। उपयोग कर लो तो ठीक, अन्यथा वह गिर जायेगा। ऐसे ही मनुष्य में जो श्रम की शक्ति पैदा होती है, वह रोज ही तिरोहित हो जाती है अनन्त में। उपयोग कर लो, उसे ट्रान्सफार्म करो, सम्पत्ति बना लो वह बच जायेगी। लेकिन हम बहुत अजीब लोग हैं, हम कहते हैं कि दस रुपये का श्रम अगर गंगा में चला जाये तो कोई हर्जा नहीं, लेकिन हम पांच रुपये पर राजी न होंगे। कहीं कोई हमारा पांच रुपये का शोषण न कर ले। जैसे कि पांच रुपये हमारे पास थे और किसी ने छीन लिए। कोई छीन नहीं रहा है। शोषण की पूरी-की-पूरी धारणा बड़ी नासमझी से भरी हुई है।

पूंजीवाद श्रम को सम्पत्ति में बदलने की प्रक्रिया है और अगर पूंजीवाद को ठीक से विकास का मौका दिया जाये तो वह सारे श्रम को सम्पत्ति में बदलने का मार्ग खोज ले सकता है। लेकिन समाजवादी कहते हैं कि नहीं, हम राज्य के हाथ में यह सब देंगे और मजे की बात यह है कि राजनीतिज्ञ से ज्यादा अयोग्य वर्ग आज पृथ्वी पर कोई भी नहीं है और कभी भी नहीं था। इसका कारण है। इसका कारण यह है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में योग्यता का मूल्य है। राजनीति के क्षेत्र में योग्यता का कोई भी मूल्य नहीं है। जो आदमी किसी भी बाजार में जूता बेचने को दुकान पर भी न रखा जा सके, वह शिक्षा-मंत्री हो सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं हो सकती है, क्योंकि शिक्षा-मंत्री के होने से शिक्षा से योग्यता का कोई सम्बन्ध नहीं है। राजनीति एक मात्र अयोग्यों के लिए द्वार है। जिनके पास कोई योग्यता नहीं, वे राजनीति के योग्य हो सकते हैं, क्योंकि राजनीति किसी तरह के विशेष ज्ञान, किसी तरह की विशेषता का कोई आग्रह नहीं करती इसलिए राजनीति अद्भुत गोरख-धन्धा है। उसमें कोई भी आदमी जो सिर्फ एक कला जानता है कि दस-बीस आदमियों को अपने पीछे इकट्ठा कर सके, शोरगुल मचा सके, वह आदमी राजनीति में योग्य हो जाता है। लेकिन फिर वह करेगा क्या? वह शिक्षा-मंत्री बनेगा और यूनिवर्सिटी के वाइसचांसलर और शिक्षा-शास्त्री उसके आगे-पीछे चक्कर काटेंगे और वह आदमी अंगूठे से दस्तखत करेगा और शिक्षा को संचालित करेगा। यह समझ के बिल्कुल बाहर है। वह आदमी जिसको कोई पता नहीं है मेडिकल साइंस का, वह स्वास्थ्य-मंत्री हो जायेगा और स्वास्थ्य पर मुल्क का मार्गदर्शन करेगा, मुल्क के स्वास्थ्य को ठीक करने का विचार करेगा। राजनीति

अयोग्य व्यक्ति के लिए गति है, लेकिन वह धन को भी अपने हाथ में लेना चाहती है। वह कहती है कि व्यवसाय, सारा धन, सारे उत्पादन भी राजनीतिज्ञों के हाथ में चले जाने चाहिए। वह भी कहीं से संचालित होना चाहिए। मुल्क को किसी भी तरह दिवालिया करने की उसने कसम खा रखी है। दिवालिया करके ही रहेंगे। मुल्क सब तरह से दिवालिया हो जाये, तब तक हम रुकने वाले नहीं हैं।

मेरी अपनी दृष्टि और ही है। मेरी दृष्टि यह है कि राजनीतिज्ञ को, तभी इस दुनिया में मनुष्य को खतरे में ले जाने से रोका जा सकता है, जब कि राज-नीतिज्ञ को सीधा ही शासन का मालिक न होने दिया जाये। इसलिए मेरी दृष्टि तो यही है कि जनता के चुने हुए प्रतिनिधि पार्लियामेंट बनायें, लेकिन पार्लियामेंट में से मंत्रिमण्डल न बने। पार्लियामेंट में जो पार्टी ज्यादा बहुमत में हो, उस बहुमत की पार्टी को हक हो कि एक शिक्षा-शास्त्री को खोजे पूरे मुल्क में और शिक्षा-मंत्री बनाये। खोजे एक चिकित्सक को और स्वास्थ्य-मंत्री बनाये। लेकिन जनता का प्रतिनिधि स्वास्थ्य-मंत्री और शिक्षा-मंत्री नहीं होना चाहिए। यह मावोक्रेसी है, डेमोक्रेसी नहीं है। यह भीड़-तंत्र हुआ। लोकतंत्र नहीं हुआ। जनता अपने प्रतिनिधि चुन कर भेजे। जिन लोगों की ज्यादा संख्या हो पार्लियामेंट में, वे लोग अपने आदमी खोजें मुल्क में; लेकिन जिस पद के लिए खोजें, उस पद की योग्यता पूरी होनी चाहिए तब मावोक्रेसी की जगह मेरिटोक्रेसी का इन्तजाम आ सकता है। गणतंत्र जब तक गुणतंत्र (मेरिटोक्रेसी) से नहीं जुड़ता, तब तक गणतंत्र निपट नासमझी की कहानी है। तब तक गणतंत्र मनुष्य को नीचे ही ले जायेगा, ऊपर नहीं ले जा सकता। जनता का प्रतिनिधि बिल्कुल ठीक है। चुना जा सकता है। जनता का हक है अपना प्रतिनिधि चुनने का, लेकिन अपने प्रति-निधि को शिक्षा-मन्त्री बनाने का हक जनता को नहीं हो सकता है। हां, जनता का प्रतिनिधि शिक्षा-शास्त्रियों को खोजे। जिनको ठीक समझे, वह जनता का प्रतिनिधि चुनेगा। लेकिन कैबिनेट और मुल्क के शासन का हक विशेषज्ञों के हाथ में होना चाहिए। जब तक एक्सपर्ट के हाथ में, गुणवान् लोगों के हाथ में राज्य नहीं है, तब तक सब तरह के खतरे हैं और आज तो जीवन की प्रत्येक चीज स्पेशलाइज्ड है। आज तो एक छोटी-से-छोटी चीज के लिए विशेषज्ञ हैं। आज पुराना जमाना गया कि आप गये वैद्य के पास। उसने आपसे पूछा नहीं और नाड़ी देखी और दवा दे दी। उसने यह भी नहीं पूछा कि पेट में दर्द है, आंख में दर्द है कि पीठ में तकलीफ है। नाड़ी देखी और दवा दे दी। वह स्पेशलाइजेशन के पहले की बात है जब वैद्य सभी कुछ जानता था। अब हालतें बदल गयी हैं। मैंने सुना है कि आज से पचास साल बाद एक गांव में एक औरत, एक डाक्टर के ऑफिस गयी और उसने कहा मेरी आंख में तकलीफ है। वह डाक्टर उसे भीतर ले गया। फिर उसने पूछा आपकी किस आंख में तकलीफ है। उसने कहा कि बांयी आंख

में दर्द है। उस डाक्टर ने कहा, माफ करिये, मैं दायीं आंख का डाक्टर हूं। बायीं आंख का डाक्टर आगे है। एक आंख भी कितनी बड़ी बात है कि असल में दोनों आंख का डाक्टर भी ज्यादा दिन तक नहीं चलेगा। एक आंख इतनी बड़ी घटना है। इतनी बड़ी जटिलता है, लेकिन जिन्दगी का जो सबसे जटिल तन्त्र है राज्य, वह अविशेषज्ञों के हाथ में है। वे मुल्क को बरबाद करते चले जायेंगे और अविशेषज्ञों का मन होता है कि सब पर कब्जा कर लो। धन की भी ताकत मेरे हाथ में हो, उद्योग मेरे हाथ में हों, सब मेरे हाथ में हों। धर्म भी मेरे हाथ में हो, विज्ञान भी मेरे हाथ में हो, लेकिन उसकी चाह को अगर हमने पूरा होने दिया तो खतरा होगा। इसलिए मैं एक धारणा आपको देना चाहता हूं मेरिटोक्रेसी की, गुणतन्त्र की। गुणतन्त्र गणतन्त्र के माध्यम से काम करने की धारणा है और आज नहीं कल, सारी दुनिया में जहां भी समझ बढ़ गयी है, वहां एक्सपर्ट मूल्यवान् होता चला जा रहा है। आज नहीं कल, इस बात की बहुत सम्भावना है कि वह जो विशेषज्ञ हैं, वह जो ज्ञानी है उसके हाथ में सब चला जाये।

मेरे एक मित्र ने खबर भेजी है कि जैसा आज आप कह रहे हैं कि सिर्फ पूंजीवाद ही जानता है, पूंजी को पैदा करना। ऐसा ही कुछ जमाने पहले ब्राह्मण कहते थे कि ब्राह्मण ही जानता है ज्ञान पैदा करना। अब वे ब्राह्मण कहां है? उन्होंने पुछवाया है कि अब ज्ञान कोई भी पैदा कर रहा है वैसे ही आप जो कहते हैं, ये पूंजीपति भी चले जायेंगे तो कोई भी पूंजी पैदा करेगा।

उन मित्र से मैं निवेदन करना चाहूंगा कि उन्हें शायद पता नहीं है कि हम ऐसा नहीं कहते रहे हैं कि ब्राह्मण ही ज्ञान पैदा कर सकता है। हम ऐसा कहते रहे हैं कि जो ज्ञान पैदा करता है, वह ब्राह्मण है और आज भी ब्राह्मण ही ज्ञान पैदा कर रहा है सारी दुनिया में। आइंस्टीन ब्राह्मण है, बनिया नहीं। और बर्ट्रेंड रसेल ब्राह्मण है। मार्क्स भी ब्राह्मण है। ये सब ब्राह्मण हैं। यदि हिन्दुस्तान में मार्क्स पैदा होता तो कभी का महर्षि हो जाता। ये सब ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण का मतलब क्या है? कोई जन्म से ब्राह्मण नहीं होता। जन्म से बांधने की वजह से बड़ी भूल हो गयी और अन्याय हो गया। यह धारणा कि मनुष्य चार प्रकार के होते हैं, बड़ी कीमती अन्तर्दृष्टि है। भूल तो यहां हो गयी कि हमने जन्म से इसे बांध दिया। कोई आदमी जन्म से ब्राह्मण नहीं होता, लेकिन कुछ लोग हैं जिनके लिए जीवन भर ज्ञान की खोज ही जिनकी आत्मा है। कुछ लोग हैं, धन की खोज ही जिनकी आत्मा है। कुछ लोग हैं, शक्ति की खोज ही जिनकी आत्मा है। कुछ लोग हैं, श्रम ही जिनकी आत्मा है। यह जो चार की कल्पना थी—ब्राह्मण की, शूद्र की, वैश्य की, क्षत्रिय की, वह कल्पना जन्म से सम्बन्धित होकर रुग्ण हो गयी। धारणा कुछ और थी। धारणा यह थी कि चार टाइप के लोग हैं दुनिया में और वह धारणा अभी भी गलत नहीं है। और कभी गलत नहीं होगी। वह

धारणा सदा रहेगी। कुछ लोग हैं जो धन पैदा कर सकते हैं, वह कुछ ही लोग हैं। जरूरी नहीं कि धनिक का बेटा धन ही पैदा कर सकता है। इसलिए लिक्विडिटी तो होनी ही चाहिए, लेकिन धन पैदा करने वाली प्रतिभा कुछ लोगों में है, वे ही वणिक् हैं। ज्ञान कुछ लोग पैदा कर सकते हैं। अब मार्क्स बीस साल तक ब्रिटिश म्युजियम की लाइब्रेरी में बैठ कर पढ़ता रहा और इतना उसने पढ़ा कैपिटल लिखने के लिए कि जब लाइब्रेरी बन्द होती तो चपरासी उसे अक्सर बेहोश हालत में घर पहुंचाता, क्योंकि वह दिनभर पढ़-पढ़ कर बेहोश हो जाता, यह आदमी ब्राह्मण है। असल में दुनिया में विचार का जन्म बिना ब्राह्मण के होता ही नहीं। कहीं भी दुनिया में जब कोई ज्ञान लायेगा तो वह टाइप ब्राह्मण का होगा। धन कुछ लोग पैदा कर सकते हैं और राजनीति की जो दौड़ है, वह धनिक की दौड़ नहीं है। राजनीति की जो दौड़ है, अगर वह ठीक और शुद्ध हो तो क्षत्रिय की दौड़ है। वह जो टाइप है शक्ति के लिए, शक्ति की खोज में चलता है, जीवन भर उसकी दौड़ है। दुनिया में शूद्र भी मिट नहीं जायेगा। हां, शूद्र जन्म से कोई भी नहीं होना चाहिए; लेकिन शूद्र का कुल मतलब इतना है कि जो श्रम कर लेता है, खाना खा लेता है, बच्चा पैदा करता है और मर जाता है। बहुत लोग शूद्र हैं। ब्राह्मणों के घर भी शूद्र पैदा होते हैं। वणिकों के घर में भी पैदा होते हैं, क्षत्रियों के घर में भी पैदा होते हैं। शूद्र का मात्र मतलब इतना ही है, इसलिए शूद्र बुरा शब्द नहीं है। उसका कुल मतलब इतना है कि ऐसा आदमी, जो खा लेता है, पी लेता है, पैदा कर लेता है, प्रकृति का काम पूरा कर लेता है और एक पशु के तल पर जी कर समाप्त हो जाता है। लेकिन हमारा जो सोचने का ढंग है, वह यह है कि ब्राह्मण जन्म से है। जन्म वाला ब्राह्मण खो गया। जन्म वाला धनी भी नहीं बच सकता। लेकिन जिसमें धन की प्रतिभा है, उसकी स्वतन्त्रता तो बचनी चाहिए कि वह धन खोज सके। सेवा जिसे करनी है, श्रम जिसे करना है, वह श्रम कर सके। ज्ञान जिसे खोजना है, वह ज्ञान खोज सके।

समाजवाद सब पर रोक लगाता है। आज रूस में ज्ञान की खोज पर बुनियादी रोक है। सभी तरह का ज्ञान नहीं खोजा जा सकता है। अगर कोई आज रूस में कहे कि मैं ध्यान के सम्बन्ध में कुछ खोज कर रहा हूं तो उपाय नहीं है। आज रूस में संन्यासी होने का उपाय नहीं है। संन्यासी की भी अपनी खोज है और कौन कह सकता है कि उसी की खोज अन्तिम सिद्ध न होगी? जब सब ज्ञान थक जाये तो पता नहीं उसी की खोज सही हो। आइंस्टीन जैसा खोजी भी जीवन के अन्त में यही कहता है कि सब खोज कर मैं उस जगह पर पहुंचा, जहां मैं कह सकता हूं कि जितना खोजा उतना ही पाया कि अज्ञानी हूं। जितना खोजा उतना ही पता चला कि और अनन्त खोजने को है। अन्त में इतना ही कह सकता हूं कि

जीवन एक रहस्य है। और उसका कोई आर-पार नहीं है। यह आदमी संन्यासी हो गया और रहस्य के किनारे पहुंच गया, लेकिन रूस में रहस्य की बात नहीं की जा सकती। ईश्वर वहां वर्जित खोज है। वह खतरनाक बात है। इसका मतलब हुआ कि ब्राह्मण के लिए पैदा होने के उपाय रोके गये। धन भी नहीं खोजा जा सकता। अभी आज मुझे किसी ने कहा कि सम्भवतः रूस ने निमन्त्रित किया है फोर्ड को कि वह रूस में मोटर के कारखाने डाले। अमरीका से फोर्ड को बुलाइयेगा और अपने मुल्क में जो फोर्ड पैदा होता है, उसकी पचास साल में हत्या कर दी। वह तो रूस में ही पैदा हो सकता था फोर्ड, कोई अमरीका से ही लाने की जरूरत थी? लेकिन आज अमरीका को निमन्त्रण देना पड़ेगा फोर्ड बुलाने के लिए। मामला क्या है? क्या रूस के पास वह जो वैश्य था, वह जो बुद्धि थी, जो धन पैदा करती, वह नहीं पैदा हो सकती? वह हो सकती थी, लेकिन उसे पचास साल में रोका गया है। उसको सब तरह से रोका और तोड़ा है। उसको मिटा डाला है। आज वह जंजीर में कसी है। आज उसके फैलने का उपाय नहीं रह गया है। समाजवाद इन चारों तरह के व्यक्तियों को स्वतन्त्रता नहीं देता। इसलिए मैं मानता हूं कि वह अमानवीय है। पूंजीवाद एक मानवीय व्यवस्था है जो सब तरह के व्यक्तियों को सब तरह की दिशाओं में, सब तरह की पूरी स्वतन्त्रता देती है। अगर नहीं दे रही है तो कोशिश कर रही है कि वह पूरी दे। अगर कहीं रुकावट है तो उस रुकावट को हटाना चाहिए, लेकिन कुछ लोग ऐसे हैं जो कहते हैं कि क्या जरूरत है बीमारी दूर करने की? बीमार को ही दूर कर दो। वे कहते हैं, क्या फायदा है इलाज करने से। मारो इस मरीज को। पूंजीवाद में खामियां हैं, वे खामियां दूर की जा सकती हैं; लेकिन कुछ लोग हैं, जो कहते हैं इतनी खामियां हैं मारो मरीज को। लेकिन उन्हें पता नहीं कि यह मरीज का मरना पूरी मनुष्य-जाति का मरना हो सकता है।

इसी सन्दर्भ में मैं आपको कहूं। कल मैंने गांधीजी को कुशल बनिया कहा तो कुछ लोगों को बड़ी तकलीफ हो गयी। वे बनिया थे। बनिया इसी हिसाब से, जो मैंने चार वर्ग बताये। तो किसी ने कहा कि आपने बड़ी निन्दा का शब्द उपयोग कर दिया। कुछ लोगों का ख्याल है कि 'बनिया' शब्द निन्दा का है। बनिये को भी लगता है कि बनिया शब्द निन्दा का है। कोई शब्द निन्दा का नहीं है। बनिया सिर्फ एक फैक्ट है। वणिक् एक तथ्य है। वह भी एक तरह का आदमी है और मैं कहता हूं, गांधी ब्राह्मण नहीं है और गांधी शूद्र भी नहीं हैं और गांधी क्षत्रिय भी नहीं हैं। गांधी का मूल व्यक्तित्व बनिया का है, लेकिन यह तथ्य की बात है। कन्डमनेशन भी नहीं है, लेकिन हम तो इतने सोचने में क्षीण हो गये हैं कि या तो हम प्रशंसा समझते हैं या निन्दा समझते हैं। फैक्ट को तो हम समझते ही नहीं कभी कि कोई बात फैक्ट भी हो सकती है। अगर मैं आपसे कह दूं कि

फलां आदमी को टी० बी० है तो वह कहेगा कि आप हमको गाली दे रहे हैं। टी० बी० है तो इसमें गाली की क्या बात है? गांधीजी बनिया हैं, इसलिए मैंने कहा। कोई निन्दा नहीं की है। तो उस मित्र ने कहा कि आप और दो-चार उल्लेख दें।

हजार उल्लेख दिये जा सकते हैं, फिर भी एक-दो मैं देना चाहूंगा। महावीर त्यागी ने संस्मरण लिखा है। गांधीजी उनके गांव में आये रात बड़ी सभा हुई। गांधीजी ने सभा में लोगों से दान मांगे। कोई जो देना चाहे, दे दे। किसी ने रुपये दिये, किसी ने कान के इयररिंग दिये, किसी ने पैर की पायल दी। किसी ने चूड़ी दी। गांधी वह सब वहीं मंच पर डालते गये। लोगों से लेते गये और मंच पर डालते गये और फिर महावीर त्यागी से कह गये कि मैं जाता हूं और तुम सब समेट कर ले आओ। वह सब समेट के रात बारह बजे पहुंचे। उन्होंने सोचा कि गांधीजी सो भी गये होंगे, लेकिन उन्हें पता नहीं कि कुशल वणिक् की बुद्धि क्या चीज है। सोना पीछे, हिसाब पहले। वह बुद्धि पहले हिसाब करती है। तो सोचा, इतनी रात न जाऊं, लेकिन बारह बजे गया तो देखा कि बूढ़े गांधी जाग रहे हैं और गांधीजी ने कहा, 'ले आये!' जल्दी से खोलकर सब देखा। न केवल देखा, उन्होंने कहा, 'फिर से जाओ। इसमें एक ही इयररिंग है। कोई स्त्री मुझे एक इयररिंग नहीं देगी, देगी तो दोनों देगी। इयररिंग दो होने चाहिए।' महावीर त्यागी एक बजे रात वापस भागे। रोते-धोते वहां पहुंचे। गैस जला कर फिर ढूंढा, मिल गया वह आभूषण। वैश्य की नजर बड़ी गहरी होती है। वह लेकर लौटा बेचारा। सोचा, सो गये होंगे गांधीजी, लेकिन नहीं वे अभी जाग रहे थे। जब इयररिंग मिल गया तब कहा कि अब हिसाब ठीक है। मैं कोई डेरोग्रेटरी बात नहीं कह रहा हूं, यह भी प्रतिभा का एक ढंग है। इसमें कुछ निंदा की बात नहीं है। और यदि हम इस व्यक्तित्व को समझ लेते तो हिन्दुस्तान की जिन्दगी में बड़ा फर्क पड़ता। क्योंकि बनिये के हाथ में नेतृत्व हो तो खतरा होने वाला ही है। गांधी को काम दूसरे करने पड़े। काम क्षत्रिय का करते थे। भगतसिंह उस काम को ठीक से कर लेता, सुभाष ज्यादा ठीक से कर लेते। लेकिन वह नहीं हो सका और उसका परिणाम हुआ कि जो वैश्य की प्रतिभा कर सकती थी, वह उसने किया। पार्टीशन हुआ, आजादी कटी हुई और मरी हुई हाथ में आयी; क्योंकि वश्य-प्रतिभा समझौते पर सदा राजी होती है। बनिया अतिवादी नहीं होता है। वह कहता है, आओ आधा-आधा कर लें। तो गांधी के नेतृत्व का परिणाम है वह बंटवारा; क्योंकि वणिक् की बुद्धि झगड़े की नहीं होती है, कम्प्रोमाइज की होती है। उसे निपटारा करना है। आधा-आधा बांट लो और क्या ज्यादा झंझट करनी है। गांधी ऐसा कहें या न कहें, यह सवाल नहीं है। गांधी के नेतृत्व ने जो मन देश को दिया, वह बनिया का

था। और गांधी का इसलिए अंग्रेजों से मेल पड़ा, क्योंकि वह कौम बनियों की कौम थी। गांधी के सिवाय अंग्रेजों से किसी का मेल न पड़ा। भगतसिंह से कैसे मेल पड़ता? सुभाष से कैसे मेल पड़ता? गांधी से पड़ा। पड़ा इसलिए कि दोनों का माइंड एक टाइप का था। बनिया कौम थी। इधर भूल से क्षत्रिय की ताकत मिल गई थी। उधर वैश्य ही लड़ने वाला था, इसलिए देख कर बड़ी हैरानी होगी कि अंग्रेजों ने गांधी की जितनी सुरक्षा की, दुनिया के किसी राज्य ने कभी राज्य के दुश्मन की ऐसी सुरक्षा नहीं की। हम न बचा सके गांधी को अंग्रेजों के जाने के बाद, अंग्रेजों के वक्त गांधी बचा रहा। बड़े मजे की बात है, अंग्रेजों ने पूरी सुरक्षा दी गांधी को; क्योंकि अंग्रेजों को साफ हो गया कि नाता इसी से बना कर रखो। आज नहीं कल, यही आदमी काम का है। बाकी सबसे झंझट हो जायेगी। गांधी और अंग्रेजों के बीच एक इनर क्म्यूनियन, जिसको कहते हैं, एक आन्तरिक सम्बन्ध हो गया। वह सम्बन्ध होना बिल्कुल निश्चित था। वह बिल्कुल स्वाभाविक था। वह टाइप एक था। अंग्रेज गांधी को समझा सके, और गांधी अंग्रेज को समझा सके और उनका ताल-मेल बैठ गया, इसलिए हिन्दुस्तान आजादी न ले पाया। हिन्दुस्तान को आजादी मिली और मिली हुई आजादी गुलामी से भी बदतर होती है। आजादी छीनी जाती है, ली जाती है, मांगी नहीं जाती। आजादी समझौतों से, वार्ताओं से नहीं मिलती और जब आजादी ली जाती है तो उसमें एक जिन्दगी होती है। उसके खून में गति होती है। और जब आजादी मिलती है तो वह मरे हुए लोथड़े की तरह होती है। मिली आजादी, लेकिन बेरौनक। उसमें कोई महिमा न थी। और मिलने का जो 'दुष्परिणाम हुआ, वह भी हुआ। गांधी रोज-रोज समझाते रहे पूरे मुल्क को कि हिंसा नहीं, हिंसा नहीं। क्योंकि वैश्य-चित्त हिंसा नहीं कर सकता। क्या आपको ख्याल आता है कभी कि महावीर क्षत्रिय थे, लेकिन उनके पीछे जो कौम इकट्ठी हुई वह बनियों की है। महावीर क्षत्रिय हैं। जैनियों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय हैं, लेकिन जैनी कोई क्षत्रिय नहीं है, वे सब बनिये हैं। बात क्या है? बनिये को अहिंसा अपील कर गयी, और कोई बात नहीं है। वह जो मुल्क के भीतर बनिया दिमाग था उसने कहा, यह आदमी बिल्कुल ठीक कह रहा है, क्योंकि न हम हिंसा करेंगे, न दूसरे हमारी हिंसा करेंगे। जंचती है यह बात। सम्मिलित हो जाओ। गांधी के हाथ में होने की वजह से अहिंसा आन्दोलन बनी और अहिंसा के आन्दोलन की वजह से हिन्दुस्तान को बड़े दुर्भाग्य भी झेलने पड़े। बड़ा दुर्भाग्य तो यह हुआ कि हिन्दुस्तान के मन में अंग्रेजों के खिलाफ जो बिल्कुल सहज घृणा और हिंसा थी, गांधी ने उसको कभी प्रकट नहीं होने दिया। उसको दबाया। जरा कहीं हिंसा प्रकट हुई कि गांधी का वैश्य पीछे हट गया। उसने कहा कि नहीं भाई, हम दुकानदार आदमी हैं, हम समझौता करते हैं, हम ऐसी

बात नहीं करते हैं। वह पीछे हट गया।

मुझे एक कहानी याद आती है। मुझे ख्याल आता है कि कहीं राजस्थान में एक छोटी-सी लोक-कहानी है। कहानी है कि एक क्षत्रिय है, राजपूत है, वह मूंछ पर ताव देता है और घर के सामने बैठा रहता है और उसने गांव भर में खबर कर दी है कि मेरे घर के सामने दूसरा आदमी मूंछ पर ताव देकर नहीं निकल सकता है। तो दूसरे लोग मूंछ वहां अपनी नीची कर लेते हैं कि कौन झंझट करे। वह अपने तख्त पर बैठा रहता है तलवार लिए। एक बनिया नया गांव में आया। उसको भी मूंछ रखने की धुन है। वह उसके सामने से निकला। उसने कहा, ऐ भाई, रुक, पहले मूंछ नीची कर। उसने कहा, तू कौन है मेरी मूंछ नीची करने वाला? राजपूत ने कहा, तो फिर ले यह तलवार सम्हाल। आओ हम निपटारा कर लें। उस बनिये ने यहां तक नहीं सोचा था कि तलवार से निपटारा करना पड़ेगा। उस बनिये ने कहा, ठीक है, लेकिन एक काम करो। अगर मैं मर जाऊंगा तो मेरे बच्चे परेशान होंगे, स्त्री परेशान होगी और तू मर जायेगा तो तेरी पत्नी विधवा होगी, बच्चे भीख मांगेंगे। तो एक काम कर। तू पहले घर में जाकर अपनी पत्नी व बच्चों का सफाया कर आ और मैं अपने घर में कर आता हूं। फिर हम दोनों लड़ लें। फिर कोई डर नहीं। क्षत्रिय ने कहा, बिल्कुल ठीक है। अक्ल ही होती क्षत्रिय के पास ज्यादा तो मूंछ पर ताव देकर बैठा न रहता। बनिया घर गया। क्षत्रिय अपने घर गया तो उसने तो सबका फैसला कर दिया। अपने बच्चे सब काट डाले। बाहर आकर खड़ा हो गया। बनिया वहां से मूंछ ही नीची करके आ गया। उसने कहा, मैंने सोचा, क्यों नाहक का झगड़ा करना, मूंछ ही नीची कर लेता हूं।

यह जो चित्त है, इसका अपना अस्तित्व है। निंदा, प्रशंसा—इनसे मुझे प्रयोजन नहीं है। मात्र तथ्य से जरूर प्रयोजन है। इसमें कोई निन्दा नहीं है कि क्षत्रिय ऐसा है, वैश्य ऐसा है। गांधीजी भी झंझट में पड़े, कहीं चौराचौरी की घटना हो या कहीं कुछ और हो जाये, फौरन पीछे हट जाना उनका नियम था। लेकिन इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दुस्तान के मन में अंग्रेजों के खिलाफ जो सहज घृणा पैदा हुई थी, हिंसा पैदा हुई थी, वह दब गई और उस दबाव की वजह से हिन्दू-मुस्लिम दंगे शुरू हुये। अगर हिन्दुस्तान अंग्रेजों से सीधा लड़ता तो हिन्दू-मुस्लिम कभी भी नहीं लड़ते। जब हम न लड़ पाये और घृणा इकट्ठी हो गयी तो कहीं-न-कहीं वह निकलेगी। तो हमें रास्ता खोजना पड़ा। हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुये। आम तौर से लोग समझते हैं कि गांधीजी ने हिन्दू-मुस्लिम दंगे रोकने की कोशिश की। मैं आपसे कहता हूं गांधीजी ही परोक्ष रूप से जिम्मेवार थे सारे हिन्दू-मुस्लिम दंगों के लिए। अगर थोड़ी-सी साइकोलॉजी का, थोड़े मानस-शास्त्र का ख्याल हो तो समझ में आयेगी बात। इतनी जोर से रोक दी सब तरफ से हिंसा,

जो बिल्कुल स्वाभाविक थी कि हिन्दुस्तान आग लगा देता अंग्रेजी सल्तनत को। फेंक देता उन्हें मुल्क के बाहर। वह सब वेग रोक दिया गया। अब वह वेग कहां जाये, वह घृणा कहां से निकले ?

आपको पता है, एक आदमी दफ्तर में काम करे, मालिक उसको डांट दे, उसकी तबीयत होगी कि गर्दन दबा दे उसकी; लेकिन मालिक की गर्दन कैसे दबायेगा ? वह हंसता रहेगा, मुस्कुराता रहेगा, पूंछ हिलाता रहेगा। फिर घर चलेगा। फिर उसकी साइकिल देखें, पैंडल जोर से चलेगी। क्यों ? मालिक को जो नहीं मार पाया, वह पैंडल पर ही जोर आजमा रहा है। अब वह जा रहा है तेजी से। अब उसकी पत्नी को समझना चाहिए कि पति परमात्मा घर लौट रहे हैं और मालिक से कोई झंझट हो गयी है, लेकिन पत्नी को क्या पता ? वह बड़े मजे से प्रतीक्षा कर रही है कि पतिदेव लौटते होंगे। पतिदेव लौट रहे हैं। पति को भी पता नहीं, लेकिन वह गर्दन पकड़ेंगे पत्नी की। रोटी जल गयी, बिस्तर ठीक नहीं लगे, हजार बातें हैं। पत्नी को ठीक किये बिना नहीं मानेंगे। उसको करना था मालिक को ठीक, वह कर नहीं पाया। घृणा भीतर थी, वह निकास चाहती है, वह बढ़ेगी। अगर भीतर की नाली बन्द कर देंगे तो घर भर में गन्दगी बढ़ेगी। नाली भी चाहिए घर में। हिंसा है, उसका बहाव भी चाहिए। अगर वह ठीक जगह न बह जाये तो गलत जगह से बहेगी और ठीक जगह से बही हुई हिंसा की बजाये गलत जगह से बही हुई हिंसा बहुत महंगी पड़ेगी। लेकिन पत्नी कर क्या सकती है ? पति को मार नहीं सकती। अभी तक पत्नी की इतनी हिम्मत नहीं हुई। हो जानी चाहिए, लेकिन पतियों ने समझाया हुआ है कि हम परमात्मा हैं। अब परमात्मा को मारो तो झंझट है। हालांकि मन में शक तो उठता है, लेकिन मानना पड़ता है; क्योंकि उसी ने प्रचार किया है। तो पत्नी बेटे का रास्ता देखेगी, लौटता होगा स्कूल से। ये सब अनकांशस डैविएशंस हैं। बेटा चला जा रहा है नाचता हुआ। उसे कुछ पता नहीं, फिल्म का गीत गाता हुआ। पकड़ लेगी मां गर्दन कि गंदे गीत गा रहे हो ? कल भी यही गा रहा था। परसों भी यही गा रहा था। तुमने भी यह गाया है, तुम्हारे पति ने भी यही गाया है, उनके बाप-दादे भी यही गा रहे थे। यह कोई नया नहीं है, लेकिन उसकी गर्दन पकड़ लेती है कि गन्दा गीत गाते हो ! अब वह बेटा क्या करे ? मां को थप्पड़ मारे ? अभी तक दुनिया इतनी सभ्य नहीं हो पायी है। वह बेटा जायेगा अपने कमरे में और गुड़िया की टांग तोड़ कर चार हिस्से कर देगा।

माइंड की इनर्जीज हैं। ऊर्जाएं हैं। गांधी ने हिन्दुस्तान की हिंसा को रोक कर दमन पैदा किया। वह अंग्रेजों की तरफ बही होती तो एक शानदार मुल्क पैदा होता। हिन्दुस्तान पाकिस्तान दो मुल्क नहीं होते। लड़ कर तलवार पर धार आ गयी होती, लड़कर हमारी जिन्दगी में रस, उमंग, आशा आ गयी होती। वह नहीं हो पाया। लेकिन तलवार हमें चलानी पड़ी और पड़ोस में ही चलानी पड़ी, फिर मुसलमान और हिन्दू टकराये और इसलिए पन्द्रह अगस्त के बाद जो इतनी बड़ी हिंसा हुई, जिसमें दस लाख लोग मारे गये, इसका जिम्मेवार कौन है ? लोग बहुत बेईमान हैं। वे कहते हैं अंग्रेजों ने भड़का दिया, कोई कहता है जिन्ना ने भड़का दिया। नहीं साहब, न जिन्ना, न अंग्रेज। असली कारण यह है कि हिन्दुस्तान के मन में आग थी, उसको निकालने का कोई मौका नहीं था और जब हिन्दुस्तान बंटा, एक मौका मिल गया कि अब ठीक है, निकाल लो, वह राहत निकली। सैकड़ों वर्षों से गुलामी की जो पीड़ा थी, उसको बहने का कोई उपाय न था, वह बही। हिन्दुस्तान भी बंटा, लोग भी मरे। अगर दस लाख लोग ही मरने थे तो अंग्रेजों से हम कभी का देश छीन लिए होते। दस लाख लोग मरने को किसी भी दिन तैयार होते, तो अंग्रेज उसके दूसरे दिन ही हिन्दुस्तान में न होते। लेकिन वह न हो सका।

जब मैं कहता हूं, गांधीजी वैश्य हैं, तो मैं बहुत सोच कर कह रहा हूं, गाली नहीं दे रहा हूं और समझ लेना कि वह वैश्य हैं, इसलिए आगे भी उनसे समझ कर सम्बन्ध रखना। वैश्य का अपना उपयोग है, उसकी अपनी जगह है। वह अपनी जगह बहुत कीमती है। ब्राह्मण का अपना उपयोग है, वह अपनी जगह कीमती है। शूद्र का अपना उपयोग है, वह अपनी जगह कीमती है। और किसी की कीमत मानवीय अर्थों में कम और ज्यादा नहीं होती है, लेकिन यह साफ-साफ होना चाहिए। समाजवाद इस सबको लीप-पोत देना चाहता है। मनुष्यों में जो विभिन्न टाइप हैं, उनको पोंछ डालना चाहता है। वह कहता है, मनुष्य एक जैसा है।

एक अन्तिम बात। एक मित्र ने कहा है कि आपने कहा कि गांधीजी ट्रेन का विरोध करते थे, टेलीग्राफ का विरोध करते थे, हवाई जहाज का विरोध करते थे। और दो-तीन मित्रों ने पूछा है कि आप गलत बात कह रहे हैं, यह कहां लिखा है ?

मैं बहुत हैरान होता हूं। मालूम होता है, आप कुछ पढ़ते-लिखते नहीं हैं। गांधीजी की किताब 'हिन्द-स्वराज्य' पढ़ें तो मैंने जितना कहा है, उससे हजार-गुना विरोध उसमें यन्त्रों का लिखा है। लेकिन 'हिन्द-स्वराज्य' उन्नीस सौ पांच में लिखी थी, इसलिए कोई कहेगा उन्नीस सौ पांच में लिखी किताब से उन्नीस सौ अड़तालिस में मरने वाले आदमी की बाबत निर्णय लेना ठीक नहीं है। मैं भी नहीं मानता, लेकिन उन्नीस सौ पैंतालिस में नेहरू को गांधीजी ने एक पत्र लिखा है। नेहरू ने पूछा है गांधीजी से कि उन्नीस सौ पांच में लिखी 'हिन्द-स्वराज्य' नाम की किताब में आपने रेलगाड़ी का, टेलीफोन का विरोध किया है, क्या आप अब भी उस विरोध को राजी हैं ? तो गांधीजी ने लिखा है उन्नीस सौ पैंतालिस

में कि मैं 'हिन्द-स्वराज्य' के शब्द-शब्द से आज भी राजी हूं। मालूम होता है, पढ़ते-लिखते नहीं हैं। चिट्ठियां तो बहुत-से लोगों ने लिख दीं कि आपको तथ्य पता नहीं है। सच बात यह है कि गांधीजी भी बहुत कम पढ़ने-लिखने में विश्वास करते थे और उनको मानने वाला और भी कम पढ़ता-लिखता मालूम होता है।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या आपने कहा कि गांधी और उनके आचार-विचार में विरोध है? लेकिन आपने कोई उदाहरण नहीं दिये।

मैं एक-दो उदाहरण देना चाहूंगा। गांधीजी जीवन भर अहिंसा का उपदेश देते हैं, लेकिन गांधी का व्यक्तित्व बायलेंट है, एक हिंसक व्यक्तित्व है। लेकिन वे अहिंसा की बातें करते थकते नहीं हैं। आप कहेंगे कि आप कैसे कह रहे हैं? इसलिए कह रहा हूं कि इसे थोड़ा समझना पड़ेगा। अगर मैं आपकी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाऊं और कहूं कि मेरी बात मानते हैं कि नहीं, नहीं तो छुरा मार दूंगा, तो आप कहेंगे कि बड़े हिंसक आदमी हो। उल्टा कर लें। मैं आपकी छाती पर छुरा नहीं रखता, छुरा अपनी छाती पर रखता हूं और कहता हूं कि मेरी बात मानते हो कि नहीं, नहीं तो छुरा मार लूंगा, तब मैं अहिंसक हो जाऊंगा? छुरे की सिर्फ दिशा बदल जाने से क्या आदमी अहिंसक हो जाता है? गांधीजी जिन्दगी भर यह धमकी देते रहे हैं कि मैं अपने को मार डालूंगा अगर मेरी बात नहीं मानते हो। यह हिंसक दबाव है। श्री अम्बेडकर को गांधीजी ने दबाया, उपवास और अनशन करके। गांधीजी ने जिन्दगी में किसी का हृदय-परिवर्तन नहीं किया, यद्यपि इतने उपवास किये। अम्बेडकर बेचारा झुक गया, राजी हो गया। बाद में अम्बेडकर ने कहा कि गांधीजी इस भ्रम में न पड़ें कि मेरा कोई हृदय-परिवर्तन हो गया। मैं अब भी मानता हूं कि मैं ही सही था और गांधीजी गलत थे, लेकिन फिर भी यह सोच कर कि इस आग्रह के पीछे अगर गांधीजी की जिन्दगी चली जाये तो महंगा सौदा हो जायेगा, मैं झुक गया। मेरा हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ। गांधीजी की जबर्दस्ती की वजह से झुक गया हूं। गांधीजी मरने की धमकी जिन्दगी भर देते रहे। मरने की या मारने की, दोनों धमकियां हैं हिंसा की, लेकिन हमें दिखायी नहीं पड़ती हैं। हमें दिखायी पड़ती है कि खुद को मारने की धमकी दे रहे हो तो अहिंसा हो गयी। सच बात यह है कि वह बहुत सूक्ष्म हिंसा है। यह अहिंसा नहीं है। अहिंसा का मतलब यह है कि जहां धमकी ही नहीं, न दूसरे को मारने की, न खुद को मारने की। गांधीजी के साथ जो लोग रहे, गांधी के बेटों से पूछें—हरिलाल गांधी से पूछें कि गांधी अहिंसक थे? तो हरिलाल मुसलमान क्यों हुआ? गांधी अहिंसक थे तो हरिलाल ने शराब क्यों पी, मांस क्यों खाया? गांधी अहिंसक थे तो हरिलाल जिन्दगी भर गांधीजी के खिलाफ क्यों रहा? असल में गांधीजी की अहिंसा भी

इतनी टार्चरिंग, इतनी सेडिस्ट थी कि अपने बेटे को भी उन्होंने अच्छी तरह सता डाला। हरिलाल भागा उनको छोड़ कर। यह बाप तो मार डालेगा। उसे पता नहीं था कि एक बेटे का बाप जो ठीक से नहीं हो पाया, वह कल राष्ट्रपिता होने वाला है। असल में एक बेटे का बाप होना बहुत कठिन है, राष्ट्रपिता होना बहुत आसान है; क्योंकि राष्ट्रपिता होने में किसी का पिता नहीं होना पड़ता है। हरिलाल से पूछें तो पता चलेगा कि गांधी का व्यक्तित्व हिंसक था कि अहिंसक था। कस्तूरबा से पूछें, हालांकि कस्तूरबा और गांधीजी को लेकर बहुत लेख लिखे जा रहे हैं कि बड़ा आदर्श दाम्पत्य जीवन था। बकवास करने में हमारी कौम का कोई मुकाबला ही नहीं है। अब गांधीजी और कस्तूरबा के बीच सतत कलह की जिन्दगी बीती, लेकिन हम कहेंगे वह आदर्श दाम्पत्य जीवन था। कस्तूरबा से पूछें, पूरी जिन्दगी उठा कर देखें, लेकिन उसको देखने की जरूरत नहीं। हम तो शोरगुल मचाने में, नारेबाजी करने में बड़े कुशल हैं। जब गांधीजी के घर अफ्रीका में कोई मेहमान होता तो उसका पाखाना भी वह कस्तूरबा से साफ करवाते। अब कस्तूरबा रो रही है, रोती हुई पाखाने का डिब्बा लेकर सीढ़ियां उतर रही है तो गांधीजी उससे नीचे खड़ा होकर कह रहे हैं कि रो मत, सेवा हंस कर करनी चाहिए। अब उसको बेचारी को दूसरे का पाखाना ढोना पड़ रहा है। वह कोई सेवा नहीं कर रही है, वह पति के चक्कर में पड़ गयी है और पति एक सिद्धान्त के चक्कर में है। वह पाखाना ढुलवा रहा है, लेकिन साथ में यह भी कि हंसते हुये पाखाना ढोओ। कई बार कस्तूरबा का हाथ पकड़कर आधी रात गांधीजी ने घर के बाहर कर दिया है कि निकल जा घर के बाहर—अगर मेरे सिद्धान्त नहीं मानती। यह व्यक्तित्व अहिंसक नहीं है, यह व्यक्तित्व बिल्कुल हिंसक है, लेकिन सिद्धान्त है अहिंसा का। असल में अहिंसा के सिद्धान्त के कारण गांधीजी के व्यक्तित्व को समझना मुश्किल हो गया है। जिन्दगी बड़ी उलझी बात है, इतनी आसान नहीं है। इसलिए जब मैं कुछ कहता हूं तो बहुत जल्दी निर्णय न लें। सोचें। सिद्धान्तों को नहीं, सत्यों को देखें, और अन्धे भक्तों की भांति नहीं, सजग विचारकों की भांति सोचें—समझें—खोजें। गांधीजी के व्यक्तित्व को उनकी समग्र नग्नता में समझना हितकर है, क्योंकि उस भांति हम इस देश के अत्यन्त जड़बद्ध पाखण्ड को समझने में सफल हो सकते हैं। इस देश की ऊंची सिद्धान्तवादी संस्कृति और वस्तुतः एकदम विपरीत वास्तविकता को समझने के लिए गांधीजी बिलकुल एक केस हिस्ट्री का काम दे सकते हैं।

क्रास मैदान, बम्बई, १३ अप्रैल १९७०

१०—पूंजीवाद, समाजवाद, सर्वोदय

मेरे प्रिय आत्मन्,

सम्बन्धित विषय पर सैकड़ों प्रश्न उपस्थित हुए हैं। संक्षिप्त में जितने ज्यादा-से-ज्यादा प्रश्नों के सम्बन्ध में बात हो सके, मैं करने की कोशिश करूंगा। एक मित्र ने पूछा है कि आप यह मानते हैं कि विनोबाजी के सर्वोदय से समाजवाद आ सकेगा।

विनोबाजी का सर्वोदय हो, या गांधीजी का। समाजवाद उससे नहीं आ सकेगा। क्योंकि सर्वोदय की पूरी धारणा ही मनुष्य को आदिम व्यवस्था की तरफ लौटाने की है। सर्वोदय की धारणा ही पूंजीवाद की विरोधी है। लेकिन पूंजीवाद से आगे जाने के लिए नहीं, पूंजीवाद से पीछे जाने के लिए है। पूंजीवाद से दो तरह से छुटकारा हो सकता है। या तो पूंजीवाद से आगे जायें या पूंजीवाद से पीछे लौट जायें। लौटना कुछ लोगों को सदा सरल मालूम होता है और आकर्षक भी, लेकिन पीछे लौटना न तो सम्भव है न, उचित है; जाना सदा आगे ही पड़ता है—चाहे मजबूरी से या स्वेच्छा से। जो मजबूरी से जाते हैं वे घसीटे हुए पशुओं की तरह जाते हैं। जो स्वेच्छा से जाते हैं उनकी चाल में एक गति, एक आनन्द और भविष्य को पाने की एक स्फूर्ति, खुशी, आशा और सपना होता है। इस हमारे देश में पीछे की तरफ जाने की बात इतनी घर कर गयी है कि जब भी मुसीबत हो हम पीछे की तरफ हटना चाहते हैं। उसके कारण मनोवैज्ञानिक हैं।

उन्हें थोड़ा समझना चाहिये। उससे विनोबाजी के सर्वोदय और गांधीजी के विचार और गांधीवादी पूरी दृष्टि का क्या मनोवैज्ञानिक अर्थ है, वह समझ लेना आसान होगा।

पहली बात तो यह है कि प्रत्येक मनुष्य के मन में यह विचार है कि पहले सब अच्छा था, गांव अच्छे थे, शहर बुरा है। क्योंकि शहर नया है, गांव पुराना लेकिन ये बातें वे ही लोग कहते हैं जो शहरों में रहते हैं, गांवों वाले नहीं। गांव की जिन्दगी एक दिन घूम कर देख आना और बात है और गांव में जीना बिल्कुल और बात है। साथ ही मजा यह है कि सर्वोदय पर और गांव पर और प्राचीन ग्रामीण व्यवस्था पर, पंचायत व्यवस्था पर जिन लोगों का बहुत जोर है, वे सब गांव में नहीं रहते। सब शहरों में रहते हैं। शहरों में रह कर वे किताबें लिखते हैं गांवों की सुन्दर, प्राकृतिक जिन्दगी के सम्बन्ध में। यह भ्रम जो हम पालते हैं, मनमोहक होते हैं लेकिन वे खतरनाक हैं। गांव का कोई भविष्य नहीं है, भविष्य है शहर का। आने वाली दुनिया में गांव नहीं होगा, होंगे शहर, और बड़े शहर, जिनके लिए हम कल्पना भी नहीं कर सकते। गांव जो है वह वैसा ही है जैसे झोंपड़ा है। आने वाली दुनिया में झोंपड़ा नहीं होगा, गांव भी नहीं होगा। असल में आने वाली दुनिया, ग्रामीण की दुनिया नहीं, नागरिक की दुनिया होने वाली है। सच तो यह है कि जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे, वैसे-वैसे आदमी जमीन से मुक्त होगा और जब तक आदमी जमीन से पूरी तरह मुक्त नहीं होता, तब तक आदमी पूरी तरह सुसंस्कृत न हो पायेगा। आदमी निरन्तर मुक्त हो रहा है बहुत चीजों से, लेकिन अब तक भोजन के लिए जमीन से मुक्त नहीं हो पाया है। लेकिन हो सकता है। और मेरी समझ में टेक्नोलॉजी का विकास उसे जमीन के ऊपर अनिवार्य रूप से भोजन के लिए निर्भर रहने से मुक्त कर देगा। बहुत दूर वह दिन नहीं है जब कि आदमी को जमीन पर भोजन के लिए निर्भर नहीं रहना होगा। भोजन भी यन्त्र-उत्पादन से ही प्राप्त हो सकेगा। सिंथेटिक हो सकेगा। जमीन पर निर्भर रहने की बात आगे सम्भव नहीं है। जमीन छोटी भी पड़ गयी है, लोग ज्यादा भी हो गये हैं। और किसान जो है, कृषि जो है, वह अत्यन्त पुरानी बात है इस बीसवीं सदी से, विकसित टेक्नोलॉजी से, जिसका कोई बहुत गहरा सम्बन्ध नहीं हो सकता। भोजन के नये मार्ग खोजे जायेंगे। समुद्र से भोजन खोजा जा सकता है, खोज लिया गया है। हवा से भोजन खोजा जा सकता है, सूरज की किरणों से भोजन खोजा जा सकता है, खोज लिया जायेगा। और आज नहीं कल, कॉस्मिक किरणों से सीधा भोजन भी खोजा सकता है। भोजन के लिए मनुष्य का जमीन से छुटकारा जब तक नहीं होता, तब तक दुनिया की दीनता और दरिद्रता पूरी तरह मिटने वाली नहीं है। क्योंकि जमीन छोटी पड़ गयी है। लोग ज्यादा हो गये हैं। मृत्यु दर हमने कम कर दी है और जन्म दर को कम करना असम्भव मालूम पड़ रहा है। सर्वोदय भूमि से बंधा हुआ एक आन्दोलन है। वह अतीत की तरफ ले जाने

वाला आन्दोलन है। वह भविष्य की तरफ ले जाने वाला आन्दोलन नहीं है। भूमि से बंधे हुए आन्दोलन का कोई भविष्य हो भी नहीं सकता है।

दूसरी मजे की बात है कि सर्वोदय की सारी चिन्तना त्याग, सरलता, साधुता आदि पर खड़ी हुई है। यह त्याग, सरलता, साधुता हजारों साल से आदमी को सिखायी गयी बातें हैं। कोई मानता नहीं। कभी-कभी एकाध आदमी सादा और सरल खड़ा हो जाता है। वह भी सादा और सरल नहीं होता। वस्त्र पहन सकते हैं सादे और सरल, भोजन कर सकते हैं सादा, लेकिन मन उसका सामान्य आदमी से भी ज्यादा जटिल और ज्यादा काम्प्लेक्स हो जाता है। सरलता जीवन का सहज हिस्सा नहीं है। जीवन का सहज हिस्सा है विस्तार और जटिलता। ध्यान रहे, जीवन का विकास जटिलता की तरफ है। अमीबा है एक छोटा-सा पहला प्राणी जिससे मनुष्य विकसित हुआ। अमीबा के पास एक ही सेल है। वह एक ही सेल जीता है। बिल्कुल सरल प्राणी है। लेकिन न बुद्धि हो सकती है उसमें, न कुछ और हो सकता है। बस जी सकता है, श्वांस ले सकता है और मर जाता है। अमीबा सरल प्राणी है। फिर जटिलता शुरू होती है जैसे-जैसे विकास बढ़ता है। बन्दर कम जटिल है। आदिवासी कम जटिल है, बम्बई का निवासी ज्यादा जटिल है। जितनी जटिलता बढ़ती है मस्तिष्क की, व्यक्तित्व की, उतना विकास होता है। गांधीजी और विनोबाजी सरलता के पुराने आदर्श से पीड़ित हैं। उन सबका यह है कि जीवन सरल हो, थोड़ी आवश्यकतायें हों, छोटा झोंपड़ा हो, दो कपड़े हों, चरखे से काम चल जाये, जमीन पर खोद कर अगर थोड़े-से ही पैदावार हो जाये तो बहुत अच्छा। साधन की जरूरत न रहे, उपकरण का उपयोग न हो। लेकिन स्वाभाविक हैं ये मांगें। ये स्वभाव की तरफ लौटने की बातें बड़ी अस्वाभाविक हैं! आदमी निरन्तर जाता है जटिलता की ओर और आदमी निरन्तर जाता है आवश्यकताओं को बढ़ाने की ओर। दुनिया भर के सारे शिक्षक चिल्ला-चिल्ला कर हार गये कि आवश्यकतायें कम करो। आवश्यकतायें कम नहीं हो सकतीं। जीवन का लक्षण ही वह नहीं है। जीवन आवश्यकतायें बढ़ाता है। मरना हो तो आवश्यकतायें कम की जा सकती हैं और अगर आवश्यकतायें बिल्कुल-बिल्कुल कम कर दी जायें तो अन्ततः मरने के सिवाय कोई उपाय रह भी नहीं जाता है। अगर सारी आवश्यकतायें करनी हैं कम, तो धीरे-धीरे आत्मघाती पैदा होता है जो अपने को मारता चला जाता है और स्वयं को नष्ट कर लेता है।

जीवन है विस्तार, फैलाव आवश्यकताओं का। जितनी आवश्यकतायें फैलती हैं उतना मनुष्य उत्पादन करता है। जितनी आवश्यकतायें फैलती हैं उतना आविष्कार करता है। जितनी आवश्यकतायें फैलती हैं उतने उसके मस्तिष्क के अवरुद्ध हिस्से सक्रिय होते हैं। जितनी आवश्यकतायें फैलती हैं उतना मनुष्य पशु से मुक्त होता है। पशु के पास बहुत थोड़ी आवश्यकतायें हैं, इसीलिए वह पशु है। और

अगर आवश्यकतायें बिल्कुल कम की जायें तो आदमी को पशुओं के स्तर पर ही जीना पड़ेगा। उसकी मनुष्यता थोथी हो जायेगी। आदमी के होने का मतलब है जटिल आवश्यकताओं के विस्तार से भरा हुआ जीवन। सर्वोदय जैसे सारे आन्दोलन का लक्ष्य है सरलता, कम आवश्यकता, थोड़े में जियो। इसी आग्रह को लेकर वे चलते हैं। मनुष्य की प्रकृति और मनुष्य के मन और मस्तिष्क की समझ उनमें नहीं है, लेकिन फिर भी हमारे मन को वे बातें अपील करती हैं। वह अपील इसीलिए करती हैं कि जब हम जटिलता से घबरा जाते हैं तो पीछे लौटने का मन करने लगता है। अगर अभी एक आदमी पचास साल की उम्र का हो, उसके मकान में आग लग जाये तो आप उस मकान के सामने खड़े हुए उस पचास साल के आदमी को दस साल के बच्चों की तरह छाती पीट कर रोते हुए देखेंगे। इसका अर्थ है कि वह वापस लौट गया है। यह मानसिक डिग्रेशन है। अब वह इस समय दस साल का बच्चा है, पचास साल का आदमी नहीं। मकान में आग लग गयी है। बात जटिल हो गयी है। उसकी समझ के बाहर है। अब वह पैर पटक-पटक कर रो रहा है, चिल्ला रहा है। वह वही कर रहा है जो छोटा बच्चा करता। छोटा बच्चा करता तो ठीक था। लेकिन पचास वर्ष का आदमी करे तो रुग्ण है। लेकिन क्या हो गया उसे? स्थिति नयी है, जटिल है और उसकी समझ के बाहर है। इसलिए वह बचपन में पतित हो गया है। सर्वोदय या गांधीवादी दर्शन सारी मनुष्यता को ही इस भांति पतित करना चाहता है।

हम रोज कई बार बच्चे हो जाते हैं और बच्चे हम इसलिए हो जाते हैं कि जब भी कोई जटिल समस्या खड़ी होती है, तब हमारे मस्तिष्क से मांग होती है कि और ऊपर उठो, और चेतन हो जाओ। इतनी मांग नहीं झेल पाते हैं तो हम वापस लौट आते हैं। आदमी शराब पी लेता है या बेहोशी के और रास्ते खोज लेता है। शराब पीते ही वह जटिल समस्या को भुला देता है। ऐसे वह झंझट से बाहर हो जाता है। ज्यादा जटिल समस्या आ जाये तो भजन-कीर्तन भी करने लगता है। क्यों? भजन-कीर्तन करते समय वह बच्चों जैसा काम करने लगता है। अब वह भुलाने की कोशिश कर रहा है। भजन-कीर्तन, शराब और पीछे को ले जाने की आकांक्षा सदा जटिल जीवन और संघर्ष से पलायन है। सर्वोदय इत्यादि सब पलायनवादी विचार हैं जटिलता की दुनिया ही छोड़ दो। बम्बई में रहते ही क्यों हो? न्यूयार्क में बसते ही क्यों हो? मास्को में रहने की आवश्यकता ही क्या है? लौट जाओ ठेठ गांव में। लौट जाओ वहां जहां जंगली आदमी रहता था। उसी तरह के कपड़े पहन लो। नंगे रह सको तो और भी अच्छा है। चरखे से छुटकारा हो जाये तो और भी अच्छा। कन्दमूल-फल खा लो। थोड़ा-बहुत खेती-बाड़ी कर लो तो ठीक बात है। पीछे लौटने का आग्रह है। क्यों? इसलिए है कि जिन्दगी की

बड़ी समस्यायें खड़ी हो गयी हैं जिनको हल करने में कुछ लोग घबरा गये हैं। वे पीछे लौटने की बात कर रहे हैं। मैं मानता हूं कि जब भी बड़ी समस्यायें आती हैं तब मनुष्य की जिन्दगी में छलांग लगाने का मौका आता है। संचेतना वहीं छलांग भरती है। जब ऐसी समस्यायें घेर लेती हैं जिनका सामना करने के लिए सोचना पड़ता है, विचार करना पड़ता है, संघर्ष करना पड़ता है, प्राणों को दांव पर लगाना पड़ता है और ऐसा हो जाता है कि मरेंगे कि बचेंगे, तभी छलांग के लिए संचेतना आगे का कदम उठाती है। इस समय मनुष्यता बहुत-सी जटिल समस्याओं के सामने खड़ी हो गयी है। दो तरह के लोग हैं। अधिक लोग तो वे हैं और उनकी बात हमें ठीक मालूम पड़ती है। वे कहते हैं पीछे लौट चलो, क्यों झंझट में पड़ते हो। पीछे लौट चलो, जहां कोई समस्याएं नहीं थीं। रेलगाड़ी नहीं थी, कारें नहीं थीं, हवाई जहाज नहीं था, शहर नहीं थे, छोटे-छोटे गांव थे। वहां लौट चलो। बड़े विश्वविद्यालय न थे, वहां लौट चलो। गुरुकुल थे, दस-पांच बच्चे पढ़ते थे, वहीं लौट चलो। ये समस्यायें बड़ी पैदा हो रही हैं। अब एक यूनिवर्सिटी है। बीस हजार विद्यार्थी पढ़ते हैं, तो समस्या पैदा होगी। समस्या इसलिए पैदा होगी कि बीस हजार जवान लड़के दुनिया में इसके पहले कभी भी एक जगह इकट्ठे न हुए थे। पुराना लड़का अपने बाप के पास था। बाप हमेशा एकाधिकारी था, अपने बेटे को दबा लेता था। अब बीस हजार बेटे इकट्ठे हो गये हैं और बीस हजार बाप कहीं भी इकट्ठे नहीं हैं। बहुत कठिनाई हो गयी है। बीस हजार बेटे इकट्ठे मिल कर एक-एक बाप को बिल्कुल दबाये दे रहे हैं। अब एक रास्ता तो यह है कि उन बीस हजार लड़कों की समस्याओं का सामना करने के लिए कुछ सोचो, जो कि बहुत कठिन है। क्योंकि पुरानी संस्कृति के पास कोई उत्तर नहीं है और पुराने किसी ग्रन्थ में उत्तर हो नहीं सकता। क्योंकि समस्या नयी है। युवकों का एक जगह इकट्ठा होना बिल्कुल ही नयी घटना है। सच तो यह है कि ये युवक ही नयी घटना है। पुरानी दुनिया में युवक नहीं होता था। बच्चे होते थे, बूढ़े होते थे। न होने का कारण था। क्योंकि युवक होने देने के पहले ही समस्या का हल कर देते थे। बाल-विवाह कर देते थे। बस वह आदमी बूढ़ा हो जाता था। दस साल के लड़के का विवाह कर दिया, उसको युवक होने का मौका ही न मिला। वह वह बीस साल का युवक होगा तब तक उसके दो बच्चे हो चुके होंगे। वह बूढ़ा हो चुका। बाप कभी भी जवान नहीं होता। बाप बूढ़ा हो ही जाता है। उसका उत्तरदायित्व खड़ा हो जाता है। पुरानी दुनिया का हल था कि बच्चे को जवान मत होने दो और फिर एक-एक बच्चा अपने-अपने बाप के पास था। इसलिए खतरा नहीं था। अब एक-एक लाख विद्यार्थी जवान एक ही जगह इकट्ठे हैं। अतः एक समस्या सामने आ गयी है। अब क्या करें? अब यह रास्ता है कि

विश्वविद्यालय तोड़ो। गांव भेज दो इनको। प्राथमिक शिक्षा दो जिसको गांधीजी बुनियादी शिक्षा कहते हैं। इतनी शिक्षा दे दो, बस वह काफी है। बढ़ईगिरी सिखा दो। कुछ जूते का, चमड़े का काम करना सिखा दो। कपड़े बुनना सिखा दो। बस ठीक है।

ये शिक्षायें अगर मान ली गयीं तो यह देश मर जायेगा। यह बुनियादी शिक्षा हुई या अशिक्षा हुई या शिक्षा से बचना हुआ? वे कहते हैं कि फिर समस्या ही नहीं रहेगी। वे ठीक कहते हैं, क्योंकि पलायनवादी समस्या को छोड़ कर ही वहां भाग जाता है जहां कि समस्या नहीं है। लेकिन इस झंझट से जूझना है, बाहर नहीं होना है। क्योंकि जूझने में ही विकास है, जूझने में ही गति है। जूझने में ही भविष्य है। भागने में सिवाय पतन के और कुछ भी नहीं है। सवाल नया है तो नये सवाल को नये ढंग से हल करना पड़ेगा। लेकिन पुरानी बुद्धि के पास उत्तर न होने से वह कहती है वापस लौट चलो—उन्हीं दिनों में जहां समस्या न थी। अब मैं आपसे यह कहता हूं कि सारी दुनिया में यह सवाल है कि क्या करें लड़कों का। लड़के इकट्ठे हो गये हैं। उनकी क्लास, उनका वर्ग बन गया है। बूढ़ों की कोई क्लास नहीं, कोई वर्ग नहीं। कुछ उपाय सोचना पड़ेगा। कुछ नया विचार सोचना पड़ेगा। मेरी अपनी समझ यह है कि बजाय पीछे लौटने के और गांव को गुरुकुल बनाने के और लड़कों को यह सिखाने के कि बस सिरघुटा कर, चोटी बढ़ा कर, गुरु के चरणों में सिर लगा कर बैठे रहो, पैर दबाते रहो—इससे काम नहीं होगा। वह समय गया और गुरु जो सिखा पाता था अब उस सिखाने का भी उपयोग नहीं रहा है। अब सिखाने का अर्थ इतना अधिक है कि छोटे-छोटे गुरुकुल नहीं सिखा सकते। ये विश्वविद्यालय भी हमारी शिक्षा के लिए छोटे हैं। अब और बड़े विश्वविद्यालय चाहिए और बड़े ग्रंथालय चाहिए। ज्ञान इतने जोर से विकसित हो रहा है कि उसे नयी पीढ़ी को देने का सवाल बहुत कठिन हो गया है। वह गुरुकुल में नहीं हो सकता। वह एक बूढ़ा आदमी बैठ कर नहीं सिखा सकता। लेकिन जहां दस हजार लड़के या एक लाख लड़के इकट्ठे हो गये हों, वहां सवाल है कि अब क्या करें। पुरातनवादी, पलायनवादी कहेगा अब पीछे लौट चलो, बन्द करो विश्वविद्यालय। गांधीजी विश्वविद्यालय के बड़े विरोधी थे उन्होंने अपने लड़कों को पढ़ने नहीं भेजा। अपने लड़कों को अशिक्षित रखा पूरी तरह। क्योंकि वे बड़े विरोधी थे विश्वविद्यालयों के। वे मानते थे कि विश्वविद्यालय भी एक रोग है। आधुनिक शिक्षा एक बीमारी है। लेकिन ऐसी दृष्टि स्वयं ही रुग्ण है, विक्षिप्त है। नहीं—मैं तो कहता हूं श्रम करो, जूझो नयी समस्या से। नये हल खोजो। मेरी अपनी समझ यह है कि जहां-जहां विश्वविद्यालय क्षेत्र है, उसके साथ ही जुड़े हुए क्षेत्र में रिटायर्ड अनुभवी वृद्धों को इकट्ठा कर दो। जो भी वृद्ध रिटायर्ड होते हैं विश्वविद्यालय-

क्षेत्र के निवासी हो जायें। अगर दस हजार युवक इकट्ठे हैं विश्वविद्यालय में तो दस हजार वृद्ध लोग भी वहां हों, वहां दोनों वर्ग आमने-सामने हों। निश्चित ही दस हजार वृद्धों की समझ, अनुभव, ज्ञान के मुकाबले ये बच्चे झुक जायेंगे। क्योंकि जहां दस हजार जीवन भर के अनुभव के वृद्ध लोग इकट्ठे हों और जिनके पास अब कोई काम न हो, जो फुर्सत में हों, जो बच्चों को थोड़ा पढ़ा भी सकें, उनके साथ खेल भी सकें, उनके साथ तैर भी सकें, उनके साथ गप-शप भी कर सकें, उनसे मिल भी सकें, क्योंकि वह फुर्सत में हैं। जहां दस हजार बूढ़े मिल जायें विश्वविद्यालय को, उस विश्वविद्यालय में युवकों की समस्या विदा हो जायेगी और दो पीढ़ियां सीधा एनकाउन्टर कर सकेंगी। हम कहते अवश्य हैं कि एक पुरानी पीढ़ी है और एक नयी पीढ़ी। लेकिन मेरे विचार में नयी पीढ़ी तो पीढ़ी है, पुरानी पीढ़ी-पीढ़ी नहीं है। वह फुटकर है। वह कहीं इकट्ठी नहीं है। इसलिए नयी पीढ़ी को आप कहीं भी मिल सकते हैं। पुरानी पीढ़ी को कहां मिलियेगा? पुरानी पीढ़ी को भी लाओ। लेकिन तब नयी समस्याएं, नये सवाल उठेंगे, नये ख्याल पैदा करने पड़ेंगे, नयी व्यवस्था देनी पड़ेगी। लेकिन हम इतनी कठिनाई न उठायेंगे। श्रम न उठायेंगे। पीछे लौट जाना पसन्द करेंगे। शुतुर्मुर्गों को सिर रेत में छिपा लेना कितना आसान है?

सर्वोदय-आन्दोलन द्वारा बहुत-सी भूमि बांटी गयी है। बिना इस बात की चिन्ता किये कि इस देश में भूमि इतनी बंटी हुई है कि अब इसे और बांटना इस देश को गरीब करना है। इस सम्बन्ध में विनोबाजी तो कहते हैं कि जो गरीब भूमि देता है उसको मैं और भी ज्यादा कीमत देता हूं। अगर सौ एकड़ वाला पांच एकड़ देता है तो वह कहते हैं यह कोई बड़ा दान नहीं है। लेकिन अगर पांच एकड़ वाला ढाई एकड़ दान दे देता है तो वे कहते हैं कि बहुत बड़ा दान है। यह एक बड़ी खतरनाक बात है। क्योंकि पांच एकड़ वैसे ही छोटा टुकड़ा है। यह पांच एकड़ वैसे ही गलत है। पांच एकड़ भूमि उत्पादक नहीं हो सकती है। लेकिन इसको वे और ढाई एकड़ दान करवा देंगे। अब उसके पास ढाई बची और दूसरे के पास ढाई बची। ऐसा करने से पूरे मुल्क का उत्पादन और नीचे गिरेगा। क्योंकि पांच एकड़ जितना पैदा करती थी, दो टुकड़ों में ढाई-ढाई एकड़ मिल कर उतना पैदा नहीं कर सकेगी। यह मामला बिल्कुल वैसा ही है जैसा कि मैंने किसी कहानी में सुना था।

एक राजा को अपने लड़के का विवाह करना था। उसने अपने लड़के के विवाह के लिए मंत्री से कहा कि सोलह साल की एक लड़की चाहिए। उस मंत्री ने बहुत खोज की, लेकिन सोलह साल की सुन्दर लड़की न मिली। तब वह आठ-आठ साल की दो लड़कियां ले आया; गणितज्ञ जो था। उसने सोचा कि ठीक है

एक रुपया न सही तो दो अठन्नी सही। सोलह साल की लड़की नहीं मिलती है तो आठ-आठ साल की दो लड़कियां उचित होंगी और आठ-आठ साल की न मिले तो चार-चार साल की चार से कर दो। लेकिन चार-चार साल की चार लड़कियां मिल कर सोलह साल की स्त्री नहीं बनती। यह गणित नहीं है। विनोबा ने जो हिसाब फैलाया है, उसमें जमीन के और टुकड़े करवा दिये और मजा यह है कि हमारा देश ऐसा नासमझ है कि कुछ हिसाब ही नहीं। प्रचार पर जीता है।

नागपुर विश्वविद्यालय ने अभी एक अनुसन्धान करवाया है। उस अनुसन्धान के ठीक आंकड़े मुझे याद नहीं हैं, लेकिन करीब-करीब आंकड़े ऐसे हैं। उस अनुसन्धान से बड़ी अद्भुत बातें पता चली हैं। वह अनुसन्धान एक-एक घर में पहुंचा देना चाहिए। उससे पता चला है कि जितनी जमीन भूदान में मिली है, उसमें अन्दाजन नब्बे प्रतिशत तो सरकारी जमीन है। सात प्रतिशत ऐसी जमीन है कि जिसमें अभी कुछ भी पैदा हो नहीं सकता। और तीन प्रतिशत में कोई एक प्रतिशत जमीन ऐसी है जो मुकदमेबाजी में उलझी है, जिसका कोई पक्का भरोसा नहीं है। सौ एकड़ जमीन मिली उसमें बाबा विनोबा के हाथ कितनी पड़ी और भूदान-आन्दोलन को कितनी मिली? लेकिन इससे क्या मतलब है? मतलब है कि कितने लाख एकड़ मिल गयी और इसी का शोरगुल मचाओ। वह कहां से आयी है, जमीन किसकी है, जिसने दे दी है, क्या वह देने वाला अभी भी कब्जा किये बैठा है? ऐसा भी है कि जिनके पास जमीन नहीं थी उन्होंने भी दान दे दी है। क्योंकि भीड़ में दान करने में क्या हर्जा है? जब जमीन देने की बात आयेगी तब देखा जायेगा। और मजा यह है कि इस मुल्क की जमीन इतने टुकड़ों में बंटी है कि इसे दान करवा-करवा कर और टुकड़े करवा कर इस मुल्क का सवाल हल नहीं होगा। इस मुल्क की खेती को टुकड़ों से मुक्त करने की आवश्यकता है। गांव की सारी खेती इकट्ठी हो सके तो खेती उद्योग हो सकती है। खेती को उद्योग बनाया जा सकता है। लेकिन हमारे ख्याल ऐसे हैं, बहुत पुराने दिनों से कि समस्या दान से हल हो जायेगी। लेकिन वास्तव में समस्या इतनी बड़ी है कि दान से हल नहीं होगी। समस्याओं को हल करना हो तो उसकी जड़ों को खोजना पड़ेगा कि जड़ें कहां हैं। हमें ऐसा लगता है कि आदमी को सिखा दो कि सरल जीवन-यापन करो, दो रोटी खा लो, एक कपड़ा पहन लो तो समस्या हल हो जायेगी। लेकिन वस्तुस्थिति इतनी सरल नहीं है। आदमी एक कपड़ा और दो रोटी लाने को राजी नहीं है। उसको जब तक दो रोटी नहीं मिली है तब तक वह कहता है कि ठीक है। दो रोटी मिल जाती है तो वह कहता है दो रोटी से क्या होगा, मुझे साबुन भी चाहिए और साबुन भी उसे मिल जाये तो वह कहता है रेडियो भी चाहिए और रेडियो मिल जाये तो कहता है कार भी चाहिए। वह ठीक ही कहता है। गलत नहीं कहता

है। जिन्दगी फैलती है। नयी मांग करती है। करनी चाहिए। क्योंकि नयी मांग होगी तो ही जिन्दगी में गति आयेगी। और अगर कोई समाज सरलता की बात पर राजी हो जाये और कम के लिए राजी हो जाये तो वह शक्तिहीन, सिमटता हुआ, मरा हुआ समाज होगा। आदिवासियों के समाज हैं। वे मरे हुए, सिमटते हुए समाज हैं। वहां कोई गति नहीं है, कोई विकास नहीं है, कोई तानसेन, कोई आइन्स्टीन, कोई कालिदास वहां पैदा नहीं होता। आदमी जीता है पशुओं की भांति। रोज उठता है, थोड़ा-सा खाकर जी लेता है। सो जाता है, बच्चे पैदा करता है और मर जाता है। मनुष्यता नहीं, पशुता के स्तर पर वह जीता है। सर्वोदयी या गांधीवादी विचारधारा, मनुष्य के विस्तार और भविष्य का चिन्तन नहीं है। उससे नहीं आयेगा समाजवाद। समाजवाद लाना हो तो विस्तार का दर्शन चाहिए, फैलाव का दर्शन चाहिए। आवश्यकताओं को अनन्त करने का दर्शन चाहिए। और मजा यह है कि आवश्यकतायें फैलती हैं और मनुष्य को उन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जितना श्रम करना पड़ता है, उतनी उसकी प्रतिभा और आत्मा निखरती है। और अन्तिम निखार उसका जो है वह बहुत अद्भुत है। अन्तिम निखार यह है कि निरन्तर आवश्यकताओं को बढ़ा कर निरन्तर नयी आवश्यकताओं को अनुभव करके वह जो व्यक्तित्व में निखार आता है, उसके आखिरी परिणाम में यह पता चलता है कि आवश्यकतायें कितनी ही बढ़ जायें, धन कितना ही उपलब्ध हो जाये, महल कितना ही बड़ा हो जाये, सब जब हो जाता है तब पता चलता है कि एक और आयाम भी है, भीतर की आत्मा का। अगर वह न फैले, अगर वह न बड़ा हो तो यह सब व्यर्थ पड़ा रह जाता है। धनी आदमी को ही धन की व्यवस्था का बोध होता है। धन की अन्तिम सार्थकता मैं यही मानता हूं कि वह आदमी को धन से मुक्त होने की क्षमता दे सकती है। जिसके बाहर की सारी आवश्यकताओं का फैलाव हो जाता है, उसको पहली बार भीतर की आवश्यकताओं का बोध होता है।

मैंने सुनी है उपनिषद् की एक छोटी-सी कहानी। एक युवक गुरुकुल से वापस लौटा। वहां से वह ब्रह्मज्ञान सीख कर उसकी बातें करता हुआ आया। उसकी बातें लोगों ने सुनीं। वह शाम तक ब्रह्मज्ञान की ही बातें करता रहा। उसके बाप ने कहा, देख पहले तू इक्कीस दिन का उपवास कर; फिर तुझसे ब्रह्म-ज्ञान की बातें करेंगे। उस लड़के ने उपवास किया। एक दिन बीत गया, दो दिन बीत गये। उसने ब्रह्मज्ञान की बातें करना बन्द कर दीं और भोजन की बातचीत शुरू कर दी। सात दिन बीते, वह लड़का सुबह से शाम तक भोजन की ही बात करने लगा। रात को भोजन के सपने देखने लगा। पन्द्रह दिन बीते, उसका बाप अगर उसे छेड़े भी कि कुछ ब्रह्म के सम्बन्ध में कहो तो चुपचाप बैठा रह जाये और अगर कोई जरा भोजन की चर्चा छेड़ दे तो उसके भीतर से धारा बहने लगती। इक्कीस दिन बीत जाने पर उसके बाप ने कहा, अब बैठो। अब ब्रह्म के सम्बन्ध में कुछ बातें करो। लड़के ने कहा, भाड़ में जाने दो ब्रह्म। अन्न के सम्बन्ध में कुछ कहिये पिताजी। तो उसके बूढ़े बाप ने कहा कि देख बेटा, मैं तुझे यह कहता हूं कि अन्न पहला ब्रह्म है। यह तू पहले सीख ले। जीवन की जिन्हें सामान्य आवश्यकतायें कहते हैं वह पहला ब्रह्म है। वह पूरा हो जाये तो भीतर के ब्रह्म का बोध शुरू होता है।

समझाया तो ऐसा जाता है कि गांधीजी और विनोबाजी की जो समाज-व्यवस्था होगी, बड़ी धार्मिक होगी। लेकिन यह बात मेरी समझ में नहीं आती। धार्मिक व्यवस्था पैदा ही नहीं होती दीन-दरिद्र स्थितियों में। धर्म का फूल भी खिलता है सुविधा में, सम्पन्नता में। जब भी सुविधा-सम्पन्नता होगी, तभी लोग धर्म-चिन्तन की तरफ उत्सुक हो जायेंगे। क्योंकि जिनके पेट भरे हैं, अब वे आत्मा को भरने की बात करेंगे। लेकिन जिनके पेट ही खाली हैं उन्हें आत्मा का सवाल नहीं उठता। इसलिए मेरी समझ में सर्वोदय के लाने से समाजवाद नहीं आयेगा। किसी दिन समाजवाद आये तो सर्वोदय आ सकता है और समाजवाद आयेगा पूंजीवाद के विकास से। पूंजीवाद का विकास हो तो समाजवाद सफल होगा। और समाजवाद ठीक से विकसित हुआ तो जो स्थिति होगी सर्वहित की, सबके उदय की, सबकी समानता की, उसे कोई चाहे तो सर्वोदय कहे, कोई चाहे तो साम्यवाद कहे। उससे बहुत अन्तर नहीं पड़ता। सर्वोदय से समाजवाद नहीं, वरन् समाजवाद से सर्वोदय आ सकता है और समाजवाद बिना पूंजीवाद के विस्तार के नहीं आ सकता। और जिसे हम सर्वोदय कहते हैं, वह कहता है पूंजीवाद का विस्तार छोड़ो। यह मशीन और उद्योग का युग छोड़ो। पीछे लौट चलो। राम-राज्य को लौट चलो। इसलिए मेरी दृष्टि अगर पूरी ख्याल में आयी हो, तो वह यह है कि सर्वोदय इस समय समाजवाद के आने में सबसे बड़ी बाधा हो सकती है। क्योंकि सर्वोदय पूंजीवाद के पीछे लौटने की बात कर रहा है। और समाज-वाद पूंजीवाद के आगे का कदम है। यदि हम सर्वोदयी होंगे तो समाजवादी हम फिर कभी न होंगे। समाजवाद तो फिर असम्भव है। लेकिन सर्वोदयी हम होंगे नहीं। विनोबा बुरी तरह हार चुके हैं और थक कर बैठ गये। अब नहीं लगता कि उनसे कुछ होगा। इसमें कसूर विनोबा का नहीं है। इसमें कसूर जनता का नहीं है। इसमें कसूर गलत दृष्टि और दर्शन का है। मनुष्य के स्वभाव का हमें ख्याल ही नहीं है। मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल जीवन का दर्शन और दृष्टि होनी चाहिए। मेरे विचार में मनुष्य के अत्यन्त अनुकूल जीवन-दृष्टि वाला दर्शन है 'पूंजीवाद'। सिर्फ पूंजी की ही वह व्यवस्था नहीं है, बल्कि एक फिलासफी ऑफ

लाइफ, एक जीवन-दर्शन भी है ।

एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि पूंजीवाद का विकास होगा तो समाजवाद आयेगा, लेकिन कौन लायेगा समाजवाद ?

हमें ऐसा लगता है कि जैसे सब चीजें लाने से ही आती हैं । मैं कहता हूं बच्चा विकसित होगा तो जवानी आयेगी । आप यह नहीं कहते कौन लायेगा जवानी । मैं कहता हूं कि जवानी विकसित होगी तो बुढ़ापा आयेगा । आप नहीं कहते कि कौन लायेगा बुढ़ापा । जवानी का विकास अपने आप बुढ़ापा बनता है । बचपन का विकास अपने आप जवानी बनता है । लाने की बात नहीं है । समाज के जीवन की भी अपनी ही व्यवस्था है । पूंजीवाद विकसित हो तो अपने आप समाजवाद बनता है, कोई लाता नहीं । और जब तक लाने की बात आप करेंगे, उसका मतलब है कि अभी पूंजीवाद पूरा विकसित नहीं हुआ । इसलिए समाजवाद लाना पड़ रहा है । समाजवाद तभी तक जरूरी है जब तक पूंजीवाद विकसित नहीं हुआ है । जबर्दस्ती करनी है तो लाना पड़ेगा । आने देना है तो आयेगा, आ सकता है—अगर हम जबर्दस्ती न करें । तो जब आप पूछते हैं कौन लायेगा, तो मैं कहता हूं व्यवस्था अपने आप रूपान्तरित होती है । जवान अपने आप बूढ़ा हो जाता है। और पता भी नहीं चलता है कि किस तिथि में कलेण्डर को फाड़ते वक्त किस दिन जवान बूढ़ा हुआ । आप में से कई लोग बूढ़े हुए, कई लोग बच्चे से जवान हुए । बता सकते हैं किस दिन यह घटना घटी ? किस दिन आप जवान हुए ? आप कहेंगे यह तो कुछ पता नहीं । जिन्दगी में जो विकास है, वह इतना चुपचाप है कि कोई सीमा-रेखा नहीं बांधी जा सकती कि इस दिन यह घटना घट गयी । पूंजीवाद बदलेगा, लेकिन फिर भी हम सोच सकते हैं कि कब बदलेगा । इस सम्बन्ध में दो बातें कहना चाहता हूं ।

पहली बात यह कि सम्पत्ति अतिरिक्त हों; इसके पहले नहीं बदला जा सकता है । उसके पहले बदलने के सब प्रयत्न असफल होंगे । चेकोस्लोवाकिया, युगोस्लाविया या और दूसरे कम्युनिस्ट देशों में पूंजीवाद वापस लौट रहा है । जिन्होंने जल्दबाजी की थी वहां पूंजीवाद वापस लौट रहा है । अब उनको समाजवादी ढांचे को फिर शिथिल करना पड़ा है । अब भूल पता चल गयी । अब वे समझ रहे हैं कि गलती हो गयी; अतः ढांचे को शिथिल करो । वहां के तीस-चालीस साल के अनुभव ने बता दिया कि यह बात मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल नहीं है मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल जो है, उसे लाओ । क्योंकि जबर्दस्ती एक दिन काम करा सकते हैं, दो दिन करा सकते हैं, तीन दिन भी, लेकिन अनन्त काल तक यह नहीं हो सकता । अनन्त काल तक तो जो मनुष्य का स्वभाव है, वही होगा । समाजवाद सम्पत्ति के अतिरिक्त, बाहुल्य में है, लेकिन सम्पत्ति का

बाहुल्य कैसे होगा ? मनुष्य के श्रम से बाहुल्य सम्पत्ति कभी नहीं होगी । मनुष्य की जगह टेक्नोलॉजी को स्थापित करने से होगी । इसलिए बजाय पूंजीवाद की जगह समाजवाद स्थापित करने की पागल चेष्टा में लगने के उचित है कि मनुष्य की जगह टेक्नोलॉजी को विकसित करने की हम फिक्र करें ।

एक मित्र ने पूछा है कि टेक्नोलॉजी के विकास की आप बात करते हैं, यह कोई बच्चों का खेल नहीं है ।

यह बच्चों का ही खेल है । जर्मनी को जाकर देखें या जापान को जाकर देखें । दूसरे महायुद्ध में जापान नेस्तनाबूद हो गया था । जमीन से मिल गया था । इस बुरी तरह नष्ट हो गया था कि जैसा कभी कोई मुल्क नहीं हुआ होगा । लेकिन बीस साल में जापान युद्ध के पहले से ज्यादा समृद्ध है । जर्मनी मिट गया था बुरी तरह । सब बर्बाद हो गया, लेकिन फिर बीस साल में खड़ा हो गया । लेकिन वहां भी फर्क देखेंगे । कुछ मेरे मित्र बर्लिन गये हैं । वे कहते हैं कि बर्लिन के उस हिस्से में जो कम्युनिस्टों के हाथ में है और इस हिस्से में जो कम्युनिस्टों के हाथ में नहीं है, जमीन-आसमान का फर्क मालूम पड़ता है । जो हिस्सा कम्युनिस्टों के हाथ में है वह अब भी दीन-दरिद्र है । जो हिस्सा कम्युनिस्टों के हाथ में नहीं है वहां की सम्पन्नता बहुत बढ़ी है । बर्लिन एक प्रतीक की तरह खड़ा है—कम्युनिस्ट व्यवस्था और कैपिटलिस्ट व्यवस्था के बीच सीधा चुनाव साफ यहां हुआ जा रहा है ।

मेरे एक मित्र ने पूछा है कि आप पूंजीवाद की इतनी तारीफ करते हैं । क्या रूस में मशीनें विकसित नहीं हुई ? क्या वहां टेक्नोलॉजी विकसित नहीं हुई ? उन्होंने भी तो चांद तक पहुंचने की कोशिश की । उनके पास भी तो सब है ।

जरूर विकसित हुआ, मैं नहीं कहता कि विकसित नहीं हुआ । मास्को में भी एक गगनचुम्बी इमारत है । न्यूयार्क में सैकड़ों हैं । मास्को में एक गगनचुम्बी इमारत है, लेकिन उस इमारत को आदमी को भूखा रख कर खड़ा किया गया है। उस इमारत के लिये बलिदान देना पड़ा है और वह इमारत सिर्फ दुनिया से जो यहां आते हैं उनको दिखाने के लिये खड़ी करनी पड़ी है कि रूस कोई गरीब मुल्क नहीं है । हमारे पास भी आकाश को छूने वाले मकान हैं । लेकिन अमरीका में वे मकान चुपचाप अपने आप विकसित हो रहे हैं—ऐसे जैसे जमीन से पौधा बड़ा होता है । अमरीका में उन मकानों को विकसित करने के लिए किसी पर जोर जबर्दस्ती, किसी को कुर्बानी और किसी को त्याग नहीं करना पड़ता है । मकान अपने से विकसित हुए हैं । रूस के पास भी जमीन के नीचे चलने वाली रेलगाड़ी का मार्ग है और उस मार्ग पर संगमरमर के पत्थर भी लगे हैं, लेकिन

रूस को पचास साल में इस सबके लिए त्याग और बलिदान करना पड़ा है। इधर बड़े होटल हैं जिनमें कि यात्री ठहरे हुए हैं और उधर होटल के बगल में ही क्यू लगा हुआ है एक-एक रोटी के लिए। वे दोनों बातें एक साथ चल रही हैं, उसका हमें ख्याल नहीं है, उसका हमें पता नहीं चलता। अभी उन्होंने चांद पर पहुंचने की पूरी कोशिश की, फिर उनको पीछे पैर हटा लेने पड़े, क्योंकि अन्ततः वह बहुत महंगा पड़ने लगा। एक आदमी को उतारने के लिए कोई एक सौ अस्सी अरब रुपये का खर्च पड़ा। आखिर रूस फिर धीरे से पीछे हटा, क्योंकि भीतर नीचे जनता का दबाव बढ़ता चला गया कि इधर हमको भूखों मार रहे हो, उधर चांद पर जा रहे हो। अमरीका के लिए खिलवाड़ था चांद पर जाना, रूस के लिए महंगा दांव था। रूस ने विकास भी किया है तकनीक का, लेकिन उसकी तकनीक का विकास एक आरोपित विकास है। वह आरोपित किया गया, इसलिए पिछड़ गया है। अब वहां के आदमी ने पचास साल के बाद हिम्मत छोड़ दी, अब वह काम करने को उतना राजी नहीं है। वह दिन गये क्रांति की हवा के और जोश के। बुखार में थोड़े दिन दोहराये जा सकते हैं। जिन्दगी दौड़ती है सहज नियमों से। सहज नियम आदमी का पूंजीवाद के पास है। जब मैं यह कहता हूं कि खेल है तकनीक तो मेरा मतलब यह नहीं है कि वह कोई आज जादू से पैदा हो जायेगी। लेकिन आप यदि यही सोचते हैं कि यह कोई खेल थोड़े ही है जो कि थोड़े वर्षों में विकसित हो जायेगी तो हजार साल में भी विकसित न होगी।

मैंने सुना है कि एक गांव के बाहर एक आदमी बैठा हुआ है सुबह अपनी लालटेन लिए हुए। कोई उसके पास से गुजरा है, उससे पूछा है, आप यहां बैठे क्या कर रहे हैं। उसने कहा, मुझे जाना है दूर—दस मील दूर पहाड़ के ऊपर जो मन्दिर है, वहां जाना है। प्रश्नकर्त्ता ने कहा, चलो चलें, उठते क्यों नहीं। उसने कहा, मेरे पास लालटेन बहुत छोटी है, तीन-चार फुट तक रोशनी जाती है और दस मील का रास्ता है तो मैंने बैठ कर हिसाब लगाया तो देखा कि इससे तो अन्धेरा पार हो ही नहीं सकता कभी। तीन फुट की रोशनी, दस मील अन्धेरा, हिसाब कैसे चलेगा ? इतनी सी लालटेन से काम कैसे चलेगा ? उस आदमी ने कहा, पागल उठ, अगर तू यहां बैठा रहेगा तो मर जायेगा, यह गणित तुझे डुबा देगा। तू उठ और चल, क्योंकि जब तू चलेगा तीन कदम, रोशनी तीन कदम और आगे पहुंचेगी। अगर हिसाब लगाते बैठा रहा तो तू कभी नहीं पहुंचेगा दस मील और अगर हिसाब नहीं लगाया और चल पड़ा तो एक छोटी-सी लालटेन हजार मील की यात्रा भी करा देगी।

हर देश की समस्या और कष्ट क्या है ? हम बड़े बुद्धिमान् हैं। बैठे ही बैठे

बहुत दिनों से हम हर चीज का बहुत हिसाब लगाते रहे हैं। हम कहते हैं तकनीकी क्रांति कब होगी, कैसे होगी—और बड़े-बड़े हिसाब फिर हमें डरा देते हैं। फिर हम वह भयभीत करने वाला हिसाब छोड़ जो हो सकता है अभी उसे करने में लग जाते हैं। जैसे साम्प्रदायिक दंगों में या भाषावार प्रांतों के उपद्रवों में। ऐसे हम कुछ कर रहे हैं, यह प्रण भी बना रहता है और बिना कुछ किये समय भी बीतता जाता है। नहीं, ऐसे नहीं चलेगा। तकनीकीकरण का मार्ग चाहे कितना ही लम्बा हो, चलना शुरू करना पड़ेगा आज, अभी-अभी। तो वह सब हम भी कर पायेंगे जिसे कि कोई और कर पाया है। संकल्प चाहिए, श्रम चाहिए और टुच्चे झगड़ों और व्यर्थ की समस्याओं से मुक्ति चाहिए। अन्यथा हम रोज पिछड़ते जा रहे हैं। जहां खड़े हैं, वहां खड़े-खड़े ही पिछड़ते जा रहे हैं। अभी मैंने एक हिसाब देखा कि दुनिया भर में मनुष्य-जाति के पूरे इतिहास में जितने वैज्ञानिक पैदा हुए उनमें से नब्बे प्रतिशत आज जीवित हैं पूरी मनुष्य-जाति के वैज्ञानिक। इसका अर्थ यह हुआ कि नब्बे प्रतिशत वैज्ञानिक सिर्फ पिछले पचास सालों में पैदा हुए थे। और दस प्रतिशत वैज्ञानिक केवल पिछले दस हजार सालों में पैदा हुए हैं। उन नब्बे प्रतिशत वैज्ञानिकों में भी पचास प्रतिशत से ज्यादा आज सिर्फ अमरीका में ही इकट्ठे हैं। इसका मतलब है कि सारी-मनुष्य जाति के इतिहास में कितने वैज्ञानिक विचार, चिन्तन और प्रतिभा का विकास हुआ है, उसका पचास प्रतिशत एक मुल्क के पास इकट्ठा हो गया है। वह प्रतिभा इकट्ठी होती जा रही है। वह हमसे बहुत जल्दी उस जगह पहुंच जायेंगे जहां हमें बहुत कठिनाई हो जायेगी कि अब क्या करें। इसलिए हमें अब तेजी से लग जाना चाहिए, लेकिन हमारे हिसाब दूसरे हैं। हम इस चिन्ता में लगे हुए हैं कि सम्पत्ति का बंटवारा कैसे हो। हम इस चिन्ता में लगे हुए हैं कि हड़ताल कैसे होगी, घिराव कैसे हो, यूनिवर्सिटी की परीक्षा एकदम आगे कैसे बढ़ायी जाये, या पीछे हटायी जाये। एक गांव मैसूर में रहे कि महाराष्ट्र में। हमारे पागलपन का कोई हिसाब नहीं है। हम ऐसी बातों में लगे हुए हैं कि चण्डीगढ़ पंजाब के पास हो कि चण्डीगढ़ हरियाणा के पास हो। चण्डीगढ़ जहां है वही है। लेकिन हम नाहक परेशान हुए जा रहे हैं।

मैंने सुना है, हिन्दुस्तान-पाकिस्तान बंटा तो एक पागलखाना भी आ गया बीच में। उसके भी बंटवारे का सवाल आया। अब बड़ा मुश्किल हुआ, क्योंकि न पाकिस्तानी उत्सुक थे पागलों को लेने के लिए, न हिन्दुस्तान उत्सुक था। अधिकारियों ने सोचा कि पागलों से ही पूछ लें। अधिकारी गये और उन्होंने पागलों को बहुत समझाया। यह बड़े मजे की बात है कि बुद्धिमानों की समझ में आ गया कि पाकिस्तान-हिन्दुस्तान बंटना चाहिए, लेकिन पागलों ने कहा कि

हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के लिए, हम गरीब पागलों का पागलखाना बंटना ही क्यों चाहिए ? हम तो बस पागल हैं। हम न हिन्दू हैं न मुसलमान हैं। हम पागल किसी भी प्रकार की राजनीति में नहीं हैं। अधिकारी बड़ी मुश्किल में पड़े और उन्होंने कहा—हम तुमसे सिर्फ यह कहते हैं कि तुम्हें जाना कहां है। तुम हिन्दुस्तान में जाना चाहते हो कि पाकिस्तान में ? उन पागलों ने कहा, हम तो यहीं रहना चाहते हैं। उन अधिकारियों ने कहा, घबराओ मत, रहोगे तो तुम यहीं, लेकिन जाना कहां है ? तो उन पागलों ने कहा, आप भी पागल हो गये क्या ? जब हम रहेंगे यहीं तो जाने का सवाल ही क्या है ? वे अधिकारी बड़ी उलझन में पड़ गये। पागलों को समझाना बहुत मुश्किल हुआ। फिर उन्होंने सोचा, यह तो फिजूल की मेहनत है, ये पागल न समझेंगे। फिर उन्होंने एक रेखा खींच कर पागलखाने के दो हिस्से कर दिये। आधा पागलखाना पाकिस्तान हो गया, आधा पागलखाना हिन्दुस्तान हो गया। अब वह बीच में एक दीवार खिंच गयी और मैंने सुना है कि पागल कभी-कभी दीवार पर चढ़ जाते हैं और एक-दूसरे से कहते हैं, बड़ा मजा है। हम सब वहीं के वहीं हैं, तुम भी वहीं हो, हम भी वहीं हैं, लेकिन तुम पाकिस्तानी हो गये, हम हिन्दुस्तानी हो गये—सिर्फ इस एक दीवार की वजह से। और वे बहुत हंसते हैं !

लेकिन हिन्दुस्तान-पाकिस्तान का पागलखाना तो था ही, उसी ने अब नया रूप ले लिया है। अभी मैसूर में रहे एक हिस्सा, एक जिला महाराष्ट्र में रहे। मैसूर के पागल चिल्लायेंगे कि मैसूर में चाहिए, महाराष्ट्र के पागल चिल्लायेंगे कि महाराष्ट्र में चाहिए। कोई यह नहीं पूछेगा, जिला जहां है तहां है, काहे के लिए परेशान हुए जा रहे हो ? लेकिन सारा मुल्क इस तकलीफ में है। मुल्क के सामने असली सवाल न उठा कर मुल्क के नेता गलत सवाल उठा कर मुल्क के मस्तिष्क को विकृत कर रहे हैं। देश के सामने असली सवाल दूसरा है—विकास का, ज्ञान के विकास का, तकनीक के विकास का, सम्पत्ति के विकास का। लेकिन छोटे नेता देश को छोटे और व्यर्थ के सवालों में उलझाये रखते हैं। किसी के लिए असली सवाल है गोहत्या, किसी के लिए आज नहीं तो कल मच्छर-हत्या बन्द करने की सनक भी सवार हो सकती है। यहां आदमी मरने के करीब है, यहां पूरा देश सदा के लिए पिछड़ जाने के करीब है। खतरे बड़े हैं हमारे सामने। सारी दुनिया के समझदार हिसाब लगाने वाले कहते हैं, उन्नीस सौ अठत्तर तक हिन्दुस्तान में महान् अकाल पड़ेगा देश में बीस करोड़ लोग भी मर सकते हैं। मैं दिल्ली में एक बड़े नेता से बात कर रहा था। तो उन्होंने कहा, उन्नीस सौ अठत्तर बहुत दूर है, अभी तो सवाल उन्नीस सौ बहत्तर का है। हमको कोई मतलब नहीं है उन्नीस सौ अठत्तर से, पहले उन्नीस सौ बहत्तर तो निपट जाये।

और अकाल जब होना होगा, बीस करोड़ जब मरेंगे मरेंगे, अभी सवाल कुर्सी का है, उस पर कौन बैठेगा। भाई बैठता है कि बहन बैठती है। सारे मुल्क को व्यर्थ के सवालों में उलझा रहे हैं ये लोग। क्योंकि वे ऐसे ही सवाल उठाते हैं जो कि उनकी बुद्धि की सीमा में आते हैं। और सादगी के कारण वे बुद्धि के लिए भी अपरिग्रह ही साधते हैं ! नेता होने के लिए शायद बुद्धि का त्याग भी अति आवश्यक है ! और देश के मस्तिष्क में इतने मकड़ी के जाले बुने हुए हैं जिनका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है और किसी मकड़ी के जाले को तोड़ो तो खतरा होता है, क्योंकि कोई मकड़ी का जाला किसी के लिए पूज्य है, कोई जाला किसी के लिए पूज्य है। किसी मकड़ी के जाले पर किसी का महात्मा बैठा हुआ है, किसी मकड़ी के जाले पर किसी का देवता बैठा है। इन जालों को तोड़ना जरूरी है, लेकिन देवताओं, महात्माओं और भगवानों के कारण जालों की पूजा हो रही है। ये देवता और महात्मा बड़ी बाधा डाल रहे हैं। अगर मुल्क को टेक्नोलॉजिकल क्रांति से गुजरना है तो हमें चरखे की भाषा में सोचना बन्द करना पड़ेगा, हमें सोचना पड़ेगा भीमकाय यन्त्रों की भाषा में। लेकिन इधर हम गांधीजी का जय जयकार किये चले जायेंगे और उधर हम टेक्नोलॉजी के विकास की बात सोचेंगे। समझते नहीं आप कि इसके भीतर एक आन्तरिक विरोधाभास है। इधर जय जयकार हम गांधीजी का करेंगे जो कि उद्योग और औद्योगीकरण के महान् शत्रु थे, केन्द्रीयकरण के विरोध में थे, और दूसरी ओर विकास भी करना चाहेंगे तो यह कैसे होगा ?

देश के मन को शिक्षित और साफ करना पड़ेगा कि चाहते क्या हो, करना क्या है ? और उसे करने में लग जाना पड़ेगा। लगा जा सकता है। हमारे पास श्रम की शक्ति बहुत है, बुद्धि भी बहुत है। सच तो यह है कि आज हमारा देश बुद्धि के जन्म से ही पीड़ित है। हिन्दुस्तान में युवकों के पास पहली बार बुद्धिमत्ता की झलक आयी है, लेकिन उनके पास उस बुद्धिमत्ता को सृजनात्मक रूप से नियोजित करने का कोई मार्ग नहीं है। तो वह तोड़-फोड़ कर रहे हैं। ध्यान रहे, तोड़-फोड़, विध्वंस, हमेशा उसी शक्ति से होता है, जिससे सृजन होता है। सृजन और विध्वंस की शक्तियां दो नहीं होती, एक ही होती है। अगर सृजन का मार्ग मिल जाये तो ठीक है, अन्यथा शक्ति विध्वंस के मार्ग पर चली जाती है। मुल्क के पास कोई सृजनात्मक कामना नहीं है। छीना-झपटी की कामना जरूर है। इसलिए मैं कहता हूं समाजवाद जो है वह सृजनात्मक कामना नहीं है। वह केवल यह है कि बांटो, छीनो, झपटो। जिसके पास नहीं है वह उसकी गर्दन दबाना चाहता है जिसके पास है। लेकिन सम्पत्ति इतने कम लोगों के पास है, ज्यादा लोगों के पास होती तो भी ठीक था, हम बांट लेते। बांटने लायक भी नहीं है

मामला। कुछ बंटने जैसा भी नहीं है। लेकिन पैदा करो, उसका ख्याल नहीं है और जब तक हम पूरे मुल्क के युवकों को, पूरे मुल्क की आने वाली शक्ति को सृजन की कोई दृष्टि न दे सकें तब तक यह नहीं होगा। लेकिन सृजन की दृष्टि आये कैसे, क्योंकि पूरे देश के नेता समझा रहे हैं कि गरीब तुम इसलिए नहीं हो कि सृजन कम है, गरीब तुम इसलिए हो कि शोषण है। गलत बातें समझायी जा रही हैं। गरीब तुम इसीलिए हो कि चारित्रिक ह्रास हो गया है। मैं कुछ बात इस सम्बन्ध में भी कर लेना चाहता हूं। वह जरूरी भी है।

सारे मुल्क में कहा जा रहा है कि चरित्र का ह्रास हो गया है। पहले चरित्र को ठीक करो तब सृजन होगा, तब सम्पत्ति आयेगी। जब सवाल उठता है कहीं भी कि भ्रष्टाचार है, कहीं भी कि विध्वंस है तो लोग कहते हैं चरित्र नहीं है। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं कि गरीबी में चरित्र पैदा हो भी नहीं सकता, होता भी नहीं। चरित्र का आयाम परम विलास है, सुविधा सम्पन्नता उसकी मूलभूत शर्त है। दरिद्रता चरित्रहीनता की मूलभूत शर्त है। गरीब का जीवन चारों ओर से उसे कौंधता है, दबाता है और वह चरित्रहीन होने को मजबूर हो जाता है। अब हम यह कहते हैं कि जब तक चरित्रहीनता न मिटेगी तब तक तो कुछ भी नहीं मिट सकता। लेकिन चरित्रहीनता कैसे मिटेगी? इसलिए मैं कहता हूं चरित्र की बात छोड़ दें, गरीबी मिटाने की चिन्ता में लगें और गरीबी जिस दिन मिट जायेगी, उस दिन चरित्रहीनता मिट जायेगी। चरित्रहीनता मिटने से गरीबी मिटने वाली नहीं है, क्योंकि चरित्रहीनता ही मिटने वाली नहीं है। गरीबी मिटायें तो चरित्र का तल ऊपर आना शुरू होता है।

एक मजिस्ट्रेट मेरे पास बैठे थे। वे कह रहे थे कि वे रिश्वत नहीं लेते हैं। मैंने उनसे कहा, मैं पूछना चाहता हूं कि आपके रिश्वत न लेने की आखिरी सीमा क्या है? उन्होंने कहा, मैं समझा नहीं। मैंने कहा, मैं आपको पांच नये पैसे रिश्वत दूं, आप लेंगे? उन्होंने कहा, आप भी किस पागलपन की बात कर रहे हैं। मैंने कहा, पांच रुपये? तो उन्होंने कहा, नहीं। मैंने कहा, पांच सौ रुपये? उन्होंने कहा, नहीं लूंगा, लेकिन उनकी 'नहीं' इस बार कमजोर मालूम पड़ी। मैंने कहा, पांच हजार रुपये? तो उन्होंने कहा, लेकिन क्या मतलब है आपका? यह पूछने से क्या प्रयोजन है? अबकी बार उन्होंने 'नहीं' नहीं कहा। मैंने कहा, और पांच लाख रुपये? उन्होंने कहा, सोचना पड़ेगा। चरित्रहीनता का क्या मतलब होता है? पांच नये पैसे रिश्वत न लें तो चरित्रवान् हो गये और लाख की रिश्वत लें तो चरित्रहीन? नहीं साहब, आदमी की सीमा है। पांच नये पैसे उसके पास बहुत हैं। अभी वह चरित्रवान् रह सकता है। कह सकता है न लेंगे। और पांच सौ रुपये, तब एक दफे सवाल उठता है कि नहीं लेना कि लेना। चरित्र के लिए पांच

सौ खो सकता है क्योंकि उसके पास पांच सौ से ज्यादा है लेकिन जब पांच लाख का प्रश्न उठा? तब वह कहता है कि अब जरा चरित्र मंहगा पड़ जायेगा। अभी पांच लाख ले लेंगे, चरित्र को फिर सम्भाल लेंगे।

अभी मुझसे किसी मित्र ने आकर कहा कि जैन मुनि चित्रभानुजी विदेश-यात्रा पर गये हैं। जैन मुनि हैं इसलिए वैसे जा नहीं सकते थे। जैनियों ने विरोध किया है तो भी गये हैं। मित्र ने मुझसे पूछा कि आपका क्या ख्याल है? मैंने कहा, पहला तो यह है कि मुनि नहीं होंगे। मुनि न होने का यह कारण नहीं है कि हवाई जहाज पर गये, इसलिए मुनि नहीं हैं। मुनि इसलिए नहीं है कि जो जैनी है वह मुनि हो कैसे सकता है। मुनि तो सिर्फ मनुष्य रह जाता है; जैनी हिन्दू और मुसलमान नहीं। दूसरी बात यह है कि मुनि होकर भी जो प्रतीक है जैन मुनि के, उनको बचाने की चेष्टा अशोभन है। मुनि का भी कहीं कोई प्रतीक होता है! यह तो मुनि न होकर मिलिट्री के आदमी हो गये। इन प्रतीकों को छीनने वाले गये थे एयरपोर्ट पर। छीनने वालों के पास भी वही बुद्धि है, बचाने वाले के पास भी वही बुद्धि है। क्या मुनि-धर्म जो था वह उन चीजों में था? वह चीजें छीनने वाले भी गये थे कि छीन लें। वह उनको बचाकर ले गये, क्योंकि उनको ही छीन लेते तो उनके पास और क्या था? वहां जाकर वह क्या करते? वह जैन मुनित्व तो उन्हीं चीजों में था। वह मित्र मुझसे पूछते थे कि आप इसके सम्बन्ध में क्या कहते हैं। मैं कहता हूं कि यह कनिंगनेस है, यह चालाकी है; क्योंकि अगर तुम्हें ठीक लगता है जाना तो जिन लोगों को ठीक नहीं लगता उनके प्रतीक छोड़ दो क्योंकि उनके प्रतीक के द्वारा आदर लेने की बात फिर चालाकी है, बेईमानी है। उनका प्रतीक फेंक दो। तुम्हें जाना है तो जाओ, जाने की गलती और सही का सवाल नहीं है, लेकिन उस प्रतीक का आदर तुम क्यों लोगे फिर? जो कि इन्कार करते हैं जाने के लिए उनसे आदर भी लेना फिर उचित नहीं है।

उन मित्र ने मुझसे पूछा है कि अब वह आकर यहां क्या करेंगे। मैंने कहा, जहां तक होगा वह आकर पश्चात्ताप कर लेंगे। वह कहेंगे, हम क्षमा मांग लेते हैं, प्रायश्चित लिए लेते हैं और प्रायश्चित कोई बड़ा नहीं होगा, क्योंकि जैन-ग्रंथों में हवाई जहाज था ही नहीं तब। वाहन का प्रायश्चित लिखा होगा। बैलगाड़ी वगैरह में कोई मुनि बैठ जाये तो उसका प्रायश्चित लिखा होगा तो प्रायश्चित ले लेंगे, वापस जैन मुनि हो जायेंगे। असल में उनके सामने सवाल आ गया होगा आदर का। अब तक जैन मुनि थे। खुद भी पैदल चलते थे। उसने एक दिन पहले तक भी कार में नहीं बैठे थे, तब तक वे जैन मुनि थे, आदर ले रहे थे। अब स्विट्जरलैंड से आमन्त्रण मिला, कठिनाई हो गयी। पांच लाख रुपये की रिश्वत है। छोड़ दें कि लें? अब बड़ी दिक्कत हो गयी है कि जैन मुनि होने को बचायें

कि स्विट्जरलैंड जाने का मजा लें। अब यह सवाल महंगा पड़ गया। अब उनको अब तक थोपे चरित्र को छोड़ देना पड़ा। अगर आप कहते हैं कि महाराज पूना तक कार में बैठ कर चले चलो तो वे कहते कि पैदल आ जायेंगे, क्योंकि पांच नये पैसे की रिश्वत थी, पूना तक पैदल आया जा सकता था और न भी आये पूना तक तो हर्ज क्या है। पर स्विट्जरलैंड—रिश्वत जरा बड़ी आ गयी सो चरित्र छोड़ना पड़ा। इधर जैन मुनि उधर मुहल्ले बदल के नगर बदल लेते हैं। मुनि अगर एक मुहल्ले से दूसरे मुहल्ले में चला जाये कि नगर बदल लिया, रहता बम्बई में ही है—वही पाकिस्तानी और हिन्दुस्तानी पागलों का हिसाब है। रहता यहीं है, नगर बदल जाता है। मगर अब उनके सामने रिश्वत आयी पांच लाख रुपये की तो उन्होंने कहा कि अब ठीक है, अब चले जाओ। लौट कर चरित्र को फिर ठीक कर लेंगे। चरित्र के ठीक करने में देर कितनी लगती है। यही हमारे सारे लोगों का चिन्तन है।

यथार्थ में दीनता, दरिद्रता चरित्र को पैदा नहीं होने देती और दीन और दरिद्र कौन है ? चाहे किसी भी तरह की कमी हो, किसी तरह की दीनता हो जैसे कि हिन्दुस्तान के साधु के मन में होती है। जब तक वह यूरोप और अमरीका ने हो आये तब तक हीनत्व रहता है, तब तक उसको यही लगता है कि वह अभी बड़े साधु नहीं हुए, अभी विवेकानंद से मुलाकात होना मुश्किल है। हीन आदमी दरिद्र आदमी है। धन की हीनता हो, यश की हीनता हो, पद की हीनता हो, कोई भी हीनता हो, हीनता दरिद्रता है। दरिद्रता चरित्रहीनता पैदा करती है। सब तरह की चरित्रहीनता दरिद्रता से जन्मती है। दरिद्रताएं बहुत तरह की हैं, इसलिए बहुत तरह की चरित्रहीनताएं हैं। लेकिन बहुत तरह की समृद्धियां भी हैं। धन की भी एक समृद्धि है, तो फिर धनी को रिश्वत देना मुश्किल हो जाता है। ज्ञान की एक समृद्धि है तो ज्ञानी को सर्टिफिकेट की रिश्वत देना मुश्किल हो जाता है। आत्मबोध की भी एक समृद्धि है, फिर उसको अहंकार का लालच देना मुश्किल हो जाता है। शांति की भी समृद्धि है, फिर उसे तनाव की पुकारें व्यर्थ हो जाती हैं। चरित्र पैदा होता है समृद्धि से, सब तरह की समृद्धि से। इसलिए हिन्दुस्तान यह ठीक से समझ ले कि हमें समृद्धि पैदा करनी है। अभी चरित्र की बकवास में नहीं पड़ना है। समृद्धि पैदा हो, चरित्र हम कभी भी पैदा कर लेंगे और अगर हम उल्टे तरफ से चलें और अगर हमने सोचा कि चरित्र पहले पैदा करेंगे तो ध्यान रहे, चरित्र तो पैदा नहीं होगा, देश और गरीब होता चला जायेगा। लेकिन कई बार ऐसी भूल हो जाती है।

एक किसान खेत में गेहूं बोता है। गेहूं के साथ भूसा भी पैदा होता है। एक अनजान आदमी निकलता हो, वह सोचे कि गेहूं के साथ भूसा पैदा होता है। जब गेहूं बोते हैं तो भूसा निकल आता है तो हम भूसे को बो दें तो गेहूं को भी

निकलना चाहिए। नहीं निकलेगा, बल्कि पास का भूसा भी सड़ जायेगा। गेहूं के साथ भूसा आता है। वह गेहूं की बाई-प्रोडक्ट है, लेकिन भूसे के साथ गेहूं नहीं आता। गेहूं भूसे की बाई-प्रोडक्ट नहीं है। सुविधा-सम्पन्नता, शिक्षा, समृद्धि—इन सब की बाई-प्रोडक्ट है 'चरित्र'। लेकिन हम सोचते हैं, चरित्र को बो दें तो फिर सब आ जायेगा। ऐसा नहीं होगा। उल्टा नहीं होगा। इस देश को समृद्ध बनाये बिना चरित्रवान् बनाना असम्भव है और चरित्रवान् बनाना हो तो समृद्धिवान् बनाने में लगे रहें। एक ही लक्ष्य अगर मुल्क के सामने रह जाये आने वाले बीस वर्षों में कि इस देश को वहां खड़ा कर देना है जहां जापान खड़ा हो गया है बीस वर्षों में, जहां इजराइल खड़ा हो गया है। वहां हम क्यों खड़े नहीं हो सकते ? हम भी खड़े हो सकते हैं, लेकिन हमारा मस्तिष्क विभाजित है। हमारा मस्तिष्क हजार बातों में बंटा है। न मालूम कहां-कहां की फिजूल की बातों में बंटा हुआ है। देश की पूरी सृजनात्मक ऊर्जा को गलत मार्गों पर बांटा जा रहा है, लेकिन वह राजनीतिक तंत्र के हित में है। क्योंकि राजनीतिक लोगों को बांटकर ही सत्ता में पहुंचना है। हिन्दुस्तान में राजनीतिज्ञ का अनावश्यक मूल्य हुआ है। हिन्दुस्तान में राजनीतिज्ञ की कीमत बहुत कम करने की आवश्यकता है। बहुत अति हो गयी है। वह जीवन के केन्द्र पर बैठ गया है। सारी इज्जत, सारा आदर, सब-कुछ उसके पास हो गया है। राजनीति जैसे उसका प्राण बन गयी है। राजनीति प्राण नहीं है। उसे प्राण के पद से नीचे उतारने की जरूरत है।

एक अंतिम बात। अगर देश का हित चाहिए तो राजनीतिज्ञ के सम्मान को नीचे लायें। उससे कहें, आप अपने बड़े मंच से जरा नीचे आ जायें। इतने आदर की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन बड़ा मजा है, अगर चैम्बर्स ऑफ कामर्स का भी उद्घाटन हो तो प्रधानमंत्री ही करेगा और प्रधानमंत्री ही उस चैम्बर्स ऑफ कामर्स में व्यापारियों को गाली देगा, बिजनेस मैन को गाली देगा और वह बैठ कर सुनेंगे बड़ी प्रसन्नता से। वह छः इंच की मुस्कान बारह इंच की बना देंगे और बैठे सुनते रहेंगे। यूनिवर्सिटी, विद्यार्थियों को उद्‌बोधन देना हो, दीक्षान्त भाषण हो, राजनीतिज्ञ देगा। जो कभी किसी यूनीवर्सिटी में नहीं गये वे दीक्षान्त भाषण दे रहे हैं ! राजनीतिज्ञ को हटायें महिमा की जगह से। उसको इतनी महिमा पूरित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसकी तरफ देखना जरा बन्द करें, उसकी तरफ से जरा आंखें हटायें और सृजनात्मक केन्द्रों पर आंखें गड़ायें, जहां-जहां जीवन सृजन कर रहा है, चाहे धन, चाहे काव्य, चाहे साहित्य, चाहे धर्म, चाहे स्वास्थ्य, जहां भी जीवन सृजन कर रहा है उसे केन्द्र पर ले जायें। वैज्ञानिक को, धार्मिक को, शिक्षा-शास्त्री को, लेखक को, कवि को, धनपति को, मजदूर को। जहां-जहां सृजन है वहां मुल्क की आंख गड़ें। राजनीतिज्ञ की तरफ पीठ करें तो बीस वर्ष में टेक्नोलॉजी भी आ सकती है, समृद्धि भी आ सकती है,

चरित्र भी आ सकता है और देश समृद्ध भी हो। तो ही हम परमात्मा को धन्यवाद भी दे सकते हैं। गरीब धन्यवाद भी क्या दे, गरीब भगवान् के मन्दिर के सामने भी मांग करता है, लड़के की शादी करवा दे, लड़के की नौकरी लगवा दें, बीमार पड़ी है औरत, दवा दिलवा दे और देखता है गौर से, सोचता है मन में, दवा तो मिलने वाली नहीं है, पता नहीं भगवान् सच्चा है या झूठा है। कहता है, अगर दवा दिलवा दी तो मान लूंगा कि तू पक्का भगवान् है और अगर दवा नहीं तो भगवान् झूठा हो जाता है। नौकरी दिलवा दी तो मान लूंगा, नहीं तो सब गड़बड़ हो जाता है।

गरीब भगवान् के पास भी मांगने जाता है, धन्यवाद देने नहीं। वास्तविक धर्म धन्यवाद देना है, वास्तविक धर्म अनुग्रह-बोध है, लेकिन अनुग्रह किसके पास है? जिसके पास जीवन का और सब है, वह भगवान् को धन्यवाद दे पाता है कि तूने आनन्द दिया, तूने शांति दी, तूने जीवन के फूल दिये, तूने वह वीणा दी जहां संगीत पैदा हो पा रहा है। दीन धार्मिक नहीं हो पाता। सम्पन्न, जिसके भीतर सुर बजता है शांति का, आनन्द का, सुख का, वह धन्यवाद दे पाता है। प्रार्थना करता हूं परमात्मा से अन्त में, कि वह दिन आये कि हम भगवान् के मंदिर में मांगने नहीं, धन्यवाद देने जा सकें। मेरे विचार में, हमारे स्वयं के प्रयासों से वह दिन भी आ सकता है।

●

क्रास मैदान, बम्बई, १७ अप्रैल १९७०

समाजवाद अर्थात् आत्मघात

विषय

११—समाजवाद क्या है—सिर्फ राजनीति

मेरे प्रिय आत्मन् !

समाजवाद अर्थात् आत्मघात ! इस सम्बन्ध में कुछ कहूं, उसके पहले एक बात कह देना उचित है।

समाजवाद सिर्फ राजनैतिक दृष्टि नहीं है। और अगर समाजवाद सिर्फ राजनैतिक दृष्टि होती, तो इतना खतरा भी नहीं था। समाजवाद में सिर्फ आर्थिक प्रोग्रेस ही होता तो जिन्दगी की बहुत बाहर की बात भी बहुत गहरी लगती। समाजवाद समग्र जीवन-दर्शन है। समाजवाद मनुष्य के आमूल जीवन को स्पर्श करता है। और विशेष रूप से इसी कारण इसके खतरे भी बढ़े हैं।

मैं समाजवाद पर समग्र जीवन की तरह विचार करना चाहूंगा।

पहली बात, समाजवादी जीवन-दृष्टि जड़वाद की मेटीरियलिज्म की है। और इस देश के लिए समाजवाद की जड़वादी, भौतिकवादी दृष्टि बहुत आकर्षक हो सकती है। क्योंकि हम पांच हजार वर्षों से अध्यात्मवाद से पीड़ित लोग हैं। और जब कोई समाज बहुत दिनों तक एकांगी ढंग से जीकर दुख भोग चुका होता है तो बहुत स्वाभाविक रूप से वह विपरीत अति पर, दूसरे एक्स्ट्रीम पर जाने की तैयारी कर लेता है। पर आदमी खाई से बचने के लिए कुएं में गिर जाता है, और कुएं से बचने के लिए खाई में गिर जाता है। बीच में खड़ा होना सदा मुश्किल है।

हिन्दुस्तान पांच हजार वर्षों से अध्यात्मवाद के एकांगी दृष्टिकोण से पीड़ित और परेशान है। इसलिए हिन्दुस्तान का मन बहुत जल्दी जड़वाद को पकड़ ले सकता है।

साधारणतः लोग उल्टा सोचते हैं। साधारणतः लोग सोचते हैं कि हिन्दुस्तान में समाजवाद की अपील मुश्किल होगी। मैं नहीं सोचता हूं। "लोग सोचते हैं," हिन्दुस्तान आध्यात्मिक देश है, धार्मिक देश है, इसलिए समाजवादी कैसे होगा? "मैं नहीं सोचता हूं," हिन्दुस्तान इतने दिनों से अध्यात्मवादी है अध्यात्मवाद के इतने दुख झेले हैं। अध्यात्मवाद के कारण बहुत-सी गरीबी झेली है। अध्यात्मवाद के कारण गुलामी झेली है, अध्यात्मवाद के कारण सारा देश अलाल और शक्तिहीन हो गया है।

यह बहुत स्वाभाविक होगा इस देश के मन को वह किसी जड़वादी सिद्धान्त की ओर आकर्षित हो जाये। यह आकर्षण स्वाभाविक होगा, लेकिन खतरनाक है। यह कुएं से बचने के लिए खाई में गिरना है। असल में एकांगी दृष्टियां सभी खतरनाक होती हैं। न तो कोई व्यक्ति शुद्ध शरीरवादी होकर जी सकता है। क्योंकि तब वह केवल शरीर रह जाता है, यंत्र मात्र। और न कोई व्यक्ति शुद्ध अध्यात्मवादी होकर जी सकता है, तब बिल्कुल शरीर को इन्कार करना होता है।

इस देश ने एक प्रयोग करके देख लिया है। और उसके दुख भी देख लिए हैं। हमने प्रयोग किये हैं कि हम सिर्फ आत्माएं हैं। और जगत् को हमने इन्कार कर दिया और हमने कहा जगत् माया है, इलूजन है, झूठ है, सत्य तो सिर्फ ब्रह्म है।

इस अकेले ब्रह्म को सत्य मानकर हमने इतने दुख झेले हैं कि जिसका हिसाब नहीं, हिसाब लगाना मुश्किल है।

इस देश की गरीबी, इस देश की गुलामी इस अकेले ब्रह्म को मानने के कारण ही सम्भव हो पाई। क्योंकि जब हमने जगत् को माया कहकर इन्कार कर दिया तो जगत् पर हमारी पकड़ छूट गई और जब हमने जगत् और पदार्थ को इन्कार कर दिया तो विज्ञान हम पैदा न कर पाये।

तो, पांच हजार साल से एक अति पर हम जिये हैं। जैसे घड़ी का पेंडुलम बायें तरफ जाता है तो दायें तरफ जाने का मोमेंटम इकट्ठा करता है। जब घड़ी का पेंडुलम बायें जा रहा है तब आप यह मत सोचना कि वह सिर्फ जा रहा है। वह दायें जाने की तैयारी भी इकट्ठी कर रहा है। और जितनी दूर तक बायें जायेगा, उतनी दूर तक दायें जाने की संभावना पैदा कर रहा है।

हिन्दुस्तान की घड़ी के पेंडुलम के घूमने का वक्त आ गया है। और अब खतरा है कि हम दूसरी अति पर चले जायें। अब खतरा है कि हम मान सकें

कि परमात्मा नहीं है, आत्मा नहीं है, बस आदमी शरीर है। और रोटी मिल जाये तो सब मिल जाता है।

समाजवाद एक जड़वादी जीवन-दृष्टि है। जो मनुष्य में दिखाई पड़ता है उसके पार न दिखाई पड़ने वाले को इन्कार करती है। और ध्यान रहे जिस दिन भी मनुष्य के भीतर जो अदृश्य है उसको इन्कार करने को राजी हो जायेंगे, उस दिन मनुष्य के पास कुछ भी नहीं बच रहेगा, सिर्फ रूपरेखा बच जायेगी।

मनुष्य में जो भी श्रेष्ठ है वह सब अदृश्य है और मनुष्य में जो भी सुगम है वह सब अदृश्य है। और मनुष्य में जो भी चेतना है वह सब अदृश्य है। मनुष्य में जो दृश्य दिखाई पड़ रहा है वह केवल यंत्र है। और यंत्र के भीतर बैठा हुआ मालिक उसका उपभोक्ता, इस घर का निवासी बिल्कुल अदृश्य है। और हम खतरनाक लोग हैं, क्योंकि जब हम दृश्य को झूठ कहकर इन्कार कर सके थे तो अदृश्य को झूठ कहकर इन्कार करने में कितनी देर लगेगी? जब हम दिखाई पड़ने वाले जगत् को माया कह सकें तो न दिखाई पड़ने वाले परमात्मा को माया कहने में कितनी देर लगेगी?

जो सामने टकराता था, जिसकी सारी जिन्दगी कहती थी 'है', उसको हम पांच हजार साल से कहते थे यह सिर्फ आभास है, यह वस्तुतः नहीं सिर्फ सपना है। तो जो बिल्कुल सपने जैसा है, जो दिखाई भी नहीं पड़ता जिसे प्रयोगशाला में जांचा भी नहीं जा सकता, जिसे टेस्टट्यूब में परखने का कोई उपाय नहीं, और जो जिन्दगी में कहीं भी टकराता नहीं, उसके इन्कार में हमें कुछ देर लग सकती है।

इसलिए मैं यह कह देना चाहता हूं कि भारत जिस बुरी तरह से जड़वादी हो सकता है, उतना जड़वादी होने की सम्भावना दुनिया में किसी भी कौम को नहीं है। क्योंकि भारत ने जिस पागलपन से अध्यात्म को साधा है, दूसरे एक्स्ट्रीम पर जाने की गति उसने इकट्ठी कर ली है।

और इस समय अध्यात्म के विरोध में जो सबसे बड़ा विचार है वह समाजवाद का है। इस समय धर्म के विरोध में जो सबसे बड़ी फिलासफी है वह समाजवाद की है।

अगर काशी को मिटाना है और काबा को मिटाना है तो मास्को के सिवाय कोई विकल्प दिखाई नहीं पड़ता। और अगर गीता और कुरान को जला डालना है तो "कैपिटल" के सिवाय पूजागृह में रखने को और कोई किताब नहीं मालूम पड़ती।

भारत के लिए समाजवाद आत्मघात सिद्ध होगा, क्योंकि भारत वैसे ही आधा मर चुका है। और आधा जो बचा है वह दूसरे विकल्प को चुनकर मर सकता है। हमने आधी जिन्दगी को पहले ही इन्कार कर दिया था और आधी

जिन्दगी को इन्कार करके हमने, भूत-प्रेतों की जिन्दगी स्वीकार कर ली थी, सिर्फ निराकार की, आकार को इन्कार करके।

अब हम दूसरा खतरा कर सकते हैं। अब हम ऊब गये हैं, हम बुरी तरह ऊब गये हैं। और जो-जो हमने जिन्दगी में आधार बनाये थे वह आधार धोखा दे गये हैं, उन्होंने कुछ साथ नहीं दिया। अब हम उनसे विपरीत आधार पकड़ने के लिए बहुत ही आतुर हैं।

महावीर, बुद्ध, राम और कृष्ण के बेटे, मार्क्स, एंजिल और माओ को पकड़ने के लिए जितने तैयार हैं उतने जगत् में कोई भी तैयार नहीं हैं। थोड़ी बहुत देर लग सकती है, लेकिन तैयारी रोज-रोज प्रकट होती जाती है।

लेनिन ने आज से कोई साठ साल पहले की अपनी एक घोषणा में कहा था कि कम्युनिज्म की यात्रा मास्को से पेकिंग और पेकिंग से कलकत्ता होती हुई लंदन जायेगी। उसकी और बातें चाहे गलत हों, उसकी कम से कम यह खतरनाक घोषणा सही होती मालूम पड़ती है।

पेकिंग तक तो बात सही हो गई। कलकत्ते में भी काफी पगध्वनियां सुनाई पड़ती हैं। बम्बई भी ज्यादा दिन दूर नहीं रह सकता।

हिन्दुस्तान की बड़ी सम्भावना है। इसलिए पहले इस बात को ठीक से सोच लेना चाहिए कि जड़वाद की दृष्टि का अर्थ क्या है? मेटीरियलिस्ट दृष्टि का क्या अर्थ है? भौतिकवाद का क्या अर्थ है?

भौतिकवाद का अर्थ है कि हम सिर्फ मनुष्य के शरीर होने को स्वीकृति देते हैं। शरीर के पार मनुष्य का कुछ नहीं है। इसलिए स्टैलिन लाखों लोगों की हत्या कर सका। क्योंकि अगर आदमी सिर्फ होता है तो हत्या में कोई भी हर्ज नहीं है। और अगर आदमी सिर्फ यन्त्र है तो मारने में परेशानी क्या है? और आदमी अगर सिर्फ शरीर है और आत्मा नहीं है तो स्वतन्त्रता की क्या जरूरत है?

समाजवाद अन्ततः स्वतन्त्रता की हत्या बन जाता है। क्योंकि समाजवाद मौलिक रूप से आदमी की आदमियत को इन्कार कर देता है। वह स्वीकार करता है सिर्फ शरीर को, फिर शरीर के लिए रोटी चाहिए वह समाज दे सकता है। कपड़े चाहिए, वह भी दे सकता है। मकान चाहिए, वह भी दे सकता है।

आत्मा बेच कर कपड़े, मकान और रोटी को पा लेना बहुत मंहगा सौदा है। लेकिन आदमी ऐसे सौदे करने को राजी हो सकता है। और इमरजेन्सी होती है, संकट के काल होते है, जैसा भारत पर आज है। आज भारत के पास रोटी नहीं है। आज भारत के पास कपड़े भी नहीं हैं। आज भारत के पास मकान भी नहीं हैं।

इस परेशानी की हालत में हम इस सौदे के लिए राजी हो सकते हैं कि हम आदमी की स्वतन्त्रता को बेचकर, और रोटी कपड़े को खरीद लें। एक बार खरीद

लेने के बाद पता चलेगा कि यह दुकान फिर वापिस लौटाने वाली नहीं है। वे चीजें वापिस लौटाई नहीं जा सकतीं इनको लौटाना फिर असम्भव है।

सोवियत रूस में जिन लोगों ने क्रांति की थी वे सोचते थे कि हम स्वतन्त्रता के लिए क्रांति कर रहे हैं। लेकिन सोवियत रूस की पच्चीसवीं वर्षगांठ पर क्रांति करने वाले बड़े नेताओं में सिर्फ एक स्टैलिन बचा था, बाकी सबकी हत्या स्टैलिन ने ही करवा दी।

चाहे जियोवियेव हो, चाहे कामेनियेव हो और चाहे स्वर्दलोव हो और ट्राटस्की हो, क्रांति के जितने भी महत्त्वपूर्ण आधार थे उन सबकी हत्या क्रांति ने ही कर दी। खतरा है क्रांतिकारियों से, क्योंकि वे लोग स्वतन्त्रता की बातें करते थे, उनको मिटा देना पहले जरूरी था। उनको मिटा देने के बाद जमीन पर सबसे बड़े कारागृह का निर्माण हुआ।

आशा थी कि सबसे बड़ी स्वतन्त्रता का निर्माण होगा, लेकिन जो निर्मित हुआ वह सबसे बड़ा कारागृह है। इतना बड़ा कारागृह कहीं भी कभी भी निर्मित नहीं हुआ। न चंगेज खां कर सका था, न नेपोलियन कर सका था, न सिकन्दर कर सका था।

दुनिया के बड़े से बड़े खतरनाक लोग भी इतना बड़ा कारागृह नहीं पैदा कर सके थे। समाजवाद ने वह कारागृह सम्भव कर दिया, क्योंकि चंगेज कितना ही बड़ा हत्यारा हो, आदमी की आत्मा का भरोसा था उसे। और चंगेज कितना ही बड़ा हत्यारा हो, सुबह बैठ कर परमात्मा से क्षमा मांगता था।

स्टैलिन पहला हत्यारा है जिसे किसी से क्षमा मांगने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि आत्मा है ही नहीं। स्टैलिन पहला आदमी है इस मनुष्य-जाति के इतिहास में जो अन्दाजन पचास लाख लोगों से लेकर एक करोड़ लोगों की हत्या इतनी सरलता से कर सका, जैसे हम मिट्टी के गुड्डे-गुड्डियों की हत्यायें कर रहे हों। इस हत्या में कहीं कोई मर ही न रहा था। आदमी है ही नहीं मरने को, सिर्फ एक यन्त्र है। और आप अगर एक यन्त्र को तोड़ दें तो इसके लिए अपराध का भाव पैदा नहीं होता। अगर मैं घड़ी को पटक कर तोड़ दूं तो मेरे मन में ऐसा भाव नहीं होता कि कोई प्रायश्चित्त करूं। घड़ी सिर्फ यन्त्र है।

मार्क्स की दृष्टि में मनुष्य पदार्थ ही है और समस्त चेतना पदार्थ का ही इफ्लीफीमान है। सिर्फ पदार्थ में ही पैदा हो गई घटना है। जैसे हम ऑक्सीजन और हाइड्रोजन को मिलायें और पानी पैदा हो जाये। तो पानी कोई नयी घटना नहीं है, ऑक्सीजन और हाइड्रोजन का जोड़ है। इसलिए पानी के साथ कोई अलग व्यवहार करने की जरूरत नहीं है। जो हम ऑक्सीजन और हाइड्रोजन के साथ करते थे, वही व्यवहार पानी के साथ किया जा सकता है।

आदमी भी भौतिक तत्वों का जोड़ है, और उस जोड़ के अतिरिक्त उसके

भीतर और कुछ भी नहीं है जो जोड़ के बाहर हो। एक बार यह बात अगर स्वीकृत हो जाये कि आदमी सिर्फ जोड़ है हड्डी, मांस, मज्जा और पुदगलों का और उसके भीतर जोड़ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है तो जिन्दगी फिर दूसरे ढंग से हमको बितानी पड़ेगी।

जब कि यह सरासर झूठ है, आदमी कुछ और है, सिर्फ जोड़ नहीं जब कि यह बात बुनियादी रूप से गलत है। सच तो यह है कि आदमी कुछ और है और उसके आधार पर ही यह जोड़ भी सम्भव हो पाया है। और जिस दिन वह और अलग हो जाता है यह जोड़ बिखर जाता है। यह जोड़ अपने आप में नहीं है। वह क्रस्टलाइजेशन, यह सारी चीजों का जुड़ जाना बीच में किसी और केन्द्र के ऊपर है। और वह केन्द्र जिस दिन अलग होता है, यह सारा का सारा विस्तार टूट कर बिखर जाता है।

आदमी जोड़ नहीं जोड़ से ज्यादा है, लेकिन समाजवाद की दृष्टि जो है। मार्क्स सोचता था कि पदार्थ के अतिरिक्त और कोई सच्चाई नहीं है जगत् में। जिन दिनों में मार्क्स पैदा हुआ, उन दिनों पदार्थवाद बहुत जोर पर था। लेकिन अब अगर मार्क्स को उसकी कब्र से उठाया जा सके तो वह बहुत हैरान होगा। क्योंकि इधर सौ वर्षों में जो सबसे बड़ा आघात हुआ है वह पदार्थ को हुआ है। आज कोई भी वैज्ञानिक यह नहीं कह सकता कि पदार्थ है।

आज वैज्ञानिक कहेगा कि मेटर इज डेड। पदार्थ तो है ही नहीं, मर गया। असल में जितना खोजा उतना ही पाया कि पदार्थ नहीं है। आज अगर सारी दुनिया के पदार्थवादी लौटें तो बहुत हैरान होंगे। वे इस बात से हैरान होंगे कि उन्होंने आशा बांधी थी कि विज्ञान एक दिन सिद्ध करेगा कि परमात्मा नहीं है, आत्मा नहीं है। विज्ञान यह तो सिद्ध नहीं कर पाया कि आत्मा नहीं है, न यह सिद्ध कर पाया कि परमात्मा नहीं है। एक अजीब बात विज्ञान सिद्ध कर पाया कि पदार्थ नहीं है। और जो हमें पदार्थ की भांति दिखायी पड़ रहा है वह केवल ऊर्जा का खेल है एनर्जी का खेल है, वहां कोई पदार्थ नहीं है। और जैसे हम पदार्थ को तोड़ते हैं और नीचे पहुंचते हैं तो सिवाय विद्युत्-कणों को भी कण कहना भाषा की भूल है। कण नहीं हैं वे, क्योंकि कण तो पदार्थ के छोटे टुकड़े को कहते हैं। विद्युत् के टुकड़े को क्या कहें? अंग्रेजी में उन्होंने एक नया शब्द गढ़ा है क्वांटा का मतलब होता है दोनों चीजें एक साथ कण भी और लहर भी। कण तरंग दोनों बातें एक साथ हो नहीं सकतीं। लहर का मतलब ही होता है जिसमें बहुत कण हैं। कण का मतलब है जो अकेला है, जिसमें कोई लम्बाई नहीं है। लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं वह जो विद्युत का आखिरी टुकड़ा है वह एक ही साथ कण भी है और तरंग भी है। सबस्टेन्शियल बिल्कुल ही नहीं है। उसमें सबस्टेन्स जैसी कोई चीज ही नहीं सिर्फ ऊर्जा है, सिर्फ शक्ति है।

सिर्फ शक्ति है पदार्थ। और मार्क्स इन्कार करता है कि मनुष्य के भीतर पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। और विज्ञान कह रहा है कि सिर्फ शक्ति है पदार्थ तो है ही नहीं। आज दुनिया में मेटोरियलिज्म की तो बेस गिर गई है, उसके नीचे की बुनियाद गिर गई है। आज मेटीरियलिस्ट होने के लिए कोई भी समझदार आदमी तैयार नहीं है, नहीं हो सकता है। हालांकि पुरानी सदियों में अधिकतम समझदार आदमी मेटीरियलिस्ट होने के लिए तैयार थे। क्योंकि दिखलाई पड़ता था यह लोहा है, यह लकड़ी है, यह दीवार है। आज वैज्ञानिक कहता है कि न दीवार है, न लोहा है, न लकड़ी है, विद्युत् की तरंग में कोई मैटर नहीं, कोई पदार्थ नहीं है, वह सिर्फ शक्ति है।

यह सारा जगत ऊर्जा का खेल है। यह सारा जगत् शक्ति का एक बहुत बड़ा व्यापक विस्तार है। जिसे धर्म ने कहा है ब्रह्म, उसे विज्ञान आज ऊर्जा कह रहा है। बहुत देर नहीं है कि वह उसे ब्रह्म कह सके। एक कदम और उठाने की जरूरत है और विज्ञान जिसे ऊर्जा कह रहा है, उसे सचेतन ऊर्जा कह सकेगा। क्यों? क्योंकि विज्ञान के ही आधारभूत नियम इस बात के लिए पूर्व से अपेक्षा तैयार कर रहे हैं।

क्योंकि जगत् सिर्फ शक्ति का विस्तार है तो इस शक्ति का विस्तार में विचार पैदा होता है, चेतना पैदा होती है, और वही पैदा होता है हो सकता है जो पहले से छिपा हो, अन्यथा पैदा नहीं हो सकता। एक बीज से वृक्ष पैदा होता है, भले बीज में वृक्ष दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन बीज में वृक्ष का पूरा बिल्ट-इन-प्रोग्रेस मौजूद है। बीज में कैसे फल लगेंगे और वृक्ष कितना बड़ा होगा, और वृक्ष में कैसी शाखायें होंगी यह सब उस बीज में छिपा है। सिर्फ प्रकट होने की देर है, अप्रकट है।

ऊर्जा अप्रकट चेतना है, और बीज अप्रकट वृक्ष है। अगर कोई कहे कि बीज में वृक्ष नहीं है, तो फिर वृक्ष के पैदा होने की कोई सम्भावना ही नहीं है। फिर हर बीज हर वृक्ष को पैदा नहीं करता, सब बीज अलग-अलग वृक्षों को पैदा करते हैं, और फिर यदि बीज में वृक्ष नहीं है, तो फिर हम एक कंकड़ को बो दें और आम का वृक्ष पैदा नहीं होगा। क्योंकि कंकड़ में जो नहीं छिपा है वह पैदा नहीं हो सकता।

जो बोया है वही प्रकट होता है। चेतना प्रकट हुई है तो चेतना इसी ऊर्जा में छिपी होनी चाहिए। इस ऊर्जा के विस्तार में अगर ऊर्जा न छिपी तो वह कहां से आयेगी। वह है। मैं आपको देख रहा हूं, आप मुझे सुन रहे हैं, मैं बोल रहा हूं, आप समझ रहे हैं कि यह घटना घट रही है। यह घटना है समझ की, अण्डरस्टैंडिंग की, विचार की, चेतना की। प्रेम की यह घटना ऊर्जा में अंतर्निहित है।

विज्ञान को एक कदम और उठाना है। पदार्थ को विज्ञान ने जब तक नहीं

तोड़ा था, तब तक वैज्ञानिक कहते थे पदार्थ ही सत्य है। उसका ही जोड़ है सब, फिर उन्होंने पदार्थ को तोड़ा, उसको एनालाइज्ड किया। एनालेसिस के बाद हैरान हो गये। उन्होंने पाया कि पदार्थ तो तिरोहित हो गया, रह गयी सिर्फ ऊर्जा। जिस दिन वह ऊर्जा भी तिरोहित हो गयी तो रह गयी सिर्फ चेतना।

विज्ञान ने एक कदम जो उठाया है वह धर्म की तरफ से है और अब भविष्य में भौतिकवाद के लिए कोई उपाय नहीं रह गया है। लेकिन मार्क्स जब पैदा हुआ तब भौतिकवाद हवा में था।

चारों तरफ डारविन और न्यूटन की बात थी और चर्चा थी। और सब तरफ भौतिकवादी जीतता हुआ मालूम पड़ता था और अध्यात्मवादी हारता हुआ मालूम पड़ता था। स्वभावतः मार्क्स ने भौतिकवाद को पकड़ लिया। लेकिन समाजवाद आज भी भौतिकवाद को पकड़े हुए बैठा है।

असल में सब वादी अतीत से जकड़ जाते हैं। कोई वादी गीता से जकड़ जाता है, कोई कुरान से, कोई बाइबिल से, कोई मार्क्स से जकड़ जाता है। असल में वादी जो है वह पीछे को पकड़े रह जाता है। उसे पता नहीं रहता, जिन्दगी आगे बढ़ गयी।

समाजवाद आउट ऑफ डेट है, पिछड़ी हुई बकवास है। उसका अब कोई भविष्य नहीं है। क्योंकि वह जिन आधारों पर वह खड़ा है वे सब आधार गिर गये हैं। पहला आधार तो यह गिर गया है कि मेटीरियलिज्म गलत सिद्ध हो गया है।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अभी स्प्रीचुअलिज्म सही सिद्ध हो गया है विज्ञान से। मैं सिर्फ यही कह रहा हूं कि सिर्फ पदार्थवाद गलत सिद्ध हो गया है। लेकिन जगह खाली हो गयी है। और मनुष्य की चेतना बहुत दिनों तक वेक्यूम को बर्दाश्त नहीं करती। असल में शून्य को बर्दाश्त करना कठिन है। इसलिए पिछले बीस वर्षों में वैज्ञानिकों का बड़ा वर्ग धीरे-धीरे अध्यात्म की तरफ गया। एडिंग्टन ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि जितना ही मैं सोचता हूं उतना ही मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि जगत् एक वस्तु कम और विचार ज्यादा है।

यह जगत् एक वस्तु की भांति कम और एक विचार की भांति ज्यादा है। एडिंग्टन जैसा वैज्ञानिक यह कहता है तो थोड़ी हैरानी होती है। जिम्स-जीन ने मरने के पहले एक वक्तव्य दिया और उस वक्तव्य में कहा कि जितना मैंने सोचा मैंने पाया कि रहस्य बड़ा होता जाता है। और एक किताब लिखी।

एक वैज्ञानिक मिस्ट्री शब्द का भी उपयोग करेगा, यह भी थोड़ा ठीक नहीं मालूम होता।

मिस्ट्री धार्मिक शब्द है, रहस्य। सन्त होते हैं रहस्यवादी, वैज्ञानिक रहस्यवादी नहीं होता। वैज्ञानिक कहता ही यह है कि कोई रहस्य नहीं है। सब रहस्य

खोले जा सकते हैं। सिर्फ हमारे समझ की कमी है। थोड़ी समझ बढ़ेगी तो जो रहस्य मालूम पड़ता है उसे हम कानून बना देंगे।

हम खोल देंगे सब और इस सदी के पहले इस सदी के प्रारम्भ होते वक्त वैज्ञानिक बहुत आशा से भरा था कि हम सारे रहस्य खोल लेंगे। यह सदी पूरी होते-होते इस दुनिया में कोई रहस्य नहीं बचेगा और विज्ञान रिटायर हो जायेगा। वह विश्राम पर चला जायेगा, क्योंकि कोई रहस्य नहीं बचेगा, सब रहस्य खोल लिए जायेंगे।

जिन लोगों ने फ्रेंच-क्रांति की थी वे लोग इसी आशा से भरे थे कि दुनिया में ज्यादा दिन रहस्य नहीं बचेगा। लेकिन उन बेचारों को कोई पता नहीं है कि विज्ञान ने कितनी खोज की, रहस्य छोटा नहीं हुआ, रहस्य और बड़ा हो गया। और विज्ञान जितना गहरा गया उतना पाया कि गहराइयां आगे हैं। और विज्ञान ने जहां-जहां समझा था कि सतह आयेगी वहां पहुंच कर पाया कि यह तो सिर्फ ऊपर ही हम तैरते थे, नीचे और बहुत ज्यादा है। और अब जिम्सजीन वैज्ञानिक कह सकता है कि जगत् की मिस्ट्री का कभी कोई अन्त नहीं है।

आइंस्टीन ने अपने जीवन भर के निष्कर्षों के बाद में कहा है कि मेरा मन धार्मिक होता जा रहा है। यह बड़ी हैरानी की बात है। आइंस्टीन जैसा आदमी कहे मेरा मन धार्मिक होता जा रहा है! क्यों होता जा रहा है? आइंस्टीन को ऐसी कौन-सी वैज्ञानिक समझ से पता चला है कि धर्म है। नहीं, यह तो पता नहीं चला, लेकिन एक बात पक्की पता चल गई कि विज्ञान के सब आधार डांवाडोल हो गये हैं। और अब विज्ञान को पकड़ने के लिए जगह नहीं रह गई। हाथ खाली हो गये हैं। और आइंस्टीन के हाथ जो खाली हैं, वह धर्म की तरफ झुक रहे हैं।

समाजवाद का बुनियादी आधार अब भौतिकवाद है। इस भौतिकवाद से समाजवाद का एक दूसरा आधार विकसित हो गया था वह था हिस्टॉरिकल मेटीरियलिज्म। वह मेटीरियलिज्म का ही विकास था।

भौतिकवाद और फिर मार्क्स ने एक दूसरी धारणा विकसित की ऐतिहासिक भाग्यवाद की। समाजवाद का यह मानना है कि आदमी तय नहीं करता कि समाज कैसा हो। समाज की अन्धी ऐतिहासिकता (हिस्टोरिकी) तय करती है कि समाज कैसा हो।

पूंजीवाद के बाद समाजवाद आयेगा ही, यह अनिवार्य है। यह ऐसे ही है जैसे हम पानी को गरम करेंगे तो वह भाप बनेगा। बनेगा ही। ऐसा नहीं है कुछ कि उसे बनना चाहिए।

इसलिए मैं दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं। जिस भौतिकवाद के आधार पर मार्क्स सोचता था कि ऐतिहासिक सुनिश्चितता हो सकती है कि भौतिकवाद तो गिर ही गया। भौतिकवाद के सुनिश्चितता के सिद्धान्त भी गिर गये। पिछले

पन्द्रह सालों में भौतिकवाद ने नया सिद्धान्त विकसित किया है जिसका नाम है "प्रोबेबिलिटी", सम्भावना। पिछले पन्द्रह वर्षों में विज्ञान ने सरटेन्टी की भाषा छोड़कर अनसर्टेन्टी की भाषा बोलना शुरू की है।

अब निश्चय की भाषा विज्ञान ने बन्द कर दी और अनिश्चय की भाषा शुरू की है। क्योंकि विज्ञान यह कह रहा है कि जो निश्चय दिखाई पड़ रहा है वह बहुत ऊपरी है, और हम भीतर घुसते हैं तो निश्चय टूट जाता है।

जैसे हम निश्चित हो सकते हैं कि पिछले दस सालों का अहमदाबाद की सड़कों का रिकार्ड पुलिस से पूछा जाये तो पता चल सकता है कितने एक्सीडेण्ट हुए। और यह भी पता चल सकता है कि हर साल कितने एक्सीडेण्ट बढ़ जाते हैं। तो हम घोषणा कर सकते हैं कि अगले साल अहमदाबाद की सड़कों पर कितने एक्सीडेण्ट होंगे। लेकिन इस आधार पर हम यह नहीं बता सकते कि कौन-सा आदमी एक्सीडेण्ट में मरेगा।

दस लाख आदमी रहते हैं तो हम बता सकते हैं कि दस आदमी अगले साल कार के एक्सीडेण्ट में मरेंगे। क्योंकि पिछले साल नौ मरे, उसके पहले साल आठ और पहले सात मरे। दस आदमी मरेंगे यह प्रोबेबिलिटी है, यह सर्टेन्टी नहीं है। यह सिर्फ सम्भावना है। यदि अहमदाबाद के लोग तय कर लें जैसा कि बहुत सम्भव है गुजरात के लोग कर सकते हैं मरेंगे तो तब तक हम घर से बाहर ही नहीं निकलेंगे तो यह सम्भावना गलत हो जायेगी। दस भी न मरेंगे। यह सम्भावना तभी तक लागू रहेगी जब तक अहमदाबाद के लोग जिस ढंग से रह रहे हैं वे वैसे ही रहते चले जायें। और यह सम्भावना बड़े समूह पर लागू होगी। अगर एक आदमी को पकड़ कर हम कहें कि यह आदमी मरेगा या नहीं मरेगा, तो उसके सम्बन्ध में कोई घोषणा नहीं की जा सकती।

जब तक विज्ञान पदार्थ के समूह का अध्ययन कर रहा था, तब तक बहुत सर्टेन था। वह जानता था कि नाइट्रोजन का व्यवहार क्या है, वह जानता था कि ऑक्सीजन का व्यवहार क्या है। लेकिन जब विज्ञान पदार्थ के समूह के नीचे उतरा और उसने एटम को पकड़ा तो वह हैरान रह गया, एटम इंडीविज्युअल है। उसके व्यवहार को पक्के रूप से तय नहीं किया जा सकता है कि वह क्या व्यवहार करेगा।

बड़ी हैरानी की बात है कि पदार्थ के भीतर भी व्यक्तियों के अस्तित्व हैं। और जब एटम को भी तोड़ा तब वैज्ञानिक और भी मुश्किल में पड़ गये हैं, क्योंकि इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन और पाजेट्रान के व्यवहार को तो बिल्कुल नहीं बताया जा सकता कि वे क्या करेंगे। वे झिग-झिग चलते हैं। उनका कुछ पक्का नहीं कि वे ऐसा ही चलेंगे। वे गलत चल सकते हैं, और कुछ पता नहीं चलता कि वे ऐसी गड़बड़ क्यों करते हैं? क्योंकि पदार्थ को गड़बड़ नहीं करना चाहिए, उसे नियम से चलना

चाहिए।

यहां तक हैरानी का अनुभव हुआ है कि जब कोई वैज्ञानिक अपनी बहुत गहरी दूरबीन से या खुर्दबीन से पदार्थ के छोटे अणुओं को देखता है तो एक बहुत आश्चर्यजनक अनुभव होता है। वह समझने जैसा है। वह यह कि उस निरीक्षण करने से पदार्थ के छोटे अणुओं के व्यवहार में अन्तर पड़ जाता है। जैसे कि आप अपने बाथरूम में स्नान करते होते हैं तो एक तरह के आदमी होते हैं और मैं आपको सुराख में से झांक कर देखूं तो आपके व्यवहार में अन्तर पड़ जाता है। क्योंकि जब आप अकेले थे तो आप मुंह चिढ़ा रहे थे आईने के सामने, लेकिन अगर आपको पता चल जाये कि छेद में से कोई झांक रहा है, तो आप बदल गये। यह आपके बाबत तो समझ में आता है, क्योंकि आप एक व्यक्ति हैं सचेतन, लेकिन एक छोटा-सा न दिखाई पड़ने वाला इलेक्ट्रान अगर निरीक्षण से अपना रास्ता बदल देता है, तब बड़ी अजीब बात है।

इसका मतलब यह होता है कि इलेक्ट्रॉन के पास अपनी आत्मा, अपना व्यक्तित्व है। इलेक्ट्रान भी निरीक्षण से रास्ता बदलता है। आपने कभी अपनी नाड़ी नापी है, आप अपनी नाड़ी नापें, पहली दफा नापें, फिर दस मिनट के लिए निरीक्षण करते रहें नाड़ी का और फिर नापें, आप पायेंगे कि चाल बढ़ गयी। जब डाक्टर आपकी नाड़ी नापता है तो चाल उतनी ही नहीं होती जितनी नापने के पहले थी, थोड़ी-सी बढ़ जाती है और अगर लेडी डाक्टर हो तो निश्चित ही ज्यादा बढ़ जाती है। क्योंकि लेडी डाक्टर की वजह से नाड़ी पर निरीक्षण ज्यादा हो जाता है, ध्यान ज्यादा चला जाता है।

निरीक्षण चेतन व्यक्ति में फर्क करे यह समझ में आता है, लेकिन जिसको हम सदा से जड़ कहते रहे अचेतन, उसके व्यक्तित्व में भेद पड़ जाये तो सोचना पड़ेगा फिर से कि जिसको हम अचेतन कह रहे हैं वह भी अचेतन नहीं है। आब्जरवेशन फर्क करता है तो चेतना वहां भी है, तो हो सकता है हम उसकी चेतना को अभी नहीं पहचान पा रहे, लेकिन कल हम उसके चेतन को पहचान लें।

इसलिए विज्ञान पिछले पन्द्रह सालों से सरटेन्टी की बातें नहीं करता कि ऐसा होगा ही, वह कहता है ऐसा हो सकता है। क्योंकि वे जो नीचे बैठे हुए व्यक्तिगत अणु हैं वे क्या व्यवहार करेंगे, कहना बहुत कठिन है। उनके व्यवहार को तय करना आसान नहीं है। भीड़ सदा जड़ होती है, व्यक्ति सदा चेतन होता है। और समाजवाद का सारा भरोसा भीड़ पर है। व्यक्ति पर बिल्कुल नहीं है।

व्यक्ति पर कोई जड़ता भरोसा नहीं कर सकती। व्यक्ति स्वतन्त्रता है। भीड़ एक जड़ता है। अगर एक मस्जिद को जलाना हो तो पांच हजार हिन्दुओं पर भरोसा किया जा सकता है, एक हिन्दू पर भरोसा नहीं किया जा सकता। अगर एक मन्दिर में आग लगाना हो तो पांच हजार मुसलमानों पर भरोसा किया जा

सकता है, एक मुसलमान पर भरोसा नहीं किया जा सकता। और मजा यह है कि पांच हजार मुसलमान से अगर एक-एक से पूछा जाये कि क्या तुम मन्दिर जलाने के लिए तैयार हो तो वह भी दो बार सोचेगा और कहेगा कि जलाना कि नहीं जलाना; लेकिन पांच हजार मुसलमानों की या पांच हजार हिन्दुओं की भीड़ जब मन्दिर या मस्जिद में आग लगाती है, तो सोचने की जरूरत ही नहीं होती। भीड़ सिर्फ यंत्रवत् काम करती है।

इसलिए दुनिया में जितने बड़े पाप व्यक्तियों ने किये हैं उतने व्यक्ति ने कभी भी नहीं किये और भीड़ से सावधान रहना और भीड़ से बचने की कोशिश करना।

समाजवाद भीड़वाद है, वह व्यक्ति को हटा कर भीड़ को ला देना चाहता है। विज्ञान के नीचे से आधार खिसक गये हैं। इसलिए अब कोई समाजवादी वैज्ञानिक समाजवाद की बातें न करे। मार्क्स के जमाने में साइंटिफिक सोशलिज्म शब्द में कोई अर्थ था, अब कोई अर्थ नहीं है। अब अगर हमारा चिन्तन वैज्ञानिक है, तो वह गलत बातें कर रहा है। विज्ञान से आज उसको कोई सहारा या समर्थन नहीं है।

यह जानकर आप हैरान होंगे कि जब तक स्टैलिन रूस में हुकूमत में था तब तक उसने ऐसी आज्ञाएं जारी कर रखी थीं कि वैज्ञानिक कोई ऐसा सिद्धान्त न खोजें जो समाजवाद के विपरीत जाता हो। बहुत मजे की बात है। राजनीति तय करेगी कि प्रकृति कैसा व्यवहार करे, राजनीति तय करेगी कि हाइड्रोजन और ऑक्सीजन मिले तो पानी बने कि न बने। स्टैलिन क्रेमलिन में बैठकर तय करेगा कि फिजिक्स क्या खोजे और क्या न खोजे और खोज ले तो भी क्या बताये और क्या न बताये।

स्टैलिन ने पिछले पचास साल रूस में ऐसी सारी दिशाओं को बन्द करवा दिया जिनसे समाजवाद की वैज्ञानिकता पर संदेह हो सकता था। लेकिन कोई रूस में ही विज्ञान विकसित नहीं हो रहा है, सारी यूरोपीय दुनिया में विज्ञान का विकास एक अजीब निष्कर्ष देता है। और वह यह कि जगत् एक सचेतन प्रक्रिया (कांशस प्रोसेस) है। और ध्यान रहे कि यह कभी भी भाग्यवादी नहीं हो सकती।

हिन्दुस्तान के लिए समाजवाद के साथ यह भी एक खतरा है जो मैं आपको बता दूं। हिन्दुस्तान हजारों सालों से भाग्यवादी है। उतने भाग्यवादी न मनु हुए, न भाग्यवादी याज्ञवल्क्य थे। कोई हिन्दू विचार इतना भाग्यवादी नहीं था, जितना भाग्यवादी मार्क्स है। क्यों? क्योंकि स्वतन्त्रता की सम्भावना चेतना के साथ है। अगर चेतना नहीं है तो स्वतन्त्रता नहीं है, स्वतन्त्रता नहीं है तो फिर यांत्रिक व्यवस्था सब निर्णय करती है। घड़ी तय नहीं कर सकती कि मैं चलूं या न चलूं घड़ी का यन्त्र तय करता है कि चले या न चले। इसलिए हम घड़ी की गारण्टी दे सकते हैं कि दस साल चलेगी। क्योंकि घड़ी कोई आत्महत्या नहीं करेगी, लेकिन

आप मेरी गारण्टी नहीं दे सकते कि दस साल चलूंगा। मैं आज ही आत्महत्या कर सकता हूं।

सारा यन्त्र पड़ा रहेगा ठीक जो दस साल चल सकता था, लेकिन मैं आज आत्महत्या कर सकता हूं। आदमी अकेला प्राणी है जो आत्महत्या कर सकता है। यह कभी आपने सोचा, कोई जानवर नहीं कर सकता। अब तक किसी जानवर ने आत्महत्या नहीं की। क्यों? जानवर के पास इतनी चेतना नहीं कि स्वयं का निर्णायक हो सके कि मैं जिऊं या मरूं। मनुष्य के मन का हमें पता नहीं है। मनुष्य की चेतना बहुत छोटे-से घेरे को प्रकाशित करती है। जैसे एक दिया जलता है तो छोटे-से घेरे को प्रकाशित करता है। ऐसे ही मनुष्य की चेतना छोटे से घेरे को प्रकाशित करती है। अगर मेरी पत्नी बीमार है, तो मैं रात भर दौड़ सकता हूं; लेकिन मुझे पता लगे कि राष्ट्र-पत्नी बीमार है, तो हम आराम से सो जायेंगे कि रहने दो, इससे क्या फर्क पड़ता है। अगर मेरी मां बीमार है तो मैं जिन्दगी भर उसकी सेवा कर सकता हूं, लेकिन मुझे पता चले कि मनुष्यता की मां बीमार है, होगी बीमार! भारत माता के बीमार होने से कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अपनी मां बीमार होनी चाहिए।

मनुष्य की चेतना का बहुत छोटा-सा पहलू वही परिवार है। रूस ने नहीं मानी यह बात, पचास साल के बाद स्वीकार करनी पड़ रही है। दस सालों से रोज व्यक्तिगत सम्पत्तियों को जबर्दस्ती छीना था। लाखों लोगों की हत्यायें करके जो छीना था, वह उन्हें वापस दिया जा रहा है। और रूस के अखबारों के एडिटोरियल पढ़ें तो रोज उसमें यह बात होती है कि राष्ट्र के लिए श्रम करो। मालूम होता है कोई श्रम नहीं कर रहा है। नहीं तो बार-बार रोज एडिटोरियल लिखने की कोई जरूरत ही नहीं है कि राष्ट्र के लिए श्रम करो।

हम चिल्लायें तो समझ में आता है, रूस में सब नेता चिल्लाते हैं कि राष्ट्र के लिए श्रम करो। कोई श्रम नहीं कर रहा है। ख्रुश्चेव अपने पूरे वक्तव्यों में, जो उसने रूस में दिये हैं, निरन्तर यह कहता रहा है कि लड़के अलाल होते जा रहे हैं। कोई काम करने को राजी नहीं है। असल में पचास साल स्टैलिन ने काम करवाया बन्दूक के कुन्दे के बल। जिस दिन से स्टैलिन गया, उस दिन से बन्दूक का कुन्दा ढीला करना पड़ा और बन्दूक का कुन्दा ढीला हुआ कि काम ढीला हुआ।

व्यक्ति के पास इनिशियेटिव चाहिए। उसके पास चेतना है, उस चेतना को प्रेरणा चाहिए। अगर गरीब में प्रेरणा पैदा की जाये कि वह भी अमीर हो तब तो यह मनुष्य समृद्ध हो सकता है, लेकिन गरीब की इस ईर्ष्या का दुरुपयोग किया जा रहा है। राजनीतिज्ञ इसका शोषण कर सकता है। वह कह सकता है कि तुम्हें अमीर होने की जरूरत नहीं है। अमीर को गरीब बनाने की जरूरत है, उससे

सब ठीक हो जायेगा ।

जिसे हम समाजवाद कह रहे हैं वह गरीब को अमीर बनाने की योजना नहीं है । वह अमीर को गरीब बनाने की योजना है । कोई हर्जा न था अगर गरीबों को लाभ हो सकता, लेकिन गरीबों को कोई लाभ नहीं हो सकता, सिर्फ गरीबी बढ़ेगी; हां थोड़ी-सी राहत मिलेगी । अगर दुनिया में इतने लोग हैं और इसमें दस आदमियों के पास दो-दो आंखें हैं और बाकी लोगों के पास एक-एक आंख है, तो हम मांग सकते हैं कि नहीं यह नहीं चलेगा कुछ लोगों के पास दो आंखें हैं और कुछ के पास एक, एक उपाय तो यही है कि जिनके पास एक ही आंखें हैं उनकी दूसरी आंख का इलाज हो । और उसमें उन दस लोगों का उपयोग किया जा सकता है जिनके पास दोनों आंखें हैं। लेकिन दूसरा उपाय यह है कि हम उन दस लोगों की भी एक-एक आंख कर दें ।

इससे सबके पास दो-दो आंखें न रह जायेंगी, लेकिन बड़ी राहत मिलेगी कि सबके पास एक-एक हो गई। इससे चित्त को बड़ी शांति मिलेगी । आदमी का मन बहुत अजीब है। आदमी अपने दुख से उतना परेशान नहीं होता जितना दूसरे के सुख से हो जाता है। आदमी अपने दुख से उतना दुखी नहीं होता, जितना दूसरे के सुख से व्यथा में पड़ जाता है। दूसरे का सुख बर्दाश्त के बाहर हो जाता है । खुद के दुख को तो आदमी किसी तरह बर्दाश्त कर लेता है। इसलिए अगर सब दुखी हैं तो दुख की पीड़ा कम हो जाती है ।

अगर सब गरीब हों तो गरीबी का बोझ मिट जाता है । अगर सब लंगड़े-लूले हों तो चित्त को बड़ा विश्राम मिलता है । मैंने सुना है एक आदमी के सम्बन्ध में कि उसने बहुत दिन भगवान् की पूजा और प्रार्थना की और वरदान मांगता रहा और फिर भगवान् प्रकट हुए और उन्होंने कहा कि वरदान ले ले, तो उसने कहा कि आप ही जो ठीक समझें दे दें; पर ऐसा कुछ दें जो सदा काम आता रहे । तो भगवान् ने उससे कहा कि ठीक तू जो भी मांगेगा वह तुझे मिल जायेगा, लेकिन साथ ही यह भी कि तेरे पड़ोसी को उससे दुगना मिल जायेगा ।

उस आदमी ने सर पीट लिया कि भगवान् भी किस तरह का है । पड़ोसियों को नीचा दिखाने के लिए तो इतने दिनों से भगवान् की प्रार्थना करता रहा था । यह वरदान किस किस्म का है ? उसने घर आकर लाख रुपये मांगे, पता चला कि पड़ोसियों के घर में दो लाख रुपये बरस गये ।

उसे लाख रुपया बिल्कुल दिखाई पड़ना बन्द हो गया, उसे दो लाख की पीड़ा ने घेर लिया । उसने कहा, मैं खुद ही अपने हाथ से उनके घर में दो लाख गिरा रहा हूं । उसने सोचा कोई तरकीब सोचनी पड़ेगी । आकर उसने भगवान् से कहा कि मेरी एक आंख छीन ले । उसकी एक आंख चली गयी ,पड़ोसियों की दोनों आंखें चली गयीं ।

वह बड़ा तृप्त हुआ, अंधों में काना राजा हो गया और फिर उसने भगवान् से कहा मेरे घर के सामने एक कुंआ खोद दे और उसके पड़ोसियों के घर के सामने दो-दो खुद गये, और वे अंधे उस कुंए में गिरने लगे । अब दिल को जरा राहत मिलती है । यह भी क्या पागलपन तूने किया कि लाख हमारे घर में गिरे और दो लाख उनके घर में गिर जायें ।

आदमी अपने को भी दुख देने को राजी हो जाता है अगर दूसरे को दुख देने का मौका मिल जाये । आदमी के इस चित्त का समाजवाद के नाम से शोषण किया जा रहा है ।

सारी दुनिया में समाजवाद समता लाने की बातचीत करता है । ईर्ष्या जगाने का काम करता है । उसका मूल आधार ईर्ष्या और द्वेष पर है । बड़ा वर्ग भूखा है, दीन है, दुखी है । यह सच है इसकी दीनता मिटनी चाहिए, इसका दुख मिटना चाहिए । इसकी जिन्दगी में कुछ आना चाहिए, यह बिल्कुल जरूरी है। लेकिन जो थोड़ा सा वर्ग सुखी दिखायी दे रहा है, उसकी खुशी पोंछ देने से कुछ भी नहीं होगा । हां, एक फर्क होगा, अगर हम सुखी लोगों को पोंछ डालें तो दुखी लोगों को पता चलना बन्द हो जायेगा । उनके पास कोई कम्परेटिव स्केल नहीं रह जायेगा । इसका बहुत उपयोग किया गया है । जैसे, एक मुल्क में हमने एक उपयोग किया था कि हमने शूद्रों की एक सीमा बांध दी थी । उस सीमा के बाहर शूद्र नहीं जा सकता था। उसको पैसे तो मिलते नहीं थे, खाने को मिल जाता था । पुराने कपड़े मिल जाते थे, बासी भोजन मिल जाता था । शूद्र की एक बंधी हुई जिन्दगी थी। उसमें विकास का कोई उपाय न था । इसलिए कभी किसी मेहतरानी ने कभी किसी महारानी से कोई ईर्ष्या नहीं की । ईर्ष्या का कोई उपाय ही नहीं था। फासला इतना ज्यादा था कि कहां महारानी और कहां मेहतरानी। अगर मेहतरानी ईर्ष्या भी करेगी तो पड़ोसी मेहतरानी से, क्योंकि उसने एक लकड़ी का कड़ा और पहन लिया । किसी मेहतरानी ने किसी महारानी से कभी ईर्ष्या नहीं की, क्योंकि उसके आस-पास का जो पड़ोस था उस पड़ोस तक उसकी नजर जाती थी और उस नजर में इसको ईर्ष्या योग्य कुछ नहीं दीखता था । बड़ी तृप्ति थी ।

समाजवाद इसी तृप्ति को और बड़े पैमाने पर फैला देता है । वह सारे मुल्क एक-सा गरीब कर देता है । ध्यान रहे, मैं कह रहा हूं एक-सा गरीब, एक-सा अमीर नहीं, क्योंकि एक-सा अमीर करना समाजवाद के हाथ में नहीं है । एक-सा गरीब करना समाजवाद के हाथ में है । एक-सा अमीर करना राज्य के हाथ में नहीं है, एक-सा गरीब करना आज राज्य के हाथ में है । एक-सा अमीर करना हो तो सैकड़ों वर्ष का श्रम चाहिए । एक-सा गरीब करना हो तो पालियामेंट का एक ही कानून काफी है । निश्चित ही एक-सा अमीर करना बच्चों का खेल नहीं है। एक-सा अमीर तो हम कर नहीं सकते । फिर कम-से-कम एक-सा गरीब तो

कर ही सकते हैं। इसको हम क्यों चूकें। जब तक एक-सा अमीर होगा, तब तक हम एक-सा गरीब कर दें।

समाजवाद का जो आकर्षण है साधारण जन के मन में, वह आकर्षण ईर्ष्याजन्य है। समाजवाद मनुष्य की ईर्ष्या का दुरुपयोग कर रहा है और उससे कुछ समृद्धि नहीं आ जायेगी, उससे कुछ सम्पत्ति पैदा नहीं हो जायेगी। क्योंकि सम्पत्ति पैदा करने का जो नियम है, उन नियमों की बुनियादी बात व्यक्तिगत सम्पत्ति है। मैं व्यक्तिगत सम्पत्ति का पक्षपाती नहीं हूं, लेकिन मैं मानता हूं कि व्यक्तिगत सम्पत्ति उस दिन जानी चाहिये जिस दिन सम्पत्ति बेकार हो जाये और सम्पत्ति उस दिन बेकार होगी जिस दिन आवश्यकता से अधिक हो जायेगी। उसके पहले सम्पत्ति बेकार नहीं हो सकती।

पानी जरूरत से ज्यादा है तो बिना मूल्य के मिल जाता है, हवा जरूरत से ज्यादा है, बिना मूल्य मिल जाती है। असल में मूल्य पैदा ही होता है न्यूनता से। जो चीज कम होती है उसका मूल्य हो जाता है। मूल्य न्यूनता है। व्यक्तिगत सम्पत्ति तब तक मूल्यवान रहती है जब तक सम्पत्ति कम है। जिस दिन सम्पत्ति एफ्ल्युएंट होगी, जिस दिन सम्पत्ति इतनी ज्यादा होगी कि उस पर व्यक्तिगत कब्जा करना बेमानी और पागलपन हो जायेगा, उस दिन ही व्यक्तिगत सम्पत्ति समाप्त हो सकती है, उसके पहले नहीं। उसके पहले अगर हमने व्यक्तिगत सम्पत्ति समाप्त की तो वह जो सम्पत्ति को पैदा करने की प्रेरणा है, वह भी वहीं समाप्त हो जायेगी।

सम्पत्ति को पैदा करने का उपाय पूंजीवाद के पास है, समाजवाद के पास नहीं है। समाजवाद पूंजी को बांट सकता है, पैदा नहीं कर सकता, और अगर समाजवाद सम्पत्ति को पैदा करेगा, तो उसे जो व्यक्तिगत प्रेरणा है उसकी जगह फोर्स और वायलेंस का उपयोग करना पड़ेगा। हिंसा का उपयोग करना पड़ेगा। तो जहां आज आदमी सम्पत्ति पैदा करने के लिए खुद दौड़ता है, वहां फिर पीछे बन्दूक लगानी पड़े तब वह दौड़े। लेकिन बन्दूक से बहुत दिन दौड़ना बहुत मुश्किल है। क्योंकि वह जबर्दस्ती की व्यवस्था है, सहज व्यवस्था नहीं है। मेरी दृष्टि में सम्पत्ति अगर अतिरिक्त हो जाये तो अपने आप बेमानी हो जायेगी। जिस दिन अतिरिक्त हो जायेगी उस दिन व्यक्ति को सम्पत्ति राज्य के हाथों में समर्पित करनी पड़ेगी। जिस दिन अतिरिक्त हो जायेगी उस दिन व्यक्तिगत सम्पत्ति का जो पशु है, वह अपने आप विदा हो जायेगा बिना राज्य को मालिक बनाये। अभी तो राज्य मालिक बन जायेगा। लेकिन ध्यान रहे, थोड़े से व्यक्तिगत पूंजीपतियों के हाथ में सम्पत्ति का होना उतना खतरनाक नहीं, जितना राज्य के हाथ में। राज्य की ताकत तो है ही, और धन की भी ताकत राज्य के हाथ में आ जाये तो राजनीति अपने आप टोटलिटेरियन हो जाती है,

अपने आप अधिनायक, तानाशाह हो जाती है, क्योंकि तब राज्य के खिलाफ कोई ताकत मुल्क में नहीं रह जाती।

राजनीतिज्ञ के हाथ में दोनों ताकतें इकट्ठी हो जायें, राज्य की भी और धन की भी, तो तीसरी कोई ताकत ही नहीं है मुल्क के पास। फिर राजनीतिज्ञ भगवान् बन जाता है। स्टैलिन करीब-करीब भगवान् की तरह जिया, इसलिए उसे अदृश्य जीना पड़ता था, क्योंकि भगवान् दृश्य नहीं होता, सामने प्रकट नहीं होता।

मैंने सुना है कि स्टैलिन को अपनी शक्ल का एक डबल भी रखना पड़ा था, एक आदमी रखना पड़ा था; क्योंकि जनता में सलामी वगैरह लेने के लिए उस आदमी का उपयोग करना पड़ता था। क्योंकि कोई गोली मार दे, कोई छुरा भोंक दे तो। जो आदमी रूस में समाजवाद लाया, जो आदमी रूस में सम्पन्नता लाया, जैसा समाजवादी कहते हैं कि जिस आदमी ने रूस में स्वर्ग उतारा, वह आदमी सड़क पर चलने में डरता है। स्वर्ग जरा संदिग्ध मालूम पड़ता है। मालूम होता है इस आदमी ने नर्क उतारा है, अन्यथा डरने का इतना कोई कारण नहीं है।

स्टैलिन का भय बताता है कि रूस की जनता के ऊपर क्या गुजरी। स्टैलिन छिप कर जिया है। सलामी तक लेने का मजा खो दिया—बड़ा मजा है। कभी-कभी ऐसा हो जाता है। एक आदमी सलामी लेने के लिए राज्य की ताकत हाथ में लेता है और सलामी के लिए दूसरा आदमी भेजना पड़ता है कि कोई गोली न मार दे। तो ऐसे अपने घर ही भले थे। वहां कौन-सी तकलीफ थी? एक आदमी राष्ट्र के ऊपर सवार होता है और लोग उसे देखें कि वह कुछ है, लेकिन फिर उसे छिप कर बैठना पड़ता है कि कहीं कोई गोली न मार दे!

रूस में अगर स्वर्ग उतर आया है तो स्टैलिन को भयभीत होने की कोई जरूरत नहीं थी। रूस में अगर स्वर्ग उतर आया है तो वहां सभी विचारशील लोगों की हत्या करने की कोई जरूरत न थी। रूस में अगर स्वर्ग उतर आया है तो रूस में विचार की स्वतंत्रता को नष्ट करने की कोई जरूरत नहीं थी। लेकिन विचार का कोई मौका नहीं। कुछ कारण थे। स्वर्ग नहीं उतर आया, सिर्फ दीनता बढ़ गई और दीनता ही नहीं बढ़ गई, बल्कि आदमी से काम लेने के लिए जबर्दस्ती वायलेन्स का उपयोग करना पड़ रहा है। रूस एक मिल्ट्री-कैम्प बन कर खड़ा हो गया और अब चीन मिल्ट्री-कैम्प बन रहा है। कोई नहीं जानता कि हम भी वही नासमझी कर रहे हैं।

एक बार राज्य के हाथ में धन की शक्ति गयी तो फिर राज्य को चुनौती देने की कोई शक्ति मुल्क में नहीं रह जाती और एक बार व्यक्ति की व्यक्तिगत सम्पत्ति नष्ट हो गयी कि व्यक्ति की ताकत नब्बे प्रतिशत समाप्त हो जाती है।

आपके पास भी थोड़ी-सी ताकत सोचने की मालूम पड़ती है तो उस ताकत में आप अपनी रोटी खुद कमाते हैं। उस ताकत में आपके पास अपना मकान, उस ताकत में आपकी व्यक्तिगत दुनिया है, अगर कल आपकी सारी व्यक्तिगत दुनिया छीन ली गयी और रोटी भी राज्य से मिलने लगी, कपड़ा भी राज्य से मिलने लगा, मकान भी राज्य से मिलने लगा तो आप अचानक पायेंगे कि आपकी आत्मा खो गयी, आप बिक गये हैं और जिसका नमक उसकी नमकहरामी शुरू हो जाती है अचानक सहज ही। फिर राज्य के हाथ में इतनी ताकत होती है कि जरा-सा इन्कार और मृत्यु के सिवाय कुछ हाथ नहीं लगता।

मैंने सुनी है एक घटना कि ख्रुश्चेव एक कम्युनिस्ट पार्टी की विशेष मीटिंग में बोल रहा था और बोलते वक्त उसने स्टैलिन के सम्बन्ध में बताया कि उसने कितनी हत्याएं कीं और कितने लोगों को मारा और कितने लोगों को जेलों में डाला। रूस में जनता को आंकड़े नहीं बताये गये कुछ वर्षों तक। क्योंकि इतने लाखों लोग मार डाले गये थे कि उनका दुनिया को पता चल जायेगा कि इतने नाम अचानक विदा कैसे हो गये। इन्सेसेस लिस्ट में नाम नहीं हैं। ये कहां गये, थोड़े-बहुत लोग नहीं, अंदाज है एक करोड़ लोग रूस में स्टैलिन के वक्त मारे गये। तो फिर क्यों कहना था कि स्टैलिन ने इतने आदमी मारे, इतनी हत्या की। तो एक आदमी ने खड़े होकर कहा कि आप भी स्टैलिन के साथियों में से हैं। आप भी प्रतिबिम्ब के हिस्से थे, आप भी उन दस-बारह लोगों में से थे जो स्टैलिन की ताकत में थे, आपने उस वक्त क्यों नहीं कहा?

ख्रुश्चेव एक क्षण के लिए रुका और फिर उसने कहा, महाशय, आप फिर से खड़े होकर अपना नाम और अपना पता दीजिये। फिर वह आदमी खड़ा नहीं हुआ। ख्रुश्चेव ने कहा इसी वजह से उस वक्त मैं भी नहीं खड़ा हुआ था। यही कारण है, नहीं तो आज कहने को नहीं बचता, उसी वक्त खत्म हो गया होता। पति भी अपनी पत्नी से रात मन की बातें खोल कर नहीं कह सकता, क्योंकि पता नहीं पत्नी किसी को बता दे। बाप अपनी बेटी से खुलकर नहीं बात कर सकता, क्योंकि पता नहीं बेटी लड़कों की कम्युनिस्ट पार्टी में जाकर किसी को खबर कर दे।

सारा मुल्क जासूस हो गया था। आज भी चीन में वही हालत है। एक दफा राज्य के हाथ में पूरी ताकत चली जाये तो व्यक्ति की हैसियत टूट जाती है, समाप्त हो जाती है। और जहां विचार की स्वतंत्रता नहीं वहां बड़े पेट को लेकर क्या किया जा सकता है। उसका क्या उपयोग? उसका क्या अर्थ? आदमी को विजिटेट नहीं करना है। आदमी को सिर्फ खाकर सो नहीं जाना है। आदमी को जिंदगी में खाना और सोना जरूरी है जरूर, लेकिन किन्हीं और बातों के लिए जरूरी है। उसके भीतर की आत्मा विकसित हो सके, उसकी

चेतना का फूल भी खिल सके; लेकिन नहीं, यह कुछ भी नहीं हो सकता। सिर्फ जड़ों को पानी मिल सकता है। फूल भर खिलाने की कोशिश मत करना। क्योंकि जब फूल खिलाने हैं तो व्यक्ति को मान्यता देना जरूरी है। समाजवाद, समूहवाद (क्लेक्टिविज्म) यह समूह को मान्यता देता है। उसका कहना है कि समूह के लिए व्यक्ति की कुर्बानी दी जा सकती है। समूह जब ठीक समझे तो व्यक्ति की हत्या कर सकता है। समूह के हित में न हो तो व्यक्ति को मारा जा सकता है, लेकिन बड़े मजे की बात है—समूह कौन? राज्य? और राज्य कौन? स्टैलिन, माओ।

एक आदमी तय करेगा कि समूह की इच्छा क्या है। एक आदमी तय करेगा कि समूह के हित में क्या है, एक आदमी तय करेगा कि समूह का मंगल क्या है? और हत्या व्यक्ति की की जा सकती है और किसी भी व्यक्ति की की जा सकती है, उन्हीं व्यक्तियों की जिनके समूह के लिए सब आयोजित किया जा रहा है और एक-एक व्यक्ति में हम सब आ जाते हैं।

बड़े मजे की बात है—लेकिन तर्क बड़ी फेन्सिस पैदा करता है। सोशलिज्म के पास, समाजवाद की एक फेलसियस, तर्क है। एक बहुत भ्रान्त तर्क। उसका कहना है समाज सत्य है, व्यक्ति नहीं। जबकि सच्चाई बिल्कुल उल्टी है। व्यक्ति सत्य है और समाज तो केवल व्यक्तियों के जोड़ का नाम है। समाज की कोई स्थिति नहीं है। समाज कहीं भी नहीं है। मैं बहुत बार खोजता फिरता हूं कि मुझे कहीं समाजवाद मिले, समाज मिल जाये। जहां भी जाता हूं व्यक्ति ही मिलता है। आपके घर आता हूं समाज खोजने, आप मिल जाते हैं। दूसरे के घर जाता हूं, दूसरा मिल जाता है। समाज कहीं मिलता नहीं। समाज सिर्फ एक संज्ञा है, एक शब्द। व्यक्ति एक सत्य है और यह जो सत्य व्यक्ति है वह शब्द समाज के लिए कुर्बान किया जा सकता है।

लेकिन मार्क्स की धारणा यह थी कि ऐतिहासिक प्रतिक्रिया समाज की चल रही है। जो भी बाधा डाले उसको समाप्त कर दो। समाज की ऐतिहासिक प्रतिक्रिया को आगे बढ़ना है, लेकिन कोई ऐतिहासिक प्रक्रिया नहीं चल रही है। मनुष्य अपना नियमतः चुनाव कर रहा है और अगर रूस ने यह तय किया हो कि वह कम्युनिस्ट है, सोशलिस्ट है या चीन ने तय किया है और यह भी पूरे विचार में तय नहीं किया—अगर चीन का पूरा समाज यह तय करे कि समाज-वादी होना है तो हिंसा की कोई जरूरत न रह जाये। यह भी एक माइना-रिटी तय करती है और पूरे मुल्क पर थोपती है, इसलिए हिंसा की जरूरत पड़ती है।

भाग्यवाद समाजवाद की बुनियादी गलतियों में से एक है। मैंने कहा कि यह मुल्क चुनाव कर सकता है, क्योंकि हम भाग्यवादी हैं पुराने। हम बहुत पुराने

भाग्यवादी हैं और हम मानते ही हैं कि जो कर रहा है भगवान् कर रहा है। भगवान् की जगह हिस्ट्री को रख लेने में बहुत दिक्कत नहीं होगी। भगवान् की जगह इतिहास के देवता को बिठा लेने में कौन-सी कठिनाई है ? मार्क्स कहता है, जो कर रहा है वह इतिहास कर रहा है। हम कहते हैं जो कर रहा है वह भगवान् कर रहा है।

हम इस मुल्क को ऐसे ही मानते रहे कि आदमी कुछ नहीं कर रहा है। मार्क्स सिर्फ इतना ही कहता है कि भगवान् का थोड़ा नाम बदल कर हिस्ट्री कर दो, इतिहास कर दो, बस काम चल जायेगा। मन्दिर के देवता के नीचे लिख दो इतिहास का देवता, फिर काम चल जायेगा। हम बहुत जल्दी से यह बदलाहट कर सकते हैं। हम भाग्यवादी कौम हैं। इसलिए मैं मानता हूं कि समाजवाद हमारे लिए बहुत बड़ा खतरा है। वह भी भाग्यवादी विचार है और हमसे भी ज्यादा भाग्यवादी विचार है, क्योंकि हमारे भीतर तो शायद थोड़ी-बहुत सुविधा है कि ज्योतिष को बचा कर निकल गये और भाग्य को बचाने का कोई उपाय कर लें। लेकिन समाजवाद के पास भाग्य से बच कर निकलने का कोई उपाय नहीं। भाग्य चरम और अल्टीमेट है।

समाजवाद आना ही है, यह बड़ी खतरनाक बात है। हम चुनें और आये तब समझ में आता है। आना ही है तो खतरनाक बात है। लेकिन इसके प्रचार का परिणाम होता है। अगर लोगों के दिमाग में यह बात दोहराये चले जाओ कि समाजवाद आना ही है, आना ही है, आना ही है, तो धीरे-धीरे लोग यह सोचने लगते हैं कि आना ही होगा। जबकि चारों तरफ से यह बात चल रही है कि समाजवाद आना ही है। फिर प्रचार ने सौ वर्षों में सारी दुनिया के दिमाग में यह ख्याल बिठा दिया है कि समाजवाद आना ही है। कोई लाने की बात नहीं है। लेकिन हम जो मान लेते हैं, वही हो जाता है।

उदाहरण के लिए मैं आपसे कहूं, आज से कोई एक सौ पचास वर्ष पहले यूरोप में एक पादरी ने घोषणा की कि अगले वर्ष प्रलय हो जाने वाला है और जो जीसस ने कहा था कि अब अन्तिम दिन करीब आ रहा है और कयामत करीब आ रही है, इसलिए तैयार हो जाओ। पहले लोग हंसे, लेकिन वह चिल्लाये चला गया, समझाये चला गया। और आप हैरान होंगे कि ठीक उस रात जिसके दूसरे दिन प्रलय हो जाने वाली थी, अनेक लोगों ने मकान में आग लगा दी, और अनेक लोग घर छोड़कर भाग गये और अनेक लोगों ने सम्पत्ति का त्याग कर दिया। उन्होंने कहा, जब कल बचना ही नहीं है तो क्यों न हम रिनांसियेशन कर दें, क्यों न हम छोड़ दें और अनेक लोग जाकर खड़े हो गये सुबह नदियों और समुद्र-तटों के किनारे कि अब महाप्रलय आ रही है। सूरज निकल आया और महाप्रलय नहीं आयी। दोपहर हो गयी, महाप्रलय नहीं आयी। फिर वे बड़ी

मुश्किल में पड़े, क्योंकि कोई घर जला आया था, कोई सम्पत्ति लुटा आया था, कोई बांट आया था। वह तो जिन्होंने भरोसा नहीं किया था वे लोग बड़े फायदे में रहे। जब वे लौट कर आये तो देखा कि दुनिया वहीं की वहीं है। फकीर को ढूंढा, पादरी नदारद था, वह मिला नहीं। उसका कहीं पता नहीं चला, वह कहां गया। उसने जब सूरज को उगते देखा होगा तो मुश्किल हो गयी होगी।

रूस में एक आदमी ने यह प्रचार किया कि जीसस का एक वचन है, यही कोई पचास-साठ-सत्तर साल पहले कि जीसस का वचन है, प्रभु के नाम पर युनक हो जाओ, प्रभु के नाम पर नपुंसक हो जाओ। ब्रह्मचर्य का मतलब—न स्त्री रह जाओ, न पुरुष रह जाओ। अपनी जननेंद्रियों को काट डालो। जो आदमी जननेंद्रिय के साथ पहुंचेगा उसको स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं मिलेगा। आप कल्पना नहीं कर सकते कि रूस में पचास हजार लोगों ने जननेंद्रियां काट डालीं। पता नहीं पहुंचे भगवान् के घर कि नहीं। रूस के जार को नियम बनाना पड़ा कि कोई आदमी इस तरह का काम करे तो उसे फौरन सजा दी जाये, क्योंकि यह आग फैलने लगी जोर से कि भगवान् के राज्य में वही पहुंच सकेगा जो न स्त्री है न पुरुष। अजब हैरानी की बात है, आदमी जिस बात के प्रचार से राजी हो जाये बात सक्रिय हो जाती है तत्काल और उसकी सक्रियता एकदम शीघ्रता से फैलानी शुरू हो जाती है।

सौ वर्षों से सारी दुनिया को कहा जा रहा है कि समाजवाद अनिवार्य है। वह अनिवार्य हुआ जा रहा है। हिटलर ने अभी हमारे सामने एक मानसिक प्रयोग किया। उन्नीस सौ चौदह के युद्ध में जर्मनी हारा। उस युद्ध में हिटलर एक सिपाही था, साधारण सिपाही। हारने के बाद वह मिल्ट्री से निकाल दिया गया। क्योंकि उसके पैर में चोट थी और वह मेडिकली अनफिट हो गया। पांच-सात सिपाहियों ने, जो मेडिकली अनफिट होकर बाहर निकाल दिये गये थे, अपनी पार्टी खड़ी की। कोई सोच भी नहीं सकता था कि ये सात आदमी सारी दुनिया के इतिहास को हिला डालेंगे और एक आदमी इनफिरीआरिटी का इतना उपद्रवी सिद्ध होगा।

उसने एक प्रचार करना शुरू कर दिया। प्रचार बहुत कारगर हुआ, क्योंकि लोगों की ईर्ष्या को अपील कर गया। उसने लोगों से कहा कि हमारे हारने का कारण यहूदियों की अपवित्रता है। यहूदियों का कोई लेना-देना नहीं था। यहूदियों को भी पता नहीं था कि उनकी वजह से जर्मनी हार गया। जब उन्होंने सुना तो वे लोग हंसे। उन्होंने कहा कि क्या पागलपन की बात कर रहे हो। फिर वह पागलपन की बात करता चला गया। उसने जर्मनी के घर-घर यह खबर पहुंचा दी कि यहूदियों की वजह से हम हार गये। पहले तो जर्मनों ने भी सोचा, यह क्या पागलपन की बात है, यहूदियों की वजह से हम क्यों हारेंगे। यहूदियों बेचारों

ने तो कुछ भी नहीं किया। लेकिन यह प्रचार जारी ही रहा। यह प्रचार धीरे-धीरे जोर पकड़ने लगा। यहूदियों के पास धन था। जर्मनी की सबसे बड़ी शक्तिशाली धन की सत्ता यहूदियों के पास थी, वे परेशान हो गये, गरीब मुल्क राजी हो गया कि यहूदियों ने गड़बड़ की, इनको लूटने की सुविधा है। वे लूटने के लिए राजी हो गये और हिटलर के साथ खड़े हो गये। आखिर यहूदियों की हत्या कर दी गयी। कोई एक करोड़ यहूदी काट डाले गये। पूरा जर्मनी जैसा बुद्धिमान मुल्क राजी हो गया। पाकिस्तान बंटने के लिए जिन्ना ने यहां राजी कर लिया। एक दफा पक्का कर लिया कि बंट के रहेगा और फिर बंट कर रहा।

इस वक्त जो समाजवाद की हवा चलती है कि आकर ही रहेगा, बड़ी खतरनाक बात है। समाजवाद अनिवार्यता नहीं है। हम चुनेंगे तो आ सकता है, वह भी हमारा चुनाव है। और चुनाव हमको सोच कर करने जैसा है। और बहुत से बिन्दु हैं जिन पर कल-परसों की चर्चा में आप से बात करूंगा। आपके जो भी सवाल हों, वह मुझे लिख कर दे देंगे, ताकि उन सब पर बात हो सके।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं और अन्त में मैं सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

●

अहमदाबाद, ८ अगस्त १९७०

१२—समाजवाद—दासता की एक व्यवस्था

मेरे प्रिय आत्मन्,

कल के विचारों के सम्बन्ध में बहुत से प्रश्न पूछे गये हैं। एक मित्र ने पूछा है कि समाजवाद का अर्थ क्या है?

समाजवाद का अर्थ है राज्य-पूंजीवाद (स्टेट-कैपिटलिज्म)। समाजवाद का अर्थ है सम्पत्ति व्यक्तियों के पास न हो, सम्पत्ति की मालकियत राज्य के पास हो। लेकिन समाजवाद यह नहीं कहता है कि वह 'राज्य-पूंजीवाद' है। वह कहता है, वह पूंजीवाद का विरोधी है। यह बात झूठ है। समाजवाद पूंजीवाद का विरोधी नहीं है। समाजवाद, जो पूंजी की सत्ता बहुत लोगों में वितरित है उसे राज्य में केन्द्रित कर देना चाहता है। और व्यक्तियों के हाथ में जब पूंजीवाद इतना नुकसान पहुंचाता है तो राज्य के हाथ में कितना पहुंचायेगा, इसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है।

जब साधारण जनों के हाथ में बंटा हुआ डीसेन्ट्रलाइज्ड कैपिटलिज्म, विकेन्द्रित पूंजीवाद इतनी तकलीफें देता है तो राज्य के हाथ में सेण्ट्रलाइज्ड होते ही कितनी तकलीफ देगा, इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। यह किसी बीमारी को दूर करने की जगह बीमारी को कन्सेन्ट्रेट करना है। किसी बीमारी को खत्म करने के बजाय उस बीमारी को एक ही जगह, एक ही केन्द्र पर इकट्ठा करना है।

इसलिए समाजवाद का दूसरा अर्थ है, गुलामी की, दासता की एक व्यवस्था। समाजवाद का अर्थ है राज्य मालिक हो जाये और समाज के सारे लोग गुलाम और दास की हैसियत से जियें । असल में पूंजीवाद ने पहली बार व्यक्ति को हैसियत और स्थिति दी । समाजवाद का मतलब है सामन्तवाद वापस लौट आये। इतना ही फर्क होगा कि जहां राजा थे वहां राजनीतिज्ञ होंगे । राजाओं के हाथ में इतनी ताकत कभी न थी जितनी समाजवाद राजनीतिज्ञ को दे देगा ।

समाजवाद भविष्य के लिए भयंकर गुलामी का सूत्रपात है । और अगर स्वतन्त्रता के प्रेमियों को थोड़ी-सी भी स्वतन्त्रता की आकांक्षा हो तो समाजवाद से बहुत ही सचेत होने की जरूरत है । समाजवाद का अर्थ है कि राज्य के हाथ में देश की समस्त शक्तियां केन्द्रित हो जायें । राज्य के हाथ में जितनी भी शक्तियां हैं उनका भी राज्य बुरी तरह दुरुपयोग करता है । राजनीतिज्ञ के हाथ में जितनी शक्ति है उससे भी राजनीतिज्ञ सारे जीवन पर छाया रहता है । लेकिन उसका मन बेचैन है, उसकी महत्वाकांक्षा नहीं मानती ।

अभी भी एक शक्ति उसके हाथ के बाहर है—धन की, उत्पादन की। वह उसे भी अपने हाथ में ले लेना चाहता है । यह बड़े मजे की बात है कि राज्य है समाज का नौकर (सर्वेन्ट), लेकिन सर्वेन्ट मालिक होना चाहता है, ओनरशिप चाहता है । राज्य चाहता है कि समाज की मालकियत भी उसके हाथ में हो । हम रास्ते पर एक ट्रैफिक के पुलिस इन्स्पेक्टर को खड़ा किये हुए हैं कि रास्ते पर व्यवस्था करे । कोई गाड़ी गलत रास्ते से न गुजरे, और कोई आदमी रास्ते के बीच से न चले, कोई बाएं चलने का नियम न तोड़े । वह पुलिस वाला धीरे-धीरे मालिक हो जाता है, क्योंकि बड़ी से बड़ी गाड़ी भी निकले तो भी उसके इशारे पर रुकती है और सीटी बजाये तो बड़े से बड़ा आदमी सड़क पार नहीं कर सकता । धीरे-धीरे वह पुलिस वाला कह सकता है कि इतनी परेशानी क्यों करते हो ? मालकियत भी गाड़ियों की मुझे दे दें और रास्ते पर चलने वाले लोगों की मालकियत भी मुझे दे दें, तब व्यवस्था बिल्कुल ठीक हो जायेगी ।

उस पुलिस वाले को मालकियत के लिए नहीं खड़ा किया है वहां, व्यवस्था के लिए खड़ा किया है । और व्यवस्था का मतलब ही यह है कि मालिक कोई और होंगे । अगर मालकियत भी राज्य के हाथ में जाती है तो व्यवस्थापक और मालिक एक हो जाते हैं । असल में यही हुआ अब तक ।

रूस और चीन में जो क्रांति हुई है वह समाजवादी नाम को है, नाम समाजवाद है, क्रांति तो मैनेजेरियल है । असल में व्यवस्थापक मालिक हो गये हैं । जो कल मैनेजर्स थे, जो मुनीम थे मुल्क के लिए, वे मुल्क के मालिक हो गये ।

राज्य को इतनी शक्ति हाथ में देने से बड़ा खतरा और कुछ भी नहीं हो सकता है । पहले इतना खतरा नहीं था । अब खतरा बहुत ज्यादा है, वह मैं

आप से कहूं । पहली बात तो यह है कि इधर पिछले बीस-पच्चीस वर्षों में वैज्ञानिकों ने इतने साधन खोज निकाले हैं कि जो राज्य के हाथ में आदमी की चरम परतंत्रता का कारण बन सकते हैं । वैज्ञानिकों ने वे रासायनिक विधियां खोज निकाली हैं जिनके द्वारा आदमी के भीतर के चिन्तन को नष्ट किया जा सकता है । विचार को नष्ट किया जा सकता है । बगावत के भाव को नष्ट किया जा सकता है । रासायनिकों ने वह व्यवस्था भी खोज निकाली है कि बच्चा पैदा हो तभी से उसके भीतर से कुछ नष्ट किया जा सके जो कभी बगावती हो सकता है । माइंडवाश के हजारों उपाय खोज निकाले हैं ।

वैज्ञानिकों ने ताकत राज्य के हाथ में दे दी है इतनी बड़ी कि अब अगर कोई राज्य धन का भी मालिक हो जाये, तो उस राज्य से फिर कोई छुटकारा समाज का नहीं है । लोकतंत्र की हत्या और स्वतंत्रता की हत्या अनिवार्य है, अगर राज्य समाज की सम्पत्ति के उत्पादन का मालिक बन जाये । और एक और बड़े मजे की बात है कि राज्य जितना भी काम करता है सब में असफल और अकुशल है । उसकी अकुशलता का कोई हिसाब नहीं है । राज्य जो भी काम करता है, मुल्क को हानि पहुंचाता है । उस काम से कोई लाभ नहीं पहुंचता । लेकिन जो थोड़ा-बहुत लाभ व्यक्ति अपनी निजी सम्पत्ति, श्रम और बुद्धि से मुल्क को पहुंचा सकते हैं, वह उनकी भी मालकियत ले लेना चाहता है । हां, एक फायदा होगा इससे कि राज्य की अकुशलता दिखनी बन्द हो जायेगी । और राज्य के हर वर्ष बढ़ने वाले हानि के दावे फिर बुरे मालूम न पड़ेंगे । क्योंकि लाभ का दावा करने वाला ही कोई नहीं रह जायेगा, हानि के ही दावे रह जायेंगे ।

राज्य के हाथ में इतनी अकुशलता है कि उचित तो यह है कि राज्य के हाथ में जो काम है वह भी निजी व्यक्तियों के हाथ में चले जायें और उचित तो यह है कि राज्य की जितनी ताकत है वह कम हो, क्योंकि राजनीतिज्ञ मनुष्य की छाती पर पत्थर की तरह बैठ गया है । राजाओं को हमने हटाया, उससे कोई बहुत फर्क नहीं पड़ा । राजनीतिज्ञ उसकी जगह छाती पर बैठ गया और इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता कि 'अ' पार्टी का राजनीतिज्ञ बदले और 'ब' का बैठ जाये । राजनीतिज्ञ सदा छाती पर रहेगा । 'अ' और 'ब' से कोई फर्क नहीं पड़ने वाला कि कांग्रेस बैठे नयी कि पुरानी, कि समाजवादी बैठे, कि जनसंघी बैठे । एक बात तय है कि मुल्क की छाती पर राजनीतिज्ञ बैठा होगा ।

राजनीति इतनी महत्वपूर्ण नहीं है कि मुल्क के जीवन को दबा दे । मनुष्य के जीवन में और भी महत्वपूर्ण बहुत-कुछ है । लेकिन आज सिर्फ राजनीति महत्वपूर्ण है । अगर हमारे अखबारों को कोई पढ़े तो पता चलेगा कि मुल्क में सिवाय राजनीति के और कुछ नहीं हो रहा है । सिर्फ राजनीति हो रही है ।

जिन्दगी सिर्फ राजनीति है ? राज्य सिर्फ व्यवस्था है, फंक्शनल है कि वह

मुल्क में अव्यवस्था न होने दे। और राज्य इसलिए नहीं है कि स्वतन्त्रता छीन ले। राज्य इसलिए है कि कोई व्यक्ति किसी की स्वतन्त्रता न छीन पाये। राज्य इसलिए है कि एक व्यक्ति दूसरे की स्वतन्त्रता के जीवन में बाधा न डाल पाये। लेकिन धीरे-धीरे राज्य को पता चला कि हमी सारी स्वतन्त्रता क्यों न छीन लें। राजनीतिज्ञ सदा से पूरी शक्ति पाने का आकांक्षी रहा है। लेकिन आज तक मनुष्य-जाति के इतिहास में राजनीतिज्ञ कभी भी टोटेलिटेरियन, पूरी ताकत नहीं पा सका। अब समाजवाद के नाम से पा सकता है।

असल में अगर सारी मनुष्यता को गुलाम बनाना हो तो पहले मनुष्यों को समझाना जरूरी है कि तुम्हारे कल्याण के लिए यह गुलामी लायी जा रही है। तुम्हारे हित के लिए, तुम्हारे मंगल के लिए यह गुलामी लायी जा रही है। राजनीतिज्ञ को जरूरी है कि वह आप को परसुएड करे, समझाये और फुसलाये कि तुम्हारे हित में ही यह छुरी तुम्हारी छाती पर रख रहा हूं। लेकिन एक दफा छाती पर छुरी रख दी जाये तो हटाने की कोई ताकत फिर आदमी के समाज के पास नहीं है।

इसलिए मैं समाजवाद की सख्त खिलाफत करता हूं। इसलिए नहीं कि समाजवाद जिन बातों के लिए आश्रय और सहारा देता है, और जिन बातों को आदर्श की तरह आपके सामने रखता है उनका मैं विरोधी हूं। सच्चाई तो यह है कि समाजवाद जितने आदर्श कहता है उनमें से कोई भी आदर्श समाजवाद कभी भी नहीं ला सकता और उनमें से कोई भी आदर्श लाना हो तो समाजवाद से सचेत रहना जरूरी है। जैसे, उदाहरण के लिए—मार्क्स का ख्याल है कि अगर समाजवाद सफल हो जाये तो दुनिया में वर्ग न रह जायेंगे—क्लासलेस सोसायटी, वर्गविहीन समाज पैदा हो जायेगा। यह असत्य है।

असल में समाजवाद दो नये तरह के वर्ग पैदा कर देगा। राज्य करने वालों का वर्ग और राज्य जिन पर किया जाता है उनका वर्ग। और कोई फर्क नहीं पड़ेगा—मैनेजर्स और मैनेज्ड।

और ध्यान रहे, पूंजीपति में और मजदूर में उतना फर्क नहीं है जितना राज्य करने वाले और जिसके ऊपर राज्य किया जाता है उसमें फर्क और फासला हो जाता है, आज रूस में कम्युनिस्ट पार्टी की मेम्बरशिप पाना कठिनतम बात है। क्योंकि कम्युनिस्ट पार्टी राज्य करने वालों की जमात है। आज रूस में पचास साल से पचास आदमियों का छोटा-सा ग्रुप सारी ताकत हाथ में लिए बैठा है। इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता कि स्टैलिन की जगह ख्रुश्चेव आता है कि ख्रुश्चेव की जगह कोई और आता है। लेकिन वह पचास आदमियों का एक ग्रुप, गैंग, पूरे रूस पर पचास साल से ताकत लिए बैठा है। उन पचास में से एक को हिलाना मुश्किल है। और एक ब्युरोक्रेसी, एक तन्त्र पैदा हो गया है। वह तन्त्र अलग है, जनता

अलग है। और दोनों के बीच जो फासला है, उसका हिसाब लगाना कठिन है।

समाजवाद का दावा है कि एक ऐसा आयोग कि "दी स्टेट विल विदर अवे"—
राज्य जो है वह बिखर के गिर जायेगा। समाप्त हो जायेगा। यह भी झूठ है, यह नहीं हो सकता। क्योंकि समाजवाद कहता है कि पहले राज्य के हाथ में पूरी ताकत दे दो, ताकि बाद में राज्य एक दिन बेकाम होकर खत्म हो जाये। लेकिन जिस राज्य के हाथ में ताकत दे दी जायेगी वह मजबूत होगा, बिखरेगा नहीं, और जिन लोगों के हाथों में ताकत जायेगी वे राज्य के बिखरने के लिए कभी भी पक्ष में नहीं हो सकते।

शक्ति हाथ में आ जाये तो उसे छोड़ने के लिए कोई भी राजी नहीं होता।
इसलिए लोकतन्त्र एक मात्र व्यवस्था है जिसके आधार पर किसी दिन राज्य बिखर सकता है। लेकिन तानाशाही, डिक्टेटरशिप से राज्य कभी भी नहीं बिखर सकता। लोकतन्त्र से क्यों बिखर सकता है? क्योंकि ताकत हम सिर्फ लीज पर देते हैं। एक आदमी को पांच साल के लिए ताकत देते हैं और लोकतन्त्र थोड़ा और विकसित हो, जैसा स्वीट्जरलैंड में है तो यह भी ताकत हाथ में रखते हैं कि अगर बीच में हमारा दिल बदल जाये तो इस आदमी को दिल्ली से वापस बुला सकें। इसको पांच साल भी देने की जरूरत नहीं। अगर छः महीने बाद इनको मतदान करने वाले लोग अनुभव करते हैं कि यह आदमी बिगड़ रहा है, गलत रास्ते पर जा रहा है तो मतदान करने वाले को इसे बुलाने का हक होना चाहिए कि छः महीने बाद उससे कह दे कि अब वापिस आ जाओ।

लोकतन्त्र लीज पर दी गई ताकत है, और तानाशाही परमानेन्ट लीज है।
परमानेन्ट लीज से सावधान होने की जरूरत है। जिनके हाथ मे इकट्ठी ताकत आ जाये उनसे सावधान होने की जरूरत है। स्टैलिन को निन्यानवे प्रतिशत वोट मिलते थे, लेकिन कोई भी नहीं पूछता कि विरोध में कौन खड़ा था उनके। विरोध में कोई भी नहीं खड़ा था! यह क्या खेल चल रहा है? विरोध में कोई खड़ा ही नहीं है और स्टैलिन के अखबार दुनिया भर में खबर कर रहे हैं कि निन्यानवे प्रतिशत वोट मिले! एक ही पेटी रखी गयी है और वोट कम्पलसरी है। जिसने नहीं डाला है उसकी जिन्दगी खतरे में है। राज्य विदर अवे होगा?

समाजवाद कहता है कि हमें एक ऐसी दुनिया लानी है जिसमें राज्य न रह जाये। समाजवाद से नहीं आ सकती, क्योंकि समाजवाद कहता है कि पहले राज्य के हाथ में ताकत दो। फिर राज्य क्या स्युसाइड कर लेगा? फिर राज्य क्या आखिर में आत्महत्या कर लेगा? यह मनुष्य-जाति के पूरे अनुभव से पता नहीं चलता कि जिसके हाथ में ताकत हो वह ताकत को और बढ़ाता चला जाये। नहीं, राज्य आत्मघात नहीं करेगा। हां, राज्य के पास पूरी ताकत हुई तो समाज की हत्या हो जायेगी।

समाजवाद कहता है कि हम समानता लाना चाहते हैं। लेकिन बड़ा मजा यह है, ओर इसीलिए समाजवाद कहता है, कि समानता लाने के लिए पहले स्वतन्त्रता छीननी पड़ेगी। समानता लाने के लिए पहले स्वतन्त्रता छीननी पड़ेगी, तो हम स्वतन्त्रता छीन कर सब लोगों को समान कर देंगे। लेकिन ध्यान रहे, अगर स्वतन्त्रता है तो समानता के लिए संघर्ष कर सकते हैं, लेकिन अगर स्वतन्त्रता नहीं है तो समानता के लिए संघर्ष करने का भी कोई उपाय आदमी के पास नहीं रह जाता है।

आज एक मित्र मुझसे कह रहे थे कि मैं आपसे बैठ कर विवाद कर रहा हूं और हम यह तय कर रहे हैं कि सोशलिज्म ठीक है कि कैपिटलिज्म ठीक है। तो मैंने उनसे कहा कि यह विवाद तभी चल सकता है जब तक कैपिटलिज्म है। जिस दिन सोशलिज्म होगा उस दिन हम विवाद न कर सकेंगे। उस दिन फिर विवाद का कोई मौका नहीं है। यह जो हम बात कर पा रहे हैं आज कि समाजवाद उचित है या नहीं, पूंजीवाद उचित है या नहीं—यह बात समाजवादी दुनिया में सम्भव नहीं है।

रूस में सारे अखबार सरकारी हैं। एक भी गैर-सरकारी अखबार नहीं है। सारा पब्लिकेशन, सारा प्रकाशन सरकारी है। एक किताब गैर-सरकारी नहीं छप सकती है। आप क्या करेंगे ? स्वतन्त्रता एक बार छिन गयी तो समानता की बात भी उठाने का मौका नहीं मिलेगा। इसलिए मैं मानता हूं अगर समानता कभी दुनिया में लानी है तो स्वतन्त्रता छीन कर नहीं, स्वतन्त्रता को बढ़ा कर ही लायी जा सकती है।

समानता जो है वह अगर आज नहीं है तो उसका कारण पूंजीवाद नहीं है। समानता न होने का बुनियादी कारण बिल्कुल दूसरा है जिस पर समाजवादी पट्टी डालना चाहते हैं। समाज समान नहीं है, क्योंकि समाज के पास समान होने लायक सम्पत्ति नहीं है। समाज इसलिए असमान नहीं है कि पूंजीपति है और गरीब है। पूंजीपति और गरीब भी इसलिए है कि सम्पत्ति कम है। और सम्पत्ति इतनी ज्यादा नहीं है कि सब अमीर हो सकें। इसलिए असली सवाल राजनैतिक परिवर्तन का नहीं, असली सवाल मुल्क में सम्पत्ति को अधिक पैदा करने के उपाय खोजने का है। लेकिन यह डेविएशन (भटकाव) समाजवादी कहता है। नहीं, असली सवाल यह नहीं है कि जिनके पास सम्पत्ति है उनसे हम उनके पास पहुंचाना चाहते हैं जिनके पास नहीं है।

असली सवाल यह नहीं है। असली सवाल यह है कि सम्पत्ति नहीं है। वह कैसे पैदा की जाये ? सम्पत्ति पैदा करने की जो व्यवस्था पूंजीवाद के पास है वह समाजवाद के पास नहीं है। क्योंकि पूंजीवाद के पास व्यक्तिगत प्रेरणा की आधारभूत शिला है। एक-एक व्यक्ति उत्प्रेरित होता है सम्पत्ति कमाने को, प्रतिस्पर्धा

को, प्रतियोगिता को। समाजवाद में न तो प्रतियोगिता का उपाय है, न प्रतिस्पर्धा का उपाय है, और न ही समाजवाद में कोई आदमी कम काम कर रहा है या न कोई आदमी ज्यादा काम कर रहा है कि इन दोनों के बीच तय करने का कोई उपाय है।

सरकारी दफ्तर की जो हालत है वही पूरे मुल्क की हालत बनाने की कोशिश है। सरकारी दफ्तर में जो क्लर्क छः घण्टे काम कर रहा है वह बेवकूफ है और जो आदमी छः घण्टे काम नहीं कर रहा है और विश्राम कर रहा है वह आदमी समझदार है। और दफ्तर में बीस समझदार हैं और एक नासमझ है और एक नासमझ को परेशान किये हुए हैं वे बीस कि तुम छः घण्टे काम क्यों कर रहे हो।

पूरे मुल्क को सरकारी दफ्तर बनाने की इच्छा है तो समाजवाद बड़ी उचित व्यवस्था है। सच तो यह है कि सरकारी दफ्तर भी निजी व्यक्तियों के हाथों में जाने चाहिए, अन्यथा इस मुल्क में उत्पादन नहीं हो सकता। इस मुल्क में श्रम करने को कोई राजी नहीं हो सकता।

मैं सरकारी कालेज में कुछ दिन था। मैं बहुत हैरान हुआ। सरकारी कालेज में कोई प्रोफेसर पढ़ाने को बिल्कुल उत्सुक नहीं है। गैर-सरकारी कालेज में वह बीस घण्टे ले रहा है। उसका ही जो समानान्तर शिक्षक गैर-सरकारी कालेज में है, वह बीस घण्टे पढ़ा रहा है। क्योंकि उसके पढ़ाने पर ही उसकी नौकरी निर्भर है। सरकारी दफ्तर में नौकरी सिक्योर्ड है, पढ़ाने की कोई जरूरत नहीं है। पढ़ाना-वढ़ाना बेकार की बातें हैं। सरकारी कालेज में जो प्रोफेसर पढ़ाता है, वह असल में सरकारी प्रोफेसर होने के योग्य नहीं है। उसको पता नहीं कि वह गलती से गलत जगह आ गया है, यह ठीक जगह नहीं है।

जैसे ही कोई व्यवस्था तन्त्र के हाथ में चली जाये वैसे ही अनुत्पादक हो जाती है। अनप्रोडक्टिव हो जाती है। और या फिर एक उपाय है। वह यह कि सरकारी प्रोफेसर के पीछे एक पुलिस वाला खड़ा रहे। और वह उसको बन्दूक के हुद्दे देता रहे कि पढ़ाओ, तुम पढ़ाओ। लेकिन यह कितनी देर चलाइयेगा ? और वह पुलिस वाला भी सरकारी है, उसके पीछे एक पुलिस वाला और···। नहीं तो वह सरकारी पुलिस वाला थोड़ी देर में हुद्दे देना बन्द कर देगा। वह कहेगा क्या दिन भर काम करते रहना है ? इसलिए सरकार का तन्त्र एकदम ही तन्त्रबद्ध होता चला जाता है। एक के पीछे दूसरा खड़ा करना पड़ता है।

मैंने सुना है कि रवीन्द्रनाथ के घर में कोई सौ लोग थे परिवार में। और रवीन्द्रनाथ के पिता ऐसे आदमी थे कि उनके घर जो कोई मेहमान आ जाता तो फिर उसे लौटने न देते, कहते यहीं रुक जाओ। शाही परिवार था। मेहमान रुक जाते तो वे घर के हिस्से हो जाते। मनों दूध आता था। रवीन्द्रनाथ के भाई के मन में यह ख्याल उठा कि इस दूध की जांच-पड़ताल कुछ भी नहीं होती, पता

नहीं कोई पानी मिला देता है या क्या करता है। मनों दूध घर में आता है। तो उन्होंने एक सुपरवाइजर रखा।

जिस दिन से सुपरवाइजर रखा तो उस दिन से पता चला कि दूध पतला हो गया। क्योंकि सुपरवाइजर का हिस्सा दूध में मिल गया। लेकिन भाई जिद्दी थे, सरकारी दिमाग के थे। पिता ने बहुत समझाया कि पहले जो दूध आ रहा था वह ठीक था। सुपरवाइजर को छुट्टी दो। इनकी तन्खवाह अलग और इसका हिस्सा भी पानी का इसमें मिलना शुरू हो गया। लेकिन भाई जिद्दी थे, सरकारी विभाग के थे। उन्होंने कहा, इसके ऊपर एक ओवर सुपरवाइजर रखेंगे। एक और सुपरवाइजर रखेंगे। उन्होंने एक ओवर सुपरवाइजर रखा। पता चला कि दूध में पानी और आ गया है। मगर भाई जिद्दी थे। तब उन्होंने परिवार के एक सम्बन्धी को सबके ऊपर नियुक्त किया। उस दिन एक मछली भी आ गयी दूध में। क्योंकि फिर ऐसा रहा कि दिखता है दूध में पानी नहीं मिलाया गया था, पानी में ही दूध डाला गया होगा, क्योंकि शेयर इतने हो गये।

सरकारी व्यवस्था यन्त्र-व्यवस्था है। उसमें व्यक्ति की प्रेरणा की कोई जगह नहीं है और मनुष्य स्वभावतः आलसी है। मनुष्य स्वभावतः श्रम नहीं करना चाहता है। अगर हमारा मुल्क गरीब है—एक मित्र ने पूछा है कि इतने गरीब हैं, इनकी जिम्मेवारी अमीरों पर नहीं हैं? मैं आपसे कहता हूं बिल्कुल नहीं है। इनकी जिम्मेवारी इन गरीबों पर ही है। इसको थोड़ा समझ लेना जरूरी होगा।

बड़े मजे की बात है, अगर एक गांव में दस हजार गरीब हों, और दो आदमी उनमें से मेहनत करके अमीर हो जायें तो बाकी नौ हजार नौ सौ अट्ठानवे लोग कहेंगे कि इन दो आदमियों ने अमीर होकर हमको गरीब कर दिया। और कोई यह नहीं पूछता कि जब ये दो आदमी अमीर नहीं थे तब तुम अमीर थे? तुम्हारे पास कोई सम्पत्ति थी, जो इन्होंने चूस ली? नहीं, तो शोषण का मतलब क्या होता है? अगर हमारे पास था ही नहीं तो शोषण कैसे हो सकता है? शोषण उसका हो सकता है जो हमारे पास हो। अमीर के न होने पर हिन्दुस्तान में गरीब नहीं था? हां, गरीबी का पता नहीं चलता था। क्योंकि पता चलने के लिए कुछ लोगों का अमीर हो जाना जरूरी है। तब गरीबी का बोध होना शुरू होता है।

बड़े आश्चर्य की बात है—जो लोग मेहनत करें, बुद्धि लगायें, श्रम करें और अगर थोड़ी सम्पत्ति इकट्ठी कर लें, तो ऐसा लगता है कि इन लोगों ने अन्याय किया। और जो लोग बैठ कर हुक्का-चिलम पीते रहें और कोई सम्पत्ति पैदा न करें, तो लगता है इन बेचारों पर बड़ा अन्याय हो गया। सारा मुल्क काहिल और सुस्त है, लेकिन इस काहिलियत और सुस्ती को समझाने की हमारी तैयारी नहीं। सारा मुल्क चुपचाप बैठा है, धन पैदा करने की न कोई इच्छा है, न कोई श्रम है,

और न कोई बुद्धि है, न उस दिशा में कोई चेष्टा है। और फिर अगर दस आदमी धन कमा लें तो हम कहते हैं इन दस लोगों ने सारे मुल्क को गरीब कर दिया। अन्याय हो रहा गरीब के साथ। गरीब के साथ अन्याय नहीं हो रहा है, गरीब अपने को गरीब रखने की व्यवस्था में जी रहा है।

मैं दो कबीलों के सम्बन्ध में पढ़ रहा था। अमरीका में रेड इण्डियन्स के एक पहाड़ पर दो कबीले हैं। एक कबीला धनी है और एक कबीला गरीब है। दोनों के पास एक-सी जमीन है, एक-सा हवामान है। और दोनों के पास एक ही जाति के लोग हैं। फिर क्या मामला है, एक गरीब है और एक अमीर है? एक अजीब बात है। एक ही पहाड़ पर आधे हिस्से पर एक कबीला रहता है और आधे पर दूसरा कबीला रहता है। सबके साधन बराबर हैं। एक एकदम गरीब है सदा से और एक अमीर से अमीर होता चला गया।

जब उन दोनों कबीलों का अध्ययन किया गया तो बड़ी हैरानी का पता चला। वह जो कबीला अमीर है, और वह जो कबीला गरीब है उनकी जीवन-व्यवस्था भिन्न है। जो गरीब कबीला है उसकी व्यवस्था यह है कि जब एक खेत पर काम हो तो पूरा गांव समाजवादी ढंग से उस खेत पर काम करने जाता है। गांव के एक आदमी के खेत पर काम है तो सारा गांव करने जायेगा। सारे गांव के खेत बेकार पड़े रहेंगे। जब गांव के एक किसान के खेत का पूरा काम हो जायेगा तब दूसरे खेत की शुरुआत होगी। उस पर सारा गांव काम करेगा। यह समाजवादी ढंग है उनके काम करने का।

इसके दोहरे परिणाम हुए। एक तो बहुत-सी जमीन अनुपयोगी रह जाती है, क्योंकि मौसम समाप्त हो जाता है। और गांव के लोग काम पूरा नहीं कर पाते। दूसरी यह कठिनाई पैदा हो गयी कि छोटी जमीन पर इतने लोग इकट्ठे हो जाते हैं कि काम कम होता है। बातचीत ज्यादा होती है। तीसरा परिणाम यह हुआ है कि किसी आदमी को अपने खेत पर काम करने की जो व्यक्तिगत प्रेरणा चाहिए वह उस गांव में नहीं है। फिर जिनके खेत में काम नहीं हो पाता, वे उन खेतों की सम्पत्ति के लिए हकदार हो जाते हैं जिन पर उन्होंने काम किया है। स्वभावतः, उनके खेत पर अगर काम नहीं हुआ है तो उन्होंने दूसरे के खेत पर काम किया है, तो गांव को सम्पत्ति समाजवादी ढंग से वितरित होती है।

वह कबीला आज तीन हजार साल से गरीब है और भिखमंगे की हालत में जीता है। पड़ोस के कबीले में हर आदमी अपने खेत में काम करता है। कोई समाजवादी व्यवस्था नहीं है, पूंजीवादी व्यवस्था है। वह कबीला अमीर होता चला गया। उस कबीले ने अभी-अभी कारें भी खरीदनी शुरू कर दीं। और बगल का कबीला अभी भी भीख मांग रहा है। अगर बगल के कबीले ने अपनी समाजवादी नासमझी बन्द नहीं की तो वह गरीब से गरीब होता चला जायेगा।

असल में मतलब मेरा यह है कि पूंजीपति को जब हम कहते हैं कि उसने शोषण कर लिया तो हम कुछ बातें भूल जाते हैं। एक तो हम भूल जाते हैं कि उसने किसका शोषण किया? किसी के पास सम्पत्ति थी? उसकी इसने जेब काट ली, किसी का धन गड़ा हुआ इसने निकाल लिया? नहीं। इसने सिर्फ एक बुरा किया है कि किसी के पास श्रम था और किसी को दो रुपया देकर उसका श्रम खरीद लिया। यह नहीं खरीदता तो यह श्रम बेचता नहीं। श्रम गंगा की धार की तरह बह जाता है।

अगर आज मेरे पास श्रम की ताकत है आठ घण्टे की और मैं उसका उपयोग न करूं तो कल मेरे पास दो रुपये नहीं बच जायेंगे, क्योंकि मैंने श्रम का उपयोग नहीं किया। अगर मैं अपने श्रम का उपयोग करूं तो कोई दो रुपये देने को तैयार है। जो मुझे दो रुपया देकर मेरे श्रम को पूंजी में कन्वर्ट करता है। उसको मैं कहता हूं, यह मेरा शोषण कर रहा है। तो आप शोषण मत करवाइये, आप बैठ जाइये अपने घर और अपने श्रम को तिजोरी में बन्द करके रखिये। फिर पता चलेगा कि शोषण हो रहा है कि क्या हो रहा है। शोषण नहीं हो रहा है।

पूंजीवाद शोषण की व्यवस्था नहीं है। पूंजीवाद एक व्यवस्था है श्रम को पूंजी में कन्वर्ट करने की। श्रम को पूंजी में रूपान्तरित करने की व्यवस्था है। लेकिन जब आपका श्रम रूपान्तरित होता है, जब आपको या मुझे दो रुपये मेरे श्रम के मिल जाते हैं तो मैं देखता हूं जिसने मुझे दो रुपये दिये उसके पास कार भी है, बंगला भी खड़ा होता जाता है। स्वभावतः तब मुझे ख्याल आता है कि मेरा कुछ शोषण हो रहा है। और मेरे पास कुछ भी नहीं था जिसका शोषण हुआ।

हालांकि इस आदमी ने एक मकान और एक कार खरीदी और व्यवस्था बनाई, जिससे मुझे दो रुपये मिले हैं। ध्यान रहे, यह जो इतने गरीब लोग दिखाई पड़ रहे हैं इन गरीबों की गरीबी के लिए पूंजीपति जिम्मेवार नहीं है। हां, इन गरीबों को जिन्दा रखने के लिए जरूर पूंजीपति जिम्मेवार है। अगर वह कोई अन्याय है तो अन्याय हुआ है।

आज से पांच सौ साल पहले दुनिया में दस बच्चे पैदा होते और नौ बच्चे मरते थे। क्योंकि दस बच्चों के लिए न भोजन था, न काम था, न जीवन था, न सुविधा थी। आज दस बच्चे पैदा होते हैं तो नौ बच्चे बचते हैं और एक बच्चा मरता है। यह जो नौ बच्चे बच रहे हैं यह पूंजीवाद ने श्रम को धन में रूपान्तरित करने की जो व्यवस्था की है उसका परिणाम है। लेकिन यह नौ बच्चे इकट्ठे हो जाते हैं और वे गरीब दिखाई पड़ते हैं और ये गरीब बच्चे चिल्लाते हैं कि हमारा शोषण कर लिया गया है।

पूंजीवाद शोषण की व्यवस्था नहीं है। और अगर हम पूंजीवाद सब तक पहुंचाना चाहते हैं कि वह गरीब तक पहुंच जाये तो इसका मतलब यह नहीं है कि

पूंजीवाद की व्यवस्था को तोड़ना है। उसका मतलब है, व्यवस्था को बड़ा करें। उसका मतलब है पूंजीवाद की व्यवस्था गांव-गांव, कोने-कोने तक फैल जाये। उसका मतलब यह नहीं है कि हिन्दुस्तान के दस पूंजीपतियों को हम मिटा दें। उसका मतलब है हिन्दुस्तान में दस करोड़ पूंजीपति पैदा करें। उसका मतलब यह है कि पूंजी का विस्तार हो, पूंजीपतियों का विस्तार हो, उद्योगों का विस्तार हो।

और वह जो जाहिल, सुस्त बैठा है, उस जाहिल सुस्त को हम यह बातें न बतायें कि तेरा शोषण हो गया है। उससे हम कहें तू जाहिल है और सुस्त है और पैदा नहीं कर रहा है। बड़ी अजीब बात है। मुल्क निरन्तर अनुत्पादक, अनप्रोडक्टिव होता चला जाता है। क्योंकि वे जो नेता हैं समझाने वाले, वे कहते हैं तू इसलिए थोड़े गरीब है कि तू कुछ नहीं कर रहा है। तू इसलिए गरीब है कि कोई तेरा शोषण कर रहा है। सारे मुल्क को अगर आप यह समझा देंगे कि शोषण हो रहा है इसलिए हम गरीब हैं तो आप श्रम के लिए मुल्क को तैयार नहीं कर सकते। और कैसी मूढ़तापूर्ण स्थिति है कि वे ही नेता चिल्ला कर कहेंगे कि श्रम करो। और वे ही नेता लोगों को समझायेंगे कि तुम्हारा शोषण हो रहा है। ये दोनों बातें विरोधी हैं। अगर मुल्क से श्रम करवाना है, उत्पादन करवाना है तो मुल्क को समझाना पड़ेगा कि तुम्हारी गरीबी के लिए तुम्हारे अतिरिक्त और कोई जिम्मेवार नहीं। तुम ही जिम्मेवार हो अपनी गरीबी के। और अगर तुम्हें अपनी गरीबी तोड़नी है तो तुम्हें श्रम में लगना पड़े, उत्पादक यात्रा करनी पड़े। लेकिन मुल्क के गरीब को बड़ा संतोष मिलता है यह जान कर कि उसकी कोई जिम्मेवारी नहीं है। वह बच्चे पैदा कर रहा है, भीड़ इकट्ठी कर रहा है, मुल्क को रोज गरीब कर रहा है। उसकी कोई जिम्मेवारी नहीं है और हमको ऐसा लगता है कि बेचारा गरीब है। लेकिन यह बेचारा शब्द खतरनाक है। यह बेचारा शब्द ठीक नहीं है।

गरीब अपनी गरीबी के लिए जिम्मेवार है, यह उससे हमें कहना ही पड़ेगा। और गरीब अपनी सुस्ती और अपनी अनुत्पादकता के लिए जिम्मेवार है, यह भी उससे कहना पड़ेगा। और गरीब बच्चे पैदा करके, मुल्क को ज्यादा गरीब कर रहा है, यह भी हमें उससे कहना पड़ेगा।

लेकिन नेता नहीं कह सकता, क्योंकि नेता को वोट लेना है उस गरीब से। तो नेता उस गरीब को भड़का रहा है। और वह उससे कह रहा है कि तेरी गरीबी का कारण है, ये कुछ महल जो दिखायी पड़ रहे हैं। इनको गि ा दें तो सारा स्वर्ग उतर आयेगा। ये महल गिर सकते हैं, इसमें बहुत कठिनाई नहीं है। ये महल बहुत ही अल्पमती लोगों के हैं। इनको गिराने का काम एक दिन में पूरा किया जा सकता है। इसलिए ज्यादा दिक्कत नहीं उठानी पड़ेगी।

यह सम्पत्ति जो थोड़ी-सी कहीं दिखायी पड़ रही है, इसको वितरित किया

जा सकता है। इसमें बहुत अड़चन नहीं है। यह बहुत छोटा-सा अल्पमत है। और अगर बहुत तय करे तो हो जायेगा। लेकिन इससे बहुमत अमीर नहीं हो जायेगा। बल्कि बहुमत और गरीब हो जायेगा। और एक बहुत मजे की घटना घटेगी। वह घटना यह होगी कि रूस में क्रांति के पहले और बाद जैसा हुआ। क्रांति के पहले रूस के नेता कहते रहे कि तुम्हारी गरीबी का कारण अमीर है। क्रांति के बाद फिर गरीबी का क्या कारण था? अमीर तो खत्म हो गया। तब रूस का नेता कहने लगा कि श्रम करो, तुम श्रम नहीं करते हो, यह गरीबी का कारण है। यह बड़े मजे की और बेईमानी की बातें हैं। पूंजीवाद था तो अमीर था गरीबी का कारण और समाजवाद आया तो श्रम नहीं करते। यह गरीबी का कारण है! श्रम नहीं करते हैं तो कोई भी व्यवस्था हो, गरीबी का कारण यही है। गरीबी का कारण शोषण नहीं है। गरीबी का कारण हमारे श्रम की जाहिली, हमारी सुस्ती और आलस्य है। और हमारी अद्भुत स्थिति है यह।

अधिकतम लोगों ने इस जगत् में सदा आलस्य का जीवन बिताया है। थोड़े-से लोगों ने जगत् में श्रम किया है। जिन्होंने श्रम किया है उन्होंने आलसियों के लिए भी बहुत-सी व्यवस्था दे दी है। लेकिन उसके लिए उनको धन्यवाद नहीं मिलता। उसके लिए उनको गाली मिलती है कि तुमने शोषण किया है।

जैसे उदाहरण के लिए मैं आपसे कहूं—आज साधारण-सा मजदूर जैसे कपड़े पहने हुए है, वैसे कपड़े अशोक को उपलब्ध नहीं थे। आज साधारण-सा मजदूर जैसे मकान में रह रहा है, जैसे कपड़े पहने हुए है, जिस सिनेमा-घर में प्रवेश कर रहा है, जिस होटल में बैठकर चाय पी रहा है, वह अकबर के लिए मुश्किल से उपलब्ध हो सकता था। साधारण आदमी के लिए इतनी सुविधाएं जुटा दी गयीं, उसके लिए, किसी के लिए कोई धन्यवाद नहीं है। लेकिन हां, साधारण आदमी के पास जो नहीं है अभी उसके लिए क्रोध जरूर है कि किसी ने शोषण कर लिया है।

आज नहीं कल हो सकता है कि समाजवादी यह भी कहें कि कुछ लोग बुद्धिमान हो जाते हैं। ये लोग कुछ लोगों को मूर्ख बना देते हैं, उनका शोषण कर लेते हैं। सच बात तो यह है कि कोई किसी की बुद्धि का शोषण करके बुद्धिमान नहीं बनता है। बल्कि जो बुद्धिमान बनता है वह अपने श्रम से बनता है और वह बुद्धिहीनों के लिए भी बहुत-कुछ जुटाता है जीवन भर। लेकिन उसको बुद्धिहीन धन्यवाद नहीं देंगे।

श्रम शक्ति है, और आलस्य? आलस्य दरिद्रता है। लेकिन मासेस, जनता बड़े पैमाने पर सदा से आलसी है। उसने कुछ नहीं किया। ये बिजली के पंखे चल रहे हैं। इसको जनता ने नहीं खोजा है। यह बिजली जल रही है, रात अन्धेरे में प्रकाश हो रहा है। यह जनता ने नहीं खोजा है।

आपका जो मकान बन गया है सिमेंट-कांक्रीट का, वह जनता की खोज नहीं है। आपकी जिन्दगी में बीमारियां कम हो गयी हैं, वह जनता की खोज नहीं है। आपकी उम्र बढ़ गयी है, यह जनता की खोज नहीं है। यह थोड़े से 'च्यूजन फ्यू' कुछ चुने हुए लोगों के श्रम का परिणाम है, लेकिन उनके लिए कोई धन्यवाद नहीं। और सारी जनता इकट्ठी होकर चिल्लायेगी कि हमारा शोषण कर लिया गया। बड़े आश्चर्य की बात है।

जनता ने क्या दिया है जगत् को? जनता ने सिवाय लेने के और कुछ भी नहीं दिया है। लेकिन अब जनता सब चीजों की मालिक जरूर होना चाहती है। मैं नहीं कहता कि न हो मालिक, लेकिन ध्यान रहे, कहीं जनता की माल्कियत उन लोगों को निराश न कर दे जो श्रम करते रहे हैं। अन्यथा उन लोगों की निराशा से जगत् में जो भी थोड़ी सुगंध, संस्कृति और सभ्यता है उसका विसर्जन हो जायेगा।

अगर एक बार भी जनता मुल्क के ऊपर हावी हो गयी, जनता तो क्या हावी होगी, जनता के नाम पर कुछ राजनीतिज्ञ हावी हो जायेंगे। अगर एक बार मनुष्य मुल्क के ऊपर 'मासेस' जिन्होंने जगत् में कभी कुछ नहीं किया, जिनके पास इतिहास के लिए कोई दान नहीं है, अगर उनके हाथ में पूरी ताकत सौंप दी जाये, तो इसका अन्ततः परिणाम जो होगा, वह यही हो सकता है कि जो भी संस्कृति, जो भी सभ्यता, जो भी मनुष्य के मूल्य हैं यह सब बिखर जायें और चीजें नीचे चली जायें।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मैं यह कह रहा हूं कि जनता के हाथ में ताकत न हो। मैं मानता हूं कि जनता के हाथ में ताकत हो, लेकिन सारी सूचनाओं को समझते हुए ताकत हो और यह समझते हुए ताकत हो कि जनता अपनी मुसीबतों के लिए खुद ही जिम्मेवार है। और जनता को अपनी मुसीबतें दूर करनी हैं तो श्रम के कदम उठाने पड़ेंगे। यह दूसरे पर दोष थोपने से काम नहीं चलेगा। लेकिन पुरानी आदतें हैं हमारी। पहले हम भाग्य पर दोष थोपते थे कि क्या करें, भाग्य ही ऐसा है इसलिए हम गरीब हैं। पहले हम भगवान् पर दोष थोपते थे कि क्या करें, भगवान् ने हमें गरीब बनाया। अब हम पूंजीपति को पकड़ बैठे हैं। अब उससे कहते हैं कि अब हम क्या करें? तुमने शोषण कर लिया है, इसलिए हम गरीब हैं। एक बात हम कभी नहीं कहते कि हम गरीब होने के ढंग से जी रहे हैं। इसीलिए हम गरीब हैं। यह भर चूक जाते हैं, बाकी हम सब खोज लेते हैं।

कर्म का सिद्धान्त है कि हम गरीब हैं, क्योंकि हमारे कर्म पिछले जन्म में बुरे थे। हम गरीब हैं, क्योंकि भाग्य में लिखा हुआ है। विधाता ने लिख दिया है कि तुम गरीब रहोगे। क्योंकि हम गरीब हैं। क्योंकि भगवान् ने चाहा कि हम गरीब हों। और अब हम कह रहे हैं कि हम गरीब हैं क्योंकि पूंजीपति ने शोषण

कर लिया लेकिन हजारों साल से यह जो आदमी गरीब है, यह अपने को जिम्मेवार बिल्कुल नहीं ठहराना चाहता है । ये सब नारे बदल देता है । जिम्मेवारी दूसरे पर टांगता चला जाता है । लेकिन जिम्मेवारी अपने ऊपर कभी नहीं लेता है ।

मैं आपसे कहना चाहता हूं कि इस देश का भाग्य का उदय न होगा अगर इस देश के एक-एक आदमी ने यह न समझा कि गरीबी, दीनता और दुख के लिए हम जिम्मेवार हैं । यह जिम्मेवारी दूसरे पर टांगना खतरनाक है । खूंटियां बदलने से कुछ भी नहीं हो सकता । लेकिन राजनीतिज्ञ को सुविधा है । उसके लिए समाजवाद की बात बहुत पेइंग है, उसको वह बहुत लाभ पहुंचा सकती है ।

एक मित्र ने पूछा है कि इन्दिराजी जो समाजवाद लाना चाहती हैं, वह समाजवाद आयेगा कि नहीं ?

पहली तो बात यह है कि समाजवाद से इन्दिराजी का दूर का भी कोई सम्बन्ध नहीं है । इन्दिराजी का सम्बन्ध है समाजवाद नाम से, शब्द से । इसलिए इन्दिराजी भी समाजवाद भी बात करती हैं । बड़ी हैरानी की बात है । मोरारजी भी वही बात करते हैं जरा शब्द बदल कर । जनसंघी भी वही बात करते हैं जरा शब्द बदलकर । सबको पता है कि गरीब जनता का अगर मत चाहिए तो गरीब जनता को फुसलाओ और उससे कहो कि तुम जिम्मेवार नहीं हो, जिम्मेवार कोई और है ।

जनता से मत लेना हो तो समाजवाद अच्छा नारा है । लेकिन जनता को सिर्फ धोखे में डालने की बात है । समाजवाद इन्दिराजी लायेंगी या नहीं, 'इन्दिराजी' या कोई भी इस देश में समाजवाद अभी नहीं ला सकता । क्योंकि यह देश अभी पूंजी पैदा नहीं कर पाया है । समाजवाद की सम्भावना सिर्फ एक है और वह यह है कि इतनी सम्पत्ति पैदा हो जाये कि मुल्क में किसी को गरीब रहने का कोई कारण न रह जाये । इतनी सम्पत्ति पैदा हो जाये, हवा-पानी की तरह कि मुल्क में किसी को गरीब रहने का कोई कारण न रह जाये । पूंजीवाद अगर ठीक से विकसित हो, परिपक्व हो, मेच्योर हो जाये तो अपने आप एक सामाजिक समानता आ जायेगी । उसे किसी 'इन्दिराजी' को या किसी 'और जी' को लाने की कोई जरूरत नहीं है ।

यह सम्पत्ति कैसे पैदा हो ? एक मित्र ने पूछा है कि आप यह कहते हैं कि समाजवाद से नहीं होगा तो यह कैसे हो ? तो मैं दो-चार बातें आपसे कहना चाहूंगा ।

पहली तो बात यह है, वे मुल्क जो यन्त्र पूर्व के जीवन को अभी तक सम्भाले हुए हैं सम्पत्ति पैदा नहीं कर सकते । हम अभी भी प्रो-इण्डस्ट्रियल हैं । हम अभी भी औद्योगिक क्रांति से गुजरे नहीं हैं । यूरोप भी गरीब था, अमरीका भी गरीब था । यह जो अमीरी आयी, यह जो सम्पत्ति आयी, यह औद्योगिक क्रांति का

परिणाम है । औद्योगिक क्रांति का क्या मतलब ? औद्योगिक क्रांति का मतलब है, मनुष्य के श्रम की सीमाएं हैं । मशीन के श्रम की कोई सीमा नहीं है । अगर आप मनुष्य के श्रम पर ही निर्भर रहेंगे सम्पत्ति पैदा करने को, तो बहुत ज्यादा सम्पत्ति आप पैदा नहीं कर सकते । मनुष्य के श्रम की सीमा है ।

मशीन जब तक सम्पत्ति पैदा न करे, तब तक कोई मुल्क अमीर नहीं हो सकता । मनुष्य भरोसे के योग्य नहीं है । मनुष्य गरीब होने के लिए पर्याप्त है । मनुष्य अमीर होने के लिए पर्याप्त नहीं है । जरा लौटकर पीछे इतिहास देखें तो आपको ख्याल आ जायेगा । जब तक, एक जमाना था कि आदमी सिर्फ वृक्षों के फलों को चुनकर भोजन कमाता था । तब सम्पत्ति बिलकुल पैदा नहीं हो सकती थी । क्योंकि भोजन के लायक फल मिल जाये, शिकार मिल जाये, यही बहुत था । अक्सर भूखा रहना पड़ता था और जब मिल जाता तो आदमी ज्यादा खा लेता और जब नहीं मिलता तो भूखा रहता । और बड़ी जमीन की जरूरत पड़ती थी । एक छोटे से कबीले के लिए कम से कम सौ वर्गमील का जंगल चाहिए था, शिकार के लिए, फल के लिए ।

इसलिए दुनिया की आबादी दो करोड़ से ज्यादा नहीं हो सकी । जीसस के दो हजार वर्ष पहले तक सारी दुनिया की आबादी दो करोड़ से ज्यादा न हो सकी । हो नहीं सकती थी । और फिर भी आदमी निपट दीनता में जीता था, लेकिन उस दीनता का उसे कोई पता नहीं था, क्योंकि दीनता का पता हमेशा तुलना से चलता है । जब हमारे बीच कोई अमीर हो जाये तब हमें पता चलता है कि हम गरीब हैं, नहीं तो हमें पता नहीं चलता । अगर हम सब काने ही पैदा होते हों तो हमें कभी पता नहीं चलेगा कि हम काने हैं । एक आदमी दो आंख वाला पैदा हो जाये तो हम उसकी एक आंख का ऑपरेशन कर देंगे, या फिर हमको काने होने का दुख शुरू हो जायेगा । दो ही उपाय बचते हैं ।

लेकिन जब आदमी ने बीज बोकर खेती करना शुरू किया तो उसके पास थोड़ी-सी सम्पत्ति का आना शुरू हुआ । क्योंकि वह प्रकृति पर निर्भर नहीं रहा । उसने प्रकृति का उपयोग करना शुरू कर दिया । लेकिन फिर भी जमीन से पैदावार उतनी ही हुई जितने से आदमी पेट भर सकता था और तन ढंक सकता था ।

दुनिया की आबादी आज से पांच सौ साल पहले तक बहुत ज्यादा नहीं बढ़ सकी । फिर इसके बाद आदमी ने अपने को श्रम से मुक्त करना शुरू किया । और अपने श्रम की जगह वह जानवरों को लाया । और जब अपने श्रम की जगह बैल और घोड़े को लाया तो उससे काम बहुत बढ़ गया और थोड़ी सम्पत्ति अर्जित होनी शुरू हुई । बैल, घोड़े और जानवरों ने मिलकर सम्पत्ति पैदा की और फ्यूडल सामन्त युग पैदा हुए । लेकिन जानवरों की भी सीमा है, काम करने की ।

उनसे अत्यन्त सम्पत्ति पैदा नहीं की जा सकती। तो मशीन आयी, और मशीन की कोई सीमा नहीं और अब जो ऑटोमेटिक मशीन आ रही है, स्वचालित उसकी तो कोई सीमा ही नहीं है।

अगर इस देश को अमीर होना है, तो राजनीतिक व्यवस्था बदलने से नहीं होगा। इस मुल्क की यान्त्रिक व्यवस्था बदलने से ही यह मुल्क सम्पत्ति पैदा कर पायेगा। और कोई उपाय नहीं है। तो इस मुल्क को दो बातें करनी जरूरी हैं। एक तो हम जितनी शीघ्रता से, जितनी शक्ति लगाकर मुल्क को यान्त्रिक क्रांति से गुजार सकें, एक टेकनोलॉजिकल रेवोल्यूशन से गुजारें, लेकिन कौन गुजारे ? मुल्क का नेता मुल्क को सोशलिस्टिक रेवोल्यूशन से गुजार रहा है। वह समाजवादी क्रांति से गुजार रहा है। मुल्क के धर्मगुरु मुल्क को राम-राज्य की क्रांति से गुजार रहे हैं और मुल्क में लड़के मुल्क को उपद्रव में डाल रहे हैं। उनका उपद्रव ही उनकी क्रांति है।

नेता को मतलब है चुनाव से, वह समाजवादी क्रांति की बातें कर रहा है। साधु को मतलब है अपने महन्त के पद से। शंकराचार्य को मतलब है अपने पीठ से। वे अपने राम-राज्य, गीता, रामायण की बातें दोहराये चले जा रहे हैं। लड़कों को कुछ मतलब नहीं अपनी चीज से। उन्हें कोई आशा भी नहीं दीखती भविष्य में। वे उपद्रव करने में लगे हुए हैं, उनके उपद्रव का कोई भी नाम हो। वे उपद्रव करने में लगे हुए हैं।

इस मुल्क को औद्योगिक क्रांति से कौन गुजारे ? जो गुजार सकता है उसके हम सब खिलाफ हैं। इस मुल्क में जो थोड़ा-बहुत उद्योग लाया गया है, वह इस मुल्क के पूंजीपतियों ने लाया है। जो इस मुल्क को पूंजीपति और बड़ी औद्योगिक क्रांति से गुजार सकता है उसको मिटाने में हम लगे हैं। हम इस कोशिश में हैं कि वह बिल्कुल न बचे। तब इस मुल्क में सिवाय दुर्भाग्य के कुछ भी न बचेगा। इस मुल्क के पूंजीपति को हमें राजी करना पड़ेगा। इस मुल्क को औद्योगिक क्रांति में प्रवेश करवाने के लिए उनकी शक्तियों का उपयोग भी करना पड़ेगा। लेकिन अभी हम न कर पायेंगे, क्योंकि हम दुश्मन की तरह खड़े हो गये हैं—पूंजीपति को हमें मिटाना है। और अगर पूंजीपति एक लाख कमाये तो उस पर टैक्स लगेगा, दो लाख कमाये तो और ज्यादा लगेगा, तीन लाख कमाये तो और ज्यादा लगेगा। पांच लाख कमाये तो जितना कमाये उतना टैक्स लग जायेगा। दस लाख कमाये तो बेकार मेहनत कर रहा है। तो पूंजीपति किस लिए मेहनत करे ?

इस मुल्क की टैक्सेशन की पूरी व्यवस्था, इस मुल्क को औद्योगिक होने से रोक रही है। मेरी समझ में जो आदमी जितना कमाये उतना कम टैक्स होता जाना चाहिए और एक सीमा के बाद टैक्स होना ही नहीं चाहिए। एक आदमी दस लाख के ऊपर कमाये तो उसे टैक्स मुक्त। और करोड़ के ऊपर कमाये तो पूरे

मुल्क को उसे और कुछ थोड़ी प्रशंसा देनी चाहिए। लेकिन हम अजीब काम कर रहे हैं। लेकिन जो इस मुल्क को इण्डस्ट्रियलाइज्ड कर सकते हैं, उनको हम तोड़ रहे हैं। और जो इस मुल्क को कभी का भूखा रखे हुए हैं, गरीब बैठे हुए हैं उनको हम बढ़ावा दे रहे हैं। इससे नुकसान होगा।

एक तो जरूरत है कि मुल्क तत्काल, जितनी शीघ्रता से हो सके उतना यान्त्रिक क्रांति से गुजरे। इस यान्त्रिक क्रांति के लिए हिन्दुस्तान के उद्योगपति का हिन्दुस्तान के लिए पूरा उपयोग करने की जरूरत है। लेकिन उद्योगपति घबराया हुआ है, डरा हुआ है। उसका डर स्वाभाविक है। उसे लग रहा है कि दो-चार, पांच साल की उसकी जिन्दगी है। वह खतम होने के करीब है। तो उद्योगपति यूरोप के बैंकों में अपना पैसा जमा कर रहा है, करेगा। हम करवा रहे हैं उससे जमा। उद्योगपति पश्चिम में भागने की कोशिश में पड़ा हुआ है। कलकत्ते का उद्योगपति बंगाल छोड़ने की कोशिश कर रहा है। बम्बई का उद्योगपति आज नहीं कल बम्बई से भागने की कोशिश करेगा। परसों वह पायेगा, हिन्दुस्तान में भागने की कोई योग्य जगह नहीं रही। हिन्दुस्तान के बाहर भागने के सिवाय कोई उपाय नहीं है।

हम जो इस मुल्क को सम्पत्ति की व्यवस्था में गतिमान कर सकते हैं, उनके साथ दुश्मन की तरह व्यवहार कर रहे हैं, यह अत्यन्त नासमझी से भरा हुआ कृत्य है, जो कोई भी गरीब मुल्क कर सकता है। दूसरी बात, मुल्क की सारी की सारी जनता इसके किसी बोध में ही नहीं है, उसके दिल में इस बात की कोई कान्शस, कोई चेतना ही नहीं है, कि कितनी संख्या में यह मुल्क झेल सकता है। अगर हम औद्योगिक क्रांति भी कर लें तो यूरोप औद्योगिक क्रांति के बाद समृद्ध हो गया, क्योंकि उसकी संख्या बहुत कम थी।

आज हमारी संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। हम पचास-पचपन करोड़ लोग हैं। पचपन करोड़ लोग जब तक हम इस मुल्क को दस साल में औद्योगिक रूप से थोड़ा बहुत आगे बढ़ायें तब तक ये बीस करोड़ लोग पैदा कर देंगे। तब सवाल फिर वहीं का वहीं खड़ा रह जायेगा। हमारा सारा औद्योगिक विकास ठप्प कर देंगे। इसलिए दूसरी बात है। कि जनता के एक-एक आदमी को हम इस बात के लिए तैयार करें कि एक भी नये बच्चे को लाना खतरे से खाली नहीं है और इसके लिए हम सारा इन्तजाम करें। इन्तजाम सब हमारा उल्टा है इन्तजाम हमारा यह है कि जिसके दो बच्चे हैं उसको इन्कमटैक्स में उतनी छूट नहीं, जिसको चार हैं—उनको ज्यादा छूट है। यह बहुत मजे की बात है। जिसके चार बच्चे हैं उस पर दुगुना इन्कमटैक्स होना चाहिए। जिसको बिल्कुल बच्चे नहीं हैं उस पर इन्कमटैक्स ज्यादा है और बैचलर पर और भी ज्यादा है। बैचलर पर बिल्कुल नहीं होना चाहिए।

जो आदमी अविवाहित है, उसको तो हमें देर तक अविवाहित रखने का उपाय करना चाहिए। उसको नौकरी पहले मिलनी चाहिए विवाहित के बजाय। उस पर टैक्स नहीं होना चाहिए। उसको सब तरह की जो भी सुविधायें मिल सकती हैं, मिलनी चाहिए।

मुल्क में ज्यादा देर तक लड़के और लड़कियां अविवाहित रहें, इसका हमें तीव्रता से प्रचार करना चाहिए। जो लोग विवाहित हैं वे अगर बिना बच्चे पैदा किये विवाहित रहें तो उन्हें हमें सुविधायें देनी चाहिए। बच्चों के साथ असुविधायें बढ़ानी चाहिए। जैसे बच्चे बढ़ें, वैसे असुविधायें बढ़ानी चाहिए। लेकिन हम सोचते हैं उल्टा। हम सोचते हैं उल्टे कि जिसके पास बच्चे हैं वह बेचारा है। लेकिन किसने कहा उस बेचारे से कि पांच बच्चे पैदा करे। बच्चे वह पैदा करेगा, परेशान यह पूरा मुल्क होगा। बच्चों को रोकना पड़ेगा सख्ती से। कुछ खतरनाक घटनायें घट गयी हैं। बड़ा खतरा यह हो गया, हमने मृत्यु-दर कम कर ली है पश्चिम के विज्ञान का उपयोग करके। जहां तक मृत्यु का सम्बन्ध है, हमने पश्चिम के विज्ञान का उपयोग कर लिया। और जब हमारा महात्मा भी मरता है तो एलोपैथी की दवा लेने से इन्कार नहीं करता। वह यह नहीं कहता कि भगवान् मार रहा है तो हम एलोपैथी से न बचेंगे, हम तो मरेंगे। वह मजे से एलोपैथी की दवा लेता है।

पश्चिम की मृत्यु को रोकने की जो-जो खोजें थीं, हमने उन सब का उपयोग कर लिया। लेकिन पश्चिमी ने जन्म रोकने की जो-जो खोजें कीं उनके मामले में हम खिलाफ हैं। यह मामला ऐसा है कि जन्म के सम्बन्ध में हम भारतीय हैं। और मरने के सम्बन्ध में हम पश्चिमी हैं। यह नहीं चलेगा।

अगर आपको मृत्यु की दर कम करनी है तो जन्म-दर उसी मात्रा में कम करनी पड़ेगी और अगर आपको जन्म-दर नहीं कम करनी है तो आपको उसी मात्रा में मरने के लिने तैयार रहना चाहिए, जैसा दवाइयों के पहले हम मरते थे। यह सीधा तर्क है। लेकिन महात्मा मुल्क में लोगों को समझाता है कि बच्चे तो भगवान् देता है। लेकिन वह महात्मा लोगों को नहीं समझाता कि महामारी और प्लेग भी भगवान् भेजता है, आदमी न रोके। तो जब प्लेग आती है, अकाल आता है, बाढ़ आती है, तब महात्मा सेवा के लिए पहुंच जाता है। वह कहता है कि बाढ़ आ गयी, हम सेवा करेंगे वहां जाकर। वह कहता है कि बिहार में अकाल पड़ गया तो हम लोगों को मरने न देंगे। तब वह नहीं कहता कि भगवान् अकाल भेज रहा है बिहार में, बिहार के लोगों शांति से मर जाओ, कि सूरत में बाढ़ आ गयी है तो सूरत के लोगों शांति से बाढ़ में बह जाओ—यह भगवान् भेज रहा है।

लेकिन वह महात्मा चालाक है। मरते वक्त लोगों को बचाने पहुंच जाता

है और जब यही लोग बच्चे पैदा करते हैं तो महात्मा कहता है, बर्थ-कण्ट्रोल? बर्थ-कन्ट्रोल जीवन के नियम के विपरीत है। यह तो परमात्मा के खिलाफ है। यह नहीं चलेगा। मृत्यु-दर हमने कम कर ली, जन्म-दर हमें कम करनी पड़ेगी।

इस जन्म-दर को कम करना हमारा सबसे बड़ा सवाल है। यह बड़े मजे की बात है कि आज दुनिया में जो सबसे बड़े सवाल हैं वह सबसे छोटी चीजों से पैदा हो रहे हैं। तीन बड़े सवाल हैं इस समय दुनिया में, जो सबसे छोटी चीजों से पैदा हो रहे हैं।

एटम—बड़े से बड़ा सवाल है कि कहीं अणु युद्ध न हो जाये, और अणु छोटी से छोटी चीज है।

वीर्य-अणु—वह सबसे बड़ा सवाल है कि वीर्य-अणु एक्सप्लोजन कर रहा है जनता का। वह बढ़ाये चला जा रहा है। वह बहुत छोटी-सी चीज है वह वीर्य-अणु दुनिया को मार डाल सकता है।

और तीसरा है रंग अणु। काले आदमी की चमड़ी में पिगमेन्ट होता है काले रंग का। सफेद आदमी की चमड़ी में सफेद रंग का पिगमेन्ट होता है। दो तीन आने के रंग का फर्क होता है कुल जमा। लेकिन नीग्रो और अमरीकी लड़ रहा है। काला और गोरा लड़ रहा है, पीला और सफेद लड़ रहा है और इसमें दो-तीन आने से ज्यादा फर्क नहीं है। दो-तीन आना भी मैं कह रहा हूं फुटकर बिक्री में खरीदें तो। थोक खरीदें तो इतना भी फर्क नहीं है।

शरीर की चमड़ी में थोड़े से रंग के अणुओं का फर्क है। तीन सवाल हैं इस समय—रंग अणु, वीर्य-अणु और पदार्थ-अणु। और ये तीन छोटी-सी चीजें आज पूरी मनुष्यता को परेशान किये हुए हैं। इनमें सबसे खतरनाक वीर्य-अणु सिद्ध हो रहा है क्योंकि वह सबके पास है। एटम अणु तो सबके पास नहीं है। एटॉमिक एनर्जी बनानी हो तो बड़े उपद्रव की जरूरत है। लेकिन यह जो वीर्य-अणु की एनर्जी है यह सबको मुफ्त मिली है। और एक-एक आदमी को इतनी मिली है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। एक साधारण स्वास्थ्य का आदमी अपनी जिन्दगी में चार हजार सम्भोग कर सकता है। और एक सम्भोग में एक साधारण आदमी के वीर्य-अणु इतने निकलते हैं कि एक करोड़ बच्चे पैदा हो सकें। और अगर पूरी वैज्ञानिक सुविधा मिले—जो अब तक नहीं मिल सकी, क्योंकि स्त्री इसमें साथ नहीं देती, वह पुरुषों का बहुत मामलों में साथ नहीं देती, वह साल में एक ही बच्चे को ग्रहण कर पाती है। लेकिन पुरुष साल में करोड़ों बच्चे पैदा कर सकता है, एक पुरुष। इस समय पृथ्वी पर जो आबादी है साढ़े तीन अरब, यह एक आदमी के वीर्य-अणुओं से पैदा हो सकती है, अगर उसके सारे वीर्य-अणुओं का उपयोग हो जाये। इतनी मुफ्त मिली शक्ति सबके पास हो तो इसका सबसे बड़ा खतरा उसी से है।

हिन्दुस्तान के सामने दो सवाल हैं। एक कि वह जल्दी से जल्दी औद्योगिक टेक्नोलॉजिकल क्रांति से गुजर जाये और जल्दी से जल्दी बच्चों के दरवाजे पर रोक लगाये और बच्चों को न आने दे, अन्यथा खतरा है। अन्यथा खतरा यह है है कि अगर बच्चे बहुत बड़ी तादाद में आये तो दो उपाय हैं। या तो हमें मृत्यु-दर फिर से बढ़ाने के लिए कृत्रिम साधन खोजने पड़ें, जो कि बहुत दुखद मालूम पड़ता है—किन्हीं जिन्दा लोगों को मरने के लिए राजी करना पड़े। और दूसरा उपाय महामारियों को हमें सुविधा देनी पड़े। वे हमसे बिना पूछे आ जायेंगी, संख्या एक सीमा के बाहर जायेगी तो महामारियां आ जायेंगी। बीमारियां फैल जायेंगी। और लोग मरेंगे बड़ी तादाद में। इसके पहले कि लोग बहुत करुण स्थिति में मरें, उचित है कि हम नये बच्चों पर रोक लगायें और यह कोई अमीर आपको नहीं कह रहा है कि आप बच्चे पैदा करें। लेकिन बच्चे पैदा करने पर सख्ती से नियन्त्रण करने की जरूरत है।

सरकार को जो करने योग्य है वह न करके बेकार की बातों में हमारे मुल्क की सरकार पड़ती है। सख्ती का मेरा मतलब यह है कि हिन्दुस्तान में जो भी आदमी जेल जाये, वह आदमी जेल के बाहर बच्चे पैदा करने की ताकत लेकर वापस नहीं लौटना चाहिए। यह दण्ड का अनिवार्य हिस्सा होना चाहिए। हिन्दुस्तान में दो बच्चे के बाद जो आदमी तीसरा बच्चा पैदा करे उस पर बहुत असुविधायें थोप देनी चाहिए। उसकी फीस दुगनी हो जानी चाहिए, टैक्स ज्यादा होना चाहिए, उस पर सारी मुसीबतें आ जानी चाहिए।

जैसे ही बच्चे आर्थिक रूप से बोझ होंगे तभी हम उन्हें रोकेंगे, लेकिन उसमें एक कठिनाई आयेगी। गरीब के लिए बच्चे आर्थिक रूप से सुविधायें हैं, बोझ नहीं हैं। वे सिर्फ अमीर के लिए बोझ हैं। लेकिन बड़ी अघटनीय घटना घटती है। और वह यह है कि जैसे-जैसे आदमी समृद्ध होते जाते हैं, वैसे-वैसे अपने आप बच्चे कम करते जाते हैं। क्योंकि अमीर आदमी के लिए बच्चा उसकी सम्पत्ति का विभाजक होकर आता है। अगर एक आदमी के पास करोड़ रुपये हैं और वह दस बच्चे पैदा कर ले तो उसके बच्चे लखपति रह जायेंगे, करोड़पति नहीं रह जायेंगे। लेकिन एक गरीब जिसके पास कुछ भी नहीं है, अगर वह दस बच्चे पैदा कर ले तो दस बच्चों की आमदनी शुरू हो जायेगी। दस बच्चे कुछ कमा कर लायेंगे, गाय, बैल को ही चरायेंगे, कुछ तो काम कर ही लेंगे। अभी गरीब के लिए बच्चों का बढ़ना आर्थिक रूप से उपयोगी है।

पर क्या गरीब के पास कोई सुविधा है कि वह मुल्क की सम्पत्ति बढ़ाने में अपने बच्चों को प्रेरित कर सके? क्या गरीब के पास पूंजी पैदा करने की कोई क्षमता है? अगर उसके पास वह क्षमता होती तो वह गरीब न होता। उसे भी अपने बच्चों को पूंजीपतियों की सजायी इस दुनिया पर आधारित रखना पड़ेगा।

नहीं, यह नहीं चलेगा। श्रम को पूंजी में रूपांतरित कहने वाले पूंजीपति को हमें राजी करना पड़ेगा। उसे प्रेरणा देनी पड़ेगी, स्वतन्त्रता व सुविधायें देनी पड़ेंगी कि वह ज्यादा से ज्यादा पूंजी पैदा करे और मुल्क को जल्द से जल्द औद्योगिक क्रांति से गुजारे।

दूसरे, मुल्क में विस्फोटित जनसंख्या पर आगे सख्ती से पूरी रोक लगानी पड़ेगी। उसके सारे इन्तजाम हमें करने पड़ेंगे। तो ही इस मुल्क का कोई भविष्य है, अन्यथा हमारे सामने अन्धकार के गर्त के सिवा कुछ भी नहीं।

और भी प्रश्न रह गये हैं जिनकी चर्चा हम अगली बैठक में करेंगे।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, इससे बहुत अनुगृहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें। ●

अहमदाबाद, ६ अगस्त १९७०

१३–पूंजीवाद—ज्यादा मानवीय व्यवस्था

मेरे प्रिय आत्मन्,

बहुत-से सवाल पूछे गये हैं। एक मित्र ने पूछा कि समाजवाद परार्थवाद अलट्रूइस्टिक व्यवस्था है। पूंजीवाद स्वार्थवादी, सेल्फिश व्यवस्था है। और आप परार्थवादी व्यवस्था का विरोध करते हैं और स्वार्थ की व्यवस्था का समर्थन करते हैं। इसका क्या कारण है ?

सबसे पहली बात तो यह ध्यान में लेने जैसी है कि इस जगत में न कोई परार्थवादी कभी पैदा हुआ है, न हो सकता है। इसका कोई उपाय ही नहीं है। परार्थवाद असम्भावना है। और इस सत्य को जितना ठीक से समझा जा सके उतना पाखण्ड से, डैमोक्रेसी से बचा जा सकता है। परार्थवाद के नाम पर सिवाय पाखण्ड के और कुछ भी नहीं है। असल में मनुष्य की चेतना मूलतः स्वार्थी है और उचित भी है, अनुचित भी नहीं है। बुरा भी नहीं है, स्वाभाविक भी है। हां, स्वार्थ बहुत तल के हो सकते हैं। तीन तरह के स्वार्थ हो सकते हैं। श्रेष्ठतम स्वार्थ, जिसमें मेरे स्वार्थ में आपके स्वार्थ को भी गति मिलती हो। यह भी श्रेष्ठतम इसी-लिए है कि आपके स्वार्थ को भी गति मिलती है, और कोई कारण नहीं है। मध्यम स्वार्थ जिसमें मेरा स्वार्थ तो हल होता है—लेकिन किसी और के स्वार्थ को न तो कोई फायदा होता है, न कोई हानि होती है। वह मध्यम इसलिए है कि दूसरे के प्रति पूर्ण उपेक्षा है। न हानि है न लाभ है। निकृष्ट स्वार्थ वह है,

जिसमें मेरा स्वार्थ आपके स्वार्थ को नुकसान पहुंचाता है। वह निकृष्ट इसी-लिए है कि आपके स्वार्थ को नुकसान पहुंचाता है। और कोई कारण नहीं है।

तीन तरह के स्वार्थ हैं जगत में। और जगत का सारा विकास निकृष्ट स्वार्थ से श्रेष्ठतम् स्वार्थ की तरफ है। जगत का विकास स्वार्थ से परार्थ की तरफ न है और न हो सकता है। लेकिन, हम कुछ ऐसी घटनायें सोचते रहते हैं जो लगती हैं बिल्कुल परार्थ हैं। एक आदमी नदी में डूब रहा है और मैं किनारे से गुजर रहा हूं। मैं उसे अपनी जिन्दगी को जोखिम में डाल कर नदी में कूद कर बचाता हूं तो आप मुझसे कह सकते हैं कि यह तो बिल्कुल परार्थ है, इसमें आपका क्या स्वार्थ ? लेकिन नहीं, आप बहुत गहरे नहीं देख रहे हैं और शब्दों की बहुत ऊपरी पकड़ में है। जब मैं एक आदमी को नदी में डूबते देखता हूं तब तत्काल मेरे सामने जो सवाल होता है वह उस आदमी को बचाने का नहीं होता। तत्काल वह सवाल यह होता है कि क्या मैं उस आदमी को डूबते हुए देखने का दुख झेल सकता हूं। वह असली सवाल बहुत गहरे स्वार्थ का है।

जो इस दुख को झेल सकता है वह निकल जायेगा नदी के किनारे से, वह फिकर नहीं करेगा उस आदमी की। लेकिन जो इस दुख को नहीं झेल सकता वह उस आदमी को बचाता है। वह उस आदमी को नहीं बचा रहा है। वह उस आदमी को डूबते हुए देखने के अपने दुख से छुटकारा पा रहा है और कोई कारण नहीं है और जब मैं उस आदमी को बचाकर बाहर ले आऊं उस नदी के किनारे, तो मुझे जो सुख मिलता है वह सुख उस आदमी को बचाने का नहीं। वह सुख मुझे जो उस आदमी को डूबते हुए देखने की पीड़ा थी उससे मुक्ति का है। और दूसरा सुख मैंने उसे बचाया है उसका है। वह आदमी बच गया यह दूसरी बात है, यह सेकण्ड्री है, यह गौण है। आज तक दुनिया में कोई आदमी अपने स्वार्थ के बाहर नहीं जा सका।

अगर बुद्ध गांव-गांव घूमते हैं लोगों को समझाने, तो इस भ्रांति में पड़ने की कोई जरूरत नहीं कि वे लोगों के लिए, परार्थ के लिए घूम रहे हैं। यह बुद्ध का आनन्द है कि वे लोगों के लिए घूम रहे हैं और समझा रहे हैं। जब रास्ते के किनारे एक फूल खिलता है तो आप इस भ्रांति में मत पड़ना कि वह रास्ते पर चलने वाले लोगों को सुगन्ध देने के लिए खिलता है। यह फूल का आनन्द है कि वह खिलता है। रास्ते पर चलने वालों को सुगन्ध मिल जाती है यह दूसरी बात है। यह प्रयोजन नहीं है फूल खिलने का। और चांद अगर आकाश में निकलता है तो आप यह मत सोच लेना कि आप प्रेम का गीत गा सकें इसलिए निकलता है। आप गा लेते हैं, यह बात दूसरी है।

जिन्दगी का मूल स्वर स्वार्थ है। स्वार्थ शब्द को हमने बहुत गन्दा कर रखा है। वैसे शब्द बहुत सुन्दर है। स्वार्थ का मतलब होता है—'स्व' के अर्थ में। अगर अच्छा शब्द कहें तो आत्म-अर्थ कहें, आत्मा के हित में, अपने हित में।

स्वाभाविक है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने हित में जिये। हां, दृष्टि सिर्फ इतनी होनी चाहिए कि उसका हित धीरे-धीरे सबके हित को समाहित कर ले, यह श्रेष्ठतम होगा। उसका हित सबके विरोध में पड़ जाये यह निकृष्टतम होगा। लेकिन ये दोनों आदमी स्वार्थी हैं, यह मैं स्पष्ट करना चाहता हूं। इसमें परार्थी कोई भी नहीं है।

फिर परार्थी कौन है? जिनकी हम परोपकारियों में, परार्थियों में गणना करते हैं और जिनको हम महात्मा, साधु, सन्त कहकर पूजते हैं, ये कौन लोग हैं, जो अपने किसी गहरे स्वार्थ के गहरे आनन्द को पूरा करते हैं। लेकिन परार्थ कर रहे हैं यह अहंकार भी पूरा कर रहे हैं। कोई परार्थ नहीं कर रहा है। अगर भगत सिंह को इस देश के लिए मरने में आनन्द है तो भगत सिंह मर रहा है। यह भगत सिंह का अपना आनन्द है। इस देश की लड़ाई आगे बढ़ती है, यह गौण है।

और गांधी अगर इस देश की सेवा कर रहे हैं तो यह उनका अपना आनन्द है। इसमें परार्थ कहीं भी नहीं है, लेकिन यह श्रेष्ठतम स्वार्थ है और श्रेष्ठतम स्वार्थ होना चाहिए।

मैं पूंजीवादी व्यवस्था का समर्थक हूं, क्योंकि वह मानवीय स्वभाव के अनुकूल है। पूंजीवादी व्यवस्था स्वार्थी व्यवस्था है। समाजवादी व्यवस्था दावा करती है परार्थ का, इसलिए पाखण्डी व्यवस्था है। यह मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल नहीं है और दावा ही परार्थ का है, परार्थ हो नहीं सकता है। स्वार्थ वहां भी होगा। स्वार्थ वहां भी हो रहा है।

इस बात को अगर हम ठीक से समझ लें कि स्वार्थी होना मनुष्य का मिहत्तम, गहरे से गहरा मनोभाव है, उसकी गहरी से गहरी प्रकृति है, तो हम व्यर्थ के पाखण्डों से बच जायें और चीजें साफ-सुथरी हो जायें और गणित ठीक से बैठ सके। तब हम इतना कह सकें कि तुम्हारा स्वार्थ निकृष्ट है, यह श्रेष्ठ हो सके तो शुभ है। लेकिन हम उसे क्यों कह रहे हैं यह भी हमें समझ लेना चाहिए, इसलिए नहीं कि वह परार्थ है।

श्रेष्ठ हम उसे इसलिए कह रहे हैं कि वह भी किसी दूसरे की प्रकृति के स्वार्थ को सहयोग दे रहा है। वह बृहत्तर स्वार्थ है। विराट् स्वार्थ है।

अगर परमात्मा भी इस जगत् को चला रहा होता तो परार्थ के कारण नहीं। उसका कोई निजी स्वार्थ और आनन्द है। इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।

यह सारा जीवन भीतर के रस और आनन्द से चलता है। और इसलिए मैं कहता हूं कि पूंजीवादी व्यवस्था मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल है। मनुष्य के स्वभाव के प्रतिकूल जो भी करने की कोशिश की जाती है वह व्यवस्था ही टूटती

है या फिर मनुष्य के स्वभाव को जबर्दस्ती तोड़ना पड़ता है। इसलिए जिन पचाससाठ देशों में समाजवादी जीवन का प्रयोग हुआ है वहां पता चलना शुरू हो गया है कि आदमी ने श्रम करने की उत्सुकता को खो दिया है। वह उसके स्वार्थ में नहीं मालूम पड़ती। इतना बड़ा स्वार्थ है कि उसकी पकड़ के बाहर हो जाता है।

मैं जानकर ही पूंजीवाद के समर्थन में हूं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि मैं सोचता हूं पूंजीवाद मनुष्य की अन्तिम जीवन-व्यवस्था है। असल में जो लोग भी किसी व्यवस्था को अन्तिम कहते हैं, वे सदा खतरनाक हैं। लेकिन समाजवादी ऐसा मानते हैं कि समाजवाद का जो श्रेष्ठतम रूप होगा साम्यवाद, वह अन्तिम व्यवस्था होगी (अल्टीमेट)। उसके आगे फिर कोई विकास नहीं है।

असल में सभी सिद्धान्तवादी इस मानने के भ्रम में पड़ते हैं कि उन्होंने जो सोचा है वह चरम है, उसके आगे कुछ भी नहीं है। जीवन कहीं भी रुकता नहीं। इसलिए सिद्धान्तवादी जीवन को रोकने वाले सिद्ध होते हैं। क्योंकि जब उनकी व्यवस्था के आगे जीवन जाने लगे तो वे बाधा खड़ी करते हैं। पूंजीवाद चरम व्यवस्था नहीं है। आखिरी व्यवस्था नहीं है।

पूंजीवाद से बहुत कुछ नया पैदा होगा। पूंजीवाद एक सीमा पर मरेगा और नई व्यवस्था को जन्म दे जायेगा। जैसे पिता मरता है और बेटे को जन्म दे जाता है। लेकिन पिता के खिलाफ बेटे को लड़वाने की और बाप की हत्या करवाने की कोई भी जरूरत नहीं है। बाप, बाप होने की वजह से खुद ही मरता है। असल में जिस दिन बाप, बाप बनता है उसी दिन मरना शुरू हो जाता है। और बेटा जीना शुरू हो जाता है। यह बेटे को भड़का कर बाप की हत्या करवाना फिजूल की मेहनत है। इसमें कोई अर्थ नहीं है। बाप मरने को ही है। और जो बेटा बाप की हत्या करके बाप को मारेगा, ध्यान रखें वह अपने बेटे से सदा सावधान रहेगा। और इसलिए बेटे को पहले ही मार डालेगा। किसी दिन मारने की तैयारी न हो जाये। लेकिन जो बेटा अपने बाप को मारता नहीं, बचाने की आखिरी कोशिश करता है, लेकिन बाप तो फिर भी मर ही जाता है, क्योंकि सभी पुराना मर जाता है और विदा कर आता है रोता हुआ मरघट पर, यह अपने बेटे के प्रति दुश्मनी के भाव से भरा हुआ नहीं होता है।

ध्यान रहे, अगर हमने पूंजीवाद की हत्या करके समाजवाद लाया तो समाजवाद हमारी गर्दन पकड़ लेगा, उसके आगे फिर कोई व्यवस्था नहीं पैदा होने देगा। नहीं, यह जिन्दगी बड़ी सीधी और साफ है। यहां जैसे आदमी की जिन्दगी में गति है ऐसी गति व्यवस्थाओं में भी है। लेकिन मार्क्स के दिमाग में एक बुनियादी रोग था। और वह रोग यह था कि वह चीजों को संघर्ष की भाषा में ही सोच सकता था, सहयोग की भाषा में नहीं सोच सकता था। द्वन्द्व (डाइलेक्टिक्स) की भाषा में सोच सकता था। वह सारे विकास को कॉन्फ्लिक्ट

की भाषा में सोच सकता था कि सारा विकास द्वन्द्व है। यह बात पूरी सच नहीं है। निश्चित ही विकास में द्वन्द्वता-तत्त्व है। लेकिन द्वन्द्व ही विकास का आधार नहीं है, द्वन्द्व से भी गहरा 'सहयोग'—कोआपरेशन विकास का आधार है। असल में द्वन्द्व की वहीं जरूरत पड़ती है, जहां असम्भव हो जाता है। द्वन्द्व मजबूरी है, सहयोग स्वभाव है। और द्वन्द्व भी अगर हमें करना पड़े तो उसके लिए भी हमें सहयोग करना पड़ता है। उसके बिना हम द्वन्द्व भी नहीं कर सकते हैं। अगर मुझे आपसे लड़ना हो, और आपको मुझसे भी लड़ना हो तो आपको भी पच्चीस आदमियों का कोआपरेशन करना पड़ेगा। मुझे भी पच्चीस आदमियों का कोआपरेशन करना पड़ेगा। लड़ने के लिए भी सहयोग ही करना पड़ता है। लेकिन सहयोग के लिए लड़ना नहीं पड़ता है। इसलिए बुनियादी कौन है, हम समझ सकते हैं। लड़ने के लिए सहयोग जरूरी है, लेकिन सहयोग के लिए लड़ना जरूरी नहीं है। इसलिए बुनियादी कौन है?

बुनियादी कोआपरेशन है, कॉन्फ्लिक्ट नहीं। बुनियादी सहयोग है, द्वन्द्व नहीं। क्योंकि बिना सहयोग के द्वन्द्व सम्भव नहीं है। लेकिन बिना द्वन्द्व के सहयोग सम्भव है।

लेकिन मार्क्स के दिमाग में यह ख्याल था कि सब चीजें लड़कर विकसित हो रही हैं। असल में जितने भी लोग मानसिक अशांति से पीड़ित होते हैं, जगत में लड़ाई की भाषा में ही सोच पाते हैं। और मार्क्स कोई शान्तचित्त आदमी नहीं था। और दुनिया में बुद्ध जैसा कोई शान्तचित्त आदमी कुछ कहता है तो उसकी गहराई और होती है, और मार्क्स जैसा अशान्तचित्त आदमी कुछ कहता है तो उसका उथलापन साफ होता है।

मार्क्स की अशांति इतनी भयंकर थी कि अगर एक क्षण भी सिगरेट पीने को नहीं मिलती तो वह बेचैन हो जाता था—चेन स्मोकर। और कहते हैं केपिटल लिखने में उसने जितनी सिगरेट पी उतनी कैपिटल की बिक्री से उसे दाम नहीं मिले।

मार्क्स की नींद भी बहुत बेचैन थी। वह शान्ति से सो नहीं सकता था। मार्क्स का विचार भी बहुत धुंधला था। अक्सर विचार करते-करते कई बार वह बेहोश भी हो गया था।

मार्क्स के जीवन में कोई ऐसी गहराई नहीं है कि जीवन के किसी गहरे तत्त्व को देखने की क्षमता उसके पास हो। जब चित्त बहुत अशांत, तनावग्रस्त, एनक्जाइटी से भरा हुआ, चिन्ता से भरा हुआ है, टेन्शन से भरा हुआ होता है, तो जिन्दगी में भी जो हमारे मन में होता है, वही हमें दिखाई पड़ने लगता है।

'सिमोन वेल' ने एक संस्मरण में लिखा है कि तीस या तीस साल तक की उम्र तक उसके सिर में दर्द बना रहा। और वह दर्द इतना ज्यादा था कि उसे

दुनिया में कुछ भी अच्छा नहीं दिखाई पड़ता था। जिसके सिर में दर्द है, उसे दिखाई पड़ भी नहीं सकता। तो जब उसका दर्द ठीक हो गया तो उसने लिखा है कि मैं बहुत हैरान हूं। जब तक मेरे सिर में दर्द था तब तक मैं नास्तिक थी और जब से मेरा सिर दर्द ठीक हुआ तबसे मैं आस्तिक होने लगी।

असल में अगर चित्त पूरा स्वस्थ हो तो आदमी आस्तिक हो ही जायेगा। लेकिन चित्त अगर विकृत हो, रुग्ण हो नास्तिक होने के सिवाय कोई उपाय नहीं है। क्योंकि जिन्दगी में हम वही देखते हैं जो हमारे भीतर है, हम उसी को प्रोजेक्ट करते हैं।

मार्क्स चिन्तित, परेशान, द्वन्द्वग्रस्त व्यक्तित्व है। असल में मार्क्स को समझने के लिए उसकी साइकोलाजी में पूरी छानबीन, पूरी खोज होनी चाहिए। मार्क्स के व्यक्तित्व का हम जितना विश्लेषण करेंगे उतना ही हमें पता चलेगा कि समाजवाद द्वंद्वात्मक क्यों है। यह समाजवाद डाइलेक्टिकल क्यों है? यह समाजवाद इसलिए द्वंद्वात्मक है कि मार्क्स का चित्त द्वंद्वग्रस्त है।

निश्चित ही बुद्ध अगर कोई बात कहेंगे तो द्वंद्वात्मक नहीं होगी। वह समन्वयात्मक होगी, वह सिन्थेटिक होगी। उसमें एक संवेदभाव होगा। क्योंकि भीतर जो चित्त है वह समन्वित है, भीतर खण्ड-खण्ड में बसा हुआ आदमी नहीं है।

हम दुनिया को वैसा ही देख लेते हैं जैसा देखने वाला चित्त हमारे पास होता है। मार्क्स ने दुनिया को रुग्ण मन से देखा है इसलिए दुनिया हमें द्वंद्व से भरी मालूम पड़ती है। इसलिए हर जगह लड़ाई है, बाप और बेटे में लड़ाई है, गुरु और शिष्य में लड़ाई है, पति और पत्नी में लड़ाई है, गरीब और अमीर में लड़ाई है, सबमें लड़ाई है। नहीं, जिन्दगी लड़ाई पर ही नहीं खड़ी है।

असल में जिन्दगी में जहां सहयोग चूक जाता है वहां लड़ाई प्रवेश करती है। जिन्दगी लड़ाई नहीं है, जिन्दगी सहयोग है। और जहां जिन्दगी सहयोग में असमर्थ हो जाती है, वहां लड़ाई खड़ी करती है। लड़ाई बीमारी है, स्वास्थ्य नहीं।

द्वंद्व मनुष्य का सहज भाव नहीं है। द्वंद्व मनुष्य की मजबूरी है। कोई भी लड़ने को आतुर नहीं है, लड़ना हर हालत में मजबूरी है। लेकिन इस मजबूरी को मार्क्स नियम, दि लॉ, कानून मान कर चलते हैं तो उन्होंने सारी जिन्दगी को द्वंद्व में घेर लिया। इसलिए पिछले पचास वर्षों में जहां-जहां मार्क्स के चिन्तन का प्रभाव पड़ा, वहां-वहां जीवन के सब तलों पर द्वन्द्व हो गया। चाहे वह गरीब-अमीर का हो, चाहे बाप-बेटे का हो पति-पत्नी का हो, जिन्दगी को देखने का ढंग द्वन्द्व में से हो गया।

पति-पत्नी दो मित्र नहीं हैं, दो दुश्मन हैं। बाप-बेटे भी एक जीवनधारा के दो हिस्से नहीं हैं, दुश्मन हैं।

तुर्गनेव ने एक किताब लिखी है "फादर एण्ड सन्स"—पिता और पुत्र। और वहां दिखाई पड़ता है कि पिता और पुत्र भी दो वर्ग हैं। दो दुश्मन हैं। सारी जिन्दगी दुश्मनी के सूत्र से समाजवाद ने भर दी है जो कि नितान्त असत्य है। और न केवल असत्य है, खतरनाक असत्य है। क्योंकि अगर हम एक बार भी उस भाषा में सोचने को तैयार हो जायें कि सब जगह द्वन्द्व है, तो फिर जिन्दगी में शान्ति और जिन्दगी में समन्वय और संगीत का कोई उपाय नहीं है। नहीं, मैं नहीं मानता हूं कि पूंजीपति और गरीब में द्वन्द्व है। मैं मानता हूं कि पूंजीपति और गरीब के बीच जो सारभूत हिस्सा है वह सहयोग है। और जहां सहयोग असफल होता है वहां द्वंद्व पैदा होता है।

द्वन्द्व मूल स्वर नहीं है। द्वन्द्व सहयोग की असफलता है। और सहयोग असफल न हो इसकी पूरी कोशिश की जानी चाहिए। लेकिन पूरी कोशिश इसकी की जा रही है कि सहयोग सब जगह खत्म हो जाये और द्वन्द्व ही रह जाये। क्योंकि समाजवाद की जीत इसी पर निर्भर है कि सहयोग सभी जगह टूट जाये। कहीं भी अगर सहयोग है तो समाजवाद की सम्भावना नहीं है। जहां भी सहयोग की थोड़ी सम्भावना है वहां समाजवाद की सम्भावना क्षीण हो जायेगी। इसीलिए सब जगह सहयोग टूट जाये तो ही समाजवाद आ सकता है।

समाजवाद बहुत पैथालाजिकल ख्याल है, बहुत रोगग्रस्त ख्याल है। अगर हम मनस्-विश्लेषण करें समाजवादी चित्त का तो हम पायेंगे कि यह आदमी परेशान है और यह अपनी परेशानी को सारे समाज पर थोप रहा है। और जिन्दगी बहुत कुछ देखने पर निर्भर करती है जो हम देखना शुरू कर देते हैं, मानना शुरू कर देते हैं, उसे हम खोज लेते हैं। वह जगह दिखाई पड़ने लगती है।

अगर एक आदमी गुलाब के फूल के पास जाकर खड़ा हो और कांटों का विश्वासी हो तो फूल उसे शायद ही दिखाई पड़े। उसे कांटे ही कांटे दिखाई पड़ेंगे। और इतने कांटे दिखाई पड़ेंगे कि उसे स्वभावत: यह ख्याल आए कि इतने कांटों के बीच एक फूल नहीं हो सकता। फूल झूठा होगा। स्वभावत: जब इतने कांटे हैं तो फूल कैसे हो सकता है कांटों के बीच में? लेकिन अगर कोई आदमी उसी गुलाब के पौधे के पास फूल को देखने की क्षमता रखता हो और फूल को देखने की क्षमता रखना, मनुष्य के श्रेष्ठतम गुणों में से एक है—फूल को देखने की क्षमता रखना। कांटों को देखने की क्षमता रखना कोई गुण नहीं है।

अगर कोई फूल को देखने की क्षमता रखता हो और एक गुलाब के फूल के चारों तरफ हजार कांटे भी हों और गुलाब के फूल को अगर कोई ठीक से देख पाये तो उसे शक होगा कि जहां ऐसा फूल खिला है वहां इतने कांटे कैसे हो सकते हैं? और जब वह जो फूल को देखकर कांटे देखने जायेगा, वह हैरान हो जाएगा, वह पाएगा कि कांटे फूल की रक्षा के लिए ही हैं, फूल के दुश्मन नहीं हैं।

और जो कांटों का प्रेमी है वह जब कांटों को देखेगा तो वह समझेगा कि फूल जो है वह कांटों को धोखे में छिपाए रखने के लिए इन्तजाम है। असली चीज तो कांटा है। यह फूल जो ऊपर से दिखाई पड़ रहा है, यह इसलिए है आदमी फूल तोड़ने आ जाये और कांटों में फंस जाये। यह कांटों की तरकीब है, यह फूल जो है, कांटों में फंसाने के लिए है।

हम जिन्दगी को जैसा देखते हैं वैसी ही दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है। समाजवाद जिन्दगी को द्वन्द्व से मानकर चलता है। खुद मार्क्स को ख्याल न था मौलिक रूप से। मार्क्स बहुत मौलिक चिन्तक है, ऐसा मुझे दिखाई भी नहीं पड़ता। लेकिन मार्क्स के पहले हेगल हुआ। हेगल का ख्याल था कि दुनिया द्वन्द्व से विकसित हो रही है। यह ख्याल मार्क्स को भी पकड़ गया।

हेगल तो कहता था कि विचारों के द्वन्द्व से विकास हो रहा है, मार्क्स ने उसको और पदार्थवादी बनाकर वर्ग का द्वन्द्व और यथार्थ बना दिया। वर्गों के द्वन्द्व से विकास हो रहा है। लेकिन कोई पूछे कि कम्युनिज्म के बाद क्या होगा? जब दुनिया में साम्यवाद आ जायेगा तो विकास नहीं हो सकता। कैसे विकास होगा? क्योंकि द्वन्द्व किस-किस में होगा। इसलिए समाजवाद की जो आखिरी सीढ़ी है साम्यवाद, उसके बाद दुनिया में कोई विकास नहीं, वहां सब चीजें ठप्प और मुर्दा हो जायेंगी। क्योंकि उसके बाद दुनिया में कुछ नहीं होगा, न गरीब बचेगा न अमीर बचेगा। बहुत सम्भावना तो यह है कि न पत्नी बचेगी न पति बचेगा। बहुत सम्भावना तो यह है कि न बाप बचेगा न बेटा बचेगा। ऐसा नहीं कि बेटे पैदा नहीं होंगे, लेकिन वे सरकारी होंगे। ये निजी नहीं हो सकते।

क्योंकि एक बार सम्पत्ति सरकारी होनी शुरू हुई तो बेटा भी निजी सम्पत्ति ज्यादा दिन नहीं हो सकता। उसके होने का कारण किसी निजी व्यक्तिगत सम्पत्ति की वजह से था।

असल में व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकारी कोई और न हो जाये इसलिए बाप और बेटे के सम्बन्ध को संगठित होने में सुविधा मिली थी। बाप कहता था उसका बेटा, उसका खून, उसकी सम्पत्ति का मालिक हो। जिस दिन सम्पत्ति सरकारी होगी उस दिन बाप क्यों बेटे के उस झंझट में पड़े, इससे मतलब क्या, इससे प्रयोजन क्या? बेटा सरकारी हो जायेगा।

मार्क्स के वक्त में यह ख्याल चर्चा का विषय बन गया था कि जब व्यक्तिगत सम्पत्ति समूह की हो जायेगी तो स्त्रियां कब तक रखने का व्यक्तिगत ख्याल है। बहुत ज्यादा देर तक नहीं चल सकता। क्योंकि स्त्रियों को व्यक्तिगत रखने की क्या जरूरत है? सामूहिक होना ज्यादा सुविधापूर्ण होगा। समाजवाद का आखिरी कदम जब मनुष्य की पूरी जिन्दगी में घुसेगा तो स्त्री भी व्यक्तिगत नहीं हो सकती। ऐसे भी व्यक्तिगत स्त्री मंहगी चीज है।

ऐसे अपने घर में कार रखो तो उपद्रव ही है। बस में बैठने से सुविधापूर्ण है। अगर समाजवाद के विचार को उसके लॉजिकल कन्क्ल्यूजन (तार्किक निष्पत्ति) तक ले जाया जाये तो इसका मतलब ही यह है कि व्यक्तिगत स्त्री की भी क्या जरूरत है। व्यक्तिगत बेटे की क्या जरूरत है। असल में व्यक्तिगत की क्या जरूरत है।

समाजवाद व्यक्तिगत पर चोट है। सम्पत्ति से शुरू होगी, फिर जिन्दगी के भीतर प्रवेश कर जायेगी। जिन्दगी के भीतर प्रवेश करना स्वाभाविक है। इसलिए मैं मानता हूं कि समाजवाद बड़ी अस्वाभाविक, अप्राकृतिक, अमानवीय (इन ह्यूमन) व्यवस्था है, मनुष्य जैसा है। पूंजीवाद आया है। पूंजीवाद लाया नहीं गया है। यह थोड़ा सोचने जैसा है। पूंजीवाद आया है, पूंजीवाद लाया नहीं गया है। यह कोई इम्पोज्ड सिस्टम नहीं है आदमी के ऊपर। इसके लिए किन्हीं लोगों ने प्रचार करके, आन्दोलन करके इन्तजाम नहीं किया है। कोई क्रान्ति करके और आदमी को समझा के और कानून बना के पूंजीवाद नहीं आया है। पूंजीवाद विकसित हुआ है। समाजवाद को लाने की चेष्टा चल रही है। असल में उस चीज को लाना पड़ता है जो अप्राकृतिक है। जो प्राकृतिक है, वह अपने से आ जाती है।

आज तक दुनिया की सारी व्यवस्थाएं आई हैं। समाजवाद पहली व्यवस्था है जिसे लाने का इन्तजाम करना पड़ रहा है। अब तक जब सब व्यवस्थाएं आ गईं, पूंजीवाद की आगे की व्यवस्था भी पूंजीवाद से आ जायेंगी। इसमें इतने अनिश्चित और परेशान होने की क्या जरूरत है? इसे लाने के लिए विशेष आयोजन की क्या जरूरत है? असल में इसे विशेष रूप से तभी लाना पड़ता है—अगर एक आम वृक्ष पर लगा है और लगा रहे। अपने से पकता है और गिर जाता है। पक जाता है तब गिर जाता है। असल में पक जाना और गिर जाना एक ही साथ घटते हैं। युगपत् जिस क्षण पूरा पक जाता है उस क्षण गिरने के सिवा और कोई मार्ग नहीं रह जाता। राइपननेस इज ऑल—पक जाना सब कुछ है, फिर गिर जाता है। वृक्ष को पता भी नहीं चलता कि कब गिर गया पका आम। आम को भी पता नहीं चलता कि कब छोड़ा वृक्ष को। यह जब छूट जाता है तभी पता चलता होगा। लेकिन अगर कच्चे आम को तोड़ लें तो वृक्ष को भी पता चलता है, घाव छूट जाता है। आम को भी पता चलता है, क्योंकि अभी जिससे रस लेना था उससे रस नहीं ले पाया था। और फिर कच्चे आम को कृत्रिम इन्तजाम करके पकाना पड़ता है। वह जो काम वृक्ष ही कर देता है वह फिर घर में गेहूं में छिपा कर आम को पकाने का इन्तजाम करना पड़ता है।

निश्चित ही, गेहूं में छिपा कर पकाया हुआ आम, वृक्ष पर पके हुए आम से भिन्न होता है। वृक्ष पर पका हुआ आम स्वस्थ होता है। गेहूं में पका हुआ आम सिर्फ बीमार होता है, बुखार से पकाया हुआ होता है।

जो जीवन की व्यवस्था सहजता से आती है 'स्पोन्टेनियस', जो जीवन की व्यवस्था पिछली व्यवस्था से जन्म लेती है, उस व्यवस्था में एक स्वास्थ्य, एक सौन्दर्य, एक सरलता, निर्दोषता होती है। जो व्यवस्था जबर्दस्ती लायी जाती है उस व्यवस्था में कुरूपता, एक जबर्दस्ती, एक हिंसा और खून के दाग होते हैं। मेरी दृष्टि में मनुष्य स्वार्थी है। इस सीधे से सत्य को गालियां देने की क्या जरूरत है? लेकिन साधु-संत और महात्मा इसको बहुत गालियां देते रहे। और यह बड़े मजे की बात है कि इनकी गालियां धीरे-धीरे स्वीकृत हो गई हैं। हजारों साल का प्रचार है, हमने स्वीकार कर लिया है कि आदमी का स्वार्थी होना बुरा है और है आदमी स्वार्थी तब आदमी क्या करे? रहेगा आदमी स्वार्थी, परार्थ का चेहरा बनायेगा। अच्छा है एक आदमी दुकान पर बैठकर दुकान करे और जाने कि यह दुकान है। नहीं, यह आदमी स्वार्थी मालूम पड़ेगा। यह मन्दिर बनायेगा। मन्दिर में बैठ कर दुकान चलायेगा, यह परार्थ मालूम पड़ेगा।

लेकिन दुकान एक ईमानदारी है और मन्दिर एक बेईमानी हो गई, अगर वहां दुकान चल रही है तो। मैंने सुना है कि हम मनुष्य जाति बहुत सजेस्टीबल हैं। ठीक ही है यह बात। बहुत से सुझाव ग्रहण करने वाली है। अगर हजारों साल तक कोई बात की जाये तो हम उसे स्वीकार कर लेते हैं, उसे ग्रहण कर लेते हैं। हमने यह बात स्वीकार कर ली है कि स्वार्थ कुछ निन्दा योग्य है। तो मैं आपसे कहता हूं कि नहीं निन्दा योग्य नहीं है। स्वार्थ स्वभाव है, और अगर स्वार्थ में कुछ निन्दा योग्य तत्त्व भी है तो इसलिए है कि किसी दूसरे के स्वार्थ पर चोट पहुंचती है। यह भी स्वार्थ को चोट पहुंचने के कारण है। फिर मैं एक बात आपसे कहता हूं कि जो आदमी दूसरे को चोट पहुंचा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करता है वह बहुत समझदार स्वार्थी नहीं है। एनलाइटेंड नहीं है। बहुत समझदार नहीं है। क्योंकि दूसरे के स्वार्थों को चोट पहुंचा कर बहुत देर तक अपना स्वार्थ सिद्ध नहीं कर सकता। यह असम्भव है।

जो आदमी दूसरों के स्वार्थ को चोट पहुंचा रहा है, दूसरे उसके स्वार्थ को चोट पहुंचाना शुरू कर देंगे। देर-अबेर वह आदमी दूसरों को पहुंचायी गयी चोटों से खुद भी गिर जायेगा, वह चोटें वापिस लौटाने लगेंगी। जो आदमी दूसरों के स्वार्थ को भी अपने स्वार्थ से पानी सींच रहा है, जो अपने स्वार्थ को पूरा करते वक्त दूसरे के स्वार्थ को नुकसान नहीं पहुंचा रहा है, लाभ पहुंचा रहा है, वह आदमी बहुत गहरे अर्थों में होशियार-स्वार्थी है, बहुत एनलाइटेंड सेलिफशनेस है उसकी। क्योंकि वह आदमी वस्तुतः दूसरों के स्वार्थों को पूरा करके अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए वातावरण और अवसर भी पैदा कर रहा है। यह जगत् सामूहिक जीवन है। यह जगत् सहजीवन है। यहां हम अकेले-अकेले नहीं हैं। यहां हम सब दूसरे के साथ हैं। और दूसरे के साथ होने

का एक ही मतलब है कि यह साथ तभी गहरा हो पाता है जब मेरा जीवन मेरा आनन्द ही नहीं, दूसरों का भी आनन्द बन जाता है। मैं परार्थ का पक्षपाती नहीं हूं, तो पूर्ण स्वार्थ का पक्षपाती हूं। और मैं कहता हूं कि यदि आपका स्वार्थ दूसरे को नुकसान पहुंचा रहा है तो आप पूर्ण स्वार्थी नहीं हैं। आप बीज अपनी ही नासमझी से अपने ही अहित में बो रहे हैं। यह हो सकता है कि फल आने में वक्त लग जाये। तो आपको पता न रहे कि अपने ही बोए हुए बीज फल ला रहे हैं। लेकिन जो हम बोते हैं अपने चारों तरफ वह हम तक फिर लौट आता है।

मैं पक्ष में हूं यह जानते हुए कि पूंजीवादी व्यवस्था स्वार्थी व्यवस्था है। लेकिन स्वार्थ मनुष्य का स्वभाव है। और मैं कहता हूं कि पूंजीवादी व्यवस्था मानवीय है। निश्चित ही पूंजीवाद अन्तिम व्यवस्था नहीं है, क्योंकि इस जगत् में कोई व्यवस्था अन्तिम नहीं हो सकती है।

अन्तिम व्यवस्था का मतलब हुआ कि उसके बाद फिर प्रलय के सिवाय और कोई उपाय नहीं रह जायेगा। अन्तिम व्यवस्था का मतलब हुआ मौत के सिवाय और कोई गति नहीं रह जायेगी पर्फेक्शन—पूर्णता और मृत्यु के अतिरिक्त और कहीं नहीं ले जा सकती। कोई भी व्यवस्था परफेक्ट होगी वह पके आम की तरह गिर जायेगी और क्या करेगी ? लेकिन हर गिरती व्यवस्था नयी व्यवस्था को जन्म दे जाती है। असल में जब पुराने पत्ते गिरते हैं तो नये पत्ते वृक्ष को भीतर से धक्के देने लगते हैं, आवाज देने लगते हैं, इसीलिए गिरते हैं। पुराना पत्ता गिरता है नया पैदा हो जाता है।

नयी व्यवस्था जब जन्म लेने को तैयार हो जाती है तब पुरानी विदा होने लगती है। इस पुराने का विदा होना, नये का आना शाश्वत है। यह कम्युनिज्म आ के रुक नहीं जायेगा। मार्क्स इस सम्बन्ध में नितान्त भ्रांत हैं। और समाजवादी नितान्त भ्रांत हैं कि समाजवाद या साम्यवाद की कोई स्थिति चरम और अन्तिम हो जायेगी। कोई स्थिति चरम नहीं हो सकती है। न ही कोई स्थिति ऐसी हो सकती है जिसके आगे पाने के लिए कुछ शेष न रहेगा।

हां, इतना ही फर्क पड़ेगा कि रोज-रोज हमारे जीवन के विकास के आयाम बदलते जाते हैं। रोज-रोज हमारा जीवन नये तलों पर प्रकट होने लगता है। आज लड़ाई है कि रोटी नहीं है, कपड़ा नहीं है। जिस दिन रोटी-कपड़ा सारी पृथ्वी पर हो जायेगा, मत सोचना कि उस दिन दुनिया में बड़ा सुख आ जायेगा। उस दिन दुनिया में बड़े किस्म के दुख उभरेंगे। छोटे किस्म के दुख खत्म हो जायेंगे। इस भ्रांति में कोई मत रहे कि रोटी-कपड़ा-मकान सब मिल जाने से सुख आ जायेगा। नहीं, सिर्फ रोटी-कपड़ा-मकान का दुख मिट जायेगा। जिस दिन रोटी-कपड़ा-मकान का सुख नहीं रह जाता उस दिन और भी अजीब और अनूठे दुख आदमी को घेरने लगते हैं। संगीत घेरने लगता है, काव्य घेरने लगता है, धर्म

घेरने लगता है, ध्यान घेरने लगता है, नये दुख पैदा होने शुरू हो जाते हैं। पेट भरा हो आदमी का तो आप यह मत सोचना कि बस वह आराम से घर में बैठ जाता है। वह नये दुखों की तलाश में निकल जाता है।

स्वभावत: नये दुखों की खोज करनी पड़ती है ताकि नये सुख पाये जा सकें। और कोई रास्ता नहीं है। नये दुख की खोज, नये सुख की खोज। और ऐसा क्षण कभी भी नहीं आयेगा जब दुख बिल्कुल नहीं रहेंगे। और अगर किसी दिन आयेगा तो उस दिन आदमी मशीन हो चुका रहेगा, तभी यह हो सकता है।

समाजवाद कहता है कि ऐसा दिन आ सकता है जब दुख नहीं होगा। पूरा भी कर सकता है अपने वायदे को, लेकिन उसके पूरा करने के पहले सचेत हो जाना।

आदमी अगर मशीन हो जाये तो यह हो सकता है कि दुख न आये। क्योंकि सुख भी आने की बात समाप्त हो जाये। मशीनों के लिए कोई दुख-सुख नहीं होता, आदमी के लिए होता है। और यह बड़े मजे की बात है कि हम जरा ख्याल करें, अकबर को कौन-सी कमी हुई, अशोक को कौन-सी कमी हुई। शायद समाजवाद बहुत से बहुत सुविधा जुटा देगा आदमी के लिए, सभी आदमियों के लिए तो अशोक जैसी जुटा देगा, अकबर जैसी जुटा देगा। लेकिन अशोक को क्या तकलीफ है कि मरने के पहले वह पीत वस्त्र पहन कर भिक्षु जैसा रहने लगा। मामला क्या है ? इसको खाने की कमी है, इसको कपड़े की कमी है, इसको स्त्रियों की कमी है, इसको धन की कमी है ? इसको हो क्या गया ? असल में इसके पास सब है। और जब सब होता है तब पहली दफा पता चलता है कि सब बेकार है। जब तक नहीं था तब तक पता नहीं चलता कि बेकार है।

गरीब आदमी आशा में जी सकता है। अमीर आदमी के लिए पुरानी आशा समाप्त हो जाती है। गरीब आदमी इस आशा में दौड़ता रहता है कि एक मकान होगा, एक कार होगी, एक बंगला, एक बगीचा, लेकिन जब सब हो जाता है तब उसे पहली दफा पता चलता है कि यह तो हो गया, लेकिन भीतर तो कुछ भी नहीं हुआ। कुछ अभी खाली का खाली है। वह खाली का खाली नये सवाल उठाना शुरू कर देता है।

जैनियों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के बेटे हैं। सब अवतार राजाओं के बेटे हैं। बुद्ध राजा के बेटे हैं। एक मुल्क में एक अवतार, एक बुद्ध और एक तीर्थंकर भी ऐसा नहीं है जो गरीब घर में आया हो। कुछ कारण हैं। इनके पास सब था। इनके दिमाग खराब थे ? इनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी ? इनके पास सब था जो समाजवाद दे सकता है। फिर क्या ? लेकिन नहीं। जब इनके पास सब था तो अचानक पता चला कि सब बेकार है। खोज कहीं और करनी पड़ेगी।

मैं नहीं मानता हूं कि समाजवाद कोई अमृत है जिससे सब हल हो जायेगा।

कुछ भी हल नहीं होगा, और अगर समाजवाद यह मानकर चलता है कि रोजी-रोटी और कपड़े से सब हल हो जायेगा तो समाजवाद मनुष्न को पशु के तल पर उतार देगा। इसलिए भी मैं उसके पक्ष में नहीं हूं। मैं मानता हूं कि जरूर गरीबी मिटनी चाहिए। लेकिन गरीबी मिटनी चाहिए पूंजीवाद के विस्तार से। गरीबी मिटनी चाहिए व्यक्तिगत सम्पत्ति के फैलाव से, गरीबी मिटनी चाहिए गरीबी के मिटने से, अमीर के मिटने से नहीं।

गरीबी दो ढंग से मिट सकती है। अमीर को मिटा दो। तब भी मिट सकती है। क्योंकि फिर गरीब को गरीब होने का पता नहीं चल सकेगा। एक और ढंग है मिटाने का कि गरीब को मिटा दो तो भी गरीबी मिट सकती है। अमीर को मिटाना हो तो सीलिंग का रास्ता है कि तय कर दो कि इससे ज्यादा नहीं कमा सकते हो। अगर गरीब को मिटाना है तो फ्लोरिंग का रास्ता है। तय कर दो कि इससे कम नहीं कमा सकते। मैं मानता हूं फ्लोरिंग की जरूरत है, सीलिंग की कोई जरूरत नहीं है। जमीन नीचे की तय करो कि इससे नीचे किसी को न कमाने देंगे। पूरा मुल्क मेहनत करेगा कि हम हर आदमी को उससे नीचे नहीं कमाने देंगे, इससे ज्यादा तो कमाना ही पड़ेगा। सारा मुल्क ताकत लगायेगा कि इस आदमी को कम न कमाने दें। लेकिन हम अभी ताकत लगा रहे हैं कि सीलिंग कर दें। कि कुछ आदमी अगर ज्यादा कमा रहे हैं तो उनकी सीमा बांध दें कि इससे ज्यादा तुम नहीं कमा सकोगे।

यह अमीर को मिटा कर गरीबी हटाने का ख्याल है। फ्लोरिंग नीचे से हम तय करेंगे—सौ रुपया, दो सौ रुपया कुछ भी। इस सीमा के नीचे हम किसी को नहीं कमाने देंगे। और मैं मानता हूं कि अगर हम फ्लोरिंग तय करें तो अमीर का सहयोग मिल सकता है। और अगर हम सीलिंग तय करें तो अमीर से सिर्फ संघर्ष हो सकता है, और कोई उपाय नहीं है।

पूंजीवाद द्वन्द्व की भाषा में सोचने से बहुत मुश्किल में पड़ गया है। उसे सहयोग की भाषा में सोचना पड़े। जो जिन्दगी का मूल स्वर है उसमें सोचना पड़े। इस सहयोग के सम्बन्ध में एक-दो बात और आपसे कहना चाहूंगा। चूंकि हम सदा से ही लड़ने की भाषा से घिरे हुए होते हैं, इसलिए हमें सहयोग दिखायी नहीं पड़ता जीवन में, अन्यथा सारा जगत् सहयोग से ही विकास करता रहा है। अब तक का सारा विकास सहयोग का विकास है। और ऐसा भी नहीं कि गुलाम और उसके मालिक के बीच सहयोग नहीं था। अगर सहयोग न होता तो गुलामी और उसके बीच की मालकियत टूट गयी होती। उसके एक इंच आगे चलने की गुंजाइश नहीं हो सकती थी। नहीं, सहयोग था।

आज हमें लगता है कि गुलाम और मालिक कैसी बुरी बात है। लेकिन आपको पता नहीं कि जिस दिन गुलाम और मालिक दुनिया में पैदा हुए उस

दिन बहुत करुणापूर्ण व्यवस्था थी, बहुत कम्पेसनेट व्यवस्था थी। इसको थोड़ा समझना जरूरी है। आज हमें लगता है कि गुलामी कितनी बुरी चीज थी कि आदमी बाजार में बिकता था लेकिन जिस दिन आदमी बाजार में बिका था यह बहुत विकसित अवस्था थी उस दिन के लिए। आज पीछे लौटकर देखने पर लगती है बहुत पिछड़ी हुई व्यवस्था थी।

आदमी किस दिन गुलाम बना? गुलामी के पहले जो भी कबीला किसी दूसरे कबीले पर हमला करता था तो उस हमले में सब पुरुषों को काट डालता था। स्त्रियों को बचा लेता था, क्योंकि स्त्रियां कबीलों को बढ़ाने में सहयोगी होती थीं। अगर दस स्त्रियां हों और एक पुरुष हो तो भी बच्चे दस पैदा हो सकते हैं। और दस पुरुष और एक ही स्त्री हो तो एक ही बच्चा पैदा हो सकता है। तो दूसरे कबीले के पुरुषों को मार डाला जाता था, स्त्रियां बचा ली जाती थीं, वह सहज व्यवस्था थी।

जिन लोगों ने पहली दफा आदमी को गुलामी दी उनमें बड़ी दया थी, उन्होंने कहा कि हम मारेंगे नहीं, हम तुम्हें गुलाम बना देंगे। जिस दिन गुलामी आयी, उस दिन बड़ी कम्पेसनेट, बड़ी करुणापूर्ण व्यवस्था थी। और गुलाम खुशी से राजी हुआ करते थे कि विकल्प दो ही थे। या तो वह काट डाला जाये या तो वह झुक जाये। और दो तरह के आदमी थे, एक वे जो काट डालने की तैयारी दिखला रहे थे और दूसरे जो थोड़े दयावान थे कि हम तुम्हें बचा लेंगे, वह गुलाम और मालिक के बीच सहयोग से शुरू हुई थी।

एक सीमा पर जाकर बेकार हो गयी, कोई गुलामों की बगावतें नहीं हुई दुनिया में कि गुलामों की बगावतें हुई हों और गुलामों ने कोई आन्दोलन में कोई क्रांतियां की हों और मालिकों ने उन्हें मुक्त किया हो। यह झूठी है बात। गुलामों की कोई बगावत नहीं हुई थी। लेकिन एक वक्त आया कि मालिक के लिए गुलाम रखना मंहगा पड़ने लगा। चौबीस घण्टे उसे खिलाना भी पड़ता, उसको मकान भी देना पड़ता, कपड़ा भी देना पड़ता, बीमार हो तो दवा भी करनी पड़ती, मर जाता तो नुकसान भी उठाना पड़ता। स्वभावतः उसने उसे मुक्त कर दिया। उसने कहा छः घण्टे हमें काम दे दो और उसके दाम ले लो।

गुलाम के लिए आजादी मिली और मालिक को सुविधा मिली। वह भी एक सहयोग था। उसमें कोई बगावत और क्रांति नहीं हो गयी थी। ठीक ऐसे ही पूंजीवाद जिस दिन पूरी तरह विकसित हो जायेगा, उस दिन मजदूर को नौकरी पर रखना मंहगा पड़ने लगेगा। मजदूर को भागीदार बनाना ही सस्ता पड़ेगा। असल में पूंजीवाद अगर ठीक से विकसित हो जाये तो मजदूर को नौकर रखने में बहुत नुकसान है। क्योंकि जब तक मजदूर नौकर है तब तक वह अपने स्वार्थ के लिए काम नहीं कर रहा है फैक्ट्री में। तब तक वह किसी दूसरे के स्वार्थ के लिए

काम कर रहा है जो कि मनुष्य के स्वभाव के विपरीत है। उसका स्वार्थ तो पैसा लेने में है। फैक्ट्री से कोई मतलब नहीं है, आग लग जाये तो उससे मतलब नहीं है, फैक्ट्री बन्द पड़ जाये तो उसे मतलब नहीं। उसे मतलब है कि उसको कितनी तनख्वाह मिलती है। उसे कितने काम का पैसा मिलता है। फैक्ट्री में कम काम हो कि ज्यादा काम हो, उत्पादन हो कि न हो, हानि हो या लाभ हो, उत्पादन हो या न हो, इससे उसको कोई मतलब नहीं है, क्योंकि फैक्ट्री उसकी नहीं है।

जैसे-जैसे पूंजीवाद विकसित होगा, यह स्वाभाविक परिणाम होगा कि मजदूर को मजदूर रखना मंहगा पड़ेगा। उसकी कुशलता बढ़ाने के लिए उसको शेयर बना लेना, उसको भागीदार बनाना ही सरल है। और जिस दिन मजदूर पूंजीपति का भागीदार हो जायेगा उस दिन जिसे मैं समाजवाद कहूं वह फलित होगा। और जिसे अब तक समाजवाद कहा जा रहा है वह समाजवाद नहीं है। मैं जिसे समाजवाद कहता हूं वह सहयोग से फलित होगा। और सहयोग रोज-रोज सुविधापूर्ण होता जा सकता है अगर हम समझपूर्वक चलें। नहीं तो सहयोग असम्भव हो जायेगा। आज असम्भव हो गया है। आज हड़ताल है, स्ट्राइक है, घेराव है। और जो मजदूर यह सोच रहा है कि इस भांति हम पूंजीवाद से लड़ रहे हैं उसे यह पता नहीं कि इस भांति वह अपनी गरीबी को बढ़ा रहा है। क्योंकि मुल्क रोज गरीब होता जा रहा है, मुल्क का रोज उत्पादन गिरता है और उसे जो भड़का रहे हैं वह समझते हैं कि उसके हित में काम कर रहे हैं। वे उसके हित में काम नहीं कर रहे हैं। वे अपने हित में काम कर रहे हैं। जितना मजदूर मुश्किल में पड़ें उतना ज्यादा भड़काया जायेगा। जितना ज्यादा भड़काया जायेगा उतनी ज्यादा मुश्किल में पड़ेगा। जितनी ज्यादा मुश्किल में पड़ेगा उतना ज्यादा भड़काया जा सकता है। अन्ततः बगावत और आग लगवाई जा सकती है पूरे मुल्क में।

नहीं, मजदूर नहीं पहुंच जायेगा ताकत में। मजदूर पूंजीवादी व्यवस्था को नष्ट करके किन्हीं और लोगों को ताकत में पहुंचा देगा, जो उसके नेता हैं।

न तो रूस में मजदूर ताकत में पहुंच गया है, न चीन में ताकत में पहुंच गया है, न दुनिया में कहीं ताकत में पहुंच सकता है। अगर मजदूर ताकत में ही पहुंच सकता होता तो वह पूंजीपति ही हो गया होता।

हां, इतना ही फर्क पड़ सकता है कि वह मालिक बदल ले। गुलामी बदल ले, इतना फर्क पड़ सकता है और ध्यान रहे पूंजीपति के तो यह हित में है कि मजदूर उसे सहयोग दें। क्योंकि सहयोग को जबर्दस्ती मजदूर पर पूंजीपति थोप नहीं सकता। परसुएड कर सकता है, फुसला सकता है। अगर सारे मजदूर इन्कार कर दें कि हम काम नहीं करना चाहते, तो पूंजीपति के पास कोई बन्दूक नहीं है कि आपकी छाती पर बन्दूक रख दें। पूंजीपति को परसुएड करना पड़ता है कि आप काम करने को राजी हो जायें और मैं इतना पैसा देने को राजी हूं। यह

सीधा सौदा है।

लेकिन, एक बार समाजवादी राज्य पैदा हो जाये तो फिर सौदे का कोई सवाल नहीं है। हम सीधे बिके हुए गुलाम हैं, काम करना पड़ेगा अन्यथा मौत। फिर कोई सौदा नहीं है।

कभी आपने सुना कि रूस में कोई स्ट्राइक हुई हो, कोई हड़ताल हुई हो। क्या रूस में किसी को कोई तकलीफ नहीं है? कोई घेराव नहीं होता। नहीं, कोई स्वर्ग नहीं आ गया है। लेकिन घेराव का कोई उपाय नहीं रह गया है, हड़ताल का कोई मामला नहीं रह गया है। हड़ताल किसके खिलाफ करियेगा? जो हड़ताल, जिनके खिलाफ आपको करनी है वही राज्य है, वही मालिक है, दोनों एक हैं।

अगर आज एक पूंजीपति नुकसान पहुंचाता है मजदूरों को तो मजदूर सरकार से अपील कर सकते हैं। क्योंकि एक दूसरी एजेन्सी है न्याय की, एक दूसरी व्यवस्था है। वह मालिक और मजदूर से अलग है। और जो यह बात कर सकती है कि मजदूर के साथ अन्याय हुआ जो नहीं होना चाहिए, लेकिन एक बार राज्य और मालिक एक हो गया तो फिर अन्याय का प्रतिकार का भी कोई उपाय नहीं है, फिर अन्याय ही न्याय है। क्योंकि चुनाव का कोई उपाय नहीं रह जाता।

मुझसे एक मित्र ने पूछा है कि समाजवादी बड़ी न्यायपूर्ण व्यवस्था है, आप उसका विरोध कर रहे हैं।

मैं आपसे कहता हूं कि समाजवाद में न्याय का कोई उपाय नहीं है। न्याय मांगियेगा किससे। वहां चोर और पुलिस वाला एक ही है। और कोई उपाय ही नहीं है। वह जो रात में आप के घर सेंध लगाता है, वही सुबह आपके घर के काम में पहरा देता है। कोई उपाय नहीं है।

समाजवाद सबसे अन्यायपूर्ण व्यवस्था है। जस्टिस की मांग समाजवाद में की ही नहीं जा सकती। किससे मांग करियेगा? कौन मांग करेगा। कोई उपाय नहीं है।

मैं नहीं कहता कि समाजवाद न्यायपूर्ण व्यवस्था है। राज्य तभी तक न्याय कर सकता है जब तक राज्य स्वयं के स्वार्थों से बंध न जाये, स्वार्थों के बाहर हो। मजदूर और अमीर के स्वार्थ के बाहर हो। राज्य एक मुक्त व्यवस्था हो, जिसका आर्थिक जगत से अपना कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। तब, तब आसान है, नहीं तो बहुत कठिनाई है।

मैं मानता हूं कि पूंजीवाद बहुत न्यायपूर्ण व्यवस्था है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि जैसा पूंजीवाद है उसको न्यायपूर्ण सिद्ध कर रहा हूं। इसका यह मतलब नहीं है। अगर वह न्यायपूर्ण नहीं है तो उसका मतलब है वह अभी ठीक से पूंजीवाद ही नहीं है। अभी जो पूंजीवाद हमारे मुल्क में है वह पूंजीवाद

भी कहां है ? अगर तकलीफें हैं तो वह पूंजीवाद की तकलीफें नहीं हैं, पूंजीवाद के अविकसित रूप की तकलीफें हैं। जैसे छोटा बच्चा चलता है और गिर-गिर पड़ता है। यह पैरों की गलती नहीं है कि पैर काट दो, क्योंकि पैरों से बच्चा गिरता है। निश्चित ही पैरों से गिरता है बच्चा, जब गिरता है तो। लेकिन जब चलेगा तब भी परों से ही चलेगा। पैरों से नहीं गिर रहा है, पैर कमजोर हैं और बच्चे के हैं। अभी चलने योग्य ताकतवर नहीं हो पाये हैं।

इस मुल्क में जो पूंजीवाद की तकलीफ है वह कमजोर पूंजीवाद है, बच्चा है बिल्कुल और उस बच्चे की हत्या की तैयारी चल रही है।

अमरीका में समाजवाद का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि पूंजीवाद सबल है। सिर्फ गरीब मुल्कों में समाजवाद का प्रभाव पड़ता है। क्योंकि वहां पूंजीवाद बिल्कुल निर्बल है। उसकी निर्बलता को वे पूंजीवाद का दोष बतलाते हैं। वह पूंजीवाद का दोष नहीं है। अमरीका में नहीं दिक्कत होती। अमरीका में समाजवाद का कोई प्रभाव नहीं मालूम पड़ता। बढ़ना तो चाहिए अमरीका में प्रभाव बहुत, क्योंकि अमरीका सबसे ज्यादा पूंजीवादी है। लेकिन वहां कोई प्रभाव नहीं मालूम पड़ता।

कारण है इसका—पूंजीवाद सबल है। और उसने धीरे-धीरे अपनी असंगतियां दूर कर दी हैं। और जो असंगतियां रह गयी हैं वह उन्हें दूर कर सकता है। अगर सहयोग की धारणा विकसित हो जाये (कन्सेप्ट ऑफ कोआपरेशन) अगर एक बार हमारे ख्याल में ठीक से बैठ जाये कि सहयोग के अतिरिक्त देश का कोई भविष्य नहीं है। सहयोग के अतिरिक्त समाज का कोई भविष्य नहीं है। तो पूंजीवाद ठीक से विकसित हो सकता है। और उसमें जो खामियां हैं, उन खामियों को पूंजीवाद को बिना मिटाए खत्म किया जा सकता है। उसकी खामियां क्या हैं ?

अब एक मित्र ने पूछा है कि आपके अच्छे-अच्छे विचारों से गरीबों को रोटी तो न मिल जायेगी।

यह मैंने कब कहा कि मेरे अच्छे विचारों से गरीबों को रोटी मिल जायेगी। लेकिन गरीब को रोटी मिले इसके लिए मैं ही जिम्मेवार हूं, गरीब जिम्मेवार नहीं है ? यह मैंने कोई ठेका लिया है कि मेरे कहने से गरीब को रोटी मिले ?

कुछ ऐसा मान लिया गया है कि गरीब को मिलना चाहिए और किसी को देना चाहिए। क्यों किसी को देना चाहिए ? यह ठेका है किसी का कि कोई दे। पेट तो गरीब का अपना है, रोटी मेरे विचार से मिले। पेट किससे लेता है गरीब, किससे मांग कर लाता है पेट को ? जब पेट उसके पास है, हाथ उसके पास हैं तो वह कुछ करे। हां, इतना हो सकता है कि हम समाज से मांग करें कि उसे करने की सुविधा हो। वह कुछ करना चाहे तो हम सुविधाएं जुटाएं।

लेकिन हम सुविधाएं तोड़ने में लगे हैं। जो थोड़ी बहुत सुविधाएं हैं उनको भी तोड़ने में लगे हैं।

जब से बंगाल में कम्युनिस्टों का प्रभाव हुआ है तो बंगाल का सारा उत्पादन गिर गया है। बड़े मजे की बात है कि मेरे विचार से रोटी नहीं मिलेगी, तो माओ के पेम्फलेट से रोटी मिल जायेगी ? मेरे विचार से रोटी नहीं मिलेगी तो मार्क्स की केपिटल से रोटी मिल जायेगी ?

मेरे विचार से रोटी नहीं मिलेगी तो हड़ताल से, घेराव से और दंगा-फसाद से रोटी मिल जायेगी ? और ट्रामें जलाने से रोटी मिल जायेगी ? थोड़ी-बहुत जो रोटी मिलती है, वह भी खो जायेगी।

हां, गरीबी और हो जाये तो समाजवादी नेता के लिए बड़ा फायदा है। असल में गरीबी बढ़े तो समाजवाद के लिए फसल काटने का मौका कम हो जाता है। यह बड़े मजे की बात है—हमारी जिन्दगी में बड़े विपरीत काम चलते हैं। अगर अनैतिकता बढ़े तो महात्मा बड़ा प्रसन्न होता है, क्योंकि उसे उपदेश देने का मौका बढ़ता है। अगर सब लोग नैतिक हो जायें तो महात्मा आउट ऑफ प्रोफेशन, धन्धे के बाहर हो जाये। इसका कोई उपाय नहीं है।

इसलिए महात्मा कभी नहीं चाहेगा गहरे में कि सब लोग नैतिक हो जायें। कहें कितना, समझाएं कितना, लेकिन देखता रहेगा कि कहीं सब तो नहीं हुए जा रहे हैं। अगर सब हो जायें तो महात्मा बेमानी है।

समाजवादी चिल्लाएगा बहुत कि गरीब की गरीबी मिटनी चाहिए। हालांकि उसे यह पक्का पता है कि गरीब गरीब है इसलिए वह नेता है। जिस दिन गरीब गरीब नहीं है उसके नेता का कोई आधार नहीं रह जायेगा। इसलिए समाजवादी चिल्लाएगा कि गरीबी मिटाओ और कोशिश करेगा गरीबी बढ़ाने की और गरीबी बढ़ाएगा। जितनी गरीबी बढ़ेगी उतना नेतृत्व मजबूत होगा। जितनी गरीबी बढ़ेंगी उतने नेता के आपको पैर पकड़ने पड़ेंगे। और धीरे-धीरे यह सिद्ध कर देगा कि हमारे सिवाय तुम्हारी गरीबी कोई नहीं मिटा सकता।

और मजा यह है कि वह खुद गरीबी बढ़ाने में सहयोगी है। दावा कर रहा है वह कि पूंजीपति गरीबी बढ़ा रहा है, और मैं आपसे कह रहा हूं कि हिन्दुस्तान के सब समाजवादी मिल कर हिन्दुस्तान की गरीबी बढ़ा रहे हैं।

अगर ये जितने भी समाजवाद की बातें कर रहे हैं इतने समाजवादी पूंजी के उत्पादन की फिकर करें तो यह गरीबी टूट सकती है, लेकिन वह समाजवादी के हित में नहीं है।

और भी एक सोचने जैसी बात है कि समाजवाद की सारी बातचीत गरीब की तरफ से नहीं आती। यह सारी समाजवाद की बातचीत जो है, फ्रस्ट्रेटेस्ड इन्टेलिजेन्सिया की तरफ से की जाती है।

यह बहुत ज्यादा संत्रस्त जो बुद्धिवादी हैं उनकी तरफ से आती है । गरीब की तरफ से नहीं आती ।

एन्जिल्स खुद एक पूंजीपति था । और मार्क्स पूरी जिन्दगी किसी तरह का कोई श्रम किये हों, या मजदूर रहे हों, या कोई प्रोलिटिरिएट हों ऐसा कोई भी नहीं कह सकेगा । एन्जिल्स पूंजीपति था, उद्योगपति था, उसके ही पैसे से मार्क्स जिन्दगी पर पला है । एक पूंजीपति के पैसे से ही पला है । लेकिन मार्क्स एक विचारशील व्यक्ति है । कहना चाहिए मार्क्स एक ब्राह्मण है ।

दुनिया में जितने उपद्रव आते हैं वे सब ब्राह्मणों की तरफ से ही आते हैं । उसका कारण है । हिन्दुस्तान में नहीं आये, उसका भी कारण है । हिन्दुस्तान ने एक बहुत सिक्रेट तरकीब आज से पांच हजार साल पहले खोज निकाली थी और वह यह थी कि ब्राह्मणों को समाज का सिर-मौर बना दिया । कह दिया था कि ब्राह्मण सबके ऊपर, क्षत्रिय भी उसके पैर छुएगा । और सम्राट् भी उसके झोंपड़े पर पैर छूने आयेगा । तो हिन्दुस्तान का ब्राह्मण गरीब रहा, सदा गरीब रहा । ब्राह्मण के पास हिन्दुस्तान में कभी सम्पत्ति नहीं रही । लेकिन उसकी गरीबी में भी उसकी अकड़ का कोई मुकाबला नहीं था । क्योंकि सम्राट् भी उसके पैर छू रहे थे ।

हिन्दुस्तान का ब्राह्मण तृप्त था, फ्रस्ट्रेटेड नहीं था । क्योंकि हिन्दुस्तान के ब्राह्मणों को जितना आदर चाहिए उतना आदर उपलब्ध था । गरीबी सही जा सकती है ।

जो बुद्धिवादी हैं, इन्टेलिजेन्सिया हैं, वह गरीबी सह सकती है तकलीफें सह सकती है, बीमारी सह सकती है । अहंकार की तृप्ति होनी चाहिए । यह अहंकार के लिए खिलाफत नहीं सह सकते । हिन्दुस्तान बहुत होशियार है इस मामले में । सोशल मैक्निक्स के मामले में हिन्दुस्तान ने बड़ी होशियारी का काम किया जो पृथ्वी पर रूस ने अब किया है, और किसी मुल्क ने कभी नहीं किया । हिन्दुस्तान ने उस आदमी से, जो उपद्रव करवा सकता है, उसको सबसे ज्यादा आदर दे दिया है । जैसे स्कूल में शिक्षक होशियार होता है तो सबसे शैतान लड़के को मॉनीटर बना देता है ।

ब्राह्मण श्रेष्ठतम है । भीख मांगता रहे ब्राह्मण, लेकिन उसके पैर पर सम्राट् भी झुकता था, ब्राह्मण तृप्त था । उसकी कोई कठिनाई नहीं रही । इसलिए हिन्दुस्तान में कोई क्रांति न हो सकी । क्योंकि क्रांति करवाए कौन, शूद्र ? शूद्र क्या क्रांति करेगा ? शूद्र यानि प्रोलिटेरियट । शूद्र यानी सर्वहारा, शूद्र यानी मजदूर, शूद्र यानी शोषित, जिसको आज हम ये सब नाम दे रहे हैं ।

वह शूद्र कभी क्रांति का एक स्वर नहीं उठा पाया । पांच हजार साल के लम्बे इतिहास में । भारत में करोड़ों शूद्रों में से एक ने भी उपद्रव नहीं किया । तो बात

सोचने जैसी है कि बात क्या थी ? भड़काने वाला ब्राह्मण तृप्त था ।

अंग्रेजों ने आकर पहली दफा ब्राह्मण को तृप्त नहीं किया, और खतरे शुरू हो गये । अगर अंग्रेज मनु महाराज की तरकीब समझ जाते तो हिन्दुस्तान में कोई क्रांति नहीं हो सकती थी, ब्रिटिश साम्राज्य सदा रहता । हिन्दुस्तान के ब्राह्मणों को अंग्रेज तृप्त नहीं कर पाये । और जो नये ब्राह्मण अंग्रेज ने पैदा कर दिये कालेज, स्कूल इन सबकी शिक्षा से । अंग्रेज ने नया इन्टेलिजेन्सिया पैदा किया । जो बुद्धिमान है, विचार कर सकता है, लेकिन न श्रम कर सकता है, न उसके पास पूंजी है । न वह मजदूर है, न वह पूंजीपति है । या तो स्कूल का शिक्षक है या दफ्तर का क्लर्क है या कोई कालेज का प्रोफेसर है या किसी अखबार में सम्पादक है या पत्रकार, वह गरीब नहीं है । मजदूर नहीं है, मजदूर के अर्थ में । और पूंजी-पति नहीं है, पूंजी उसके पास नहीं है । महत्त्वाकांक्षा उसके पास पूंजीपति से ऊपर होने की, पर हालत उसकी मजदूर से नीचे होने की ।

यह आदमी उपद्रवी है । यह सारे समाजवाद की बातें करेगा, कम्युनिज्म की बातें करेगा, ये सारी दुनिया में । लेकिन रूस ने पचास सालों में उसी ट्रिक का उपयोग किया जो हिन्दुस्तान में वर्ण व्यवस्था ने किया था । रूस ने उन्नीस सौ सत्तर के बाद से रूस की इन्टेलिजेन्सिया को सर्वाधिक आदर का पात्र बना दिया । रूस में एक मिनिस्टर होने से ज्यादा एक एकेडेमेशियन होना महत्त्वपूर्ण हो गया ।

रूस में ब्राह्मण बुद्धिवादी आज सर्वाधिक आदरित व्यक्ति हैं । मजदूर में क्रांति का भाव नहीं रहा । मजदूर जाये भाड़ में, बुद्धिवादी को उससे कोई मतलब नहीं है कभी । लेकिन बुद्धिवादी की अगर महत्त्वाकांक्षा तृप्त हो जाये तो दुनिया में कोई क्रांति, क्रांति की कोई बात भी नहीं करता ।

हिन्दुस्तान की तकलीफ असल में गरीब और अमीर के बीच का संघर्ष नहीं है । हिन्दुस्तान की तकलीफ हिन्दुस्तान की फस्ट्रीएटेड इन्टेलिजेन्सिया का है । हिन्दुस्तान का अतृप्त ब्राह्मण है । और हिन्दुस्तान का ब्राह्मण सर्वाधिक अतृप्त है, क्योंकि पांच हजार साल के शानदार जमाने उसने देखे हैं, इसलिए वह सर्वाधिक अतृप्त है । उससे अधिक अतृप्त ब्राह्मण दुनिया में कोई नहीं हो सकता ।

स्वभावतः बुद्धिवादी उपद्रव खड़े करेगा । और बुद्धिवादी उपद्रव के अतिरिक्त और कुछ बहुत ज्यादा खड़ा कर भी नहीं सकता । बगावती बातें कर सकता है । ये उसके अपने भीतरी तनाव हैं जो वह प्रकट कर रहा है । यह उसकी भीतरी परेशानियां हैं, जो वह समाज में फैला रहा है । इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूं कि यह समाजवाद की सारी बातचीत दो तलों से पैदा हो रही है । एक तो हिन्दुस्तान का अतृप्त, परेशान, संत्रस्त बुद्धिवादी । और दूसरा हिन्दुस्तान का महत्त्वाकांक्षी राजनैतिक। ये दो आदमी बात कर रहे हैं। इन दोनों के पास हिन्दुस्तान के आर्थिक विकास की न कोई कामना है और न कोई सवाल है । इन दोनों के

पास हिन्दुस्तान के भविष्य का न कोई नक्शा है, न कोई सपना है। इन दोनों के पास इस स्थिति का, मौजूद स्थिति का शोषण है।

मैं आपसे कहूंगा कि बुद्धिवादी मुल्क की, तनावग्रस्त स्थिति का शोषण करता है। वह लड़ नहीं सकता, क्योंकि खुद ही लड़ सकता तो बात ही और हो जाये, वह भी सर्वहारा हो जाये। लेकिन किसी को लड़ा सकता है। और जिस दिन क्रांति सफल हो जाये, समाजवादी क्रांति, उस दिन मजदूर ताकत में नहीं पहुंचता। उस दिन बुद्धिवादी ताकत में पहुंच जाता है। स्टालिन से ज्यादा स्कॉलॉस्टिक शास्त्रीय आदमी खोजना मुश्किल है। जितना स्टालिन स्क्रिप्चर उद्धृत कर सकता है उतना कोई आदमी कम ही कर सकता है। अगर स्टालिन की किताब देखें तो वह सिर्फ उद्धरण है। मार्क्स, लेनिन और एंजिल्स इसके उद्धरण हैं।

स्टालिन पक्का ब्राह्मण है। अगर स्टालिन से बचता तो ट्राटस्की के हाथ में जाता जो महाब्राह्मण था। जो उससे भी ज्यादा स्कालॉस्टिक था। कौन मजदूर ताकत में आ गया है ? दुनिया में कौन मजदूर ताकत में आ गया है ? माओ पक्का ब्राह्मण है। शास्त्र की भाषा है सब पूरी। पेकिंग में और क्रेमलिन में जो झगड़ा है वह मक्का और काशी जैसा झगड़ा है। दो तीर्थस्थान लड़ रहे हैं शास्त्र की व्याख्या के लिए, कि शास्त्र की व्याख्या क्या है ! माओ का दावा है, जो हमारी व्याख्या है वही शास्त्रीय है। और मास्को का दावा है तुम्हारी शास्त्रीय कैसे हो सकती है जबकि हमारा क्रेमलिन बहुत अनादि है। बहुत सनातन है, तुम तो पीछे आये। तुम तो अभी बच्चे हो, हम तो बड़े अनुभवी हैं। हम जो कहते हैं, उसको मानो। तो मास्को का रुख पेट्रोनाईसिंग है। उससे माओ को तकलीफ होती है कि आप कुछ पितामह बनने की कोशिश कर रहे हैं। ऊपर हाथ रखना चाहते हैं। वही उपद्रव है।

यह दो शास्त्रों का झगड़ा है, व्याख्या का। दुनिया भर में मजदूर मजदूर ही रहेगा, मैं आपसे कहना चाहता हूं। ज्यादा-से-ज्यादा इतना हो सकता है कि वह अपना मालिक बदल ले। और मैं आपसे कहूंगा कि पूंजीपति मालिक उतने खतरनाक नहीं हैं जितना बुद्धिवादी मालिक खतरनाक सिद्ध होगा। इसके कारण हैं। अगर ब्राह्मण के चेहरे को देखें तो ब्राह्मण के चेहरे में तलवार होती है, क्षत्रिय के हाथ में होती है। ब्राह्मण के नाक में तलवार होती है ब्राह्मण की आंख में तलवार होती है। क्षत्रिय के हाथ में तलवार होती है जो कभी-कभी हाथ में रखनी पड़ती है, विश्राम भी करना पड़ता है। जो नाक में तलवार होती है उसे रखने की भी कोई जरूरत नहीं, वह चौबीस घण्टे साथ रहती है सोते में भी।

ब्राह्मण के हाथ में अगर पूरी ताकत चली जाये तो वह जितना क्रूर, जितना हिंसक हो सकता है, उतना दुनिया में कोई सिद्ध नहीं हो सकता है। इसलिए स्टालिन इतना क्रूर और हिंसक सिद्ध हो सका, क्योंकि वह ब्राह्मण है। माओ इतना

क्रूर और हिंसक सिद्ध हो रहा है, क्योंकि वह ब्राह्मण है।

थोड़ा सोचकर बुद्धिवादियों के हाथ में ताकत देना। असल में पूंजीपति जो है वह वैश्य है। बनिए से बहुत कठोरता की आशा नहीं की जा सकती। वैश्य के बहुत हिंसक होने की सम्भावना नहीं है, क्योंकि उसके हिंसक होने का ख्याल ही उसे कठिनाई में डाल देता है। मेरे हिसाब से पूंजीवाद वैश्यों की व्यवस्था है, समाजवाद ब्राह्मणों की व्यवस्था है। सामन्तवाद क्षत्रियों की व्यवस्था थी, और शूद्रों की व्यवस्था कभी नहीं हो सकती। बस इन तीन के बीच निरन्तर चुनाव चल रहा है। कभी क्षत्रिय हावी हो जाते हैं, वे जो लड़ सकते हैं उनका वक्त गया। कभी व्यवसायी हावी हो जाते हैं, वे जो कमा सकते हैं, धन पैदा कर सकते हैं। और कभी ब्राह्मण हावी हो सकते हैं, जो केवल सोच सकते हैं। न तलवार चला सकते हैं, न धन पैदा कर सकते हैं, सिर्फ सोच सकते हैं। और जो सोचने वाले लोग हैं उनकी कठोरता का कोई हिसाब नहीं। क्योंकि उनके मन में व्यक्ति नहीं होते हैं, तर्क होते हैं। जैसे कि मिलिट्री में होता है एक आदमी मर जाये तो कहते हैं नम्बर नौ गिर गया। यह आंकड़ा है। कोई आदमी नहीं मरता है। अब आदमी मरे तो उसकी पत्नी भी होती है, मां भी होती है, बेटा भी होता है। नम्बर नौ की कोई मां नहीं होती है। कोई मां मां नहीं होती, कोई बेटा बेटा नहीं होता है। नम्बर नौ !

तो ब्राह्मण के हाथ में अभी तक कहीं ताकत नहीं आई और पहली दफे सोशलिज्म तथा कम्युनिज्म ने ताकतें दी हैं। और ब्राह्मण की ताकत लेने में जो रास्ता बना था वह क्या था वह तलवार चला नहीं सकता था, धन वह कमा नहीं सकता था, शूद्र को वह भड़का सकता है, दीन को, गरीब को, दरिद्र को भड़का सकता है यही उसकी तलवार है, यही उसका धन है।

ब्राह्मण सारी दुनिया में हावी होने की कोशिश करते हैं। और मैं मानता हूं क्षत्रिय उतना खतरनाक नहीं है। क्षत्रिय कभी दया भी करता है। असल में यह तलवार चलाता है, तलवार के साथ-साथ उसके चित्त में दया भी पैदा होनी शुरू होती है।

यह बड़े मजे की बात है कि जैनियों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय के बेटे हैं। इनमें एक भी ब्राह्मण का बेटा नहीं है। जिन लोगों ने इस मुल्क को अहिंसा का पाठ दिया वे क्षत्रिय के बेटे हैं, ब्राह्मण के बेटे नहीं हैं और जिस आदमी ने इस मुल्क में सबसे ज्यादा हिंसा की वह है परशुराम। जिसने क्षत्रियों से खाली कर दी पूरी पृथ्वी को, वह ब्राह्मण है। थोड़ा सोचने जैसा है—यह एकदम प्रासंगिक है, अप्रासंगिक नहीं मालूम होता। यह सांयोगिक को-इन्सीडेन्टल नहीं मालूम होता।

जिस आदमी ने इस पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया, वह ब्राह्मण है।

और जिन लोगों ने दुनिया को शान्ति और अहिंसा की बात कही वे सब क्षत्रिय हैं। बुद्ध भी क्षत्रिय के बेटे हैं और जैनियों के चौबीस तीर्थंकर भी क्षत्रियों के बेटे हैं।

इन सब पच्चीस क्षत्रियों ने दुनिया को अहिंसा का ख्याल दिया। एक भी ब्राह्मण ने अहिंसा का ख्याल नहीं दिया।

तीसरी व्यवस्था है—व्यवसायी की, धनपति की, पूंजी पैदा करने वाले की। और यह पूंजी पैदा करने वाले की व्यवस्था सर्वाधिक मानवीय है कई कारणों से।

क्योंकि तलवार सबको सुख नहीं दे सकती है। लेकिन धन अन्ततः सबके सुख का आधार बन जाता है और पहली दफा वैश्यों ने, केपिटलिज्म ने दुनिया को सर्वाधिक सम्पन्नता और सुख दिया है। अब ब्राह्मण पीड़ित है। और वह ब्राह्मण कोशिश कर रहा है शूद्र को भड़काने की। लेकिन समझ लें—

मजदूर समझ ले, सर्वहारा, कि वह कभी नहीं पहुंच सकता। उस जगह नहीं पहुंच सकता इसलिए कि वह सर्वहारा इसलिए है कि वह न धन पैदा कर सकता है, न तलवार चला सकता है, न यह विचार कर सकता है। कभी तलवार के नीचे दबना पड़ता है उसे, कभी धन के नीचे दबना पड़ता है उसे, कभी विचार के नीचे दबना पड़ता है।

मेरी अपनी समझ में तीनों दबाव में धन का दबाव सर्वाधिक न्यून है।

और बहुत-से प्रश्न हैं। कल संध्या उनकी बात करना चाहूंगा।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, इससे बहुत अनुगृहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अहमदाबाद, १० अगस्त १९७०

१४—लोकशाही समाजवाद—भ्रांत धारणा

मेरे प्रिय आत्मन्, !

बहुत-से सवाल बाकी रह गये हैं और अन्तिम चर्चा होने के कारण मैं अधिकतम सवालों के सम्बन्ध में बात करना पसन्द करूंगा, इसलिए सवालों के जवाब संक्षिप्त ही हो सकेंगे।

बहुत-से मित्रों ने पूछा है कि आप समाजवाद और साम्यवाद का पर्यायवाची की तरह प्रयोग कर रहे हैं। क्या दोनों में भेद नहीं मानते हैं?

भेद मानता हूं। जैसे 'टी० बी०' के स्टेजेज होते हैं वैसा ही भेद मानता हूं। समाजवाद बीमारी की पहली स्टेज है। साम्यवाद उसकी अन्तिम स्टेज है। इधर से मरीज शुरू समाजवाद से करता है, मरता साम्यवाद में है। भेद तो है, लेकिन एक ही बीमारी की बढ़ी हुई अवस्था का भेद है। अगर कोई बुनियादी भेद नहीं है। और जो लोग समझाने की कोशिश करते हैं कि समाजवाद साम्यवाद से भिन्न चीज है वे केवल साम्यवाद के नाम पर। साम्यवाद के नाम के साथ एक बदनामी जुड़ गई है। उस बदनामी को काटने को नए नाम का प्रयोग कर रहे हैं, अन्यथा कोई फर्क नहीं है।

समाजवादी चेहरे के पीछे साम्यवादी हाथ है। एक सवाल और बहुत-से मित्रों ने पूछा है कि क्या लोकशाही समाजवाद, डेमोक्रेटिक सोशलिज्म की आप बात नहीं करेंगे, क्या वह उचित नहीं है? असल में समाजवाद और लोकशाही

में विरोध है। (कन्ट्रैडिक्शन इन टर्म्स) लोकशाही और समाजवाद का कोई सम्बन्ध नहीं। लोकशाही समाजवाद हो ही नहीं सकता ? क्यों नहीं हो सकता ? क्योंकि डेमोक्रेसी—लोकशाही का पहला नियम है कि बहुमत अल्पमत पर हावी न हो सके। अल्पमत के हितों को नुकसान न पहुंचे।

एक व्यक्ति के अल्पमत के हित को भी नुकसान नहीं पहुंचना चाहिए। वह लोकतन्त्र का आधार है पूंजीवादी, अल्पमतीय वर्ग है और पूंजीवाद को नुकसान पहुंचाना लोकशाही की हत्या करना है। लोकशाही समाजवाद का कोई अर्थ नहीं होता। समाजवाद बुनियादी रूप से वर्गीय है, इसलिए वह डेमोक्रेटिक नहीं हो सकता।

समाजवाद की मौलिक दृष्टि पूरे समाज को एक मानने की नहीं है। समाजवाद की मौलिक दृष्टि सबका उदय हो ऐसी नहीं है। समाजवाद की मौलिक दृष्टि एक वर्ग के पक्ष में दूसरे वर्ग का विनाश करने की है। इसलिए समाजवाद लोकशाही से कैसे सम्बन्धित हो सकता है ? लोकशाही मनुष्य के समाज को एक मानकर चलती है। मनुष्य का पूरा समाज एक है। डेमोक्रेसी समाज को वर्गों में विभाजित नहीं करती और जिस दिन आप वर्गों में विभाजित करते हैं—वे वर्ग चाहे कोई भी हों। अगर कोई कहे हमारे मुल्क में लोकशाही हिन्दुवाद का हम प्रचार करना चाहते हैं तो वह गलत होगा। क्योंकि लोकशाही हिन्दूवाद जैसी कोई चीज नहीं हो सकती, क्योंकि मुसलमान का क्या होगा ? अगर पाकिस्तान में कोई कहे कि लोकशाही इस्लाम का प्रचार कर रहे हैं तो बात गलत होगी। लोकशाही जब किसी भी वर्ग के साथ जुड़ती है तो गलत हो जाती है। लोकशाही अवर्गीय है। लोकशाही वर्गातीत है।

लोकशाही 'बियॉन्ड क्लासेस' है। चाहे धर्म का वर्ग हो, चाहे धन का वर्ग हो, चाहे शिक्षा का वर्ग हो, लोकशाही किसी वर्ग को स्वीकार नहीं करती। मनुष्य को वर्ग-मुक्त स्वीकार करती है। इसलिए लोकशाही और समाजवाद का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। डेमोक्रेटिक-सोशलिज्म सिर्फ धोखे का शब्द है।

असल में समाजवाद के साथ तानाशाही अनिवार्य रूप से जुड़ी है। अब वह तानाशाही बहुत बदनाम हो गई है। इसलिए लोकशाही शब्द का प्रयोग करना जरूरी हो गया है। लेकिन शब्दों से धोखा देना बहुत मुश्किल है। लेबिल बदल देने से आत्माएं नहीं बदल जातीं। जैसे कोई तलवार के ऊपर अहिंसावादी तलवार लिख दे तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

समाजवाद और लोकतन्त्र विरोधी धारणाएं हैं। लोकतन्त्र बुनियादी रूप से पूंजीवादी समाज व्यवस्था की आधारशिला है। और अगर समाजवाद को लाना है तो लोकशाही को मिटाना ही पड़ेगा। हां, यह हो सकता है कि कोई एक बार में न मिटाए, कोई धीरे-धीरे मिटाए, जो एक बार में मिटाते हैं उनको

लोग कम्युनिस्ट कहते हैं। जो धीरे-धीरे मिटाते हैं उनको लोग सोशलिस्ट कहते हैं। कुछ लोग होते हैं न ! कुछ लोग ऐसे बकरे को मारकर खाने को धार्मिक मानते हैं जो एक ही झटके में मार डाला जाये। और कुछ लोग एक ही झटके में मारे गये बकरे को खाना अधार्मिक मानते हैं। वह धीरे-धीरे घिस-घिस कर मारते हैं।

समाजवाद जो है वह लोकतन्त्र को घिस-घिस के मारना है और साम्यवाद जो है वह झटके से मारना है। पता नहीं परेशानी किस में ज्यादा होगी ? बकरे से अब तक पूछा नहीं गया। यह बकरा खाने वालों के निर्णय हैं कि कौन-सा ठीक रहेगा। लोकशाही समाज का कोई अर्थ नहीं है। वह शब्द ही अनर्थ है। इसलिए मैंने उसकी बात नहीं की है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा कि समाजवाद का आप विरोध करते हैं तो क्या आप समानता के विरोधी हैं ?

मैं समानता का विरोधी नहीं हूं। लेकिन समानता अमनोवैज्ञानिक तथ्य है। समानता कहीं है नहीं, वह तथ्य नहीं है। और किसी दिन हो सकती है, यह भी सम्भव नहीं है। मनुष्य अनिवार्यरूपेण असमान है। हम कितनी ही आकांक्षा करें और हम कितनी ही प्रार्थना करें और हम कितना ही उपाय करें, मनुष्य की प्रकृति असमान है। मनुष्य जन्म से असमान है। समानता कल्पना से ज्यादा नहीं है। समान दो व्यक्ति भी नहीं हैं, न हो सकते हैं। अगर हम बुद्धि की माप करें तो अब तो बुद्धि के मापने के लिए उपाय है। तो हम भली-भांति जानते हैं कि इडिएट से लेकर जीनियस तक, जड़ से लेकर मेधावी तक बड़ा अन्तर है। और आप अगर बायोलोजिस्ट से, जीवशास्त्री से पूछें तो वह कहेगा कि कोई उपाय अब तक तो नहीं है कि जड़बुद्धि को प्रतिभाशाली कैसे बनाया जाये।

जड़बुद्धि बिल्ट इन प्रोग्रेस लेकर आता है। वह जो मां के पेट में जो अणु हैं उसमें बिल्ट इन प्रोग्रेस है कि यह आदमी जड़बुद्धि होगा। जब तक हम मनुष्य के वीर्यकण में रासायनिक परिवर्तन करने में समर्थ नहीं होते तब तक हम मनुष्यता को समान नहीं बना सकते। मनुष्यता असमान रहेगी। और जिस दिन वैज्ञानिक मनुष्य के वीर्यकण में प्रवेश कर जायेगा उस दिन मनुष्यता नहीं रह जायेगी, समानता तो आ जायेगी। उस दिन मशीनें रह जायेंगी। तो दो ही विकल्प हैं—या तो असमान मनुष्य को स्वीकार करो या समान मशीनों का निर्माण करो। इसके अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है।

जिस दिन वैज्ञानिक बच्चे के अणु में प्रवेश कर जायेगा और रासायनिक फर्क कर सकेगा और यह तय कर सकेगा कि यह गोरा हो कि काला, वह लम्बा हो कि ठिगना, इसका बुद्धि-माप 'आई क्यू' कितना हो, जड़बुद्धि हो या प्रतिभाशाली हो, क्रोधी हो कि अक्रोधी हो, जिस दिन रासायनिक प्रक्रिया से व्यक्ति के अणु

बीज में अन्तर किया जा सकेगा उस दिन आदमी को आदमी कहना उचित होगा ? नहीं, वह उचित नहीं होगा । वह फैक्ट्री प्रोडक्ट हो जायेगा । कारखाने में बनी चीज हो जायेगा । तब आदमी को हम लिख सकेंगे कि 'मेड इन इंग्लैंड' कि 'मेड इन जर्मनी' कि 'मेड इन इण्डिया' । वैसे कई लोग हिन्दुस्तान में बनायेंगे लेकिन लिखेंगे मेड एज जर्मनी । एज जरा छोटा लिखेंगे ।

आदमी असमान है । यह तथ्य चाहे दुखद हो, यह तथ्य है, इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता । आदमी की असमानता इतनी गहरी है कि पूरी मनुष्यता समान हो यह तो दूर, दो आदमी भी समान नहीं खोजे जा सकते । लेकिन इसका क्या मतलब ? इसका मतलब यह नहीं है कि यह मैं यह कह रहा हूं कि प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर न मिले । नहीं, मैं यह नहीं कह रहा हूं ।

असल में समाजवाद में प्रत्येक व्यक्ति को एक समान अवसर नहीं मिल सकेगा, सिर्फ पूंजीवाद में ही मिल सकता है । इसे थोड़ा समझना जरूरी होगा । क्योंकि समाजवाद जिनके दिमाग में भर गया है, वे सोचना ही भूल गए हैं ।

फोर्ड या रॉकफेलर या मार्गन या टाटा-बिड़ला समाजवाद में पैदा नहीं हो सकेंगे । इनके लिए कोई अवसर नहीं होगा । लेकिन फोर्ड किसी मार्क्स से कम नहीं है । उसकी अपनी विशिष्टता है । धन पैदा करने की जो लोग क्षमता लेकर पैदा होते हैं, सभी लोग लेकर पैदा नहीं होते, जो लोग धन पैदा करने की क्षमता लेकर पैदा होते हैं उनके लिए समाजवाद में कौन-सा अवसर होगा ? इनके लिए कोई अवसर नहीं होगा । समानता के अवसर की बात बड़ी बेमानी मालूम पड़ती है ।

समाजवाद में विद्रोही व्यक्तित्व के लिए कौन-सा अवसर होगा ? अगर मार्क्स सोवियत रूस में पैदा होना चाहे तो नहीं हो सकता । नहीं तो पचास साल में सोवियत रूस ने एकाध तो मार्क्स पैदा किया होता । पूंजीवादी मुल्क ने मार्क्स पैदा किया, पूंजीवादी मुल्क ने लेनिन पैदा किया, पूंजीवादी मुल्क ने स्टालिन पैदा किया, पूंजीवादी मुल्क ने ट्राटस्की पैदा किया, पूंजीवादी मुल्क ने दुनिया के सब समाज-वादी पैदा किये । पचास साल के समाजवादी रूस ने मार्क्स की या लेनिन की या ट्राटस्की की हैसियत का एक आदमी पैदा किया ? यह बड़े मजे की बात है । पचास साल में रूस में तो पचासों मार्क्स की हैसियत के आदमी पैदा होने चाहिए । लेकिन मार्क्स भी रूस में पैदा नहीं हो सकता । तो उसका कारण विद्रोही व्यक्तित्व के लिए रूस में कोई अवसर नहीं है । यह जो रिबेलियस माइण्ड है उसके लिए कोई अवसर नहीं है ।

रूस में बुद्ध भी पैदा नहीं हो सकते, महावीर भी पैदा नहीं हो सकते, कृष्ण भी पैदा नहीं हो सकते । लेकिन लोग कहते हैं समाज सबको समान अवसर देगा, मुझे नहीं दिखाई पड़ता । यह सोचने जैसी बात है कि उन्नीस सौ सत्रह के

पहले के रूस ने बड़े अद्भुत लोग पैदा किए, अनेक दिशाओं में । कुछ दिशाओं में रूस हावी हो गया—दोस्तोवस्की या तुर्गनेव या चेखोव या गोर्की या गोगोल । सारे के सारे, टॉलस्टाय, ये सारे प्रतिभा के ये धनी लोग उन्नीस सौ सत्रह के पहले पैदा हुए । और ऐसी स्थिति हो गई उन्नीस सौ सत्रह में अगर दुनिया में लिखी गई दस किताबों का नाम लेना पड़े तो कम से कम पांच रूसी किताबों का नाम लेना पड़े—पांच सारी दुनिया की और पांच रूस की । लेकिन उन्नीस सौ सत्रह के बाद दोस्तोवस्की, तुर्गनेव, गोर्की, टॉलस्टाय, गोगोल की हैसियत का एक आदमी भी रूस नहीं पैदा कर सका । उसका कारण है । क्योंकि प्रतिभा सदा ही विद्रोही होती है । सिर्फ जड़बुद्धि विद्रोही नहीं होते । अगर हम इडिएटस् का एक समाज बना सकें तो वह कोई विद्रोही नहीं होगा । प्रतिभा सदा विद्रोही होती है । लेकिन विद्रोह का कोई मौका समाजवाद में नहीं है । क्योंकि स्वतन्त्र विचार का कोई मौका समाजवाद में नहीं है ।

पचास वर्षों में रूस में कोई बड़ी इंटेलेक्चुअल कन्ट्रोवर्सी नहीं हुई । कोई बड़ा बौद्धिक विवाद नहीं चला । क्योंकि रूस पचास साल से बौद्धिक विवाद का उत्तर तलवार से देता है, बन्दूक से देता है । बौद्धिक विवाद कैसे चलता ?

मैं नहीं मानता हूं कि समाजवाद सबको समान अवसर देता है । नहीं, समाज-वाद सबको समान अवसर नहीं देता । असल में पूंजीवाद सब तरह के लोगों को—क्योंकि पूंजीवाद के पास कोई जड़-यांत्रिक व्यवस्था नहीं है, पूंजीवाद एक स्वतन्त्रता है—सब तरह के व्यक्तियों को पूंजीवाद सुविधा देता है कि वह विकसित हो सके ।

जो लोग धन पैदा करना चाहते हैं उन्हें, जो लोग धर्म का अनुभव करना चाहते हैं उन्हें, जो लोग काव्य के जगत् में प्रवेश करना चाहते हैं उन्हें, जो चित्र बनाना चाहते हैं उन्हें—पिकासो की हैसियत का एक चित्रकार भी—रूस ने पैदा नहीं किया पचास साल में । उसके कारण हैं । क्योंकि रूस की सरकार तय करती है कि चित्रकार क्या बनाये, और सरकार प्रोडक्टिव चीजों में भरोसा करती है, अनप्रोडक्टिव चीजों में नहीं ।

सरकार कहती है उत्पादन बढ़ता हो ऐसा कोई चित्र बनाओ । और उत्पा-दन बढ़ता हो, ऐसी कोई कविता लिखो । उत्पादन बढ़ता हो ऐसा कोई उपन्यास रचो ।

खेत, किसान, ट्रैक्टर यही तुम्हारे सोच-विचार के क्षेत्र हों । कहानी इनके इर्द-गिर्द घूमे । इसलिए रूस ने पचास साल में जितनी किताबें लिखी हैं उतनी बोरडम से भरी किताबें दुनिया के इतिहास में कभी नहीं लिखी गईं । क्योंकि वही खेत, वही ट्रैक्टर, वही कथा, वही उत्पादन, इसके सिवाय कुछ भी नहीं है । जैसे जिन्दगी सिर्फ खेत है, जैसे जिन्दगी ट्रैक्टर है !

पूंजीवाद सभी तरह के विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्नता का मौका देता है।

और किसी की विभिन्नता पर कोई रोक नहीं लगाता। और प्रत्येक व्यक्ति अपना मार्ग खोजने के लिए मुक्त है। लेकिन आप कहेंगे कि रास्ते में बड़ी बाधायें पड़ती हैं। हमें कोई बाधा नहीं चाहिए। आप कहेंगे कि गरीब आदमी इसी वक्त करोड़पति होना चाहता है। उसके लिए पूंजीवाद में कहां सुविधा है?

कभी पूछा कि समाजवाद में सुविधा है? नहीं, यह ख्याल में नहीं आया होगा। एक गरीब आदमी पूंजीपति होना चाहता है इसी वक्त, पूंजीवाद में कहां सुविधा है?

पूंजीवाद में सुविधा है। इसी वक्त होना तो मुश्किल है, लेकिन किसी वक्त हो सकता है। समाजवाद में किसी वक्त भी नहीं हो सकता। इस वक्त तो हो ही नहीं सकता, किसी वक्त नहीं हो सकता।

स्वभावतः एक दिन में न पूंजीपति पैदा होते हैं, न एक दिन में चित्रकार पैदा होते हैं, न एक दिन में दार्शनिक पैदा होते हैं। न तो बुद्ध पैदा होते हैं एक दिन में, न फोर्ड पैदा होता है एक दिन में, न आइन्स्टीन पैदा होते हैं एक दिन में। जिन्दगी भर की लम्बी यात्रा है। लम्बा श्रम है, लम्बी सृजनात्मक चेष्टा है। और उस चेष्टा में निश्चय ही प्रतियोगिता है। क्योंकि आप अकेले ही तो पूंजीपति नहीं होना चाह रहे हैं, पचास करोड़ के मुल्क में पचास करोड़ लोग पूंजीपति होना चाहते हैं।

नहीं, पूंजीवाद आपको नहीं रोक रहा है पूंजीपति होने से। जितनी पूंजी है वह कम है और जितने लोग पूंजीपति होना चाह रहे हैं वे बहुत हैं। इसलिए स्वभावतः सभी लोग पूंजीपति नहीं हो सकते हैं।

इस मुल्क में एक आदमी राष्ट्रपति हो सकता है, हालांकि पचास करोड़ आदमी राष्ट्रपति होना चाहते हैं। पचास करोड़ आदमी राष्ट्रपति नहीं हो सकते। और अगर पचास करोड़ को राष्ट्रपति बनाना हो तो फिर राष्ट्रपति ही नहीं होगा। जीवन एक प्रतियोगिता है। अब सवाल यह है कि प्रतियोगिता स्वतन्त्र होनी चाहिए। पूंजीवाद में स्वतन्त्र है। समाजवाद में स्वतन्त्र नहीं है।

असल में समाजवादी व्यवस्था तय करेगी कि आप क्या पढ़ें, क्या सोचें, क्या करें। निर्णायक आप नहीं होंगे।

पूंजीवाद आपको पूरा मौका देता है कि आप जो होना चाहें हों, लेकिन बहुत लोग असफल हो जाते हैं। होंगे ही। सभी लोग सफल नहीं हो सकते। जो असफल हो जाते हैं, वे सोचते हैं कि हम पर बड़ी ज्यादती हो रही है। जो असफल हो जाते हैं वे सोचते हैं जो लोग सफल हो गये चालाक, बेईमान, धोखेबाज, शोषक हैं।

बड़े मजे की बात है—अगर वे भी सफल हो गये होते तब? तो दूसरे उनके सम्बन्ध में सोचते कि चालाक, बेईमान, चोर हैं।

असल में असफल हमेशा सफल हो गये आदमी को गालियां देना पसन्द करता है। इससे उसके मन को बड़ी राहत और कोंसोलेशन मिलता है। हर्जा भी नहीं है। गाली दें तो कोई हर्जा नहीं है। लेकिन उसका वाद बनायें, तब खतरे शुरू हो जाते हैं।

अब एक मित्र ने पूछा है कि एक करोड़पति अपनी मेहनत से धन कमा लेता है। वह तो ठीक है, लेकिन उसका बेटा भी तो मालिक हो जाता है।

उसका बेटा, उसने पैदा किया है वह बेटा। उसने धन भी पैदा किया, किया, उसने बेटा भी पैदा किया है। दोनों के बीच कुछ सम्बन्ध होना चाहिए कि नहीं होना चाहिए। शायद हमारा ख्याल यह हो कि धन वह पैदा करे और बेटा हम पैदा करें, दोनों के बीच कोई सम्बन्ध हो। यह अन्यायपूर्ण दिखाई पड़ता है। पूछा इसी ढंग से गया है कि कितना बड़ा अन्याय हो रहा है। उसने कमाया था मान लिया, लेकिन उसके बेटे ने तो नहीं कमाया था। लेकिन बेटा उसका है। यह बेटा तो उसी ने कमाया है। शायद आप सोचते हों यह ज्यादा न्यायपूर्ण होगा कि धन किसी का हो और बेटा किसी का हो। नहीं, वह कैसे न्यायपूर्ण हो जाएगा? अगर यह अन्यायपूर्ण है तो दूसरी बात तो बिल्कुल अन्यायपूर्ण हो जायेगी।

गरीब एक बेटे को पैदा कर रहा है। उसे दस दफे सोचना चाहिए बेटा पैदा करते वक्त क्योंकि वह बेटे को सिवाय गरीबी के और क्या दे जायेगा? नहीं, लेकिन वह बेटा खड़ा होकर अपने बाप से शिकायत न करेगा कि तुमने मुझे क्यों पैदा किया, वह शिकायत करेगा कि वह बड़े आदमी का बेटा क्यों धन लूट रहा है। शिकायत अपने बाप से करनी चाहिए, और तो किसी से करने का कोई उपाय नहीं है। वैसे बाप से करना बेमानी है, क्योंकि बात हो ही गई है और शिकायत का कोई उत्तर नहीं है।

अगर बाप से शिकायत हो तो बेटे को पैदा करते वक्त ख्याल रखना, इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। जब अपना बेटा पैदा करने लगो तब सोचना कि बेटे को क्या दे जाऊंगा। अगर दुनिया के गरीब बेटे को पैदा करते वक्त एक दफा सोच लें कि बेटे को क्या दे जायेंगे, तो दुनिया में इतनी गरीबी न हो। लेकिन गरीब बिल्कुल बेफिक्र है। उसे बेटा पैदा करते वक्त बिल्कुल फिक्र नहीं होती।

एक सज्जन अभी कोई दो-तीन महीने हुए, मेरे पास आये। अब हम कैसी मुश्किल में पड़ते हैं। कभी-कभी मेरी बातें बिल्कुल कठोर मालूम पड़ती हैं, लेकिन मजबूरी है। क्योंकि सत्य जैसा है, वैसा है, वह कठोर भी हो सकता है। वे सज्जन आये और मुझसे कहने लगे कि मेरी कुछ सहायता कीजिए। मुझे अपनी बेटी का विवाह करना है। मैंने कहा, तुम बेटी को पैदा करते वक्त मेरे पास सहायता के लिए बिल्कुल नहीं आये। तुम बेटी पैदा करो, मेरी कोई गलती है इसमें। कितनी बेटियां हैं तुम्हारी? सात बेटियां हैं, उन्होंने कहा। सब अच्छे

आदमी सहायता कर रहे हैं। मैंने कहा, जो अब सहायता नहीं करेगा वह बुरा आदमी हो जायेगा, स्वभावतः। जब अच्छे आदमी सहायता कर रहे हैं तो मैं बुरा आदमी हो जाऊंगा, क्योंकि मैं सहायता नहीं कर रहा हूं। मेरी बात तुम्हें कठोर मालूम पड़ेगी। मैंने उन्हें कहा कि सात लड़कियां पैदा करने को तुमसे कहा किसने? इसका समाज का कोई जिम्मा है?

तुम बच्चियां पैदा करोगे और समाज दोषी ठहर जायेगा। और जो सहायता नहीं करेंगे तुम्हारी वे पापी मालूम पड़ेंगे, अपराधी मालूम पड़ेंगे। बेहूदी है बात। नहीं, हमें गरीब आदमी को साफ-साफ समझाना पड़ेगा कि तुम्हारी गरीबी के लिए तुम्हारे पिता जिम्मेवार होंगे, उनके पिता जिम्मेवार होंगे। पीढ़ियां जिम्मेवार होंगी, तुम पीढ़ियों से गरीब हो और बच्चे पैदा किये जा रहे हो। किसी ने तुमसे नहीं कहा कि तुम बच्चे पैदा करो।

असल में बच्चा पैदा करने का अधिकार भी कमाना चाहिए। लेकिन बच्चा पैदा करने का अधिकार कोई नहीं कमाता। अपने बेटे को क्या दे जाओगे, इसे जाने बिना बेटा पैदा करना अन्याय है। यह बाप का अन्याय है बेटे के ऊपर। यह मां का अन्याय है बेटे के ऊपर। लेकिन यह बड़े मजे की बात है कि यह अन्याय थोपा जायेगा किसी और पर। कौन जिम्मेवार है उसका?

हमारे मन में कुछ ख्याल ऐसा बैठ गया है कि अगर कोई दुखी है तो उसे दुख पहुंचाने के लिए कोई और जिम्मेवार होना चाहिए। वह खुद भी जिम्मेवार हो सकता है, यह हमारे ख्याल में नहीं आता। यों हम बड़े भ्रांत तर्कों में भटकते रहते हैं। अगर मैं बीमार हूं तो किसी स्वस्थ आदमी को पकड़ लूं और कहूं कि तुम जिम्मेवार हो, क्योंकि तुम स्वस्थ क्यों हो? मैं बीमार हूं। कल मैं यह कह सकता हूं कि तुम स्वस्थ थे, यह तो ठीक है, लेकिन तुम्हारा बेटा भी स्वस्थ पैदा हुआ। तुमने व्यायाम किया था, वह तो ठीक है तुम स्वस्थ थे, लेकिन तुम्हारा बेटा क्यों स्वस्थ पैदा हो गया? तो व्यायाम करने वाले बाप का बेटा स्वस्थ पैदा होगा, इसमें कौन-सी तकलीफ है? इसमें कौन-सी तर्क की भूल है? नहीं, लेकिन हम पूछते हैं और इस पूछने में बुनियादी भूल हो जाती है और इस भूल के व्यापक परिणाम होते हैं।

एक मित्र ने कहा है कि कुछ लोगों को क्या अधिकार है कि सब लोग गरीब हैं तो वे अमीर हो जायें। बड़े मजे की बात है। इसमें उल्टा पूछा जाना चाहिए कि जब कुछ लोग अमीर हैं तो इतने लोगों को क्या अधिकार है कि वे गरीब रह जायें। क्योंकि वह पूछना अर्थपूर्ण है। क्योंकि जो हम पूछेंगे उससे दिशा निकलेगी। हम पूछते हैं, इतने लोगों को क्या अधिकार है कि वे धनी हो जायें जबकि इतने लोग गरीब हैं। तो क्या मतलब है? थोड़े गरीब ज्यादा हो जायेंगे तो आनन्द आयेगा आपको। दस, पच्चीस और आदमी गरीब हो जायें तो तृप्ति मिलेगी

आपको।

जो इस तरह का सवाल है, वह सवाल यह मान कर चलता है कि सभी अगर गरीब हों तो बहुत अच्छा है। नहीं, मैं ऐसा मान कर नहीं चलता। मैं मान कर चलता हूं कि सभी अमीर हों तो बहुत अच्छा है। इसलिए सवाल को मैं दूसरी तरफ से पूछता हूं।

मैं पूछता हूं जब इतने लोग अमीर हैं तो बाकी इतने अधिक लोग गरीब रहने का क्या अधिकार रखते हैं? कोई अधिकार नहीं है गरीब होने का। असल में गरीबी अयोग्यता है। अधिकार नहीं है। सब तरह की अयोग्यता है। लेकिन उस अयोग्यता को स्वीकार करने में पीड़ा होती है। हम सभी मानते हैं कि हम सभी पात्र हैं भोगने के। लेकिन पैदा करने के लिए भी पात्रता चाहिए, उसकी हमें कोई चिन्ता नहीं है।

इस पृथ्वी पर प्रतियोगिता है यह सत्य है, होगी ही। सारा जीवन प्रतियोगिता है। लेकिन प्रतियोगिता दुखद हो जाती है, कड़वी हो जाती है जब हम दोषारोपण करना शुरू कर देते हैं दूसरों पर।

यह प्रतियोगिता सहज हो जाती है, सरल हो जाती है, सुखद हो जाती है, खेल बन जाती है—स्पोर्ट्स्‌मेनशिप हो जाती है, जब हम अपनी पात्रता को बढ़ाना और अपनी क्षमता को बढ़ाना शुरू कर देते हैं। मैं आपसे कहना चाहता हूं गरीब गरीब है क्योंकि उसके जीने का ढंग, उसके सोचने का ढंग, उसका दर्शन, उसका धर्म, उसके विचार, उसकी परम्परा, उसका परिवार, उसके पिता और उसके पिता—उसकी पूरी शृंखला गरीबी का निर्माण कर रही है।

इसे थोड़ा सोचना जरूरी है कि हम गरीबी किस तरह निर्माण करते हैं। हमारा देश है, अगर हम इसकी गरीबी की तरफ देखेंगे तो हमें पता चलेगा कि यह गरीबी बिल्कुल निर्मित गरीबी है। पहली बात तो यह है कि अमीर होने का सूत्र है आवश्यकताओं को बढ़ाओ। और गरीब होने का सूत्र है कि आवश्यकतायें कम रखना, सादे जीना। तो रहोगे गरीब ही। जो कौम यह सोचती है कि आवश्यकतायें कम होना अच्छी बात है, वह कौम कभी भी समृद्ध नहीं हो सकती है।

जो आदमी सोचता है कि आवश्यकतायें सदा कम रखनी चाहिए और पैर उतने ही फैलने चाहिए जितनी चादर है, तो ध्यान रखें पैर तो रोज-रोज बढ़ते जाते हैं, चादर को बढ़ते कभी नहीं सुना है। अपने आप चादर नहीं बढ़ती है, पैर अपने आप बढ़ते हैं। तो फिर सिकोड़ते जाना पैरों को, क्योंकि चादर जितनी है उतने ही पैर फैलाना है। फिर मरेंगे भीतर, क्योंकि चादर बहुत छोटी रह जायेगी और हम बहुत बढ़ जायेंगे। पूरे भारत के ऊपर चादर बहुत छोटी है और आदमी बहुत ज्यादा हैं। सब सद्गुरु समझा गये हैं कि आवश्यकतायें बढ़ाना मत।

अब यह सब सद्‌गुरु मिल कर हम सबको गरीब कर रहे हैं। क्योंकि जो आवश्यकतायें बढ़ायेगा वह उत्पादन बढ़ायेगा। जो आवश्यकता बढ़ायेगा वह श्रम करेगा, जो आवश्यकता बढ़ायेगा वह सृजन करेगा। अगर मैं चादर के बाहर पैर निकालूंगा तो ही चादर को बड़ा करने का ख्याल उठेगा। इसलिए जितनी चादर हो सदा उससे ज्यादा पैर पसारना, क्योंकि पैर बाहर जायेगा, ठंड लगेगी तो चादर बड़ी करनी पड़ेगी। गर्मी लगेगी तो चादर बड़ी करनी पड़ेगी। तकलीफ होगी तो चादर बड़ी करनी पड़ेगी।

गरीब आदमी का पूरा जीवन-दर्शन उसे गरीब बनाता है। और वह उसमें बड़ी खुशी अनुभव करता है, बड़ा आनन्द अनुभव करता है। हम गरीबी को पूजा दे रहे हैं। अगर कोई आदमी स्वेच्छा से गरीब हो जाये तो सारा गांव उसके चरणों में सर रखने को राजी है। कभी कोई आदमी स्वेच्छा से अमीर हो गया तो क्या गांव भर ने उसके चरणों में सर रखा है?

नहीं, कोई आदमी जब अमीर हो जाता है तो गांव भर ईर्ष्या से जल जाता है। और जब कोई आदमी स्वेच्छा से गरीब हो जाता है तो गांव भर में आनन्द छा जाता है जैसे कोई घटना घट गयी। अगर महावीर—राजा का बेटा सड़क पर भीख मांगने लगता है तो सारा गांव उसके पैर छूने लग जाता है। जरा सोचने जैसा मामला है। और अगर भिखारी का बेटा राजा हो जाये तो पूरा गांव आग से जलता है, नींद हराम हो जाती है पूरे गांव की।

इसमें थोड़ा विचार करने जैसा है। गरीब को देखकर हम इतने प्रसन्न क्यों होते हैं? गरीबों को हम इतना सम्मान क्यों देते हैं? असल में गरीबी को सम्मान देने के दो कारण हैं।

एक तो जब भी कोई अमीर गरीब हो जाता है, स्वेच्छा से, तो हमारे गरीब को बहुत अहंकार की तृप्ति मिलती है कि गरीबी बड़ी ऊंची चीज है, देखो अमीर भी गरीब हो रहे हैं। यानी हम पहले से ही उस स्थिति को उपलब्ध हैं जो उन बेचारों को करनी पड़ रही है। हम बड़े गौरवान्वित होते हैं। हम बड़े प्रसन्न होते हैं। हमारे चित्त के आह्लाद की कोई सीमा नहीं रहती। धन्यभाग्य हैं हम, भगवान् की अपरिसीम कृपा हम पर है कि हमें उसने वही बनाया जो बेचारे महावीर, बुद्ध को बनना पड़ रहा है। उनको चेष्टा करनी पड़ रही है। हम पहले से ही हैं।

लेकिन ध्यान रहे, महावीर की गरीबी, गरीबी नहीं है। महावीर की गरीबी अमीर का आखिरी कृत्य है। महावीर की गरीबी 'लास्ट लक्जरी' है जो अमीर आदमी कर सकता है। आपका सड़क पर पैदल चलना एक बात है और जब रॉकफेलर का बेटा सड़क पर पैदल चलता है तो दूसरी बात है। आप फैक्ट्री में काम करने जा रहे हैं, और वह टहलने जा रहा है। और आप के लिए कार में बैठना सम्भव नहीं है, और वह कार में बैठ-बैठकर ऊब गया है और स्वाद बदल रहा है।

अमीर का बेटा जब गरीबी को वरण करता है तो वह अमीरी के स्वाद से ऊब गया और अब वह गरीबी का रस लेना चाहता है। उसकी गरीबी स्वेच्छा से वरण की गयी गरीबी, अमीर का आखिरी विलास है—अन्तिम विलास, जो अमीर कर सकता है। और मैं मानता हूं, अमीर ही कर सकता है। गरीब तो कर ही नहीं सकता। स्वेच्छा से गरीब हो जाना आखिरी मजा है।

इसलिए आज जब अमरीका के करोड़पति का बेटा, काशी में आकर भीख मांग लेता है, तो उसके मजे का आपको पता नहीं है। जब आपका बेटा भीख मांगता है तो आपको पता नहीं कि इन दोनों में क्या बुनियादी फर्क है।

मैं काशी में था तो मुझसे एक हिप्पी मिलने आये। मैंने उनसे कहा कि तुम ये क्या पागलपन कर रहे हो? मुझे परिचय में बताया कि वे जो लड़के और लड़कियां मुझसे मिलने आये हैं वह अरबपतियों के लड़के हैं मैंने उनसे पूछा कि यह तुम क्या कर रहे हो? काशी की सड़क पर दस-दस पैसे की भीख मांगते हैं। वह कहने लगे कि हमें बड़ा आनन्द आता है। डेन्जर में जी रहे हैं, खतरे में जी रहे हैं। बड़ा मजा आता है कि पता नहीं, आज कुछ मिलेगा कि नहीं मिलेगा। ये ओवरफेड बच्चे हैं। जिनको इतना मिला है कि अब इनको न मिलने में भी मजा आ रहा है। इनके पास सब था। यह ऊब गये हैं। और ये जब सड़क पर हाथ फैला कर खड़े हैं तो इनकी जिन्दगी में एक पुलक, एक एडवेन्चर, कि यह आदमी दस पैसे देगा कि नहीं देगा—और यह दस पैसे नहीं देगा तो चाय नहीं मिलने वाली है।

अब इनका जो यह फैला हुआ हाथ है, इसका मजा बहुत दूसरा है। यह अमीर का फैला हाथ है, जो खेल में वह फैला रहा है। इस हाथ को देख कर गरीब बड़े प्रसन्न होते हैं।

इस मुल्क का गरीब आदमी, गरीबी को गौरवान्वित समझने लगा है। वह कभी विकसित नहीं हो सकता। और गरीबी को उसने स्वीकार कर लिया है जैसे कोई बहुत पुण्य का काम कर रहा है। अमीर तो अपराधी मालूम पड़ता है। पापी मालूम पड़ता है और गरीब? गरीब सन्त और साधु मालूम पड़ता है। ग्रामीण आदमी को देख कर हम ऐसे होते हैं जैसे कोई सन्त-साधु हो। बड़ा भोला है, बड़ा सीधा-सादा है। प्रशंसा हमारे मन में है। वह प्रशंसा गलत है, झूठी है। वह प्रशंसा खतरनाक है, आत्मघाती है, सुसाइडल है। और दूसरी बात गरीब को सुख मिलता है जब कोई अमीर गरीब होकर खड़ा हो जाता है सड़क पर, तो उसकी सेडिस्ट, उसकी दूसरे को दुख देने की वृत्ति को रस आता है।

जिन मुल्कों में त्याग की प्रशंसा है वह मुल्क बुनियादी रूप से सेडिस्ट है। वे मुल्क दूसरे को दुख देने में मजा ले रहे हैं। और जब कोई आदमी खुद अपने को दुख देने लगता है तब तो मजा और भी ज्यादा आता है। हमको दुख देने का

कष्ट भी नहीं उठाना पड़ रहा है, वह दुख ही दुख दे ले रहा है ।

एक आदमी लेट जाये कांटों पर तो बस हम पहुंच जाते हैं हाथ जोड़ने । अब इसको अस्पताल भेजना चाहिए, इसकी चिकित्सा होनी चाहिए । कांटों पर लेटना, यह आदमी बीमार है पैथालाजिकल है, रुग्ण है । लेकिन हम नमस्कार करते हैं कि परमहंस हो गया वह आदमी ।

असल में हम किसी को कांटे पर लिटाते तो जितना मजा आता उससे भी ज्यादा मजा इसमें आ रहा है कि यह अपने आप लेट गये हैं । हमको लिटाने की तकलीफ से भी बचा दिया । तो गरीब को सुख मिलता देख कर कि अच्छा ठीक है । कभी आपने ख्याल नहीं किया होगा । अगर कोई आदमी आपके पड़ोस में एक बड़ा मकान बना ले तो खुशी नहीं होती, कोई खुशी नहीं होती, पीड़ा होती है । लेकिन उसके मकान में आग लग जाये, तो आप सब दुख, संवेदना प्रकट करने उसके घर जाते हैं । आप कहते हैं बहुत बुरा हो गया । अब यह मैं मान नहीं सकता, क्योंकि जब यह मकान बना था तब आपके मन में ऐसा नहीं लगा था कि बहुत अच्छा हो गया । इस मकान के जलने से आपके मन में लग नहीं सकता कि बहुत बुरा हो गया । जब यह मकान बना था तब आपके मन में ईर्ष्या जगी थी । और अब आप जाकर कह रहे हैं कि बहुत बुरा हो गया तो आपकी आंख और आपके हृदय की अगर जांच-पड़ताल की जाये तो ज्ञात होगा कि भीतर से आप बड़ा रस और आनन्द ले रहे हैं । यह सहानुभूति रुग्ण है और झूठी है । लेकिन हम उस चित्त को पहचान नहीं पाते । और इस चित्त को जो सहारा मिल जाता है, उसको हम इक्ट्ठा करके जिये चले जाते हैं ।

गरीब आदमी का जीवन-दर्शन उसे गरीब बनाता है । अगर आज अमरीका अमीर है तो अमरीका के जीवन-दर्शन की बुनियाद है । अगर हिन्दुस्तान गरीब है तो हिन्दुस्तान के जीवन-दर्शन की बुनियाद है ।

आवश्यकताएं कम करने का सिद्धान्त, सिकोड़ने का सिद्धान्त समृद्धि नहीं ला सकता । इसके लिए कोई अमीर जिम्मेवार नहीं है कि मेरा मुल्क गरीब है । इसके लिए पूरा मुल्क जिम्मेवार है कि वह गरीब है । यह कुछ लोग जो कि इस बात-चीत के बाहर निकल गये हैं वे अपवाद हैं । मगर यह भी गिल्टी अनुभव करते हैं। हिन्दुस्तान में मैंने अमीर आदमी नहीं देखा अभी तक जो गिल्टी अनुभव न करता हो, जो अपने को अपराधी न मानता हो । बड़े से बड़ा अमीर, फिर वह अपने अपराध का प्रायश्चित करता रहता है । कोई मन्दिर बनवाकर करता है, कोई धर्मशाला बनवाकर करता है, कोई तीर्थ पर घाट बनवाता है, कोई अस्पताल खोलता है, कोई स्कूल खोलता है । वह जो अमीर होने की गलती उसने की है, वह जो धन कमाने की भूल उसने की है उसका वह प्रायश्चित करता है । उसका वह पश्चात्ताप करता है ।

हिन्दुस्तान का कोई अमीर मुझे नहीं मिला जो कि प्रसन्न हो इस बात से कि उसने कुछ काम किया है । और हिन्दुस्तान के गरीब की तो बात ही अलग है।

नहीं यह दृष्टि भ्रांत है । यह दृष्टि जिम्मेवार है । समाजवाद आ जाने से कुछ नहीं हो जायेगा, यह जीवन-दृष्टि बदलनी चाहिए । यह जीवनदृष्टि हटनी चाहिए, जीवन विस्तार है । जीवन जितना विस्तृत होता है, उतना प्रफुल्लित होता है । सारा जीवन विस्तार है। संकोच मृत्यु है । जीवन विस्तार है । जितना हम फैलते हैं उतना ही जीवन भीतर से खिलता और प्रफुल्लित होता है । एक छोटे-से बीज को बो दें, तो फैल कर वृक्ष बन जाता है । और एक बीज में करोड़ों अरबों बीज लग जाते हैं ।

परमात्मा का सारा का सारा आयोजन विस्तार का है । और हिन्दुस्तान के लोग गरीब आदमी, और गरीब आदमी के दर्शन के संकोच की भाषा में सोचते हैं । वे कहते हैं और कम कर लो, और कम कर लो, और कम कर लो । तो कम करने पर आप जोर देंगे तो सृजन नहीं हो सकता है ।

मैं नहीं कहता हूं कि कुछ अमीर इस मुल्क की गरीबी के लिए जिम्मेवार हैं। मैं कहता हूं इस मुल्क के गरीब, इस मुल्क की पूरी जनता अपनी गरीबी के लिए जिम्मेवार है । उसे अपनी 'फिलासफी ऑफ लाइफ' को बदलना पड़ेगा, अन्यथा वह कभी समृद्ध नहीं हो सकती ।

समृद्धि का सूत्र है आवश्यकताओं को फैलाओ । क्यों ? क्यों समृद्धि का सूत्र है कि आवश्यकताओं को फैलाओ ? जितनी आवश्यकताएं फैलती हैं उतना हमें श्रम में रत होना पड़ता है । और बड़े मजे कि बात यह है कि हमें पता ही नहीं कि हममें कितनी श्रम की क्षमता है। जब हम आवश्यकताओं को फैलाते हैं तभी हमें पता चलता है । समझ लें···

मैं आपको दौड़ने को कहूं, ऐसे ही, कि जरा दौड़ें, और कहूं कि पूरी ताकत से दौड़ें, तो भी आप कितनी ही ताकत लगायें वह पूरी ताकत नहीं होगी । फिर कल मैं एक और आदमी को आपके साथ दौड़ने को ले आऊं और कहूं कि दोनों में प्रतियोगिता है और ये गोल्ड मेडल रहा ! अब जरा ताकत से दौड़ेंगे । आप पायेंगे कि कल जितना आप दौड़े थे, आज उससे ज्यादा दौड़ रहे हैं । हालांकि कल आप समझ रहे थे कि यह आपकी आखिरी ताकत है । आज आप ज्यादा दौड़ रहे हैं । यह ताकत कहां से आयी ? लेकिन यह भी आखिरी नहीं है ।

परसों मैं एक पुलिस वाले को ले आऊं और आपके पीछे एक बन्दूक लगवा दूं । और कहूं कि पूरी ताकत से दौड़ें, कहने की जरूरत ही नहीं रहेगी कि पूरी ताकत से दौड़ें । तब आपको पहली दफा पता चलेगा कि आप हवा में उड़े जा रहे हैं । ऐसे तो आप कभी नहीं दौड़े । यह ताकत कहीं आसमान से आ रही है ? यह ताकत आपके भीतर है । जितनी आप चुनौती देते हैं इस ताकत को उतनी यह

उठती है।

वैज्ञानिकों का ख्याल है कि अधिकतम श्रम करने वाले लोगों ने भी मस्तिष्क की पन्द्रह प्रतिशत से ज्यादा शक्ति का उपयोग नहीं किया है। पन्द्रह प्रतिशत, बड़े से बड़ा प्रतिभाशाली आदमी भी अपने मस्तिष्क की पन्द्रह प्रतिशत शक्ति का उपयोग करता है। बाकी शक्ति जैसी जन्म के समय रहती है वैसी बेकार, मरने के समय खत्म हो जाती है। शरीर के साथ भी वही हाल है। हम अपनी शक्तियों का उपयोग नहीं कर पाते क्योंकि आवश्यकताएं तो कम करनी हैं। तो आवश्यकताएं कम करने के लिए कितनी शक्ति का उपयोग करना पड़ता है? अब एक आदमी को पैर ही सिकोड़ने हैं न चादर के भीतर? कितनी ताकत लगी है? लेकिन चादर बड़ी करनी हो तो तब ताकत लगनी शुरू हो जाती है।

आवश्यकताएं ज्यादा होती हैं तो व्यक्तित्व को चुनौती मिलती है। इस मुल्क के व्यक्तित्व को कोई चुनौती नहीं है। इसलिए यह मुल्क गरीब है। और चुनौती देने वाला भी कोई नहीं है। क्योंकि जो चुनौती दे वह लगेगा कि यह आदमी हमें कैसे तर्क की भाषा बता रहा है? यह कहां हमको नर्क ले जायेगा? क्योंकि आवश्यकताएं बढ़ गईं तो आग्रह बढ़ जायेगा आसक्ति बढ़ जायेगी, आसक्ति बढ़ जायेगी तो फिर बन्धन बढ़ जायेगा। फिर जीवन के आवागमन से मुक्ति कैसे होगी?

तो आवागमन से मुक्त होना हो तो फिर गरीब रहना बहुत अच्छा है। यह मुल्क आवागमन से मुक्त होने की कोशिश कर रहा है, पांच हजार साल से। जिन्दा रहने की कोशिश नहीं कर रहा है। मरने के बाद फिर से जिन्दा न होना पड़े इसकी कोशिश में लगा है। होकर तो गरीब नहीं तो क्या अमीर हो जायेंगे आप? जिन्दा रहने की कोशिश से अमीरी पैदा होती है, समृद्धि पैदा होती है, जिन्दा रहने के श्रम से। और जिन्दा रहने का श्रम चुनौती मांगता है, चैलेंज मांगता है, चैलेंज कौन देगा? बैलगाड़ी में बैठे हैं तो बैलगाड़ी में बैठे हैं। तो कार कौन पैदा करेगा, चैलेंज कौन देगा?

कार में बैठे हैं तो कार में बैठे हैं। तो फिर हवाई जहाज कौन पैदा करेगा? चैलेंज कौन देगा? जिन्दगी चुनौती से गति पाती है। सब तरह की गति, चाहे बुद्धि की हो, चाहे धन की हो, चाहे श्रम की हो, शक्ति की हो, शरीर की हो, मन की हो, आत्मा की हो। समस्त गतियां चुनौती से पैदा होती हैं। और इस मुल्क ने चुनौती को इन्कार कर दिया और हम कहते हैं, हम चुनौती मानते ही नहीं। तो फिर ठीक है, कौन जिम्मेवार है? किस की जिम्मेवारी है कि हम गरीब हैं? चुनौती चाहिए। आवश्यकताएं बढ़ती हैं तो उसके परिणाम गहरे शुरू होते हैं। सारा मुल्क कहता है कि बेकारी है। एक तरफ बेकारी है और मुल्क के साधु-संन्यासी, नेता समझा रहे हैं कि सादगी से रहो। बेकारी खत्म कैसे होगी?

ज्यादा चीजें पैदा करो तो ज्यादा लोग श्रम में लगेंगे। ज्यादा जरूरतें हों तो ज्यादा लोग श्रम में लगें।

आज अमरीका की आधी से अधिक इंडस्ट्री, पचास प्रतिशत उद्योग स्त्रियों के साज-श्रृंगार को पैदा करने में लगा है। गांधीजी समझाते हैं कि स्त्री को साज-श्रृंगार की जरूरत ही नहीं। उसको तो खादी के कपड़े पहन कर करीब-करीब पुरुष जैसा हो जाना चाहिए।

ठीक है, आप सब स्त्रियों को खादी पहना दें, लिपिस्टिक न लगाने दें, गहने न पहनने दें, बाल न सजाने दें, रंग-रोगन न लगाने दें। इंडस्ट्री का मतलब क्या होता है? स्त्रियां पचास प्रतिशत इंडस्ट्री चलाती हैं सारी दुनिया की, हिन्दुस्तान को छोड़ कर। उसका कारण है। एक दफा पाउडर लगाओ फिर साबुन से धोओ, फिर पाउडर लगाओ फिर साबुन से धोओ, तो पच्चीस इंडस्ट्री चल रही हैं उनके इस पाउडर लगाने से और साबुन से धोने से। वहां मजदूर को काम मिल रहा है।

जिन्दगी को हम समझेंगे तो वह कुछ और है। अब अगर सब स्त्रियों को सादा बना दो तो आदमी बेकार हो जायेगा। अब वह आदमी बेकार हो जायेगा तो चिल्लाओ कि आदमी बेकार क्यों है। क्योकि कुछ लोग शोषण कर रहे हैं। कोई शोषण नहीं कर रहा। आदमी बेकार इसलिए है कि आपके पास काम का विस्तार नहीं है। और काम का इतना विस्तार हो सकता है और वह तभी हो सकता है जब हमारी आवश्यकताएं रोज बढ़ती जायें दिन दूनी रात चौगुनी।

जब अमरीका के जीवन का ढंग है कि कोई आदमी इस फिक्र में नहीं है कि कितना कम करे, हर आदमी इस फिक्र में है कि कितना ज्यादा करे। तो स्वभावत: सब चीजें ज्यादा चाहिए। कार का मॉडल हर साल बदल जायेगा। क्योंकि पिछले साल का कार का मॉडल कौन रखे? आउट ऑफ डेट गाड़ी का रखना, आउट ऑफ डेट आदमी का सबूत है। लेकिन हमारे मुल्क में? हमारे मुल्क में उन्नीस सौ बीस में जो गाड़ी आई थी उसको हम सम्भाल कर रखे हुए हैं। और पड़ोसी हमारी तारीफ करते हैं, क्या गजब का आदमी है, उन्नीस सौ बीस की गाड़ी अभी भी चला रहा है!

बड़े मजे से चलाइये उन्नीस सौ बीस की गाड़ी आप। यह मुल्क मर जायेगा। क्योंकि इस मुल्क का सारा का सारा उत्पादन इस बात पर निर्भर करता है कि लोग कितनी जल्दी चीजें बदलते हैं। जब हम दुकान पर जाते हैं तो हिन्दुस्तान में आदमी पूछता है कि टिकाऊ है! कितनी देर चलेगी?

अमरीका में कोई आदमी नहीं पूछेगा। एक आदमी नहीं पूछता कि टिकाऊ है। अमरीका में एक नया शब्द है, वे टिकाऊ नहीं पूछते, वे ड्युरेबिलिटी नहीं पूछते। वे पूछते हैं एक्सचेंजेबिलिटी। यह बदली जा सकती है, कितने दिन में बदली जा सकती है? घड़ी लेने एक आदमी जायेगा तो कहेगा तीन महीने में

बदली जा सकती है। वह पूछेगा कि एक्सचेंजेबिलिटी कितनी है इसकी। साल भर बाद बदलेंगे तो बदली जा सकती है? छः महीने बाद बदली जा सकती है। कोई नहीं पूछेगा जि ड्युरेबिलिटी कितनी है? क्योंकि ड्युरेबिलिटी का मतलब—क्या मरना है कि जीना है? अगर एक ही घड़ी से जिन्दगी भर गुजार लिया तो घड़ी की इण्डस्ट्री का क्या होगा?

मगर हमारे यहां ऐसे लोग हैं कि एक घड़ी उनके पिता ने बरती, उनके पिता ने भी बरती, वे भी बरत रहे हैं। बाबा आदम के जमाने में जो घड़ी रही होगी, वह उसे सम्भाले हुए हैं। बड़े सादे हैं, बड़े भोले हैं, इनके पैर पड़ो। ये मार डालेंगे पूरे मुल्क को।

जिन्दगी के विस्तार के नियम हैं और जिन्दगी की समृद्धि के नियम हैं। और हमारे सारे नियम उल्टे हैं। मगर हम बहुत प्रसन्न होते हैं कि देखें आदमी कितना सादा है। खाने में देखो तो घास-पात खा लेता है। नहीं, ऐसे नहीं, जीवन की समस्त विविधताओं में, जीवन के सब डायमेन्शन में, रोज नये की खोज, रोज नये की आकांक्षा समृद्ध बनाती है।

पुराने पर पकड़े बैठे रह जाना, गरीब बनाती है। यह मुल्क इस लिए गरीब नहीं है। मेरी अपनी समझ यही है कि मुल्क इसलिए गरीब नहीं है कि पूंजीवादी है और इसलिए अमीर नहीं हो जायेगा कि समाजवादी हो जाये। इस मुल्क के सोचने के ढंग गरीब के ढंग हैं। और इस मुल्क के सब महात्मा इसको गरीब होना सिखाते हैं। सब महात्मा इसको जो बातें सिखाते हैं वह सब खतरनाक है। वह इस मुल्क की जड़ को काट डालते हैं। लेकिन वे महात्मा बड़े प्यारे हैं, क्योंकि पांच हजार साल से जो हम सुन रहे हैं वही हमें वे फिर सुनाते हैं। बार-बार सुनी गई बात ठीक मालूम पड़ने लगती है। इसलिए नहीं कि ठीक है। इसलिए कि बार-बार सुनी है। बार-बार सुनते-सुनते हम यह भूल ही जाते हैं कि यह बात झूठ होगी। एक झूठ को बोलते रहें सुबह से शाम तक, दूसरे लोग तो भरोसा करेंगे कि नहीं करेंगे, लेकिन सुबह से शाम तक बोलते-बोलते आप जरूर भरोसा कर लेंगे खुद ही। क्योंकि शक होने लगेगा कि जो इतनी बार बोला है, यह झूठ हो सकता है। जिसको इतने लोगों ने विश्वास किया वह झूठ हो सकता है?

मनुष्य जाति के बड़े से बड़े दुर्भाग्य ऐसे झूठ हैं जो सच जैसे मालूम पड़ने लगे। और ध्यान रहे जीवन का एक नियम है कि या तो फलो या सिकुड़ो, बीच में कोई जगह नहीं है।

अगर आप कहें कि हम बीच में खड़े रहेंगे, सन्तुलन साधेंगे। तब कुछ भी साध सकते आप। जिन्दगी का नियम है या तो फैलो या सिकुड़ो, या तो जियो या मरो, या तो जीतो या हारो। जिन्दनी बीच में नहीं खड़ी रहती

कहीं भी। जिस दिन इस मुल्क ने यह तय कर लिया कि हमें फैलना नहीं है उसी दिन हम सिकुड़ने लगेंगे। जिस दिन हमारे आदमी ने यह तय कर लिया कि हमारी कोई बड़ी आकांक्षाएं नहीं हैं तो उसी दिन सिकुड़ गये, उसी दिन हमारे जीवन की ऊर्जा बैठ गई। उसको चुनौती मिलनी कठिन हो गई।

तो मैं आपसे कहना चाहता हूं कि हम गरीब हैं तो गरीबी के कारण को समझें। हमारी फिलोसफी, हमारा चिन्तन, हमारा धर्म, सब हमें गरीब होने का रास्ता बताता है। और अगर यह सब ठीक है तो फिर गरीब होने से हमें सहमत होना चाहिए।

मैं नहीं कहता कि आप अमीर हो जायें। फिर मैं कहता हूं कि आप अपनी फिलोसफी को समझ लें, फिर आप गरीब होने को राजी रहें। या फिलोसफी बदलें, अगर गरीबी से नाराजगी है तो और या फिर राजी रहें। दो के सिवाय और कोई विकल्प नहीं है।

लेकिन हम बड़े अजीब लोग हैं। हम अमीर होना चाहते हैं अमरीका जैसे और दर्शन पकड़ना चाहते हैं भारतीय। हम तो भारतीय हैं, हम भारतीय रहेंगे। भारतीय रह कर आप अमरीका जैसे समृद्ध नहीं हो सकते। आपको अपने भारतीय होने में बुनियादी फर्क करने पड़ेंगे। आपका भारतीय होना बिल्कुल ही समृद्धि के लिए बेमानी है, इर्रिलेवेंट है, असंगत है। इधर तो हम चिल्ला रहे हैं हम भारतीयकरण करेंगे। हम तो बिल्कुल भारतीय, शुद्ध भारतीय हैं, हंड्रेड परसेन्ट भारतीय का हमको नशा सवार है।

सौ प्रतिशत भारतीय रहना है तो सौ प्रतिशत गरीब रहना पड़ेगा। आधुनिक से डरे हुए हैं, पश्चिम से डरे हुए हैं कि कहीं ऐसा न हो जाये कि हमारे भारतीय होने में थोड़ी बहुत कमी पड़ जाये। असल में भारतीय होने का क्या मतलब होता है?

भारतीय होने का फिर यही मतलब होता है कि जो हमारी कथा है वही हमारी कथा रहेगी, उसमें हम कोई फर्क नहीं कर सकते। हमें फर्क करना पड़ेगा। हम वैसे ही भारतीय नहीं हो सकते अब, जैसे हम मनु के जमाने में थे। और न हम वैसे ही भारतीय हो सकते हैं जैसे हम पांच सौ साल पहले थे। असल में पिछले वर्ष के भारतीय भी आज नहीं हो सकते और अगर होंगे तो हम परेशानी में पड़े रहेंगे। और मजा यह है कि भारतीय होने के लिए क्या हमको पुराना ही होना पड़ेगा? क्या भारत का अभी भी भविष्य नहीं है? क्या भारतीय होने की, भविष्य की कोई रूपरेखा नहीं हो सकती? लेकिन यह हमारे पुराने सिद्धान्तों से तालमेल नहीं खाता। हमारे पुराने शास्त्र हमको दिक्कत में डाल देते हैं, वे कहते हैं कि तालमेल नहीं बैठता है।

तब फिर हम एक जिद् में पड़ गये हैं। और इस जिद् से बाहर निकलने

का एक ही उपाय मुझे दिखाई पड़ता है कि हम उस जिद्द को ठीक तरह से समझ लें, इस झंझट को हम ठीक से समझ लें कि हमारी झंझट क्या है। या तो हमें गरीब रहना है तो गरीब होने को स्वीकार कर लें और गरीब रहें। और अगर गरीबी को मिटाना हो तो गरीबी के सूत्रों को आग लगा दें, और अमीरी के सूत्रों पर जीवन को ढालने की कोशिश करें। अन्यथा इन दोनों के बीच इतने तनाव में पड़ जायेंगे कि न तो हम जी सकेंगे और न हम मर सकेंगे, त्रिशंकु की हमारी हालत हो जायेगी जो हो गई है।

एक और मित्र ने पूछा है—एक दो छोटे-छोटे सवाल। एक मित्र ने पूछा है कि यह जो पूंजीवाद आज मौजूद है, इसमें इतना भ्रष्टाचार है, इतनी घूसखोरी है, इतनी रिश्वत है, क्या आप इसके भी समर्थक हैं?

यह घूसखोरी, भ्रष्टाचार, रिश्वत पूंजीवादी के कारण नहीं है। इसके कारण बिल्कुल दूसरे हैं, उनका पूंजीवाद से कोई लेना-देना नहीं है।

जिस देश में इतनी गरीबी हो उस देश में सदाचार हो सकता है, यह चमत्कार होगा। यह सम्भव नहीं है। जहां जीना इतना कठिन हो, वहां आदमी ईमानदार रह सकेगा, यह मुश्किल है। हां एकाध आदमी रह सकता है। कोई संकल्पवान् रह सकता है, लेकिन इतना संकल्प सबके पास नहीं है और इसके लिए उन्हें दोषी भी नहीं ठहराया जा सकता।

जिन्दगी में जहां जीने के लिए बेमानी शर्त बनाना पड़ता हो—यहां इतने बड़े कमरे में हम सारे लोग बैठे हैं और यहां बीस-पच्चीस रोटी हो और हम सब भूखे हों तो आप सोचते हैं शिष्टाचार बचेगा? और वह शिष्टाचार, अगर नहीं बचा, तो क्या इस भवन को आप गाली देंगे कि यह भवन भ्रष्टाचार पैदा करवा रहा है? भ्रष्टाचार भवन पैदा नहीं करवा रहा है? भ्रष्टाचार? पच्चीस रोटियां और पच्चास सौ खाने वाले भूखे हैं, इनकी वजह से भ्रष्टाचार पैदा हो रहा है। इस कमरे का कोई कसूर नहीं है, भवन का कोई कसूर नहीं है। यह पूंजीवाद की व्यवस्था का कोई कसूर नहीं है कि भ्रष्टाचार है। भ्रष्टाचार का कारण दूसरा है। भ्रष्टाचार का कारण यह है कि भूख ज्यादा है रोटी कम है। नंगे शरीर ज्यादा हैं, कपड़े कम हैं। आदमी ज्यादा हैं, मकान कम हैं। जीने की सुविधा कम है और जीने वाले रोज बढ़ते चले जा रहे हैं। इसके बीच जो तनाव पैदा होगा, वह भ्रष्टाचार ले आयेगा। इस भ्रष्टाचार को कोई नेता नहीं मिटा सकता। क्योंकि नेतागण सोचते हैं कि जैसे भ्रष्टाचार को मिटाना, वह जिस ढंग से सोचते हैं कोई साधु-सेवक-समाज बना लेता है कि इससे हम भ्रष्टाचार मिटा देंगे।

कुछ ऐसा लगता है कि हम जिन्दगी के गणित को सीधा देखने से चूक ही जाते हैं। साधु-सेवक-समाज बनाने से क्या भ्रष्टाचार मिटा दोगे? ये साधु जाकर सारे मुल्क को समझायेंगे कि भ्रष्टाचार मत करो। तो क्या भ्रष्टाचार

बन्द हो जायेगा? यह समझाने का मामला है कि भ्रष्टाचार मत करो।

यह समझाने की बात होती तो हम करते ही न, यह समझाने की बात नहीं है। यह जीने का—'एक्जिस्टेन्शियल' प्रश्न है। यहां अस्तित्व खतरे में है। यह प्रवचन से हल होने वाला नहीं है कि सारे हिन्दुस्तान के साधु गांव-गांव जाकर समझाएं कि भ्रष्टाचार मत करो। तो बस भ्रष्टाचार बन्द हो जायेगा। यहां कोई शिक्षा की कमी नहीं है और न प्रवचनों की कमी है। और यह न होगा कि बच्चों को गीता और रामायण कंठस्थ करवा दें तो भ्रष्टाचार मिट जायेगा कि नैतिक शिक्षा दे दें हर स्कूल में। पढ़ लेंगे गीता को, रामायण को, भ्रष्टाचार नहीं मिट जायेगा। क्योंकि भ्रष्टाचार के होने के कारण अस्तित्व में छिपे हैं। यह कोई सिद्धान्तों की बात नहीं है। और नेतागण चिल्लाते रहे हैं कि हम भ्रष्टाचार को मिटा देंगे, वे चाहे जो इन्तजाम करें। वे जो भी इन्तजाम करेंगे वही भ्रष्टाचारी हो जायेगा। और मजा तो यह है कि वह जो नेता जितने जोर से मंच पर चिल्लाते हैं कि भ्रष्टाचार मिटा देंगे, वे उस मंच तक बिना भ्रष्टाचार के पहुंच नहीं पाते। जहां से भ्रष्टाचार मिटाने का व्याख्यान देना पड़ता है उस मंच तक पहुंचने के लिए भ्रष्टाचार की सीढ़ियां पार करनी पड़ती हैं।

अब यह इतना जाल है कि सिद्धान्तों से होने वाला नहीं है। इस जाल की बुनियादी जड़ को पकड़ना पड़ेगा और अगर हम जड़ को पकड़ लें तो बहुत चीजें साफ हो जायें। हमें मान लेना चाहिए कि आज के भारत में ईमानदारी की बात करना बेकार है। न नेता को करना चाहिए, न साधु को करना चाहिए। हमें मान लेना चाहिए कि बेईमानी नियम है। इसमें झंझट नहीं करनी चाहिए। इसमें झगड़ा खड़ा नहीं करना चाहिए। तब कम से कम बेईमानी सीधी साफ तो हो सकेगी। यानी मुझे आपकी जेब में हाथ डालना है तो मैं सीधा तो डाल सकूंगा। नाहक आप सोयें और रात में आपके घर मैं आऊं, जेब में हाथ डालूं और फिर सुबह मन्दिर जाऊं और व्याख्यान करूं कि चोरी करना पाप है। यह सब जाल की जरूरत नहीं है। हिन्दुस्तान में बेईमानी जो है आज की समाज-व्यवस्था में, अगर न हो, तो या तो समाज-व्यवस्था टूट जाये या तो हम मर जायें। बेईमानी इस वक्त लुब्रीकेटिंग का काम कर रही है। वह लुब्रीकेशन है। वह जरा पहिये को तेल दे देती है और चलने लायक बना देती है। अगर यह मुल्क कसम खा ले ईमानदार होने की, तो मर जाये। वह जिन्दा नहीं रह सकता है और जिन लोगों ने कसम खा ली ईमानदारी की उनसे आप पूछ लो कि वे जिन्दा हैं कि मर गये। उनकी आवाज शायद ही निकले, क्योंकि वे मर ही चुके होंगे।

भ्रष्टाचार हमारी इस समाज-व्यवस्था में, हमारी इस समाज की दीनता और दरिद्रता में, हमारे समाज की इस भुखमरी हालत में इस यंत्रविहीन

अनौद्योगिक सम्पत्ति शून्य समाज में अनिवार्यता है। इसमें चिल्लाने की कोई जरूरत नहीं है, न किसी को गाली देने की जरूरत है।

मैं जापान की छोटी-सी किताब पढ़ रहा था शिष्टाचार के नियमों की। तो उसमें लिखा हुआ है कि किसी आदमी से उसकी तनख्वाह न पूछें। तब बहुत हैरान हुआ कि क्या मामला है। हमसे बड़े अविकसित मालूम होते हैं जापानी। हम तो तनख्वाह ही नहीं पूछते, यह भी पूछते हैं उससे कि कुछ ऊपर से भी मिलता है कि नहीं। यह बड़े पक्के गंवार मालूम पड़ते हैं। इनको इतना पता नहीं कि भारत जैसा सुसंस्कृत और सभ्य देश वहां आम तनख्वाह के ऊपर क्या मिलता है, यह भी पूछते हैं। न केवल पूछते हैं बल्कि बताने वाला बताता ही है कि कुछ भी नहीं मिलता है, थोड़ा ही मिलता है, कुछ ज्यादा नहीं मिलता। उस किताब में नीचे नोट लिखा हुआ है कि किसी से तनख्वाह पूछना अपमानजनक हो सकता है, क्योंकि हो सकता है उसकी तनख्वाह कम हो और उसे चार आदमियों के सामने तनख्वाह बतानी पड़े या हो सकता है कि उसे इतना संकोच लगे कि उसे व्यर्थ झूठ बोलना पड़े, जितनी उसकी तनख्वाह न हो उतनी बतानी पड़े, इसलिए तनख्वाह नहीं पूछनी चाहिए।

इस मुल्क में हमें आज की मौजूदा हालत में भ्रष्टाचार, रिश्वत इतनी बात नहीं पूछनी चाहिए। यह अशिष्टता है, घोर अशिष्टता है। यह सीधी साफ बात है, यह स्वीकृति होनी चाहिए। इसमें कोई झगड़ा नहीं करना चाहिए। हां रह गई बात यह कि अगर हम इसे स्वीकार कर लें तो हम इसे मिटा सकते हैं। इसे हम स्वीकार कर लें तो इसकी बुनियादी जड़ों में जा सकते हैं कि बात क्या है। कोई आदमी अपनी तरफ से बुरा नहीं होना चाहता। बुराई सदा ही मजबूरी की हालत में पैदा होती है। हां कुछ लोग होंगे जिनको बुरा होने में मजा आता है, वे रुग्ण हैं। उनकी चिकित्सा हो सकती है। लेकिन अधिकतम लोग बुरा होने के लिए बुरा नहीं होते। जब जीना मुश्किल हो जाता है तब बुराई को साधन की तरह पकड़ते हैं।

जब इतनी बुराई है तो इस बात की यह खबर है कि मुल्क इस जगह खड़ा है जहां जीना असम्भव हो गया है। इसलिए जीने को हम कैसे सम्भव बनायें? कैसे सरल बनायें? कैसे समृद्ध बनायें? यह सोचना चाहिए। भ्रष्टाचार कैसे मिटाएं यह सोचिये ही मत। आप सोचिये कि जीवन को कैसे समृद्ध बनाएं। जीवन को कैसे सरल बनाएं। कैसे जीवन को गतिमान करें। जीवन कैसे रोज-राज समृद्धि के नये शिखरों पर पहुंचे इसकी फिक्र करिये। भ्रष्टाचार वगैरह की व्यर्थ बकवास में मत पड़े रहिए।

सिर्फ इंडीकेटर्स हैं। जैसे एक आदमी को बुखार आ जाए, अब घर में नासमझ हों या घर में अगर भारतीय किस्म के लोग ज्यादा हों, तो ठण्डा पानी डालना इलाज होना चाहिए। क्योंकि गर्म हो गया उसका शरीर, ठण्डा कर दो पानी डाल कर।

लेकिन बुखार बीमारी नहीं है। बुखार सिर्फ भीतर की बीमारी की सूचना है। तो इसलिए अगर शरीर गर्म हो गया हो किसी का तो ठण्डा पानी मत डालना। ठण्डा पानी डालने से बीमारी मिट जायेगी क्योंकि बीमार मिट जायेगा। बुखार इस बात की खबर है कि शरीर में कहीं स्ट्रगल पैदा हो गयी है, शरीर में कहीं संघर्ष खड़ा हो गया है। संघर्ष की वजह से शरीर गर्म हो गया है। शरीर में कहीं कोई कॉन्फिलिक्ट खड़ी हो गयी है, शरीर का सहयोग टूट गया है, शरीर पूंजीवादी न रह कर, समाजवादी हो गया है। कुछ गड़बड़ हो गयी है। हारमोनी टूट गयी है, क्लास-स्ट्रगल शुरू हो गयी है, दो तरह के कीटाणु इकट्ठे हो गये हैं। उस लड़ाई की वजह से शरीर गर्म हो गया है। उस लड़ाई में गर्मी आ ही जाती है। इस गर्मी को ठण्डा नहीं करना है। उन कीटाणुओं को मारना है भीतर जाकर कि वह लड़ाई खत्म हो तो शरीर अपने आप ठीक टेम्प्रेचर पर वापिस लौट आये।

भ्रष्टाचारी, रिश्वतखोरी, चोरबाजारी, स्मगलिंग सब बुखार है। शरीर का तापमान बढ़ गया है समाज का। लेकिन असली बीमारी कहां है? असली बीमारी नहीं है यह। लेकिन हमारे सब नेता और सब ज्ञानी उन्हीं को ठीक करने में लगे हैं। भारतीय जो ठहरे। शुद्ध, हण्ड्रेड परसेन्ट भारतीय। वे उसको ठीक कर रहे हैं और कहते हैं बिल्कुल ठीक कर देंगे। लेकिन किसी को यह ख्याल नहीं है कि भारत की यह बीमारी आज नहीं आ गई है। यह बीमारी भारत में बढ़ते-बढ़ते पांच हजार साल में अब पूरी तरह प्रगट हुई है। पांच हजार साल का भारत का इतिहास कहता है कि परीक्षा में पास होना हो तो हनुमानजी को रिश्वत खिला दो, एक नारियल चढ़ा दो। उनसे कहो कि पांच आने का नारियल चढ़ायेंगे, हमारे लड़के को पास करवा दो। अगर लड़के को पास करवा दिया तो पांच आने का नारियल चढ़ा देंगे। अब यह क्या है? रिश्वत नहीं है तो क्या है? आप समझते हैं, ये कौन-सी चीज है?

भगवान् से जाकर कह रहे हैं मन्दिर बनवा दूंगा, अगर एक बच्चा पैदा हो जाये। यह क्या है? हां, भगवान् और देवताओं को देते-देते, विकास होते-होते आदमियों तक यह बात पहुंच गयी, यह दूसरी बात है।

ऑफिसर से कहते हैं कि नारियल चढ़ा देंगे जरा कुछ काम करवा दें। हम पहले से ही इसी तरह काम कर लेते रहे। और जब हम भगवान् तक से सस्ते में काम लेते रहे तो बेचारा ऑफिसर किस खेत की मूली है और जब भगवान् तक नारियल से राजी होते हैं, तो ऑफिसर न हों तो गैर भारतीय हैं। तो उसको राजी होना चाहिए, अशिष्टता मालूम होगी।

भारतीय का चित्त रिश्वतखोर है। वह रिश्वत खिला रहा है। वह खुशामदी है। वह भगवान् की, देवताओं की, राजाओं की खुशामद भी करता था और अब न देवता दिखाई पड़ते, न भगवान् दिखाई पड़ते हैं और न राजा ही दिखाई पड़ते हैं। ये बिचारे मिनिस्टर वगैरह दिखाई पड़ते हैं। अफसर दिखाई पड़ते हैं। वह उन्हीं की खुशामद कर रहा है। वह हाथ जोड़े इन्हीं के दरवाजे पर बैठा हुआ है।

स्वभावतः गरीब मुल्क है, दीन मुल्क है। जिनके हाथ में थोड़ी ताकत है वह उनके आस-पास पूंछ हिलाने लगता है। और अब तो पूंछ हिलाने तक में बड़ी मुश्किल हो गयी है और उतनी समझदारी रखनी पड़ती है, जैसे आमतौर से कुत्ते रखते हैं। आपने कभी कुत्ते को पूंछ हिलाते देखा। अगर अजनबी के सामने कुत्ता आयेगा तो भौंकेगा भी और पूंछ भी हिलायेगा, दोनों काम करेगा। डबल रोल एक साथ। क्योंकि अभी पक्का नहीं है कि अजनबी जो है वह मित्रता का रुख लेगा या शत्रुता का रुख लेगा। अगर शत्रुता का रुख लेगा तो पूंछ हिलाना बन्द कर देगा, भौंकने को बढ़ा देगा। अगर मित्रता का रुख लेगा तो भौंकना बन्द कर देगा, पूंछ की ताकत बढ़ा देगा। अब तो नेताओं के बाबत कुछ पक्का नहीं है कि कौन नेता कब तक नेता रहेगा, किस क्षण सख्त हो जायेगा, भूतपूर्व हो जायेगा, कुछ पता नहीं है। इसलिए थोड़ा आदमी भौंकता भी है, पूंछ भी हिलाता है। अगर स्थिर हो जाये तो पूंछ जोर से हिला देंगे और अगर बाहर निकल गया तो फिर जोर से भौंक कर बता देंगे। अब तो कुछ निश्चित नहीं है। लेकिन यह भारतीय लक्षण है। यह हमारे कौमी लक्षण हैं। इन कौमी लक्षणों का जिम्मा पूंजीवाद पर नहीं है। ये पूंजीवाद से बहुत प्राचीन है और इन प्राचीन लक्षणों की जड़ें बहुत गहरी हैं।

और सारे उपद्रव की जड़ हमारी दीनता, दरिद्रता, हमारी गरीबी है। उस गरीबी को मिटाने की दिशा में हम जो भी करें वही कदम भ्रष्टाचारी, रिश्वत-खोरी, चोरबाजारी, सबको मिटाने वाले सिद्ध हो सकते हैं।

और बहुत-से प्रश्न रह गये हैं। लेकिन मैं आशा करता हूं कि मैंने जो बातें आपसे कहीं उन बातों को अगर आप सोचेंगे तो जिन प्रश्नों के उत्तर मैं समय की कमी से नहीं दे पाया, वे उत्तर आपके ख्याल में जा सकते हैं। अन्तिम निवेदन कि मेरी बातों को मान लेने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि मैं कोई नेता नहीं हूं। और आपसे मुझे कुछ लेना-देना नहीं। आपसे कुछ लेना-देना नहीं कि आप मेरी बातें मानें तो मुझे फायदा हो, और मेरी बातें न माने तो मुझे कोई नुकसान हो।

मेरी बातों को मानने की इसलिए भी कोई जरूरत नहीं है कि मैं कोई महात्मा हूं, कोई साधु हूं, कोई सन्त हूं कि आपको अनुयायी बनाने की मेरी इच्छा है। मैंने आपसे जो निवेदन किया, वह विचार के लिए है। आप सोचें...

इतनी कृपा काफी होगी कि आप सोचें...और अगर आपको कुछ ठीक दिखाई पड़े तो वह ठीक, वह आपकी जिन्दगी में आपका अपना सत्य हो जायेगा। जो सत्य स्वयं के हो जाते हैं वे सक्रिय हो जाते हैं। और सत्य थोड़ा-सा भी सक्रिय हो जाये, तो उसके परिणाम दूरगामी हो जाते हैं। जैसे हम पत्थर को फेंक दें झील में, जरा-सी जगह पर गिरता है, लेकिन उसके वतुल दूर-दूर झील के किनारों तक फैलने शुरू हो जाते हैं। तो इस आशा पर मैंने ये बातें कहीं हैं कि आपमें से शायद कुछ लोग भी अगर सोचेंगे तो जो वर्तुल पैदा होंगे वे शायद देश के कोने-कोने तक फैल जायें। और हो सकता है कि अतीत में हमने भूलें की हों—लेकिन अतीत की भूलों से क्या प्रयोजन ? हम भविष्य में भूलें करने से बच जायें तो भी काफी है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, इससे अनुगृहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें! ●

अहमदाबाद, ११ अगस्त १९७०

क्रांति की वैज्ञानिक प्रक्रिया

विषय	पृष्ठ संख्या

१५—क्रांति की वैज्ञानिक प्रक्रिया

मेरे प्रिय आत्मन् !

प्रश्नकर्ता—समाज में बहुत दिनों से जो असन्तोष की भावना व्याप्त है और
आज जो वातावरण उत्पन्न हो गया है उसको देखते हुए यह निश्चित धारणा बन
रही है कि भारत में अब पूर्ण क्रांति की सम्भावना पैदा हो गयी है। इस सम्बन्ध
में आपका क्या कहना है ?

भगवान् श्री—कठिन सवाल है। भारत का यह जो पांच हजार साल का
ढांचा है, वह क्रांति के बिल्कुल विपरीत है। शायद दुनिया में कोई समाज इतना
क्रांति विरोधी समाज नहीं है, जितना हमारा समाज है और इसलिए हमने कभी
कोई क्रांति नहीं की। यह पांच हजार वर्ष के मनुष्य को अगर हम देखें, उसके
माइंड (मन) को देखें तो हमेशा मालूम पड़ता है कि पूर्ण क्रांति (फुलफ्लेज्ड रैवो-
ल्यूशन) हो जायेगी। लेकिन दूसरी तरफ से देखें कि पांच हजार वर्ष तक क्रांति
नहीं हुई है, तो या तो ढांचा क्रांति विरोधी है या ढांचे के भीतर भारत की जो
आत्मायें हैं, वे क्रांति के पक्ष में होती नहीं दिखायी पड़ती हैं। पांच हजार वर्ष
की जो जकड़न है, उससे एक प्रतिक्रिया भी भीतर धनी होती चली गयी है। उस
प्रतिक्रिया का अगर उपयोग हो सके, तो शायद भारत अकेला मुल्क है जहां क्रांति
(रैवोल्यूशन) हो सके। और किसी मुल्क में क्रांति हुई भी नहीं।

इनमें दो बातें और दोनों घटित हुई हैं। अगर हम ढांचे को देखें तो ढांचा

तो ऐसा है कि क्रांति विरोधी है, लेकिन पांच हजार वर्ष की ढांचे की पीड़ा भी है हमारे साथ। और ढांचे के पीछे बढ़ता विरोध भी है और भीतर ढांचे को तोड़ देने का बीज अंकुरित होता चला गया है। और यह पांच हजार वर्ष की लम्बी प्रतिक्रिया है। इसका विस्फोट भी हो सकता है, क्योंकि ज्वालामुखी बिल्कुल सामने से दिखायी पड़ रहा है और ऊपर से देखकर कोई यह नहीं कह सकता है कि आग भड़क जाने वाली है। ऊपर से सब शांत है, पक्षी गीत गा रहे हैं और सूरज निकला है, आभा हो रही है और कहीं कोई अशांति नहीं है, लेकिन भीतर एक अशांति इकट्ठी होती चली गयी है। वह ज्वालामुखी फूट भी सकता है। और जो ज्वालामुखी हमेशा फूटता रहता है उससे ज्यादा खतरा नहीं होता है, लेकिन जो ज्वालामुखी पांच हजार साल से शांत रहा है, अगर फूट जाये तो भारी विस्फोट होगा।

मेरे अनुभव में दो बातें हैं। ढांचा हमारा क्रांति विरोधी है, लेकिन हमारी आत्मा धीरे-धीरे ढांचे के विपरीत ही होती चली गयी, होती ही चली गयी। अगर उस तरफ ध्यान दें तो आशा बनती है कि इस मुल्क में रैवोल्यूशन (क्रांति) होगा और वह फुलफ्लैज्ड (पूर्णतः) होगा। अगर भारत में क्रांति होने वाली होगी तो फुलफ्लैज्ड होगी—एक बारगी ही। पुराने से हम पूरी तरह छुटकारा पा लेंगे। बुरी तरह विद्रोह होगा, साधारण विद्रोह नहीं होगा। साधारण हो ही नहीं सकता है, वह हमारा इतना पुराना हिसाब है।

दोनों ही बातें दिखायी पड़ती हैं, लेकिन अपनी आशा दूसरी बात पर ही बंधी हुई है कि क्रांति हो सकती है और उस दिशा में प्रबल चेष्टा की जाये तो भारत एक बड़ी क्रांति कर सकता है। उसने की नहीं है कभी, यह पक्का है। लेकिन नहीं की है वह घटना करने के पक्ष में भी सहायक बन सकती है, परन्तु हमारा मन जो है, वह बहुत विपरीत खण्डों में बंटा हुआ चलता है।

मुझे ख्याल है, मेरे गांव में एक मुसलमान परिवार था, बहुत अभिजात परिवार था नवाबों का। उनके घर के लोगों को वे कभी किसी के साथ न खेलने दें, न घूमने दें। बहुत ही बांध कर व्यवस्था में रखते थे। उनका एक लड़का मैट्रिक तक मेरे साथ पढ़ता था। उसने कभी सिनेमा नहीं देखा, उसने कभी किसी लड़की से बात नहीं की। उसका कोई दोस्त नहीं था। कार से उसे स्कूल में छोड़ देना और ड्राइवर कार लिए खड़ा ही रहेगा। क्लास के दरवाजे से बिठा कर उसको घर ले जायेगा। फिर वह कालेज पहुंचा। कालेज में जाकर देखा तो वह उल्टा हो गया, एकदम उल्टा हो गया, ठीक उल्टा हो गया। सिवाय शराब के और वेश्या के और कुछ काम न रहा। छः साल वह इण्टरमीडिएट में फेल होता रहा। आखिर बाप को उसे वापस बुला लेना पड़ा। उसके पिता मुझसे कहने लगे कि इससे ऐसी आशा नहीं थी। मैंने कहा, ये दोनों सम्भावनायें थीं। इतना जो सख्त ढांचा इस

पर बिठाला था। उसके ढांचे को देखकर तो यह आशा नहीं बंधती थी, लेकिन ढांचे के खिलाफ इसका जो मन विद्रोह करता चला गया था उससे यही आशा बंधती थी।

भारत की स्थिति ऐसी है। एक ढांचा है और एक हम हैं। तो हम तो खिलाफ होते ही चले गये हैं, और ढांचा पुराना, जीर्ण और जर्जर हो गया है। ढांचा बचने की कोशिश करेगा, हर कोशिश करेगा।

प्रश्नकर्त्ता—वह अपने आप को सुधारने की कोशिश करेगा?

भगवान श्री—सुधारने की कोशिश भी करता है, वह भी बचाव के लिए है। मेरी दृष्टि में यही है कि अगर मोरारजी हुकूमत में रहें तो कांग्रेस जल्दी मरेगी, इंदिरा शासक बनती है तो दस साल और जियेगी। इंदिरा उसे भीतर से सुधारने की कोशिश में है और समाजवाद का नारा फिर से उसे बल दे देगा। दस साल फिर वह खींची जा सकती है। ढांचा आखिरी बचाव वही करता है। पहले तो ढांचा जैसा है, वैसा बचने की कोशिश करता है। जब उसे लगता है कि असम्भव हो गया है, तो ढांचा ही क्रांति की बातें करनी शुरू कर देता है, जो बिल्कुल ही झूठी होती हैं। नेहरू भी वही करते रहे इस मुल्क के साथ और नेहरू कांग्रेस को बचा सके। बाप की पुरानी ट्रिक बेटी फिर करती है और वह सिर्फ समाजवाद की बात है। उससे फिर क्रांति को धक्का पहुंचता है। क्रांति को धक्के की जरूरत नहीं है। अब तो जिससे हम लड़ने जा रहे हैं वही समाजवाद लाने के लिए तैयार है, बात खत्म हो गयी और फिर क्रांति की बात ढीली हो जायेगी और ढांचा अपने को फिर सम्भाल लेगा। पुराना ढांचा आखिर बचाव की स्थिति में आ गया है। इसलिए वह क्रांति की भाषा बोलने लगा है। और यह सबसे खतरनाक मामला है।

ढांचा जब तक साफ बोलता है तब तक उससे हम लड़ सकते हैं, जब वह हमारी भाषा बोलने लगता है तब बहुत मुश्किल हो जाती है। वह ढांचा भी उपाय करेगा पूरी तरह। वह समाजवाद की बात करेगा, वह क्रांति की बात करेगा और वह नवमूल्यों की बात करेगा और यह सारी बात ऐसी होगी जैसे हम पुराने मकान को गिरने से बचाने के लिए नया रंग-रोगन करते हैं, नयी दीवार के ऊपर फर्श चढ़ा देते हैं सीमेंट की, दरारें भर देते हैं और कहते हैं सब नया हो गया, पुराना है ही कहां! यह ढांचे की आखिरी कोशिश है। वह कोशिश भी भारतीय ढांचा करेगा ही। हमने बहुत बार ऐसा किया है।

बुद्ध ने एक वैचारिक क्रांति इस मुल्क को दी। शंकर ने वह पूरा ढांचा स्वीकार कर लिया और उसे हिन्दू धर्म बना लिया और बुद्ध की क्रांति खत्म हो गयी। बुद्ध को उन्होंने जड़ से काट दिया। शंकर ने कहा, यह तो सब हमारे वेदांत में है और शंकर ने पूरा का पूरा बौद्ध विचार वेदांत में जबर्दस्ती आरोपित कर दिया, जो वहां कहीं नहीं था। उन्होंने सब निकाल कर बता दिया कि यह तो वेदांत में है। हम बच गये। बुद्ध को हमने उखाड़ फेंका। इस तरह जड़ से उखाड़ दिया

है कि जहां बुद्ध जैसा आदमी इस मुल्क में पैदा हुआ, वहां उसके मन्दिर में उसका पुजारी भी नहीं रहा। मन्दिर का पुजारी भी खोजना मुश्किल हो गया। इस भांति बौद्ध चिन्तन यहां से खत्म हुआ और उसे खत्म करने के लिए हमने यह तरकीब अख्तियार की कि हमने बुद्ध की भाषा को हिन्दू भाषा में फौरन ढाल दिया।

यह हम कोशिश करेंगे। भारत इस तरह की पहले कोशिश कर चुका है, इसलिए हम कोशिश करेंगे। यह हम कहेंगे कि हमारी सारी की सारी संस्कृति क्रांतिकारी है। साम्यवाद इसमें है, समाजवाद इसमें है, सब इसमें है। गांधी और विनोबा इसी कोशिश में संलग्न रहे हैं, अरविन्द भी इसी कोशिश में संलग्न रहे हैं। यहां तो जो भी पश्चिम में नया हुआ है, फौरन उसे हमारी किताब में बता देने की प्रवृत्ति है। अगर हवाई जहाज बन रहा है, तो हमारे वेद में वह पहले से है। और अभी वैज्ञानिक चांद पर पहुंच गया है, तो हमारा पण्डित खोजने लगा होगा कि हम कैसे तरकीब निकाल लें, किस प्रकार अर्थ निकाल लें शास्त्रों से कि यह चांद पर पहुंचने की बात नयी न रह जाये और हम कह सकें कि चांद पर तो हम पहले पहुंच चुके थे, हमारे ऋषि मुनि पहले जा चुके हैं। वह हम करेंगे और इससे बहुत सचेत होने की जरूरत है क्योंकि यह बहुत धोखेबाज मामला है, इसे पहचानना मुश्किल है।

इसलिए भारत को हमें दो चीजों से सचेत करने की जरूरत पड़ गयी है। एक यह कि ढांचा तोड़ना है और दूसरी यह कि ढांचा अपने को बचाने के लिए क्रांति की भाषा बोलेगा, इससे सजग होना है। लेकिन आशा बंधती है, आशा बंधने के लिए और कारण भी हैं। बड़ा कारण तो यह है कि पिछले तीन हजार वर्षों से भारत (इधर तीन-चार सौ वर्षों को छोड़कर) एक बन्द मुल्क था। उसका दुनिया से कोई सम्बन्ध न था। हम अपने में तृप्त थे और स्वतन्त्र थे और कोई तौलने का उपाय न था। लेकिन अब सब नाप और तौल साफ है। सारी दुनिया में जो हो रहा है, उससे ज्यादा दिन अब बचा नहीं जा सकता। वह सब यहां होगा और यह बड़ी आशा है।

बड़ी आशा जो हमारे क्रांति की है, वह हमारे भीतर से कम आ रही है। वह जो बाहर हमारे चारों तरफ हो रहा है, वह हमें धक्का दे रहा है। और यह बहुत जल्दी भारतीय प्रतिभा को स्पष्ट हो जाने वाला है कि अगर हम चूकते हैं समाज के ढांचे को बदलने से, तो हम शायद मनुष्य होने से चूक जायेंगे। दूसरे मुल्क हमारे सीने पर खड़े हो जायेंगे। जैसे आदिवासी में और हममें फासला हो गया है, वैसे ही अमरीका और रूस और हममें फासला हो सकता है। यह फासला बिल्कुल सम्भावी हो गया है। तो इस भय से और इस दबाव में कुछ हो सकता है और भीतर प्रतिक्रिया इकट्ठी हुई है, इससे भी कुछ हो सकता है।

प्रश्नकर्त्ता—इस तरह के रैवोल्यूशन (क्रांति) के लिए कोई संस्था होनी चाहिए?

भगवान् श्री—संस्था निश्चित ही होनी चाहिए। संस्था होगी, लेकिन एक सीमा के बाद ही क्रांति में संस्था सहयोगी होती है। सीमा के पहले संस्था बाधा बन जाती है। क्रांति के पहले तो हवा होनी चाहिए, क्योंकि हवा ज्यादा क्रांतिकारी होती है और संस्थायें उतनी क्रांतिकारी नहीं होतीं, क्योंकि जैसे ही संस्था बनी, संस्था में निहित स्वार्थ शुरू हो जायेगा। तो क्रांति का पहला मामला तो हवा बांधना है, संस्था नहीं। उस हवा से संस्थायें जन्म लेती हैं। जैसे रूस में हुआ है। रूस में जो हवा थी वह निहिलिज्म की थी। वह सिर्फ हवा थी, उसकी कोई संस्था न थी। निमित्त हवा थी, (कोई संगठन न था, कोई एटिट्यूड न था) जो सब चीजों को इन्कार कर रही थी—यह भी गलत है, वह भी गलत है, सब गलत है। पुराना सब गलत है। ऐसी एक हवा थी। यह हवा घनी होती गयी। यह सिर्फ हवा थी, इसका कोई स्वार्थ नहीं था, क्योंकि हवा की कोई अपनी जड़ें नहीं थी कि जहां उसे बैठना था। यह सिर्फ एक सरल वातावरण था। इस सरल वातावरण ने पूरे मुल्क की आत्मा को पकड़ लिया। विचार पकड़ते ही कर्म बनना चाहता है। विचार जैसे ही पकड़ा कि वह कर्म बनना चाहता है। आपको बनाना नहीं पड़ता है। एक दफा विचार पकड़ ले, तो वह सहज ही सक्रिय हो जाता है।

तो हवा से बातें आती हैं और हवा के पहले संस्था नहीं जानी चाहिए, जैसा हिन्दुस्तान में हुआ। हिन्दुस्तान में क्रांति के नाम पर संस्थायें खड़ी हो गयीं। उनका अपना स्वार्थ है। हवा है नहीं। हवा है नहीं, तो 'यह' पार्टी है, 'वह' पार्टी है। ये मिल जाती हैं, क्योंकि उनके अपने स्वार्थ हैं। और मजा यह है कि उनको अगर अपने स्वार्थ बनाने हैं और संस्था खड़ी रखनी है तो उनका साथ लेना पड़ता है जिसके खिलाफ काम भी करना है। तो यह कैसे होगा? तो धीरे-धीरे जिनके खिलाफ क्रांति करनी है, उनका भी स्वार्थ संस्था को दबा ले जाता है, वह चाहे कम्युनिस्ट हों चाहे सोशलिस्ट हों, चाहे फलां हों चाहे ढिकां। उसके पीछे आखिर में वही प्रश्न खड़ा हो जाता है।

तो मेरा मानना है कि अभी हमें बीस साल संस्था की बातें नहीं करनी चाहिए। उन्मुक्त और खुली हवा बनानी चाहिए। और एक दफा हवा पैदा हो जाये तो उससे पच्चीस संस्थायें निर्मित हो जायेंगी। इसलिए मैं संस्था में उत्सुक नहीं हूं। यह मैं जानता हूं कि संस्था के बिना क्रांति नहीं होती, लेकिन बिना हवा के संस्था नहीं होती। और यही एक प्रक्रिया है कि हवा बन जाये, एक नियमित एटिट्यूड बन जाये इन्कार करने का, नो करने का। 'नो' (इन्कार) करने की हवा ही नहीं है, 'हां' करने की ऐसी पुरानी आदत है, इसको तोड़ देने की मेरी उत्सुकता है। और मेरी मान्यता है कि यह नया काम हो सकता है। यह टूट जाये, और हवा एक बन जाये, तो इस हवा से संस्थायें मिट नहीं सकतीं, लेकिन

एक दफा हवा हो जाये तो संस्थाओं को हवा बचायेगी और तब उसे विरोधी का साथ नहीं देना पड़ेगा।

अभी तकलीफ यह है कि अगर आज मैं कोई संस्था बनाना चाहूं तो जिनकी सहायता से भी बनाऊंगा उनके ही खिलाफ मेरा सारा कहना है। तब तो मुश्किल में पड़ गया। वे सारी शर्तें लेकर हाजिर हो जाते हैं। संस्था बनानी है लेकिन वे क्रांति को नहीं मानते हैं, क्रांति चलानी है तो संस्था बनानी पड़ती है। इसलिए मैं संस्था में बिल्कुल ही उत्सुक नहीं हूं, यह जानते हुए कि संस्था के बिना कोई क्रांति कभी नहीं होती। लेकिन कुछ लोगों को हिम्मत रखनी चाहिए कि वे संस्था न बनायें ताकि वे हवा फैला दें, और उनका काम इतना है। हमें इतना तीव्र वातावरण पैदा करना पड़ेगा कि संस्था भी क्रांतिकारी हो सके।

प्रश्नकर्त्ता—क्या नक्सलवादियों की क्रांति की दिशा सही है ?

भगवान् श्री—नहीं, मैं यह नहीं मानता। मैं इसलिए नहीं मानूंगा कि नक्सलाइट सिर्फ एक प्रतिक्रिया (रिएक्शन) है, क्रांति (रैवोल्यूशन) नहीं। रैवोल्यूशन और रिएक्शन में बड़ा फर्क है। नक्सलाइट पुराने ढांचे के प्रति एक क्रोध-पूर्ण प्रतिक्रिया है। वह क्रोध उस सीमा पर पहुंच गया है, जहां वह यह नहीं देखता है कि क्या करना है, क्या छोड़ देना है। वह अन्धा हो गया है। अन्धा क्रोध भी खतरनाक साबित हो सकता है। जितना अन्धा कर्न्फामिस्ट खतरनाक होता है, उतना ही अन्धा रैवोल्यूशनरी भी। और नक्सलाइट की घटना जो है वह कोई रैवोल्यूशन नहीं है और कोई फिलॉसफी (दर्शन) नहीं है। वह एक तीव्र रिएक्शन है, जो बिल्कुल जरूरी था। इसलिए जितने हम जिम्मेवार हैं नक्सलाइट पैदा करने के लिए, उतने वे बेचारे जिम्मेवार नहीं हैं। वे तो बिल्कुल निरीह हैं। उनको मैं जरा भी जिम्मा नहीं देता। मैं निन्दा के लिए भी उनको पात्र नहीं मानता, क्योंकि निन्दा उनकी करनी चाहिए जिनको रैसपोन्सिबिल (जिम्मेवार) मानूं। हम रैसपोन्सिबिल हैं।

हमने पांच हजार वर्ष से जरा भी क्रांति नहीं की है, जरा भी नहीं बदले हैं, एकदम मर गये हैं। तो इस मरे हुए मुल्क के साथ कुछ ऐसा होना अनिवार्य है। लेकिन वह शुभ नहीं है। और उसको अगर हमने क्रांति समझा तो खतरा है। रिएक्शनरी हमेशा उल्टा होता है और आप जो कर रहे हैं उससे उल्टा करता है। रिएक्शनरी वही होता है, जहां हमारा समाज होता है। सिर्फ उल्टा होता है। वह शीर्षासन करता है। हम जो यहां कर रहे हैं, वह उसका उल्टा करने लगता है। जिस जगह आप हैं, उससे गहरा वह कभी नहीं जा सकता है, क्योंकि आपका वह रिएक्शन है। अगर आपने मुझे गाली दी और मैं भी तुरन्त गाली देता हूं, तो आपकी और मेरी गाली एक ही तल पर होने वाली है, क्योंकि उसी तरह मैं भी गाली दे रहा हूं तो मैं भी गहरा नहीं हो सकता, गहरा हुआ नहीं जा सकता। गहरे होने के लिए भारत में नक्सलाइट कुछ नहीं कर पायेंगा। नक्सलाइट सिर्फ सिम्पट-

मैटिक हैं, सिम्पटम (बीमारी के लक्षण) हैं। बीमारी पूरी हो गयी है और अब नहीं बदलते हो तो यह होगा। यानि यह भी बहुत है, यह भी बहुत है मेरी दृष्टि में, लेकिन अगर तुम नहीं बदलते हो और इसके सिवाय तुम कोई रास्ता नहीं छोड़ते हो, अगर क्रांति नहीं आती तो यह प्रतिक्रिया ही आयेगी।

अब दो विकल्प खड़े होते हैं मुल्क के सामने—या तो क्रांति के लिए तुम एक फिलोसॉफिक रूट (वैचारिक आयाम) की बात करो और क्रांति को एक व्यवस्था दो और क्रांति को एक सिस्टम दो और क्रांति को एक क्रिएटेड पोस्ट बनाओ। अगर नहीं बनाते हो तो अब यह होगा यानी नक्सलाइट जो हैं वे हमारी वर्तमान समाज-व्यवस्था के दूसरे हिस्से हैं। ये दोनों जाने चाहिए। सोसाइटी भी जानी चाहिए और उसका रिएक्शन भी जाना चाहिए, क्योंकि यह बेवकूफी ही थी सोसायटी का साथ देना। ये जो एक्टीविटीज (घटनाएं) हैं, ये इसी के 'पार्ट एण्ड पार्सेल' (सहज परिणाम) हैं।

आमतौर से ऐसा लगता है कि नक्सलाइट दुश्मन है। मैं नहीं मानता कि वे दुश्मन हैं। वे इसी सोसायटी के हिस्से हैं, इसी सोसायटी ने उसे पैदा कर दिया है। इसने गाली दी है तो उसने दुगनी गाली दी है, बस इतना फर्क पड़ा है। मगर यह माइंड (चित्त) इसी से जुड़ा हुआ है। यह सोसायटी गयी तो वह भी गया। अगर यह नहीं गयी, तो वह भी जाने वाला नहीं है। यह बढ़ता चला जायेगा।

अब मेरा कहना यह है कि क्रांतिकारी के सामने दो सवाल हैं, ठीक विचार करने वाले के सामने दो सवाल हैं, वह यह कि या तो सोसायटी में क्रांति आये (और सृजनात्मक रूप में) और नहीं आ पाती है तो नक्सलाइट विकल्प रह जायेगा। और वह कोई सुखद विकल्प नहीं है। वह सुखद भी नहीं है, गहरा भी नहीं है, जरा भी गहरा नहीं है। वह उसी तल पर है, जहां हमारा समाज है। वह सिर्फ रिएक्शन कर रहा है वह जरूरी है। यह मैं नहीं कहता कि बुरा है तो गैर-जरूरी है। बुरा है, नहीं हो, ऐसी हमें व्यवस्था करनी चाहिए।

और वह व्यवस्था हम तभी कर पायेंगे जब हम पूरी सोसायटी को बदलेंगे। नक्सलाइट को हम रोक नहीं पायेंगे, उनको रोकने का सवाल ही नहीं है। पूरी सोसायटी उसे पैदा कर रही है। इसका जड़ होना उसको पैदा कर रहा है, इसके न बदलने की आकांक्षा उसको पैदा कर रही है, इसका पुराना ढांचा उसको पैदा कर रहा है, यह ढांचा पूरी तरह गया तो इसके साथ नक्सलाइट गया।

नक्सलाइट एक संकेत है, जो बता रहा है कि सोसाइटी इस जगह पहुंच गयी कि अगर क्रांति नहीं होती तो यह होगा। और अब सोसायटी को समझ लेना चाहिए। वह पुराना ढांचा तो नहीं बचेगा। या तो क्रांति आयेगी या यह ढांचा जायेगा। ये दो चीजें आ सकती हैं और अगर आप मर्जी से लायें तो क्रांति आयेगी, अगर आप सोच के लायें तो क्रांति आयेगी, विचार करके लायें तो क्रांति आयेगी

और अगर आप क्रांति न लायें, इसके लिए जिद में रहे कि नहीं आने देंगे तो यह विचारहीन प्रतिक्रिया आयेगी। यानि मेरा कहना है कि नक्सलाइट एक थॉटलेस रिएक्शन (विचारहीन प्रतिक्रिया) है।

प्रश्नकर्त्ता—थॉटलेस रिएक्शन तो है लेकिन इट हेज ए परपज, एण्ड लुकिंग टु द परपज, सपोज, सोसायटी का माइंड (चित्त) परिवर्तित हो गया तो यह क्रांति है, तो इसका परपज (लक्ष्य) है कि वह प्रचलित मूल्यों को चैलेंज करता है।

भगवान् श्री—परपज (लक्ष्य) वैसा ही है जैसे कि आप बीमार हैं और जोर से बुखार हो गया है, सारा शरीर गर्म है और एक सौ चार डिग्री बुखार है। एक सौ चार डिग्री में जलना सिर्फ खबर है कि भीतर बीमारी है और यह चीज ऐसी है कि शरीर को अस्वस्थ्य किये दे रही है, बेचैन किये दे रही है, उत्तप्त किये दे रही है। यह बुखार का परपज है, यह त्वरा का, फीवर (बुखार) का परपज है कि आपको खबर दे रहा है कि भीतर डिसीज (बीमारी) है। डिसीज मिटेगी तो यह बुखार जायेगा और किसी ने अगर ठंडा पानी डालकर इस बुखार को कम करने की कोशिश की तो डिसीज तो नहीं मिटेगी, आदमी मरेगा। नक्सलाइट को सिर्फ ठंडा करने की कोशिश की तो सोसायटी मरेगी। नक्सलाइट सिर्फ फीवर है। परपज है फीवर का, लेकिन फीवर बचाने योग्य नहीं होता है, मिटाने योग्य होता है।

परपज तो उसका है कि उसने खबर दी है आपको, आपके शरीर के ऊपर आकर कि आप बचेंगे नहीं, अगर बीमारी दूर नहीं होती तो। अभी बुखार बढ़ता है, एक सौ चार से एक सौ दस तक जायेगा। अब जल्दी बीमारी अलग करो। सिर्फ इतना परपज है उसका और बीमारी अलग हुई कि परपज इसका खत्म हुआ। मगर खतरा है कि कहीं हम बीमारी को इसका विकल्प न मान लें। कहीं हम ऐसा न समझ लें कि बीमारी का दुश्मन है, यह फीवर जो है। यह दुश्मन नहीं है, बीमारी का ही हिस्सा है, बीमारी की ही खबर है, बीमारी से ही जुड़ा है। तो ऐसा नहीं है कि बीमारी को छोड़ें और बुखार को पकड़ लें। ऐसा परपज नहीं है नक्सलाइट का कि हम आज सोसायटी के पुराने ढांचे को छोड़ दें और नक्सलाइट, जो बेवकूफी की बात कर रहा हो उसे पकड़ लें। यह विकल्प नहीं है।

जानना यह है कि नक्सलाइट आपकी पुरानी सोसायटी पैदा कर रही है। आप पुरानी सोसायटी को खत्म नहीं करेंगे तो नक्सलाइट पैदा होगा। यानी नक्सलाइट का एक ही परपज है और वह यह कि वह पूरी खबर कर दे कि पुरानी सोसायटी आखिरी क्षण में है, और अगर नहीं मरती है तो नक्सलाइट को पैदा कर जायेगी और इससे अगर बचना है तो पुरानी सोसायटी खत्म करो, उस बीमारी को जाने दो। यह इसका रिएक्शन है। इसको बचाना नहीं है, जाने देना है—सोसायटी के साथ जाने देना है, बचाना नहीं है। इसलिए नक्सलाइट पुरानी

सोसायटी का दुश्मन है और मैं मानता हूं कि वह उसी का हिस्सा है जो घबरा गया है, क्रोध से भर गया है और जो वह सोसायटी करती थी उससे उल्टा काम कर रहा है। ठीक उल्टा कर रहा है। पुरानी सोसायटी जैसे आज अमरीका में है, योरोप में है उसके विरोध में प्रतिक्रिया स्वरूप बीटल्स और बीटनिक पैदा हो गये हैं। वे भी उसी पुरानी सोसायटी के हिस्से हैं। पुरानी सोसायटी कहती है कि सड़क पर कपड़े ढांक कर चलो, तो वह सड़क पर नंगा खड़ा हो गया है।

गिन्सबर्ग एक बीटनिक है, वह एक जगह छोटी-सी कविता सुन रहा है। अमरीका की घटना है, सुना रहा है किसी को और उसमें नंगी तस्वीर है, भद्दे शब्द हैं, गालियां हैं। एक आदमी खड़ा होकर कहता है कि यह क्या गालियां बक रहे हो। यह कोई बहादुरी नहीं है, कोई बहादुरी का काम दिखाओ। वह गिन्सबर्ग कहता है, अच्छी बात। वह अपने सब कपड़े उतार कर नंगा खड़ा हो जाता है। वह नंगा खड़ा हो गया है। उसने कहा, यह बहादुरी का काम है। तुम नंगे हो सकते हो? उस गेदरिंग (सभा) में जो लोग इकट्ठे थे, भाग गये वहां से। लोग भाग रहे हैं—औरतें, पुरुष और वह नंगा होकर खड़ा है।

मेरा मानना यह है कि यह जो नंगा खड़ा होना है, यह जो कपड़े पहनने का अति आग्रह है, (दबाने का, छिपाने का) उसका ही रिएक्शन है। मानता कपड़े को यह भी है, क्योंकि कपड़े उतार कर बहादुरी दिखा रहा है। यह दिखा रहा है कपड़े उतारकर बहादुरी, हम दिखा रहे हैं, कपड़े पहन कर सज्जनता। यह कपड़े उतार कर दिखला रहा है, लेकिन यह है हमारा ही दूसरा विपरीत हिस्सा, (डायमेट्रिकली अपोजिट, द पार्ट एण्ड पार्शल) बिल्कुल उल्टा रूप है, लेकिन हमसे जुड़ा हुआ है।

जब तक दुनिया में कपड़े पहनने का बहुत आग्रह जिद्दपूर्वक जारी रहेगा, गिंसबर्ग पैदा होगा। अगर हमने मनुष्य के शरीर को इस भांति इन्कारा कि इसको देखने ही मत देना, तो कुछ विद्रोही लड़के पैदा होंगे जो कहेंगे कि हम नंगे खड़े होंगे, हम सड़कों पर नंगे चलेंगे। और आज नहीं कल यह पक्का ही मानना कि लड़के और लड़कियां सड़कों पर नंगे खड़े होकर कपड़ों के खिलाफ बगावत करेंगे, क्योंकि हमने अति आग्रह कर लिया है। कपड़ा पहनना एक सुविधा की बात है, वह एक मॉरेलिटी न बन जाये और कोई पेटर्न न बन जाये कि उघाड़ा होना एक पाप हो जाये।

नक्सलाइट जो है वह हमारी सोसायटी का हिस्सा है। वह ढांचे से छूटकर उल्टा खड़ा हो गया है। लेकिन उल्टा खड़ा होना उतना ही पागलपन है। बदलना है सोसायटी को, सोसायटी को उल्टी नहीं करना है।

प्रश्नकर्त्ता—सवाल यह उठता है कि पहले पांच हजार वर्ष पुराने ढांचे को हटाना है या पहले इस नयी प्रतिक्रिया को हटाना है और आखिर जो नया है उसको

तो सरलता से ही हटा सकते हैं, क्योंकि वह नया है।

भगवान् श्री—नहीं, आप इस ख्याल में मत रहना, क्योंकि जो नया पांच हजार साल पुराने को हटा देगा वह पांच हजार साल पुराने से मजबूत सिद्ध हो रहा है, तभी तो हटा रहा है। आप ध्यान रखना, नक्सलाइट को हटाना मुश्किल हो जायेगा। पुराने को हटाना आसान है, क्योंकि पुराना जरा जीर्ण है और मरने के करीब पहुंच गया है, सिर्फ धक्का देने की बात है। पुराने को हटाना बहुत कठिन नहीं है मामला, क्योंकि वह अपने भीतर मर चुका है और नक्सलाइट ने अगर पुराने को हटा दिया तो बहुत जीवन पा जायेगा। फिर इसको हटाना बहुत मुश्किल होगा। इसको हटाने में पांच हजार साल लग सकते हैं।

मेरी समझ यह है कि मोरारजी को हटा देना बहुत कठिन नहीं है, डांगे बैठ जाये तो हटाना बहुत मुश्किल हो जायेगा। मोरारजी मरी हुई खोल पर खड़े हैं, मरे नहीं हैं, धक्का दिया कि गये, लेकिन इनको हटाकर जो खड़ा हो जायेगा वह नया होगा, अभी जीवंत होगा, अभी यंग होगा, अभी विजयी होगा वह। उसे हटाने में वक्त लग जायेगा जब तक वह उतना नहीं सड़ जायेगा। और जब आप सड़े को नहीं हटा पा रहे हैं तो आप नक्सलाइट को कैसे हटायेंगे, जो बहुत जिन्दा है। यानी सावधानी बहुत बरतने की जरूरत है, खतरा बहुत ज्यादा है।

नक्सलाइट का परपज है, लेकिन परपज के आगे खतरा भी बहुत बड़ा है और मैं मानता हूं कि खतरा पुरानी सीढ़ी पैदा कर रही है। और एक दफा देश क्रान्ति के लिए राजी नहीं होता तो विकल्प नक्सलाइट है और नक्सलाइट एक दफा आ गया तो क्रान्तिकारी के लिए बड़ा प्रोब्लम होगा। पुराने की एक व्यवस्था है—गलत हो या भला। और व्यवस्था को चलाना भी आसान होता है और हटाना भी आसान होता है। नक्सलाइट की कोई व्यवस्था नहीं है, वह एक अव्यवस्था है। अव्यवस्था को चलाना भी मुश्किल है, हटाना भी मुश्किल है। व्यवस्थित चीज को हटाना बहुत आसान है। उसकी एक सीमा है, एक जगह है। वह कहां है, यह हमें पता है। नक्सलाइट की कोई व्यवस्था या नियम नहीं है, इसलिए उसको हटाना एकदम मुश्किल है। किससे लड़ोगे आप, क्या लड़ोगे? न नियम है, न व्यवस्था है, न कोई ढांचा है किससे लड़ने वाले हो आप! एक नक्सलाइट जैसी व्यवस्था किसी सोसायटी में आ जाये तो बहुत मौके इस बात के हैं कि पुराना ढांचा वापस आ जाये—(बहुत मौके ऐसे हैं) बजाय क्रान्ति आने के।

अमरीका में बजाय क्रान्ति आने के पुरानी व्यवस्था वापस लौट आयी है और लोग कहने लगे हैं कि इससे पुराना ही अच्छा है, इसने तो जीना मुश्किल कर दिया है। और मेरा कहना यह है कि वे एक ही पहलू के दो हिस्से हैं, उन्हीं के विकल्प हैं। अगर नक्साइट हारेगा तो पुराना वापस लौट पड़ेगा। वे जुड़े हुए हैं। अगर नक्सलाइट आ जाये कल और सारा मुल्क अव्यवस्थित हो जाये तो

क्रान्ति नहीं आ जायेगी उससे। उससे सिर्फ इतना होगा कि पुराना ढांचा जो हार गया था वह फिर खड़ा होकर कहेगा कि देखो यह हो रहा है नया। फिर हमको वापस लौटकर आने में मजा होगा।

मेरा मानना है कि नक्सलाइट अगर सफल हो जाये तो पुराने ढांचे को दो तीन सौ वर्ष में फिर जिन्दा कर जायेगा, इससे ज्यादा कुछ नहीं कर सकता। क्रान्ति वह नहीं है, वह प्रतिक्रिया (रिएक्शन) है और इसलिए क्रान्ति की दृष्टि जो है उसको दोनों से लड़ना है—पुराने ढांचे से और नक्सलाइट से। उसको फिर भी यह कहना है कि तुम उसी के हिस्से हो, तुम इतने क्रोध में हो, तुम उसी के हिस्से हो, तुम उससे बहुत भिन्न नहीं हो। तुम उससे रिबेलियस स्टाइल (विद्रोही-ढंग) के हो, लेकिन रैवोल्यूशन तुम्हारे मन में नहीं है, तुमने मूल्यों के बाबत सोचा नहीं है। वे मूल्य गलत नहीं हो गये हैं, सिर्फ तुम मूल्यों से परेशान हो गये हो।

परेशान हो जाना एक बात है, गलत हो जाना बिल्कुल दूसरी बात है। जैसे कि मैं परेशान हो जाऊंगा, यदि समाज कहे कि एक लड़की से तुम नहीं मिल सकते। मैं परेशान हो जाऊंगा और यदि मैं सब नियमों को तोड़कर उस लड़की से मिल लूं और उसको उठाकर ले जाऊं तो मैं कोई क्रांति नहीं कर रहा हूं, न समाज के ढांचे को तोड़ रहा हूं, मैं सिर्ण अपनी परेशानी जाहिर कर रहा हूं। सवाल यह नहीं है कि मुझे एक लड़की मिल जाये कि न मिल जाये, सवाल यह है कि स्त्री और पुरुष के बीच के सम्बन्ध में कायम का मूल्य बदले। मुझे कोई मिल जाये, इससे क्या फर्क पड़ने वाला है। पुराना मूल्य जारी रहेगा बिल्कुल। जिस पर मन आये उसको उठाकर ले जाऊं तो पुराना मूल्य और मजबूत हो जायेगा कि देखो यह गलत काम हो गया और इस आदमी की बात नहीं सुननी चाहिए। यह एक उलझी हुई बात है।

तो मेरी दृष्टि में नक्सलाइट का जो परपज है वह सिर्फ इतना है कि जो विचारशील लोग हैं वह समाज को कह दें कि अब अगर पुराने की कोशिश करोगे तो यह होगा और यह तुमसे हो रहा है। हालांकि पुराना यह समझाने की कोशिश करेगा कि तुम्हारी नयी बातों से हो रहा है यह उपद्रव। पुराना यह समझाने की कोशिश करेगा कि देखो, क्रान्ति का यह फल हो रहा है।

अभी मैं एक घर में ठहरा, जमशेदपुर में। उस घर के सदस्य कलकत्ता गए हुए थे, तो कलकत्ते की हालत गम्भीर हो गयी। एक गली में दो लोगों ने उन्हें पकड़ लिया। हाथ घड़ी उतार ली और कहा कि आप दूसरी ले लेना, दुकान पास में है। इधर दुकान दूर नहीं है, आप ले लेना। वे मुझसे बोले कि तो मैं क्या करता। यह तो हद्द अभद्रता है। स्त्रियों के कपड़े उतारने, गहने छीनने की बात हद्द अभद्रता है।

यह कोई क्रान्ति नहीं है। इससे कोई मूल्य नहीं बदलते। इससे कोई मतलब हल नहीं होता। बल्कि डर इस बात का है कि कहीं पुराने मूल्य और मजबूत न हो जायें, क्योंकि नक्सलाइट्स जैसे पुराने आदमी को पुनः पुराने ढांचे में लगायेंगे तो यह तो निपट बेबकूफी और गंवारी होगी। इससे जीना मुश्किल हो जायेगा। तो यह हो सकता है कि नक्सलाइट जो है पुराने ढांचे के लिए बल सिद्ध हो, निर्बल न कर पाये, क्योंकि यह क्रांति नहीं है। इसलिए मेरी जो चितना है, मुझे ऐसा लगता है कि नक्सलाइट से उतना ही सावधान रहना है, जितना शंकराचार्य से।

दूसरी बात यह है कि क्रांति का मूल्य उभरे, उसकी हवा मजबूत हो इसके लिए बीस वर्ष तक इमीजिएट प्रॉब्लम (तात्कालिक समस्याओं) को छूना नहीं चाहिए। हमारे लिए यह भी कठिन है। क्रांति इमीजिएट मामला नहीं है कि आज एक मजदूर को दो पैसा ज्यादा मिल जाये। यह क्रांति का मामला नहीं है, मसला नहीं है। मजदूर की उत्सुकता इसी में है। क्रान्ति का मामला यह नहीं है, क्रांति का मामला वेल्यूज (मूल्यों) का है और वेल्यूज का मामला लम्बा है, गहरा है। बीस, पच्चीस, पचास साल लगेंगे, क्योंकि पांच हजार साल का झंझट है हमारे पास। मुल्क के विचारशील आदमी को तात्कालिक प्रश्नों की चिन्ता ही छोड़ देनी चाहिए। उसे तो मुल्क में निगेटिव माइंड पैदा करने की फिक्र करनी चाहिए कि निगेट (निषेध) करने वाला माइंड पैदा हो जाये, एंग्री माइंड नहीं, निगेटिव माइंड।

निगेटिव माइंड गुस्से में नहीं, अत्यन्त शान्ति में है, अत्यन्त शांति से सोच रहा है और देख रहा है कि यह मूल्य व्यर्थ हो गया है। इसकी व्यर्थता को समाज को दिखा देना है और इसकी जगह कैसे नया मूल्य आये, इसके बाबत चितना करनी है।

पुराने को तोड़ देना बहुत कठिन नहीं है। क्रोध में तोड़ा जा सकता है, लेकिन पुराना फिर बन जायेगा, क्योंकि क्रोध स्थायी नहीं होता, फिर थोड़ी देर में वापस लौट आता है। बल्कि कई बार आश्चर्य होता है कि मैंने आपको क्रोध में गाली दे दी तो घण्टे भर बाद आपसे क्षमा मांगने आ जाऊंगा और न भी मांगना हो तो भीतर क्षमा मांग लेंगे, पश्चात्ताप तो करेंगे ही। गाली का ही दूसरा हिस्सा पश्चात्ताप है। अगर नक्सलाइट गाली का दूसरा हिस्सा है तो समाज बहुत बदलेगा नहीं।

प्रश्नकर्ता—अब जो क्रांतिकारी है—सच्चा क्रांतिकारी—इसके बारे में पूछूंगा। क्या आपका विश्वास है कि क्रांतिकारी 'पाथ ऑफ वरच्यू' (नैतिकता के मार्ग) का अनुगमन करे। क्या क्रांतिकारी को सदा सत्यवादी होना चाहिए? क्या उससे किसी भी गलत काम की अपेक्षा नहीं होनी चाहिए? और क्या अगर ये

बातें उसमें हैं तो वह समाज में क्रांति लाने में जल्दी सफल होगा?

भगवान् श्री—अगर कोई चीज वरच्यू (सद्गुण) है, रैव्योल्यूशनरी माइंड (क्रांतिकारी चित्त) यह तय करेगा कि वरच्यू क्या है और वरच्यू क्या नहीं है। तो पहला सवाल यह नहीं है कि कौन-सा वरच्यू? वह पहले यह तय करेगा कि वरच्यू क्या है और वरच्यू क्या नहीं है। यह भी हो सकता है, जिसे हम अब तक नीति और वरच्यू कहते थे वह वरच्यू हो ही नहीं। यह भी हो सकता है कि उसके पीछे बहुत अनीति और बहुत अवगुण छिपाने का सिर्फ उपाय चला आ रहा हो और वह सिर्फ नाम हो, धोखा हो। तो रैवोल्यूशनरी माइंड किसी तरह यह तय करना चाहेगा कि वरच्यू क्या है। और जो वरच्यू है उसे तो फॉरगो (उपेक्षित) नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उसे फॉरगो किया तो रैव्योल्यूशन असम्भव है।

तो बुनियाद में हमें यह सोचना है कि वरच्यू क्या है। अगर स्ट्रक्चर (ढांचा) होना वरच्यू है तो फॉरगो नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसको फॉरगो करके कोई क्रांति नहीं लायी जा सकती, क्योंकि फॉरगो करके पूरी सोसायटी चल रही है। और क्रांतिकारी भी फॉरगो करे तो इसी सोसायटी का हिस्सा बना रह जायेगा। अगर सत्य बदलना वरच्यू है तो क्रांतिकारी को कहीं तो इनसिस्ट करना पड़ेगा, चाहे जहां जाये।

मेरा मानना है कि सफलता का मूल्य भी क्रांतिकारी का मूल्य नहीं, यानी असफल होने की तैयारी भी क्रांतिकारी के चित्त का हिस्सा है। असल में यह प्रतिक्रियावादी के चित्त का हिस्सा है कि हर हालत में सफल होना। यह कंर्फामिस्ट माइंड (मताग्रही चित्त) का हिस्सा है। सक्सेस (सफलता) एण्ड (अन्तिम लक्ष्य) की तरह मालूम होती है कंर्फामिस्ट माइंड को और इसीलिए वह कंफर्म (निश्चित) करता है, क्योंकि कंफर्म (निर्धारित) होना ज्यादा आसान है। सोसायटी जो कहती है उसके साथ राजी होने से मैं जल्दी सक्सेसफुल (सफल) हो सकता हूं। रैवोल्यूशनरी हारने के लिए तैयार है। यह तैयारी भी रैवोल्यूशनरी माइंड का हिस्सा है। पूरी तरह हार जाने को तैयार है, लेकिन नॉन-रैवोल्यूशनरी होने को तैयार नहीं।

जिस सोसायटी में हम जी रहे हैं, इसमें रैवोल्यूशन असफल हो सकती है, होती रही है और होगी। कोई जल्दी नहीं है कि सफल हो ही जाये आज। हो सकती है सफल यानी सफल होने की उसकी आकांक्षा नहीं होनी चाहिए और इसके पहले तो तय करना चाहिए कि वरच्यू क्या है और यह सारी चीजें उसे तय करनी होगी, यानी मूल्य का उसे रि-कंसीडरेशन (पुनर्विचार) करना कि—क्या है नीति, क्या है वरच्यू।

जैसे समझ लीजिये कि कल तक यह वरच्यू मानते थे कि एक आदमी ने

जिस पत्नी से शादी की है उसके साथ सोना पाप नहीं है । किसी और औरत के साथ जिससे उसकी शादी नहीं हुई है, उसके साथ सोना पाप है । हो सकता है वेल्यू यह कहे कि जिस स्त्री से प्रेम नहीं है उसके साथ सोना पाप है, चाहे वह पत्नी हो या न हो यह सवाल नहीं है । जिसके साथ प्रेम है, वह चाहे पत्नी हो या न हो, उसके साथ सोने में कोई पाप नहीं है । वह कहेगा कि जिस औरत से मेरा कोई प्रेम नहीं रह गया है, उससे शादी निर्मूल्य हो गयी, बात खत्म हो गयी, क्योंकि प्रेम ही शादी का अर्थ है । बात खत्म हो गयी और अगर मैं उसके साथ सोये चला जाता हूं तो मैं पापी हूं, क्रिमिनल हूं, क्योंकि जिससे मेरा प्रेम नहीं है, उससे मेरा क्या सम्बन्ध है फिर उससे मेरा सम्बन्ध वैश्या का सम्बन्ध हो गया, वह मेरी पत्नी नहीं है । क्रांतिकारी यह कह सकता है ।

एक लड़की ने अमरीका में एक बड़े न्यायालय को लिखा है कि मैं मां बनना चाहती हूं, लेकिन पत्नी बनने को तैयार नहीं हूं । पत्नी बनना मुझे अपमानजनक मालूम पड़ता है और मां बनना मुझे गौरवपूर्ण मालूम पड़ता है । ऐसा लगता है जब तक मां नहीं बनती हूं तब तक अतृप्ति रह ही जायेगी । फिर सोसायटी मुझे क्यों मजबूर करती है । मां बनने के लिए मुझे पत्नी बनना पड़ेगा, यह जबर्दस्ती मुझ पर क्यों थोपी जाये । पत्नी बनना मुझे अपमानजनक मालूम पड़ता है और मां बने बिना मैं कभी पूर्ण संतृप्ति नहीं अनुभव कर सकती हूं । और आप केवल यह विकल्प देते हैं कि पत्नी बने बिना मैं मां नहीं बन सकती या बनी तो मेरा बच्चा अपमानित होगा । तो मैं यह पूछना चाहती हूं कि समाज का क्या हक है, इस तरह की अनीति थोपने का ।

क्रांतिकारी चित्त का मतलब यह होगा कि वह वरच्यू के बाबत रि-कंसीडरेशन (पुनर्विचार) करेगा, लेकिन यह उसे वरच्यू मालूम होगी । जैसे मैं एक लड़की को कहूंगा कि तू मां बन और तू पत्नी मत बनना और इसके लिए तू लड़ना और तब मैं कहूंगा कि तेरी जिन्दगी में एक वरच्यू है । तू क्यों झुके ? और अपने लड़के को इस बात के लिए तैयार करना कि वह इन्कार करे कि मेरा कोई पिता है या मुझे पता नहीं कि कौन मेरा पिता है और पिता का नाम बताने की कोई जरूरत नहीं है और इसमें कोई पाप नहीं है । मेरी मां काफी है । उसको ऐसा तैयार करना । और मैं मानूंगा कि यह लड़का पापी नहीं है, न यह नाजायज है, न यह बुरा है, सिर्फ सोसायटी की धारणा गलत है ।

तो वरच्यू क्या है ? अगर सोसायटी बदलनी है तो पहले वरच्यू की धारणा बदलनी पड़ेगी । इसीलिए मैं हवा पैदा करना चाह रहा हूं और वह हवा पैदा हो जायेगी, लेकिन जो वरच्यू मालूम पड़े उस पर तो क्रांतिकारी को खड़ा होना ही पड़ेगा । असफल हुआ तो कोई फिक्र नहीं । असफलता का क्या डर है ? असफलता का डर ही कंफर्मिस्ट (रूढ़िवादी) बनाता है । यानी मुझे लगे कि एक स्त्री के साथ बिना शादी किये रहूं तो

समाज में असफल हो जाऊंगा तो शादी कर लेनी चाहिए, शादी का ढोंग पूरा कर देना चाहिए । लेकिन तब मैं सफलता के लिए उत्सुक हूं और ठीक से कहा जाये तो तब मैं सद्गुणी (मैन ऑफ वरच्यू) नहीं हूं । और अगर यह लगता है कि मित्रता पर्याप्त है और एक स्त्री मेरे साथ रह सकती है और शादी को जोड़ना अनिवार्य नहीं है, ताकि कल सुबह यदि हमें लगे कि अलग हो जाना उचित है तो नमस्कार कर सकूं और कोई कहने वाला न हो कि नहीं, तुम्हारे ऊपर मुकदमा चलेगा । हम स्वतन्त्र हों और हम एक क्षण में अलग हो सकें । अब शक यह है कि जिससे हम एक क्षण में अलग हो सकते हैं, उसके साथ ही सिर्फ रहने का आनन्द है और जिससे हम अलग हो ही नहीं सकते, उनके साथ रहने का आनन्द खत्म हो गया है । तो वरच्यू की पूरी धारणा बदलनी पड़ेगी । और जो वरच्यू मालूम पड़े, क्रांतिकारी उस पर जिद्द करेगा, नहीं तो वह क्रांतिकारी नहीं है ।

प्रश्नकर्त्ता—क्रांतिकारी का उसके दुश्मन के साथ क्या सम्बन्ध होना चाहिए ? उसका बिल्कुल सफाया कर देना चाहिए या उसे सुधारना चाहिए ? क्या दृष्टि होनी चाहिए ?

भगवान् श्री—असल में उसे मिटा देने का ख्याल भी क्रांतिकारी नहीं है । कंफर्मिस्ट भी तो यही सोचता है न कि क्रांति की जो बात करे, मिटा दो उसे और अगर क्रांतिकारी भी ऐसा ही सोचता है तो मैं मानता हूं कि वह भी कंफर्मिस्ट है । क्रांतिकारी नहीं कर सकता है मिटाने की बात, क्योंकि क्रांतिकारी यह भी तो मानता है कि एक-एक व्यक्ति को अपने सोचने, अपने रहने, अपने जीने का हक है कि मैं अपनी बात कहूं, समझाऊं ।

मिटाने का हक तो क्रांतिकारी को नहीं हो सकता । इसलिए मैं लेनिन या स्टैलिन या माओ को बहुत क्रांतिकारी नहीं मानता । इनका बेसिक जो माइंड है वह वही है—कंफर्मिस्ट वाला । कंफर्मिस्ट कहता था, जेल में डाल दो इस आदमी को, जान ले लो इसकी, इसकी जड़ें काट दो, इसको बचने मत दो । वही हम कर रहे हैं उसके साथ । इस मामले में तो कम-से कम हम क्रांतिकारी बिल्कुल नहीं हैं । हमने उसी के रास्ते अख्तियार किये हैं । ठीक क्रांतिकारी इस भाषा में नहीं सोच सकता है, क्योंकि क्रांतिकारी पहले तो व्यक्ति के मूल्य को परम मानता है, अल्टीमेट मानता है और इसीलिए तो वह सोसायटी के खिलाफ खड़ा है, नहीं तो खड़ा रहने का मतलब क्या है ! अगर व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं है तो मेरा अकेले की बात का क्या मतलब रह जायेगा ! जब चालीस करोड़ लोग कहते हैं कि यही बात ठीक है तो ठीक है । बात खत्म हो गई । मुझे अपनी जिद छोड़ देनी चाहिए । मैं अकेला चिल्लाऊं कि यह गलत है तो मैं यह मानकर चल रहा हूं कि प्रत्येक आदमी को यह हक है कि वह अपनी बात कह सके । आप अपनी आवाज उठायें और यदि कल मैं आपकी गर्दन काट दूं (अगर मेरे हाथ में ताकत आये) तो मैंने क्रांति की

हत्या कर दी है । इसीलिए अक्सर कमजोर क्रांतिकारी सत्ता में आते ही गैर-क्रांतिकारी हो जाते हैं । क्योंकि उनका आन्तरिक चित्त (बेसिक माइंड) क्रांतिकारी नहीं है, इसलिए मैं मानता हूं कि स्टैलिन क्रांतिकारी आदमी नहीं है । उसके पास दिमाग जो है वह रूढ़िवादी है, वह क्रांति के चक्कर में आ गया है । लेकिन जैसे ही हुकूमत में आया, वह जार बन गया । फिर उसने वही किया जो जार ने उसके साथ किया । उससे भी ज्यादा शक्ति से वही इसने भी किया ।

ठीक क्रांतिकारी का तो मतलब यही है कि वह व्यक्ति के परम मूल्य को स्वीकार करता है इसलिए आपको दबाना, आपको धमकाना, आपको मारना गैर-क्रांतिकारी कृत्य होगा । मैं तो यहां तक मानता हूं कि गांधीजी की वृत्ति भी क्रांतिकारी नहीं है । क्योंकि वे धमकियां देते हैं, सत्याग्रह के नाम पर । आपके सामने मैं उपवास करके बैठ जाऊं, तो मैं धमकी दे रहा हूं कि मैं मर जाऊंगा। अम्बेडकर ने कहा कि मेरा हृदय बिल्कुल परिवर्तन नहीं हुआ । गांधी सोचते हैं कि हृदय परिवर्तन हुआ है, तो गलत सोचते हैं । मेरा हृदय परिवर्तन हुआ, सिर्फ यह सोचकर कि एक अच्छा आदमी मर जायेगा, इसलिए मैं हट जाऊं । इसलिए मैं मानता हूं कि अम्बेडकर ज्यादा अहिंसक है—हट जाने में, गांधी ज्यादा हिंसक हैं उपवास करने में। अम्बेडकर भी जिद कर सकता है कि मरें अपने आप, हम तो जिम्मेवार नहीं हैं । तुम अपनी जिद करते हो तो मर जाओ । अम्बेडकर हट गया बिना हृदय परिवर्तन के और बिना राजी हुए । और मेरी दृष्टि में अम्बेडकर ज्यादा क्रांतिकारी सिद्ध हुआ उस घटना में, बजाय गांधी के । अम्बेडकर व्यक्ति के जीवन को ज्यादा मूल्य दे रहा है, अपने विचारों से भी । और हट रहा है, बिना राजी हुए । और मेरी दृष्टि में ज्यादा क्रांतिकारी की दृष्टि दे रहा है यह आदमी । और कन्फर्मिस्ट माइंड का होता तो वह कहता, मरो, तुम गलत हो तो अपने आप मर रहे हो । मैं जो कहता हूं ठीक है ।

प्रश्नकर्त्ता—क्रांतिकारी को सत्ता में कब और कैसे जाना चाहिए ?

भगवान् श्री—अब तक क्या हुआ है कि जिसको मैं हवा कह रहा हूं वह पूरी नहीं बन पायी और क्रांतिकारी को सत्ता मिल गयी । अभी तक क्रांति माइनॉरिटी (अल्प संख्या) का ही ख्याल था और मेजॉरिटी (बहु-संख्या) कभी उस पर राजी नहीं हुई है । इसलिए तो माइनॉरिटी को जब सत्ता मिली तो उसको कष्ट सहना पड़ा, गालियां सहनी पड़ी । मेरा मानना है कि जब तक माइनॉरिटी मेजॉरिटी की हालत में न हो, तब तक गाली मिलेगी ही । इसलिए मेरा मानना है क्रांतिकारी को थोड़ी प्रतीक्षा करनी चाहिए । हवा पैदा हो, लोक मानस तैयार हो जाये तब क्रांतिकारी को सत्ता मिले । तो जिस बड़ी मात्रा में लोक मानस तैयार होगा उसी बड़ी मात्रा में हिंसा मुश्किल हो जायेगी । फिर भी मैं यह कहता हूं कि जो मैं कह रहा हूं वह परम आइडियल (आदर्श) की बात है । थोड़ी हिंसा मेजॉरिटी के साथ

भी शायद रह जाये । ध्यान में यही होना चाहिए कि किसी भी क्रांतिकारी को सत्ता से तभी सम्बन्धित होने को राजी होना चाहिए, जब मेजॉरिटी उसके साथ हो, नहीं तो नहीं । नहीं तो बृहद् हिंसा होगी और हिंसा के करने में वह क्रांतिकारी कन्फर्मिस्ट हो जाने वाला है । एक सर्किल पैदा हो गई है । मेरी दृष्टि यह है कि मूल रूप से क्रांतिकारी, गहरे से गहरा क्रांतिकारी तभी राजी होगा सत्ता में जाने को, जब बहुमत उसकी बात के लिए राजी हो गया हो, उसने उसको परसुएड किया हो ।

मेरा मानना है कि जल्दी की आदत भी गैर-क्रांतिकारी है, अधैर्य है । लेकिन सभी क्रांतिकारी हमें दिखायी पड़ते हैं कि बहुत अधैर्य में हैं । यह ऐसा हो गया है कि क्रांतिकारी को हम सोचते हैं कि इसमें अधैर्य होना चाहिए । मेरा मानना यह है कि अधैर्य जो है वह इस बात की खबर है कि मैं जो मान रहा हूं, सोच रहा हूं उस पर मुझे पक्का विश्वास नहीं है । मुझे भी डर है और तब इसका मतलब है कि क्रांतिकारी पूरा क्रांतिकारी चित्त का नहीं है बहुत गहरे में । ऊपर इसके थोड़ी बहुत क्रांति की बात आयी होगी, विचार आया होगा । लेकिन वह भी कन्फर्मिस्ट है और उसके हाथ में सत्ता जाना खतरनाक सिद्ध हो सकता है । क्योंकि सत्ता आते ही क्रांति का हिस्सा विदा हो जायेगा । कन्फर्मिस्ट पैदा हो जायेगा । क्योंकि फिर यह जो सोसायटी बना रहा है, उससे भिन्न वह बर्दाश्त नहीं करेगा । इसलिए क्रांतिकारी सत्ता में जाते ही गैर-क्रांतिकारी हो जाते हैं ।

मेरी दृष्टि में ट्राटस्की ज्यादा क्रांतिकारी है, स्टैलिन से और ज्यादा बेसिक क्रांतिकारी है । स्टैलिन सत्ता में गया, तो ट्राटस्की की हत्या करना जरूरी हो गया । रूस में सबसे पहला काम उसने क्रांतिकारियों की हत्या करने का किया । क्योंकि वह सबसे ज्यादा खतरनाक एलिमेन्ट (तत्व) था, क्योंकि जब वह क्रांतिकारी चित्त था तो स्टैलिन से भी राजी नहीं होगा, यदि वह गलत है तो इन्कार करेगा । वही माओ कर रहा है कि जितना क्रांतिकारी माइंड है, उसको पहले खत्म कर दो । तो मैं जानता हूं कि ये ठीक क्रांतिकारी लोग नहीं हैं ।

मेरा मानना है कि सत्ता भी बहुमत को परसुएड (राजी) करने से बहुत उपाय कर सकती है । सारी एजुकेशन सत्ता के हाथ में है । हम अधैर्य की वजह से दिक्कत में पड़ जाते हैं । नहीं तो हम सारी शिक्षा को बदलने की फिक्र करेंगे । बीस साल देर लगेगी, बीस साल बाद जब नयी पीढ़ी आयेगी, हम उसे परसुएड करने की पूरी कोशिश करेंगे । रेडियो हाथ में है, अखबार हाथ में है, साहित्य हाथ में है, हम सब तरह से परसुएड करेंगे । तलवार ही हाथ में नहीं है और बहुत कुछ हाथ में है । लेकिन जल्दी है, जल्दी तलवार से हो जाती है, लेकिन क्रांति भी मर जाती है । हम परसुएड करें, मुल्क को सोचने और चिन्तन का मौका दें ।

मेरा मानना है कि क्रांतिकारी हुकूमत में आये तो पूरे मुल्क के चित्त को

क्रांतिकारी बनाने का प्रयास उसे करना चाहिए, बजाय इसके कि क्रांति लाने की जल्दी करे। बजाय इसके कि वह समाज की व्यवस्था बदलने की कोशिश करे, उसे फिक्र करनी चाहिए कि समाज का मन बदले। मन बदल जाये तो व्यवस्था अहिंसा (नॉनवायलेंस) में बदल जाये, उसमें कोई बहुत झंझट नहीं है। मन तो बदलता नहीं और व्यवस्था तोड़नी शुरू कर देते हैं, तो वायलेंस (हिंसा) शुरू हो जाती है।

समझ लें कि अगर एक क्रांतिकारी हुकूमत में आता है, तो उसके सामने दो विकल्प है—एक विकल्प तो यह है कि वह ढांचे को तोड़ दे अभी, ढांचा तोड़ेगा तो हिंसा होने वाली है और ढांचा तोड़ने में और हिंसा करने में जो सबसे बड़ा नुकसान होने वाला है वह यह रहेगा कि आदमी क्रांतिकारी न रह जायेगा।

बीस साल की हिंसा और ढांचे की तोड़-फोड़ में और नये ढांचे के खिलाफ कठिनाइयां न हों इसकी चेष्टा में वह कंर्फमिस्ट हो जाने वाला है। माइंड कोई ऐसी एन्टाइटी (चीज) नहीं है कि क्रांतिकारी कंर्फमिस्ट न हो सके। माइंड बहुत लिक्विडिटि (तरलता) है और हम जो करते हैं, वह हो जाते हैं। तो माइंड क्या करेगा? और मुझे अगर ऐसा लग गया कि माइंड ठीक है तो क्रांति खत्म हो गयी। क्रांतिकारी का हिस्सा है कि वह जानता है कि मैं गलत भी हो सकता हूं, मेरे गलत होने की सम्भावना जारी है, इसलिए तलवार उठाना गलत है, क्योंकि इस आदमी को मार डालूं और वह आदमी ठीक हो सकता है। तो क्रांतिकारी के हाथ में सत्ता आयी तो मेरी दृष्टि में जो काम उसे करने का है वह माइंड बदलने का है, ढांचा बदलने का नहीं, क्योंकि माइंड पुराना था तो ढांचा पुराना था, माइंड नया हो तो ही ढांचा नया हो सकेगा, उसमें अड़चन नहीं है।

तो माइंड बदलने की कोशिश करें, ढांचे को गिराने की जल्दी न करें या जिस मामले में बहुमत राजी हो ढांचा बदलने में, तो ठीक है और जिस मामले में बहुमत राजी न हो, उस मामले में माइंड को बदलने की फिक्र करें। प्रक्रिया लम्बी होनी है और क्रांति लम्बी ही हो सकती है। अब तक हमारा यही ख्याल रहा कि क्रांति दो-चार साल में हो जाये। यह बेवकूफी की बात है। क्रांति जैसी चीज! और कोई मुल्क अगर सौ साल तक क्रांतिकारी होने की हिम्मत न जुटा सकता हो तो, उसे क्रांति की झंझट में नहीं पड़ना चाहिए, क्योंकि यह जल्दबाजी में सब दावा कर लेगा। यह जल्दबाजी का मामला नहीं है क्रांति। हमें शिक्षा बदलनी चाहिए, शिक्षा में नये तत्व डालने चाहिए, मुल्क में नये ढांचे की हवा पैदा करनी चाहिए। निगेटिव माइंड कैसे पैदा हो, इसकी फिक्र करनी चाहिए। तीव्र और गहन चिन्तन पैदा करनी चाहिए मुल्क में और उसमें सत्ताधिकारी को स्वयं से भी प्रश्न करने चाहिए तो मुल्क में जो माइंड बदलने से निगेटिव माइंड पैदा होगा, वह ढांचा तोड़ देगा और तब कोई वायलेन्स, हिंसा न होगी, लेकिन अगर हमने

फिक्र की कि अभी ढांचा बदल देना है तो वाइलेंस शुरू होगा, क्योंकि हमसे कोई पूरी तरह राजी नहीं है।

सच बात तो यह है कि दो आदमी कभी पूरी तरह एक दूसरे से राजी नहीं होते हैं, होना भी नहीं चाहिए, कोई कारण भी नहीं है होने का। हम जब पूरे निकट होते हैं तब भी राजी नहीं होते, लेकिन क्रांतिकारी और कर्न्फमिस्ट में यही फर्क है कि कर्न्फमिस्ट कहेगा, राजी हो? और नहीं होते हो तो बस खत्म करते हैं। क्रांतिकारी कहेगा कि तुम इस समय राजी नहीं हो तो हम दोनों भिन्न है और जहां तक हम राजी हैं, वहां तक हम साथ खड़े हैं। जहां हम भिन्न हैं एक दूसरे से, वहां समझने की कोशिश करें। हो सकता है तुम ठीक हो और हो सकता है मैं ठीक हूं, हम करीब आने की कोशिश करें।

तो मेरा मानना है कि मुल्क में चिन्तन की, मनन की, विचार की हवा बननी चाहिए। पुराने ढांचे ने हवा पैदा नहीं होने दी तो यह स्वाभाविक है, क्योंकि उसके लिए तो यह खतरनाक है। लेकिन क्रांतिकारी को इससे खतरा नहीं होना चाहिए, क्योंकि क्रांतिकारी को खतरे का क्या सवाल है। क्रांतिकारी कह यही रहा है कि हम सब खतरे लेने को तैयार हैं, लेकिन जो सही है वह आये तो एक वेल्यू (मूल्य) प्रस्तुत होगी। अभी जो भी क्रांतियां हुई हैं वे सब मात्र रूपांतरण हैं, इसलिए खुद ही हम आत्मघात कर लेते हैं। आत्मघात इस अर्थ में कि वह जो क्रांति करता है, सत्ता में पहुंच कर वह वही करता है जो उसका दुश्मन कर रहा था। और तब इस करने की प्रक्रिया में वह वहीं पहुंच जाता है जहां उसका दुश्मन पहुंच जाता है। और जो क्रांतिकारी था उसके साथी वहीं पहुंच जाते हैं जहां वह क्रांति के पहले खड़ा हुआ था। ट्राटस्की ने लिखा है कि क्रांति हो जाने के बाद रूस में यह अनुभव हुआ कि हमें क्रांतिकारियों से भी लड़ना पड़ेगा। जब सत्ता आयी हाथ में तो काम ठप्प हो गया, मामला बदल गया।

मैं बहुत दिनों तक शिक्षक था तो मेरा अनुभव था कि कि कक्षा में सबसे ज्यादा रिबेलियस (विद्रोही) लड़का है, उसे कैप्टन बना दो तो मामला खत्म हो गया, सब रिबेलियन गया और वह कर्न्फमिस्ट हो गया, क्योंकि वह दूसरे को ठीक करने में लग जाता है। अब तो उसकी प्रतीक्षा इसमें है कि व्यवस्था कैसे बना ले। सारे शिक्षक यह प्रयोग करते हैं कि जो सबसे बदमाश लड़का है, उसे कैप्टन बना दो तो मामला खत्म हो जाये। इतना सा पद और मामला खत्म हो गया।

यह जो क्रांतिकारी है, यह क्रांतिकारी है सिचुएशन (परिस्थिति) से और ऐसे बहुत कम लोग हैं जो सिर्फ रैवोल्यूशनरी हैं। परिस्थिति विशेष में रिबेलियस (विद्रोही) होना साधारण बात है। जैसे कि मैं मजदूर हूं तो मैं कम्युनिस्ट हूं। कल मैं मालिक हो जाऊं तो कैपिटलिस्ट हो जाऊंगा। यह परिस्थिति वश (सिचु-एशन की) रैवोल्यूशन है। रैवोल्यूशनरी माइंड नहीं था वह। मजदूर कहता है

कि हमें पूंजीपति बर्दाश्त नहीं है, तो हम सारे पूंजीपतियों को मिटा देंगे, लेकिन हम मजदूर नहीं रह सकते। अब ये सभी पूंजीपति हो गये, बात खत्म हो गयी। सिचुएशन से जो रैवोल्यूशनरी है, वह कन्फर्मिस्ट सिद्ध होगा हुकूमत में पहुंचते ही। क्रांतिकारी माइंड का मतलब यह है कि मर जाना, लेकिन गलत को नहीं स्वीकृत करना।

प्रश्नकर्त्ता—आपने जैसा अभी बताया कि बिना प्रेम के विवाह अच्छा नहीं है, यदि ऐसा होगा तो डाइवोर्स (तलाक) का जो मार्ग है, जो प्रोसीजर (विधि) है वह बहुत सरल बनाना चाहिए। लेकिन डाइवोर्स के नियम को यदि सरल बना दिया तो समाज में स्थिरता कैसे रहेगी ?

भगवान् श्री—स्थिरता मूल्यवान नहीं है। स्थिरता की दृष्टि ही मूल्यवान है और स्थिरता की वैल्यू ही झूठी है। जीवन स्थिर है ही नहीं, जीवन गतिमान है इसलिए तो हमने जगह-जगह हिच (अवरोध) पैदा कर दी है और मेरा मानना यह है कि स्थिरता का मूल्य भी ओल्ड माइंड का हिस्सा था। क्रांतिकारी का मूल्य जीने का है, और जीने में एक गति है। गति रहते हुए अगर जीवन की व्यवस्था चलती हो तो स्वीकार्य है, गति को रोककर जीवन की व्यवस्था चलती हो तो अस्वीकार्य है। मेरा तो कहना यह है कि डाइवोर्स के लिए एक पार्टी खबर कर दे रजिस्ट्रार को। दो का क्या सवाल है ! पत्नी ने या पति ने खबर कर दी कि हमारा मामला खत्म हो गया है, इसको खत्म कर दिया जाये, बात खत्म हो गयी। दूसरे से पूछने की भी जरूरत नहीं है, क्योंकि अलग होने के लिए दूसरे से पूछने का क्या सवाल है।

डाइवोर्स इतना सरल होना चाहिए। विवाह की व्यवस्था कठिन होनी चाहिए और डाइवोर्स की सरल। डाइवोर्स की व्यवस्था इतनी नॉमिनल (नाममात्र की) हो कि जिसका कोई सवाल नहीं है। जैसे सुबह मन में हुआ तो हम जाकर खबर कर दें और तार दे दें और मामला खत्म हो जाये। विवाह की व्यवस्था कठिन होनी चाहिए। आज एक आदमी दरखास्त दे तो उसे एक साल का एक्सपेरिमेंटल मैरिज (प्रायोगिक विवाह) का लाइसेन्स मिलना चाहिए सिर्फ। एक साल साथ रह लें, सोच लें, समझ लें। साल भर बाद वे दोबारा आ जायें दोनों और कहते हों कि हम आगे रहने के लिए विचार करते हैं तो शादी होनी चाहिए।

शादी में उतनी बाधा डालनी चाहिए जितनी हम अभी डाइवोर्स में डालते हैं, क्योंकि हम तीन साल की बाधा डाल देते हैं डाइवोर्स में और लम्बी झंझट में डाल देते हैं। यह सब झंझट शादी में डालनी चाहिए, क्योंकि दो आदमी अगर होने को राजी हो रहे हैं तो हमें, सोसायटी को पूरी तरह फिक्र कर लेनी चाहिए कि क्या वे साथ रह सकेंगे ? इसकी पूरी फिक्र करनी चाहिए। मजा यह है कि शादी के बाद हम उसकी फिक्र करते हैं, लेकिन तब वह बेमानी है लेकिन एक

साल एक्सपेरिमेंटल मैरिज की व्यवस्था करनी चाहिए। इसमें वे पति-पत्नी नहीं हैं, मित्र की तरह साथ-साथ रहेंगे, समझेंगे एक दूसरे को। अब तो कृत्रिम साधनों का इतना उपाय है कि बच्चे पैदा होने का कोई सवाल नहीं है, अब बहुत सुविधा है।

एक्सपेरिमेंटल मैरिज में साल भर के बाद अगर वे आकर अपना अनुभव कहेंगे और भ्रम टूटना हो तो साल भर काफी लम्बा वक्त है, दो महीने में टूट जाता है। साल भर बाद अगर वे आकर कहते हैं कि हम दोनों साथ रहने को स्वीकार करते हैं पूरी तरह, तो सारी इन्क्वायरी और क्वेश्चनिंग (जांच और पूछताछ) होनी चाहिए। उनकी सारी जांच-पड़ताल कर ली जाये, उनके ही कहने को न मान लिया जाये, साइकोलॉजिस्ट (मनोवैज्ञानिक) से भी सलाह ली जाये कि ये ये क्वेश्चन किये गए और ये ये जवाब मिले हैं, क्या ये साथ रह सकेंगे ? और उनको बता दिया जाये कि साइकोलॉजिस्ट कहता है कि तुम दो साल से ज्यादा साथ नहीं रह सकोगे, तो तुम और सोच लो। तुम साइकोलॉजिस्ट से मिल लो, बात कर लो, समझ लो ! तुम तो कहते हो साथ रह सकेंगे, तुम्हारा कहना काफी नहीं है, तुम्हारे पूरे माइंड को जो समझ सकता है, उससे बात कर लो और साइकोलॉजिस्ट से तुम समझकर करते हो तो ठीक है, तुम शादी कर लो।

मैरिज में हमें रुकावट डालनी चाहिए और डाइवोर्स एकदम सरल होना चाहिए, क्योंकि मैरिज खतरनाक है, एक क्षण के निर्णय से मैरिज बहुत खतरनाक है, जीवन भर का स्पष्ट निर्णय चाहिए। और असफल विवाह उसमें होने वाले बच्चों के लिए बहुत हानिप्रद है। लेकिन मैं कहता हूं कि अभी नहीं है इसमें आपका इंट्रेस्ट (रुचि) बिल्कुल या आपकी सोसायटी का इंट्रेस्ट हो तो ऐसी बेवकूफियां नहीं चलें। मैं मानता हूं कि इंट्रेस्ट होना चाहिए, क्योंकि अन्ततः बच्चा सोसायटी का हिस्सा होने वाला है—आपका ही नहीं—सिर्फ एक स्त्री और एक पुरुष का ही निर्णय नहीं है बच्चा। बच्चा पूरी सोसायटी का सवाल है। पूरी सोसायटी को सोचना चाहिए, लेकिन सोसायटी ने कभी कुछ नहीं सोचा है। सिर्फ इतना ही सोच लिया है कि बच्चे का खाना-पीना, कपड़े की व्यवस्था पूरी तरह हो जाये तो मामला खत्म हो जाये।

ये दो पति-पत्नी जिन्दगी भर लड़ते रहें और यह बच्चा, उनके बीच बड़ा होता रहे तो झगड़े करने से क्या परिणाम होने वाला है। इसके माइंड पर, क्या होने वाला है इतका फल ! जिसने प्रेम कभी न जाना हो अपने मां बाप से, उसका फल क्या होने वाला है। यह पूरा स्कीजोफ्रेनिक हो जाने वाला है, इसका मस्तिष्क रुग्ण हो जाने वाला है और यह शादी के पहले पूरी तरह भयभीत हो जाने वाला है और जानता है कि क्या होने वाला है शादी के बाद। उसकी पूरी तरह अनकांशस (अचेतन) तैयारी है। और वह शादी में वही सब खोज लेगा जो उसने अपने मां

बाप में देखा था और यह सब रिपीटेड सर्किल (दुष्चक्र) शुरू हो जायेगी।

सोसायटी अगर सच में बच्चों में उत्सुक है, तो बहुत दूसरा ढंग सोचना पड़ेगा। सच तो यह है कि अगर सोसायटी पूरी तरह से उत्सुक है तो आज नहीं कल बच्चा मां-बाप की प्रॉपर्टी नहीं समझी जानी चाहिए। वह सोसायटी की प्रॉपर्टी है। आज नहीं कल बच्चों के पालने का जिम्मा सोसायटी का होना चाहिए, मां-बाप का नहीं। उनके पैदा करने का लाइसेन्स भी सोसायटी का होना चाहिए, मां-बाप की इच्छा नहीं। हर मां-बाप को बच्चा पैदा करने का हक भी नहीं होना चाहिए। क्योंकि बीमार हैं, पागल हैं और बच्चे पैदा किये जायें, यह निपट गंवारी और बेवकूफी की बात है। वे खुद तो खराब थे ही, खराब सिलसिला जारी कर रहे हैं। तो सोसायटी जब तक तय न करेगी कि कौन औरत बच्चा पैदा करेगी, किस आदमी के साथ, इनके बिना बच्चा पैदा नहीं किया जा सकता।

आज यह सम्भावना हो गयी है कि हम सेक्स को और बच्चे पैदा करने को डिसकनेक्ट (अलग) कर सकते हैं। यह पहले मुश्किल था। अगर मेरी पत्नी हो और मैं इस योग्य नहीं हूं कि उससे बच्चा पैदा हो, तो मैं किसी का वीर्य उधार मंगा सकता हूं, बात खत्म हो गयी। मेरा उससे सेक्स का सम्बन्ध हो सकता है, उसमें कोई बाधा नहीं है। और उचित होगा कि मेरा बच्चा स्वस्थ से स्वस्थ हो और जब मैं उसे अच्छी से अच्छी शिक्षा देता हूं तो उसे अच्छे से अच्छा बेसिक बीज (नस्ल) क्यों न दूं। उसे अच्छे-से-अच्छा बीज मिले, सुन्दर से सुन्दर, स्वस्थ से स्वस्थ आदमी का वीर्य उसे मिल जाये—यह मैं क्यों न करूं। यह बेवकूफी की बात है कि वह वीर्य मेरा ही हो। इसमें कुछ सेन्स (अर्थ) नहीं है, यह बिल्कुल नानसेंस (अर्थहीन) है।

सोसायटी अगर पूरी तरह फिक्र करे (और आज कर सकती है, आज तक कर भी नहीं सकती थी) तो सभी मां बाप को बच्चे पैदा करने का हक नहीं होना चाहिए, उन पर रोक होनी चाहिए कि कौन बच्चा पैदा करेगा, कौन नहीं। हो सकता है, एक युगल (पति-पत्नी) में एक ही बच्चा पैदा करने का हकदार हो सकता है, तो उसका हमें बच्चा पैदा करने में उपयोग करना चाहिए। दूसरे व्यक्ति के फिजिकल प्रेजेंस (सशरीर उपस्थिति) की जरूरत नहीं है इसलिए बात खत्म हो गयी है। पत्नी का उपयोग हो, तो उसका करना चाहिए।

एक कल्चर ब्रीडिंग और साइंटिफिक ब्रीडिंग शुरू हो, तो वहां से सोसायटी का काम शुरू होता है। फिर ये बच्चे कहां पाले जायें, कैसे पाले जायें, कैसे वातावरण में पाले जायें, कैसे साइकिक एटमास्फियर में पाले जायें, उसकी भी हमें चिन्ता करनी चाहिए। उनका मां बाप से कितना कांटेक्ट (सम्पर्क) हितकर है, और कितना उन्हें दूर रखना है वह भी समझने की जरूरत है। मेरा मानना है कि बच्चों का चौबीस घण्टे मां बाप के पास रहना बहुत अहितकर है। थोड़ी

देर के लिए, सात दिन, आठ दिन में, पन्द्रह दिन में मां-बाप से मिलना हितकर है। क्योंकि तब उनकी प्रेम-मूर्ति ही प्रकट होती है और बच्चे के मन में एक प्रेम की धारणा बनती है और तब जिनसे वह प्रेम करना सीखता है उनके सम्बन्ध में वह उल्टी धारणा नहीं बनाता है।

एक मां के पास बच्चा पलता है। मां लड़ती भी है, मां गाली भी देती है। पति उसको प्रेम भी करता है, घृणा भी करता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि इस तरह बच्चे का माइंड पहले से स्कीजोफ्रेनिक हो रहा है। वह एक ही व्यक्ति को प्रेम भी कर रहा है और घृणा भी कर रहा है। उसका माइंड (मन) टूट रहा है और वह जिसको भी कभी प्रेम करेगा, उसको पीछे से घृणा भी करता रहेगा और यह उसके माइंड का हिस्सा हो जायेगा। वह अपनी पत्नी को प्रेम भी करेगा और घृणा भी करेगा। वह कभी सोचेगा कि जान ले लूं और कभी सोचेगा कि अरे, इसके बिना तो मैं जी भी नहीं सकता और ये दोनों एक साथ चलेंगे और इसका कुल कारण है बच्चे का मां के पास निरन्तर पलना।

और भी मजे की बात है कि एक ही मां के पास बच्चा बड़ा होता है। उसकी जो फिक्स्ड इमेज (स्थायी छाप) स्त्री की बन जाती है उसके भीतर तब वह ऐसी ही पत्नी मांगता है। अनजाने, अनकांशस में उसकी आकांक्षा रहेगी कि उसको ऐसी ही पत्नी मिल सके। और यह तो मिलने वाला नहीं है। यह पत्नी हो नहीं सकती। इसका भी कोई उपाय नहीं है कि मेरी मां मेरी पत्नी हो जाये और यह हो नहीं सकता कि मां जैसा दूसरा व्यक्ति उसको मिल जाये। तो जिन्दगी भर उसका जो इमेज है माइंड का वह एक है, पत्नी दूसरी है। इन दोनों में द्वन्द्व (कान्फ्लिक्ट) है और वह हमेशा परेशानी का कारण है। लड़की को अपने बाप का इमेज (छाप) है, वह अपने बाप जैसा पति चाहती है, वह मिलने वाला नहीं है।

मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि मां-बाप से बहुत थोड़ा कांटेक्ट (सम्पर्क) चाहिए, वह सुखद है। थोड़ी देर मिल लिए, दिल खिल गया। लेकिन बच्चे के पालने की सारी साइंटिफिक (वैज्ञानिक) व्यवस्था होनी चाहिए। जैसे एक जमाना था। जब घर में बच्चे को पढ़ाया जाता था ट्यूशन रखकर। वह कुछ रईस लोग पढ़ा सकते थे अपने बच्चे को ट्यूशन रखकर। यह तो असम्भव है कि सब के घर में ट्यूशन पढ़ाया जा सके। तो हमको स्कूल खोलना पड़ा। यह ज्यादा साइंटिफिक हुआ और उसमें एक रईस के बच्चे को जो शिक्षा मिलती थी, एक गरीब से गरीब बच्चे को भी मिलना सम्भव हुआ। रईस भी इतनी व्यवस्था नहीं करता था जो आज गरीब के बच्चे के लिए सम्भव है। तो आज नहीं कल, बच्चों को पालन-पोषण भी इसी तरह सोशल (सामाजिक) बनाना चाहिए। एक-एक परिवार में बच्चे को बड़ा नहीं करना चाहिए। क्योंकि अब हम पूरी साइंफिटिक व्यवस्था

कर सकते हैं। साइंटिस्ट, साइकोलॉजिस्ट, एनालिस्ट, नर्स, डाक्टर, व्यायाम कराने वाला, पूरी तरह माइंड को समझने वाला, इन सबका सारा इन्तजाम हम वहां कर सकते हैं। वहां बच्चे बड़े होने चाहिए।

सोसायटी ने अभी तक उत्सुकता ली ही नहीं है और सिर्फ सोसायटी ने इतना ही काम कर दिया कि बच्चे पैदा हो गये। वह उसको खिलायेगा, पिलायेगा, बड़ा करेगा। यह जिम्मा उसका है, वह उसको छोड़कर भाग नहीं सकता। यह कोई इंतजाम नहीं रहा। इसी से यह सोसायटी पैदा हुई है और हमारे लिए बिल्कुल अजीब-सा संसार पैदा हो गया है।

मेरा मानना है कि एक वैज्ञानिक समाज की व्यवस्था में सोसायटी को बहुत ख्याल रखना पड़ेगा और जैसे ही बच्चा पलता है दूर मां-बाप से, तो मां-बाप की कलह का कोई असर नहीं है। डाइवोर्स से कलह का कोई सम्बन्ध नहीं है। कलह करें क्यों? कलह को इन्च भर भी जगह देने की क्या जरूरत है। मेरा मानना है कि डाइवोर्स अगर सीधा सामने खड़ा हो तो नब्बे प्रतिशत मौके आप छोड़ देंगे, कलह एकदम कम हो जायेगा, क्योंकि बेमानी है। दोनों व्यक्ति अलग नहीं हो सकते इसलिए कलह है। आपसे कह दूं कि जाइये, बात खत्म हो गयी। इसमें झगड़ा क्या है। मगर जाने को कह नहीं सकता, जा सकते नहीं आप, मैं जा नहीं सकता, बैठना यहीं है तब कलह जारी रहेगी। डाइवोर्स इतना सरल होना चाहिए जैसे एक मित्र से मित्रता है और मित्रता छूट गयी है। इससे ज्यादा उसका कोई अर्थ नहीं है और बच्चे की व्यवस्था धीरे-धीरे सोसायटी के हाथ में चली जानी चाहिए तभी डाइवोर्स इतना सरल हो सकता है। ●

क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार

१६—क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार

मेरे प्रिय आत्मन्,

भीतर देखता हूं तो एक अपूर्व आनन्द है और बाहर देखता हूं तो दुख का एक सागर खड़ा है अगर भीतर देखूं तो मुझे न कोई डर है, न दुख है। इस देश के भीतर जीने वाले सदा ही बाहर आंख बन्द करके जीने वाले रहे हैं। निश्चित ही न भीतर कोई दुख है, न पीड़ा है, न कोई अशांति है। एक दुनिया भी है, जहां सरक जाने पर, बाहरी जगत की तरंगें भी नहीं पहुंचती। एक लोक भीतर भी है जहां पहुंच जाने पर पृथ्वी का कोई पता भी नहीं चलता। स्वयं के अन्दर एक ऐसा बिन्दु है, जहां समाज मिट जाता है, राष्ट्र मिट जाता है और सब जो बाहर है यह भी मिट जाता है। बहुत आनन्द पूर्ण है वह जगत, जहां सब कुछ मिट जाता है। सौभाग्यशाली हैं वे लोग जो वहां प्रविष्ट हो जाते हैं। उस लोक में प्रविष्ट होने की चेष्टा करनी चाहिए। मैं यह निरन्तर कहता हूं कि वे लोग भी अभागे हैं जो वहां प्रविष्ट हो जाते ही बाहर के दुख को बिल्कुल ही भूल जाते हैं।

अपने दुख को मिटा देना ही काफी नहीं है। चारों तरफ वह दुख जो खड़ा है, उसमें भी सहयोगी होना बहुत जरूरी है। देश के जो साधु-सन्त हैं, ठीक अर्थों में पूरे सन्त और पूरे साधु नहीं हैं। जो साधु-सन्त अपने दुख मिटाने में ही रत हैं, वे आधे अर्थों में ही साधु-संत हैं। यह बहुत स्वार्थपूर्ण मालूम पड़ता है,

कि मैं अपने आनन्द में डूब जाऊं और बाहर जो जगत दुख और पीड़ा में पड़ा है, जो कारवां उस ओर बढ़ रहा है, उससे यदि मैं आंख बन्द किये अपनी खुशी में डूबा रहूं, तो वह अत्यन्त स्वार्थ पूर्ण, बहुत निम्न और बहुत ओछे मन की वृत्ति मालूम पड़ती है। लेकिन इस देश के साधु-सन्तों ने आज तक यही निर्णय किया था "अपनी शान्ति खोजो और दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं।"

इस देश के दुर्भाग्य में इसी निर्णय का हाथ है। इस देश से ज्यादा अद्‌भुत लोग शायद ही कहीं पृथ्वी पर पैदा हुए हों। इस देश से ज्यादा बुद्धिमान, ज्यादा शान्त, ज्यादा आचरणशील और ज्यादा सत्यवादी व्यक्ति भी कहीं पैदा हुए हों; यह संदिग्ध है। लेकिन इस देश से ज्यादा दुखी और पीड़ित कोई देश नहीं। इस समाज से ज्यादा कुरूप और गन्दा कोई समाज नहीं। जिस समाज में बुद्ध होते हों; महावीर होते हों कबीर होते हों और गांधी होते हों, वह समाज ऐसा निम्न, बुरा और कुरूप हो तो इसके पीछे जरूर कोई कारण होगा। मूल कारण यह है कि कोई भी महापुरुष समाज के प्रति जरा भी उत्सुक नहीं है, सिवाय इसके कि वह अपनी शांति और आनन्द के लिये उत्सुक रहता है।

भारत का समाज अद्‌भुत आत्मघाती समाज है। वह उस आदमी की पूजा करेगा और उसे संत कहेगा, जो आंख बन्द करके अपनी शांति में डूब कर जिन्दगी को भूल जायेगा। मेरे लिए भी यही आनन्द पूर्ण है, यही सरल है कि अपनी शांति में खोया रहूं। वहां मुझे कोई तकलीफ नहीं, कोई पीड़ा नहीं। लेकिन यह मुझे अमानवीय (इनह्यूमन) मालूम होता है कि बाहर अब इतना दुख का सागर है तो यह कैसे सम्भव है कि कोई चुपचाप अपने भीतर के आनन्द को लेता रहे। यह कैसे सम्भव है कि जब चारों ओर बीमारी हो तब कोई आदमी अपने सुख के मन्दिर में बैठा रहे।

मुझे लगता है कि जो व्यक्ति अपने आनन्द को प्राप्त कर लेता है तो उसके ऊपर परमात्मा की तरफ से एक कर्त्तव्य आ जाता है कि वह दूसरे के लिए, आनन्द के रास्ते पर, पत्थर रखकर सीढ़ियां बनाए और दूसरों को गड्ढे में जाने से बचाने का प्रयास करे। पर जिस समाज के साधु, जिस समाज के विचारशील व्यक्ति ऐसा निर्णय नहीं करते तो मुझे लगता है कि उनकी शांति अधूरी है, कमजोर है। उनको डर है कि बाहर के दुख मिटाने में संलग्न हुए तो उनकी शांति टूट जायेगी। हमारी तो आदत ही हो गई है कि साधु और सन्त को दुनिया से क्या प्रयोजन है! साधु और सन्त को दुनिया से अपने लिए निश्चित ही कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन उसके अतिरिक्त और भी बृहद् समाज है, जिसके लिए प्रयोजन है। मुझसे ऐसा निरन्तर पूछा जाता है कि फिर क्यों मैं समाज की क्रांति की बात करूं? मुझे क्या जरूरत है कि मैं इसकी फिक्र करूं कि समाज कहां विकृत हो रहा है, कहां कुरूप हो रहा है? बहुत आश्चर्य की बात यह है कि जिनके

लिए चिन्ता करते हैं वे ही आकर कहते हैं कि क्या चिन्ता करते हैं आप?

कोई आकर कहेंगे कि आप हमारे लिए परेशानी उठाते हैं तो हमें शक होता है कि आप कोई राजनैतिक व्यक्ति तो नहीं हैं? उनका कहना भी ठीक है। हजारों साल से इस देश के धार्मिक आदमी का अर्थ—भागा हुआ आदमी होता था जो जिन्दगी से आंख बन्द कर लेता है। लेकिन मैं ऐसे आदमी को अधूरा आदमी कहता हूं। यह ठीक है कि वह अपना आनन्द खोज लेता है परन्तु ऐसे आनन्द की क्या कीमत जो दूसरों के दुख को मिटाने में सहयोगी नहीं बनता हो? ऐसा आनन्द कमजोर है, नपुंसक है। वह डरता है कि मैं दूसरों का दुख मिटाने की कोशिश करूंगा तो नष्ट हो सकता हूं, मेरा आनन्द नष्ट हो सकता है। जो शांति दूसरों की अशांति मिटाने में नष्ट हो जाती हो ऐसी शांति की कीमत दो कौड़ी भी नहीं है।

मैं कहना चाहता हूं कि भारत का प्रत्येक युवक प्रत्येक साधु-सन्त को मजबूर कर दे, इस समाज के लिए उत्सुक कर दे। युवक क्रांतिदल के लिए पहली बात मैं यह कहना चाहता हूं कि सारे हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तान के सन्त-पुरुषों को पकड़ो और कहो कि जिन्दगी में आओ, हम तुम्हें जिन्दगी से भागने नहीं देंगे—तुम जिन्दगी से बहुत भाग चुके, हजारों वर्षों से बहुत भाग चुके, हजारों वर्षों से तुम जिन्दगी से भागते रहे और हम तुम्हारी पूजा करते रहे। अब यह नहीं होगा। हम तुम्हारी पूजा करेंगे लेकिन भागो मत, जिन्दगी में आओ। जिन्दगी खराब होती जा रही है और तुम अपना मोक्ष ही खोजते रहोगे! अगर हम हिन्दुस्तान के प्रत्येक साधु को मजबूर कर दें और प्रार्थना करें और खींच लें जिन्दगी में, तो देश के भाग्य को बीस वर्षों में बदला जा सकता है। कोई बहुत कठिन नहीं।

पचास लाख संन्यासी भारत में हैं। पचास लाख संन्यासी अगर उत्सुक हो जायें जिन्दगी को बदलने को, तो दुनिया में इतनी बड़ी शक्ति कहीं भी किसी के पास नहीं होगी। लेकिन वे पचास लाख संन्यासी क्या कर रहे हैं? वे पचास लाख संन्यासी अपने-अपने स्वार्थ में रत हैं। आप अपनी दुकान में स्वार्थरत हैं कि अपने लिए धन कमा रहे हैं। वे अपने स्वार्थ में रत हैं कि अपने लिए सुख कमा रहे हैं, लेकिन स्वार्थ में कोई भी फर्क नहीं है। मैं यह कहना चाहता हूं कि आपका स्वार्थ बहुत छोटा और साधारण है। उनका स्वार्थ बहुत गहरा और मजबूत है। आप अगर दुकान पर रोटी भी कमा रहे हैं तो आपकी रोटी की कमाई आपके सौ पचास लोगों के हित की भी होगी। आपके बच्चे होंगे, आपकी पत्नी होगी, आपके मित्र होंगे, और आप जो सम्पत्ति समाज में पैदा करेंगे वह न मालूम कितने लोगों के लिए रोटी रोजी देने का कारण बनेगी। लेकिन एक साधु जो शांति को खोजता है, वह न उसकी पत्नी को मिलती है न उसके बच्चे को, न उसके मित्रों को। वह शांति निपट है उसकी अपनी।

साधु का स्वार्थ तोड़ना पड़ेगा। साधु से प्रार्थना करनी पड़ेगी कि हम साधु को तभी मानेंगे जब तुम्हारा सुख हमारे लिए बंटने को आतुर हो। तुम्हारी शांति की खोज हमारे लिए आनन्द के लिए सहयोगी बने। तुम्हारे जीवन में जो क्रांति हुई है, वह चिंगारी हमारे समाज को भी बदलने का आधार बने तो ही हम पूजा देंगे, अन्यथा यह पूजा बन्द कर देंगे। हिन्दुस्तान में आने वाले भविष्य में साधु की पूजा बन्द हो जानी चाहिए अगर वह साधु जिन्दगी से आंखें बन्द करके भागता है। उससे तो हम आशा कर सकते हैं कि जिसने भीतर कुछ पाया हो वह बाहर के लोगों के लिए कुछ करे। उससे भी आशा नहीं तो किससे यह हो सकती है?

भारत का सारा अतीत स्वर्णयुग बन सकता था। लेकिन जो उसको स्वर्ण-युग बना सकते थे वे सारे पीठ दिखा के चले गये। जिन्दगी तो चलेगी—काम तो चलेगा, चाहे कोई भाग जाये, चाहे कोई जंगलों में छिप जाये—कोई और चलायेगा जिन्दगी को।

मैं यह कहना चाहता हूं कि दुनिया भर के दूसरे राष्ट्र हमसे आगे हैं, क्योंकि उनका प्रथम कोटि का आदमी राष्ट्र को चलाता है। हमारा हमेशा द्वितीय या तृतीय कोटि का आदमी राष्ट्र को चलाता है। प्रथम कोटि का आदमी भाग जाता है। जो हमारे मुल्क का फर्स्ट रेट माइंड (प्रथम श्रेणी) का आदमी है वह भाग जाता है। सैकिण्ड, थर्ड रेट (द्वितीय-तृतीय) मुल्क को चलाते हैं। निश्चित ही जिन मुल्कों को प्रथम श्रेणी के व्यक्ति चलाते हैं, हम कैसे खड़े हो सकते हैं उनके मुकाबले? उनके मुल्क को चलाने वाली जो सूझ है, वह प्रथम कोटि के मस्तिष्क से आती है। हमारा प्रथम कोटि का मस्तिष्क आंखें बन्द करके बैठ जाता है। द्वितीय और तृतीय कोटि के लोग मुल्क की नौका को हजारों साल से चला रहे हैं। हम दुनिया में पिछड़ते चले गये। हम प्रथम कोटि के लोगों के सामने द्वितीय-तृतीय कोटि के लोगों को नहीं टिका सकते।

यह पहली बात ध्यान में रख लेनी जरूरी है कि भारत के प्रथम कोटि की प्रतिभा को समाज के जीवन में उत्सुकता लेनी होगी। और डर क्या है उसे? और तुम्हें अपना आनन्द मिल गया है तो घबराते क्यों हो? जो आनन्द खो सकता हो उस आनन्द का कोई भी मूल्य नहीं है: और जो आनन्द एक विशेष स्थिति में बना रहे, अपनी झोंपड़ी में बैठ कर, अपनी गुफा में बैठ कर या अपने मन्दिर के दरवाजे बन्द करके वह आनन्द धोखा है।

आनन्द की कसौटी यह है कि जहां जिन्दगी दुख से जूझ रही है वहां आ के खड़े हो जाओ। और वहां आनन्द बना रहे, तो समझना कि वह आनन्द आत्मिक है, अन्यथा समझना कि वह आनन्द आत्मिक नहीं है। वह आनन्द है ही नहीं, वह केवल दुख की स्थितियों से बच जाना है।

एक आदमी दुकान पर बैठा है, परेशान है, बच्चों की चिन्ता करनी पड़ती है, उन्हें पढ़ाना है, वह बीमार है, घर की चिन्ता करनी पड़ती है, दस लोगों की चिन्ता उठानी पड़ती है—वह परेशानी है। दस आदमी की चिन्ता छोड़ कर जंगल में भाग जाता है—सोचता है बहुत आनन्द मिला। आनन्द नहीं है यह। सिर्फ दस आदमियों की चिन्ता छोड़कर भागता है, वह आदमी उस आदमी से बदतर है जो दस आदमियों की चिन्ता का बोझ उठाता है और ढोता है। वह यह सोचता है कि मैं आनन्द में पहुंच गया तो वह गलती में है। यह आदमी आनन्द में नहीं पहुंच गया। इस आदमी ने जो 'डाइएट' थे जिन्दगी के "डाइएट" भर छोड़ दिये। यह आदमी जवाबदारी विहीन "इरीसपोन्सीबिल" हो गया। यह उत्तरदायित्वहीन हो गया है। अगर इसे सच में आनन्द मिल गया है तो वापस लौट आये। जिन्दगी पुकारती है और यहां जरूरत है। वहां जंगल में बैठने की कोई जरूरत नहीं है। परमात्मा तुम्हें मिल गया है तो आ जाओ, और इन सारे लोगों को भी परमात्मा की खोज में संलग्न करो। लेकिन नहीं, हमारा साधु कहता है कि वह नहीं आयेगा।

अगर हिन्दुस्तान के युवक इसको और आगे बरदाश्त करते हैं तो इसने मुल्क की रीढ़ को तोड़ दिया है। ये मुल्क के भविष्य को बिल्कुल अन्धकारपूर्ण कर देंगे (यह बात)। हिन्दुस्तान के युवकों को प्रार्थना करनी चाहिए कि मन्दिरों से खींच के हम ले आवें उनको, जो वहां बैठे हैं। जंगलों से खींच लायें जो वहां बैठे हैं। उनको खींच लावें जो जिन्दगी से भाग गये। नहीं हम कहते हैं कि तुम जिन्दगी में आओ और दुकान चलाओ। यह भी नहीं हम कहते हैं कि तुम जिन्दगी में आकर हम जैसे हो जाओ। लेकिन हम उन्हें उतना तो जरूर कह सकते हैं कि तुम्हें जो मिल गया है वह हमें भी मिल सके, और तुमने जो पा लिया है, जिन सूत्रों पर तुमने अपनी जिन्दगी को बदल लिया है, पूरा समाज भी उन्हीं सूत्रों से बदल सके। अब तुम्हें मिल गया है। अब तुम अपनी चिन्ता छोड़ दो, हमारी चिन्ता करो, जिन्हें कुछ नहीं मिला।

भारत के समाज ने साधु की पूजा की, मगर साधु का कोई उपयोग नहीं किया। हां एक उपयोग किया है कि साधु व्याख्यान देता "मैं छोड़ के भाग गया हूं, उसी भांति तुम भी छोड़ के चले जाओ" तुम पाप में क्यों पड़े हुए हो? तुम कहां जिन्दगी को, कहां बीमारी में गंवा रहे हो! हम आनन्द में हैं, तुम भी भाग आओ। हालांकि वे अच्छी तरह जानते हैं कि वह आनन्द में जिन्दगी गुजार रहा है, क्योंकि इतने लोग श्रम कर रहे हैं अन्यथा ये पचास लाख लोग एक दिन भी जिन्दा नहीं रह सकते। कोई आदमी दुकान पर पाप कर रहा है, इसलिए एक आदमी एक स्थान पर मन्दिर में बैठा हुआ आनन्द कर रहा है। न इसे रोटी मिलेगी न उसे कपड़ा मिलेगा, न यह जी सकता है एक दिन।

या तो साधुओं से कह दिया जाना चाहिए कि तुम चले जाओ हिमालय पर

और फिर मत लौटना। फिर ठीक है। हमसे सम्बन्ध ही टूट गया। लेकिन कोई साधु बम्बई छोड़कर नहीं जाना चाहता, बम्बई में रहना चाहता है। मुहल्ले बदल लेता है। बहाने कर लेता है। माटुंगा से घाटकोपर चला गया तो गांव बदल गया। बेईमानी की भी हद होती है। बम्बई में ये लोग वर्षों से जमे हुए हैं। बम्बई का ही शोषण करते रहेंगे! भीतर की शांति में लीन रहेंगे! इनकी भीतर की शांति को जिन्दगी की इतनी कुरूपता दिखाई नहीं पड़ती! जिन्दगी की बेईमानी नहीं दिखाई पड़ती! और समाज को छोड़ दिया है उन्होंने!

जिन नेताओं की वजह से मुल्क सड़ रहा है, उनकी ये साधु-संन्यासी खुशामद करते रहेंगे। उनके साथ चित्र उतरवाने में आनंदित रहेंगे। इनको आनन्द मिल गया है! परमात्मा मिल गया है। जिन्हें परमात्मा मिल जाता है, उनकी जिन्दगी एक आग बन जाती है, उनकी जिन्दगी एक पुकार बन जाती है, सब कुछ बदल डालने की तीव्र आकांक्षा बन जाती है।

यह मैं पहली बात कहना चाहता हूं कि युवक क्रांति दल 'युक्रांद' या "यूथ फोर्स" सारे मुल्क में ताकत इकट्ठी करे। साधुओं को कहे कि सारी जिन्दगी को बदलने के लिए संलग्न हो जाओ। अगर हम पचास वर्षों तक हिन्दुस्तान के साधु को संलग्न करने के लिए राजी हो जायें तो हिन्दुस्तान की जिन्दगी में सुगन्ध आ जायेगी। उनकी जिन्दगी कुछ और हो जायेगी। लेकिन हमने साधु-संन्यासियों के साथ अद्भुत् मामला किया हुआ है।

साधु के पास बड़ी शक्ति है। लेकिन साधु की सारी शक्ति एक ही काम में लगती है कि वह आपसे अपनी पूजा कैसे करवा ले। उसकी सारी शक्ति नष्ट हो जाती है। बड़ी शक्ति है उसके पास लेकिन वह सारी ताकत उसमें लगाता है कि आपसे पूजा कैसे करवा ले। हम भी ऐसे मूढ़ हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं। हम भी तो साधु का एक ही काम कर रहे हैं और वह पूजा करने का। अगर वह पूजा योग्य नहीं रहता तो निन्दा करने का। इसके सिवाय कोई और उपायोग नहीं ले रहे। या तो साधु की निन्दा होती है या तो प्रशंसा। यह दोनों बातें फिजूल हैं, न निन्दा का कोई उपयोग है, न प्रशंसा का। साधु पूरे वक्त कोशिश में लगा है चारों तरफ देखने में कि आप कौन-कौन-सी बातों से आदर देते हैं, और वह बिचारा वही बातें किये चला जा रहा है।

आप कहते हैं कि आदमी नंगा खड़ा होगा तो हम आदर देंगे तो वह नंगा खड़ा है। आप कहते हैं कि एक दफे खाना खायेगा तो एक दफे खाना खा रहा है। आप कहते हैं, कि स्त्री को नहीं छूयेगा तो वह स्त्री को नहीं छू रहा है। आप कहते हैं वह बिचारा कर रहा है, क्योंकि उसको आदर चाहिए। आपके आदर की शर्तें हैं। वह उन शर्तों का पालन करने में पूरी जिन्दगी गवां रहा है। वह उन शर्तों का पालन करेगा जिन्हें आप आदर देंगे, नहीं कर सकेगा, आदर छूट जायेगा।

इतना समाज का और साधु का सम्बन्ध है। इससे ज्यादा कोई सम्बन्ध नहीं। वह आपको चौबीस घण्टे समझाता रहेगा कि तुम भी भाग जाओ जिन्दगी से। जितना वह आपको गाली देगा उतना अच्छा लगेगा। जितना वह कहेगा कि तुम पापी हो, नर्क में पड़ोगे,—इतना लगेगा कि वह बड़े हित की बातें कर रहा है। नर्क से बचाने की कोशिश कर रहा है।

साधु अगर हिन्दुस्तान के जीवन में उत्सुक नहीं होते हैं, हिन्दुस्तान में जो साधुमना लोग हैं वे भी साधु होते चले जाते हैं, तो हिन्दुस्तान की आत्मा खो जाती है। यह कल्पना करना भी हैरानी से भर देता मन को, अगर हिन्दुस्तान के पांच हजार वर्ष के साधुओं ने जिन्दगी को बदलने की कोशिश की होती, सिर्फ आदर पाने की चिन्ता न की होती। ध्यान रहे जिन्दगी को बदलने वाला आदर मुश्किल से पा सकता है अनादर आसानी से। क्योंकि जिन्दगी को बदलने का मतलब है "वेस्टेड इनट्रेस्ट" को तोड़ना, न्यस्त स्वार्थ है उसको बदलना और तोड़ना। जिन्दगी को बदलने का मतलब है जिसके हाथ में ताकत है, पद है, उससे विरोध लेना। जिन्दगी को बदलने का मतलब है कि जो हावी है समाज पर, उससे दुश्मनी लेना, क्योंकि जिन्दगी बदलती है तो आज जो हावी है वह नीचे गिर जायेगा, जो पदों पर है वह बिना पदों पर हो जायेगा, जो आज शोषण कर रहा है वह शोषण नहीं कर सकेगा, जो आज गर्दन दबाये हुए है उसके हाथ से गर्दन छूट जायेगी।

जिन्दगी को बदलने का मतलब है समाज के ऊपर का जो वर्ग है उस वर्ग से विरोध लेना। जिन्दगी से आदर पाने का एक ही सूत्र है, समाज के ऊपर के वर्ग को प्रसन्न रखना। अगर ऊपर के वर्ग को प्रसन्न रखना है तो जिन्दगी कभी बदली नहीं जा सकती। लेकिन आदर बहुत मिल सकता है। साधु को दो बातों में से एक बात तय करनी है, या तो वह जिन्दगी को बदलने के लिए आतुर होगा या आदर को लात मार देगा। हो सकता है; लोग उसे सन्त कहने न आयें। फिर हो सकता है, न कहें "महात्मा"—पहले हम तुम्हें—"महात्मा" समझते थे, अब बात खत्म हो गयी। अब तुम महात्मा नहीं हो।

यह हमें पता नहीं है, समाज की जो मकेनिज्म है, समाज का जो यन्त्र है, वह बहुत तरकीब से चलता है। वे तरकीब ये है कि "समाज का न्यस्त स्वार्थ" जिसके हाथ में स्वार्थ के मुद्दे हैं। वह नहीं चाहता कि समाज की खराबी बदले। चाहे धर्मगुरु हो, चाहे राजगुरु हो, चाहे राजनैतिक हो, चाहे धनी हो, चाहे और तरह के प्रतिष्ठित लोग हों, जो नहीं चाहता कि समाज बदले। वे समाज की प्रतिभा को आदर देते हैं रिश्वत में, ताकि समाज की प्रतिभा समाज को बदलने की कोशिश न करे। अगर समाज की प्रतिभा समाज को बदलने की कोशिश करती है तो वह अनादर देना शुरू कर देता है। और एक-एक आदमी के भीतर इतना अहंकार है, कि वह सोचता है कि झंझट की झंझट लो और पूजा भी छोड़ो, बिल्कुल

पागलपन है ।

लेकिन साधु से हम यह आशा कर सकते हैं कि वह आदर की फिक्र नहीं करेगा । क्योंकि आदर की फिक्र वही करता है जो अपने अहंकार का पोषण करना चाहता है । आदर की क्या फिक्र है ? आदर की चिन्ता का अर्थ एक ही है कि जो अपने अहंकार का पोषण करना चाहता है । आदर अहंकार का भोजन है । मैं आपसे आदर मांगूगा जो मुझे अहंकार का भोजन भरना है । और अगर अहंकार का भोजन मुझे भरना है तो कहां की आत्मा ! कहां का परमात्मा ! कहां की शांति ! कहां का आनन्द ! अहंकार ही तो दुख है ।

हिन्दुस्तान के साधु को समझना है कि बहुत पूजा तुम ले चुके । अब हम उसी को साधु कहेंगे जो पूजा को इन्कार कर देंगे । अब हम उसी को साधु कहेंगे जो अनादर सहने को तैयार है, जो आदर की चिन्ता छोड़ता है । अब उसी को हम साधु कहेंगे जो समाज की जिन्दगी को बदलने के लिए आतुर है । अब हम उसी को साधु कहेंगे जो परमात्मा के इस काम को करने को आगे आता है ।

अब साधु से कोई प्रवचन नहीं सुनने हैं । अब साधु से जीवन में क्रांति भी चाहिए । हिन्दुस्तान के साधु ने क्रांति तो नहीं लायी । हिन्दुस्तान का साधु प्रति-क्रांतिवादी (रिएक्शनरी) साबित हुआ है । हिन्दुस्तान का साधु जितने जोर से क्रांति को रोकता है उतना कोई भी नहीं रोकता । इसलिए क्रांति का रुकना जिसके हित में है, वे साधु को आदर देते हैं । क्योंकि साधु मुद्दा है क्रांति को रोकने का । वह गढ़ है जहां से क्रांति रुकती है । इसलिए हिन्दुस्तान में पांच हजार वर्षों में एक भी क्रांति नहीं हुई । न कोई वैचारिक क्रांति, न कोई शैक्षणिक क्रांति, न कोई सामाजिक क्रांति, न कोई राजनैतिक क्रांति, न कोई सांस्कृतिक क्रांति । दुनिया के दूसरे मुल्क में क्रांतियां होती रहीं । हिन्दुस्तान में क्रांति क्यों नहीं हुई ? हिन्दुस्तान में नहीं हुई । क्रांति और समाज के बीच में साधु की बड़ी शक्तिशाली जमात खड़ी है । जो और कहीं दुनिया में भी नहीं । फ्रांस में क्रांति हो सकी । रूस में क्रांति हो सकी । साधु की जमात नहीं हैं समाज और क्रांति के बीच में ।

साधु एक अद्भुत काम कर रहा है । रेल के डिब्बे में बफ्फर लगे होते हैं बीच में, उसकी वजह से धक्का नहीं लगता । कार में स्प्रिंग लगे होते हैं, उनकी वजह से रास्ते के झटके नहीं लगते साधु इस समाज मे बफ्फर और स्प्रिंग का काम कर रहा है । उसकी वजह से कोई धक्का समाज तक नहीं पहुंच पाता ।

यह हालत बदलनी पड़ेगी । युवक इसको बदल सकते हैं । कैसे बदल सकते हैं ? एक तो निर्णय करें कि साधु को आदर तब देंगे जब वह जिन्दगी में रस लेगा और जिन्दगी को बदलने के लिए तैयार होगा। जिन्दगी को बदलने को यह प्रार्थना और साधना मानेगा । तब हम आदर देंगे, और नहीं देंगे ।

अगर युवकों की जमात यह तय कर ले तो साधु को दो वर्ष के भीतर रास्ते पर लाया जा सकता है । कहे कि तुम रास्ते पर आ जाओ और जिन्दगी को बदलने की फिक्र करो । लेकिन युवक एक भूल कर रहे हैं । युवक साधु से दूर चले गये हैं । वृद्धजन साधु के चरण छू रहे हैं । युवक साधु के पास ही नहीं जाते हैं । युवकों को साधु के पास जाना चाहिए । पैर छूने नहीं, साधु को जिन्दगी और समाज में खींच लाने के लिए । और जरूर पैर छूना, जिस दिन साधु जिन्दगी को बदलने को आतुर हो जाये, उसे आदर देना । क्योंकि वह बहुत अनादर झेलने को राजी हो रहा है । लेकिन वह करना पड़ेगा । कितनी बड़ी जमात है इन साधुओं की । युवक निर्णय करेंगे और एक सत्याग्रह की धारणा उनके मन में होगी कि हम साधु को जिन्दगी में खींच कर लायेंगे तो बदलाहट हो सकती है ।

बर्नार्ड रसेल ने एक वक्तव्य दिया है, एक लेख लिखा है । उस लेख का शीर्षक मुझे पसन्द पड़ा । उस लेख के शीर्षक में लिखा—"दी हार्म दैट गुड मैन डू" मैं बहुत हैरान हुआ । वह कैसा शीर्षक है ? नुकसान जो अच्छे आदमी पहुंचाते हैं । अच्छा आदमी क्या कभी नुकसान पहुंचाता है ? कभी सुनी आपने यह बात ? बुरे आदमियों ने उतना नुकसान कभी नहीं पहुंचाया । बुरे आदमी कमजोर होते हैं । बुरे आदमी की ताकत क्या है ? बुरा आदमी दुनिया को ज्यादा नुकसान कभी भी नहीं पहुंचा सकता क्योंकि बुरे आदमी के पास ताकत नहीं होती । आत्मा नहीं होती । दुनिया को नुकसान हमेशा अच्छा आदमी पहुंचाता है । क्योंकि अच्छे आदमी के पास ताकत होती है, बल होता है । अच्छा आदमी दुनिया को लाभ भी पहुंचा सकता है, नुकसान भी । नुकसान वही पहुंचा सकता, जो लाभ पहुंचा सकता । जो लाभ नहीं पहुंचा सकता वह नुकसान भी नहीं पहुंचा सकता । उसको समझ लेना जरूरी है । बुरा आदमी कोई लाभ नहीं पहुंचा सकता दुनिया को । तो ध्यान रहे जिसकी लाभ पहुंचाने की कोई ताकत नहीं उसकी नुकसान पहुंचाने की कोई ताकत नहीं हो सकती । और जितने दूर तक वह नुकसान पहुंचा सकता है उतने दूर तक वह लाभ पहुंचा सकता है । लाभ और नुकसान पहुंचाने की ताकत एक होती है । उससे लाभ भी पहुंचाया जा सकता है और नुकसान भी पहुंचाया जा सकता है ।

अच्छा आदमी नुकसान पहुंचा सकता है क्योंकि अच्छा आदमी लाभ पहुंचा सकता है । पहला नुकसान तो यह पहुंचा सकता है कि लाभ न पहुंचाये । बस रुक जाये । लाभ न पहुंचाये तो भारी नुकसान हो जाये और उससे कहने भी नहीं जायेगा, आपने हमें नुकसान पहुंचाया । (क्योंकि निगेटिव) उसने पॉजीटिव नुकसान नहीं पहुंचाया ।

समझ लो कि गांधी भी संन्यासी हो जाते, और हिमालय चले जाते तो कोई जिम्मा नहीं ठहराया जा सकता कि गांधी ने आपको नुकसान पहुंचाया । आज हम कहते हैं कि गांधी ने हमको कितना ज्यादा फायदा पहुंचाया । लेकिन अगर गांधी

गेरुआ वस्त्र पहन के जंगल में चले जाते तो आप कहने नहीं जाते कि आपने कितना नुकसान पहुंचाया। क्योंकि (निगेटिव) नुकसान का कोई पता ही नहीं चलता कि कितना पहुंच जाता है। एक गांधी के हट जाने से हिन्दुस्तान की जिन्दगी और होती। बिल्कुल दूसरी होती। हिन्दुस्तान की आत्मा ही नहीं खड़ी होती। एक गांधी के हट जाने से यह हालत हो जाती कि कितने गांधी हट गये हिन्दुस्तान के, हिसाब है आपको? अगर ये कोई भी नहीं हटते तो मुल्क और ही मुल्क हो जाता। इसकी रौनक, इसकी चमक और ही होती। इसकी प्रतिभा और ही होती। इसका बल और ही होता। लेकिन नहीं वे हट गये। उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। लेकिन हम समझ सकते हैं कि नुकसान पहुंचाया। वे क्यों हट गये? हमने क्यों हटने दिया? वह समाज क्यों हटने देता है, अपने अच्छे आदमी को? और ध्यान रहे, जब अच्छा आदमी हटता है तो बुरा आदमी जगह भर देता है। जगह खाली नहीं रहती इस दुनिया में। वैक्यूअम नहीं रहता कि आप हट गये तो जगह खाली रहे, जब अच्छा आयेगा तब भर जायेगा। बुरा आदमी चारों तरफ मौजूद है। वह प्रतीक्षा कर रहा है कि महाराज आप हटो, हम आपकी जगह आयेंगे। वह बुरा आदमी "हटने वाले आदमी की" बहुत प्रशंसा करता है कि आप बहुत महात्मा पुरुष हैं। आप हट गये तो बड़ा अच्छा किया। क्योंकि अच्छा आदमी समाज में हो तो बुरा आदमी समाज का नेतृत्व ग्रहण नहीं कर सकता है। लेकिन अच्छा आदमी भाग जाता है बुरा आदमी उसकी जगह बैठ जाता है।

हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञ इस बात से बहुत खुश हैं कि हिन्दुस्तान का अच्छा आदमी जंगल में चला जाता है। क्योंकि जंगल जाता हुआ अच्छा आदमी बुरे आदमी के लिए जगह खाली कर जाता है। इसलिए तो उसको गांव के बाहर लेने के लिए और नमस्कार करने जाते हैं। गांव के बाहर राजनीतिज्ञ जाता है। मिनिस्टर जाता है। फलां साधु आ रहे हैं स्वागत करें। गांव के बाहर विदा करने भी जाता है। वह जानता है कि अच्छे आदमी ने बड़ी कृपा की। यह होता जिन्दगी में तो हम यहां नहीं हो सकते थे जहां हम हैं। यह बहुत मुश्किल था। बुरे आदमी के लिए जगह खाली की जा रही है।

भारत के भविष्य को बदलना है तो अच्छे आदमी को रोकना पड़ेगा। मजबूती देनी पड़ेगी कि खड़े रहो, भागो मत। क्योंकि बुरा आदमी हम पर बहुत दिनों से नेतृत्व कर रहा है। वह हमें गढ़े में गिराये जा रहा है। अच्छे आदमी को खड़ा रहना पड़ेगा जिन्दगी में। सब रूपों में अच्छे आदमी को खड़ा होना पड़ेगा। अच्छे आदमी ने नुकसान पहुंचाया।

क्या हम अच्छे आदमी को जिन्दगी में लाने की व्यवस्था कर सकते हैं? यह युवक क्रांतिदल को सोचना और विचारना चाहिए। उस सम्बन्ध में चिन्तन होना चाहिए। सारे मुल्क में एक डायलॉग की जरूरत है। पूरे मुल्क में युवक सोचें।

एक-एक यूनिवर्सिटी केम्पस में सोचें अच्छे आदमी को कैसे रोकें। अच्छे आदमी के भागने की आदत इतनी प्राचीन हो गई है जि उसे तोड़ना मुश्किल है। भागने में सुख भी बहुत है क्योंकि भाग गया कि झंझटों के बाहर हो गया। युद्ध के मैदान पर लड़ना कष्टपूर्ण बात है भाग जाना हमेशा आसान है। जिन्दगी के मैदान पर यही हालत है। युद्ध के मैदान पर हम कायरों को सम्मान नहीं देते, इसलिए बहादुर आदमी युद्ध के मैदान पर खड़ा रहता है। जिन्दगी के मैदान में हम भागने वाले कायरों को सम्मान देते हैं। इसलिए जिन्दगी में जिसको सुविधा मिलती है वह निकल भागता है।

जिन्दगी के संघर्ष में भी हमें उनको ही आदर देना है। हमें आदर का 'वैल्यूएशन' पूरी की पूरी 'वैल्यूज' बदल देना है कि जो जिन्दगी के मैदान में खड़े होकर लड़ते हैं, हां साधु की तरह लड़ते हैं, असाधु की तरह नहीं। साधु की तरह लड़ने का मजा और है। असाधु की तरह लड़ना बड़ा दुखद है। साधु की तरह लड़ना बड़ा आनन्दपूर्ण है। और जो साधु की तरह नहीं लड़ सकते और असाधु की तरह लड़ने से बचते हैं वे भाग जाते हैं। लेकिन न वे साधु रह जाते हैं न वे असाधु रह जाते हैं। वे जिन्दगी को ही छोड़कर भाग गये, जहां कसौटी थी, जहां परीक्षा थी।

क्या हिन्दुस्तान के जीवन में यह क्रांति लाई जा सकती है कि अच्छे आदमी को रोक सकें?—और जो अच्छा आदमी चला गया उसे कहें, कि लौटो, जिन्दगी को बदलो। जिन्दगी यहां बहुत गन्दी हो गयी। बगीचा उजड़ गया। फूल खिलने बन्द हो गये। तुम अपनी शांति कब तक खोजते रहोगे? खोज ली है तो आ जाओ। और क्या यह नहीं हो सकता कि हमारी अशांति दूर करना भी आंतरिक शांति को खोजने का मार्ग हो? मुझे तो दिखाई यह पड़ता है कि जो आदमी दूसरे का दुख दूर करने में लग जाता है उसके अपने दुख तत्काल समाप्त हो जाते हैं। जब तक आदमी अपना दुख दूर करने में लगा रहता है तब तक दुख बना रहता है। और जिस दिन वह संकल्प करता है कि दूसरे का दुख तोड़ूंगा उसी दिन पाता है कि भीतर के सब दुख मिटने शुरू हो गये। क्योंकि सबसे बड़ा दुख? दुख में केन्द्रित होना है ऐगो सैन्टर्ड होना है। इससे बड़ा न कोई दुख है। और जो आदमी अपने पर ही 'सेन्टर' बनाकर जीता है कि मुझे अपना दुख दूर करना है, अपनी अशांति दूर करनी है, अपना तनाव दूर करना है, वह आदमी दुखी से दुखी होता चला जाता है। क्योंकि सबसे बड़ा दुख का कारण है "मैं" (आई)।

अगर एक आदमी जिन्दगी के चारों तरफ के दुख को दूर करने में लग जाता है, वह पाता है कि मैं तो टूट गया, मैं तो खो गया, मैं तो गया, अब मैं हूं कहां? इतने दुख हैं जिन्दगी में कि किससे कहूं मैं अशांत हूं? और अगर एक आदमी दूसरे के दुख दूर करने में लग जाये, संलग्न हो जाये तो बड़े आश्चर्य की घटना

घटती है कि उसका दुख मिटना शुरू हो जाता है। क्योंकि वह खुद मिटना शुरू हो जाता है। लेकिन यह ख्याल पैदा करना पड़ेगा, यह खबर ले जानी पड़ेगी गांव-गांव एक-एक आदमी तक। केवल खबर नहीं ले जानी पड़ेगी इसके लिए कुछ सक्रिय कदम उठाने पड़ेंगे। मैं तो चाहता हूं कि हजार-युवक एक-एक साधु के पास जाकर डेरा डाल दें, घेराव डाल दें, और कहें कि भागो मत, जिन्दगी में लौट आओ, हमें बदलो। यहां जिन्दगी बहुत कष्ट भोग रही है। यहां जिन्दगी में बहुत अनीति है, बहुत व्यभिचार है, बहुत अनाचार है, उसको तोड़ो। इसको कैसे तोड़ा जा सकता है सोचो और बाहर आओ। मन्दिरों में अब हम तुम्हें नहीं रहने देंगे, क्योंकि हम पूरे समाज को मन्दिर बनाना चाहते हैं। यहां आओ ये बंद मन्दिर छोटे-छोटे मन्दिर नहीं चलेंगे। हम पूरे समाज को मन्दिर बनाना चाहते हैं। एक बार हिन्दुस्तान के अच्छे आदमी को जिन्दगी में रस लेने के लिए आतुर करना है, सम्मान की धारणा बदलनी है। और ध्यान रहे सम्मान की धारणा बदलते ही क्रांति आ जाती है। हमें पता ही नहीं कि आदमी का दिमाग कैसे चलता है?

राहुल सांकृत्यायन पहली दफे रूस गये उन्नीस सौ बत्तीस या उन्नीस सौ तैंतीस में। उनके हाथ बहुत खूबसूरत थे। उनके हाथ बहुत कोमल और मुलायम थे--स्त्रैण थे कहना चाहिए—हाथ बिल्कुल स्त्रियों जैसे थे। कभी कोई काम नहीं किया था। हाथ में मजदूर जैसे कोई गट्ठे नहीं थे। वहां जो भी उनका हाथ देखता था इतना खूबसूरत, इतना कोमल, इतना मुलायम, इतना मखमली हाथ! वे पहली वक्त रूस गये। जिस व्यक्ति ने स्टेशन पर उनका स्वागत किया, उसने हाथ मिलाया और हाथ खींच लिया और इस तरह हाथ खींच लिया कि वे हैरान हो गये कि बात क्या है? उन्होंने पूछा कि क्या बात है? उसने कहा कि आपको सब जगह तकलीफ होगी, जो भी आप से हाथ मिलायेगा, वह समझ जायेगा कि यह आदमी मुफ्तखोर है। यह हाथ इतना लोच है कि इसने कभी काम नहीं किया। आप रूस में हाथ जरा सम्भालकर मिलाना। हम उस आदमी को आदर देते हैं जिसके हाथ में कुछ मजदूरी का सबूत हो, नहीं तो हम मुफ्तखोर समझते हैं। आप मुफ्तखोरों में से एक मालूम पड़ते हो। राहुल ने लिखा है कि रूस भर में डरता रहा—हाथ की प्रशंसा की तो बात दूर जिसने भी हाथ मिलाया। मुझे उसके चेहरे पर लगा कि वह आदमी मेरे हाथ के बाबत में अच्छा निर्णय नहीं ले रहा। आश्चर्य की बात है हम उस आदमी को सबसे ज्यादा आदर देते हैं जो सबसे कम श्रम करता हो। तो फिर ठीक है, तो सबसे कम श्रम करने वालों को सबसे ज्यादा आदर दोगे और अगर मुल्क कायर और सुस्त होता जाये तो रोना क्यों? रोने की क्या जरूरत?

हमारा मूल्यांकन गलत है। नेहरूजी की बाबत मुझे पता है कि उनके बाप के बाप चपरासी थे, लेकिन उनका उन्होंने उल्लेख नहीं किया। लेकिन चपरासी

का कैसा उल्लेख किया जाये? मोतीलालजी की बहुत चर्चा है उन्होंने लेकिन अपने दादा की बिल्कुल चर्चा नहीं की। बात ही नहीं उठाई। क्योंकि दादा एक चपरासी थे उसकी बात ही नहीं उठाई क्योंकि चपरासी का पोता होना बड़ी दुखद बात है। और एक व्यक्ति ने यह बात उठाई एक भाषण में कि नेहरूजी के दादा चपरासी थे तो नेहरूजी बहुत नाराज हुए, और कहने लगे कि तुम परिवार के सम्बन्ध में खोज (रिसर्च) करते हो? मैं भी नहीं चाहता कि किसी के परिवार के सम्बन्ध में खोज करें। यह अच्छे आदमी का लक्षण नहीं। लेकिन चपरासी होना कोई बुराई भी नहीं है। चपरासी होने में क्या बुराई है? श्रम में बुराई है तो चपरासी होने में बुराई है।

मैं उदाहरण के लिए कह रहा हूं हमारे मूल्य क्या हैं? समाज कैसे निर्मित होता है? अगर श्रम को हम आदर देंगे तो एक संकल्पशाली और श्रमिक समाज निर्मित होगा। अगर श्रम शून्य को हम आदर देंगे--ऐसे लोगों को आदर देंगे जो श्रम नहीं करते तो एक कायर, सुस्त और ढीला-ढाला समाज निर्मित होगा। अगर हम अच्छे लोगों को आदर देंगे वह जिन्दगी में जो सक्रिय हों तो वे लोग जिन्दगी में सक्रिय होंगे। और अगर हम भागते हुए लोगों को आदर देंगे तो अच्छे लोग भाग जायेंगे। जिन्दगी में सक्रिय भी हो और अनादर भी पावे तो बहुत कम लोग इतनी हिम्मत जुटा पायेंगे--वे भाग जायेंगे।

आपको शायद पता नहीं कि गांधी को हजारों चिट्ठियां पहुंचती थीं कि आप महात्मा होकर कहां पर ये गोरख-धन्धे में पड़े हो? छोड़ो इसको। अपने परमात्मा की खोज करो। गांधी हिम्मतवर आदमी रहे होंगे—इन चिट्ठियों की फिकर नहीं की। वैसे, ये चिट्ठी वाले उनको लोग रास्ता सरलता का बता रहे थे। कहां की झंझट में पड़े हो? फिजूल जेल जाओ—परेशान हो—ये सब दिक्कतें उठाओ और महात्मागिरी में भी सन्देह पैदा कराओ? ये जो यूथफोर्स के युवक और युवतियां इस तरफ थोड़ा ध्यान दें और साधु को जिन्दगी की क्रांति के लिए सैनिक बना सकें तो हिन्दुस्तान बदल सकता है। यह है पहली बात—और एक दूसरी बात, फिर मैं अपनी बात यहां खत्म कर दूंगा।

हिन्दुस्तान में अच्छे आदमी को सक्रिय होना है। एक सूत्र—और दूसरा सूत्र—हिन्दुस्तान अब तक शब्दों में सोचने का आदी रहा है—तथ्यों में नहीं। हम हमेशा शब्दों के खेल में खो जाते हैं। हमें याद ही नहीं रहता—शब्द में और तथ्य में बहुत फर्क है। तथ्य, फैक्ट्स एक बात है और शब्द बिल्कुल ही दूसरी बात है। लेकिन यह हमारी आदत इतनी पुरानी हो गयी है कि हम सब शब्दों में खो जाते हैं और शब्दों में विचार करने लगते। शब्दों की अलग यात्रा शुरू हो जाती है और तथ्य पड़ा रह जाता है तथा उसकी हमको फिकर ही नहीं रहती कि तथ्य क्या है? फैक्ट क्या है? धीरे-धीरे शब्दों का एक जाल खड़ा हो जाता है और जिन्दगी उदास

होती चली जाती है। जिन्दगी बदलती है—तथ्यों से। जिन्दगी शब्दों से नहीं बदलती है। क्योंकि हम शब्दों के आदी हो गये हैं—तथ्यों की हमारी आदत ही नहीं रही। इसलिए भारत में विज्ञान पैदा नहीं हो सका। साइंस पैदा नहीं हो सकी। फिलॉसफी तो पैदा हुयी—लेकिन फिलॉसफी तो शब्दों का खेल है। साइंस पैदा नहीं हुई क्योंकि साइंस तथ्यों से चलती है—"फैक्ट्स" से चलती है। हिन्दुस्तान का भविष्य बुरे से बुरा होता चला जायेगा अगर हिन्दुस्तान में साइंटिफिक माइंड पैदा नहीं हुआ।

इसलिए "यूथफोर्स" के मित्रों से मैं कहूंगा कि दूसरी मेहनत यह करो कि हिन्दुस्तान में एक वैज्ञानिक धारा हो जाये। बहुत फिलॉसफी हमने सोच ली। फिलॉसफी हमें बहुत गड्ढे में ले गई। बहुत खतरनाक हो गया फिलॉसफी का मामला। हमने शब्दों की खाल इतनी उखाड़ ली कि हम भूल ही गये कि हाथ में शब्द ही रह गये। और उनकी खाल उखाड़ते ही चले गये और बारीक-से-बारीक ही करते गये तर्क को।

अभी मैं एक किताब देखता था। एक पश्चिमी यात्री "डेनिश" भारत आया। उसने स्वामी शिवानन्द की एक किताब पढ़ी। उस किताब में लिखा हुआ है कि ओऽम् का पाठ करने से सब तरह की बीमारियां तत्काल दूर हो जाती हैं। ऐसी तो हमारे पास बहुत किताबें हैं कि नमोकार मन्त्र पढ़ो और सब दुख दूर हो जाते हैं, सब बीमारियां दूर हो जाती हैं। बल्कि यह भी लिखा है कि ओऽम् का पाठ कोई पूरी निष्ठा से करे तो मृत्यु को भी विजय कर सकता है—मृत्यु को भी जीत सकता है। डेनिश ने वह किताब पढ़ी तो उसको लगा कि यह तो बड़ी अद्भुत बात खोज ली है—स्वामी शिवानन्द ने। अगर इस राज का पता चल जाये तो सारी दुनिया में मृत्यु को जीता जा सकता है—बीमारियां खत्म। ये मेडिकल कालेज खड़े करो और आयुर्वेद और एलोपैथिक और होमियोपैथी—ये सब पागलखाने बन्द करो—उनकी क्या जरूरत है? बात खत्म हो गई। एक छोटा-सा सूत मिल गया। यह तो बिल्कुल "फाउंडेशनल" बात मिल गई इस आदमी को। शब्द के जाप करने से सब ठीक हो जाता है। वह भागा हुआ स्वामी शिवानन्द के आश्रम गया। उसने जाकर कहा कि मैं इसी वक्त स्वामी को मिलना चाहता हूं। मैं एक क्षण खोना नहीं चाहता। क्या पता मैं मर जाऊंगा और वह पाठ ओऽम् का पाठ न सीख पाऊं। मुझे स्वामीजी से अभी मिला दीजिए। स्वामीजी के सेक्रेटरी ने कहा अभी मिलना नहीं हो सकता। स्वामीजी बीमार हैं, उनकी डाक्टर चिकित्सा कर रहा है (तालियां)। वह आदमी कहने लगा, क्या आश्चर्य? स्वामीजी कभी बीमार नहीं पड़ सकते। स्वामीजी बीमार कैसे पड़ सकते हैं? स्वामीजी को तो तरकीब मिल गई है, बीमार तो हो ही नहीं सकते! वे कभी मर भी नहीं सकते। सेक्रेटरी से कहा तू झूठ बोल रहा है। सेक्रेटरी ने कहा मैं झूठ क्यों बोलूंगा? स्वामीजी बीमार हैं। डाक्टर अभी उनको देखने गये हैं। आपको घड़ी भर रुकना

पड़ेगा। वह डेनिश तो चकित हो गया। क्योंकि स्वामी शिवानन्द साधु होने के पहले डाक्टर थे। एक डाक्टर को तो इतनी अक्ल होनी चाहिए कि क्या लिख रहा है? क्या कह रहा है? लेकिन हिन्दुस्तान में यह सवाल कोई नहीं उठायेगा—स्वामी शिवानन्द के पास जाकर। कोई भी किताब पढ़ लेगा और कहेगा "वाह-वाह" क्या बढ़िया बात कही है कोई सवाल नहीं उठायेगा। कोई जाकर शिवानन्द को पकड़ नहीं लेगा कि इसका जवाब दीजिए और प्रयोग करके बताइए कि तथ्य क्या है? अगर ओऽम् के पाठ से मृत्यु को जीता जा सकता है तो तुम्हारे ऋषि-मुनियों को कभी मरना नहीं चाहिए—एक भी मौजूद नहीं है।

लेकिन तथ्यों में हम सोचते नहीं। फैक्ट्स में हम सोचते नहीं और मरते चले जाते हैं। बेवकूफी की बातें हम दुहराते चले जाते हैं। कभी कोई खड़ा होकर नहीं कहेगा कि यह क्या कह रहे हो? इसका क्या मतलब है? क्या अर्थ हुआ? वह आदमी सोचकर आया था।

एक बहुत जिसको एँलिक्सर कहें, अमृत की तरकीब मिल गई। पारस पत्थर मिल गया, तो सब कुछ जिन्दगी बदल जायेगी। वह आदमी एकदम उदास हो गया। देखने गया तो उसने देखा कि स्वामी शिवानन्द को दो आदमी पकड़ कर उठाते हैं तो वे उठते हैं। अरे! उसने कहा—यह क्या हो गया? और उसने देखा कि यह आदमी तो जल्दी मरेगा। ज्यादा दिन टिकने वाला नहीं। हालत बिल्कुल खराब है। मगर हम कहेंगे कि यह आदमी संदेह करता है, स्वामी पर! यह आदमी गड़बड़ है। विश्वास करना चाहिए, सन्देह नहीं करना चाहिए। स्वामी कहते होंगे तो ठीक ही कहते होंगे और हममें से कोई धार्मिक पुरुष बैठा होता तो वह कहता कि तुम समझते नहीं। स्वामी लीला देख रहे हैं, बीमार होने की। ये सब लीला है, ये सब माया का खेल चल रहा है! तुम समझ नहीं रहे। डाक्टर भी लीला है! स्वामी तो अमर हैं! स्वामी कहां बीमार हैं। वे तो अमर हैं वे तो सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, वे कभी बीमार नहीं पड़ते।

इतना कमीनापन, इतनी कनिंगनैस हमारे दिमाग में है जिसका कोई हिसाब नहीं। हिन्दुस्तान के युवकों को इस कमीनेपन को आग लगा देनी है और साफ सोचने की हिम्मत पैदा करनी चाहिए। कोई फिकर नहीं, हमारे बहुत-से चैरिशड इलीयूजन्स, हजारों साल के, इसमें आग लग जायेगी। लेकिन कोई फिकर नहीं, जिन्दगी के जो नग्न तथ्य हैं, सीधे और साफ, उन्हें हम पकड़ सकेंगे तो उनको बदलने के लिए कुछ कर सकेंगे।

बीमारी बदली जा सकती है! और इस बात की सम्भावना है, किसी दिन आदमी मरने पर रोक लगा दे। लेकिन ओऽम् के पाठ से यह नहीं होगा। यह सब सम्भावना है, इस बात की सम्भावना है कि आदमी एक ऐसा स्वास्थ्य निर्मित कर ले कि आज नहीं कल बीमारी असम्भव हो जाये। अगर बीमारी कम हो सकती

है, ज्यादा हो सकती है, तो असम्भव भी हो सकती है, लेकिन ओऽम् के पाठ करने से यह नहीं होगा। यह तो बीमारी की कैज्यूएलिटी को खोजने से, यह तो बीमारी के क्या कारण हैं, स्वास्थ्य का क्या राज है, उस दिशा में यह खोज करने से, आज नहीं कल, हो सकता कि मनुष्यता स्वस्थ जिये। बीमारी एक रेयर घटना हो जाये, कभी कोई आदमी बीमार पड़े। आजकल उल्टा है, कभी कोई आदमी स्वस्थ होता है। इससे उल्टा हो सकता है। इस बात की सम्भावना है कि मृत्यु को भी बहुत दूर तक ठेला जा सके। अनन्त तक ठेला जा सके, लेकिन ओऽम् के पाठ से यह नहीं हो जायेगा, और जो कौम यह समझती रहेगी कि ओऽम् के पाठ से यह हो जायेगा, वह कौम कभी तथ्यों को नहीं खोजेगी। इधर बीमारी में मरेगी, उधर किताबों में लिखेगी कि ओऽम् के पाठ से सब बीमारियां दूर हो जाती हैं। हमसे ज्यादा कम उम्र का कोई समाज नहीं। और हमसे ऊंची बातों का किसी को पता नहीं कि ओऽम् के पाठ से सब ठीक हो जाता है। इन दोनों कॉनट्राडिक्शन्स को कभी देखते हैं? फिर कभी ख्याल आता है कि शायद हम बहुत अस्वस्थ हैं, कि क्या खोज भी नहीं पाते। इसलिए इस तरह की बेईमानी की तरकीबें किताबों में लिख के मन को राहत देते हैं सन्तोष देते हैं कि अरे ओऽम् के पाठ से सब ठीक हो जाता है।

नहीं इस तरह नहीं चल सकता है आगे। वैज्ञानिक बुद्धि चाहिए। और वैज्ञानिक बुद्धि पैदा होती है "थिंकिंग इन फैक्ट्स" तथ्य क्या है, उसे पकड़ो और उघाड़ो। शब्दों की खोल को छोड़ो। शब्द कितने ही पुराने, कितने ही स्केएर्ड हों, कितने ही महापुरुषों के कहे हुए हों, शब्द, शब्द हैं। उनको खोलो—पीछे—और तथ्य न मिले तो शब्दों को फेंक दो। हिन्दुस्तान के ऊपर शब्दों का इतना भारी कचरा जमा हुआ है उन शब्दों को उघाड़कर अलग कर देना है। नीचे तथ्य कहां मालूम कि कहां खो गये हैं, उनको पकड़कर खोज निकालना है, तो शायद हम जिन्दगी को बदलने का कुछ ख्याल कर सकें।

लेकिन हर तरफ यह बात है। आदमी गरीब है तो हम कहेंगे कि पुनर्जन्म की वजह से गरीब है। कोई फिकर नहीं करेगा कि गरीबी की क्या वजह है। खोजें, जायें, देखें, गरीब आदमी क्यों है? हमें तो पता है, शब्द हमें मालूम है कि पिछले जन्म में बुरे कर्म किये हैं, इसलिए वह गरीब हैं। एक साधु से लेकर पूरे पचास लाख साधु पूरे मुल्क को समझा रहे हैं। आदमी इसलिए गरीब है कि उसने पिछले जन्म में बुरे कर्म किये हैं। इस झूठ को तोड़ने के लिए कोई खड़ा नहीं है कि यह सरासर झूठी बात है। लेकिन यह झूठ, पूंजीवाद के टिकने का आसरा बनता है। इसलिए पूंजीपति कहेगा कि यह ठीक कह रहा है महाराज। यह तो है असली बात कि हम अपने पिछले जन्म की वजह से धनपति हैं। वह आदमी पिछले जन्मों के कर्मों की वजह से गरीब है। इसमें हम क्या कर सकते हैं वह क्या कर

सकता है? अच्छे कर्म करेगा तो वह धनपति हो जायेगा, हम आगे बुरे कर्म करेंगे तो गरीब हो जायेंगे। सुरक्षा समाज की बन गई और पचास लाख साधु ये सुरक्षा बना कर, दूसरों को बना रहे हैं। इसलिए मैं कहता हूं कि ये बफ्फर हैं, वे स्प्रिंग का काम कर रहे हैं। वे चोट ही नहीं लगने देते। गरीब आदमी को ख्याल नहीं हो पाता कि गरीबी सामाजिक व्यवस्था का परिणाम है। अमीर आदमी को भी ख्याल ही नहीं हो पाता कि अमीरी भी सामाजिक व्यवस्था का परिणाम है। और मजे की बात यह है कि गरीब भी दुखी है अमीर भी दुखी है। और दोनों का दुख सामाजिक व्यवस्था का परिणाम है।

मैं आपसे यह कहना चाहता हूं—जब तक समाज गरीब है वहां तक कोई अमीर आदमी सुखी नहीं हो पाता। यह असम्भव है कि पूरा गांव बीमारी से भरा हो, केन्सर और कोढ़ गांव भर में फैली हो और एक आदमी अपने बंगले में परकोटा उठाकर बैठ सके। यह असम्भव है। और बचेगा तो न रात सो सकेगा न दिन सो सकेगा। रात भर पहरेदार लगाकर रखने पड़ेंगे, कि कोई घुस न जाये, इतनी चिन्ता में रहेगा सुरक्षा की कि सुरक्षा खत्म हो जायेगी। सुरक्षा में इतना चिन्तित हो जायेगा कि कैसे सुरक्षा करूं? अगर आप के पास वह पैसा है तो आप आसानी से पैसे को नहीं बचा सकोगे। चारों तरफ इन्तजाम करना पड़ेगा कि उस इन्तजाम में मैं घिर जाऊं और कैदी हो जाऊंगा। और जिन्दगी एक मुसीबत में है गरीबी की वजह से। दोनों मानते हैं कि पिछले जन्म का मामला है इसलिए कुछ किया नहीं जाता। और पिछले जन्म का मामला आपको कैसे पता चला? कहा कि किताब में लिखा है।

बड़ी मजे की बात है कि किताब में लिखा होने से कोई बात सच हो जाती है। पहले तो किताब में लिखे से सच हो जाती थी। आजकल तो बात और बदल गयी। अखबार में लिख जाये तो सच हो जाती। पहले तो कम से कम थोड़ा सा हिसाब था कि कृष्ण की किताब है। कृष्ण कम से कम सच ही कहेगा। लेकिन 'जन्मभूमि' भी सच हो सकती है। फिर बड़ा मुश्किल। मामला मुश्किल है। (तालियां) अक्षर, छपा हुआ कुछ, हमें ऐसा प्रभावित करता है कि छपा हुआ होने का मतलब सत्य होना होता है। छप गया कि सत्य हो गया। इस छपे अक्षर का जादू खत्म करना चाहिए। शब्दों का जादू खत्म करना चाहिए। तथ्य खोजने चाहिए। क्या फैक्ट्स हो सकता है? क्या तथ्य हो सकता है? लेकिन तथ्यों की बाबत हमारी कोई खोज नहीं। कोई खोज नहीं है। एक समझदार से समझदार आदमी कुछ भी आके कह देगा फलां आदमी ने कहा है, यह किताब में लिखा है, फलां अखबार में छपा है। वह कोई फिकर नहीं करेगा कि तथ्य क्या हो सकता है?

शब्दों में जीने वाला समाज झूठ में जीने लगता है। अगर समाज को सत्य

की तरफ ले जाना है तो हमें तथ्य को, शब्द की चाल को तोड़कर, तथ्यों की खोज करनी चाहिए। यह दूसरी बात करना चाहता हूं । अच्छे आदमी को आतुर करो जिन्दगी को बदलने को । और पूरे समाज को तैयार करो कि वह तथ्यों को देखे। शब्दों में अब और न भरमाये। अगर यह दो काम हो सकते हैं भारत की जिन्दगी में एक अद्‌भुत क्रांति होगी। मैं बहुत आशा से भरा हुआ हूं कि यह हो सकता है।

लेकिन यह आशा जवान आदमी की तरफ देखकर थोड़ी-सी ढीली पड़ जाती है। आशा मेरे भीतर बहुत है कि यह हो सकता है। लेकिन जब जवान आदमी देखता हूं तो बहुत ढीला पड़ जाता हूं। वह जवान आदमी ठीक से जवान ही नहीं मालूम पड़ता । वह समझता है कि जवानी का मतलब टाई-वाई लगाकर और अच्छे कपड़े पहन के घूमने निकल पड़े तो जवान हो गये। सीटी बजाना आ गया तो जवान हो गये । बेवकूफ हो—कहीं ऐसे सीटी बजाने से कोई जवान हो जाता है ? एक फिल्मी गाने की तर्ज सीखली तो जवान हो गये ? जवानी एक बहुत गहरी जिन्दगी और ताकत की बात है, और साहस की और बड़े एडवैन्चर की। जवान आदमी का मतलब है कि वह कुछ करने की प्रेरणा से भरा हो।

जवान आदमी का मतलब है कि जिन्दगी को जैसा उसने पाया वैसा ही अब नहीं छोड़ देगा। बदलेगा—नया करेगा। जवान आदमी का मतलब है जिस बगीचे में फूल नहीं उगते वहां फूल लाने की कोशिश करेगा। खप जायेगा, खाक बन जायेगा और फूलों को ला देगा। जवान आदमी का मतलब है कुछ करने की हिम्मत, कुछ करने की आकांक्षा । जवानी का मतलब है कोई प्यास, जवानी का मतलब है कोई अभीप्सा, जवानी का मतलब है यह जैसा है समाज ऐसा होने को मैं राजी नहीं हूं। बदलूंगा।

जवानी का मतलब है क्रांति रैवोल्यूशन—रैवोल्यूशनरी माइंड। तो युवक क्रांतिदल—यूथफोर्स के मित्र—युवक या युवतियां हिन्दुस्तान में एक जवान आदमी को तैयार करें। एक जवान पैदा करें और जिन्दगी को बदलें । परमात्मा की सच्ची कृपा उसे उपलब्ध हो—जो जिन्दगी को बदलने को उत्सुक है। लेकिन परमात्मा की सुनता कौन है ? वह शायद चिल्ला रहा है—बदलो ! बदलो ! बहुत कचरा इकट्ठा हो गया लेकिन कोई सुनता नहीं।

यह मेरी थोड़ी-सी बातें सुनी यह भी बड़ी कृपा है। कोशिश तो बहुत चलती है कि मेरी बात ही आप न सुन पाओ। लेकिन सुन लेते हो 'मेरी बात' यह कृपा है। मैं नहीं कहता कि मेरी बात मान लेनी चाहिए। मैंने जो कुछ कहा उस पर सोचना चाहिए। ठीक हो ठीक, गलत हो गलत। गलत हो उसको भूल जाना चाहिए । ठीक हो तो ठीक होने का एक ही मतलब है जो चीज ठीक लगी—अगर ठीक लगी है तो उसके लिए कुछ करना चाहिए अन्यथा वह ठीक नहीं है। फिर अच्छा है कि समझ लें कि ये बातें गलत हैं। भूल से भी यह ख्याल आता है कि ये बातें ठीक हैं तो आपके

आदमी होने का सबूत इससे मिलेगा कि उन ठीक बातों के लिए आप क्या करते हैं ?

इतने प्रेम से सुनी मेरी ये बातें उससे अनुगृहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

'भारत के साधु-संत' विषय पर रुइया कालेज बम्बई में, युवकों के समक्ष भगवान् श्री रजनीश द्वारा दिया गया एक प्रवचन।

प्रगतिशील कौन ?

विषय पृष्ठ संख्या

१७—प्रगतिशील कौन ?

मेरे प्रिय आत्मन्,

सुना है मैंने एक बहुत विचारशील महिला गुरड्रिस स्टेन अपनी मरण शैय्या पर पड़ी थी। आखिरी घड़ी उसने आंख खोली है और पास में बैठे अपने एक मित्र से पूछा, "आह ! अलास, ह्वाट इज दी आनसर ?" पूछा आपने पास बैठे मित्र से कि अलास, उत्तर क्या है ? पास बैठा मित्र बहुत हैरान हो गया होगा। क्योंकि सवाल न पूछा गया हो तो उत्तर कोई भी नहीं हो सकता है लेकिन मरते हुए व्यक्ति से यह भी कहना उचित नहीं था कि सवाल क्या है। कोई उत्तर न पाकर उस मरती हुई महिला ने वापस दोबारा पूछा, इन दैट केस ह्वाट इज द क्वेश्चन ? अगर सवाल का पता नहीं है, तो उस हालत में जवाब का पता नहीं हो तो उस हालत में सवाल क्या है ? लेकिन सवाल का भी कोई पता नहीं है इसलिए अच्छा हो कि इसके पहले मैं जवाब दूं, सवाल ठीक से आपकी समझ में आ जाये। हू इज प्रोग्रेसिव ? कौन है प्रगतिशील ?

पहली बात, रूढ़िवादी कौन है ? हू इज आर्थोडाक्स ? इसे बताना बहुत आसान है। आर्थोडाक्स एक पत्थर की तरह है। वजन भी है उसमें, ठोसपन भी है उसमें। अतीत का इतिहास भी है उसके पास, रूप रेखा भी है। हाथ में पकड़ा भी जा सकता है इसलिए सदा से तय है कि रूढ़िवादी कौन है। आर्थोडाक्स कौन है ? लेकिन प्रगतिशील कौन है, हू इज प्रोग्रेसिव, हवा की तरह है बात। न कोई

आकार है, न कोई रूप रेखा है और हवा को जितनी जोर से पकड़ो उतनी ही मुट्ठी के बाहर हो जाती है। और जिस दिन प्रोग्रेसिव पकड़ में आ जाता है कि यह रहा प्रोग्रेसिव उस दिन वह आर्थोडाक्स हो चुका होता है। इसीलिए पकड़ में आ जाता है। अगर परिभाषा हो सके कि कौन है प्रगतिशील, अगर यह पकड़ में आ सके, अगर यह मुट्ठी में बन्द हो जाये तो समझना कि प्रगतिशील मर चुका है। आर्थोडाक्सी सिर्फ पकड़ में आता है। वह डिफाइनेबल है, उसकी व्याख्या हो सकती है। प्रगतिशील का अर्थ ही यही है कि जिसका कोई सम्बन्ध अतीत से नहीं है, भविष्य से है। भविष्य अभी पैदा नहीं हुआ। जो पैदा हो गया है उसके सम्बन्ध में निश्चित नहीं हुआ जा सकता है कि वह क्या है और जिसका सम्बन्ध भविष्य है उसके सम्बन्ध में भी बहुत निश्चित नहीं हुआ जा सकता है कि वह क्या है। क्योंकि उसका सम्बन्ध अनबार्न से है, वह जो नहीं पैदा हुआ है उससे। हम एक बूढ़े के सम्बन्ध में निश्चित कह सकते हैं कि वह क्या है। हम एक बच्चे के सम्बन्ध में निश्चित नहीं कह सकते कि वह क्या है क्योंकि बच्चा अभी होने को है और जिस दिन हो चुका होगा उस दिन बच्चा नहीं होगा। उस दिन वह बूढ़ा हो गया होगा। तो प्रगतिशील को ठीक से पकड़ने की सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वह हवा की तरह है। और इसी से एक दूसरी बड़ी महत्वपूर्ण बात ख्याल में आ सकती है, वह यह कि दुनिया में जितनी आर्थडाक्सी है वे सब कभी प्रगतिशील थीं। बुद्ध अपने जमाने में प्रगतिशील थे लेकिन जिस दिन पकड़ में आ गये हैं उस दिन आर्थोडाक्स हो गये हैं। महावीर अपने जमाने में प्रगतिशील थे लेकिन जैन प्रगतिशील नहीं हैं। वे महावीर को पकड़ लिए हैं, महावीर बन्द हो गये हैं, मुट्ठी बन्द हो गयी है। जीसस क्राइस्ट अपने जमाने में प्रगतिशील थे। ईसाई, प्रगतिशील नहीं हैं। क्राइस्ट मुट्ठी में, पकड़ में आ गये हैं। जिस क्षण भी प्रगतिशील पर मुट्ठी बंध जाती उसी क्षण रूढ़ पैदा हो जाती है, उसी क्षण परम्परा पैदा हो जाती है। इसलिए पहली कठिनाई आपको साफ कर दूं कि प्रगतिशील शब्द इनडिफाइनेबल है, उसकी व्याख्या नहीं हो सकती। हां, उसकी व्याख्या ऐसे ही हो सकती है जैसे-हम स्वास्थ्य की व्याख्या करते हैं। हम कहते हैं जो बीमार नहीं है वह स्वस्थ है। लेकिन यह स्वास्थ्य की परिभाषा नहीं हुई, यह बीमारी की चर्चा हुई। जब भी हमें स्वस्थ आदमी की व्याख्या करनी होती है कि कौन स्वस्थ है तो कहना पड़ता है, जो बीमार नहीं है। इसका मतलब यह हुआ कि स्वास्थ्य की कोई परिभाषा नहीं हो सकती। सिर्फ बीमारी की परिभाषा होती है। और जब बीमारी नहीं होती है तो जो शेष बच जाता है, दि रिमेन, वह स्वास्थ्य होता है।

रूढ़ि की परिभाषा हो सकती है, आर्थोडाक्सी की परिभाषा हो सकती है और जिस आदमी के भीतर रूढ़ि नहीं होती है वह प्रगतिशील होता है। प्रगतिशील की सीधी परिभाषा नहीं होती है। वह जो रूढ़िग्रस्त नहीं है, वह जो आर्थो-

डाक्स नहीं है। निगेटिव, नकारात्मक परिभाषा ही हो सकती है। और यह बड़े मजे की बात है कि जिन्दा चीजों की परिभाषा सदा नकारात्मक होती है। सिर्फ मरी हुई चीजों की परिभाषा पोजिटिव होती है। जो चीज मरी होती है, वी कैन डिफाइन इट पोजिटिवली एण्ड दैट व्हीच इज लिविंग कैन ओनली डिफाइन निगेटिवली। असल में जिन्दगी मुट्ठी में पकड़ में नहीं आती, सिर्फ मौत पकड़ में आती है। जो मरी हुई है उसकी हम परिभाषा कर सकते हैं। हम कह सकते हैं, मशीन क्या है। हम कह सकते हैं कि कुर्सी क्या है। हम नहीं कह पाते कि आदमी क्या है। हम कह सकते हैं कि बीमारी क्या है। हम नहीं कह पाते कि स्वास्थ्य क्या है। जो भी चीज जीवित है, जो भी लिविंग है वह मुट्ठी के बाहर हो जाती है, वह हवा की तरह हो जाती है। प्रेम की परिभाषा नहीं हो सकती, विवाह की परिभाषा हो सकती है। क्योंकि मैरिज एक मरी हुई चीज है। प्रेम एक जिन्दा चीज है। इसलिए विवाह के सम्बन्ध में अदालतों में मुकदमे लड़े जा सकते हैं और डेफिनेशन हो सकती है। लेकिन प्रेम के सम्बन्ध में कोई डेफिनेशन नहीं हो सकती। अब तक प्रेम पर बहुत कविताएं लिखी गई हैं लेकिन डेफिनेशन अब तक नहीं लिखी गई। उसकी कोई परिभाषा न हो सकी कि प्रेम क्या है। विवाह की परिभाषा सुनिश्चित है। विवाह क्या है, इसे तय किया जा सकता है, वह मरी हुई चीज है। सब मरी हुई चीजें तय हो जाती हैं। जिन्दा चीज़ें तय नहीं होतीं। यह जिन्दा होने का एक लक्षण है। तो पहली बात मैं कहना चाहूंगा कि प्रगतिशील चित्त जिन्दा चित्त है, लिविंग माइंड है। इसलिए परिभाषा नकारात्मक होगी, निगेटिव होगी। वह जो रूढ़िग्रस्त नहीं है। तो ठीक से समझें कि रूढ़िग्रस्त कौन है तो शायद प्रगतिशील कौन है, उसकी तरफ इशारा हो सके।

साधारणत: हमारा मन अतीत से निर्मित होता है। पास्ट ओरिएन्टेड होता है। हम जो भी जानते हैं वह अतीत से आता है। यह बड़े मजे की बात है कि हम जो भी जानते हैं वह अतीत से आता है और जो भी जीवन है वह भविष्य से आता है। इसीलिए जीवन और जानने की तालमेल कहीं भी नहीं होता। जो बहुत ज्यादा जानने को जोर से पकड़ लेते हैं, जो ज्ञान को बहुत जोर से पकड़ लेते हैं उनके जिन्दगी से सम्बन्ध टूट जाते हैं। और जिन्हें जिन्दगी से सम्बन्ध जोड़ना है उन्हें ज्ञान से सम्बन्ध तोड़ने पड़ते हैं। ज्ञान बहुत रूपों में उपलब्ध होता है—शास्त्रों में उपलब्ध होता है, परम्पराओं में उपलब्ध होता है, गुरु में उपलब्ध होता है, फिलॉसफी में, आइडिओलोजी में उपलब्ध होता है। जहां से भी ज्ञान कोई पकड़ लेगा जोर से वह प्रगतिशील नहीं रह जायेगा। प्रगतिशील होने के लिए अनिवार्य है कि हम अतीत के ज्ञान को न पकड़ें। भविष्य के लिए ओपनिंग तभी हो सकती है जब हम अतीत के प्रति जोर

से पकड़ नहीं लिए गये हैं। जिसने अतीत को जोर से पकड़ लिया है वह भविष्य के प्रति बंद हो जाता है। वह प्रगतिशील नहीं रह जाता। अगर कोई आदमी कहता है कि मैं जैन हूं तो वह प्रगतिशील नहीं हो सकता। क्योंकि जैन होना अतीत से बंधा हुआ है। भविष्य से उसका क्या नाता है। वह पच्चीस सौ वर्ष पहले महावीर हुए, उनसे बंधा हुआ है। अगर कोई कहता है कि मैं ईसाई हूं तो वह दो हजार साल पहले जो जीसस क्राइस्ट हुए उनसे बंधा हुआ है। भविष्य से उसका क्या नाता है। अगर कोई कहता है मैं हिन्दू हूं तो प्रगतिशील नहीं हो सकता। क्योंकि हिन्दू होने की सारी व्यवस्था अतीत से आती है, भविष्य से हिन्दू होने का क्या नाता है। अगर कोई कहता है भारतीय हूं, पाकिस्तानी हूं, चीनी हूं, तो वह प्रगतिशील नहीं हो सकता। क्योंकि ये सारी की सारी बातें अतीत से जुड़ी हैं। इनका भविष्य से कोई नाता नहीं है।

पहली बात ठीक से समझ लेनी जरूरी है हम अपने व्यक्तित्व को अतीत से निर्मित करते हैं, अतीत से बांधते हैं। जैसे बैल खूंटियों में बंधे होते हैं ऐसे हम अतीत की खूंटियों से बंधे हैं। अगर हम अतीत की खूंटियों से बंधे हैं तो हम प्रगतिशील नहीं हो सकते। हम बीमार हैं, रुग्ण हैं, रूढ़िग्रस्त हैं, परम्परावादी हैं, ट्रेडिशनलिस्ट हैं, प्रोग्रेसिव नहीं हो सकते। अतीत से जो चित्त मुक्त है वह भविष्य के प्रति खुला हुआ हो जाता है। अतीत से बंधा है वह बंद हो जाता है और यह भी ध्यान रहे कि अतीत अब कभी नहीं आयेगा। न राम लौटेंगे, न बुद्ध, न कृष्ण, न क्राइस्ट, न मौहम्मद। इसलिए जो भी उनसे बंधे हैं वे कब्रों से बंधे हैं। उन्हें यह ठीक से समझ लेना चाहिए। न गीता फिर लौटेगी, न रामायण लौटेगी, न वेद लौटेंगे, न बुद्ध के वचन, न बाइबिल। जो उन किताबों से बंधे हैं वे अतीत की राख से बंधे हैं। जो अतीत की राख से बंधा है, किसी भी स्थिति में वह प्रगतिशील नहीं है। इसलिए पहली नकारात्मक परिभाषा मैं यह करना चाहूं कि जो अतीत से मुक्त है, जो अतीत में बंधा नहीं है और जिसकी आंखें भविष्य को देखने के लिए खुली हैं, जिसकी कोई धारणा नहीं है, जिसके पास बंधा हुआ कोई ज्ञान नहीं है, जिसके पास कोई शास्त्र नहीं है, जिसके पास कोई इज्म नहीं है। ध्यान रहे, यह तो हमारी समझ में आ जाता है कि हिन्दू प्रगतिशील नहीं है, यह भी समझ में आ जाता है कि ईसाई प्रगतिशील नहीं हैं, लेकिन शायद हम सोचते हों, कम्युनिस्ट प्रगतिशील हैं तो हम भूल में पड़ जाते हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप दो हजार साल पुरानी बात से बंधे हैं कि सौ साल पुरानी बात से बंधे हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि आप बाइबिल से बंधे हैं। कैपिटल से बंधे हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि मौहम्मद से बंधे हैं। मार्क्स से बंधे हैं। पीछे की तरफ जो बंधा है वह आदमी प्रगतिशील नहीं है। और आगे की तरफ कोई इज्म नहीं होता। आगे की तरफ कोई बात नहीं होती, आगे

की तरफ कोई शास्त्र नहीं होता। क्योंकि जो शास्त्र अभी पैदा नहीं हुआ है उससे बांधियेगा कैसे। और जो सिद्धान्त अभी निर्मित नहीं हुआ है उससे बंधने का उपाय नहीं है। जो खूंटी अभी गाढ़ी नहीं गई उससे अपने को कैसे जंजीर में बांधिएगा?

प्रगतिशील होने का अर्थ है, वह जो अतीत है, वह जो बीता हुआ है, जो मर चुका है, जो जा चुका है, वह जो राख हो चुका है, वह जो मरघट में है। कब्रिस्तान में है उससे मुक्त। लेकिन बहुत कठिन है यह बात क्योंकि इतने रास्तों से हमें अतीत जकड़ता है कि हमें पता भी नहीं लगता। हमें छोटी-छोटी बातों का ख्याल नहीं रह जाता कि वे हमारे अतीत से जकड़ी हुई हैं। दो-चार छोटे उदाहरण लूं।

आदमी ने सबसे पहले कपास पैदा किया और फिर कपड़े बनाये। अब आदमी ने सिंथेटिक चीजें पैदा कर ली हैं जिनसे कपड़ा बनता है। लेकिन वह उन सिंथेटिक चीजों के साथ वही व्यवहार करता है जो उसने दस-बीस हजार साल तक पहले कपास के साथ किया था। अब प्लास्टिक का कपड़ा बन सकता है, और सिंथेटिक कपड़े बन सकते हैं लेकिन पहले इस सिंथेटिक मैटीरियल से हम सूत निकालेंगे। इसके निकालने की कोई जरूरत नहीं है। कपास से सूत निकालना जरूरी था। सूत को निकालकर फिर हम बुनते हैं, फिर दर्जी उसे काटता है, फिर कपड़ा बनाता है। यह बीस हजार साल पहले ठीक था लेकिन आज हमने वह चीजें बना ली हैं जिनसे कपड़े सीधे ढाले जा सकते हैं। जिनसे अब सूत बनाना, पागलपन है। जिनसे कपड़ा सीधा ही ढाल सकते हैं और अब कपड़े को दर्जी काटे और बनाये, यह भी पागलपन है क्योंकि कमीज सीधी ही ढाली जा सकती है, कोट सीधा ही ढाला जा सकता है। कपास से हम मुक्त हो गये हैं लेकिन कपास के साथ हमने जो व्यवहार किया था वह हम किये चले जायेंगे। उसकी अब कोई जरूरत नहीं है।

हम सात साल के बच्चों को स्कूल भेजते हैं। कोई नहीं बता सकता दुनिया में कि सात साल कैसे तय किये हैं आपने स्कूल में भेजने के लिए। कौन-सा मापदंड है इसके तय करने का? सात साल के बच्चे की कौन-सी मानसिक व्यवस्था है जिससे हम उसे सात साल में स्कूल भेजें। अगर हम आधुनिक खोजों का अन्वेषण करें तो बड़ी हैरानी मालूम पड़ती है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक कहता है कि चार साल में बच्चा अपनी जिन्दगी का पचास प्रतिशत सीख लेता है, फिर बाकी पचास प्रतिशत शेष उम्र में सीखेगा। तो सात साल के बच्चे को भेजना तो खतरनाक है। वह आधा तो सीख ही चुका, वह आधा प्रौढ़ तो हो ही चुका। लेकिन सात साल कैसे तय किये हैं। बड़ आरबिट्रेरी हैं लेकिन बड़ी अजीब बात से तय हुई थी। स्कूल थे थोड़े और बहुत दूर-दूर से बच्चों को आना पड़ता था। सात साल से कम उम्र के बच्चे भेजे नहीं जा सकते थे। इतना कारण था। लेकिन अब स्कूल बहुत पास है, भेजने की पूरी व्यवस्था है लेकिन सात साल के बच्चे ही भेजे जाते रहेंगे। जैसे

बच्चे की उम्र बड़ी होती है उसके सीखने की क्षमता कम होती चली जाती है। सात साल के बच्चे को स्कूल भेजना करीब-करीब ऐसे बच्चे को स्कूल भेजना है जो इतना सीख चुका कि अब नया सीखना बहुत मुश्किल हो जायेगा।

बेजनर एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ था। अपने घर के सामने उसने एक तख्ती लगा रखी थी उसने उसमें लिखा हुआ था कि जो संगीत बिल्कुल नहीं जानते उनकी भाषा और जो लोग संगीत जानते हैं वह अगर सीखने आयें तो उनकी फीस। जो संगीत जानते थे उनकी डबल फीस लिख रखी थी। जब भी कोई संगीत जानने वाला आता वह कहता कि हम तो काफी सीख चुके हैं, हमसे तो कुछ कम फीस लेना चाहिए। हम आपको कम तकलीफ देंगे। बेजनर कहता है कि तुमसे ही मुझे तकलीफ पड़ेगी क्योंकि तुम जो सीख चुके हो, पहले वह भुलाना पड़ेगा। तुम्हारे साथ दोहरी झंझट है। तुम कोरी स्लेट नहीं हो, पहले तुम्हें पोंछना पड़ेगा। सात साल के बच्चे को भेजना खतरनाक है। लेकिन एक बड़ी अजीब सी बात में तय की गयी थी यह बात कि सात साल से छोटे बच्चे को अकेले दूर की यात्रा पर नहीं भेजा जा सकता था। इतने दूर भेजने के लिए कम-से-कम सात साल का हो जाना जरूरी था। तो हम सात साल के बच्चे को भेजते रहे।

हमने अपनी जितनी नैतिकता तय की है वह हमारे ख्याल में नहीं है कि उसके तय करने के कारण बहुत पहले समाप्त हो चुके। लेकिन नैतिकता जारी है और अगर उसमें से कुछ टूटता है तो हम बड़े बौखला जाते हैं, हम बड़े परेशान हो जाते हैं। हमेशा बाप का आदर था सारी दुनिया में। और नैतिक भेद हो, लेकिन पिता का सदा आदर था। उसके आदर का कारण पिता होना नहीं था क्योंकि अगर पिता होना ही आदर का कारण हो तो आज भी मिट नहीं सकता क्योंकि पिता आज भी पिता ही है। आदर का कारण दूसरा था, वह कारण समाप्त हो गया लेकिन पिता आदर को मांगे चला जा रहा है। आदर का कारण बहुत ही अजीब था। जीसस के मरने के साढ़े अट्ठारह सौ वर्षों में जितना ज्ञान विकसित हुआ उतना पिछले डेढ़ सौ वर्षों में हुआ और जितना पिछले डेढ़ सौ वर्षों में हुआ उतना पिछले पन्द्रह वर्षों में हुआ और जितना पिछले पन्द्रह वर्षों में हुआ उतना पिछले पांच वर्षों में हुआ और जितना पिछले पांच वर्षों में हुआ, आने वाले ढाई वर्षों में होगा। अट्ठारह सौ वर्षों में जब ज्ञान इतना बढ़ता था जितना अब ढाई वर्ष में बढ़ता है तो बाप सदा बेटे से ज्ञानी होता था, अनिवार्य रूप से बाप ज्यादा जानता था, बेटा कम जानता था। अब हालत बिल्कुल उलट गयी है, बदल गया है। अब बेटा बाप से ज्यादा जानता है और रोज-रोज ज्यादा जानेगा इसलिए अब बाप को पुराना आदर दिया जाना सम्भव नहीं है। लेकिन आदत पुरानी है। जिसको हम प्रगतिशील बाप कहते हैं वह भी सोचता है कि बेटा उसे आदर दे। नहीं, आदर का कारण ज्ञान था। पुरानी दुनिया में जितनी ज्यादा उम्र होती उतना ज्यादा

ज्ञान होता था, स्वभावतः। क्योंकि अनुभव से ज्ञान मिलता था। अब बाप तीस साल पहले यूनिवर्सिटी में पढ़ा था। तीस साल में दुनिया में सारा ज्ञान बदल गया है। बेटा तीस साल बाद पढ़कर आ रहा है। बेटा ज्यादा ताजी खबर लेकर आ रहा है। बाप एक अर्थ में आउट ऑफ डेट है और अब अगर बाप को सीखना है तो बेटे से पूछना चाहिए कि नया क्या है लेकिन बाप की आदत पुरानी है। सदियों से उसकी आदत है बेटे को सिखाने की। अगर अब वह जिद्द करेगा बेटे को सिखाने की और बेटा बगावत करे तो हम कहेंगे यह बड़ी अनैतिकता है, इम्मोरैलिटी, इन डिसिप्लिन पैदा हो रही है। नहीं कोई इनडिसिप्लिन नहीं पैदा हो रही है, कोई अनैतिकता पैदा नहीं हो रही है, सिर्फ आपकी नैतिकता समय के बाहर हो गयी है। सिर्फ आपकी नैतिक व्यवस्था जिस जीवन व्यवस्था में मौजूद थी वह जीवन व्यवस्था बदल गयी है और आप उसको ही थोपे चले जा रहे हैं। गुरु का पैर छूता था विद्यार्थी, छूने योग्य थी बात। गुरु और विद्यार्थी के बीच इतना डिस्टेंस था कि गुरु के पैर ही छू ले विद्यार्थी, यह भी बहुत निकट आना हो जाता था। यह भी बड़ी निकटता थी। गुरु और विद्यार्थी के बीच बड़ा फासला था। आज यूनिवर्सिटी का अगर ठीक बुद्धिमान विद्यार्थी हो तो प्रोफेसर और उसके बीच घण्टे भर से ज्यादा का फासला नहीं होता। वह जो घण्टे भर पहले तैयार करके आया है उतना ही फासला होता है। अब घण्टे भर के फासले पर पैर छुआने की आकांक्षा खतरनाक है। यह नहीं हो सकता और अगर विद्यार्थी बुद्धिमान हो तो शिक्षक से सदा ज्यादा जान सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं रह गई। मिडियाकर शिक्षक और अगर प्रतिभाशाली विद्यार्थी है तो ज्यादा जान सकता है। अब इस विद्यार्थी को अगर हम पैर छूने का आग्रह करें तो हम इसको सिर तुड़वाने के लिए निमन्त्रण दे रहे हैं और कुछ भी नहीं कर रहे हैं।

यह नहीं हो सकता। यह बात समाप्त हो गयी है। लेकिन हमें समझने में बहुत देर लगती है। जिन्दगी बदल जाती है और आदतें हमारी पुरानी बनी चली जाती हैं। हम उन्हीं को दोहराये चले जाते हैं। हम जिन्दगी के बहुत से तलों पर आर्थोडाक्स ही होते हैं लेकिन हमें अपनी आर्थोडाक्सी दिखाई नहीं पड़ती। हमारी रूढ़िवादिता दिखाई नहीं पड़ती है। हो सकता है, हम मन्दिर न जाते हों तो हम सोचते हों कि हम प्रगतिशील हैं। लेकिन मन्दिर न जाने वाले लोग जमीन पर सदा से रहे हैं और वेद के जमाने में भी चार्वाक था। जितना वेद पुराना है उतना ही चार्वाक भी पुराना है। अगर आप मन्दिर नहीं जाते तो आप कोई प्रगतिशील नहीं हो जायेंगे। अगर एक आदमी ईश्वर को इन्कार कर देता है, सोचता है प्रगतिशील है। ईश्वर को इन्कार करने वाले लोग उतने ही पुराने हैं जितने ईश्वर को स्वीकार करने वाले लोग हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि आप बहुमत की आर्थोडाक्सी के पक्ष में हैं कि अल्पमत की आर्थोडाक्सी के पक्ष में हैं। इससे क्या फर्क पड़ता

है। नास्तिक हमेशा अल्पमत में रहा है। उसके पास माइनॉर्टी रही है। लेकिन वह भी बहुत पुराना है। इसलिए कोई आदमी नास्तिक होकर समझता हो कि मैं प्रगतिशील हो गया हूं तो वह भ्रम में है। क्योंकि आस्तिकता जितनी पुरानी है नास्तिकता उतनी ही पुरानी है। दोनों ही रूढ़ियां हैं।

फिर प्रगतिशील कौन है? जो आदमी आस्तिकता और नास्तिकता दोनों से मुक्त हो गया है उसे मैं प्रगतिशील कहता हूं। लेकिन बड़ा मुश्किल है। आस्तिक से नास्तिक बन जाना आसान है, नास्तिक से आस्तिक बन जाना आसान है, दोनों से मुक्त हो जाना बहुत कठिन है। क्योंकि वैक्यूम में डर लगता है, खाई में डर लगता है। कुछ तो होना ही चाहिए। अगर मैं हिन्दू नहीं हूं तो मुझे मुसलमान होना चाहिए, अगर मुसलमान नहीं हूं तो ईसाई होना चाहिए, अगर ईसाई, मुसलमान कोई नहीं हूं तो कम्युनिस्ट होना चाहिए। कुछ न कुछ होना चाहिए। ध्यान रहे, जो आदमी कुछ भी है वह आर्थोडाक्स होगा। प्रगतिशील आदमी कुछ भी न होने की हिम्मत का नाम है। वह इस करेज का नाम है कि कहता है कि मैं किसी भी लेबल के साथ नहीं हूं। सब लेबल पुराने हैं। मैं बिना लेबल के जीने की कोशिश करूंगा।

अभी एक ट्रेन में मैं सवार हुआ। एक मित्र यहां से सवार हुए, बम्बई से ही। बहुत से मित्र मुझे छोड़ने आये थे। किसी ने फूलमाला पहनाई, किसी ने पैर छुआ। वह मित्र खड़े-खड़े देखते रहे और हम आमतौर से सोचते हैं कि बच्चे नकल करते हैं। ऐसा नहीं है। बूढ़े भी आमतौर से नकल ही करते हैं। जब सब मित्र मेरे पैर छू कर के चले गये तो उन्होंने जल्दी साष्टांग जमीन पर छुआ और पैर छुआ। मैंने उनसे कहा, यह पैर आप मेरे छू रहे हैं या उन लोगों के छू रहे हैं जो मेरे पैर छू के चले गये हैं? उन्होंने कहा उनसे क्या मतलब, मैं आपके पैर छू रहा हूं। आप महात्मा हैं। मैंने कहा, तुमने पहले पक्का पता भी नहीं लगाया कि मैं महात्मा हूं या नहीं। तुमने पैर छू लिया। अब अगर मैं महात्मा न निकला तो तुम यह वापस कैसे लोगे? उन्होंने कहा नहीं-नहीं, आप मजाक कर रहे हैं। लेकिन उनके चेहरे पर घबराहट आ गई कि पता नहीं—क्योंकि ऐसा महात्मा मिलना मुश्किल है जो इन्कार करता हो कि मैं महात्मा नहीं हूं। महात्मा प्रचार करता है, महात्मा होने का। उन्होंने कहा, नहीं-नहीं आप मजाक कर रहे हैं। मैंने कहा, कि महात्मा और मजाक कैसे करेगा। अगर मजाक कर रहा हूं तो इससे भी तय होता है कि मैं महात्मा नहीं हूं। उन्होंने मुझे गौर से देखा और कहा कि आप हिन्दू तो हैं? उन्होंने सोचा, छोड़ो महात्मा नहीं है, जाने दो लेकिन कहीं किसी मुसलमान के पैर तो नहीं छू लिए। मैंने कहा, इतना तो पक्का मानो कि मैं हिन्दू नहीं हूं। उन्होंने कहा नहीं, आप कैसी बात कर रहे हैं, आप देखने से बिलकुल हिन्दू मालूम पड़ते हैं। मैंने कहा, देखने से कोई हिन्दू होने का सम्बन्ध हो सकता है? देखने से क्या वास्ता

है? उन्होंने कहा, नहीं मैं नहीं मान सकता। आप बिल्कुल हिन्दू मालूम पड़ते हैं। मैंने कहा, तुम अगर अपने पैर छूने की तकलीफ से बचना चाहते हो तो मान ले सकते हो कि मैं हिन्दू हूं। लेकिन मैं हिन्दू नहीं हूं। आदमी थोड़ी देर चुप बैठा रहा। उसने कहा, फिर कृपा करके बताइए आप हैं कौन? तो मैंने कहा, मैं क्या, मैं ही नहीं हो सकता हूं? मुझे कोई लेबल होना ही पड़ेगा? आप कोई तो होंगे, उस आदमी ने कहा। मैंने कहा, जो मैं हूं, मैं सामने मौजूद हूं। लेकिन वह आदमी किसी खांचे में रखना चाहता है, क्योंकि हम खांचे में रख दें किसी को भी तो वह मुर्दा हो जाता है उसके साथ। फिर आसानी हो जाती है। जिन्दा आदमी के साथ कठिनाई है। अगर मुझे पक्का पता चल जाये कि मैं महात्मा हूं तो रात शान्ति से सो सकता हूं। अगर पता जल्दी लग जाये कि मैं गुण्डा हूं तो रात भर शांति से नहीं सो सकूंगा। अगर मुझे पता चल जाये कि हिन्दू हूं तो सजातीय, अपनी ही जाति का जानवर हूं। अगर पता चला जाये कि मुसलमान हूं तो जरा विजातीय जाति का जानवर हूं। फिर जरा सचेत रहना पड़ेगा। पता नहीं छुरा भोंक दे, पता नहीं क्या करे। तो यह आदमी मेरे साथ ऐट इज होना चाहता है। असल में वह मानना चाहता है कि मैं आपके बाबत पूरी जानकारी करूं तो खतरा न रह जाये अनजान से खतरा होता है। लेकिन मैंने कहा, मुझे यह पता नहीं कि रात मैं क्या करूंगा। मुझे खुद भी पता नहीं। रात अभी आयी नहीं। मैं बाथरूम में गया। उस आदमी ने कण्डक्टर को कहा कि मेरा सामान दूसरे कमरे में रखवा दें। जब मैं लौटकर आया तो मैंने कहा, वह आदमी कहां गया। तो उस कण्डक्टर ने कहा कि वह बहुत घबरा गया है और दूसरे कमरे में चला गया है। सुबह मैं उनके कमरे के सामने से निकलता था तो मैंने कहा, आप भी मजाक में आ गये। उस आदमी ने वापस मेरे चरण छुए। उसने कहा मैं तो रात ही कह रहा था कि आप महात्मा हैं। मैंने कहा, अब तुम फिर गलती कर रहे हो। मैं मजाक ही कर रहा हूं।

हमें कुछ न कुछ होना ही चाहिए। यह आर्थोडाक्स चित्त का लक्षण है, रूढ़िग्रस्त चित्त का लक्षण है। असल में जिस आदमी ने चाहा कि मैं यह हूं, उसने भविष्य में और कुछ होने से इन्कार कर दिया। वह आदमी मर गया उसी दिन जिस दिन हो गया। जिस दिन उसने कहा मैं यह हो गया हूं उस दिन वह मर गया। अब भविष्य नहीं है उसका कोई। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि हमारे मरने का दिन और होता है, दफनाए जाने का दिन और होता है। इसमें चालीस साल का फासला होता है। अक्सर लोग तीस साल में मर जाते हैं और सत्तर साल में दफनाए जाते हैं। दफनाए जाने की वजह से हम सोचते हैं कि सत्तर साल में मरें। अभी हिप्पियों ने अमरीका में एक नया नारा दिया है वह बहुत बढ़िया नारा है। उनका नारा यह है कि तीस साल के ऊपर के आदमी का भरोसा ही मत

करो। बात ठीक लगती है। तीस साल के ऊपर के आदमी का भरोसा जरा मुश्किल है। क्योंकि तीस साल के ऊपर का आदमी इतना चालाक हो जाता है कि जिन्दा नहीं रह सकता। तीस साल के ऊपर का आदमी इतना समझदार हो जाता है कि जिन्दगी उसे खतरनाक मालूम पड़ने लगती है। वह मरना शुरू कर देगा। वह आदमी कम रह जाता है। यंत्र व्यवस्थित, स्टेबलिशमेंट सेटल ज्यादा हो जाता है। रूढ़िग्रस्त आदमी का मतलब यह है कि जिसके सम्बन्ध में हम कह सकते हैं, वह यह है, कम्युनिस्ट है, हिन्दू है, मुसलमान है, ईसाई है, जैन है। प्रगतिशील आदमी के सम्बन्ध में हम कुछ भी नहीं कह सकते। वह जीवन की अज्ञात धारा है। उसके बाबत कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि वह क्या है। यह मरते क्षण तक कुछ होता रहेगा। वह मर नहीं गया है। वह होता ही रहेगा। इसलिए दूसरी बात आर्थोडाक्स आदमी हमेशा कंसिस्टेंट होता है, हमेशा संगत होता है। उसकी बातों में, उसके जीवन में एक संगति होती है। उसकी जिन्दगी में एक गणित होता है। एक व्यवस्था एक सिस्टम होता है। प्रगतिशील आदमी की जिन्दगी में व्यवस्था नहीं होती है। उसमें एक अराजकता होती है, एक अनारकी होती है। लेकिन ध्यान रहे जितना जीवन होगा उतनी अराजकता होगी। और जितनी मृत्यु होगी उतनी व्यवस्था होगी। अगर हम प्रगतिशील आदमी के सम्बन्ध में एक बात कहना चाहें तो यह कह सकते हैं, ही इज कंसिस्टेंटली इन कंसिस्टेंट। एक ही संगति होती है कि वह रोज जो उसने कल कहा था उसे गलत कर सकता है। क्योंकि वह कल समाप्त नहीं हो गया। वह आज भी जिन्दा है। वह आज फिर निर्णय लेगा।

वानगाग एक दिन अपना चित्र बना रहा था और एक मित्र उससे मिलने आये हैं। उसने वानगाग से पूछा कि तुम्हारा सबसे अच्छा चित्र कौन-सा है तो वानगाग ने कहा जो मैं बना रहा हूं। उसके मित्र ने कहा इसके पहले बनाये गये चित्र ? तब उसने कहा वह वानगाग भी मर गया, वह चित्र भी मर गया जो मैं बना रहा हूं यह मेरा सबसे अच्छा चित्र है। क्योंकि अभी मैं भी जिन्दा हूं। अभी चित्र भी जिन्दा है। कंसिस्टेंट होने का मतलब यह है कि हम सदा पीछे की तरफ देखकर जियेंगे। हम अपनी जिन्दगी को सदा अतीत से निर्भर करेंगे। पास्ट ओरिएन्टेड होगी जिन्दगी।

एक युवती कल मेरे पास आयी और उसने कहा कि मैं ब्रह्मचर्य का व्रत लेना चाहती हूं। मैंने कहा तुम व्रत लोगी, लेकिन कल जो तुम्हारे जीवन में आयेगा उसने अगर व्रत नहीं माना तो क्या करोगी। उसने कहा कि नहीं मैं इसीलिए तो आपके पास कसम खाने आयी हूं। आप गवाह हैं कि मैं व्रत को पालूंगी। तो मैंने कहा कि क्या तुम्हें पता है। इसका मतलब क्या हुआ ? इसका मतलब यह हुआ कि कम समझदार ज्यादा समझदार के बाबत निर्णय ले रहा है। कल चौबीस घण्टे

बीते होंगे। चौबीस घण्टे ने और समृद्ध किया होगा। लेकिन तुम चौबीस घण्टे पीछे के निर्णय से बंधी होओगी। वर्ष बीत जायेंगे, जिन्दगी और बहुत कुछ जानेगी। जो तुमने व्रत लेते वक्त नहीं जाना था। जिस दिन ब्रह्मचर्य का व्रत लिया था उस दिन तुम्हारे ज्ञान से ज्यादा ज्ञान होगा दो साल बाद। लेकिन तुम्हारा व्रत बाइंडिंग होगा। दो साल वाले आदमी के लिए बाईडिंग होगा। मैं अपने बेटे के लिए कसम नहीं खा सकता। मैं अपने भविष्य के लिए भी कैसे कसम खा सकता हूं।

प्रगतिशील व्यक्ति भविष्य के सम्बन्ध में अतीत से बन्धन नहीं मानता। निश्चित ही बड़ी खतरनाक बात है। क्योंकि हम अगर एक व्यवस्था में जीते हों तो समाज हमारी बाबत निश्चित हो सकता है कि यह आदमी क्या करेगा और क्या नहीं करेगा। क्या है, क्या नहीं है। इसलिए समाज सदा ही आर्थोडाक्सी को पसन्द करता है। समाज प्रगतिशील व्यक्ति को पसन्द नहीं करता। और बड़े मजे की बात है कि दुनिया को, समाज को जो भी श्रेष्ठ दिया है वह प्रगतिशील लोगों ने दिया है। जिन्दगी में जो भी समृद्धि आयी है, ज्ञान आया है, सुख आया है वह प्रगतिशील लोगों ने दिया है। लेकिन समाज प्रगतिशील लोगों को सूली देने के सिवाय और कुछ देना नहीं जानता। उसका प्रत्युत्तर सिर्फ सूली का है। क्योंकि समाज के लिए खतरा है। समाज चाहता है कंसिस्टेंसी, समाज चाहता है जो कह रहा है कल उसे जिन्दगी भर पूरा करना। समाज चाहता है कि बच्चा पैदा हो और मरने तक की कसम खा ले और मरने तक वही हो जो बचपन में पैदा होकर उसने शुरू किया। यह असम्भव है। यह जिन्दगी के खिलाफ है और इसीलिए हम सब मिलकर बच्चे को मारने में लग जाते हैं। हम जिसे संस्कार कहते हैं, शिक्षा कहते हैं वह सबका सब बच्चों को मारने की चेष्टा है। इसके पहले कि बच्चों की जिन्दगी प्रगट हो, हम उसको मार के सब तरफ से खतम कर देंगे। और एक मुर्दा आदमी बना देंगे जो जिन्दगी भर कंसिस्टेंट होगा। खाई हुई अतीत की कसमों के साथ दिये गये अतीत के वचनों के साथ, लिए गये सिद्धान्तों के साथ सदा ही संगत होगा। यह आदमी नहीं है, यह मशीन है। लेकिन मशीन कुशल होती है, मशीन एफिशिएन्ट होती है, क्योंकि मशीन वही करती है जो करती है। जो सदा उसने किया है। आदमी उतना कुशल नहीं होता। क्योंकि आदमी मशीन नहीं है। वह कुछ भूलें भी करता है, वह कुछ नया भी करता है, वह रास्ते से भी उतरता है। प्रगतिशील आदमी वह है जो अपने भविष्य के लिए परतन्त्र नहीं बनता। रूढ़िग्रस्त आदमी वह है जो अतीत को अपनी माल्कियत दे देता है। अतीत के साथ अपने को बेच डालता है। जो अतीत के लिए गुलाम हो जाता है। अगर आप किसी भी तरह से अतीत के गुलाम हैं तो आप प्रोग्रेसिव नहीं हो सकते। और ध्यान रहे, ऐसा नहीं कि आप एक चीज में प्रगतिशील हो सकते हैं और दूसरी चीज में प्रगतिशील न हों, ऐसा नहीं होता। यह असम्भव है।

यह तीसरी बात भी मैं आपसे कहना चाहता हूं। जो आदमी प्रगतिशील है, क्योंकि प्रगतिशील होना वन डाइमेंशनल नहीं है, प्रगतिशील होना मल्टीडाइमेंशनल है। प्रगतिशील होना कोई एक अप्रोच नहीं है। प्रगतिशील होना एक व्यक्तित्व है। प्रगतिशील होना कोई एक पैटर्न और ढांचा नहीं है, प्रगतिशील होना जिन्दगी का एक ढंग है। जिन्दगी के एक ढंग का मतलब ? जिन्दगी के एक ढंग का मतलब यह है कि जो आदमी प्रगतिशील है वह सारी चीजों में ही प्रगतिशील होगा। वह सारी चीजों में ही नॉनकन्फर्मिस्ट होगा। वह जिन्दगी के सारे रुखों के सम्बन्ध में कन्फ-मिज्म, रूढ़ि, बंधन, गुलामी को नहीं मानेगा। नहीं मान सकेगा। लेकिन इसका क्या मतलब है। क्या इसका मतलब है वह दिन-रात रूढ़ियों से लड़ता रहे। क्या इसका मतलब है कि वह दिन-रात रूढ़ियों की प्रतिक्रिया में बगावत करता रहेगा ? क्या इसका यह मतलब है कि वह अपनी जिन्दगी को रूढ़ियों से लड़ने में लगा देगा ? नहीं, यह मतलब नहीं है। इसलिए प्रगतिशील जरूरी नहीं है कि रिएक्शनरी हो, जरूरी नहीं है प्रतिक्रियावादी हो ? सच तो यह है कि जो आदमी चौबीस घण्टे जिन्दगी में रूढ़ियों से लड़ता है वह प्रगतिशील नहीं हो पाता। वह सिर्फ विपरीत रूढ़िवादी हो जाता है। आप जिस रूढ़ि से चौबीस घण्टे लड़ेंगे, ध्यान रखें जाने-अनजाने आप उससे विपरीत रूढ़ि में ग्रस्त हो जायेंगे। असल में जिससे हम लड़ते हैं धीरे-धीरे हम उसके जैसा हो जाते हैं। मित्र तो कोई बिना समझे चुन ले तो हर्जा नहीं है, शत्रु बहुत समझ के चुनना चाहिए। क्योंकि शत्रु से लड़ने में हमें शत्रु जैसा ही हो जाना पड़ता है। कम्युनिज्म धर्म के खिलाफ लड़ाई लड़ना शुरू किया और आज कम्युनिज्म एक धर्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। कम्युनिज्म ने मक्का-मदीना के खिलाफ लड़ाई शुरू की और आज मास्को और पेकिंग मक्का-मदीना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं। कम्युनिज्म ने ईश्वर के खिलाफ लड़ाई शुरू की और लेनिन और मार्क्स को, और स्टालिन को ईश्वर बनाकर छोड़ा। यह बड़े मजे की बात है। यह बहुत हैरानी की बात है कि अगर कोई आदमी अपनी चौबीस घण्टे की जिन्दगी को रूढ़ियों से लड़ने में लगा दे तो वह नयी तरह की रूढ़ियां पैदा करने वाला हो जाता है। और कुछ भी नहीं होता है। यह पूरे इतिहास की कहानी है। बुद्ध ने लोगों को कहा, कि मूर्ति मत पूजना, बुद्ध की जितनी मूर्तियां हैं जमीन पर उतनी किसी आदमी की नहीं हैं। जितने मन्दिर बुद्ध के हैं उतने किसी के नहीं हैं। सारी जमीन पर पचास हजार विराट मन्दिर बुद्ध के लिए समर्पित हैं। और एक-एक मन्दिर ऐसा है चीन में जिसमें दस-दस हजार बुद्ध की मूर्तियां हैं। किसी का मन्दिर नहीं है ऐसा जिसमें दस हजार मूर्तियां हों। बुद्ध जिन्दगी भर लड़े लेकिन अगर कोई मूर्ति के खिलाफ लड़ेगा तो जाने-अनजाने वह मूर्ति के सम्बन्ध में कुछ ख्याल पैदा करवा देगा। मूर्ति के खिलाफ रहने वाला आदमी कब मूर्ति बनवाने का कारण बन जायेगा, कहना कठिन है। बन जायेगा। महावीर हिन्दुस्तान में वर्णाश्रम के खिलाफ

लड़े और महावीर के अनुयायियों ने लड़ाई छेड़ी की कोई वर्ण नहीं होने चाहिए। लेकिन आज एक बड़े मजे की बात है हिन्दू मन्दिर में शूद्र अगर प्रवेश करे तो जैन कहते हैं, कर सकता है। लेकिन जैन मन्दिर में नहीं कर सकता, क्योंकि वह हिन्दू है। जैन मन्दिर में प्रवेश का सवाल ही नहीं है। वह जैन है ही नहीं। महावीर की लड़ाई यह थी कि वर्ण न रह जाये और आज जैन अदालतों में जाकर यह लड़ाई करते हैं कि हमारे मन्दिर में शूद्र प्रवेश नहीं कर सकता। क्योंकि हम जैन हैं। हिन्दू मन्दिर में प्रवेश करे, उसके लिए आप कानून बना सकते हैं। क्योंकि वह हिन्दू है। और हिन्दू मन्दिर में प्रवेश का अधिकारी है। लेकिन कोई इनसे पूछे कि महावीर की लड़ाई क्या थी ? महावीर की लड़ाई यह थी कि वर्ण मिट जाये और वर्णहीन समाज बने। लेकिन जैन जितना वर्णवादी है उतना हिन्दू भी नहीं है। हां, एक बड़े मजे की बात है, हिन्दू शूद्र को शूद्र कहता है लेकिन कम से कम अपने समाज के भीतर स्वीकार करता है। जैन ने बड़ी तरकीब निकाली। उसने शूद्र को स्वीकार भी नहीं किया। वह एक वर्ण का ही रह गया। वह वैश्य ही रह गया। इसके भीतर दूसरे वर्णों को उसने प्रवेश ही नहीं करने दिया। उसमें न क्षत्रिय रह गया, न ब्राह्मण रह गया, न शूद्र रह गया। वह सिर्फ वैश्य रह गया।

अगर हम इस बात को गौर से देखें कि जीसस को सूली लगी और जीसस को सूली जिन यहूदियों ने लगाई उन यहूदियों के खिलाफ ईसाई कितने यहूदियों को सूली लगाये हैं उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। एक जीसस को लगायी गई सूली करोड़ों यहूदियों को लगाई गई सूली में बदली, यह बड़े मजे की बात है। लेकिन ईसाई इसीलिए यहूदियों को सूली पर चढ़ाये हैं। क्योंकि वे कहते हैं कि जीसस को सूली लगाई, यह बुरा किया। जीसस को सूली लगाना बुरा था। लेकिन ईसाई को पता होना चाहिए कि जीसस यहूदी बेटा था। यहूदी आदमी था। यहूदी ही पैदा हुआ, यहूदी ही मरा। एक यहूदी को जो सूली लगाई गई थी वही दूसरे यहूदियों को ईसाई सारी दुनिया में लगा रहे हैं। जीसस यहूदी था, ईसाई नहीं था। होने का उपाय भी नहीं था। लेकिन करोड़ों यहूदियों को सूली पर लटकाया गया है। क्योंकि वह जीसस का बदला लिया जा रहा है। बदला किस बात का लिया जा रहा है ? जीसस को सूली लगाई, यह गलत काम था। तो हम करोड़ों सूली लगाकर गलत काम को मिटा रहे हैं ? असल में गलत काम के खिलाफ जो लड़ना शुरू करता है, कब गलत हो जाता है पता लगाना मुश्किल है। इसलिए प्रगतिशील का मतलब यह नहीं है कि वह रूढ़िवाद का विरोधी है। प्रगतिशील का मतलब यह है कि वह रूढ़िवादी का विरोधी नहीं है। रूढ़िवाद व्यर्थ है, ऐसा जानता है। विरोधी नहीं है। विरोधी तो सार्थकता देता है। विरोधी तो कहता है बड़ी सार्थक बात है। एक मुसलमान है। वह कहता है कि हम मूर्ति तोड़कर

रहेंगे। क्योंकि किसी मूर्ति में भगवान् नहीं है। और बड़े मजे की बात है जिसमें भगवान् नहीं है उसको तोड़ने से भी क्या फायदा होगा।

एक आदमी कहता है मूर्ति में भगवान् है। हम तो पूजा करेंगे। यह भी मूर्ति के साथ कुछ करता है। पूजा करता है। दूसरा आदमी कहता है मूर्ति में भगवान् नहीं है। हम इसे तोड़कर रहेंगे। यह भी मूर्ति के साथ कुछ करता है। ये दोनों ही मूर्ति पर केन्द्रित हैं। ये दोनों ही मूर्ति के साथ कुछ कर रहे हैं। पूजा करने वाला पूजा कर रहा है, तोड़ने वाला तोड़ रहा है। जिनको हम मूर्ति भंजक कहते हैं वे भी मूर्ति की तलाश करते फिरते हैं। मूर्ति कहां है उसे तोड़ें। लेकिन मूर्ति उनके दिमाग में घूम रही है। ध्यान रहे, सारी दुनिया के मूर्तिपूजक मूर्ति को जितना महत्व देते हैं उससे ज्यादा महत्व मुसलमानों ने दिया है। वह महत्व मिल ही जायेगा। अगर मूर्ति से लड़ना शुरू किया तो महत्व मिल ही जायेगा। नहीं प्रगतिशील रूढ़ि विरोधी नहीं है। प्रगतिशील इतना ही कर रहा है कि रूढ़ि व्यर्थ है, असंगत है, जीवन से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। हम उससे लड़ते नहीं जाते। हम जरूर आगे हैं, उसमें बढ़ते हैं। प्रगतिशील जीवन जो आगे है उससे बढ़ता है। रूढ़िविरोधी रूढ़ि जो पीछे है उससे लड़ता है और ध्यान रहे, चाहे रूढ़ि की पूजा करनी हो तो भी पीछे देखना पड़ता है, चाहे रूढ़ि से लड़ना हो तो भी पीछे देखना पड़ता है। पीछे देखने वाला आदमी प्रगतिशील नहीं है। प्रगतिशील वह है जो आगे देखता है। जो कहता है, यह जो रियर व्यू मिरर लगा होता है गाड़ी के पीछे की तरफ देखने का, यह वक्त बेवक्त के लिए है, यह चौबीस घण्टे देखकर गाड़ी चलाने के लिए नहीं। गाड़ी आगे देखकर चलानी पड़ती है, पीछे के देखने के लिए जो आइना लगा है वह कभी-कभी जरूरी होता है, वह चौबीस घण्टे देखने के लिए नहीं है। लेकिन रूढ़िवादी और रूढ़िविरोधी दोनों, वह जो रियर व्यू मिरर है उसी में देखते रहते हैं। हां, एक कहता है, पीछे को पूजेंगे, लेकिन एक कहता है पीछे से लड़ेंगे लेकिन दोनों आगे देखने से बच जाते हैं। इसलिए रूढ़िविरोधी को प्रगतिशील नहीं कहता हूं। प्रगतिशील होना और बड़ी घटना है। प्रगतिशील होने का अर्थ यह है कि पीछे को असंगत मानते हैं। हम मानते हैं, जो हो चुका हो चुका, आगे जाना है। इसलिए प्रगतिशील फ्यूचर ओरिएंटेशन है, भविष्य में। लेकिन भविष्य के प्रति हमारा ख्याल बड़ी कठिन बात है। क्योंकि विचार करना आसान है उसके सम्बन्ध में जो हो चुका, जो नहीं हुआ है उसके सम्बन्ध में विचार करना बहुत मुश्किल है क्योंकि उसके लिए हमारे पास कोई आधार नहीं होते। अब जैसे उदाहरण के लिए—सारी दुनिया में जनसंख्या बढ़ रही है। इस सदी के पूरे होते-होते जमीन की इतनी संख्या होगी कि जिन्दा रहना मुश्किल हो जायेगा और अगली सदी पूरा होते-होते जिन्दा होने की बात ही गलत है, खड़े होना ही मुश्किल हो जायेगा। इक्कीसवीं सदी के पूरे

होते-होते एक आदमी के पास एक वर्गफुट जमीन बचेगी—चाहे रहे, चाहे सोये। फिर सभाएं करने की जरूरत नहीं होगी, जहां होंगे, सभा में ही होंगे। बस जिसके पास तख्त होगा वह अपनी तख्त पर खड़ा हो जायेगा। पूरी दुनिया हाइड पार्क हो जायेगी। खड़ा हो गया अपने साबुन के डिब्बे पर और बोलना शुरू कर देगा।

यह संख्या बढ़ रही है लेकिन क्या किया जाये? रूढ़िवादी उसे हम कहेंगे जो कहता है भगवान् देता है, भगवान् समझेगा, वह जाने। लेकिन यह रूढ़िवादी भी पूरा रूढ़िवादी होता तो ठीक था लेकिन जब कोई बीमार पड़ता है तो यह अस्पताल पहुंच जाता है। तब वह यह नहीं कहता है कि कैंसर भगवान् ने दिया है, भगवान् समझे। नहीं, इलाज आदमी से करवाता है और जब आदमी को पैदा करने से रोकने की बात हो तब भगवान् का नाम लेता है। यह बेईमान है, यह सिर्फ रूढ़िवादी नहीं। सिर्फ आनेस्ट फंडनलिस्ट आदमी भी समझ में आता है, कम से कम उसकी आनेस्टी तो समझ में आती है कि वह कहता है कि हम बीमारी का इलाज करवायेंगे क्योंकि भगवान् ने बीमारी दी है, लेकिन यह आदमी इलाज करवाते वक्त आदमी के पास जाता है। दस बच्चों में नौ बच्चे मरते थे अतीत में, अब दस बच्चे में एक मरता है, नौ बच जाते हैं। ये बच्चे बचाने के लिए तो पहुंच जाते हैं आदमी के विज्ञान के पास लेकिन जब बच्चे को रोकना हो तो कहते हैं भगवान् की बात है। लेकिन जिसको हम प्रगतिशील कहें, वह क्या कर रहा है? प्रगतिशील भी जो सुझाव देता है कि कैसे रोकेंगे, बहुत प्रगतिशील नहीं है, बहुत भविष्यगामी नहीं है। उसको भी एक ही सुझाव दिखायी पड़ता है कि किसी तरह से मृत्यु-दर को रोक दो, बर्थ-कन्ट्रोल कर लो। लेकिन अगर दुनिया के सारे डाक्टर, सारी नर्सें, वे सारे लोग जो ऑपरेशन कर सकते हैं और बर्थ-कन्ट्रोल ला सकते हैं, सारे लोग चौबीस घण्टे लगा दिये जायें काम में तो भी डेढ़ सौ वर्ष लगेंगे, जब संख्या जगह पर आ जाये। डेढ़ सौ वर्ष आदमी बचेगा? इसलिए जो प्रगतिशील कह रहा है कि बस बर्थ-कन्ट्रोल हो जाये तो सब ठीक हो जायेगा। उसे पता नहीं कि वह चम्मच से सागर को खाली करने की बात कर रहा है। अगर सारी दुनिया के भी इकट्ठे चौबीस घण्टे काम में लग जायें और एक मिनट विश्राम न करें तो डेढ़ सौ वर्ष लग जायेगा तब हम कहीं दुनिया की संख्या दुनिया के भोजन के अनुपात में ला पायेंगे। इसलिए बेमानी है बात। इससे कुछ होने वाला नहीं है। रूढ़िवादी भगवान् पर छोड़ रहा है, वह एक्सपर्ट पर छोड़ रहा है लेकिन दोनों छोड़ रहे हैं। जिन्दगी का मतलब बहुत बड़ा है और उसके लिए हम अतीत की ही तरफ देखते हैं। एक देखता है कि भगवान् ने सदा सहारा दिया है। महामारी भेज दी थी, अकाल भेज दिया था, बाढ़ भेज दी थी। अब हमने उन सबको रोकने के इन्तजाम कर लिए हैं और भगवान् के हाथ काट दिये।

दूसरा आदमी देख रहा है कि जन्म-दर बढ़ गयी है, मृत्यु-दर कम हो गयी है तो जन्मदर कम कर दो। यह भी पीछे की तरफ ही से देखना है, यह भविष्योन्मुख देखना नहीं है। भविष्योन्मुख देखने के क्या मतलब होंगे ? जैसे उदाहरण के लिए मैं दो तीन बातें कहूं :

पहली बात जमीन आदमी के लिए कम पड़ गयी है तो हम समुद्र पर रहने का विचार क्यों न करें। एक प्रगतिशील विचारक बकमिलर ने समुद्र पर मकान बनाने की योजना दी लेकिन कोई सुनने को राजी नहीं था। लोग उसको पागल कहते थे। अभी पागल कहेंगे, जब तक कि पूरी जमीन पागल न हो जाये। उसने जो योजना दी है वह सीमेंट कांक्रीट के मकानों की है और एक बड़े मकान में एक लाख आदमी रह सकें, इतनी बड़ी योजना थी और सीमेंट कांक्रीट का इतना बड़ा मकान पानी पर तैराया जा सकता है। उसके भीतर जो हवा का बैलून होगा उसी की वजह से वह डूबेगा नहीं। उसको डूबने से बचने के लिए और कोई इन्तजाम करने की जरूरत नहीं है। चारों तरफ से बन्द होगा, बस उसके भीतर का हवा बैलून उसे तैरायेगा लेकिन कोई मानने को तैयार नहीं। वह दस साल से चिल्ला रहा है कि समुद्र पर रहने का इन्तजाम करो लेकिन उसकी कोई ख्याल में हमारे बात ही नहीं आयी। और दूसरी बात एक दूसरा वैज्ञानिक कह रहा है कि जमीन के भीतर अण्डरग्राउंड रहने की व्यवस्था करो। जमीन से हट जाओ नीचे। अगर आदमी जमीन के नीचे हट जाये, जो कि कठिन है, अण्डरग्राउंड रहा जा सकता है। अब हमारे पास सारी सुविधाएं हैं, हम जमीन के नीचे जा सकते हैं तो पूरी जमीन पैदावार के लिए मुक्त हो जाये। लेकिन वह हमारे ख्याल में नहीं आयेगा। सच यह है कि आदमी को पानी से भी हटना पड़ेगा और पानी पर ज्यादा दिन काम नहीं चलेगा। जमीन के नीचे ही हटना पड़ेगा। जमीन के नीचे बहुत गुंजाइश है। जितने मन्दिर मकान हम जमीन के ऊपर उठा रहे हैं उससे गहरे ज्यादा मन्दिर मकान हम जमीन के नीचे ले जा सकते हैं। लेकिन किसी प्रगतिशील मस्तिष्क को हिम्मत करनी चाहिए भविष्य को देखने की। सारी दुनिया में हम फिक्र करते हैं कि ज्याद उत्पादन करो, ज्यादा पैदावार करो, लेकिन जमीन थक गई है और बूढ़ी हो गई है। आदमी ने उसका बहुत शोषण कर लिया है। हम सब उपाय करके भी बहुत कुछ न कर पायेंगे। और कितने ही सिंथेटिक खाद हम डालें और कितना ही हम कुछ करें ये सब उपाय पुराने हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि पहले हम गोबर डालते थे। वह पुराने दिनों का खाद था और हम फैक्ट्री बनाकर फर्टिलाइजर डालते हैं। वह नये ढंग का खाद है। लेकिन खाद को ही हम दस हजार साल से बीस हजार साल से डाल रहे हैं।

नहीं, हमें बहुत जल्दी ख्याल कर लेना चाहिए कि अब पृथ्वी उतना भोजन नहीं पैदा कर सकेगी। हमें सिंथेटिक फूड पर आ जाना चाहिए। असल में रोटी खाने

की आदत हमें छोड़ देनी चाहिए। गोली खाने की आदत पर आ जाना चाहिए। क्यों ? ऐसे भी मैं मानता हूं कि ज्यादा स्वास्थ्यकर होगा, ज्यादा हितकर होगा, ज्यादा आनन्दपूर्ण होगा। क्योंकि पुराना ढंग बहुत ही नासमझी से भरा हुआ है। सेर भर खाना खाइये फिर थोड़ा-सा पचता है और बाकी को निकालने की मेहनत करनी है। वह बिल्कुल बेमानी है। इतना ज्यादा भोजन शरीर में फेंक कर फिर उसको बाहर निकालना पड़ता है। आपके शरीर की जिन्दगी भीतर डालने और बाहर निकालने में खत्म होती है। भीतर डालकर उसको पचाने के लिए आठ घण्टे की नींद जरूरी हो जाती है। आदमी आठ साल जिन्दा रहता है तो बीस साल सोने में खराब हो जाता है और वह बीस साल सोना जरूरी होता है। क्योंकि उसके खाने का जो ढंग है वह बहुत ही पुराना है। उसके लिए उसे सोना ही पड़ता है नहीं तो पचा नहीं सकता। फिर वह पचाने में बहुत बड़े मजे की बात है कि थोड़ा-सा उसके काम आता है बाकी बेकार बाहर फेंकना पड़ता है। अब हम उस स्थिति में आ गये हैं कि जितना काम आता है उतना ही क्यों न लें। शरीर पर कोई जोखम डालने की जरूरत नहीं है। सिंथेटिक फूड आदमी की उम्र करीब-करीब दुगुनी कर देगा। क्योंकि आदमी की आधी ताकत खाना पचाने और शरीर से खाना फेंकने में बाहर होती है। जिस दिन से सिंथेटिक फूड होगा, डेढ़ सौ साल औसत उम्र हो सकती है। और डेढ़ सौ साल में हमें सोने के लिए बहुत कम समय देने की जरूरत रह जायेगी। ध्यान रहे, जानवर को आदमी से ज्यादा सोना पड़ता है। इसलिए जानवर उतना ज्यादा विकसित नहीं हो पाया। बच्चे को मां के पेट में चौबीस घण्टे सोना पड़ता है। फिर पेट से निकल कर बाईस घण्टे सोना पड़ता है। कभी आपने ख्याल किया है कि बच्चा जैसे-जैसे विकसित होता है उसकी नींद कम होती चली जाती है। किसी न किसी दिन मनुष्यता को वह घड़ी पैदा करनी पड़ेगी जब नींद बेमानी हो जाये। हो सकती है। आज वह जगह आ गयी है लेकिन भविष्य की तरफ हमारा ख्याल हो तब। हम सोच ही नहीं पाते, हम हमेशा पीछे की तरफ सोचते चले जाते हैं। अगर आज हम दस हजार साल पीछे लौटें तो जो बातें हमारे दिमाग में बैठी थी वे आज भी बैठी हुई हैं। असल में दिमाग हमारे पास क्लेक्टिव होता है। अतीत से मिला हुआ होता है। पीछे से हमारे पास आता है। हम उसको पकड़ कर जीते रहते हैं। वही हम सोचते चले जाते हैं। हमारे पास खाने का एक कनवेंशनल ढंग है। दिन में तीन बार हमें खाना है, तीन बार शरीर में डालना है। बिना इस बात के ख्याल किये कि न तो अब भोजन रहा तीन बार डालने के लायक, न जमीन है तीन बार डालने के लायक, न जरूरत है तीन बार डालने की, न आवश्यकता है कि आदमी इतना समय पकाने में, पचाने में व्यय करे। लेकिन नेता चिल्लाये चले जायेंगे कि ज्यादा खेती-बारी करो, ज्यादा उपजाओ, खाद उपयोग करो।

पुराने दिनों में जब आदमी गरीब था तो हमने कुछ सिद्धान्त विकसित किये थे। वह हम अभी भी चिल्लाये जा रहे हैं। अमरीका में भी ऐसे विचारक हैं जो उन्हीं सिद्धान्तों को कहे जा रहे हैं जो गरीब दुनिया में विकसित हुए थे। असल में वे सोसायटी के लिए खतरनाक हैं। गरीब दुनिया में एक सिद्धान्त था कि श्रम करना एक बहुत बड़ी कीमत की बात है। अब अमरीका में बड़ी दिक्कत हो रही है। अभी भी स्कूल में सिखाये चले जा रहे हैं कि श्रम बहुत कीमत की बात है। जब अमरीका जो विचारशील प्रगतिशील आदमी है, वह कह रहा है कि स्कूल में ये बातें मत समझाओ कि श्रम करना बहुत जरूरी है। क्योंकि बीस साल में सारा श्रम मशीन करेगी और आदमी श्रम की मांग करेगा तो हम श्रम कहां से देंगे। बीस साल बाद अमरीका में श्रम मांग पूरी करनी असम्भव हो जायेगी। क्योंकि श्रम आदमी से नहीं छोड़ा जा सकता है, श्रम तो मशीन कर देंगी लेकिन हजारों सालों की शिक्षा है कि श्रम भगवान् है, श्रम करना देवता है, श्रम करना बड़े गुण की बात है। और जो आदमी बेकार है वह बहुत बुरा आदमी है। यह बदलनी पड़ेगी आपको। आने वाले बीस साल के बाद आपको हर किताब में लिखना पड़ेगा कि जो आदमी बेकार रहने को राजी है वह बड़ा कृपालु है। क्योंकि जो आदमी पुराने ढंग से कहेगा कि मुझे काम ही चाहिए वह बड़ी मुश्किल पैदा करेगा। वह एन्टी-सोशल होगा। जैसे पुराना आदमी एन्टीसोशल था। जो कहता था मैं काम नहीं करूंगा लेकिन खाना चाहिए। हम उसको कहते थे यह आदमी समाज विरोधी है, समाज का दुश्मन है, काम नहीं करता है और खाना मांगता है। कपड़े मांगता है। इसको खाना, कपड़ा नहीं दिया जा सकता। बीस साल बाद जो आदमी कहेगा मुझे काम चाहिए, उसको हम काम नहीं दे सकेंगे। हम कहेंगे यह आदमी एन्टी-सोशल है। क्योंकि यह आदमी जो काम करेगा उससे हजार, लाख, करोड़ गुना अच्छा काम मशीन कर देगी। इस आदमी को हम काम कैसे दे सकते हैं। इसलिए बीस साल बाद भविष्य में जो आदमी काम भी मांगेगा और तनख्वाह भी मांगेगा उसे दोनों चीजें नहीं मिलेंगी। अगर काम चाहिए तो तनख्वाह कम मिलेगी और अगर बेकार होने को राजी हो तो तनख्वाह ज्यादा मिलेगी। तनख्वाह तो देनी ही पड़ेगी। क्योंकि अगर तनख्वाह नहीं देंगे तो आप लोग खरीदेंगे क्या। आप ऑटोमेटिक मशीन से चीजें पैदा कर लें लेकिन बाजार में खरीदेगा कौन। खरीदने के लिए लोगों को तनख्वाह देनी पड़ेगी। और जितनी अच्छी चीजें आप पैदा करेंगे उतनी अच्छी तनख्वाह देनी पड़ेगी। जो आदमी बेकार होने को राजी होगा—मछली मार सकेगा, ताश खेल सकेगा—शतरंज खेल सकेगा—कविता कर सकेगा वह आदमी बड़ा ही समाजमान्य नैतिक पुरुष हो जायेगा। लेकिन हमारी लाखों साल की दिमाग में जो व्यवस्था है वह यही कहती है कि श्रम बहुत ऊंची चीज है।

श्रम बहुत ऊंची चीज नहीं है। श्रम को बहुत ऊंची चीज कहा था हमने किसी मजबूरी में। क्योंकि श्रम के बिना जीना असम्भव था। अब हम इस श्रम के बिना जी सकते हैं। अब श्रम बहुत ऊंची चीज नहीं है। और जो अकबर को, औरंगजेब को, नैपोलियन को, अशोक को, बुद्ध को, महावीर को घर में विलास मिल सका था वह अब हर एक को मिल सकता है। और ध्यान रहे दुनिया में सारी संस्कृति का विकास लक्जरी में होता है, श्रम में नहीं होता। दुनिया की सारी डिस्कवरी, दुनिया का सारा संगीत, सारा विज्ञान, सारा काव्य, सारे महाकाव्य—यह कालिदास जमीन खोज के महाकाव्य पैदा नहीं करते हैं। यह राजा भोज के दरबार में काव्य पैदा होता है। यह तानसेन गिट्टी तोड़कर संगीत पैदा नहीं करता है, यह अकबर के दरबार में संगीत पैदा होता है। अब मनुष्य उस स्थान के करीब आ रहा है जहां प्रत्येक आदमी को तानसेन होने का और कालिदास होने की सुविधा होगी। आप न हों वह आपके पुराने दिमाग की मजबूरी होगी। आप कहें कि हम तो गिट्टी फोड़ेंगे, क्योंकि रवीन्द्रनाथ की कविता में लिखा है कि जो गिट्टी तोड़ता है वह भगवान् है. वह नहीं चलेगा। रवीन्द्र लौटेंगे तो कविता बदलनी पड़ेगी। क्योंकि गिट्टी फोड़ने वाला सिर्फ पागल होगा। भविष्य में भगवान् नहीं हो सकता। लेकिन कुछ लोग ऑफ सेज्ड होंगे। वे कहेंगे हमें काम चाहिए ही। क्योंकि बिना काम के हम कैसे जी सकते हैं। अभी भी जो आदमी रिटायर्ड हो जाता है वह मुश्किल में पड़ जाता है। इसलिए कोई रिटायर्ड नहीं होना चाहता। अब हमें इस बात का पता नहीं है कि आज से कोई दस हजार साल पहले कि जितनी भी लाशें मिली हैं उसमें पच्चीस साल से ज्यादा की उम्र की लाशें नहीं हैं। मतलब यह हुआ कि पच्चीस साल का आदमी बूढ़ा से बूढ़ा आदमी रहा है। आज रूस में कोई हजार आदमी डेढ़ सौ साल को पार कर गये हैं। सारी दुनिया में कई मुल्कों में औसत उम्र अस्सी साल के करीब है या ऊपर पहुंच गयी है। अब बूढ़े बढ़ते जा रहे हैं। अब बूढ़ों को रिटायर करना पड़ेगा। वे रिटायर नहीं होना चाहते। वह चाहे चपरासी हो या राष्ट्रपति हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ रहा है। वे कहते हैं कि हममें अभी पूरी ताकत है। हम दौड़ सकते हैं। आप दौड़ सकते हैं, आपकी बड़ी कृपा है। लेकिन आप खाली दौड़ें, राष्ट्रपति होकर न दौड़ें। आपको दौड़ने के लिए हम मना नहीं करते और अगर आपने जिद्द रखी कि हम राष्ट्रपति होकर ही दौड़ेंगे तो फिर बच्चों के मन में आपके प्रति अनादर होता चला जायेगा, बगावत फैलती जाये तो कुछ हैरानी न होगी। क्योंकि बच्चों को बूढ़ों से कभी भी संघर्ष नहीं करना पड़ेगा। पुराने समाज में। इसके कारण थे। एक तो पुराने समाज का काम ऐसा था कि बाप को अनिवार्य रूप से बेटे को सौंपना पड़ता था। किसान का काम था बैल जोतने थे, लकड़ी काटनी थी, पत्थर तोड़ना था, जमीन गोड़नी थी, ताकत की जरूरत थी।

बाप जैसे ही बूढ़ा होता था जवान बेटे को उसको अपने आप काम सौंपना पड़ता था। जवान बेटा अपने आप मालिक हो जाता था। बाप अपने आप हटता जाता था। आज हालत बदल गयी है। आज बाप चाहे तो बिल्कुल नहीं हटे। क्योंकि आज कोई श्रम का काम नहीं है। लेकिन बेटा प्रतीक्षा करता है कि आप कब हटोगे। मैं खुद ही बाप हुआ जा रहा हूं। कहीं ऐसा न हो कि मैं बीच में ही समाप्त हो जाऊं। और दूसरी पीढ़ी आगे आ गयी है। तो बेटे चिन्तित हो गये हैं।

कभी आपने ख्याल किया कि गरीबों के बेटों का बापों से कभी झगड़ा नहीं हुआ। लेकिन सम्राटों के बेटों का झगड़ा सदा हुआ। सम्राटों के बेटे बुरे बेटे नहीं थे। वही बेटे थे जो गरीब के बेटे थे। लेकिन वह गरीब के बेटे को बाप का काम अपने आप मिल जाता था। सम्राट् अपने आप काम नहीं छोड़ता था। वह काम ऐसा था कि सम्राट् छोड़ना नहीं चाहता था और वह काम ऐसा था कि उसके लिए कोई जवान और ताकत की जरूरत न थी। बेटों को छीनना पड़ता था। औरंगजेब बुरा बेटा नहीं था। अगर औरंगजेब गरीब का बेटा होता तो कोई कठिनाई नहीं आती। बाप को कैद न करना पड़ता। क्योंकि बाप खुद ही कहता कि बेटा अब तुम जवान हो गये हो अब देखो। अब तुम बैल की जगह काम करो। लेकिन औरंगजेब का बाप राजा था वह हटना नहीं चाहेगा। आज करीब-करीब दुनिया के बाप उस हालत में आ गये हैं जहां कि उन्हें बेटों को काम दिये चल सकता है। इसलिए सारी दुनिया में बाप और बेटे के बीच क्लास स्ट्रगल पैदा हो गयी है। जो कभी नहीं थी। इसे ठीक से समझ लेना चाहिए। जो प्रगतिशील है उन्हें यह बात ठीक से समझ लेनी चाहिए कि हमें काम न करने को भी गौरव देना पड़ेगा। और जितनी जल्दी जो आदमी रिटायर होता है उसे उतना सम्मानित करना पड़ेगा। और कल तो हमें धीरे-धीरे पूरी सोसायटी को रिटायरमेंट में, बिना काम में गये रिटायरमेंट के लिए तैयार करना पड़ेगा।

ये सारी की सारी कठिनाइयां, हमारा पुराना मन हमें दिक्कत देता है। तो जब मैं कहता हूं कि प्रगतिशील कौन है ? तो मेरा मतलब है कि जो अतीत से नहीं सोच रहा है, बल्कि जो भविष्य से सोच रहा है। भविष्य से सोचने में सरटेंटी नहीं हो सकती, सदा परहेप्स है। सदा एक स्यात होगा इसलिए एक आखिरी बात आपसे कहूं। आर्थोडाक्स हमेशा एब्सलूट होता है, उसकी बात परफेक्ट होती है, पूरी होती है। आर्थोडाक्स हमेशा दावेदार होता है। वह कहता है, ऐसा ही है। ए इज ए, उसका जो तर्क है वह अरेस्टिटोरियन होती है। वह कहता है ए इज ए यानी ए कैन नाट बी बी, अ अ, है और अ ब नहीं हो सकता। यह रूढ़िग्रस्त चित्त का तर्क होता है। प्रगतिशील चित्त एब्सलूट नहीं हो सकता है, रिलेटिव ही हो सकता है, सापेक्ष हो सकता है। उसके हर वक्तव्य के साथ परहेप्स जुड़ा होगा। वह कहेगा शायद ऐसा हो। अगर कोई भी आदमी ऐसा कहेगा कि ऐसा ही होगा तो समझना कि

वह रूढ़िवादी है। अगर कोई आदमी प्रगति के सम्बन्ध में भी कहे कि ऐसा होगा ही तो समझना कि वह प्रगति के सम्बन्ध में रूढ़िवादी है। लेकिन जो आदमी कहे, ऐसा हो सकता है, ध्यान रहे, जगत उस जगह आ गया है जहां एब्सलूट स्टेटमेंट की कोई जरूरत नहीं रह गयी। सिर्फ नासमझी ही भविष्य में अब एब्सलूट स्टेटमेंट कर सकेंगे। अतीत में भी अज्ञानियों के सिवाय एब्सलूट स्टेटमेंट किसी ने नहीं दिये, सिर्फ अज्ञान में यह कह सकता है कि जो मैं कहता हूं वह परम सत्य है। ज्ञान हेजीटेट करेगा, वह कहेगा जो हम कहते हैं वह हो सकता है, नहीं भी हो सकता है। इससे अन्यथा भी हो सकता है। हजार आल्टरनेटिव है, भविष्य अनिश्चित है, अनसर्टिव है, उसके साथ स्यात जुड़ा है, परहैप्स जुड़ा है, ऐसा हो भी सकता है। ऐसा नहीं भी हो सकता है। प्रोग्रेसिव का तर्क अरेस्टोटोरियन नहीं हो सकता। प्रोग्रेसिव तर्क कहना चाहिए जेन जैसा होगा। जेन फकीर कह सकता है—ए इज ए एंड ए इज बी ऑलसो। वह कह सकता है, अ अ भी है और अ ब भी है। तर्क के लिए बड़ी कठिनाई हो जाती है क्योंकि तर्क सीधी रेखाएं पसन्द करता है कि हम कहें कि यह काला है और यह सफेद है लेकिन जिन्दगी में न कोई काली होती है चीज, न कोई सफेद होती है। जिन्दगी में सारा ग्रे होता है। हां ग्रे की एक एक्सट्रीम होती है जिसको हम काला कहते हैं। ग्रे की दूसरी एक्सट्रीम होती है जिसको हम सफेद कहते हैं। जिन्दगी ग्रे है, जिन्दगी में सफेद और काली जैसी कोई चीज नहीं है, जिन्दगी में ठण्डी और गरम जैसी कोई चीज नहीं है, ठण्डी और गरम एक ही चीज के, एक ही तापमान के डिग्री हैं। इसलिए कभी एक छोटा-सा प्रयोग करें और आपकी जिन्दगी में फल होगा। एक हाथ को गरम कर लें और एक हाथ को ठण्डा कर लें। दोनों को एक ही बाल्टी में डाल दें और फिर बतायें कि पानी गरम है कि ठण्डा। एक हाथ कहेगा ठण्डा, एक हाथ कहेगा गरम। गरम और ठण्डी दो चीजें नहीं हैं। गरम और ठण्डे एक ही चीज के अनुपात हैं। प्रोग्रेसिव लॉजिक, प्रगतिशील तर्क अ और ब के विरोध को तोड़ता है, प्रगतिशील तर्क काले और सफेद के विरोध को तोड़ता है, प्रगतिशील तर्क अच्छे और बुरे के विरोध को तोड़ता है। वह यह नहीं कहता है कि दिस इज ईविल एण्ड दिस इज गुड। वह नहीं कहता कि दिस इज हेल एण्ड दिस इज हैवेन। वह नहीं कहता कि यह है पापी, यह है पुण्यात्मा। वह कहता है, पाप और पुण्य एक ही चीज की डिग्री है और पापी कभी पुण्यात्मा भी होता है और पुण्यात्मा कभी पापी भी होता है और महात्मा के भी क्षण हैं, जब महात्मा छुट्टी पर होता है और पापी के भी क्षण हैं जब पापी महात्मा होता है। जिन्दगी जटिल है। प्रगतिशील चित्त जिन्दगी में हो तो आपको ख्याल में आ सकेगा कि प्रगतिशील कौन है ? और सबसे उचित तो यह होगा कि सोचना मत, हो के देखना, क्योंकि प्रगतिशीलता जिन्दगी है। उसे होकर जाना जा सकता है। उसे सोच के पढ़ के नहीं

जाना जा सकता, समझ के नहीं जाना जा सकता है लेकिन धन्य हैं वे लोग प्रगतिशील हो पाते हैं। क्योंकि जिन्दगी उनकी है, जो प्रगतिशील हैं और वे मृत हैं जो प्रगतिशील नहीं हैं। मैंने ये थोड़ी-सी बातें कहीं, कोई भी बात मान मत लेना अन्यथा मैं आपको रूढ़िवादी बनाने में कारण बन जाऊंगा। इतना भी पाप मैं नहीं लेना चाहता हूं। मैंने कुछ बातें कहीं, सोचना। इसमें बहुत कुछ गलत होगा, बहुत कुछ ठीक भी हो सकता है। गलत और ठीक इसमें अलग-अलग बातें नहीं हैं। लेकिन अगर आप सोचने की यात्रा पर निकल सके तो पर्याप्त है।

प्रश्न—आपके विचार से रूढ़िवाद का विरोधी और अपने दृष्टिकोण को भविष्य की ओर बना कर रखने वाला किस स्थल पर मिलते हैं?

उत्तर—किसी स्थल पर नहीं मिलते। मिलते इसलिए नहीं हैं कि जिसे भविष्य की ओर देखना है उसे अतीत की ओर पीठ करनी होती है और जिसे अतीत से लड़ना है उसे अतीत की ओर मुंह करना पड़ता है। अगर वे मिलते भी हैं तो दोनों की पीठ मिलती है, और कुछ नहीं मिलता है। अतीत लड़ने योग्य भी नहीं है। जो मर गया है उससे लड़ कर आप मर ही सकते हैं और कुछ भी नहीं कर सकते। अतीत लड़ने योग्य भी नहीं है, अतीत मुक्त होने योग्य है।

प्रश्न—रूढ़िवाद को तोड़ने वाला यदि स्वयं नये प्रकार की रूढ़िवादिता का प्रश्रय देने लगता है तो वह प्रगतिशील कब होगा?

उत्तर—वह कभी नहीं होगा। रूढ़िवाद की तोड़ने वाला अगर नये रूढ़िवाद को प्रश्रय देता है तो वह स्वयं भी रूढ़िवादी है लेकिन किसी तरह के रूढ़िवाद के विरोध में हो और किसी तरह के रूढ़िवाद के पक्ष में हो—उसकी च्वाइस है, उसका चुनाव है। रूढ़िवाद का वह विरोध नहीं है, किसी रूढ़ि का वह विरोधी होगा और किसी दूसरी रूढ़ि को लाना चाहता है। प्रगतिशील किसी रूढ़ि को नहीं लाना चाहेगा। प्रगतिशील का अर्थ ही यही है कि हम एक ऐसा समाज चाहते हैं जहां हम किसी को रूढ़ि में नहीं बांधेंगे। आप पूछ सकते हैं कि रूढ़ि में नहीं बांधेंगे तो समाज कैसे चलेगा? समाज बिना रूढ़ियों के चल सकता है और सभी नियम रूढ़ियां नहीं होतीं। जिन नियम को हम भावावेश से पकड़ते हैं वे रूढ़ियां हो जाती हैं। जैसे उदाहरण के लिए—यह रास्ते का नियम है कि आप बायें चलिये। किन्हीं मुल्कों में रास्ते का नियम है कि दायें चलिये। यह कोई रूढ़ि नहीं है। यह सिर्फ फार्मल व्यवस्था है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि आप बायें चलते हैं कि दायें चलते हैं। एक व्यवस्था बना ली है कि बायें चलिये। उससे चलने वालों को सुविधा होती है। लेकिन बायें चलना कोई वेद वाक्य नहीं है और बायें चलने की तख्ती लगाकर इसकी पूजा करने की कोई जरूरत नहीं है। और बायें चलने के नियम को अगर किसी दिन बदलना पड़े तो हम सोचें कि दायें चलने का नियम बना लें तो किसी को झंडा लेकर चलने की यह जरूरत नहीं है कि हमारे धर्म पर हमला

हो गया। किसी के धर्म पर हमला नहीं हो रहा है। जिस दिन दुनिया में प्रगतिशीलता होगी उस दिन नियम तो होंगे, रूढ़ियां नहीं होंगी। नियम नहीं होंगे, यह मैं नहीं कह रहा हूं। रूढ़ि और नियम में फर्क है। जब किसी नियम को हम पागल की तरह पकड़ लेते हैं तब वह रूढ़ि बन जाती है और जब हम किसी रूढ़ि का उपयोग करते हैं तब वह नियम रह जाती है। सब नियम रूढ़ियां बन सकते हैं और सब रूढ़ियां नियम हो सकती हैं। अभी हमने सब नियमों को रूढ़ियां बना लिया है, अभी हर चीज रूढ़ि है। होना चाहिए हर चीज नियम। नियमहीन समाज नहीं हो सकता है, रूढ़िहीन समाज हो सकता है।

प्रगतिशील होने का मतलब यह नहीं है कि हम किसी ऐसे समाज की बात कर रहे हैं जहां कोई नियम न होगा, कि रास्ते पर जिसको जहां चलना हो, वहीं चल सकेगा। ऐसा रास्ता नहीं हो सकता और अगर ऐसा रास्ता बनाना हो तो रास्ता ही नहीं होगा, सिर्फ जंगल में आदमी जहां चाहे वहां चल सकता है। अगर आपको कभी ऐसा समाज बनाना है कि जिसका कोई नियम न हो, उसका रास्ता भी न होगा क्योंकि जंगल होगा। जंगल में कोई नियम न होगा। अगर रास्ता है और चलने वाले लोग हैं तो नियम होगा। लेकिन नियम को रूढ़ि बनाने की कोई जरूरत नहीं है। जिन्दगी नियम से चले, तब नियम को बदलने में कभी कठिनाई नहीं आती क्योंकि हमारा कोई रागात्मक सम्बन्ध नहीं होता नियम से। अब बायें चलना कोई हिन्दू का नियम है, न यह मुसलमान का नियम है, न यह ईसाई का नियम है। जिन्दगी के सारे नियम बायें और दायें चलने जैसे होने चाहिए। जब हमें जरूरत पड़े बदलें, जब अनुपयोगी हो जाये, हटा दें। लड़ने की जरूरत न आये। उनसे लड़ने की जरूरत इसलिए आती है कि कुछ लोग उसे जोर से पकड़ लेते हैं, अकारण पकड़ लेते हैं। मैं जो कह रहा हूं, अगर कोई रूढ़ि तोड़ने वाला नयी रूढ़ि प्रश्रय देता हो तो वह आदमी रूढ़िवादी है। सिर्फ पुरानी रूढ़ि से ऊब गया है और ध्यान रहे, पुरानी रूढ़ि अच्छी है नयी रूढ़ि से क्योंकि पुरानी रूढ़ि को टूटने की स्थिति आ जाती है। नयी रूढ़ि फिर नयी है, मजबूत होती है, ज्यादा दिन चलती है। आदमी मरघट जाता है, लाश को कन्धे पर रखकर अर्थी को। कंधा दुखने लगता है तो कंधा बदल लेता है। एक कंधे से दूसरे कंधे पर अर्थी को कर लेता है। उससे कोई बोझ में फर्क नहीं पड़ता। थोड़ी देर राहत मिल जाती है। नये कंधे पर वजन थोड़ी देर कम मालूम पड़ता है, और कोई फर्क नहीं पड़ता है। पुरानी रूढ़ि से नयी रूढ़ि पर नहीं जाना है, रूढ़ियों से नियम पर जाना है। इसमें बुनियादी फर्क है।

प्रश्न—पागलपन और प्रगतिशीलता में क्या फर्क है?

उत्तर—बहुत कम फर्क है, बहुत बारीक फर्क है। असल में साधारणतः पागल हम उसे कहते है जो हमारे समाज के बीच मैल एडजेस्टेड हो जाता है, जो हमारे

समाज के बीच एडजेस्टमेंट खो देता है। जरूरी नहीं है कि वह पागल हो। हो सकता है, पूरा समाज ही पागल हो और इसलिए वह आदमी एडजेस्ट न हो पाता हो क्योंकि जीसस को जिन लोगों ने सूली दी थी उन्होंने पागल समझकर दी थी और सुकरात को जिन लोगों ने जहर पिलाया था उन्होंने पागल समझकर पिलाया था और महावीर पर जिन लोगों ने पत्थर फेंका था उन्होंने पागल समझकर फेंके थे। समाज उस आदमी को पागल कहता है जो समाज के ढांचे में फिट नहीं पड़ता। यह पागल भी हो सकता है, यह प्रोगेसिव भी हो सकता है। दोनों हालत में समाज के ढांचे में फिट नहीं पड़ेगा। फर्क क्या है ? फर्क एक ही है कि यह जो आदमी पागल है इससे कोई भविष्य नहीं निकलेगा, यह जो आदमी प्रगतिशील है, इससे भविष्य निकलेगा और यह जो आदमी पागल है इस आदमी से कुछ भी निकलने वाला नहीं है और यह जो प्रगतिशील है, जिसे हम पागल की तरह आज अनुभव करेंगे, कल इसे हम भगवान् की तरह पूजेंगे। हमने सब पागलों को पूजा है बाद में। असल में अगर जीसस को पैदा होना पड़े तो उन्हें दो चार पांच हजार साल रुककर पैदा होना चाहिए तब वे एडजेस्ट हो सकेंगे, लेकिन वे पांच हजार साल पीछे पैदा हो जाते हैं, यह उनकी गलती है। अब पागल के सम्बन्ध में हमारी दृष्टि बहुत बदलती जा रही है। जैसा हम पीछे सोचते थे वह दृष्टि नहीं रह गयी। पागल के सम्बन्ध में आज क्या सोचते हैं। तीन तरह के पागल साधारणतः होते हैं। एक तो पागल वह है जिसको फिजिकली डिरेंस्ट है। इस तरह के पागल को बीमार मानना चाहिए। इस तरह के पागल को पागल नहीं मानना चाहिए। जैसे एक आदमी के पास आंख नहीं है, एक आदमी के पास मस्तिष्क का कोई हिस्सा नहीं है वह पागल है। अन्धे को पागल नहीं कहते आप। काने को पागल नहीं कहते, लंगड़े को पागल नहीं कहते। फर्क क्या है इस आदमी और उस आदमी में। उसके यंत्र में ही कोई चीज की कमी है। इसके यंत्र में भी कोई चीज कम है। उसके देखने के यंत्र में कमी है, इसके सोचने के यंत्र में कमी है। इसको बीमार कहना चाहिए। पागल नहीं कहना चाहिए। दूसरी बड़ी संख्या उन पागलों की है जो हमारे समाज के कारण पागल हो जाते हैं जिनके लिए जिम्मेवार हम हैं। वे जिम्मेवार नहीं हैं। अब एक आदमी को हम एक स्त्री के साथ शादी करवा देते हैं जिसे उसने कभी देखा नहीं, जिसने उसे कभी चाहा नहीं। अब हम पूरी जिन्दगी आशा करते हैं कि वह उसे प्रेम करे। अगर यह प्रेम नहीं हो पाता, वह अगर सीधा व भला आदमी है तो प्रेम करने की कोशिश करेगा और ध्यान रहे कि कोशिश से प्रेम कभी भी नहीं होता। वह पागल हो जायेगा। बदल भी नहीं सकता। जिसे प्रेम कर सकता था उसे कर भी नहीं सकता, जिसे नहीं कर सकता है उसे करने की कोशिश करता है। हम उसे दबा डालेंगे। वह पागल हो सकता है। अब यह पागल हो जायेगा तो हम कहेंगे कि यह आदमी पागल है। यह

आदमी पागल नहीं है, यह आदमी पागल समाज में पैदा हुआ है। और हो सकता है कि इसकी जगह अगर थोड़ा कम सेंसिटिव आदमी होता तो चला लेता और पागल नहीं होता। इसलिए मनोविज्ञान की नयी खोजें यह कहती हैं कि जिसको हम पागल कहते हैं उनमें कई बार हमसे ज्यादा सेंसिटिव और हमसे ज्यादा पोटेंशियल लोग होते हैं। क्योंकि वे बेचारे नहीं सह पाते। साधारण आदमी, मिडियाकर माइंड का आदमी होता तो वह कहता ठीक है, प्रेम-व्रेम की जरूरत भी क्या है। बच्चे पैदा करते हैं, काम चलता है। वह चला लेता। लेकिन एक आदमी है जो बच्चे पैदा होने से तृप्त नहीं हो सकता। जो सेक्स से तृप्त नहीं हो सकता। जो कहेगा यह तो बहुत ही बायोलॉजिकल तल पर बात है जिसकी कोई और भीतरी आकांक्षा है जो प्रेम चाहता है वह प्रेम नहीं मिल रहा है तो वह पागल हो जायेगा। और वह जो मिडियाकर है, जो पागल नहीं होंगे वे उसको कहेंगे कि यह आदमी पागल हो गया है। दूसरा वर्ग उन पागलों का है जो इसलिए पागल हो जाते हैं कि जो हमने समाज निर्मित किया है। उसका सारा ढांचा पागलपन का है। वह हजार तरह के पागलपन की व्यवस्था किये बैठी है और उन पर थोप रही है लेकिन ऊपर उसमें जो कम संवेदनशील, कम बुद्धिमान हैं वे राजी हो जायेंगे। जो संवेदनशील है, ज्यादा बुद्धिमान है वह पागल हो जायेगा।

तीसरे तरह के पागल वे हैं जो न तो समाज की वजह से पागल हैं, न किसी फिजिओलॉजिकल कारण से पागल हैं बल्कि भविष्य के लोग हैं, आज के लोग भी नहीं हैं। बहुत फासला उनका और आज में है। हमारे और उनके बीच कोई कामन लेंग्वेज नहीं है। हमारे और उनके बीच कोई कम्युनिकेशन नहीं हो पाता। पागल हम उसे कहने लगते हैं जिससे हमारा कोई तालमेल नहीं बैठता है, कोई सम्बन्ध नहीं बनता है। वे हमें पागल दिखाई पड़ने लगते हैं, दिखाई पड़ेगा ही, क्योंकि वह दो या तीन हजार या पांच हजार साल आने वाले भविष्य की भाषा बोलता है। वह भविष्य की बात कर रहा है। वे ऐसी बात कर रहे हैं—जैसे कि कृष्ण हैं। अगर आज वे पैदा हो जायें तो पागल होंगे। उस दिन भी पागल थे। अगर आज पैदा हो जायें तो कृष्ण मोर-मुकुट बांधकर और बांसुरी लगाकर नाचने लगें तो वह जो उनके मन्दिर में पूजा करते हैं वे भी पुलिस में खबर कर देंगे कि इसको जरा संभालो, क्योंकि पूजा ठीक थी, मन्दिर में थे तो ठीक था, चलता था, कोई झंझट नहीं थी। लेकिन सड़क पर ये बांसुरी बजायें, यह ठीक नहीं है। और ये किसी और की राधा के साथ नाच लेते थे वह ठीक है, हमारी राधा के साथ नाचें तो बहुत खतरा है, यह नहीं चलेगा। अब कृष्ण उस भविष्य की दुनिया के आदमी हैं जिस दिन प्रेम पजेसन नहीं रह जायेगा उस दिन कृष्ण कम्युनिकेट कर सकेंगे। उस दिन वे पागल नहीं होंगे। जिस दिन प्रेम पजेसन नहीं होगा, जिस

दिन प्रेम स्थायी कांट्रेक्ट नहीं होगा, जिस दिन प्रेम क्षणिक घटना होगी, और जिस दिन प्रेम की कोई माल्कियत नहीं होगी उस दिन कृष्ण शायद अर्थपूर्ण हो जायें। कृष्ण उस दिन अर्थपूर्ण हो सकते हैं जिस दिन कोई आदमी बांसुरी बजाये चौबीस घण्टे तो भी भूखा नहीं मरेगा, नाचे, रास करे तो भी भूखा नहीं मरेगा। कृष्ण उस दिन भविष्य के आदमी हो सकते हैं जिस दिन हम सुख भी स्वीकार करेंगे। हम इतने दुखी लोग हैं कि हम किसी को दुखी देखकर स्वीकार नहीं कर सकते ईर्ष्या से भर जाते हैं। कृष्ण जैसे आदमी की हम गर्दन दबा देंगे कि इतना सुखी आदमी हमारे बीच, कि हम रोये चले जा रहे हैं और तुम बांसुरी बजा रहे हो। नहीं, यह बहुत ही सुखी समाज में जहां किसी दूसरे का सुख ईर्ष्या पैदा नहीं करेगा, जहां दूसरे का सुख हमें भी नाच में ले जायेगा, कृष्ण उस दिन स्वीकृत हो सकते हैं। ऐसे लोग भी पागल हैं। तो मैं मानता हूं कि प्रोग्रेसिव थोड़े बहुत अर्थ में पागल के करीब होगा। दो कारणों से करीब होगा। एक तो समाज उसको दबायेगा इसलिए, और एक वह भविष्य ओरिएन्टेड होगा इसलिए। पागल और उसके बीच समानता है। लेकिन जिस समाज में हम जीते हैं उसमें न पागल होने से पागल होना बेहतर है।

●

प्रोग्रेसिव ग्रुप द्वारा बम्बई में आयोजित
भगवान् श्री रजनीश जी का एक प्रवचन

धर्म और राजनीति

विषय	पृष्ठ संख्या

१८—धर्म और राजनीति

मेरे प्रिय आत्मन्,

धर्म जीवन को जीने की कला है, जीवन को जीने का विज्ञान है। हम जीवन को उसके पूरे अर्थों में कैसे जियें, धर्म उसकी खोजबीन है। धर्म यदि जीवन-कला की आत्मा है, तो राजनीति जीवन-कला का शरीर है। धर्म अगर प्रकाश है जीवन का, तो राजनीति पृथ्वी है। न आत्मा अकेली हो सकती है, न शरीर अकेला हो सकता है। शरीर न हो तो आत्मा अदृश्य हो जाती है और खो जाती है और आत्मा न हो तो शरीर सड़ जाता है, दुर्गन्ध देने लगता है। धर्म के बिना राजनीति सड़ा हुआ शरीर हो जाती है···लेकिन स्मरण रहे, राजनीति से विहीन धर्म भी अदृश्य हो जाता है और विलीन हो जाता है। इसलिए धर्म और राजनीति पर कुछ कहने के पहले उन दोनों के बीच के एक आंतरिक सम्बन्ध को समझ लेना जरूरी है।

जीवन में जो सक्रिय सत्ता है, जीवन को बदलने का जो सक्रिय आंदोलन है, जीवन को चलाने और निर्मित करने की जो व्यवस्था है, उस सबका नाम राजनीति है। राजनीति के भीतरी अर्थ भी हैं, शिक्षा भी है। राजनीति के भीतर हमारे पारिवारिक सम्बन्ध भी हैं। राजनीति के भीतर हमारे जीवन के सारे अन्तर्सम्बन्ध हैं, लेकिन भारत का दुर्भाग्य समझा जाना चाहिए कि हजारों वर्षों से राजनीति और धर्म के बीच कोई सम्बन्ध नहीं रहा। भारत में राजनीति और धर्म

दोनों जैसे विरोधी रहे हैं—एक-दूसरे की तरफ पीठ किये खड़े । और यह आज की ही बात नहीं है, हजारों वर्षों से ऐसा हुआ है और उसका दुष्परिणाम भी हमने भोगा है । एक हजार वर्ष की गुलामी उसका दुष्परिणाम है । हिन्दुस्तान गुलाम हुआ, क्योंकि हिन्दुस्तान के धार्मिक लोगों के मन में ऐसा नहीं लगा कि उन्हें कुछ करना है । धर्म का राजनीति से कोई सम्बन्ध न था । धार्मिक आदमी को लगता था, "कोई हो नृप, हमें क्या हानि ?" कोई भी हो राजा, हमें क्या प्रयोजन है ? कोई भी हो सत्ता में, हमें क्या विचार की बात है ।

धर्म को हमने हजारों वर्षों से राजनीति निरपेक्ष बना दिया है । इसका बदला हिन्दुस्तान की राजनीति ने अभी-अभी लिया है । उसने राजनीति को धर्म निरपेक्ष बना दिया है । हजारों वर्षों तक हिन्दुस्तान का धर्म राजनीति निरपेक्ष था, उसका एक ही परिणाम होने को था । और अन्तिम परिणाम यह हुआ कि हिन्दुस्तान की राजनीति अब धर्म निरपेक्ष है । हजारों वर्षों तक धार्मिक आदमी कहता रहा कि राजनीति से हमें कुछ नहीं लेना-देना है और राजनीति ने अभी बीस साल पहले उसका बदला दिया और उसने कहा—धर्म से हमें कुछ नहीं लेना-देना है । लेकिन कोई राजनीति धर्म निरपेक्ष कैसे हो सकती है ? राजनीति के धर्म निरपेक्ष होने का क्या अर्थ हो सकता है ? एक ही अर्थ हो सकता है कि जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, जो भी श्रेष्ठ है, राजनीति को उससे कोई प्रयोजन नहीं । मनुष्य के ऊंचे उठने की जो भी सम्भावनायें हैं, राजनीति उसके सम्बन्ध में कोई भी सक्रिय भाग अदा नहीं करना चाहती ।

धर्म से निरपेक्ष होने का अर्थ होता है—सत्य से निरपेक्ष होना, प्रेम से निरपेक्ष होना, जीवन के गहनतम ज्ञान से, निरपेक्ष होना । कोई भी राजनीति अगर धर्म से निरपेक्ष होगी, तो वह मनुष्य के शरीर से ज्यादा गहरा प्रवेश नहीं कर सकती और जो समाज केवल शरीर के आस-पास जीने लगता है, उस समाज के जीवन में उसी तरह की दुर्गन्ध पैदा हो जायेगी जैसे मरी हुई लाश में पैदा हो जाती है । इधर बीस वर्षों में आजादी के बाद भारत का सारा जीवन दुर्गन्ध से, कुरूपता से, ग्लानि से, दुख और पीड़ा से भर गया । शायद मनुष्य-जाति के इतिहास में कोई भी देश स्वतन्त्र होकर इस भांति कभी पतित नहीं हुआ है । यह दुर्घटना कैसे घट सकी ? यह दुर्घटना घट सकी इसलिए कि जीवन को ऊंचे उठाने वाले जो भी सिद्धान्त हैं, उन सब सिद्धांतों का इकट्‌ठा नाम धर्म है । और हमारे देश की राजनीति धर्म के प्रति निरपेक्ष है । धर्म का उससे कोई प्रयोजन नहीं ।

लेकिन राजनीतिज्ञों को यह दोष देना गलत होगा । अगर हम पुराना इतिहास उठाकर देखें तो पता चलेगा कि हिन्दुस्तान के धार्मिक लोगों ने भी राजनीति के साथ इतना ही गलत व्यवहार किया है । वे आज तक कह रहे थे कि धर्म राजनीति से निरपेक्ष है । राज्य गुलाम हो कि स्वतन्त्र, देश दुष्टों के हाथ में जाये कि

अच्छे लोगों के हाथ में जाये, कि कौन हुकूमत करे कि किस भांति हुकूमत करे, इससे धार्मिक आदमी को कोई प्रयोजन न था । एक हजार वर्ष तक मुल्क गुलाम था और हिन्दुस्तान के साधु-संन्यासियों ने जरा भी इस गुलामी को उखाड़ फेंकने के लिए कोई प्रयास नहीं किया । एक हजार वर्ष की लम्बी गुलामी के इतिहास में हिन्दुस्तान के सन्त ने एक बार भी यह आवाज नहीं दी कि इस मुल्क को आजाद होना है, क्योंकि वह कहता था कि हमें राजनीति से क्या प्रयोजन । आश्चर्य की बात है कि अच्छे लोगों को गुलामी बुरी नहीं मालूम पड़ी । आश्चर्य की बात है कि मुल्क की छाती पर दुश्मन सवार रहा, मुल्क का खून दुश्मन पीता रहा और मुल्क के साधु-संन्यासी स्वर्ग और परलोक की चर्चायें करते रहे । मन्दिरों में बैठकर निमित्त महत्वपूर्ण है कि उपादान, इस पर वे विचार करते रहे । कितने नर्क होते हैं, सात या आठ, कि देवताओं के कितने रूप हैं, कि सिद्ध भगवान् का क्या स्वरूप है, इस सम्बन्ध में ये विचार करते रहे और मुल्क गुलाम और पतित होता चला गया ।

हिन्दुस्तान गुलाम रहा आया, क्योंकि हिन्दुस्तान के धार्मिक लोगों के मन में ऐसा नहीं लगा कि उन्हें कुछ करना है । धर्म का राजनीति से कोई सम्बन्ध न था । एक हजार वर्ष तक हिन्दुस्तान के साधुओं और संन्यासियों और धार्मिक लोगों ने हिन्दुस्तान के भाग्य को बदलने के लिए कुछ भी नहीं किया । स्वाभाविक था कि जब धर्म इतना निरपेक्ष रहा हो राजनीति से तो जब राजनीति मुल्क में सत्ता में आई तो उसने कहा कि धर्म से हमें क्या लेना-देना है, धर्म से हमको कुछ भी लेना-देना नहीं है । यह बदला था । लेकिन गलत चीज का बदला भी कभी सही नहीं होता है, बदला भी गलत होता है । गलत चीज का जो बदला लेते हैं वे भी गलत होते हैं ।

पुनः अब विचारणीय हो गया है कि हम अपनी मनःस्थिति को पुनः तौल लें और विचार कर लें कि क्या राजनीति और धर्म को इतने दूर रखना हितकर है । क्या यह उचित है, क्या यह योग्य है ? राजनीतिज्ञों को यह सहूलियत की बात थी कि धर्म राजनीति से दूर रहे । क्योंकि जैसे ही राजनीतिज्ञ के सामने धर्म के प्रतीक खड़े हो जाते हैं, राजनीतिज्ञ को नीचे गिरने की आसानी कम हो जाती है । धर्म एक चुनौती है, ऊपर उठाने के लिए, धर्म एक पुकार है कि निरन्तर ऊपर उठते रहो, धर्म एक आह्वान है कि मनुष्य को ऊंचे से ऊंचे शिखरों पर चढ़ना है । राजनीतिज्ञ नहीं चाहता कि धर्म से राजनीति का कोई सम्बन्ध हो, क्योंकि जैसे ही धर्म से राजनीति का सम्बन्ध होता है, राजनीतिज्ञ को अपने भीतर आमूल परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़ जाती है। जैसे ही धर्म राजनीति से सम्बन्धित होगा, वैसे ही राजनीतिज्ञ को अपने को बदलना पड़ेगा । राजनीतिज्ञ नहीं चाहता कि धर्म का कोई सम्बन्ध राजनीति से हो । क्योंकि जब धर्म से कोई

सम्बन्ध नहीं होता तो उसे षड्यन्त्र करने, उसे निम्नतम व्यवस्था देने, उसे चोरी और बेईमानी और असत्य का उपयोग करने की पूर्णतम सुविधा उपलब्ध हो जाती है। उसके पीछे कोई भी आह्वान नहीं रह जाता कि वह ऊपर उठे।

राजनीति धर्म से अलग होकर सिर्फ कूटनीति रह जाती है, राजनीति नहीं रह जाती। वह पालिटिक्स नहीं होती, सिर्फ डिप्लोमेसी होती है। वहां झूठ और सच में कोई फर्क नहीं रह जाता। हिटलर ने अपने कमरे के ऊपर लिख रखा था कि 'सत्य के अतिरिक्त और कोई नियम नहीं है।' ट्रूथ इज दी ओनली लॉ यह उसने अपने कमरे के बाहर लिख रखा था और हिटलर से ज्यादा झूठ बोलने वाला आदमी पृथ्वी पर कभी नहीं हुआ। एक मित्र उसके घर ठहरा हुआ था। उसने हिटलर को पूछा कि आप लिखे हुए हैं कि ट्रूथ इज दी ओनली लॉ सत्य एकमात्र नियम है, लेकिन आप? हिटलर ने कहा कि हां, जिसे झूठ बोलना हो उसे घोषणा करनी पड़ती है कि सत्य एकमात्र नियम है। अगर झूठ ठीक से बोलना है तो सत्य की बातें करना जरूरी है। यह तो सीधी राजनीति है, हिटलर ने कहा।

राजनीति अगर जीवन के उच्चतम उसूलों की तरफ आकर्षित नहीं है, तो वह निम्नतम उसूलों के आधारों पर जियेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है। एक बात ध्यान में रख लेना जरूरी है कि जिसके जीवन में ऊंचे से पुकार नहीं आती, उसके जीवन में नीचे से पुकार आनी शुरू हो जाती है। जीवन में दो तरह की पुकारें हैं—एक पुकार है मनुष्य के ऊपर से आने वाली, पहाड़ों से आने वाली। मनुष्य ने एक यात्रा पूरी की है पशुओं के साथ और मनुष्य को एक यात्रा करना है परमात्मा के द्वार तक। ऊपर से आने वाली पुकार उसे परमात्मा तक ले जाती है। नीचे से आने वाली पुकार, पशुओं की पुकार है, जो उसके भीतर छिपे हुए हैं। जो राजनीति यह कहेगी कि धर्म से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है, वह मनुष्य की निम्नतम जो वृत्तियां हैं, उनका खुला खेल हो जाती है।

राजनीतिज्ञ सदा चाहता है कि धर्म से दूर रहे, क्योंकि धर्म के सामने उसे आत्मग्लानि होनी शुरू हो जाती है। कुरूप आदमी नहीं चाहता कि आइने लगे हों मकान में। द्वार-द्वार पर, दरवाजे-दरवाजे पर बड़े-बड़े दर्पण लगे हों, यह कुरूप आदमी नहीं चाहेगा, क्योंकि कुरूप आदमी के सामने दर्पण का जाना बहुत दुखद हो जाता है, उसे बार-बार कुरूपता पीड़ा देने लगती है। धर्म एक दर्पण बन जाता है राजनीतिज्ञ के सामने। धर्म के सामने खड़े होकर उसे बार-बार लगने लगता है कि मैं क्या हूं? मैं कैसा हूं? मैं कैसा गलत हूं? राजनीतिज्ञ चाहता है कि धर्म से छुटकारा हो, राजनीतिज्ञ नहीं चाहता कि धर्म से सम्बन्ध रहे, क्योंकि धर्म दर्पण बन जाता है और उसमें राजनीतिज्ञ के सारे विकार और सारे कैंसर दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। इसलिए राजनीतिज्ञ खुश है कि धर्म से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। और जो कमजोर धार्मिक हैं वे भी नहीं चाहते कि राजनीति से उनका

कोई सम्बन्ध हो, क्योंकि जो कमजोर धार्मिक हैं वे हमेशा उन चीजों से भयभीत होते हैं, जहां उनकी कमजोरी टूट जाने का डर होता है अगर एक कमजोर ब्रह्मचारी है, तो वह स्त्रियों से सदा भयभीत होगा। अगर एक कमजोर अपरिग्रही है, तो वह धन से डरेगा कि कहीं आस-पास कोई धन दिखाई न पड़ जाये।

अगर एक व्यक्ति है जिसका त्याग कमजोर है और जबर्दस्ती त्याग किये हुए है, तो वह हमेशा डरेगा कि कहीं सत्ता हाथ में न आ जाये। कमजोर आदमी हमेशा उस अवसर से डरता है, जिसमें उसकी कमजोरी टूट सकती है। जिस आदमी ने उपवास किया है, और जबर्दस्ती उपवास किया है, वह भोजनालय के पास से निकलने में बहुत डरेगा। लेकिन जिस आदमी की आत्मा से उपवास आया है, उसके भोजनालय में बैठे रहने में कोई भय नहीं है, भय का कोई कारण नहीं है। लेकिन जिस आदमी ने जबर्दस्ती उपवास कर लिया है और पूरे प्राणों में एक ही पुकार है कि भोजन ... उपवास करने वाले इसीलिए दिन भर मंदिरों में समय गुजारते हैं, ताकि भोजनालय से इतनी दूर रहा जाये कि भोजन का ख्याल भी न आये, ऐसी जगह बैठकर समय गुजार देना है। क्योंकि भीतर तो भोजन का स्मरण आ रहा है। भोजन का जिसके मन में भय है और उपवास कर लिया है, ऐसा आदमी कमजोर है। और इस कमजोरी से वह भोजन से भयभीत होगा और डरेगा।

कमजोर धार्मिक व्यक्ति राजनीति से सदा डरेंगे, क्योंकि उन्हें मालूम है कि कि उनके हाथों में ज्यों ही शक्ति आई कि उनकी सारी धार्मिकता बह जायेगी और उनके भीतर जो असली आदमी है, बुरा आदमी छिपा है, वह प्रकट हो जायेगा। बुरा आदमी हमेशा ताकत में प्रगट होता है, कमजोरी में कभी प्रगट नहीं होता। बुरे आदमी के प्रकट होने के लिए ताकत चाहिए। एक गरीब आदमी है, वह सकता है कि मुझे महलों से कोई प्रयोजन नहीं है, लात मार सकता हूं महलों को, क्योंकि महल उसके पास नहीं है। लेकिन कल अगर उसे महल मिलने की सुविधा उपलब्ध हो जाये, फिर बहुत मुश्किल होगा यह कहना कि मैं महलों को लात मारता हूं। फिर पता चलेगा कि यह बहुत कठिन है। पैसे पास में न हों तो धन को गाली दी जा सकती है, लेकिन धन पास में हो तब धन का उपयोग करने का मन होता है, तब धन को गाली देना मुश्किल होता है। जिन लोगों के पास धन था और धन को वे छोड़ सके, उन लोगों के धर्म में तो कोई बल था। महावीर के धर्म में कोई बल रहा होगा। राज्य था हाथ में, उसे लात मार सके। उनमें तो कोई बल रहा होगा, लेकिन जिनके हाथ में राज्य नहीं है, वे बहुत भयभीत होते हैं। फिर अगर राज्य हाथ में आ जाये तो उनके भीतर जो बुरा आदमी छिपा होता है, वह पुनः प्रकट होना शुरू हो जायेगा। उसके पास ताकत नहीं है, इसके लिए वह दबा हुआ है। अगर उसके हाथ में ताकत आ

जायेगी तो वह प्रगट होगा। तो कमजोर धार्मिक आदमी भी डरता है कि सत्ता से जितना दूर रहे उतना अच्छा।

हम अभी ही देख चुके हैं कि गांधीजी के पीछे चलने वालों की एक अच्छी जमात थी। वे अच्छे लोग थे, हिन्दुस्तान ने कभी कल्पना भी न की थी कि ये सारे लोग बुरे साबित होंगे। जब तक उनके हाथ में सत्ता न थी, ये जेल जाते थे और झोली लगाकर गांवों में क्रांति का नारा देते थे, तब तक उनके भीतर सच्चाई और अच्छे आदमी के दर्शन हुए थे और कोई यह नहीं कह सकता था कि ये लोग बुरे थे, वे लोग अच्छे मालूम पड़ते थे। लेकिन ये लोग कमजोर अच्छे आदमी थे। ताकत आते ही अच्छाई चली गई और बुराई प्रगट हो गई। हिन्दुस्तान का बीस साल का इतिहास यह बताता है कि कमजोर अच्छे आदमी को ताकत मिलने पर उसकी कमजोरी प्रकट हो गई और अच्छाई बह गई। जैसे ही उनके हाथ में ताकत आई, दिल्ली का सिंहासन आया, वैसे ही वे साधारण आदमी साबित हुए, जैसे दूसरे कोई भी आदमी साबित होते। बल्कि एक बात आश्चर्यजनक हुई कि वे साधारण आदमी से भी बुरे साबित हुए। और उसका एक ही कारण था कि भीतर सच्चाई नहीं थी। सच्चाई ऊपर से ओढ़ी गई थी। सच्चाई ऊपर से सीखी गई थी, सच्चाई ऊपर से ढांकी गई थी। भीतर !··· भीतर एक साधारण आदमी था—कमजोर वासनाओं से भरा हुआ। ऊपर से एक अच्छा आदमी बन गया, भीतर काला आदमी था। वे खादी के सफेद कपड़े सब ऊपर से थे। उन सफेद कपड़ों ने भीतर के काले आदमी को छिपाने में सुविधा दी थी, लेकिन उसे मिटा नहीं सके थे। कोई कपड़ा भीतर के आदमी को नहीं मिटा सकता। भीतर का आदमी मिट जाये तो काले कपड़ों से भी उसकी रोशनी प्रकट होनी शुरू हो जाती है, जो भीतर है। और भीतर अगर काला आदमी बैठा हो, तो सफेद से सफेद कपड़े भी रुकावट डालने में असमर्थ हैं, लेकिन ऊपर से धोखा पैदा होता है कि सफेद कपड़े पहनने वाला आदमी जरूर अच्छा आदमी होगा, लेकिन जब तक उसके हाथ में ताकत नहीं है तब तक यह भ्रम पाला जा सकता है। हाथ में ताकत आते ही उसके सफेद कपड़े इतने मजबूत नहीं हैं कि उसके भीतर के असली आदमी को रोकने में समर्थ हो जायें।

दुनिया के सारे कमजोर धार्मिक आदमी सदा भयभीत रहे हैं कि सत्ता उनके हाथ में आ जाये। इसलिए उन्होंने कहा है कि राजनीति से उनको कुछ नहीं लेना है। धर्म अलग बात है, राजनीति अलग बात है। राजनीतिज्ञ डरता है धर्म से, धार्मिक डरते हैं राजनीति से। और इसलिए एक खाई पैदा हो गई है, धर्म और राजनीति के बीच। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि जब तक यह खाई है, तब तक अच्छी दुनिया निर्मित नहीं की जा सकती ? क्यों ? अच्छी दुनिया दो कारणों से निर्मित नहीं हो सकती। एक : जो राजनीति धर्म के आदर्शों से प्रभावित नहीं

होगी, वह मनुष्य को कहां ले जायेगी ? वह कहां ले जा सकती है ? किस यात्रा में मनुष्य को प्रवेश करायेगी ? मंजिल क्या है ? उसके पास कोई मंजिल नहीं है। तब राजनीतिज्ञ उस पागल आदमी की तरह है, जो दौड़ता तो बहुत है लेकिन अगर उससे पूछे कि कहां जा रहे हो, तो वह कहने में असमर्थ है कि वह कहां जा रहा है। उसे पता नहीं है, वह कहेगा कि मुझे रोको मत। मुझे जल्दी है, मुझे जाने दो। और अगर हम उससे कहें कि तुम कहां जा रहे हो, तो कहेगा कि मुझे इसके लिए समय नहीं है। मुझे पता भी नहीं है कि मुझे कहां जाना है, लेकिन मुझे रोको मत। मैं जल्दी में हूं, मुझे कहीं जाना है।

राजनीति जो धर्म के बिना है, भागती हुई दिखाई पड़ेगी, लेकिन कहां ? उसे जाना कहां है ? क्योंकि जीवन की मंजिल तो धर्म है। जीवन में जो भी मंजिल है, उसी का नाम धर्म है। जीवन को जहां पहुंच जाना चाहिए, उसका नाम धर्म है। ऐसी राजनीति कोल्हू के बैल की तरह वहीं-वहीं घूमकर वापस आयेगी, जहां से उसने चलना शुरू किया था, क्योंकि जिस आदमी को यह पता नहीं है कि मुझे कहां जाना है, उसका सब जाना एक चक्कर में होता है। वह चक्कर में घूमता है और वापस लौट आता है। नहीं, राजनीति धर्म के अभाव में कहीं भी नहीं ले जा सकती है। और यह भी मैं आपको कह दूं कि धर्म भी राजनीति के बिना जीवन को बदलने में एकदम नपुंसक साबित होता है। क्योंकि जिन्दगी को बदलना है तो शिक्षा बदलनी पड़ेगी, जिन्दगी बदलनी है तो जीवन के सारे कानून बदलने पड़ेंगे। गलत हो शिक्षा, गलत हो अर्थ व्यवस्था, गलत हो जीवन के सारे नियम और धर्म चिल्लाता रहे कि लोगों को अच्छा होना चाहिए तो वह चिल्लाहट अंधेरे में खो जायेगी और आदमी नहीं हो सकेगा। जिस समाज में बुराई के लिए पुरुस्कार मिलता हो और अच्छाई के लिए पाप जैसा भुगतान भोगना पड़ता हो, उस समाज में धर्म कितना ही चिल्लाता रहे कि लोगों को अच्छा होना चाहिए तो भी लोग अच्छे नहीं हो सकेंगे।

धर्म तभी जीवन की व्यवस्था बदल सकता है जब राजनीति से भयभीत न हो, भागे न, पलायनवादी, ऐसकैप्सिट न हो, वह यह न कहे कि हम भाग जायेंगे। जिस दिन धर्म ऐसे साधु पैदा करेगा जो सैनिक भी हो सकते हैं, जिस दिन धर्म ऐसे संत पैदा करेगा जो सत्ता पर भी पैर रखकर जीवन को संचालित कर सकते हैं, तभी हम जीवन को बदलने में समर्थ हो सकते हैं, अन्यथा नहीं।

गांधी ने एक हिम्मत की थी और इस लिहाज से गांधी का नाम दुनिया में एक विशेष आदर से लिया जाना चाहिए। गांधी शायद दुनिया के पहले धार्मिक आदमी थे जिन्होंने राजनीति से भागने की कमजोरी जाहिर नहीं की। उन्होंने हिम्मत के साथ खड़े होकर एक संघर्ष किया। हिन्दुस्तान के साधु-संतों को यह बहुत बुरा लगा। हिन्दुस्तान के साधु-संतों को लगा कि यह कैसा महात्मा है, यह

कैसा धार्मिक आदमी है । नहीं यह धार्मिक आदमी नहीं हो सकता जो राजनीति के बीच में खड़ा है । यह कैसा धार्मिक आदमी है ? धार्मिक तो हम उसे कहते हैं, जो राजनीति से भाग जाता है, जो राजनीति को छोड़ देता है । ये महात्मा गांधी कैसे धार्मिक आदमी हैं । हिन्दुस्तान के लोगों को बहुत मुश्किल से यह स्वीकृत हो पाया कि गांधी धार्मिक आदमी हैं ।

गांधी ने एक बड़ी हिम्मत की । लेकिन वह हिम्मत भी अधूरी पड़ गई और मरने के पहले गांधी पूरी हिम्मत नहीं जुटा पाये और उनकी कमजोरी अंत-अंत में प्रकट हो गई । हिन्दुस्तान को जब राज्य मिला तब गांधी के मन में हिन्दुस्तान की वह पुरानी आदत फिर बल पकड़ गई और गांधी ने खुद सत्ता न लेकर दूसरों के हाथों में सत्ता देकर भारत का जो अहित किया है उसको हजारों साल तक पूरा नहीं किया जा सकता । अगर गांधी को हिन्दुस्तान की ताकत मिली थी और गांधी अगर स्वयं सत्ता में गये होते तो हिन्दुस्तान का भाग्य दूसरा हो सकता था। यह जो हमने पतन की बीस सालों की लम्बी कथा देखी, यह जो हमने नर्क की यात्रा देखी, यह जो आदमी का चरित्र रोज-रोज नीचे गिरते देखा, हो सकता था कि गांधी स्वयं सत्ता में होते तो यह नहीं हो पाता, लेकिन अंतिम क्षणों में गांधी हिम्मत खो गये । और वह पुराने हिन्दुस्तान का जो महात्मा है और जो हिन्दुस्तान की पुरानी आदत है, वह जो राजनीति को हमेशा गाली देने वाला चित्त है, वह अंत में प्रभावी हो गया । आखिर में जब सत्ता गांधी के हाथ में आई तो वे डांवाडोल हो गये । उनके सामने दो ही विकल्प थे, या तो उन्हें हिन्दुस्तान की नजरों में सदा के लिए धार्मिक न होने की हिम्मत करनी पड़ती, धार्मिक होने का ख्याल छोड़ना पड़ता । इस बात का डर था कि हिन्दुस्तान फिर शायद उनको महात्मा न कहता। और जब गांधी ने सत्ता छोड़ दी तो हिन्दुस्तान के लोग बहुत खुश हुए और हमने जगह-जगह यह कहा कि यह है सच्चा महात्मा, इतनी बड़ी ताकत आई और उन्होंने सिंहासन पर लात मार दी, लेकिन हमें पता नहीं कि यह गांधी का सिंहा-सन पर लात मारना हमारे भाग्य पर लात मारना सिद्ध होगा । हम ऐसे अभागे लोग हैं कि हम दुर्भाग्य की निरंतर प्रशंसा करते हैं । हिन्दुस्तान में अगर थोड़ी-सी समझ होती तो हिन्दुस्तान भर में उपवास किये जाने चाहिए थे, अनशन किये जाने चाहिए थे, गांधी के खिलाफ और सारे हिन्दुस्तान को जोर डालना था कि एक अच्छे आदमी के हाथ में ताकत जा सकती है, तो आप सत्ता में बैठें । हम किसी और को सत्ता नहीं देना चाहते । लेकिन हिन्दुस्तान यह न कर सका, क्योंकि हिन्दुस्तान की पुरानी आदत । उसको बहुत अच्छा लगा कि ये महात्मा हैं, ये कैसे सत्ता में जा सकते हैं । बल्कि हम खुश हुए और हमने गांधी की प्रशंसा की ।

सारे देश को गांधी पर दबाव डालना था कि चाहे तुम महात्मापन को छोड़

दो, लेकिन हिन्दुस्तान को एक मौका मिला है, अच्छे आदमी के हाथ में, आने का उसे हम नहीं छोड़ना चाहते । चाहे तुम्हें नर्क जाना पड़े और तुम्हारा मोक्ष छूट जाये तो इसकी फिक्र मत करो इस गरीब मुल्क के लिए; इस दीन-हीन मुल्क के लिए इतना त्याग और कर दो । एक दफे और जन्म ले लेना और तपश्चर्या कर लेना । लेकिन हिन्दुस्तान के एक भी आदमी ने यह नहीं कहा, क्योंकि हिन्दुस्तान की मूर्खता बहुत पुरानी है, बहुत प्राचीन है ।

हमारे मन में यह ख्याल है कि अच्छे आदमी को राजनीति में जाना ही नहीं चाहिए । हम बड़े अजीब लोग हैं । हम बहुत कन्ट्राडिक्टरी (असंगत) लोग हैं । हम एक तरफ कहते हैं कि राजनीति बुरी होती चली जा रही है, एक तरफ हम गाली देते हैं कि राजनीति गुण्डागिरी होती चली जा रही है और दूसरी तरफ हम कहते हैं कि अच्छे आदमी को राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए । इन दोनों बातों में क्या कोई संगति है ! जब आप कहते हैं कि राजनीति में अच्छे आदमी को भाग नहीं लेना चाहिए तो फिर दोष क्यों देते हैं कि राजनीति में बुरे लोग घुस गये हैं । इन दोनों बातों में मेल क्या है, तुक क्या है, संगति क्या है ? या तो यह मान लीजिए कि अच्छे आदमी को राजनीति में भाग नहीं लेना है, तो फिर बन्द कर दीजिए यह निन्दा और आलोचना कि राजनीति में बुरे लोग हैं । बुरे लोगों के सिवाय वहां कोई हो कैसे सकता है, क्योंकि आप अच्छे आदमी को तो राजनीति में जाने नहीं देना चाहते हैं ।

लेकिन हम अजीब लोग हैं, एक तरफ हम कहेंगे कि अच्छे आदमी को राज-नीति में नहीं जाना है और जब कोई अच्छा आदमी राजनीति की ओर जाने लगे तो लोग कहेंगे कि अरे ! यह आदमी भी डूबा, यह आदमी भी गया, हो गया भ्रष्ट । और दूसरी तरफ हम कहेंगे कि राजनीति बुरे लोगों के हाथों में जा रही है—किसके हाथ में जायेगी ? क्या आप चाहते हैं कि राजनीति किसी के हाथों में न जाये ? अगर अच्छे आदमी वहां नहीं होंगे तो बुरे आदमी के हाथों में राज-नीति जायेगी । और मैं आपसे कहता हूं कि इसका जिम्मा अच्छे आदमी पर है कि राजनीति बुरे हाथों में जाती है, क्योंकि अच्छे आदमी जगह छोड़ देते हैं और बुरे आदमी के लिए जगह खाली कर देते हैं ।

गांधी ने सबसे बड़ा काम किया कि उन्होंने मुल्क की राजनीति में भाग लिया, लेकिन यह प्रयास ऐसा था कि जैसे कोई आदमी डूब रहा हो और मैं उसे बचाने जाऊं और उसे बचाकर किनारे तक ले आऊं और ठेठ किनारे पर छोड़कर फिर बाहर निकल जाऊं, और वह किनारे पर डूब जाये जो मंझधार में डूब रहा था । गांधी ने हिन्दुस्तान को बचाने की कोशिश की, लेकिन आखिरी क्षणों में गांधी डगमगा गये और गांधी ने हिन्दुस्तान की सत्ता दूसरों के हाथों में देकर नुकसान पहुंचाया ।

जिन लोगों के हाथ में ताकत आयी, उन लोगों ने पहले तो सबसे बड़ा काम यह किया कि धर्म से राजनीति का सम्बन्ध तुड़वा दिया। नेहरू के मन में धर्म के लिए कोई जगह नहीं थी, नेहरू के चित्त में धर्म के लिए कोई आदर नहीं था। नेहरू शुद्ध राजनैतिक व्यक्ति थे, नेहरू और गांधी जैसे विरोधी खोजना कठिन है जो एक ही साथ शिष्य और गुरु की तरह समझे जाते हों। गांधी बिल्कुल अलग तरह के आदमी है, नेहरू बिल्कुल अलग तरह के आदमी हैं। गांधी के लिए अहिंसा जीवन और मरण का प्रश्न है, नेहरू के लिए अहिंसा पालिसी से ज्यादा नहीं है—एक तरकीब, एक राजनैतिक चाल। गांधी एक धार्मिक व्यक्ति है, नेहरू एक शुद्ध राजनैतिक व्यक्ति है। एक धार्मिक व्यक्ति के हाथों में ताकत जाती तो मुल्क का भाग्य बदलता, हम और ढंग से सोचते। लेकिन वह ताकत एक धार्मिक आदमी के हाथों में नहीं जा सकी, क्योंकि धार्मिक आदमी हमेशा कमजोर साबित हुआ और उसने कहा कि मैं ताकत कैसे ले सकता हूं। नहीं, मैं ताकत नहीं ले सकता, मैं लात मारता हूं राजसिंहासन पर।

राजसिंहासन राजनीतिज्ञ के हाथों में चला गया और फिर गांधी के बड़े शिष्य हैं विनोबा। एक तरफ गांधी ने राजनीति से अपना हाथ अलग किया, सत्ता दूसरों के हाथ में दी, दूसरे हिन्दुस्तान में विनोबा ने यह काम कि अच्छे आदमी को राजनीति में नहीं जाना चाहिए, उसे भूदान का काम करना चाहिए, सर्वोदय का काम करना चाहिए। जो बचे-खुचे अच्छे लोग राजनीति में थे, उन्हें विनोबा बुरी तरह ले डूबे, जयप्रकाश जैसे अच्छे आदमी को डुबा दिया उन्होंने। पहले तो अच्छे आदमी, गांधी की हिम्मत टूट गयी, फिर विनोबा ने अच्छे आदमी को कहा कि राजनीति में जाना नहीं है तुम्हें। तुम्हें तो गांव की सेवा करनी है। यह करना है, वह करना है। राजनीति में तुम्हें नहीं जाना है। विनोबा ने ऐसे अच्छे लोगों को रोक लिया राजनीति में जाने से। अब हिन्दुस्तान की राजनीति अगर बुरे लोगों के हाथ में पड़ गयी तो जिम्मेवार कौन है? मैं नम्बर एक गांधी को नम्बर दो विनोबा को जिम्मेवार ठहराता हूं।

मैं आपसे यह कहता हूं कि हिन्दुस्तान की राजनीति हर पांचवे वर्ष और रद्दी हाथों में जायेगी। क्यों? क्योंकि नियम है जीवन का और वह यह है कि अगर बुरे आदमी को ताकत से हटाना हो तो आपको बुरा होना पड़ता है। इसके बिना आप उसको हटा नहीं सकते। अगर वह चालाक है तो आपको ज्यादा चालाक होना चाहिए; अगर वह बेईमान है तो आपको ज्यादा बेईमान होना चाहिए। अगर वह छुरे से धमकी देता है, तो आपको पिस्तौल से धमकी बताना चाहिए। तो उस आदमी को आप हटा सकते हैं। पिछले पन्द्रह-बीस सालों में हर पांच साल के बाद पुराने आदमी को हटाया गया और उनकी जगह जो लोग गये वे उनसे भी बदतर थे। और आप यह पक्का मानिये कि उनको उनसे भी बदतर लोग ही हटा

सकेंगे। तीस सालों में हिन्दुस्तान में गुण्डों का राज्य सुनिश्चित है? तीस साल के भीतर हिन्दुस्तान में सिवाय गुण्डों के ताकत में कोई नहीं पहुंच सकेगा और अगर उनको हटाना पड़े, तो आपको उनसे बड़ा गुण्डा सिद्ध होना पड़ेगा, इसके अतिरिक्त और कोई योग्यता नहीं रह जाने वाली है।

आज भी हालत यह है कि लोग हुकूमत से हट गये हैं, वे सिर्फ इसीलिए हट गये हैं कि उनसे ज्यादा बुरे लोग वहां पहुच गये हैं। और अगर कल ये लोग उनको हटा सकें तो आप पक्का समझना कि ये उनसे ज्यादा बुराई पांच साल से सीख गये हैं इसलिए हटा पाये, अन्यथा हटा नहीं सकते थे। मगर यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है कि रोज मुल्क बुरे-से-बुरे हाथों में चला जाये।

दूसरा नियम भी मैं आपसे कहना चाहता हूं कि अगर एक बुरे आदमी को हटाना हो तो आपको उससे बुरा होना पड़ता है और अगर एक अच्छे आदमी को हटाना हो तो आपको उससे अच्छा आदमी साबित होना पड़ता है, तब आप उसे हटा सकते हैं। ये दोनों नियम एक साथ ही काम करते हैं। अगर हिन्दुस्तान की राजनीति में हमने अच्छे लोगों को जगह दी होती, तो हिन्दुस्तान तीस साल में अच्छे-से-अच्छे लोगों के हाथ में पहुंच गया होता, क्योंकि एक अच्छे आदमी को हटाने के लिए जिस आदमी को हमें आगे लाना होता वह उससे अच्छा आदमी सिद्ध होता तभी हटा सकता था अन्यथा नहीं हटा सकता था। लेकिन अच्छे आदमी को राजनीति में नहीं जाना है, धार्मिक आदमी को राजनीति में नहीं जाना है, तो फिर राजनीति अधार्मिक हाथों में जायेगी, तो परेशान क्यों होते हैं, फिर पीड़ित क्यों होते हैं।

अच्छे आदमी ने मनुष्य जाति के कुछ नुकसान किये हैं, उनमें से एक नुकसान यह है कि अच्छा आदमी हमेशा बुरे आदमी के लिए जगह खाली कर देता है। वह हमेशा हट जाता है और कहता है कि आप आ जाइये, क्योंकि मैं तो अच्छा आदमी हूं मैं झगड़ा-झंझट नहीं करता हूं। अच्छा आदमी भगोड़ा है, अच्छा आदमी भाग जाता है, खड़ा होकर टक्कर नहीं ले पाता। क्या किया जाये? हमारी अब तक की जो मूल्य की दृष्टि थी, अब तक की जो वेल्यू थी, वह बदलनी पड़ेगी। हमें यह कहना होगा कि धार्मिक आदमी का एक लक्षण यह भी है कि वह बुराई के साथ टक्कर लेगा और जहां भी बुराई होगी, वह संघर्ष में खड़ा रहेगा, भागेगा नहीं। धार्मिक आदमी का एक लक्षण हमें यह भी बताना होगा कि वह बुरे आदमी के हाथों जीवन की सत्ता को न जाने दे। हमें अच्छे आदमी की योग्यता एक यह भी माननी होगी कि वह बुराई से लड़ने के लिए सदा तत्पर है—चाहे राजनीति, चाहे धर्म, चाहे समाज, चाहे जीवन का कोई भी पहलू हो बुरे आदमी को जगह देने को वह तैयार नहीं होगा।

इसी सम्बन्ध में मैं आपसे यह भी कहना चाहूंगा कि हमारे मुल्क के बाहर

पश्चिमी मुल्कों की समाज व्यवस्था हम से बहुत बेहतर हो सकी, उनके राज्य की व्यवस्था हम से बहुत संगत हो सकी, उन्होंने जीवन में ज्यादा समृद्धि, ज्यादा व्यवस्था, ज्यादा सुनियोजन उपलब्ध कर लिया, उसका एक ही कारण है कि दुनिया के दूसरे मुल्कों में अच्छा आदमी राजनीति से भयभीत नहीं है। तो दुनिया के दूसरे मुल्कों के जो अच्छे आदमी हैं, प्रथम कोटि के वे राजनीति में पहुंच जाते हैं। हमारे यहां प्रथम कोटि का आदमी जंगल चला जाता है, तपश्चर्या करने लगता है, राजनीति से बच जाता है। अच्छा आदमी भाग जाता है जिन्दगी को छोड़कर। अच्छा आदमी रामधुन करता है, रामायण पढ़ता है—ऐसे सब काम करता है, लेकिन अच्छा आदमी जिन्दगी के संघर्ष से हट जाता है। जब अच्छे आदमी जिन्दगी के संघर्ष से हट जायेंगे, तो जिन्दगी को अच्छा कौन बनायेगा, जिन्दगी को बदलेगा कौन ?

ताकत बुरे आदमियों के हाथ में और उपदेश अच्छे आदमियों के हाथ में, यह स्थिति बहुत सुखद नहीं है। ताकत बदलती है। ताकत है बुरे आदमी के हाथ में और अच्छे आदमी के हाथ में है एक ही काम—उपदेश। कौन सुनता है उसका उपदेश ? उसके उपदेश बूढ़े लोग सुनते हैं, जिनका जिन्दगी से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। मन्दिरों में जाइये, मस्जिदों में जाइये, बूढ़े और बूढ़ियां वहां इकट्ठे हैं। ये वे औरतें वहां इकट्ठी है, जिनको घर में बातचीत के लिए मौका नहीं मिलता है, वे मन्दिरों में आती हैं। लेकिन मन्दिर में युवक कहां है, जवान कहां है, जो जिन्दगी को बदलते और बनाते हैं। बच्चे कहां हैं, जिनसे जिन्दगी बनती और विकसित होती है। वे कहां हैं, वहां। वे उपदेश सुनने को तैयार नहीं हैं।

जिन्दगी को बदलना है तो अच्छे लोगों के हाथ में सत्ता का होना अनिवार्य है। इसलिए मैं कहता हूं कि गलत है ये बातें विनोबा की कि अच्छे आदमी सत्ता से भागें।

मेरा तो अपना विचार यह है कि गांव-गांव में नागरिक समितियां होनी चाहिए, एक-एक मुहल्ले में नागरिक समितियां होनी चाहियें। और यह नागरिक समिति तय करेगी कि हमारे मुहल्ले में कौन अच्छा आदमी है, उससे हम प्रार्थना करें कि तुम इलेक्शन (चुनाव) में खड़े हो जाओ। हम उस आदमी को वोट नहीं देंगे जो खुद अपने आप खड़ा हो जाता है और लोगों से आकर कहता है कि मैं अच्छा हूं, मुझे वोट दो। हम यह मानते हैं कि जो आदमी खुद अपने को अच्छा कहता है वह अयोग्यता सिद्ध करता है। वह आदमी अच्छा आदमी नहीं है, जो अपने को अच्छा कहता है, वह अयोग्यता का एक लक्षण होना चाहिए। यह डिसक्वालिफिकेशन होना चाहिए कि जो आदमी खुद आकर कहता है कि मैं अच्छा आदमी हूं मुझे वोट दो। गांव के लोगों को कहना चाहिए कि क्षमा करिये, हम आपको वोट

इसलिए नहीं देंगे कि आप खुद यह कहते हैं कि हम अच्छे आदमी हैं। हम उस आदमी को वोट देंगे, जो कहता है मेरी कोई मर्जी नहीं है लेकिन गांव जोर डालता है कि मुझे खड़ा होना चाहिए तो मैं खड़ा हो जाता हूं।

एक-एक गांव में नागरिक समिति होनी चाहिए। एक-एक मुहल्ले में नागरिक समिति होनी चाहिए, जो यह निर्णय करे कि हम किस आदमी को भेजें, क्योंकि हमारा अच्छा आदमी पुरानी आदत के कारण पीछे खड़ा रहता है, यह आगे आता ही नहीं। उसको अच्छा भी नहीं मालूम पड़ता कि खुद ही डंका पीटता हुआ, घण्टा पीटता हुआ चिल्लाता फिरे कि मैं अच्छा आदमी हूं, कि मैं इलेक्शन में खड़ा हूं, आप मुझे वोट दें। जो आदमी अपने आप यह कह सकता है कि मैं इलेक्शन में खड़ा हूं, मैं अच्छा आदमी हूं, चाहे वह कांग्रेस का हो, चाहे वह जनसंघ का हो, चाहे वह कम्युनिस्ट हो, चाहे वह सोशलिस्ट हो, वह आदमी गलत है। उसे भूल कर वोट मत देना, क्योंकि जो आदमी अपना प्रचार कर रहा है, वह ठीक नहीं हो सकता। यह आदमी खतरनाक है।

एक-एक मुहल्ले की नागरिक समिति होनी चाहिए, जो अच्छे आदमी के पास जाये और उससे प्रार्थना करे कि हम तुम्हें खड़ा करेंगे और अगर तुम खड़े नहीं होते तो हम अनशन करेंगे। हम तुम पर दबाव डालेंगे, हम घेराव डालेंगे कि तुम्हें खड़ा होना पड़ेगा, हम अच्छे आदमी को भेजना चाहते हैं। और अच्छे आदमी को भेजने में हिन्दुस्तान को आगे के दस वर्षों तक कम-से-कम, पार्टी की फिक्र छोड़ देनी चाहिए कि वह आदमी किस पार्टी का है। वह कम्युनिस्ट है, कि सोशलिस्ट है, कि लीगी है, कि कांग्रेसी है, कि जनसंघी है, इसकी फिक्र छोड़ देनी चाहिए। एक ही शर्त है कि वह आदमी अच्छा है।

एक बार हिन्दुस्तान में अच्छा आदमी सत्ता में पहुंच जाये तो हम दस साल बाद यह भी विचार कर सकेंगे कि अच्छे समाजवादी को भेजें कि अच्छे कांग्रेसी को भेजें। अभी तो अच्छा आदमी ही प्रश्न है। अभी तो अच्छे आदमी को ही भेजना है। अभी यह सवाल नहीं है कि कांग्रेसी को भेजें कि जनसंघी को भेजें। क्योंकि अगर दोनों बुरे आदमी हैं, तो तुम किसी को भी भेजो, कोई फर्क नहीं पड़ता है। और आज हालत ऐसी है कि चाहे गलत आदमी किसी भी तरह का झण्डा हाथ में लिए हो वे सब चचेरे भाई-बहिन हैं, उनमें कोई फर्क नहीं है, उनमें जरा भी फर्क नहीं है। उनके लेबिल अलग हो सकते हैं, कि यह ग्यारह नं० की बीड़ी है, यह इक्कीस नं० की बीड़ी है, यह तेईस नं० की बीड़ी है। लेकिन बीड़ी, बीड़ी है और खतरनाक है। इस बात पर जोर देने की जरूरत नहीं है कि किस नम्बर की बीड़ी पीनी है, सवाल यह है कि बीड़ी पीनी है कि नहीं पीनी है, कि हम कांग्रेसी बीड़ी पियेंगे कि जनसंघी बीड़ी पियेंगे, यह सवाल नहीं है। सवाल यह है कि बीड़ी पीनी है कि नहीं पीनी है। कि हम बुरे आदमी को भेजना चाहते हैं कि नहीं भेजना

चाहते। लेकिन राजनीतिज्ञ बहुत होशियार है, वह आपकी नजर से यह समस्या (प्रॉब्लम) हटा लेता है, वह यह समस्या हटा लेता है कि अच्छे आदमी को भेजना है कि बुरे को। वह एक नई समस्या खड़ी करता है। वह कहता है कि कांग्रेस को भेजना है कि जनसंघी को।

मैंने सुना है कि अगर आप जर्मनी की होटल में जायें, तो वे खाने के बाद आपसे पूछेंगे कि आप चाय लेंगे। इसमें आपके समक्ष वे दो विकल्प छोड़ रहे हैं—हां या नहीं का। लेकिन फ्रांस में ऐसा नहीं है। वहां वे ऐसा नहीं पूछते। वे आपसे खाने के बाद पूछेंगे कि आप कॉफी लेंगे या चाय। इसमें वे आपके समक्ष कोई न कहने का अवसर नहीं दे रहे। पचास प्रतिशत मौके कॉफी के हैं और पचास प्रतिशत मौके चाय के हैं और बहुत सम्भावना इस बात कि है कि आप दो में से एक चुन लेंगे। वे आपको चुनने का मौका नहीं दे रहे हैं कि मैं चाय लूंगा कि कॉफी लूंगा, कि आप सोचेंगे कि दूध लूं या कोको लूं। लेकिन "नहीं" का ख्याल वे आपके सामने नहीं रख रहे हैं, जिसको चुना जा सके। इसके प्रयोग करके देखे गये और पाया गया कि जिन होटलों में वे यह पूछते हैं कि आप चाय लेंगे, वहां चाय अथवा कॉफी कम बिकती है। जिन होटलों में यह पूछते हैं कि आप चाय लेंगे या कॉफी, वहां दोनों में से एक जरूर बिक जाता है।

दुनिया के राजनीतिज्ञ आपके सामने गलत विकल्प (आल्टरनेटिव) पेश करते हैं, वे कहते हैं कि कांग्रेस को चुनियेगा कि जनसंघ को। यह सवाल है कि अच्छे आदमी को चुनना है कि गलत आदमी को। भले आदमी के हाथ मजबूत करने हैं या बुरे और गलत आदमी के हाथ मजबूत करने हैं। तो मैं आपसे कहना चाहता हूं कि आने वाले दिनों में अगर भारत की जिन्दगी को हमें धार्मिक और अच्छा बनाना है तो हमें अच्छे आदमी को भेजने की फिक्र करनी चाहिए। हमें कोई चिन्ता नहीं करनी है कि वह किस दल का हो। अच्छा आदमी किसी भी दल का हो, अच्छा होता है और बुरा आदमी किसी भी दल का हो बुरा होता है। दल से कोई फर्क नहीं पड़ता है, लेकिन हमारा दुर्भाग्य है कि हम धर्म और राजनीति को अब तक अलग ही मानते रहे और इकट्ठा मानने की हमारी कल्पना अभी भी मजबूत नहीं हुई है। अभी हमें ऐसा लगता कि दोनों जुड़े हैं, अभी भी हमारा ख्याल यह है कि राजनीति एक अलग चीज है। चलने दो उसे, क्या बनता-बिगड़ता है। लेकिन हमें पता नहीं कि सब कुछ बनता-बिगड़ता है।

हमारा खून, हमारे विचार, हमारा भाग्य, हमारा शरीर, हमारा भविष्य सब कुछ राजनीति तय कर रही है। हमें क्या पढ़ाया जाये कालेज में, स्कूल में, वह राजनीति तय कर रही है। हमारे बच्चों के मन कैसे निर्मित किये जायें, वह राजनीति तय कर रही है। रूस की राजनीति बदली। आज बीस करोड़ का मुल्क है रूस। आज रूस में ईश्वर को मानने वाला एक आदमी खोजना मुश्किल है।

क्योंकि चालीस वर्षों में जो राजनीतिज्ञ वहां आये, उन्होंने कहा कि ईश्वर नहीं है। उन्होंने जो किताबें पाठ्यक्रम में रखीं, वे ईश्वर विरोधी हैं। उन्होंने जो पाठ्यक्रम बनाया वह आत्मा को नहीं मानता है। बीस-तीस साल की शिक्षा के बाद रूस के बीस करोड़ लोग मानने को राजी हो गये कि न कोई आत्मा है, न कोई परमात्मा। तो फिर राजनीति से धर्म निरपेक्ष कैसे रह सकता है। यह कैसे सम्भव है। और जो लोग समझा रहे हैं कि राजनीति से कुछ नहीं लेना-देना है धार्मिक आदमी को, उन्हें पता नहीं है कि आने वाले बीस वर्षों में अगर धर्म ने उत्सुकता नहीं ली, तो धर्म की पूरी व्यवस्था को मटियामेट किया जा सकता है।

चीन सत्तर करोड़ का मुल्क है। राजनीति वहां साम्यवादी हो गई तो चीन के सारे मन्दिर और मस्जिद खतरे में हैं। वहां के सारे आश्रम खतरे में हैं। वहां के धर्मग्रन्थ खतरे में हैं, वहां के साधु-संन्यासी, फकीर खतरे में हैं। आज चीन में किसी का जीवन सुरक्षित नहीं है। आने वाले दस वर्षों में चीन साधु-संन्यासियों को समाप्त कर देगा। चीन की पृथ्वी पर एक संन्यासी खोजने से नहीं मिलेगा, एक भिक्षु खोजने से नहीं मिलेगा। एक मन्दिर और मस्जिद खोजने से नहीं मिलेगी। तो फिर राजनीति से धर्म कैसे निरपेक्ष रह सकता है? आज नहीं तो कल हिन्दुस्तान में भी यह होगा।

इसलिए जो धार्मिक लोग समझाते हैं कि अपने मन्दिरों में पूजा करो, तुम्हें क्या करना है, राजनीति से अच्छे आदमी को क्या प्रयोजन है, उन्हें पता नहीं है कि राजनीतिज्ञ के हाथ में कितनी ताकत है। और इतनी ताकत उसके पास भी नहीं थी जितनी आज उसके हाथ में है। आज चीन में माइन्डवाश के लम्बे आन्दोलन चल रहे हैं। लाखों लोगों को पकड़ कर उनके दिमाग में जबर्दस्ती जो हुकमत डालना चाहती है, डाल रही है। आपको पता नहीं है कि आज इस तरह के रासायनिक ड्रग्ज खोज लिए गये हैं कि आपको एक इंजेक्शन दिया जाये और आपकी सारी स्मृति मिटाई जा सकती है। आपकी सारी स्मृति नई की जा सकती है। एक आदमी जो ईश्वर को मानता था और समझता था कि परमात्मा है, उस आदमी को एक इंजेक्शन और कुछ रासायनिक द्रव्य देने के बाद उसकी स्मृति मिटाई जा सकती है, और उसको समझाया जा सकता है कि ईश्वर नहीं है और महीने, दो महीने बाद वह बाहर आकर लोगों से कहेगा कि ईश्वर नहीं है, वह जो मैं समझता था, गलत समझता था।

आज चीन में वे यह सब कर रहे हैं, रूस में उन्होंने यह किया और सारी दुनिया में वह होगा। इसलिए धार्मिक आदमी अगर चुपचाप बैठा रहा तो पता नहीं कि वह किस जगह पर बैठा हुआ है। वह जगह नीचे से खिसक रही है। जिस जगह को वह सहारा समझे हुए हैं, वह बहुत दिन सहारा नहीं रहेगी। नाव में छेद हो गये हैं, वह डूबने के करीब है। दुनिया में अगर धर्म को बचाना है, तो

धार्मिक लोगों की हिम्मत के साथ खड़ा होना होगा और सत्ता के जगत् में प्रवेश करना होगा।

मेरी अपनी दृष्टि में तो हिन्दुस्तान का भाग्य उसी दिन बदलेगा जिस दिन हिन्दुस्तान के साधु-संन्यासी और भिक्षु, हिन्दुस्तान के अच्छे और सज्जन लोग सारी राजनीति को अपने हाथ में ले सकेंगे, उसके पहले कभी भी हिन्दुस्तान में कोई सदाचरण की व्यवस्था नहीं हो सकती। लेकिन अच्छा आदमी तो भागता है। उस अच्छे आदमी पर तो विश्वास करना मुश्किल है, वह तो सोचता ही नहीं। वह तो विचार भी नहीं करता। उसकी कल्पना में तो ख्याल भी नहीं आता कि जिन्दगी को बदलने का उसका कोई भी जिम्मा है। अच्छा आदमी पीठ किये हुये खड़ा है। इसलिए जब मुझे कहा गया है कि मैं जाऊं और राजनीति और धर्म पर कुछ कहूं तो मुझे अच्छा लगा कि जरूर कुछ बातें कहने जैसी हैं।

संक्षिप्त में मैं अपनी बातें दुहरा दूं कि मैंने क्या कहा। मैंने आपसे यह कहा कि धर्म है आत्मा, राजनीति है शरीर। धर्म है विचार, राजनीति है क्रिया। धर्म है आकाश, राजनीति है पृथ्वी। न हम आकाश में जी सकते हैं, न हम पृथ्वी पर जी सकते हैं। हमारे पैर पृथ्वी पर होने चाहिए और हमारा सिर आकाश में उठा हुआ होना चाहिए। हमारा सिर धर्म से सम्बन्धित होना चाहिए और हमारे पैर राजनीति से। हमारे जीवन की सारी क्रिया राजनीति के बिना नहीं चल सकती और हमारी आत्मा का विकास धर्म के बिना नहीं हो सकता। अगर ऊपर उठना है तो आकाश का भ्रमण करना होगा, अगर संभल कर खड़े रहना है तो पृथ्वी पर मजबूत पैर जमे हुये होने चाहियें।

हिन्दुस्तान के पैर पृथ्वी पर हमेशा कमजोर रहे। इसलिए एक हजार साल तक हमने गुलामी झेली—इतने बड़े मुल्क ने एक हजार वर्षों तक! साधारण-सी ताकत के लोग आये और हमें गुलाम बना लिया। उसका कारण क्या था? उसका बड़ा कारण यह था कि हिन्दुस्तान की धार्मिक जनता यह मानती है कि राजनीति से हमें क्या लेना-देना है। हिन्दुस्तान का बड़ा हिस्सा, जनसंख्या का बड़ा भाग यह मानता था कि हमें कोई प्रयोजन नहीं। जब जनता इतनी उपेक्षा रखती हो तो बहुत खतरनाक है यह बात। अगर कल हिन्दुस्तान पर चीन हावी हो जाये तो मैं आपसे कहता हूं कि हिन्दुस्तान के पचहत्तर प्रतिशत लोग अभी भी राजनीति में कोई उत्सुकता नहीं रखते। अगर कल हिन्दुस्तान पर चीन आ जाये तो वे लोग तमाशबीन की तरह देखेंगे और वे कहेंगे कि अच्छा चीन आ गया, तो वे देखेंगे कि देखो अब क्या होता है। पहले अंग्रेज थे, फिर कांग्रेस आई, अब फिर चीनी कम्युनिस्ट आ गये। अब देखो आगे क्या होता है। वे खड़े होकर देखेंगे, जैसे वे तमाशबीन हैं, जैसे वे दर्शक हैं।

दूसरे महायुद्ध में जर्मनी ने हमला किया हॉलेण्ड के ऊपर। हॉलेण्ड छोटा

मुल्क है और गरीब मुल्क है। हॉलेण्ड की गरीबी, हॉलेण्ड की कमजोरी कई कारणों से है। बड़ा कारण तो यह है कि हॉलेण्ड की जमीन समुद्र से नीची है, समुद्र ऊंचा है और जमीन नीची है। तो हॉलेण्ड के गांवों को दीवारें बनवा कर समुद्र से रक्षा करनी पड़ती है। हॉलेण्ड की आधी ताकत समुद्र से बचाव करने में नष्ट हो जाती है। हॉलेण्ड के पास बड़ी फौजें नहीं हैं, हॉलेण्ड के पास बड़ी मशीनगन नहीं हैं, हॉलेण्ड के पास हवाई जहाज नहीं हैं, युद्ध का सामान नहीं है। जर्मनी ने तय किया कि हॉलेण्ड को तो मिनटों में जीता जा सकता है। जर्मनी के सामने हॉलेण्ड कैसे टिकता! जर्मनी का हमला हुआ और हॉलेण्ड के लोगों ने सोचा, हम क्या करें? तो हॉलेण्ड के लोगों ने जो बात सोची वह सोचने जैसी है, समझने जैसी है। हिन्दुस्तान वैसी बात कभी नहीं सोच सकता। तो उन्होंने सोचा कि हम तो गुलाम हो जायेंगे, लेकिन गुलाम होकर जिन्दा रहना ठीक नहीं। आजाद रहते हुए जिन्दा मर जाना बेहतर है। उन्होंने कहा: जिस गांव पर जर्मनी का हमला हो, उस गांव के लोग उस गांव की दीवार तोड़ दें। पूरा गांव समुद्र में डूब जाये और साथ में जर्मनी की फौजें भी डूब जायें। हम अपने गांव डुबाते चले जायेंगे, जो गांव हारेगा उसको डुबा देंगे। हम पूरे मुल्क को डुबा देंगे, समुद्र के नीचे। लेकिन हॉलेण्ड नहीं बचेगा, एक बच्चा नहीं रहेगा हॉलेण्ड का जिन्दा, लेकिन गुलाम हम नहीं होंगे। तीन गांवों पर हिटलर की फौजें गईं और वापस लौट गईं। हिटलर ने कहा: ऐसे मुल्क से लड़ना मुश्किल है। तीन गांव डूब गये, फौजें भी डूब गईं, तीन गांव पानी के नीचे आ गये। और हिटलर ने पहली दफे अपनी डायरी में लिखवाया कि 'आज मुझे पता चला कि संगीनों, बन्दूकों और बमों से भी ज्यादा ताकतवर लोगों की आत्मा होती है।' अगर लोग मरने को तैयार हैं तो उनको दुनिया में कोई गुलाम नहीं बना सकता। कौन बना सकता है गुलाम!

चालीस करोड़ लोगों को तीन करोड़ लोग गुलाम बनाये रखे, हजारों मील दूर बैठ कर हुकूमत करते रहे और हम पर हुकूमत चलती रही। राजनीतिज्ञ हमें समझाते हैं हममें फूट थी, इस कारण यह हुकूमत चली। गलत समझाते हैं। राजनीतिज्ञ गलत समझाते हैं, सरासर झूठ समझाते हैं। फूट वगैरह कुछ भी नहीं थी। जितनी फूट हममें है, दुनिया में सब तरफ है। असली बात यह थी कि यहां की जनता के मन में यह भाव था कि राजनीति से हमें क्या लेना-देना है। क्या करना है। कोई भी राजा दिल्ली में बैठे, हमको क्या फर्क पड़ता है। मेहतर को अपने पाखाने धोने पड़ेंगे, चाहे मुगल बादशाह हो, चाहे हिन्दू बादशाह हो, चाहे अंग्रेज बादशाह। चमार को जूते सीने पड़ेंगे। किसान को खेती का काम करना पड़ेगा, हल-बखर चलाना पड़ेगा। हमको क्या फर्क पड़ता है। हमारी जिन्दगी में क्या फर्क आता है। और हिन्दुस्तान में जो लोग शिक्षा देने वाले थे, साधु-संन्यासी,

उन्होंने बिल्कुल बात भी नहीं उठाई, एक शब्द भी नहीं उठाया । अगर कोई हिन्दुस्तान का इतिहास उठाकर देखेगा एक हजार वर्ष का, तो वह पायेगा कि यहां के संतों ने एक बार भी नहीं कहा कि लगा दो आग इस गुलामी में । तो दुनिया के लोग बाद में सोचेंगे कि सन्त बड़े कमजोर और नपुसंक रहे होंगे । उनमें कोई बल न रहा होगा । क्या आत्मा की बातें करते रहे होंगे, जो गुलामी को नहीं तोड़ सकते ? उसका कुल कारण इतना था कि हमने धर्म को राजनीति से कभी सम्बन्धित नहीं माना है । इसलिए मैं कहता हूं धर्म के बिना राजनीति केवल मरा हुआ शरीर है और राजनीति के बिना धर्म केवल एक प्रेत-आत्मा है, जिसके पास कोई शरीर नहीं है । भूत की तरह जो आत्मा भटकती है, जिसका जिन्दगी में कोई स्थान नहीं रह जाता ।

अतः इन दोनों में सम्बन्ध अनिवार्य है । ये दोनों संयुक्त हों और संयुक्त होने में भी सदा ध्यान रहे, धर्म सदा ऊपर रहे, राजनीति सदा नीचे रहे । धर्म सिर है, राजनीति है पैर । धर्म आत्मा है, शरीर है राजनीति । राजनीति कभी धर्म के ऊपर नहीं बिठाई जा सकती । धर्म जीवन का लक्ष्य है, राजनीति, साधन है । धर्म है साध्य, राजनीति है साधन । धर्म है मन्जिल, राजनीति है मार्ग । मार्ग कभी मन्जिल के ऊपर नहीं हो सकता । अगर यह हमारे ध्यान में हो तो हम आने वाले दिनों में अच्छे आदमी को ताकत दें, बल दें, अच्छे आदमी के लिए जीवन को बदलने की और सत्ता को हाथ में लेने की सुविधा जुटायें तो कोई कारण नहीं कि आने वाला भविष्य भारत का स्वर्णिम और सुन्दर नहीं हो सकता है ।

लेकिन जैसा आज चल रहा है, ऐसा अगर आगे भी चलता है तो भारत रोज अंधेरे में गिरता चला जायेगा । और मैं आपको कह देना चाहता हूं कि अगर बुरे व्यक्तियों के राज्य से भारत को बचाना हो तो भारत के साधु और संन्यासियों को हिम्मत करनी पड़ेगी । चाहे उनका मोक्ष खो जाये, चाहे उनका परलोक बिगड़ जाये । फिर जन्म ले लेना । जन्म अनन्त हैं । कोई जल्दी भी क्या है इतनी । बहुत जन्म पड़े हैं । बहुत जन्मों की सुविधा है । फिर उपाय कर लेना साधना का । लेकिन एक बार हिन्दुस्तान के सारे अच्छे आदमियों को इकट्ठे होकर एक बीस साल हिन्दुस्तान के भाग्य को सुन्दर बनाने की कोशिश जरूर करनी चाहिए ।

ये थोड़ी-सी बातें मैंने रखीं । मेरी बातों से सहमत होना जरूरी नहीं है । अगर आप मेरे बातों को सोचेंगे भी तो मेरा काम पूरा हो जाता है । हिन्दुस्तान सोच भी नहीं रहा है । जय महात्मा गांधी की, बस इतना काम है हमारा । सोचना विचारना नहीं है । गांधी पर बस जय जयकार करो, लेकिन सोचो मत कि गांधी जी ने क्या किया और क्या नहीं किया ! सोचना मत कि गांधी जी से क्या भूल हो गई ! सोचो मत कि गांधी जी की भूल कहीं महंगी तो नहीं पड़ गई है और उसे बदलने के लिए कुछ किया जाये या नहीं किया जाये ! मैंने जो कहा, मुझसे

सहमत होने की जरा भी जरूरत नहीं है । लेकिन मेरी बातों पर अगर सोचना हो सकता है, सोच-विचार पैदा हो तो मार्ग स्पष्ट हो सकता है, और जिन्दगी को बदलने में हम समर्थ हो सकते हैं ।

जबलपुर में भगवान् श्री रजनीश द्वारा
दिया गया एक प्रवचन ।

समाज परिवर्तन के चौराहे पर

विषय	पृष्ठ संख्या

१९—समाज परिवर्तन के चौराहे पर

मेरे प्रिय आत्मन्,

पिछली चर्चाओं के सम्बन्ध में बहुत-से प्रश्न पूछे गये हैं। संक्षिप्त में सभी प्रश्नों का उत्तर देने की कोशिश करूंगा।

एक मित्र ने पूछा है कि समाज के परिवर्तन में, और परिवर्तन के लिए युवक वर्ग क्या कर सकता है?

पहली बात, जो युवक वर्ग को करनी है, और कर सकता है, वह है युवक होने की। इस देश में युवक मुश्किल से कभी कोई होता है। बच्चे होते हैं, बूढ़े होते हैं, युवक कोई भी नहीं होता है। और हमने ऐसी व्यवस्था की है कि बचपन से सीधा बुढ़ापा आ जाता है, युवा अवस्था नहीं आ पाती है। उसे हम टाल जाते हैं।

युवक होने का मतलब क्या है?

युवक होने का मतलब उम्र से नहीं है, और इसलिए कोई आदमी बूढ़ा हो के भी युवक हो सकता है। और कोई युवक हो के बूढ़ा हो सकता है।

पहला कर्त्तव्य तो यह है युवक का कि वह सिर्फ उम्र से युवक न हो, चित्त से युवक हो। और भारत के युवक ने वह कर्त्तव्य अब तक पूरा नहीं किया है। युवा मन के कुछ लक्षण हैं। जैसे युवा मन पीछे की तरफ नहीं देखता, आगे की तरफ देखता है। जैसे युवा मन स्मृतियों में समय व्यतीत नहीं करता, योजनाओं

में शक्ति लगाता है। जैसे युवा मन, स्वर्ग की, मोक्ष की, परलोक की नहीं सोचता, स्मृति को बदलने का विचार करता है। इस देश के सारे धर्म चूंकि वृद्ध हैं और वृद्ध ने इसे निर्मित किये हैं, इसलिए कोई भी धर्म इस पृथ्वी को बदलने का ख्याल नहीं रखते।

हमारे देश में एक भी धर्म ऐसा पैदा नहीं हो सका, जो इस पृथ्वी को रूपान्तरित करने की कल्पना कर पाते। इस देश के सभी धर्म कहते हैं, इस पृथ्वी को छोड़ना है, जन्म को छोड़ना है, जीवन को छोड़ना है, सब छोड़ना है, आवागमन से मुक्ति पानी है। दुख है जीवन में। तो बूढ़ा चित्त कहेगा, भाग जाओ जीवन से, युवा चित्त कहेगा कि दुख को बदलें, इतना फर्क होगा। अगर इस मकान में आग लगी है, तो बूढ़ा चित्त कहेगा कि इस मकान से दूर निकल जाओ। युवा चित्त कहेगा, इस आग को बुझाना है, भाग नहीं जाना है।

इस देश में हम निरन्तर ही, भागने की, एस्केप की, पलायन की बात सोचते रहे हैं।

वह हमारे पुराने चित्त का लक्षण था। युवक को उससे बचना पड़ेगा। उसे इस पृथ्वी को बदलने की चिन्ता करनी पड़ेगी। इसका यह अर्थ नहीं है कि इस जीवन के बाद कोई जीवन नहीं है। लेकिन इस जीवन के बाद कोई जीवन है, उसे भी युवा चित्त ही पा सकता है। उसे भी बूढ़ा चित्त नहीं पा सकता है। और इस जीवन के पार जो जीवन है, जिन्होंने इस जीवन को निर्मित नहीं किया, वे उस जीवन को भी निर्मित नहीं कर सकेंगे। सीढ़ी है यह जीवन, यह व्यर्थ और अकारण नहीं है। परमात्मा की इस विराट योजना में, यह जीवन अकारण नहीं है। लेकिन साधु-संत और महात्मा यही समझा रहे हैं कि परमात्मा की कोई भूल हो गयी है। और हमें इस जीवन से बचने की कोशिश करनी है।

यह जीवन एक सीढ़ी है, उस जीवन के लिए। शरीर एक सीढ़ी है आत्मा के लिए, संसार एक सीढ़ी है, परमात्मा के लिए। लेकिन कुछ हमारी परम्परा उस सीढ़ी को मिटा डालने को उत्सुक है, वह कहती है, यह सीढ़ी नहीं चाहिए। हम बिना सीढ़ी के सीधे ऊपर पहुंच जाना चाहते हैं। सीढ़ी टूट जाती है, ऊपर तो नहीं पहुंचते। फिर सीढ़ी पर भी नहीं पहुंच पाते, सीढ़ी से नीचे तड़फते रह जाते हैं।

युवा चित्त को पलायनवादी, जो हमारे देश की पुरातन धारा है, उसे तोड़ देना पड़ेगा। और उसे तोड़ने को एक सूत्र हमें समझ लेना चाहिए। यह हमारी पूरी परम्परा जीवन निषेध की है, लाइफ निगेटिव की है। यह जीवन का निषेध करती है। बूढ़ा चित्त जीवन का निषेध करता है—बूढ़ा आदमी नहीं कह रहा हूं, बूढ़ा चित्त। बूढ़ा चित्त जीवन का निषेध करता है। वह ऐसा नहीं होता है, जैसा कि सुना हो ईसप की कहानी—एक लोमड़ी अंगूर के बगीचे से निकली। अंगूर के

गुच्छों का निमंत्रण मिल रहा है और उसने छलांग लगायी, लेकिन गुच्छे दूर हैं। बहुत कोशिश की है, लेकिन गुच्छों तक नहीं पहुंच सकी है और तभी पास से, झाड़ी के एक खरगोश ने पूछा है कि मौसी, क्या बात है, अंगूरों तक पहुंच नहीं पा रही है? वह थकी लोमड़ी अकड़ कर खड़ी हो गयी और उसने कहा, मैं और अंगूरों तक न पहुंच पाऊं? लेकिन अंगूर खट्टे हैं, पहुंचने योग्य नहीं हैं।

यह बूढ़ा चित्त है, जो अपने अहंकार को भी बचा लेता है, नहीं पहुंच पाने की क्षमता को भी छिपा लेता है, और जहां नहीं पहुंच पाते वहां हम पहुंचना ही नहीं चाहते हैं। इसलिए उस जगह की निन्दा में रस हो जाता है। इस देश के युवक को, इस बूढ़े चित्त से बचना पड़ेगा। बड़ा काम है बूढ़े चित्त से बचना और बहुत कठिन काम भी है। बहुत कठिन काम है—युवा होना, चौबीस घण्टे खतरे में जीना है, बूढ़ा होना सुरक्षा में जीना है। इसलिए जो आदमी सुरक्षा के लिए कहीं पहुंचता है, वह बूढ़ा हो जाता है। जो खतरे में जीने की तैयारी रखता है, वह युवा रह पाता है। जैसे कोई तलवार म्यान में रख दे तो जंग खाती है, खोली जायेगी, सुरक्षित म्यान में रखी-रखी जंग खा जायेगी। तलवार को जिन्दा रहना हो और धार बचानी हो तो उसे युद्ध में होना चाहिए, चौबीस घण्टे खतरे में। चित्त भी तभी युवा होता है, जब चौबीस घण्टे खतरे में जीता है!

लेकिन हमारे देश में खतरे में कोई जीना नहीं चाहता है।

युवा आदमी भी इस फिक्र में लगता है कि कैसे बिना खतरे के जिन्दगी बीत जाये। बिना खतरे की जिन्दगी बिताने का मतलब है कि फिर जिन्दगी कुनकुनी होगी। फिर जिन्दगी ऐसी होगी, मरी-मरी होगी।

सुना है मैंने कि एक सम्राट् ने अपनी सुरक्षा के लिए एक महल बनाया और उस महल को एक ही दरवाजा रखा है ताकि कोई चोर, कोई हत्यारा, कोई डाकू महल में प्रवेश न कर जाये। पड़ोस का सम्राट् उसके महल को देखने आया। देखकर प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि अद्भुत है महल। ऐसी सुरक्षा मुझे भी चाहिए। मैं भी ऐसा ही महल बनाऊंगा—एक ही द्वार है, फिर न कोई द्वार है, न कोई खिड़की है, और उस द्वार पर हजारों सैनिकों का पहरा है। आप बिल्कुल सुरक्षित हैं, सिक्योर हैं, आपकी जिन्दगी में खतरा नहीं है। भवनपति प्रसन्न हुआ है, प्रशंसा सुनकर। मित्र सम्राट् को द्वार पर छोड़ने आया है। फिर दोबारा उस मित्र से सम्राट् ने कहा कि आप बड़े अद्भुत विचार के आदमी हैं। इतना सुरक्षित भवन बनाया, मैं भी बनाऊंगा। जब यह कह रहा है, तभी सड़क के किनारे बैठा, एक भिखारी हंसने लगा है।

वे दोनों युवक हैं—वह सम्राट् जिसने मकान बनाया है, वह सम्राट् जो विदा हो रहा है। वह भिखारी बूढ़ा है। वह जोर से हंसने लगा है। उस मकान के मालिक ने कहा, क्यों हंस रहे हो? क्या भवन में कोई भूल रह गयी है? वह वृद्ध

भिखारी ने कहा, मैं यही बैठा हुआ, इस मकान को बनता देख रहा हूं। आज आप सामने दिखायी पड़ गये हैं तो पूछ पड़े—कह दूं एक भूल रह गयी है। सम्राट् ने कहा, बोलो, कौन-सी भूल है ? उसे हम ठीक कर देंगे। उस भिखारी ने कहा, वह जो एक दरवाजा है, आप भीतर हो जायें और उसको भी बन्द कर लें। फिर आप पूरी तरह सुरक्षित हो जायेंगे। अभी खतरा है। इस एक दरवाजे से भी दुश्मन भीतर जा सकता है। और दुश्मन न भी जा सके, तो मौत भी इस दरवाजे से भीतर चली ही जायेगी। आप बन्द कर लें, पत्थरों से जुड़वा दें और स्वयं भीतर हो जायें, फिर मौत भी भीतर न जा सकेगी।

उस सम्राट् ने कहा, तुम बड़े पागल मालूम होते हो। अगर मैं एक दरवाजा और बन्द कर दूंगा तो मौत के आने की जरूरत न रह जायेगी, मर ही जाऊंगा। यह मकान नहीं, कब्र हो जायेगा। उस बूढ़े ने कहा, कब्र तो यह हो गया है, थोड़ी सी कमी है, इस दरवाजे की। सम्राट् को बात तो ख्याल में आयी। उसने बूढ़े फकीर से कहा, तुम आखिर हो कौन ? उस बूढ़े फकीर ने कहा, कभी इसी तरह के कपड़े में रहने के हम आदी थे। लेकिन जब यह पता चला कि जितने दरवाजे बन्द होते चले जाते हैं, उतनी कब्र बन जाती है जिन्दगी। तो हमने सब दरवाजे ही तोड़ डाले, हमने सब दीवारें ही हटा डालीं। अब हम खुले आकाश के नीचे ही रहते हैं। खतरे हैं बहुत, लेकिन जिन्दगी भी है बहुत।

युवा चित्त खतरे में जीने का नाम है।

युवक के सामने एक ही कर्त्तव्य है, सुरक्षा से बचें। सुरक्षा हमें खायेगी ही। सुरक्षा के कारण हम नये की खोज नहीं कर पाते। क्योंकि सुरक्षा सदा पुराने के साथ होती है। नये में तो सदा भूल चूक है, नये में सदा असफलता है। नया पुराने के बराबर प्रमाणित होगा या नहीं होगा, यह सदा डर है। नये से कहीं पहुंचेंगे, नहीं पहुचेंगे, यह भय है। नये का डर, नये का भय, हमें पुराने के साथ की उपलब्धता है। सुरक्षा पुराने को पकड़ा देती है और नये से—इसलिए हम नया आविष्कार न करेंगे, नयी खोज न करेंगे, जिन्दगी के लिए नये रास्ते न निकालेंगे, जीवन के सम्बन्धों में नये सम्बन्ध स्थापित न करेंगे। पुरानी लीक को पकड़ेंगे और चलेंगे।

बूढ़ा चित्त पुरानी लीक पर चलने वाला चित्त है। भटकता नहीं कभी, भूलता नहीं कभी, लेकिन जीता भी नहीं कभी। भटकन भी चाहिए, भूल भी चाहिए, असफलता भी चाहिए। ध्यान रहे, जो असफल होने की हिम्मत जुटाते हैं, उनके ही सफल होने की सम्भावना भी है। जो असफलता से बच जाते हैं वे सफलता से भी बच जाते हैं। ये दोनों चीजें साथ हैं। जो भूल नहीं करते हैं, वे कभी ठीक भी नहीं कर पाते हैं। और जो भूल करने की हिम्मत जुटाते हैं, उनमें कभी ठीक भी हो सकता है।

तो मैं इतना ही कहूंगा संक्षिप्त में कि युवक, युवक होने की फिक्र करे। इतना ही काफी है। इस फिक्र में सब आ जायेगा।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है—उन्होंने पूछा है कि विश्वास नहीं करना चाहिए, आपने कहा, विचार करना चाहिए, और आपने गंगा और अमेजन के उदाहरण दिये हैं। उन मित्र ने पूछा है कि गंगा और अमेजन भी तो समुद्र पर विश्वास करके समुद्र पर आती हैं। अगर उनको विश्वास ही न हो कि समुद्र है, तो वे समुद्र की तरफ जायेंगी कैसे ? तो हम भी विश्वास करके ही जा सकेंगे, अन्यथा जायेंगे कैसे ?

इस बात को थोड़ा ठीक से समझना उचित होगा। अमेजन और गंगा समुद्र के विश्वास के कारण समुद्र तक नहीं जाती। अमेजन और गंगा अपने अति बल के कारण समुद्र तक जाती हैं, नहीं तो छोटे-मोटे नाले भी विश्वास करके सागर तक पहुच जायेंगे। अति है बल, प्रवाह है, शक्ति है, वह शक्ति सागर तक ले जाती है। कोई विश्वास नहीं, अमेजन को कि सागर है कहीं। पता ही नहीं है, तो विश्वास कैसे होगा ? अमेजन के पास कोई शास्त्र भी नहीं है, जो पुरानी नदियों ने लिखे हों और पुराने गुरू छोड़ गये हों, जिस पर वे भरोसा करती हों। पुरानी नदियों ने लौट के भी नहीं बताया है, नयी नदियों को कि सागर है। जो गयी हैं, वह तो सागर में चली गयी हैं, उनके पास कोई परम्परा भी नहीं है, विश्वास का कोई उपाय भी नहीं है। अमेजन जाती है, अपने भीतर की ओवरफ्लोइंग में। भीतर है सागर, वह सागर तक ले जाती है।

आदमी भी विश्वास से नहीं पहुंचता है परमात्मा तक, पहुंचता है ओवरफ्लोइंग एनर्जी से।

उसके भीतर भी अतिरेक में बहती हुई शक्ति चाहिए, और जब कोई भी व्यक्ति अतिरेक में बहता है तो सागर तक पहुंच जाता है। सागर की कोई कृपा नहीं है उस पर। अतिरेक और बहाव सागर में अनिवार्य रूप में ले जाते हैं। और जो आदमी विश्वास करता है, कई बार जो आदमी विश्वास करता है, उसमें शक्ति का अभाव होता है। असल में इम्पोटेन्सी ही विश्वास करती है। कारण हैं उसके। क्लीवता विश्वास करती है। क्योंकि ध्यान रहे, दूसरे मे विश्वास, अपने में विश्वास की कमी का द्योतक है।

असंदिग्ध रूपेण विश्वास आत्मविश्वास की कमी का प्रमाण है।

जिस आदमी को अपने में जितना कम विश्वास है, उतना वह दूसरों में ज्यादा विश्वास करता है। और जिस आदमी को अपने पर पूरा विश्वास है, उसे दूसरे में विश्वास की कोई जरूरत नहीं रह जाती। अपने में विश्वास और बात है, दूसरे में विश्वास और बात है। और अपने में विश्वास करना नहीं पड़ता कि आप कोशिश करके करेंगे। अगर कोशिश करके करेंगे तो वह झूठ होगा। जो

आदमी अपने पर कोशिश करके विश्वास करेगा, दो बातें तय हो गयीं—एक, मूलत: अपने में अविश्वास है। तब तो उसे कोशिश करनी पड़ रही है। कोशिश करके विश्वास कर लेता है और जिसको अपने में विश्वास था, वह अपने पर विश्वास से कितना बलवान हो सकता है ? नहीं, कोई बलवान नहीं होगा, सिर्फ ऊपर से लेबल चिपका हुआ होगा, जो जरा में फाड़ा जा सकता है। स्क्रीन डीप भी नहीं होगा, जरा चमड़ी उखाड़ो और सब जगह बह जायेगा।

हम दूसरे में विश्वास इसलिए कर रहे हैं। कोई बुद्ध में, कोई महावीर में, कोई राम में, कोई मौहम्मद में, कोई कृष्ण में—इसमें राम, कृष्ण, बुद्ध का कोई कसूर नहीं है, हम कमजोर हैं। हमें डर लगता है कि हम अकेले में खड़े न हो सकेंगे, तो किसी का सहारा लेकर खड़े हो जायें। डर लगता है, अपने में तो विश्वास न कर सकेंगे, किसी और में कर लें। यह और में विश्वास सब्स्टीट्यूट है, इसलिए अपने में विश्वास की कमी को भरने का उपाय है, लेकिन भरती नहीं है कभी, भर सकती नहीं है। किसी दूसरे का विश्वास आत्मविश्वास को बढ़ा नहीं सकता है, घटाता चला जायेगा। और घटाता चला जायेगा।

यह जो मैंने कहा है कि विश्वास मत करें, यह नहीं कहा है कि अपने में विश्वास मत करें। असल में अपने का विश्वास का सवाल नहीं है, अपने को पहचानें। उस पहचान में शक्ति आयेगी। उस शक्ति से भरोसा आयेगा, उस भरोसे से श्रद्धा जन्मेगी, वह करनी नहीं पड़ेगी।

एक बच्चे को अपने पैर में विश्वास नहीं करना होता है। चलना होता है, चलने से विश्वास आ जाता है कि पैर हैं और चलते हैं। एक बच्चे को पहले यह नहीं सीखना पड़ता है कि मैं पहले अपने पैर में विश्वास करूं, तब चल सकूंगा। चलता है, तो विश्वास आता है, क्योंकि चलने से पता चलता है कि मेरे पैर चलते हैं, पहले से विश्वास करके नहीं चलता। विश्वास करके चल भी नहीं सकता। हां, कोई लंगड़ा हो तो वह पहले विश्वास करेगा। चलूंगा, चलके बताऊंगा, और तब पायेगा, पहले कदम से कि गिर पड़ा है और विश्वास सब खण्डित हो गया है। तब वह दूसरे पर विश्वास करेगा, कोई और चला देगा। भगवान् की कृपा से, लंगड़े-लूले भी पहाड़ चढ़ जाते हैं, शास्त्र पढ़ेगा। सोचेगा, चलो भगवान् की कृपा से चढ़ जायेंगे। चलने से भरोसा आता है।

जब मैंने कहा कि विचार करो, तो जितना आप विचार करेंगे उतना आत्मविश्वास आयेगा। क्योंकि जितना आप विचार करने में समर्थ होंगे, उतना जैसा बच्चे को चलने में विश्वास आता है, आपको अपनी आत्मा में विश्वास आयेगा। वह विश्वास, वह बहती हुई शक्ति, सागर तक ले जाती है। सागर तक पहुंचने का सवाल नहीं है, सागर तक पहुंच ही जायेंगे। सिर्फ इतनी शक्ति होनी चाहिए कि बह सकें और देखें।

नदी को, अगर सागर तक पहुंचने का मार्ग समझेंगे, कुछ पता नहीं, कहीं कोई रास्ते पर मील के पत्थर नहीं लगे हैं नदी के लिए, कि जब यहां से जाओ, बायें मुड़ो, चौरस्तों पर पुलिस वाले नहीं खड़े हैं, कि बतायें कि सागर पूरब की तरफ है, कहां पश्चिम की तरफ भागी जा रही हो ? नदी भागती है। अनजान, अपरिचित रास्तों को तोड़कर भागती चली जाती है। जहां रास्ता मिलता है, बनता है, भागती चली जाती है और पहले से बना हुआ कोई रास्ता नहीं है कि तैयार है, उस पर से पहुंच जाये। रेल की पटरी थोड़े ही है नदी कि रेल की पटरी बनी है तैयार, रेल के डिब्बे दौड़ रहे हैं।

आदमी नदियों जैसा नहीं है, वह रेल के डिब्बों जैसा हो गया है, होना नदियों जैसा चाहिए। बंधी हुई पटरियां हैं, हिन्दुओं की रेल की पटरी बंधी है, मुसलमानों की पटरी बंधी है। दौड़ रहे हैं डिब्बे। जरा-सी भी पटरी इधर-उधर हो जाये, तो डिब्बे टकरा जाते हैं, हिन्दू-मुस्लिम दंगे हो जाते हैं। फिर डिब्बे बैठ के अपनी-अपनी पटरियों में सवार हो जाते हैं, और दुगनी ताकत से अपनी पटरी को पकड़ लेते हैं।

लेकिन, नदियां ऐसे नहीं जा रही हैं। बंधी हुई लीक नहीं है वहां। सागर का कोई पता नहीं है। अपना भरोसा है सिर्फ। असल में अगर हम ठीक से समझें तो नदी अपने भरोसे बढ़ते-बढ़ते सागर हो जाती है, यह कोई सागर की खोज में नहीं जाती। आदमी भी अपने पर भरोसा रखकर, बढ़ते-बढ़ते परमात्मा हो जाता है। परमात्मा को खोजने के लिए कहीं जाना नहीं पड़ता। आदमी ही अपने भरोसे बढ़ते-बढ़ते एक दिन अचानक पाता है कि मैं आदमी नहीं हूं, मैं तो सागर हो गया हूं। यह भरोसा नहीं है, विश्वास नहीं है पहले से किया गया, यह बिलीफ नहीं है। एक दिन यह ज्ञान बन जाता है। विचार से जो चलता है, वह ज्ञान तक पहुंच जाता है। विश्वास से जो चलता है, वह अज्ञान में सदा के लिए ठहर जाता है। क्योंकि विश्वास चलता ही नहीं, विश्वास चला ही नहीं सकता। विश्वास में कोई गति ही नहीं है।

एक मित्र ने पूछा है कि चमत्कारों के सम्बन्ध में आपका क्या ख्याल है ?

चमत्कार शब्द का हम प्रयोग करते हैं, तो साधु-संतों का ख्याल आता है। अच्छा होता कि पूछा होता कि मदारियों के सम्बन्ध में आपका क्या ख्याल है ? दो तरह के मदारी हैं—एक-जो ठीक ढंग से मदारी हैं, आनेस्ट। वे सड़क के चौराहों पर चमत्कार दिखाते हैं। दूसरे—ऐसे मदारी हैं, डिस्आनेस्ट, बेईमान। वे साधु-संतों का वेश सिद्ध करके, वे ही चमत्कार दिखलाते हैं, जो चौरस्तों पर दिखाये जाते हैं। ईमानदार मदारी तो स्वागत योग्य है, क्योंकि उसमें एक कला है। बेईमान मदारी सिनर है, अपराधी है, क्योंकि मदारीपन के आधार पर, वह कुछ और मांग कर रहा है।

अभी मैं पिछले वर्ष एक गांव में था। एक बूढ़ा आदमी आया। मित्र लेकर आये थे और कहा कि आपको कुछ काम दिखलाना चाहते हैं। मैंने कहा, दिखायें। उस बूढ़े आदमी ने अद्भुत काम दिखलाये। रुपये को मेरे सामने फेंका, वह दो फीट ऊपर जाकर हवा में विलीन हो गया। फिर पुकारा, वह दो फीट पहले हवा में प्रगट हुआ, हाथ में आ गया। मैंने उस बूढ़े आदमी से कहा, बड़ा चमत्कार करते हैं आप। उसने कहा, नहीं, यह कोई चमत्कार नहीं है। सिर्फ हाथ की तरकीब है। मैंने कहा, तुम पागल हो! सत्य साईं बाबा हो सकते थे, क्या कर रहे हो? क्यों इतनी सच्ची बात बोलते हो? इतनी ईमानदारी उचित नहीं है। लाखों लोग तुम्हारे दर्शन करते। तुम्हें मुझे दिखाने न आना होता, मैं ही तुम्हारे दर्शन करता।

वह बूढ़ा आदमी हंसने लगा। कहने लगा, चमत्कार कुछ भी नहीं है। सिर्फ हाथ की तरकीब है। उसने सामने ही, कोई मुझे मिठाई भेंट कर गया था, एक लड्डू उठाकर मुंह में डाला, चबाया, पानी पी लिया। फिर उसने कहा कि नहीं, पसन्द नहीं आया। फिर उसने पेट जोर से खींचा पकड़कर, लड्डू को वापिस निकाल कर सामने रख दिया। मैंने कहा, अब तो पक्का ही चमत्कार है। उसने कहा कि नहीं। अब दुबारा आप कहिये, तो मैं न दिखा सकूंगा, क्योंकि लड्डू छिपा के आया और वह लड्डू पहले मैंने ही भेंट भिजवाया था। इसके पहले जो दे गया है, अपना ही आदमी है।

मगर यह ईमानदार आदमी है, एक अच्छा आदमी है। यह मदारी समझा जायेगा। इसे अगर कोई संत समझता तो बुरा न था, कम से कम सच्चा तो था। लेकिन मदारियों के दिमाग हैं, और वह कर रहे हैं यही काम। कोई राख की पुड़िया निकाल रहा है, कोई ताबीज निकाल रहा है, कोई स्विज मेड घड़ियां हवा से निकाल रहा है। और छोटे साधारण नहीं—जिनको हम साधारण नहीं कहते हैं, गवर्नर हैं, वाइस चान्सलर हैं, हाईकोर्ट के जजेज हैं, वह भी मदारियों के आगे हाथ जोड़े खड़े हैं। इससे सिर्फ यह पता चलता है कि हमारे जजेज, हमारे वाइस चान्सलर, हमारे गवर्नर भी ग्रामीण से ऊपर नहीं उठ सके हैं। उनकी बुद्धि भी साधारण ग्रामीण आदमी से ज्यादा नहीं। फर्क इतना है कि ग्रामीण आदमी के पास सर्टिफिकेट नहीं है, उनके पास सर्टिफिकेट हैं। ये सर्टिफिकेट ग्रामीण हैं।

यह चमत्कार—इस जगत् में चमत्कार जैसी चीज सब में होती नहीं, हो नहीं सकती। इस जगत् में जो कुछ होता है, नियम से होता है। हां, यह हो सकता है, नियम का हमें पता न हो। यह हो सकता है कि कार्य, कारण का हमें बोध न हो। यह हो सकता है कि कोई लिंक, कोई कड़ी अज्ञात हो, जो हमारी पकड़ में नहीं आती, इसलिए बाद की कड़ियों को समझना बहुत मुश्किल हो जाता है।

बाकू में—उन्नीस सौ सत्तरह के पहले, जब रूस में क्रांति हुई थी—उन्नीस सौ सत्तरह के पहले, बाकू में एक मन्दिर था। उस मन्दिर के पास प्रति वर्ष एक मेला लगता था। वह

दुनिया का सबसे बड़ा मेला था। कोई दो करोड़ आदमी वहां इकट्ठे होते थे। और बहुत चमत्कार की जगह थी वह, वह जो मन्दिर की जगह थी। वह अग्नि का मन्दिर था और एक विशेष दिन को, एक विशेष घड़ी में, उस अग्नि के मन्दिर में, अपने आप अग्नि उत्पन्न होती थी। वेदी पर अग्नि की लपटें प्रगट हो जाती थीं। लाखों लोग खड़े होकर देखते थे। कोई धोखा न था, कोई जीवन न था, कोई आग जलाता न था, कोई वेदी के पास आता न था। उस वेदी पर अपने आप अग्नि प्रगट होती थी, चमत्कार भारी था। सैकड़ों वर्षों से पूजा होती थी, भगवान् प्रगट होते, अग्नि के रूप में अपने आप।

फिर उन्नीस सौ सत्तरह में रक्त क्रांति हो गयी। जो लोग आये, वह विश्वासी न थे, उन्होंने मढ़िया उखाड़ कर फेंक दी और गड्ढ खोदे। पता चला, वहां तेल के गहरे कुएं हैं। मिट्टी के तेल के। मगर फिर भी यह तो बात साफ हो गयी कि मिट्टी के तेल के घर्षण से भी आग पैदा होती है। लेकिन खास दिन ही होती थी। तब तो और खोज-बीन करनी पड़ी, तो पता चला कि जब पृथ्वी एक विशेष कोण पर होती है, अपने झुकाव के, तभी नीचे के तेल में घर्षण हो पाता है। इसलिए निश्चित दिन पर प्रतिवर्ष वह आग पैदा हो जाती है। जब यह बात साफ हो गयी, तब वहां मेला लगना बन्द हो गया। अब भी वहां आग पैदा होती है, लेकिन अब कोई इकट्ठा नहीं होता है। क्योंकि कार्य, कारण पता चल गया है, बात साफ हो गयी है। अग्नि देवता अब भी प्रगट होते हैं, लेकिन वह केरासिन देवता होते हैं, अब वह अग्नि देवता नहीं रह गये।

चमत्कार जैसी कोई चीज नहीं होती।

चमत्कार का मतलब सिर्फ इतना ही होता है कि कुछ है जो अज्ञात है, कुछ है जो छिपा है, कोई कड़ी साफ नहीं है, वह हो रहा है।

एक पत्थर होता है अफ्रीका में, जो पानी को, भाप को पी जाता है, पारस होता है, थोड़े से उसमें छेद होते हैं, वह भाप को पी लेते हैं। तो वर्षा में वह भाप को पी जाता है, काफी भाप को पी जाते हैं। उस पत्थर का पारस होना दिखायी नहीं पड़ता, लेकिन वह स्पंजी है। उसकी मूर्ति बन जाती है। वह मूर्ति जब गर्मी पड़ती है, जैसे सूरज से अभी पड़ रही है, उसमें से पसीना आने लगता है। उस तरह के पत्थर और भी दुनिया में पाये जाते हैं। पंजाब में एक मूर्ति है, वह उसी पत्थर की बनी हुई है। जब गर्मी होती है, तो भक्तगण पंखा झलते हैं, उस मूर्ति को, कि भगवान् को, पसीना आ रहा है। और बड़ी भीड़ इकट्ठी होती है, क्योंकि बड़ा चमत्कार है। पत्थर की मूर्ति को पसीना आये।

तो जब मैं उस गांव में ठहरा था, तो एक सज्जन ने मुझे आके कहा कि आप मजाक उड़ाते हैं। आप सामने देख लीजिए चल के। भगवान् को पसीना आता है। और आप मजाक उड़ाते हैं, आप कहते हैं भगवान् को सुबह-सुबह दतुन क्यों

रखते हो, पागल हो गये हो ? पत्थर को दतुन रखते हो ? पागल हो गये हो ? कहते हो, भगवान् सोयेंगे, अब भोजन करेंगे । जब उनको पसीना आ रहा है, तो बाकी सब चीजें भी ठीक हो सकती हैं । वह ठीक कह रहा है, उसे कुछ पता नहीं है, कि वह जो पत्थर है, पारस है । वह भाप को पी जाता है, गर्मी पड़ती है, उसमें से पसीना निकलता है । जिस ढंग से आप में पसीना बह रहा है, उसी ढंग से उसमें भी बहने लगता है । आप में भी पसीना कोई चमत्कार नहीं है । आपका शरीर पारस है, तो वह पानी पी जाता है, और जब गर्मी होती है, तो शरीर की अपनी एयरकण्डीशनिंग की व्यवस्था है । वह पानी को छोड़ देता है, ताकि पानी भाप बनकर उड़े, और शरीर को ज्यादा गर्मी न लगे । वह पत्थर भी पानी पी गया है । लेकिन जब तक हमें पता नहीं है, जब तक बड़ा मुश्किल होता है। फिर इस सम्बन्ध में, जिस वजह से उन्होंने पूछा होगा, वह मेरे ख्याल में है । दो बातें और समझ लेनी चाहिए ।

एक तो यह कि चमत्कार सन्त तो कभी नहीं करेगा—नहीं करेगा । क्योंकि कोई संत आपके अज्ञान को न बढ़ाना चाहेगा और कोई संत आपके अज्ञान का शोषण नहीं करना चाहेगा। संत आपके अज्ञान को तोड़ना चाहता है, बढ़ाना नहीं चाहता । और चमत्कार दिखाने से होगा क्या ? और बड़े मजे की बात है, क्योंकि पूछते हैं कि जो लोग राख से पुड़िया निकालते हैं, आकाश से ताबीज गिराते हैं। काहे को मेहनत कर रहे हैं, राख की पुड़िया से किसका पेट भरेगा ? एटॉमिक भट्टियां आकाश से उतारो, कुछ काम होगा । जमीन पर उतारो, गेहूं उतारो—गेहूं के लिए अमरीका के हाथ जोड़ो, और असली चमत्कार हमारे यहां हो रहे हैं। तो गेहूं क्यों नहीं उतार लेते हो ? राख की पुड़िया से क्या होगा, गेहूं बरसाओ ?

जब चमत्कार ही कर रहे हो, तो कुछ ऐसा चमत्कार करो कि मुल्क का कुछ हित हो सके । सबसे ज्यादा गरीब मुल्क है दुनिया का, और सबसे ज्यादा चमत्कार यहां हो रहा है ! धन बरसाओ, सोना बरसाओ, मिट्टी को सोना बना दो । चमत्कार ही करने हैं तो कुछ ऐसे करो । स्विज मेड घड़ी चमत्कार में निकले, तो क्या फायदा होगा ? कम-से-कम मेड इन इण्डिया भी निकालो । तो क्या होने वाला है ? मदारीगिरी से होगा क्या ? कभी हम सोचें कि हम इस पागलपन में किस भ्रांति में भटके हैं ?

पिछले जो ढाई हजार वर्षों से, इन्हीं पागलों के चक्कर में लगे हुए हैं । और हम कैसे लोग हैं कि हम यह नहीं पूछते कि माना कि आपने राख की पुड़िया निकाल ली, अब क्या मतलब है, होना क्या है ? चमत्कार किया, बिल्कुल चमत्कार किया, लेकिन राख की पुड़िया से होना क्या है ? कुछ और निकालो, कुछ काम की बात निकाल लो । वह कुछ निकल सकती नहीं, नहीं तो यह मुल्क दीन क्यों हो, दरिद्र क्यों हो । यहां तो एक चमत्कारी संत पैदा हो जाये, तो सब ठीक हो

जाये ।

एक हजार साल गुलाम रहे थे, और यहां ऐसे चमत्कारी पड़े हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं । गुलामी की जंजीरें नहीं कटतीं । ऐसा लगता है कि अंग्रेज के सामने चमत्कार नहीं चलता । चमत्कार के लिए हिन्दुस्तानी होना जरूरी है क्योंकि अगर खोपड़ी में थोड़ा भी विचार चलता हो, तो चमत्कार के कटने का डर रहता है । तो जहां विचार है बिल्कुल न चला पाओगे चमत्कार को। सब से बड़ा चमत्कार यह नहीं है कि लोग चमत्कार कर रहे हैं । सबसे बड़ा चमत्कार यह है कि हम खुद भी होते हुए चमत्कार देख रहे हैं, देखे चले जा रहे हैं और घरों में बैठ के चर्चा कर रहे हैं कि चमत्कार हो रहा है । और कोई इन चमत्कारियों की जाके गर्दन नहीं पकड़ लेता कि जो खो गयी है घड़ी, उसको बाहर निकलवा ले, कि क्या मामला है, क्या कर रहे हो ? वह नहीं होता है ।

हम हाथ पैर जोड़ के बड़े—उसका कारण है । हमारे भीतर कमजोरियां हैं । जब राख की पुड़िया निकलती है तो हम सोचते हैं कि भई, शायद और भी कुछ निकल आये, पीछे । राख की पुड़िया से कुछ होने वाला नहीं है न, आगे कुछ और संभावना बनती है । आशा बंधती है । और कोई बीमार है, किसी को नौकरी नहीं मिली है, किसी की पत्नी मर गयी है, किसी का किसी से प्रेम हो गया है, किसी का मुकदमा चल रहा है, सबकी तकलीफें हैं । तो लगता है, जो आदमी ऐसा कर रहा है, अपनी तकलीफ भी कुछ कम कर रहा है । दौड़ो इसके पीछे ।

बीमारी, गरीबी, परेशानी, उलझनें कारण हैं कि हम चमत्कारियों के पीछे भाग रहे हैं । कोई धार्मिक जिज्ञासा कारण है ? धार्मिक जिज्ञासा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है । धार्मिक जिज्ञासा से इसका कोई वास्ता नहीं है । धार्मिक जिज्ञासा का क्या हल होगा ? इन सारी बातों से ? लेकिन लोग करते चले जायेंगे, क्योंकि हम गहरे अज्ञान में हैं । गहरे विश्वास में हैं। लोग करते चले जायेंगे और शोषण होता चला जायेगा । पुराने चित्त ने चमत्कारी आदमी पैदा किया था । लेकिन जिन-जिन कौमों ने चमत्कारी चित्त पैदा किये उन-उन कौमों ने विज्ञान पैदा नहीं किया ।

ध्यान रहे, चमत्कारी चित्त वहीं पैदा हो सकता है जहां एन्टी साइंटिफिक माइंड हो । जहां विज्ञान विरोधी चित्त हो । जहां विज्ञान आयेगा वहां चमत्कार मरेगा । क्योंकि विज्ञान कहेगा, चमत्कार को कि हम काज और इफेक्ट में मानते हैं । हम मानते हैं, कार्य और कारण में । विज्ञान किसी चमत्कार को नहीं मानता। अब कितना अद्भुत है मामला । विज्ञान किसी चमत्कार को नहीं मानता है, उसने हजारों चमत्कार किये हैं । जिनमें से अगर एक भी कोई संत कर देता, तो हम हजारों-लाखों साल तक उसकी पूजा करते । अब यह पंखा चल रहा है, यह माइक आवाज करा रहा है । यह चमत्कार नहीं होगा, क्योंकि यह विज्ञान ने किये हैं

और विज्ञान किसी चीज को छिपाता नहीं है। सारे कार्य कारण प्रगट कर देता है। आदमी का हृदय बदला जा रहा है। दूसरे का हृदय उसके काम कर रहा है। आदमी के सारे शरीर के पार्ट बदले जा रहे हैं।

आज नहीं कल, हम आदमी की स्मृति भी बदल सकेंगे। उसकी भी संभावना बढ़ती जा रही है। कोई जरूरी नहीं है कि एक आइंस्टीन माइंड, वह मर ही जाये। आइंस्टीन मरे-मरे, उसकी स्मृति को बचाकर हम एक नये बच्चे में ट्रांस्प्लांट कर सकते हैं। इतने बड़े चमत्कार घटित हो रहे हैं, लेकिन कोई नासमझ न कहेगा कि ये चमत्कार हैं। कहेगा ऐसा चमत्कार क्या है? और कोई आदमी की फोटो में से राख झड़ रही है, हम हाथ जोड़कर खड़े हैं कि चमत्कार हो रहा है, बड़ा आश्चर्य है। अवैज्ञानिक विज्ञान विरोधी चित्त है। विज्ञान ने इतने चमत्कार घटित किये हैं कि हमें पता ही नहीं चलता, क्योंकि विज्ञान चमत्कार का दावा नहीं करता। विज्ञान खुला सत्य है, ओपेन सीक्रेट है।

और यह जो बेईमानों की दुनिया है यहां, इसलिए अगर किसी आदमी को कोई तरकीब पता चल जाती है, तो उसको खोलकर नहीं रख सकता, क्योंकि खोले तो चमत्कार गया। इसलिए ऐसे मुल्क का ज्ञान रोज बढ़ जाता है। अगर मुझे कोई चीज पता चल जाये और चमत्कार करना हो तो, पहली जरूरत तो यह है कि उसके पीछे जो राज है, उसको मैं प्रगट न करूं।

आयुर्वेद ने बहुत विकास किया, लेकिन आयुर्वेद का जो वैद्य था, वह चमत्कार कर रहा था। इसलिए आयुर्वेद पिछड़ गया। नहीं तो आयुर्वेद की आज की स्थिति एलोपैथी से कहीं बहुत आगे होती। क्योंकि एलोपैथी की खोज बहुत नयी है। आयुर्वेद की खोज बहुत पुरानी है। इसलिए एक वैद्य को जो पता है, वह अपने बेटे को भी न बतायेगा, नहीं तो चमत्कार गड़बड़ हो जायेगा। मजा लेना चाहता है।

मजा लेना चाहता है। टीका छाप लगाकर और साफा वगैरह बांध कर बैठा रहेगा और मर जायेगा। वह जो जान लिया था, वह छिपा जायेगा, क्योंकि वह कड़ी अगर पूरी बता दे, तो फिर चमत्कार नहीं होगा, लेकिन तब साइंस बन्द करनी पड़ी। हिन्दुस्तान में कोई साइंस नहीं बनती। जिस आदमी को जो पता है, वह उसको छिपा के रखता है। वह कभी उसका पता किसी को चलने नहीं देगा, क्योंकि पता चला कि चमत्कार खत्म हो गया। इस वजह से हमारे मुल्क में, ज्ञान की बहुत दफे किरणें प्रगट हुईं, लेकिन ज्ञान का सूरज कभी न बन पाया, क्योंकि एक-एक किरण मर गयी। और उसे कभी हम बपौती न बना पाये कि उसे हम आगे दे सकें। उसको देने में डर है, क्योंकि दिया तो कम से कम उसे तो पता ही चल जायेगा कि अरे!

एक महिला मेरे पास प्रोफेसर थी—वह संस्कृत की प्रोफेसर थी। वह इसी

तरह एक मदारी के चक्कर में आ गयी, जिनकी फोटो से राख गिरती है और ताबीज निकलते हैं। उसने आकर मुझ से आशीर्वाद मांगा कि मैं अब जा रही हूं, सब छोड़ के। मुझे तो भगवान् मिल गये हैं। अब कहां यहां पड़ी रहूंगी? आप मुझे आशीर्वाद दें। मैंने कहा, यह आशीर्वाद मांगना ऐसा है, जैसे कोई आये कि अब मैं जा रहा हूं कुएं में गिरने और उसको मैं आशीर्वाद दूं। मैं न दूंगा। तुम कुएं में गिरो मजे से, लेकिन इसमें ध्यान रखना कि मैंने आशीर्वाद नहीं दिया। क्योंकि मैं इस पाप में क्यों भागीदार होऊं। मरो तुम, फंसू मैं। यह मैं न करूंगा तुम जाओ, मजे से गिरो। लेकिन जिस दिन तुम्हें पता चल जाये कि कुएं में गिर गई हो और अगर बच सकी हो, तो मुझे खबर जरूर कर देना।

पांच-सात साल बीत गए, मुझे याद भी नहीं रहा, उस महिला का क्या हुआ क्या नहीं हुआ। पिछले वक्त बम्बई में बोल रहा था सभा में, तो वह उठकर आयी और उसने मुझे आकर कहा, आपने जो कहा, वह घटना हो गयी है। तो मैं कब आकर पूरी बात बता जाऊं, लेकिन कृपा करके किसी और को मत बताना। मैंने कहा, क्यों? उसने कहा वह भी मैं कल बताऊंगी। वह कल आयेगी, उसने कहा अब बड़ी मुश्किल हो गयी, जिन ताबीजों को आकाश से निकलते देखकर मैं प्रभावित हुई थी, अब मैं उन्हीं सन्त की प्राइवेट सेक्रेट्री हो गई हूं। अब मैं उन्हीं के ताबीज बाजार से खरीदकर लाती हूं, बिस्तर के नीचे छिपा आती हूं। प्रगट होने का सब राज पता हो गया है। अब मैं भी प्रगट कर सकती हूं। लेकिन बड़ी मुश्किल में पड़ गयी हूं। उसी चमत्कार से तो हम आये भी। अब वह चमत्कार सब खत्म हो गया है। अब मैं क्या करूं? अब मैं छोड़कर आ जाऊं, तो उसमें तो और भी मुश्किल है।

कालेज में नौकरी करती थी, मुझे सात सौ रुपये मिलते थे। अब मुझे कोई दो-ढाई हजार रुपये का फायदा, महीने का होगा। और इतने रुपये आते हैं मेरे पास कि जितने उसमें से उड़ा दूं, वह अलग है, उसका कोई हिसाब नहीं है। इसलिए मैं आ तो नहीं सकती। इसलिए मैं आपको कहती हूं। कृपा करके किसी और को मत कह देना। अब मेरा काम अच्छा चल रहा है। अब नौकरी है लेकिन, अब तो चमत्कार व अध्यात्म का कोई लेना-देना नहीं है।

तो इसलिए पता न चल पाये, वह सारा का सारा त्याग चल रहा है। ज्ञान पता प्रगट होने को उत्सुक होता है। बेईमानी सदा अप्रगट रहना चाहती है। ज्ञान सदा खुलता है, बेईमानी सदा छिपती है। नहीं, कोई मिरेकल जैसी चीज दुनिया में नहीं होती, न हो सकती है। और अगर होती होगी, तो पीछे जरूर कारण होगा। यह हो सकता है, आज कारण न खोजा जा सके, कल खोज लिया जायेगा, परसों खोज लिया जायेगा।

यह हो सकता है, जीसस ने किसी के हाथ पर हाथ रखा हो और आंख ठीक

हो गयी हो, लेकिन फिर भी चमत्कार नहीं है। क्योंकि पूरी बात अब पता चल गयी है। अब पता यह चल गयी है कि कुछ अन्धे तो सिर्फ मानसिक रूप से अन्धे होते हैं। वे अन्धे होते ही नहीं, सिर्फ मेंटल ब्लाइन्डनेस होती है। उनको सिर्फ ख्याल होता है अन्धे होने का और यह ख्याल इतना मजबूत हो जाता है कि आंख का काम करना बन्द कर देती है। अगर कोई भी आदमी उनको भरोसा दिलवा दे कि तेरी आंख ठीक हो गयी, तो वह तत्काल उनका मन वापस लौट आयेगा और आंख के तल पर काम करना शुरू कर देगा।

राज तो यह बात जाहिर हो गयी है कि सौ में से पचास बीमारियां मानसिक हैं, इसलिए पचास बीमारियां तो ठीक की ही जा सकती हैं, बिना दवा के और सौ बीमारियों में से भी, जो बीमारियां असली हैं, उनमें भी पचास प्रतिशत हमारी कल्पना है बढ़ोतरी हो जाती है। वह पचास प्रतिशत कल्पना भी काटी जा सकती है। सौ सांप में से केवल तीन सांप में जहर होता है—तीन प्रतिशत सांपों में। सत्तानवे प्रतिशत सांप बिल्कुल ही बिना जहर के होते हैं। लेकिन सत्तानवे प्रतिशत सांपों के कांटने से भी आदमी मर जाते हैं। नहीं इसलिए कि जहर था, इसलिए कि सांप ने काटा। सांप के काटने से कम मरता है, सांप ने काटा मुझे, इसलिए ज्यादा मरता है।

तो जिस सांप में बिल्कुल जहर नहीं है, उससे आपको कटवा के भी मारा जा सकता है। तब एक चमत्कार तो हो गया। क्योंकि जहर था नहीं। कोई कारण नहीं मरने का। जब सांप ने काटा, यह भाव इतना गहरा है, यह मृत्यु बन सकती है। तब फिर मन्त्र से आपको बचाया भी जा सकता है। झूठा सांप मार रहा है, झूठा मन्त्र बचा लेता है। झूठी बीमारी को झूठी तरकीब बचा जाती है।

मेरे पड़ोस में एक आदमी रहते थे। सांप झाड़ने का काम करते थे। उन्होंने सांप पाल रखे थे। तो जब भी किसी सांप का झड़वाने वाला आता तब वह बहुत शोर-गुल मचाते, ड्रम पीटते और पुंगी बजाते और बहुत शोर-गुल मचाते, धुआं फैलाते। फिर उनका ही पला हुआ सांप आकर, एकदम सिर पटकने लगता। जब वह सांप, जिसको काटे, वह आदमी देखता रहे कि सांप आ गया, वह सांप को बुला देता है। वह कहता, पहले सांप को मैं पूछूंगा कि क्यों काटा? मैं उसे डांटूंगा, समझाऊंगा, बुझाऊंगा। उसी के द्वारा जहर वापस करवा दूंगा। तो वह डांटते, डपटते, वह सांप क्षमा मांगने लगता, वह गिरने लगता, लोटने लगता। फिर वह सांप, जिस जगह काटा होता आदमी को, उसी जगह मुंह को रखवाते। बस वह आदमी ठीक हो जाता।

कोई छः या सात साल पहले उनके लड़के को सांप ने काट लिया, तब बड़ी मुश्किल में पड़े, क्योंकि वह लड़का सब जानता है। वह लड़का कहता है, इससे मैं न बचूंगा, क्योंकि मुझे तो सब पता ही है सांप घर का ही है। वह भागकर मेरे पास आये

कि कुछ करिये, नहीं तो लड़का मर जायेगा, सांप ने काट लिया। मैंने कहा, आपका लड़का और सांप के काटने से मरे, तो चमत्कार हो जायेगा। आपने कितने लोगों को सांप काटने से बचाया है। उसने कहा कि मेरे लड़के को न चलेगा। क्योंकि उसको सब पता है कि सांप अपने ही घर का है। वह कहता है, यह तो घर का सांप है। वह बुलाइये, जिसने काटा। तो आप चलिये, कुछ करिये, नहीं तो मेरा लड़का जाता है।

सांप के जहर से कम लोग मरते हैं, सांप के काटने से ज्यादा लोग मरते हैं। वह काटा हुआ दिक्कत दे जाता है। वह इतनी दिक्कत दे जाता है कि जिसका हिसाब नहीं।

मैंने सुना है कि एक गांव के बाहर एक फकीर रहता था। एक रात उसने देखा कि एक काली छाया गांव में प्रवेश कर रही है। उसने पूछा कि तुम कौन हो, कहां जा रही हो? उसने कहा, मैं मौत हूं, और आपने पूछ लिया तो आपसे कहती हूं कि गांव में मुझे एक हजार आदमी मारने हैं, उनको लेने जा रही हूं। फकीर निश्चिंत रहा। गांव में महामारी फैल गयी, लोग मरने शुरू हो गये। महीने भर में, दस हजार से ऊपर लोग मर गये। फकीर ने कहा, मौत भी झूठ बोलने लगी? हद्द हो गयी, दस हजार मार गयी। महीने भर बाद मौत वापस लौटती थी, तो फकीर ने कहा, रुक। हद्द हो गयी, हम तो सोचते थे, जिन्दगी बेईमान हो गयी है, मौत भी बेईमान हो गयी है? तूने कहा था एक हजार मारने हैं, दस हजार आदमी मर चुके हैं और अभी मरते ही जा रहे हैं।

उस मौत ने कहा, मैंने तो एक हजार मारे, नौ हजार तो घबराहट में मर गये हैं और मैं तो आज जा रही हूं और पीछे लोग मरते रहेंगे, उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। वह खुद मर रहे हैं। वह आत्म हत्यायें हैं।

एक आत्म हत्या तो वह है, जो हमें दिखायी पड़ती है कि एक आदमी कुएं में डूबकर मर गया, एक आत्म हत्या वह है, जो आदमी भरोसा करके मर जाता है। यदि मर गया, वह भी आत्म हत्या हो गयी। ऐसी आत्म हत्याओं पर मन्त्र काम कर सकते हैं, ताबीज काम कर सकते हैं, राख काम कर सकती है। इसमें सन्त-वन्त का कोई लेना-देना नहीं है। अब हमें पता चल गया है कि उसकी मानसिक तरकीबें हैं, तो ऐसे अन्धे हैं।

एक अन्धी लड़की मुझे भी देखने को मिली, जो मानसिक रूप से अन्धी थी, जिसको डाक्टरों ने कहा कि उसको कोई बीमारी नहीं है। जितने लोग लकवे से परेशान हैं, उनमें से कोई सत्तर प्रतिशत लोग लकवा पा जाते हैं। पैरालिसिस पैरों में नहीं होती है, पैरालिसिस दिमाग में होती है, सत्तर प्रतिशत।

सुना है मैंने, एक घर में दो वर्ष से एक आदमी लकवे से परेशान है। उठ नहीं सकता है, न हिल सकता है। सवाल ही नहीं है उठने का। सूख गया है।

एक रात—आधी रात, घर में आग लग गयी है। सारे लोग घर के बाहर पहुंच गये हैं। घर के बाहर जाकर पता चला कि अरे ! घर के प्रमुख को तो हम भीतर ही छोड़ आये, अब क्या होगा ? लेकिन उन्होंने देखा कि प्रमुख तो भागे चले आ रहे हैं ! वह तो बिल्कुल चमत्कृत हो गये। आग की तो बात ही भूल गये। देखा कि चमत्कार हो गया। लकवा जिसको दो साल से लगा हुआ है, वह भागा चला आ रहा है। उन्होंने कहा अरे ! आप—आप तो चल सकते हैं। उसने कहा मैं ! मैं कैसे चल सकता हूं ? वह वहीं वापस गिर गया। मैं चल ही नहीं सकता।

अभी लकवे के मरीजों पर सैकड़ों प्रयोग किये गये हैं। लकवे के मरीज को हिप्नोटाइज करके, बेहोश करके चलवाया जा सकता है, और वह चलता है, तो उसका शरीर तो कोई गड़बड़ नहीं है, हिप्नोसिस में तो वह चलता है। बेहोशी में चलता है। और होश में आकर लकवा होता है। चलता है, चाहे बेहोशी में ही चलता हो, एक बात तो सबूत है कि उसके अंगों में कोई खराबी नहीं है, क्योंकि बेहोशी में अंग कैसे चल सकते हैं, अगर खराब हों। लेकिन होश में आकर वह गिर जाता है। तो इसका मतलब साफ है।

बहुत से बहरे हैं, जो झूठे बहरे हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि उनको पता है। उनको पता नहीं है, क्योंकि अचेतन मन ने उनको बहरा बना दिया है। बेहोशी में सुनते हैं, होश में बहरे हो जाते हैं। ये सब बीमारियां ठीक हो सकती हैं, लेकिन इसमें चमत्कार कुछ भी नहीं है—इसमें चमत्कार कुछ भी नहीं है। चमत्कार नहीं है, विज्ञान जो भीतर काम कर रहा है, साइकोलाजी, वह भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं है। वह आज नहीं कल पूरी तरह स्पष्ट हो जायेगा और सब ठीक ही बातें हो जायें।

आप एक साधु के पास गये। उसने आपको देखकर कह दिया, आपका फलां नाम है ? आप फलां गांव से आ रहे हैं ? बस आप चमत्कृत हो गये। हद्द हो गयी। कैसे पता चला मेरा गांव, मेरा नाम, मेरा घर ? क्योंकि टेलीपैथी अभी अविकसित विज्ञान है। अभी दूसरे के मन के विचार को बढ़ना पूरी तरह विकसित नहीं हो सका, लेकिन बुनियादी सूत्र प्रगट हो चुके हैं। दूसरे के मन को पढ़ने की साइंस धीरे-धीरे विकसित हो रही है और साफ हुई जा रही है। उसका सबूत है, कुछ लेना-देना नहीं है। कोई भी पढ़ सकेगा, कल जब साइंस हो जायेगी, कोई भी पढ़ सकेगा, अभी भी काफी काम हुआ है। और दूसरे के विचार को पढ़ने में बड़ी आसानी हो गई है। छोटी सी तरकीब आपको बताता हूं, आप भी पढ़ सकते हैं। एक, दो-चार दिन प्रयोग करें, तो आपको पता चलेगा कि यह तो बड़ा आसान है। दो-चार दिन में हो सकता है। लेकिन जब आप खेल देखेंगे तो आप समझेंगे भारी चमत्कार हो रहा है।

एक छोटे बच्चे को लेकर बैठ जायें। रात अन्धेरा कर लें, कमरे में। उसको दूर कोने में बिठा लें, आप यहां बैठ जायें और उस बच्चे से कह दें कि हमारी तरफ

ध्यान रख। और सुनने की कोशिश कर, हम कुछ न कुछ कहने की कोशिश कर रहे हैं। और अपने मन में एक ही शब्द ले लें और उसको जोर से दोहरायें। अन्दर ही दोहरायें, गुलाब, गुलाब को जोर से दोहरायें, गुलाब, गुलाब, गुलाब। आप तीन दिन के भीतर पायेंगे कि बच्चे ने पकड़ना शुरू कर दिया। वह वहां से कहेगा क्या आप गुलाब कह रहे हैं ? तब आपको पता चलेगा कि बात क्या हो गयी है।

जब आप बहुत जोर से भीतर गुलाब दोहराते हैं, तो दूसरे तक उसकी विचार तरंगें पहुंचनी शुरू हो जाती हैं। बस, वह जरा रिसेप्टिव होने की कला सीखने की बात है। बच्चे रिसेप्टिव हैं। फिर इससे उल्टा करना शुरू करें, बच्चे को कहें कि वह एक शब्द दोहराये और आप उस तरफ ध्यान रखकर बैठकर पकड़ने की कोशिश करें। बच्चा तीन दिन में पकड़ा है, तो आप छः दिन में पकड़ लेंगे कि वह क्या दोहरा रहा है। और जब एक शब्द पकड़ा जा सकता है, तो फिर कुछ भी पकड़ा जा सकता है।

हर आदमी के भीतर विचार की तरंगें मौजूद हैं, वह पकड़ी जा रही हैं। लेकिन इसका विज्ञान अभी बहुत साफ न होने की वजह से, कुछ मदारी इसका उपयोग कर रहे हैं। जिनको वह तरकीब पता है, वह कुछ उपयोग कर रहे हैं। फिर वह आपको दिक्कत में डाल देते हैं।

यह सारी की सारी बातों में कोई चमत्कार नहीं है। न चमत्कार कभी पृथ्वी पर हुआ है, न कभी होगा। चमत्कार सिर्फ एक है कि अज्ञान है, बस और कोई चमत्कार नहीं है, इग्नोरेंस है, एक मात्र मिरेकल है, और अज्ञान में सब चमत्कार हिप्नोटिक होते रहते हैं। जगत में विज्ञान है, चमत्कार नहीं। प्रत्येक चीज का कार्य है, कारण है, व्यवस्था है। जानने में देर लग सकती है। जिस दिन जान ली जायेगी, उस दिन हल हो जायेगी। उस दिन कोई कठिनाई नहीं रह जायेगी।

एक आखिरी प्रश्न और है—एक मित्र ने पूछा है कि आपने कहा कि चेतना बिगड़ गयी है। उन्होंने पूछा है, चेतना यानी आत्मा बिगड़ कैसे सकती है ? आत्मा तो कभी बिगड़ नहीं सकती है। वह तो सदा शुद्ध-बुद्ध है।

इसे थोड़ा समझना उचित है। जब मैं कहता हूं, चेतना बिगड़ गयी है, तब मेरा मतलब वही है, जैसे सागर शांत, मौन है, कोई तूफान नहीं है, तभी सागर है। और जब तूफान उठता है और लहरें उठती हैं और सागर बिल्कुल विक्षिप्त हो जाता है तब भी सागर है। लेकिन तूफान की हालत में सागर बिगड़ गया है। बेचैन हो गया है, परेशान हो गया है। ब्रह्म ही सागर है। वह जो शांत था, वह भी सागर था। यह जो अशान्त है, यह भी सागर है। असल में शांत के भीतर, अशान्त होने की क्षमता सदा प्रसुप्त है। अशांत के भीतर, शांत होने की क्षमता प्रसुप्त है। तो जब मैं कहता हूं, चेतना बिगड़ गई है तो मेरा मतलब कुल इतना ही है कि जो हमारे भीतर छिपा है, वह तूफान में है, अशांत है, रुग्ण है,

अस्वस्थ है। बेचैनी में है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि वह बेचैनी में है, तो वापस नहीं लौट सकता। वापस लौट सकता है। वह चैन में हो सकता है, शांत हो सकता है, स्वस्थ हो सकता है।

लेकिन शास्त्र कहते हैं, आत्मा तो शुद्ध-बुद्ध है। उनका मतलब उतना ही है, जैसे सागर जब तूफान में हो, और सागर से कोई कहे कि पागल, इस तूफान में होने को अपना स्वरूप मत समझ लेना। तू तो शांत सागर है। इसका मतलब क्या होता है ? इसका मतलब यह नहीं है कि सागर में तूफान नहीं है, सागर में तूफान है। लेकिन सागर से हम कह रहे हैं कि इस तूफान को तू अपना स्वभाव मत समझ लेना। तू शांत हो सकता है। तूफान ही नहीं है तू, तू तूफान के बाहर भी हो सकता है।

जिन्होंने कहा है कि आत्मा शुद्ध है, बुद्ध है, वे सिर्फ तुम्हें स्मरण दिला रहे हैं कि तुम अपनी इस रुग्ण अवस्था को, अपनी चरम स्थिति मत समझ लेना। यह सिर्फ विकार है तुम्हारा, तुम निर्विकार में लौट सकते हो। लेकिन हम भी बहुत चालाक लोग हैं। हम इतना विकार से भरे हुए हैं कि हम कहते हैं, अच्छा, शुद्ध बुद्ध है, तब तो कुछ करना ही नहीं है। आत्मा शुद्ध बुद्ध है, तब तो कुछ करना ही नहीं है। आत्मा तो सदा शुद्ध है तो करना क्या है ? कुछ भी नहीं करना है।

हिन्दुस्तान को बिगाड़ने वाली शिक्षाओं में यह सबसे बड़ी शिक्षा सिद्ध हुई है, हिन्दुस्तान के चरित्र को नीचे गिराने में, हिन्दुस्तान के व्यक्तित्व को नष्ट करने में, यह बहुत ऊंची बात जो बिल्कुल सही है और सहायक हुई है। इस बात ने कि हम शुद्ध-बुद्ध हैं तो फिर क्या सवाल है ? एक चोर से कहो, वह कहेगा, आत्मा चोरी करती ही नहीं। यह चोरी वगैरह सब माया है। एक हत्यारे से कहो वह कहेगा, न कोई मरता है, न कोई मारता है। गीता में लिखा है। न हन्यते हन्यमाने शरीरे—न कोई मरता है, न मारता है, न हमने मारा, न कोई मरा। आत्मा तो मरती ही नहीं, आत्मा अमर है। क्या करियेगा कैसे समझाइएगा इसको ?

एक ब्रह्मवादी को आप समझा नहीं सकते। क्योंकि बात तो ठीक ही कह रहा है, लेकिन ठीक बात को, गलत परिणामों में उपयोग कर रहा है। हिन्दुस्तान के ब्रह्मवाद ने, हिन्दुस्तान के व्यक्तित्व को रुग्ण किया, बीमार किया, क्योंकि बात तो सच थी। लेकिन सच बात होने से ही उसको हम सत्य के लिए उपयोग करेंगे, यह जरूरी नहीं है। हमने कहा कि सब ठीक है। तब कुछ भी नहीं करना है, यह सब माया है। यह सब बुराई है, यह सब विकार है, सब सत्य है, यह सपने की भांति है। सत्य में कभी कोई विकार होता ही नहीं, बस सत्य ठीक है।

इसलिए साधु-संतों के पास, जहां समझाया जाता है, आत्मा शुद्ध-बुद्ध है, ब्रह्म निर्विकार है, वहां सब तरह से पापियों को आप बैठा हुआ पायेंगे। वह बिल्कुल सिर हिला रहे हैं कि बिल्कुल ठीक कह रहे हैं महाराज ! आत्मा तो निर्विकार है। वह अपने को समझा रहे हैं कि आत्मा तो निर्विकार है, इसलिए अब विकार करने में कोई डर नहीं है, कोई भय नहीं है। क्योंकि यह विकार वगैरह सब सपना है। यह मेट फिजीकल कनिंगनेस है, यह आध्यात्मिक ढंग की बेईमानी है, जिसको हम कर सकते हैं, जिसको हमने किया है। इसलिए हिन्दुस्तान एक तरफ ऊंची से ऊंची बात करेगा और दूसरी तरफ नीचे से नीचे आदमी पैदा करेगा।

पश्चिम के लोग हमारा भरोसा नहीं करते हैं। ओरिएंटल कनिंगनेस कहते हैं हमें। पश्चिम के लोग जानते हैं कि पूरब के लोग बदमाश हैं और उसका कारण, उसे जानने का कि हमारे सम्बन्ध में जब भी आते हैं, तो हम हर तरफ की शरारत करते हैं। हां, एक ही बात में वह हमारा मुकाबला नहीं कर सकते, ब्रह्मवाद की जब चर्चा चले, तो वे एक दम हार जा सकते हैं, क्योंकि वह हमें तरकीब पता है, क्योंकि सब असत्य है, सब सपना है।

ध्यान रहे, जब जगत सपना है तो चोरी भी सपना है और साधु भी सपना है, फिर फर्क क्या है ? दो सपने में कोई फर्क होता है ? कोई फर्क नहीं होता है। जब सभी माया है, तो बुरा आदमी भी माया है, अच्छा आदमी भी माया है। दो माया में कुछ फर्क होता है ? कोई फर्क नहीं होता। और आत्मा निर्विकार है, सदा अपनी स्थिति में है। वह न कहीं आयी, न कहीं गयी, न उसने कोई बुरा किया, न भला किया, चलते में वह अचल है, बोलते में वह अबोला है। पाप करने में पुण्य में है। वह सब है।

नहीं, मैं नहीं इस तरह की बातों में सहयोगी नहीं हो सकता हूं। यह हमें तोड़ना पड़े, अगर हमें इस देश के चरित्र को बदलना है और परिवर्तन के चौराहे पर चरित्र सबसे बड़े से बड़ा सवाल है अगर चरित्र को बदलना है, तो हमें समझना पड़ेगा कि यह गलत चरित्र पैदा करने में हमने कौन-सी तरकीबों का उपयोग किया है। सब तरह की तरकीब यह है हमारी, कि हमने इस चरित्र को कहा कि यह माया का हिस्सा है। जब माया का हिस्सा है, तो बात खत्म हो गयी। इस माया के हिस्से के कारण बात खत्म हो गयी। हमने ऐसे साधु पैदा किये, जो शराब पी रहे हैं, भांग पी रहे हैं, भोग कर रहे हैं। और उनसे जब कहा, तो वे कहते हैं कि आत्मा तो कभी करती नहीं, आत्मा तो कभी भांग खाती नहीं। भांग डालो तो करीब नहीं जाती, आत्मा तक जाती नहीं, जा सकती है ? कितनी ही भांग डालो, वह शरीर में चली जाती है। यह शरीर तो सब असार है। सार तो आत्मा है, उसमें कुछ होता नहीं है।

हमारे चरित्र की बुनियादी कमी, हमारे ब्रह्मवाद की छाया से पैदा हुई है। नहीं यह नहीं हो सकता था कि ब्रह्मवाद से यह पैदा होती, लेकिन हमने पैदा कर ली है। और हमें यह समझ लेना चाहिए। नहीं, हम जैसे हैं, हम जो हैं, उस होने में हम पूरी तरह विकार से ग्रस्त हैं। हम जो हैं, वहां पूरी तरह पाप है। पूरी तरह बीमारी है। लेकिन आत्मा शुद्ध-बुद्ध है, इसका मतलब? इसका मतलब है, आत्मा का शुद्ध होना उसकी परम सम्भावना है, उसकी अल्टीमेट पासिबिलिटी है, हम चाहें तो इन सबके बाहर, शुद्ध-बुद्ध हो सकते हैं। हम जैसे हैं, यह हमारा होना परम स्वभाव नहीं है। यह होना हमारा विकार है। यह हमारा स्वभाव से च्युत होना है। लेकिन हम लौट सकते हैं।

उस लौटने की याद जब हम दिलाते हैं और सोने से कहते हैं कि तू कचरा नहीं है, तू कचरा हो ही नहीं सकता। लेकिन सोने में कचरा हो सकता है। सोना कचरा नहीं हो सकता, लेकिन सोने में कचरा हो सकता है। सोने में धूल हो सकती है, मिट्टी हो सकती है, पत्थर कंकड़ हो सकते हैं। सोने से हम कहते हैं सोना, तू कभी मिट्टी नहीं हो सकता। लेकिन सोने में मिट्टी हो सकती है। और अगर सोना समझ ले कि मैं मिट्टी हो ही नहीं सकता, तो आग में जाने की क्या जरूरत है? मैं तो शुद्ध-बुद्ध सोना हूं। तो वह सोना मिट्टी में मिला जुला रह जायेगा। नहीं, सोने को आग में जाना पड़ेगा। मिट्टी जल जाये, कचरा जल जाये, सोना बच जाये। वह जो सोने से हम कहते हैं, तू मिट्टी नहीं हो सकता, वह हम उसकी परम स्थिति की स्मरण के लिए कह रहे हैं, वह उसकी आज की स्थिति का स्थापन नहीं है, वह उसकी परम स्थिति की स्मृति है।

लेकिन उस स्मृति का हमने दुरुपयोग किया है। यह ऐसा ही है, जैसे अस्पताल में हम जायें और लोगों से हम कहें कि आत्मा तो स्वस्थ है, अस्पताल में क्या कर रहे हो? लेकिन जो स्वामी कहता है कि आत्मा तो स्वस्थ है, वह भी अस्पताल में इलाज करवा रहा है। फिर, आत्मा स्वस्थ है, तो तुम यह क्या करवा रहे हो? यह तो शरीर बीमार है, रहने दो, जाओ। आत्मा स्वस्थ है, इसका मतलब ही यह होता है कि रुग्ण हो सकती है। स्वास्थ्य में रुग्णता की सम्भावना निहित है। जो रुग्ण भी नहीं हो सकता, वह स्वस्थ भी नहीं हो सकता। सम्भावना है सदा विपरीत, और प्रत्येक चीज में पोलेरिटी है, प्रत्येक चीज में विपरीत मौजूद है। सिर्फ मरा हुआ आदमी नहीं मर सकता है। जिन्दा आदमी मर सकता है। जन्म के साथ मौत की पोलिरिटी है। स्वस्थ आदमी बीमार हो सकता है।

विपरीत सदा मौजूद है। उस विपरीत को झूठा कह के हल्का होता है। अगर हमने उसको झूठा कहा, तो फिर बदलने के लिए हम कुछ भी न करेंगे। इस परिवर्तन के चौराहे पर, जहां समाज खड़ा है वहां हमें यह भी निर्णय लेना

होगा कि हमारे अतीत के विचार की तर्कना ने यह चरित्र दिया, यही चरित्र हमें आगे भी बचाये रखना है या कि हमें इस चरित्र को रूपांतरित करना है। यह चरित्र को रूपांतरित करना है, तो हमें चरित्र के पीछे की आधार भूमियों में भी परिवर्तन करने होंगे। फिलॉसफी भी बदलनी होगी, दर्शन भी बदलना होगा। तब यह चरित्र बदलेगा, क्योंकि दर्शन ही हमारे चरित्र का फैलाव बन जाता है।

और थोड़े से प्रश्न रह गये हैं। बहुत से आपके मन में रह गये होंगे, लेकिन सभी प्रश्नों के उत्तर मैं दूं यह जरूरी नहीं है, यह उचित भी नहीं है। मैंने जिन प्रश्नों के उत्तर दिये, वह इसी आशा से दिये कि वे उत्तर मेरे हैं, आपके नहीं हैं और भूल के आप उनको अपना मत समझ लेना, अन्यथा आप विश्वास में पड़ जायेंगे। ये उत्तर मेरे हैं, और मेरे भी कल होंगे, इसका भी वायदा नहीं है, क्योंकि मैं अपने आपसे अपनेपन को नहीं बांध सकता हूं। सिर्फ मरा हुआ आदमी बांध सकता है। सिर्फ मरा हुआ आदमी कंसिस्टेंट हो सकता है, जिन्दा आदमी को इनकंसिस्टेंट होना ही पड़ेगा, जो जिन्दा है। आज जो मैंने कहा, वह कल मैं कैसे कहूंगा, क्योंकि चौबीस घंटे गंगा का बहुत पानी बह जायेगा। ये उत्तर आज तक जो मैं हूं, उसके हैं, कल मैं जो होऊंगा उसके लिए नहीं है। आपके होने का सवाल ही नहीं है। आप आप हैं, मैं मैं हूं।

लेकिन यह मैंने उत्तर क्यों दिये हैं? उत्तर मैंने इसलिए नहीं दिये हैं कि आपके प्रश्न मर जायें। उत्तर इसलिए दिये हैं कि आपके प्रश्न और जिन्दा हो जायें। उसमें बहुत निखार आ जाये। आप सोचने पर निकल पड़ें, आपकी सोचने की यात्रा शुरू हो जाये। उससे राजी और नाराजी होना सवाल नहीं है। मुझे सुनने वालों में निरन्तर यह भूल होती है। कोई मुझसे राजी हो जाता है, वह कहता है मैंने आपको मान लिया, कोई मुझसे नाराज हो जाता है, तो कहता है हम आपको मानते नहीं। ये दोनों नासमझ हैं। मुझे मानने न मानने का सवाल हो नहीं है। मैं अनुयायी खोजने निकला ही नहीं हूं, इसलिए अकारण कोई मेरा अनुयायी बन जाता है, कोई मेरा शत्रु बन जाता है, अकारण। मेरा कोई सम्बन्ध ही नहीं है। मैं आपसे कहता हूं, सिर्फ इसलिए कि आप सोचने लगें, विचारने लगें। और अगर इन तीनों में आपके मन में कुछ भी विचार पैदा हुआ हो, स्वीकृति नहीं, विचार। अस्वीकृति नहीं विचार, तो यह श्रम सार्थक हुआ मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना उससे अनुग्रहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं, मेरे स्वीकार करें।

सूरत, २२ मई १९७०

आज की राजनीति

विषय | पृष्ठ संख्या

२०–आज की राजनीति

मेरे प्रिय आत्मन् !

आज की राजनीति पर कुछ भी कहने के पहले दो बातें समझ लेनी जरूरी हैं। एक तो यह कि जो आज दिखाई पड़ता है, वह आज का ही नहीं होता, हजारों-हजारों वर्ष के बीते हुए कल, आज में सम्मिलित होते हैं। जो आज का है उसमें कल भी जुड़ा है, बीते सब कल जुड़े हैं। और आज की स्थिति को समझना हो तो कल की इस पूरी श्रृंखला को समझे बिना नहीं समझा जा सकता। मनुष्य की प्रत्येक आज की घड़ी पूरे अतीत से जुड़ी है—एक बात ! और दूसरी बात—राजनीति कोई जीवन का ऐसा अलग हिस्सा नहीं है, जो धर्म से भिन्न हो, साहित्य से भिन्न हो, कला से भिन्न हो। हमने जीवन को खण्डों में तोड़ा है सिर्फ सुविधा के लिए। जीवन इकट्ठा है। तो राजनीति अकेली राजनीति ही नहीं है, उसमें जीवन के सब पहलू और सब धाराएं जुड़ी हैं। और जो आज का है, वह भी सिर्फ आज का नहीं है, सारे कल उसमें समाविष्ट हैं। यह प्राथमिक रूप से ख्याल में हो तो मेरी बातें समझने में सुविधा पड़ेगी।

यह मैं क्यों बीते हुए कलों पर इसलिए जोर देना चाहता हूं कि भारत की आज की राजनीति में जो उलझाव है, उसका बहुत गहरा सम्बन्ध हमारी अतीत की समस्त राजनीतिक दृष्टि से जुड़ा है।

जैसे,—भारत का पूरा अतीत इतिहास और भारत का पूरा चिन्तन, राजनीति

के प्रति वैराग सिखाता है। अच्छे आदमी को राजनीति में नहीं जाना है, यह भारत की शिक्षा रही है। और जिस देश का यह ख्याल हो कि अच्छे आदमी को राजनीति में नहीं जाना है, अगर उसकी राजधानियों में सब बुरे आदमी इकट्ठे हो जायें, तो आश्चर्य नहीं है, जब हम ऐसा मानते हों कि अच्छे आदमी का राजनीति में जाना बुरा है, तो बुरे आदमी का राजनीति में जाना अच्छा हो जाता है। वह उसका दूसरा पहलू है।

हिन्दुस्तान की सारी राजनीति धीरे-धीरे बुरे आदमी के हाथ में चली गयी है; जा रही है, चली जा रही है। आज जिनके बीच संघर्ष है, वह अच्छे और बुरे आदमी के बीच संघर्ष नहीं है। बुरे आदमी के अलग-अलग मार्क, अलग-अलग ट्रेड मार्कों के बीच संघर्ष है। इसे ठीक से समझ लेना जरूरी है। उस संघर्ष में कोई भी जीते, उससे हिन्दुस्तान का बहुत भला नहीं होने वाला है। कौन जीतता है, यह बिल्कुल गौण बात है। दिल्ली में कौन ताकत में आ जाता है, यह बिल्कुल दो कौड़ी की बात है; क्योंकि संघर्ष बुरे आदमियों के गिरोह के बीच है।

हिन्दुस्तान का अच्छा आदमी राजनीति से दूर खड़े होने की पुरानी आदत से मजबूर है। वह दूर ही खड़ा हुआ है। लेकिन इसके पीछे हमारे पूरे अतीत की धारणा है। हमारी मान्यता यह रही है कि अच्छे आदमी को राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। बर्ट्रेन्ड रसल ने कहीं लिखा है, एक छोटा सा लेख लिखा है, उस लेख का शीर्षक—उसका हैडिंग मुझे बहुत पसन्द पड़ा। हैडिंग है—"दी हार्म, दैट गुड मैन डू"—'नुकसान', जो अच्छे आदमी पहुंचाते हैं।

अच्छे आदमी सबसे बड़ा नुकसान यह पहुंचाते हैं कि बुरे आदमी के लिए जगह खाली कर देते हैं। इससे बड़ा नुकसान अच्छा आदमी और कोई पहुंचा भी नहीं सकता।

हिन्दुस्तान में सब अच्छे आदमी भगोड़े रहे हैं। 'एस्केपिस्ट' रहे हैं। भागने वाले रहे हैं। हिन्दुस्तान ने उनको ही आदर दिया है, जो भाग जायें। हिन्दुस्तान उनको आदर नहीं देता, जो जीवन की सघनता में खड़े हैं, जो संघर्ष करे, जीवन को बदलने की कोशिश करे।

कोई भी नहीं जानता कि अगर बुद्ध ने राज न छोड़ा होता, तो दुनिया का ज्यादा हित होता या छोड़ देने से ज्यादा हित हुआ है। आज तय करना भी मुश्किल है। लेकिन यह परम्परा है हमारी, कि अच्छा आदमी हट जाये। लेकिन हम कभी नहीं सोचते, कि अच्छा आदमी हटेगा, तो जगह तो खाली नहीं रहती, 'वैक्यूम' तो रहता नहीं।

अच्छा हटता है, बुरा उसकी जगह भर देता है। बुरे आदमी भारत की राजनीति में तीव्र संलग्नता से उत्सुक हैं। कुछ अच्छे आदमी भारत की आजादी के आन्दोलन में उत्सुक हुए थे। वे राजनीति में उत्सुक नहीं थे। वे आजादी में

उत्सुक थे। आजादी आ गयी। कुछ अच्छे आदमी अलग हो गये, कुछ अच्छे आदमी समाप्त हो गये, कुछ अच्छे आदमियों को अलग हो जाना पड़ा, कुछ अच्छे आदमियों ने सोचा, कि अब बात खत्म हो गयी।

खुद गांधी जैसे भले आदमी ने सोचा कि अब कांग्रेस का काम पूरा हो गया है, अब कांग्रेस को विदा हो जाना चाहिए। अगर गांधीजी की बात मान ली गयी होती, तो मुल्क इतने बड़े गड्ढे में पहुंचता, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। बात नहीं मानी गयी, तो भी मुल्क गड्ढे में पहुंचा है, लेकिन उतने बड़े गड्ढे में नहीं, जितना मानकर पहुंच जाता। फिर भी गांधीजी के पीछे अच्छे लोगों की जो जमात थी, विनोबा और लोगों की, सब दूर हट गये। वह पुरानी भारतीय धारा फिर उनके मन को पकड़ गयी, कि अच्छे आदमी को राजनीति में नहीं होना चाहिए।

खुद गांधीजी ने जीवन भर बड़ी हिम्मत से, बड़ी कुशलता से भारत की आजादी का संघर्ष किया। उसे सफलता तक भी पहुंचाया। लेकिन जैसे ही सत्ता हाथ में आयी, गांधीजी हट गये। वह भारत का पुराना अच्छा आदमी फिर मजबूत हो गया। गांधी ने अपने हाथ में सत्ता नहीं ली, यह भारत के इतिहास का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। जिसे हम हजारों साल तक, जिसका नुकसान हमें भुगतना पड़ेगा। गांधी सत्ता आते ही हट गये। सत्ता दूसरे लोगों के हाथ में गयी। जिनके हाथ में सत्ता गयी, वे गांधी जैसे लोग नहीं थे। गांधी से कुछ सम्भावना हो सकती थी कि भारत की राजनीति में अच्छा आदमी उत्सुक होता। गांधी के हट जाने से वह सम्भावना भी समाप्त हो गयी।

फिर सत्ता के आते ही एक दौड़ शुरू हुई। बुरे आदमी की सबसे बड़ी दौड़ क्या है? बुरा आदमी चाहता क्या है? बुरे आदमी की गहरी से गहरी आकांक्षा अहंकार की तृप्ति है, 'इगो' की तृप्ति है। बुरा आदमी चाहता है, उसका अहंकार तृप्त हो और क्यों बुरा आदमी चाहता है कि उसका अहंकार तृप्त हो? क्योंकि बुरे आदमी के पीछे एक 'इनफीरियरिटी काम्पलेक्स', एक हीनता की ग्रन्थि काम करती रहती है। जितना आदमी बुरा होता है, उतनी ही हीनता की ग्रन्थि ज्यादा होती है। और ध्यान रहे—हीनता की ग्रन्थि जिसके भी भीतर हो, वह पदों के प्रति बहुत लोलुप हो जाता है, सत्ता के प्रति, 'पावर' के प्रति बहुत लोलुप हो जाता है। भीतर की हीनता को वह बाहर के पद से पूरा करना चाहता है।

बुरे आदमी को मैं, शराब पीता हो, इसलिए बुरा नहीं कहता। शराब पीने वाले अच्छे लोग भी हो सकते हैं। शराब न पीने वाले बुरे लोग भी हो सकते हैं। बुरा आदमी इसलिए नहीं कहता, कि उसने किसी को तलाक देकर दूसरी शादी कर ली हो। दस शादी करने वाला, अच्छा आदमी हो सकता है। एक ही शादी पर जन्मों से टिका रहने वाला आदमी भी बुरा हो सकता है। मैं बुरा आदमी उसको कहता

हूं, जिसकी मनोग्रन्थि हीनता की है, जिसके भीतर 'इनफीरियरिटी' का कोई बहुत गहरा भाव है। ऐसा आदमी खतरनाक है, क्योंकि ऐसा आदमी पद को पकड़ेगा, जोर से पकड़ेगा, किसी भी कोशिश से पकड़ेगा, और किसी भी कीमत, किसी भी साधन का उपयोग करेगा। और किसी को भी हटा देने के लिए, कोई भी साधन उसे सही मालूम पड़ेंगे।

हिन्दुस्तान में अच्छा आदमी––अच्छा आदमी वही है, जो न 'इनफीरियरिटी' से पीड़ित है और न 'सुपीरियरिटी' से पीड़ित है। अच्छे आदमी की मेरी परिभाषा है, ऐसा आदमी, जो खुद होने से तृप्त है, आनंदित है। जो किसी के आगे खड़े होने के लिए पागल नहीं है, और किसी के पीछे खड़े होने में जिसे कोई अड़चन, कोई तकलीफ नहीं है। जहां भी खड़ा हो जाये वहीं आनंदित है। ऐसा अच्छा आदमी राजनीति में जाये तो राजनीति शोषण न होकर सेवा बन जाती है। ऐसा अच्छा आदमी राजनीति में न जाये, तो राजनीति केवल 'पावर पॉलिटिक्स', सत्ता और शक्ति की अन्धी दौड़ हो जाती है। और शराब से कोई आदमी इतना बेहोश कभी नहीं हुआ, जितना आदमी सत्ता से और 'पावर' से बेहोश हो सकता है। और जब बेहोश लोग इकट्ठे हो जायें सब तरफ से, तो सारे मुल्क की नैया डगमगा जाये, इसमें कुछ हैरानी नहीं है।

यह ऐसे ही है––जैसे किसी जहाज के सभी मल्लाह शराब पी लें, और आपस में लड़ने लगें प्रधान होने को ! और जहाज उपेक्षित हो जाये, डूबे या मरे, इससे कोई सम्बन्ध न रह जाये, वैसी हालत भारत की है।

राजधानी में भारत के सारे के सारे मदान्ध, जिन्हें सत्ता के सिवाय कुछ भी दिखायी नहीं पड़ रहा है, वे सारे अन्धे लोग, बेहोश लोग इकट्ठे हो गये हैं। और उनकी जो शतरंज चल रही है, उस पर पूरा मुल्क दाव पर लगा हुआ है। पूरे मुल्क से उनको कोई प्रयोजन नहीं है, कोई सम्बन्ध नहीं है। भाषण में वे बातें करते हैं, क्योंकि बातें करनी जरूरी हैं। प्रयोजन बताना पड़ता है। लेकिन पीछे कोई प्रयोजन नहीं है। पीछे एक ही प्रयोजन है भारत के राजनीतिज्ञ के मन में, कि मैं सत्ता में कैसे पहुंच जाऊं ? मैं कैसे मालिक हो जाऊं ? मैं कैसे नम्बर एक हो जाऊं ? यह दौड़ इतनी भारी है, और यह दौड़ इतनी अन्धी है, कि इस दौड़ के अन्धे और भारी और खतरनाक होने का बुनियादी कारण यह है कि भारत की पूरी परम्परा अच्छे आदमी को राजनीति से दूर करती रही है।

तो मैं आप से कहना चाहूंगा, अगर भारत के लिए कभी भी एक स्वस्थ राजनीति को जन्म देना हो, तो भारत की इस पुरानी धारणा को बिल्कुल मिट्टी में फेंक देना, आग में डाल देना, पानी में डुबा देना। यह धारणा नहीं मिटेगी, तो भारत के लिए सौभाग्य का उदय नहीं हो सकता है––एक बात।

दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं, कि भारत का पूरा का पूरा अतीत 'नान-डेमोक्रेटिक' है। भारत का दिमाग लोकतान्त्रिक नहीं है। भारत का दिमाग अत्याधिक अलोकतान्त्रिक है। भारत की पूरी की पूरी परम्परा मनुष्य को समान स्वीकार नहीं करती है। नहीं तो शूद्र और ब्राह्मण असम्भव हो जाते। भारत की पूरी धारणा आदमी-आदमी के बीच वर्गों, वर्णों को स्वीकार करती है। एक आदमी जन्म से ही नीचा है और एक आदमी जन्म से ही ऊंचा है ऐसी हमारी मान्यता है। यह मान्यता बड़ी खतरनाक है। यह कुछ लोगों को पैदायशी गुलाम बना देती है। और कुछ लोगों को पैदायशी मालिक होने का भ्रम दे देती है। लोकतन्त्र की जो हम नयी रचना करने में लगे हैं, उसके विपरीत है यह सारी धारणा। लोकतन्त्र प्रत्येक व्यक्ति को बराबर मूल्य देता है। जन्म से नहीं तय करता है कि कौन छोटा है, कौन बड़ा है ! धन से तय नहीं करता, कौन छोटा है, कौन बड़ा ! पद से तय नहीं करता है कौन छोटा है कौन बड़ा है !

प्रत्येक व्यक्ति बराबर है। ऐसे लोकतन्त्र की संरचना में हम लगे हों और हमारे पूरे 'माइंड' की, हमारी पूरी की पूरी संस्कृति, हमारे मन की पूरी आधारशिलाएं 'एंटीडेमोक्रेटिक' हों, लोकतन्त्र विरोधी हों तो बड़ी अड़चन हो जायेगी। मन तो हमारे पास लोकतन्त्र विरोधी है, लोकतन्त्र का हम निर्माण कर रहे हैं। तो लोकतन्त्र की बातें करते हैं, भीतर हमारे मन में लोकतन्त्र कहीं भी नहीं है। इसलिए जो आदमी भी सत्ता पर बैठ जाता है वही पागल हो जाता है, वही तानाशाह होने की कोशिश में संलग्न हो जाता है। वही 'डिक्टेटोरियल' हो जाने की कोशिश में संलग्न हो जाता है।

गद्दी पर बैठते ही इस मुल्क में कोई आदमी लोकतान्त्रिक नहीं रह जाता। लोकतान्त्रिक आदमी ही नहीं है। जब तक ताकत नहीं है, तब तक वह हाथ जोड़ कर आपके द्वार पर खड़ा होता है। जैसे ही ताकत आती है, वह आपको पहचानना बन्द कर देता है। यह बड़ी अजीब बात है। और अगर यह बात जारी रहती है, तो भारत आज नहीं कल किसी न किसी तरह की तानाशाही में फंस जाने को आबद्ध होगा।

आज जो दिल्ली में हो रहा है, वह किसी आने वाली तानाशाही की सूचनायें हैं। वह आज नहीं कल, इस वर्ष नहीं अगले वर्ष हम उसी गड्ढे में गिरेंगे, जहां दुनिया के सभी लोकतन्त्रों के गिरने का डर होता है। हमारा डर सबसे ज्यादा है। हमारा डर सबसे ज्यादा इसलिए है कि हमने स्वीकार ही यह किया है, कि राजा को हम मानते थे भगवान् ! जो देश राजा को भगवान् मानता रहा हो—अब भी उसके मन में वही भाव है। भाव कहीं खो नहीं गया है, और आदमी-आदमी के बीच समानता की हमारी कोई दृष्टि नहीं है।

तो बहुत खतरा है इस बात का—कि आज नहीं कल, लोकतन्त्र की हत्या हो जाये। और शक्ति के पीछे अन्धे लोग किसी भी क्षण हत्या कर सकते हैं। वे

लोकतान्त्रिक तभी तक हैं, जब तक लोकतन्त्र उन्हें सत्ता तक पहुंचाये। सत्ता में पहुंचने ही उनका लोकतन्त्र विदा हो जाता है। किसी ने कहा—मुझे लगता है भारत में सही हो जायेगा। शायद किसी ने कहा है—लोकतन्त्र तानाशाहों को चुनने की एक प्रक्रिया है। लोकतन्त्र भी तानाशाहों को चुनने की एक प्रक्रिया है। तानाशाह भी आपकी मर्जी से चुने जायें, ऐसी प्रक्रिया है। अगर लोकतन्त्र का यही मतलब हो, तो भारत में वह दिखायी पड़ता है। और जो संघर्ष हमें दिखायी पड़ रहा है सब तरफ, वह हमारे भीतर मनों में जो उपद्रव है, 'कांफ्लिक्ट' है। मन है 'एन्टी डेमोक्रेटिक', और व्यक्तित्व हम देश का बनाना चाहते हैं लोकतान्त्रिक।

नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। लोकतान्त्रिक व्यक्तित्व तभी बन सकता है, जब भीतर मन भी लोकतान्त्रिक हो। भारत का पूरा मन बदल जाये, तो भारत की राजनीति स्वस्थ, सुन्दर, सुखद हो सकती है। और वह तब सत्ता का आग्रह और दौड़ ही नहीं रह जायेगी। भारत सदा व्यक्ति का पूजक है और जो कौमें भी व्यक्ति की पूजा करती हैं, वह लोकतान्त्रिक नहीं हो सकतीं। व्यक्ति की पूजा का मतलब ही यह है, कि एक व्यक्ति महान है और दूसरे लोग हीन हैं। एक व्यक्ति महात्मा है, दूसरे लोग हीन-आत्मा हैं। एक भगवान् है, दूसरे लोग साधारण हैं। व्यक्ति की पूजा करने वाली कोई कौम, कभी लोकतान्त्रिक नहीं हो सकती क्योंकि लोकतन्त्र की घोषणा यही है कि कोई महान नहीं है, कोई छोटा नहीं है, सब समान हैं।

समानता का यह भाव हमारे भीतर बिल्कुल नहीं है। हम सदा से पैर छूते रहे हैं, हम सदा से सिर झुकाते रहे हैं, हम सदा से किसी को बड़ा और किसी को छोटा मानते रहे हैं। यह छोटा और बड़ा मानने की, हमारी जो अब तक की पूरी-पूरी कल्पना और धारणा रही है, वही धारणा आज भी काम कर रही है। इसीलिए तो एक आदमी राजनैतिक पद पर खड़ा हो जाये, तो भगवान् हो जाता है। सारे अखबार उसकी खबरों से भर जाते हैं, सारी खुशियां उसको मिल जाती हैं। फिर मुल्क में कोई नहीं रहता, वही रह जाता है। पद से वह आदमी नीचे उतरा और वह बिल्कुल भूल जाता है; उसका कोई पता नहीं चलता। राधाकृष्णन कहां खो गये? पता लगाना मुश्किल है। कहां रहते हैं? यह भी पता लगाना मुश्किल है। एक आदमी सत्ता से नीचे उतरा, कि गया; वह हमारे लिए फिर भगवान् नहीं रह गया। सत्ता पर पहुंचा कि एकदम भगवान् हो जाता है।

यह जो हमारी स्थिति रही और हम व्यक्ति को इस भांति सत्ता पर बल देते रहे, और पद को इतना मूल्य देते रहे; तो फिर इस मुल्क में स्वस्थ वातावरण निर्मित होना मुश्किल हो जायेगा। मुझे लगता है, कि हम शायद सर्वाधिक रूप से पद-पीड़ित-समाज हैं। पद सब कुछ है। पद से हीन व्यक्ति की कोई हमें चिन्ता और विचार नहीं है। अगर ऐसा होगा, तो सभी 'एम्बीशस' और महत्वाकांक्षी

लोग पदों की तरफ दौड़ने लगेंगे।

आज कोई आदमी अच्छा शिक्षक नहीं होना चाहता। क्यों हो? शिक्षकों के दिवस पर मैं दिल्ली बोलने गया था। तो मैंने शिक्षकों से कहा कि मैं बहुत हैरान हूं। राधाकृष्णन् शिक्षक थे और राष्ट्रपति हो गये; इसीलिए तुम शिक्षक-दिवस मना रहे हो? मुझे तो समझ नहीं आता कि इसमें क्या फर्क है? मैंने उनसे प्रार्थना की, जब कोई राष्ट्रपति शिक्षक हो जाये तब तुम शिक्षक-दिवस मनाना। अभी तो शिक्षक-दिवस मनाने जैसा कुछ भी नहीं लगता है।

एक शिक्षक राजनीतिज्ञ हो जाये, तो यह शिक्षक का अपमान हुआ कि सम्मान? एक राजनीतिज्ञ शिक्षक हो जाये और कहे, कि अब दिल्ली छोड़ता हूं और जाकर बड़ौदा के पास एक गांव में शिक्षक हो जाऊंगा; तो तुम शिक्षक-दिवस मनाना। लेकिन शिक्षक राजनीतिज्ञ हो जाये तो शिक्षक-दिवस शुरू हो जाता है। और इसका परिणाम यह होता है कि सब शिक्षक थोड़ी-बहुत कोशिश करके कुछ-न-कुछ होने की दौड़ में लग जाते हैं। हिन्दुस्तान का एक भी शिक्षक अब शिक्षा में उत्सुक नहीं है। कम-से-कम उप-शिक्षामंत्री हो जाये, शिक्षामंत्री हो जाये, इन्सपेक्टर ही हो जाये कम-से-कम! दौड़ जारी है।

कोई शिक्षक शिक्षा में उत्सुक नहीं है; क्योंकि शिक्षा का कोई सम्मान नहीं है। जर्मनी में कोई किसी शिक्षक को कहे कि चलो, मंत्री बना देते हैं; तो वह कहेगा "पता नहीं, मैं प्रोफेसर हूं।" वह इस तरह से कहेगा "क्या मुझे अपदस्थ करना चाहते हो? नीचे उतारना चाहते हो? मैं प्रोफेसर हूं विश्वविद्यालय का! मंत्री होने का क्या सवाल है?"

कब ऐसा दिन इस मुल्क में होगा? उस दिन राजनीति स्वस्थ हो सकेगी। जब यह सारा का सारा मुल्क एक ही महत्वाकांक्षा से भर जाये पद की; तो एक बहुत ही उपद्रवपूर्ण कलह शुरू हो जायेगी। हमें बहुत दिशाओं में सम्मान बांटना चाहिए। शिक्षक का अपना सम्मान है, संगीतज्ञ का अपना है, चित्रकार का अपना है, अभिनेता का अपना है, संन्यासी का अपना है। लेकिन सब विलीन हो गया, अब किसी का सम्मान नहीं है। पद पर जो खड़ा हो, उसका ही सम्मान है।

आज अगर किसी संन्यासी को भी सम्मानित होना हो, तो पहले किसी मिनिस्टर को खोजना पड़ता है। मिनिस्टर संन्यासी के पास आकर हाथ जोड़कर बैठ जाये, तो संन्यासी भी प्रतिष्ठित हो जाता है; नहीं तो संन्यासी का भी अब प्रतिष्ठित होने का कोई उपाय नहीं। अगर ऐसी स्थिति हमने बनायी, तो स्वाभाविक होगा कि सभी 'एम्बीशस', सभी महत्वाकांक्षी लोग राजनीति की तरफ दौड़ें।

सभी ओछे, क्षुद्र मन के, हीन-मन के लोग राजनीति की तरफ दौड़ें, तो वहां

अगर एक अन्तर्कलह की, और जहां बहुत लोग संघर्ष करने में लगें, वहां के साधन अशुद्ध हो जायें तो आश्चर्य नहीं । दिल्ली वैसा ही अड्डा बन गया ! छोटे अड्डे—अहमदाबाद है, भोपाल है, पटना है । सब छोटे अड्डे हैं । और छोटे-छोटे अड्डे हैं । फिर एक-एक गांव छोटा-छोटा अड्डा हो गया ।

सारा मुल्क, सारा देश सत्ता पाने की चेष्टा में इस भांति पागल है कि समझ के बाहर है; कि यह मुल्क कुछ और भी सोचेगा ? और भी विचारेगा ? कोई और दिशा नहीं है ? कोई जिन्दगी में और 'क्रिएटिव', सृजनात्मक दिशा नहीं है ? कोई दिशा नहीं मालूम पड़ती । सब अखबार उनके, सब रेडियो उनके लिए, सब सम्मान उनके लिए, तो फिर सभी आदमी पागल हो जायेंगे । और जो आदमी जितना पागल होता है उतना ज्यादा पद का आकांक्षी होता है ।

पागल आदमी कहीं ऊंची जगह खड़े होकर घोषणा करना चाहता है; कि मैं कुछ हूं । 'समबडी' होने की बड़ी गहरी आकांक्षा पागल आदमी में होती है । अगर दुनिया कभी अच्छी हुई, तो शायद हमें पता चले कि दुनिया के आधे पागल इसीलिए पागल होने से बच गये, कि उन्हें राजनीति में जाने का मौका मिल गया । अगर हिटलर राजनीति में न जाये, तो पागलखाने में हो । अगर माओ राजनीति में न जाये, तो राजनीति में जाने के सिवाय और कोई जगह नहीं मिल सकती जहां वह हो ।

हमारे राजनीतिज्ञ उतने बड़े पागल नहीं होते हैं । उतने बड़े राजनीतिज्ञ भी नहीं हैं । छोटे-मोटे पागलखानों में इनकी भी जगह हो सकती है, बहुत बड़े पागलखाने में इनके लिए जगह नहीं हो सकती है । लेकिन पागलपन पैदा हुआ है । और एक 'मैडनेस' है । यह भी अगर हम गौर करें; तो हमारे अतीत की धारणाओं से ही निकलती है बात । पद के बड़े ही सम्मान करने वाले लोग रहे । सत्ता और शक्ति के, धन के और व्यक्ति-पूजा के हम इतने दीवाने रहे हैं कि वह हमारा सब जारी है । अब भी वैसे का वैसा ही जारी है । लोकतन्त्र ऐसे निर्मित नहीं हो सकता । यह धारणा हमें छोड़नी पड़ेगी । यह रुग्ण-धारणा है छोड़नी पड़ेगी कि व्यक्ति पूजा के योग्य है या व्यक्ति छोटे और बड़े हैं ।

इंगलैंड में चर्चिल की जरूरत थी, बुला लिया । युद्ध आया, चर्चिल की जरूरत थी; चर्चिल हुकूमत में आ गया । युद्ध गया । दुनिया सोच भी नहीं सकती कि चर्चिल ऐसे चुपचाप विदा कर दिया जायेगा । हम कभी विदा नहीं करते । हम कभी कर ही नहीं सकते थे; क्योंकि हम सोचते कि इतना बड़ा काम किया चर्चिल ने, अब हम कैसे छोड़ सकते हैं ! तो पूजा करो, मूर्तियां खड़ी करो, मालायें पहनाओ, गुणगान करो । अब हम यह काम करते हैं । चर्चिल को हम कभी नहीं छोड़ सकते थे । इंगलैंड ने ऐसी सरलता से छोड़ दिया, जैसे काम पूरा हो गया । बुलाया था, काम पूरा हो गया, आदमी गया । व्यक्ति की कोई पूजा नहीं है,

व्यक्ति का उपयोग है ।

हम व्यक्ति की पूजा करते हैं, व्यक्ति का कोई उपयोग नहीं । तो एक दफा एक आदमी छाती पर बैठ जाये, उसकी जरूरत भी पूरी हो जाये, तो वह आदमी फिर बैठा ही रहा चला जाता है । और कोई आदमी इस देश में रिटायर तो होना नहीं चाहता । कोई कभी रिटायर नहीं होना चाहता । वह तो जो लोग मर गये हैं, अगर उनको फिर मौका मिल जाये, तो कब्रों से वापस लौट आयें । वह तो अगर मरघटों में खबर कर दी जाये कि राष्ट्रपति का चुनाव हो रहा है, मुर्दे भी खड़े हो सकते हैं । तो मुर्दे सब खड़े हो जायेंगे । कोई आदमी सत्तर-पचहत्तर साल का, कितना ही हो जाये, वह किसी पद से हटना नहीं चाहता है । भारत की राजनीति में एक उपद्रव यह भी है कि वृद्धजन हटना नहीं चाहते । तो जो युवा हैं, जो उनकी जगह जाना चाहते हैं, संघर्षरत हैं, वह इस कलह का कारण बन गये हैं ।

वृद्ध को हटाने योग्य क्षमता आनी चाहिए । सच तो यह है, कि वृद्धों को पता होना चाहिए, कि बच्चों का खेल है कुछ ! उम्र ज्यादा हो जाये, प्रौढ़ता बढ़ जाये, तो दूसरे बच्चों को खेलने का मौका होना चाहिए। उन्हें हट आना चाहिए । कोई हटना नहीं चाहता, जब तक उसे धक्का न दिया जाये । और धक्का देने पर भी जब तक वह कुर्सी को पकड़े रहे किसी तरह से, आखिरी दम तक; तब तक वह पकड़े रहेगा, छोड़ नहीं सकता । ऐसी बेहूदगी पर 'एब्सर्डिटी' हो गयी है, कि उस सब में बड़ा अजीब मालूम पड़ रहा है, कि यह मुल्क कैसे आगे बढ़े !

वृद्ध को हटने के योग्य क्षमता जुटानी चाहिए । जो काम कर सकते हैं, व्यक्तियों की पूजा नहीं—काम का सम्मान होना चाहिए । और काम पूरा हो जाये तो व्यक्तियों को हटना चाहिए और हमें हटाने की हिम्मत होनी चाहिए। यह अकृतज्ञता नहीं है । वह कोई 'ग्रेटीट्यूट' की कमी नहीं है । यह सिर्फ इस बात की स्वीकृति है कि बीमार था आदमी, हमने डाक्टर को बुला लिया था । अब बीमारी खत्म हो गयी, अब डाक्टर को हम वहीं बिठाये हुए हैं; तो बड़ी मुश्किल हो जायेगी । डाक्टर को अब विदा कर देना चाहिए; सम्मानपूर्वक ।

हिन्दुस्तान आजाद हुआ । जिन लोगों ने स्वतन्त्रता का संघर्ष किया, जरूरी नहीं है कि वे सत्ता करने में भी कुशल हों । यह बिल्कुल उल्टी बात है । इससे कोई सम्बन्ध नहीं है । सच तो यह है कि जो लोग सेवा करने में कुशल हैं, उनके हाथ में सत्ता देना बड़ा खतरनाक हो सकता है । जो लोग युद्ध के—जो लोग स्वतन्त्रता के युद्ध में लड़ने में, जिन्होंने बड़ी क्षमता दिखलायी है, जरूरी नहीं है कि वे सत्ता करने में भी उतनी ही कुशलता दिखायें । लेकिन ऐसा ही हो गया है । जेल जाने वाले को वह जेल जाना—सर्टिफिकेट हो गया सत्ता करने का । हमें सम्मान देना चाहिए; लेकिन सम्मान देने का मतलब यह नहीं कि वह सत्ता

में बैठ जाये। तो कोई भी ऐरा-गैरा आदमी, जो किसी भी तरह जेल गया था, या किसी तरह से अब भी जेल का झूठा सर्टिफिकेट ला सकता हो, तो वह सत्ता का हकदार हो गया। हमें व्यक्तियों की फिक्र है, हमें कामों की जरा भी फिक्र नहीं है। इसलिए सारी की सारी राजनीति अजीब हालत में पड़ गयी। देश आजाद हुआ था। सोचा जाना चाहिए था कि कौन लोग काम के साबित हो सकते हैं? नहीं! यह नहीं सोचा गया। किन लोगों ने आजादी की लड़ाई लड़ी थी? आजादी की लड़ाई लड़ना एक बात है, सत्ता करना बिल्कुल दूसरी बात है! जीवन को व्यवस्था देना, समाज को गति देना बिल्कुल दूसरी बात है।

तो ऐसी हालत हो गयी कि जो लोग अंगूठा से निशान लगाते हैं, वे शिक्षा मंत्री होकर बैठ गये हैं। इसकी कोई फिक्र ही नहीं रही, कि शिक्षा मंत्री होने का क्या मतलब हो सकता है! एक अत्यन्त अव्यवस्था और अराजकता पैदा हुई है। वह अब भी जारी है। उसमें अभी भी कोई फर्क नहीं हो गया है। व्यक्ति की पूजा होनी छोड़ देनी चाहिए। काम महत्वपूर्ण है, व्यक्ति नहीं। और राष्ट्र महत्वपूर्ण है, समाज महत्वपूर्ण है, व्यक्ति नहीं! कौन हितकर है, उसे हम पुकारेंगे; कौन हितकर नहीं है, उसे हम विदा कर देंगे। विदा अपमान नहीं है, विदा केवल काम का पूरा हो जाना है। लेकिन वह कोई भाव मुल्क में पैदा नहीं होता है।

और तीसरी आखिरी बात आपसे कहना चाहता हूं, जिससे उलझन भारी होती चली जाती है। भारत का जो मन है, वह जो हमारा 'नेशनल माइंड' है, उस राष्ट्रीय चित्त में एक बहुत गहरी बात है और वह बात बिल्कुल असामाजिक है। 'एन्टी सोशल' है। भारत के पांच-छः हजार वर्ष के चिन्तन ने एक-एक व्यक्ति को निपट स्वार्थी बना दिया है। अपने तक केन्द्रित कर दिया है। हर व्यक्ति का अपना मोक्ष है भारत में। हर व्यक्ति का अपना सुख है।

सामूहिक सुख, सामूहिक मुक्ति, सामूहिक आनन्द की कोई कल्पना ही नहीं है। है ही नहीं। हमने कभी सोचा ही नहीं इस तरफ। हम तो हरेक को समझाते हैं, पति को हम कहते हैं, तू अपनी फिक्र कर, पत्नी अपनी फिक्र करे, तेरा बेटा अपनी फिक्र करे। कोई किसी के सुख में भागीदार नहीं है। हमने एक-एक व्यक्ति को इस तरह तोड़ दिया है, कि जिसको 'कम्युनिटी' कहें, समाज कहें, वह भारत में पैदा ही नहीं हुआ। प्रत्येक व्यक्ति अपनी फिक्र कर रहा है। अपना मोक्ष, अपना स्वर्ग खोज रहा है। अपने पाप-पुण्यों का हिसाब रख रहा है।

दूसरे से क्या सम्बन्ध है? दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है। एक अन्तर्सम्बन्धी की भावना ही पैदा नहीं हुई। इसलिए समुदाय कैसे सुखी हो? समाज कैसे सुखी हो? समाज कैसे बढ़े? आगे विकसित हो? यह हमारे मन में नहीं है। एक-एक व्यक्ति अपनी-अपनी फिक्र में लगा है। एक-एक व्यक्ति पहले मोक्ष की फिक्र करता था, अब एक-एक व्यक्ति पद की, धन की! एक-एक व्यक्ति अपनी-अपनी

फिक्र कर रहा है। इसलिए पूरा मुल्क एक बड़ी अन्तर्कलह में, एक 'कान्फ्लिक्ट' में और युद्ध में पड़ा हुआ है। जहां सभी व्यक्तियों के व्यक्तिगत स्वार्थ बहुत महत्वपूर्ण हों और समाज का कोई स्वार्थ न हो, वहां यह हो जाना सुनिश्चित है। राजनीति में उसके सब फफोले और घाव और फोड़े फूटने शुरू हो गये हैं। यहां एक-एक व्यक्ति अपने में उत्सुक है। यहां कोई व्यक्ति किसी दूसरे में उत्सुक नहीं है।

एक किताब मैं पढ़ रहा था—'उन्नीस सौ पचहत्तर'' किताब का नाम है। लेखकों ने घोषणा की है—बड़े अर्थशास्त्री हैं, तीन लेखक—उन्होंने घोषणा की है, कि भारत में उन्नीस सौ अठहत्तर तक, उन्नीस सौ पचहत्तर और अस्सी के बीच इतना बड़ा अकाल पड़ेगा कि जिसमें दस करोड़ से बीस करोड़ तक लोग मर सकते हैं। और मुझे लगता है कि उन्होंने जो दलीलें दी हैं, वे सब सही हैं, उनमें कुछ कमी नहीं है। यह हो सकता है। दिल्ली में एक बहुत बड़े नेता से, नाम उनका नहीं लूंगा। नाम लेने से इस मुल्क में बड़ी मुश्किल होती है। बड़ी झंझटें खड़ी हो जाती हैं। उनका नाम नहीं लूंगा। उनसे मैंने कहा कि आपने यह किताब पढ़ी है? उन्नीस सौ अठहत्तर में अर्थशास्त्री कहते हैं—भारत में मुल्क के इतिहास का सबसे बड़ा अकाल पड़ेगा। उन्होंने कहा, उन्नीस सौ अठहत्तर अभी बहुत दूर है, अभी तो उन्नीस सौ बहत्तर का सवाल है। उन्नीस सौ अठहत्तर से किसको मतलब है? न हम रहेंगे, न सवाल है। वह जो रहेंगे, वह जानेंगे।

किसी को मतलब नहीं है पूरे देश से। प्रत्येक को अपने से मतलब है कि मैं कितनी देर सत्ता में, सम्पत्ति में, रह सकता हूं। इसके बाद बात खत्म हो जाती है। पूरा मुल्क—हमारा पूरा मुल्क व्यक्तियों की भीड़ है, समाज नहीं है। हम एक भीड़ हैं, न हम राष्ट्र हैं, न हम समाज हैं, हम एक 'क्राउड' हैं बड़ी। इसलिए हम कभी भी गुलाम हो सकते हैं। गुलाम रहे हम एक हजार साल इसीलिए! क्योंकि इस मुल्क में कोई समाज था ही नहीं। अगर एक आदमी का कोई कत्ल कर रहा था, दूसरे लोगों ने सोचा, हमें क्या मतलब है? अगर एक प्रान्त जीत लिया गया, एक राज्य हार गया, दूसरे राज्यों ने सोचा, हमें क्या मतलब है? लोग हारते चले गये, किसी को मतलब न था।

दुश्मन बहुत कम आये थे हिन्दुस्तान में। शायद बाबर हजार-पांच सौ आदमियों को लेकर प्रविष्ट हुआ था। करोड़ों के मुल्क को जीत लेना कितना कठिन था; लेकिन यहां एक-एक आदमी था, यहां मुल्क था ही नहीं। तो पांच सौ आदमी एक आदमी के खिलाफ बहुत मजबूत पड़ गये। इतने थोड़े-से अंग्रेज इतने बड़े मुल्क पर, इतने दिन हुकूमत कर सके, उसका और कोई कारण न था। यहां कोई समाज था ही नहीं। उनका एक समाज था। अगर तीन लाख अंग्रेज भी भारत में थे, तो वे हमसे ज्यादा थे। हम चालीस करोड़ बेकार थे। वे तीन लाख

का एक समाज था, एक 'कम्युनिटी' थी। यह चालीस करोड़ की भीड़ है। इस भीड़ में कोई अर्थ नहीं, किसी को किसी से कोई प्रयोजन नहीं।

अगर भारत को कहीं भी, इन जीवन की सारी गंदगियों को, राजनीति के सारे उपद्रवों को शांत करना हो, और एक ठीक राजपथ पर भारत के भविष्य को ले जाना हो, तो भारत की व्यक्तिगत स्वार्थ की प्रवृत्ति को तोड़ना ही पड़ेगा। एक-एक बच्चे को सिखाना पड़ेगा, कि 'तुम्हारा सुख' जैसी चीज नहीं होती। 'हमारा सुख' जैसी चीज होती है। 'तुम' जैसा कुछ नहीं होता, 'हम' जैसी कोई चीज होती है। सुख व्यक्ति का नहीं होता, हम सबका सामूहिक अन्तर्सम्बन्ध है। और दुख भी अन्तर्सम्बन्ध है। लेकिन हम भारत को समझा रहे हैं। एक आदमी गरीब है, तो हम कहते हैं, अपने कर्मों का फल भोग रहा है। हम समाज से तोड़ देते हैं उसको। हम यह नहीं कहते कि समाज की गलत व्यवस्था का फल भोग रहा है। हम कहते हैं, अपने कर्मों का फल भोग रहा है।

राष्ट्र की कोई आत्मा, समाज की कोई अपनी आत्मा न हो, तो जो हो रहा है, वह होगा। और विघटन होगा, और 'डिसइंटीग्रशन' होगा। मद्रास कहेगा—मैं अलग। बंगाल कहेगा—मैं अलग। केरल कहेगा—मैं अलग। और अभी तो यह प्रान्तों की बातें हैं, जिले भी पीछे नहीं रहेंगे। बड़ौदा कहेगा, अहमदाबाद के साथ बंधे रहने की जरूरत क्या है? और अगर भारत की बुद्धि को पूरा खुलकर खेलने का मौका दिया जाये—मैंने सुना है, बुद्ध के जमाने में भारत में दो हजार राज्य थे—अगर भारत की बुद्धि को पूरा मौका दिया जाये या भारत की प्रतिभा को, 'जीनियस' को, जिसको हम बड़ा आदर करते हैं—दो-दो हजार से ज्यादा राज्य फिर हो सकते हैं। कोई कठिनाई नहीं है।

हमारी बुद्धि ही अजीब है। नर्मदा किसकी है, मध्य प्रदेश की है कि गुजरात की? झगड़ा चलेगा वर्षों तक। वहां प्यासा कोई मर जाये, खेत में पानी न पहुंचे, यह झगड़ा चलता रहेगा। नर्मदा का पानी किसका? कौन कितना ले? यह तय नहीं हो सकता। नर्मदा हिन्दुस्तान की नहीं है। या तो मध्य प्रदेश की है या गुजरात की है। और एक जिला मैसूर में रहना चाहिए कि महाराष्ट्र में, इस पर गोलियां चलेंगी, दंगे-फसाद होंगे। आश्चर्यजनक है। आने वाले बच्चे हमारे सोचेंगे, क्या हमारे मां-बाप पागल थे? क्या था इनके दिमाग में? हो क्या गया था? जिला गुजरात में होता है कि महाराष्ट्र में, फर्क क्या पड़ता है? जिला हिन्दुस्तान का है। लेकिन हिन्दुस्तान का न कोई जिला है, न कोई नदी है, न कोई पहाड़ है। सब पहाड़, सब नदियां, सब जिले किसी प्रदेश के हैं। और चीजें आगे बढ़ती चली जायेंगी।

अभी मैं पटना में था, बिहार में। वहां वे कहते हैं, हमारा झारखण्ड अलग होना चाहिए। मध्य प्रदेश में बुन्देलखण्ड के लोग कहते हैं, बुन्देलखण्ड अलग होना

चाहिए। तैलंगाना अलग होना चाहिए, विदर्भ अलग होना चाहिए। सब अलग होना चाहिए। अगर हम पूरा मौका दें तो एक-एक आदमी, आखिरी जो नतीजा है 'एनालिसिस' का, वह यह है—कि मैं अलग, तुम अलग। मैं एक अलग राष्ट्र, तुम एक अलग राष्ट्र। इसने हमें तीन हजार वर्ष तक पीड़ित किया था, वह फिर वैसा होना शुरू हो गया है।

यह हैरानी की बात है, कि हमने अंग्रेजों की गुलामी में पहली दफे एक राष्ट्र की शक्ल ली है। हम इसके पहले कभी राष्ट्र नहीं थे। यह कितना दुखद है कि गुलाम कौम राष्ट्र बनी और आजाद कौम कभी राष्ट्र नहीं थी!

चर्चिल ने हिन्दुस्तान की आजादी के दिन, पन्द्रह अगस्त को यह कहा था—कि तुम फिक्र मत करो, उनको आजाद हो जाने दो, तुम एक पन्द्रह-बीस साल में देखोगे, कि उन्होंने गुलामी की सब व्यवस्था फिर से पैदा कर ली है। दो सौ साल का हमारा उन्हें अनुभव है। और उसने कहा—कि सब टूट जायेंगे और बिखर जायेंगे। वह आपस में लड़ जायेंगे, टूट जायेंगे, बिखर जायेंगे। और हमने वह सारा बिखराव शुरू कर दिया है; लेकिन इन बिखरावों को अगर हमने 'इमिजिएट' समझा, कि अभी का मामला है, तो गलती हो जायेगी। फिर हल, फिर हल नहीं होगा। इसलिए मैंने कहा, 'आज' बिल्कुल आज नहीं है। हमारा पूरा अतीत उसके पीछे खड़ा है। आज की राजनीति बिल्कुल आज की नहीं है। पूरा अतीत पीछे से धक्के दे रहा है। उसे अगर हम समझेंगे, तो हम 'कॉजेज', कारण अलग कर सकते हैं। और अगर हमने समझा कि पीछे का कोई सवाल नहीं है, यह सवाल बिल्कुल आज का है, तो हम जो भी हल करेंगे, वे हल दस परेशानियां खड़ी करेंगे और हल नहीं हो सकता है। पूरे भारत के चित्त को बदलना जरूरी है।

तीन-चार बातें मैंने कहीं—उन्हें दोहरा दूं—पहली बात! अच्छा आदमी राजनीति के प्रति बैराग छोड़े और बुरे आदमी को राजनीति में जाने से रोकने के सब उपाय होने चाहियें। लेकिन बुरे आदमी की अपनी तरकीबें हैं। वह कहता है, यह सवाल अच्छे-बुरे आदमी के चुनाव का थोड़े ही है। यह सवाल तो कम्युनिस्ट, कांग्रेसी और सोशलिस्ट का है। अच्छे और बुरे के बीच विकल्प ही नहीं होता है। वह कहता है, सोशलिस्ट को चुनो, कम्युनिस्ट को चुनो, कांग्रेस को चुनो! किसको चुनना है? और तीनों बुरे आदमी खड़े हैं। सवाल अच्छे और बुरे के बीच नहीं है, सवाल कम्युनिस्ट और कांग्रेसी, जनसंघी और कांग्रेसी के बीच है। और दोनों मौसेरे भाई हैं, इसमें कोई फर्क नहीं है।

अभी मुझसे किसी ने पूछा कि मोरारजी को चाहेंगे? मोरारजी भाई को चाहेंगे आप कि इंदिरा को? तो मैंने कहा, इंदिरा बहन हैं, और मोरारजी भाई हैं। भाई-बहन में कोई बहुत बड़ा फर्क नहीं है। झगड़े घरेलू हैं और भीतरी! और कोई आ जाये तो फर्क नहीं पड़ता। भाई उतने साबित होंगे, जितनी बहन साबित

होने वाली है। भाई-बहन के झगड़े हैं, चुनाव बहुत ज्यादा नहीं है। लेकिन हम इस चुनाव में पड़ जाते हैं, कि इसको चुनें या उसको।

मैंने सुना है कि जापान में बैरे बहुत कुशल हैं। सारी दुनिया में आप जायें, तो वह आपसे पूछेंगे कि आप भोजन के बाद चाय लेंगे कि नहीं लेंगे? जापान में ऐसा नहीं पूछेंगे। वह पूछेंगे—भोजन के बाद चाय लेंगे या कॉफी? विकल्प आपको 'नहीं' का देते ही नहीं। चाय लेंगे या कॉफी? तो आदमी को सीधे ही सूझता है कि क्या लूं, चाय लूं कि कॉफी? अगर किसी ने पूछा कि भोजन के बाद चाय लेंगे, कि नहीं लेंगे तो विकल्प दो हैं, कि लेना है कि नहीं लेना है। पहले वाला बैरा ठीक 'पॉलिटिकल' नहीं है, राजनीतिक नहीं है। उसकी समझ कम है। वह आदमी को गलत विकल्प दे रहा है, इन्कार करने का विकल्प भी दे रहा है। नहीं! विकल्प यह देना चाहिए, कि चाय लोगे कि कॉफी? तो कुछ आदमी सोचेगा, कि यह ले लूं कि यह। उसे 'नहीं' का ख्याल ही नहीं आता, इमीजिएट नहीं का ख्याल नहीं आता।

हमारे सामने आदमी खड़े होते हैं। एक लाल रंग की टोपी लगाये है। एक सफेद रंग की टोपी। वह दोनों एक जैसे हैं वह कहते हैं—किसको चुनते हैं, सफेद टोपी को कि लाल टोपी को? और हमको ख्याल आता है, कि इसको चुनें कि इसको? लेकिन यह ख्याल नहीं आता कि बुरे आदमी को चुनें कि अच्छे आदमी को? इसका विकल्प नहीं है।

बुरे आदमी को हटाना जरूरी है—सब तरफ से, चाहे वह कांग्रेसी हो और चाहे कम्युनिस्ट हो, चाहे सोशलिस्ट हो, यह सवाल नहीं है। हिन्दुस्तान के सामने सवाल यह है, कि अच्छा आदमी कैसे जाये? और एक नयी हवा पैदा करनी चाहिए कि अच्छे आदमी को चुनो; वह किस पार्टी का है, यह दो कौड़ी की बात है। पार्टियों का मूल्य उतना बड़ा नहीं है। अन्ततः आदमी कैसे जाये? बुरे आदमी को हटाने की, अच्छे आदमी के वैराग को तोड़ने की जरूरत है।

दूसरी बात आपसे मैंने कही—कि यह जो इतने लम्बे दिनों से हम जिस भाषा में सोचते रहे हैं, जो हमारे सोचने की 'कैटेग्रीज' हैं, धारणाएं हैं, उन धारणाओं ने 'व्यक्ति' को ज्यादा मूल्य दे दिया है, 'समाज' का कोई मूल्य नहीं! समाज का मूल्य स्थापित करना जरूरी है। यह मैंने कहा—कि हम व्यक्ति को आदर देते हैं, पूजा देते हैं, काम की कोई चिन्ता नहीं है। व्यक्तियों का कोई आदर और पूजा नहीं होती है, और हम गैर लोकतान्त्रिक हैं। हमारी चिन्तना छोटे और बड़े की भाषा में सोचती है। अब तक हमारा लोकतान्त्रिक मन नहीं हो सका और लोकतन्त्र खड़ा करने चले हैं! यह मैंने कहा, कि हीन भाव के लोग राजनीति में तीव्रता से दौड़ते हैं और हीन-भाव का आदमी खतरनाक है। क्योंकि एक तरह से रुग्ण है, बीमार है। उन आदमियों को भेजने, सोचने, तैयार करने की जरूरत है, जो न हीन हैं, न श्रेष्ठ हैं। जो, जो हैं, वह होने में आनन्दित हैं। जो कहीं से भी हट सकते हैं

बिना कठिनाई के, कहीं भी काम में लाये जा सकते हैं। व्यक्ति-पूजा बन्द करनी जरूरी है। और समाज का हित कैसे हों, यह चिन्तन ज्यादा मूल्यवान है।

राष्ट्र नहीं है, समाज नहीं है हमारे पास। वह पैदा करना है। वह पैदा नहीं होगा हमारे पुराने ढांचे में सोचने से, और हम उस पुराने ढांचे के कारण जो भी सोचते हैं, उससे राष्ट्र टूटता है। उससे राष्ट्र टूटता चला जाता है। हम जो भी सोचते हैं—कहीं सोचते हैं, भाषावार प्रान्त हो, तो राष्ट्र टूटता है। अब हम सोचते हैं, एक राष्ट्रभाषा हो, उससे भी राष्ट्र टूट रहा है। हम जो भी करते हैं, उससे चीजें टूटती हैं, बिखरती हैं, बनती नहीं हैं। कोई जरूरत नहीं है राष्ट्रभाषा की। जब राष्ट्र ही नहीं है, तब राष्ट्रभाषा कैसे होगी? राष्ट्र हो तो राष्ट्रभाषा भी हो सकती है। राष्ट्र है ही नहीं, आप राष्ट्रभाषा के लिए चिल्ला रहे हैं। नहीं हो सकता। देश में पच्चीस राष्ट्र हैं, पच्चीस राष्ट्रभाषाएं रहेंगी अभी। और अगर एक लादने की कोशिश की, तो ये पच्चीस टूट जाने वाले हैं, एक लादी नहीं जा सकती। अभी तो राष्ट्र को पैदा करो। उन पच्चीस को निकट लाओ और राष्ट्र बनेगा तो राष्ट्रभाषा बन जायेगी। राष्ट्रभाषा राष्ट्र की छाया है, इसके पहले नहीं आती। राष्ट्र है ही नहीं, तो राष्ट्रभाषा भी और राष्ट्र को तोड़ने का कारण बनेगी। राष्ट्रभाषा तो बन नहीं सकती।

मैं आपसे कहता हूं—राष्ट्रभाषा अभी पचास साल नहीं बन सकती; क्योंकि राष्ट्र है नहीं। तो बेहतर है, मत उपद्रव खड़े करो। जितनी भाषाएं हैं, उनको स्वीकार कर लो। थोड़ी मेहनत होगी, अनुवाद से काम चलाओ; लेकिन राष्ट्र-भाषा का सवाल छोड़ दो। जो भी तोड़ता हो, वह सवाल छोड़ दो; जो जोड़ता हो, वे सवाल इकट्ठे करो। जिससे हम जुड़ते हों, इकट्ठे होते हों, करीब आते हों, वह सब हम करें और एक राष्ट्र और एक समाज बनें। एक लोकतान्त्रिक चित्त पैदा हो, और भले आदमी के लिए हमने जो दीवारें उठायी हैं, वह हम अलग कर दें, तो शायद जैसा उलझाव हमें दिखायी पड़ता है, वह बदल सकता है।

मैं नहीं जानता, क्योंकि मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं, लेकिन दिखता जो है, वह मैंने आपसे कहा। आपने शायद सोचा होगा कि आज की राजनीति पर मैं उन्हीं सब बातों की बातें करूंगा, जो रोज सुबह आप अखबार में पढ़ रहे हैं, तो आपने गलत सोचा होगा। उससे मुझे कोई मतलब नहीं है सिर्फ वह लक्षण हैं बीमारियों के, लक्षण हैं सिर्फ ऊपर के। भीतरी बीमारियां और हैं।

लक्षणों के सोचने से कुछ हल नहीं होता है। एक आदमी को बुखार चढ़ा है, एक आदमी हाथ को गरम देखकर समझे कि गरम होना बीमारी है, ठण्डा पानी डालो, ठण्डा करो इस आदमी को। हो जायेगा आदमी ठण्डा! बिल्कुल ठण्डा हो जायेगा! नहीं बीमारी है, बुखार नहीं है बीमारी। वह जो गर्मी मालूम हो रही है, वह बीमारी नहीं है, बीमारी कहीं भीतर है, बुखार सिर्फ खबर है बुखार सिर्फ

खबर दे रहा है, कि आदमी भीतर कहीं रुग्ण हो गया है। उस भीतर के रोग को खोजो, तो यह बुखार चला जायेगा। बुखार सिर्फ 'सिम्बालिक' है। तो यह जो हमें दिखायी पड़ रहा है, सब 'फकीर' है, सब बुखार है, इसको बीमारी मत समझ लेना। नहीं तो ठण्डा पानी डालने से और मुश्किल होगी। इसको नहीं, इसके भीतर कहां कारण छिपे हैं।

कुछ कारण मैंने सुझाये, आप सोचना। हो सकता है ठीक हों, हो सकता है गलत हों। कोई मेरी बात ठीक होनी चाहिए, ऐसा सवाल नहीं है। वह पुराने जो व्यक्तिवादी लोग थे, उनका दावा था यह, कि हम जो कहते हैं वह ठीक है। वह मैं नहीं कहता। मैं कहता हूं, समाज सोचे। मैंने कहा, आप सोचें। सोचने से ठीक निकलेगा, मेरे कहने से ठीक नहीं होता। न आपके कहने से ठीक होता है।

हम सब एक 'डायलॉग' में जुड़ जायें। हम सोचें, विचारें। समाज सोचे तो धीरे-धीरे मंथन होगा और ठीक निकलेगा। ठीक निकल सकता है। आशा खोने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन दिल्ली की तरफ देखो, तो बहुत निराशा होती है। दिल्ली की तरफ देखकर एकदम निराशा होगी। दिल्ली की तरफ देखें ही मत। यह बड़ा देश है, दिल्ली तो कुछ भी नहीं है। बड़े देश की तरफ देखें, इसके एक-एक आदमी को सोचने-विचारने के लिए तैयार करें। हवा पैदा करें, तो शायद एक दिन आ सकता है, कि इस तरह की बेवकूफियां जो चलती हैं रोज, इनसे छुटकारा हो जाये। छुटकारा न हुआ तो देश का बहुत नुकसान पीछे अतीत में हुआ है, आगे भी होगा।

हम विकसित मुल्कों से कम से कम तीन सौ वर्ष पीछे हैं। अमरीका जहां है, वहां से हम तीन सौ वर्ष पीछे हैं; ज्यादा हो सकते हैं। अगर हमें हमारे साधन पर छोड़ दिया जाये तो हम तीन सौ साल बाद भी चांद पर नहीं पहुंच सकते। बहुत पीछे हैं, और उनकी गति रोज बढ़ती चली जा रही है। मैं एक आंकड़ा पढ़ रहा था—कि जीसस से मरने के अठारह सौ वर्ष तक मनुष्य का जितना विकास हुआ अठारह सौ वर्षों में उतना पिछले डेढ़ सौ वर्षों में हुआ है, और पिछले डेढ़ सौ वर्षों में जितना विकास हुआ, उतना पिछले पन्द्रह वर्षों में हुआ है, और पिछले पन्द्रह वर्षों में जितना विकास हुआ, वह आने वाले डेढ़ वर्ष में होगा।

लेकिन हम कहां होंगे ? हम अपनी बैलगाड़ी लिए अपना चर्खा चलाते रहेंगे। हमारी मर्जी ! कोई हमें रोक नहीं सकता, धक्का नहीं दे सकता। लेकिन दुनिया आगे चली गयी है, आदमी बहुत आगे चला गया है, हम बहुत पीछे रह गये हैं। हमारे झगड़े भी बहुत टुच्चे हैं, ओछे हैं, छोटे हैं, बहुत छोटे हैं। झगड़े भी बड़े हों तो भी दुख मालूम पड़ता है। झगड़े भी बड़े हों, तो मुल्क ऊपर उठता है। झगड़े ही बड़े छोटे हैं। कोई बहुत बड़े झगड़े नहीं हैं।

यह सोचने की आपसे प्रार्थना की। मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत आनन्दित हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

●

रोटरी क्लब, बड़ौदा, दिनांक १५ अगस्त १९६९

भारत किस ओर

२१—भारत किस ओर

मेरे प्रिय आत्मन्,

भारत किस ओर, यह सवाल भारत की जिन्दगी में पहली बार उठा है। पांच हजार साल के इतिहास में यह सवाल कभी उठा नहीं था। क्योंकि भारत किसी ओर जाने की हालत में नहीं है। जहां है, वहीं ठहरने की हालत में खड़ा है। पिछला पूरा हमारा अतीत का इतिहास, ठहराव का, खड़े होने का इतिहास, ठहर जाने का इतिहास, उसमें कोई गति नहीं है। 'मूवमेंट' नहीं है। हम कभी भी किसी तरफ भी नहीं गये हैं। एविंगटन ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, कि मनुष्य की भाषा में बहुत से शब्द झूठे हैं। उन झूठे शब्दों में एक शब्द उसने गिनाया है 'अवेट', ठहराव। मर गया एविंगटन। और मेरा मन होता है, किसी ने उसको कहा कि आओ भारत, और देखो! व्यर्थ ही एक असली शब्द देखोगे, भारत रुका है। एविंगटन ने इतिहास में कहा है, कि—ठहरते हुए परिवर्तन के नियम हैं, कुछ भी दिखायी नहीं पड़ा। लेकिन भारत ने इस नियम के विरुद्ध पांच हजार वर्षों तक लड़ाई की है, और ठहरने की कोशिश की है। हम ठहर गये हैं। जैसे कोई पानी रुक जाये किसी नदी का। गति बन्द हो जाये, सागर की यात्रा बन्द हो जाये, तो सिर्फ सड़ता है···।

ठीक ऐसे ही पांच-छः हजार वर्षों के इतिहास में भारत की जीवन-धारा के प्रति हुआ है। सब ठहरा हुआ है। सब रुका हुआ है। हम यही भूल गये

हैं, कि इतिहास जैसी भी कोई चीज है। अगर सब ठहरा हुआ हो तो इतिहास का कोई अर्थ नहीं होता है। इसलिए भारत ने कभी इतिहास नहीं लिखा। भारत के पास अपना कोई लिखा हुआ इतिहास नहीं है। कहानियां लिखी हैं, पुराण लिखे हैं लेकिन इतिहास नहीं लिखा। सोचता है, इतिहास की बुद्धि पैदा नहीं हुई; क्योंकि जब चीजें वहीं की वहीं, सदा वहीं की वहीं हैं, तो इतिहास क्या लिखना है? बदलाहट होती है, परिवर्तन होता है, तो इतिहास का बांध पैदा होता है।

लेकिन सौभाग्य से—मेरी दृष्टि से, और अब बहुत लोगों की दृष्टि से—दुर्भाग्य से—आज भारत उस जगह खड़ा हो गया है, कि या तो उसे कहीं जाना होगा या मरना होगा। इसके सिवाय तीसरा कोई विकल्प नहीं है। अगर हम कहीं नहीं जाते हैं, तो मनुष्य के विराट जगत से हमारा सम्बन्ध विच्छिन्न हो जायेगा। और इसलिए सोचना और विचार करना जरूरी है। किधर? किस तरफ? कहां जाने की बात है? कहां हम जा रहे हैं?

इसे समझना जरूरी है, कि भारत का पूरा मन कैसा है? इसे समझ लेना उचित है। क्योंकि भारत यानी क्या? नहरें, महासागर, नदियां, पहाड़? नहीं! भारत का यह मतलब नहीं है। भूगोल भारत नहीं है। भारत का आदमी! और आदमी से क्या मतलब है? उसके हाथ-पैर हैं? नहीं, आदमी से मतलब, उसका मन, बुद्धि! भारत का मन क्या है? भारत का मन गतिविरोधी है। भारत का मन रुक जाने और ठहर जाने का आग्रही है। अगर कोई धक्के दे दे मजबूरी में, तो हम स्थान छोड़ दें। लेकिन जगह छोड़ने का हमारा मन नहीं करता। जो जहां है, वहां ठहर जाने की हमारी हजारों साल की मन की चेष्टा रही है; इसलिए सब चीजें ठहर गयी हैं। बैलगाड़ी जैसी बनी थी, ठीक वैसी ही है। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ा है। कोई फर्क नहीं पड़ा।

शायद हम सोचते नहीं हैं। बैलगाड़ी में फर्क पड़े, तो बैलगाड़ी में फर्क पड़ते-पड़ते ही जेट प्लेन बनती है। वह बैलगाड़ी में ही हुआ निरन्तर-निरन्तर विकास है। आज बैलगाड़ी पर बैठ कर और जेट प्लेन पर बैठकर सोचना मुश्किल है, कि इन दोनों में क्या सम्बन्ध है। क्योंकि बीच की सीढ़ियां नहीं होती हैं; लेकिन वहीं दिक्कत होती है। हम बैलगाड़ी पर ही खड़े हैं। वहां से हम नहीं बदलते हैं; बल्कि हम उसमें गौरव अनुभव करते हैं।

न बदलना गौरवपूर्ण है हमारे मन में! और हम निरन्तर यह कहते हैं, कि मिस्र कहां है अब? यूनान कहां है? सीरिया कहां है, बेबीलोन कहां है। सारी संस्कृतियां दुनिया की पैदा हुई और मर गयीं। चीनी सबसे पुरानी संस्कृति है, खो गयी। एक हम हैं, जिनकी पुरानी संस्कृति अभी भी जिन्दा है। हम इसमें भी गौरव अनुभव करते हैं। जबकि सच्चाई यह है, कि जैसे एक व्यक्ति पैदा होता है,

जवान होता है, बूढ़ा होता है और मरता है। यही नैसर्गिक व्यवस्था है। ऐसे ही संस्कृति भी पैदा होती है, जवान होती है, बूढ़ी होती है और मरती है। मरनी चाहिए ही! जन्मने के साथ ही अनिवार्य प्रक्रिया है।

अगर कोई संस्कृति मरने से इन्कार कर दे, तो नये जीवन के अंकुर पैदा होने बन्द हो जाते हैं। नया जीवन, उसका आगमन, उसके सब द्वार बन्द हो जाते हैं। भारत की संस्कृति ने मरने से इन्कार कर दिया है। कोई आदमी तो मरने से इन्कार नहीं कर सकता, मर जायेगा, मर ही जायेगा, बदल जायेगा। लेकिन कोई समाज, कोई संस्कृति किसी व्यक्ति को बदलते चले जाते हों, लेकिन अगर मन पर शक कर ले, तो ठहर सकता है। ठहराव के कुछ परिणाम भी हमने भोगे हैं। हम सदा से गरीब हैं, और गरीब ही बने रहे।

ठहरा हुआ समाज समृद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि ठहरा हुआ समाज किसी भी आयाम में, किसी भी दिशा में सम्पत्ति को, ज्ञान को, कोई प्रयास नहीं करता। ठहरा हुआ समाज भी उसके पास है, उसमें ही तृप्त होता है। तृप्त न हो, तो ठहर नहीं सकता है। ठहरने का सूत्र 'कन्टेंटमेंट'। ठहर जाओ। उसकी आधार-शिला है, संतोष कर लो। संतुष्ट ठहर जाता है, असंतुष्ट गति करता है।

अगर भारत को आगे गति करनी है तो उसको अपने पुराने संतोष के मानसिक ढांचे को तोड़ देना पड़ेगा। एक असंतोष चाहिए ही। जो है, उससे तृप्त होना गलत है। क्योंकि जो हो सकता है, अगर हम तृप्त हो सकते हैं, वह कभी नहीं होगा। जो है उसके अतिरिक्त होना जरूरी है ताकि जो हो सके, उस तरफ गति होती रहे, हम आगे बढ़ते रहें। भारत तृप्त है। गरीबी है, उससे तृप्त है। गुलामी आये, उससे तृप्त है।

एक हजार साल तक हम गुलाम न रहते; अगर हमारी तृप्ति की यह गहरी आस्था न होती। हम गुलामी से भी तृप्त हो गये। एक हजार साल इतनी बड़ी कौम गुलाम रहे, यह हैरान करने वाला है। जब तक कि उस कौम का पूरा मानसिक ढांचा गुलामी का न हो। एक हजार साल तक किसी को गुलाम रखना बहुत मुश्किल है, जब तक कि वह कौम किसी दूसरे ढंग से गुलामी के लिए राजी न हो। हम राजी हैं। राजी होने का कारण यह था कि हम हर चीज को स्वीकार करते हैं। वह जैसी है, उसके साथ वैसे ही होने को राजी हैं।

दो रास्ते हैं समाज के—या तो जिन्दगी गलत हो तो जिन्दगी को बदलो। और अगर जिन्दगी गलत हो, तो एक रास्ता यह है कि अपने को गलत जिन्दगी के साथ राजी कर लो। या तो दुनिया को बदलो या बाहर की दुनिया के साथ राजी हो जाओ।

भारत ने दूसरा रास्ता पकड़ा हुआ है। जैसी भी स्थिति हो उसके साथ मनुष्य को ही राजी हो जाना है, बदलना नहीं है बाहर की स्थिति को। गरीबी

हो, तो गरीबी में राजी हो जाना है, बीमारी हो, बीमारी में राजी हो जाना है। और राजीपन के लिए हमने बड़ी 'फिलॉसफीज' खोजी हैं, बड़े दर्शन खोजे हैं। वह हमें समझाते हैं, जो कर रहा है, वह भगवान् कर रहा है। तो फिर हम कुछ कर नहीं सकते। गरीबी है, तो भगवान् कर रहा है। बीमारी है, तो भगवान् कर रहा है। हमने रास्ते खोजे हैं कि हर आदमी के भाग्य में जो लिखा है, वही हो रहा है। कुछ अन्यथा हो नहीं सकता है। हम एक-एक आदमी को समझाते रहे हैं कि तुम्हारे पिछले जन्मों के फल तुम भोग रहे हो। अब कुछ हो नहीं सकता, फल भोगने के बारे में। गरीब आदमी अपने पिछले जन्मों का फल भोग रहा है। अमीर आदमी भी पिछले जन्मों का फल भोग रहा है। इसलिए दोनों के बीच कोई झगड़ा नहीं है, कोई संघर्ष नहीं है। दोनों ही अपने पिछले जन्मों से बंधे हैं। और दोनों का आज की जिन्दगी से कोई सम्बन्ध नहीं है, आज की जिन्दगी से कोई मतलब नहीं है, गरीबी-अमीरी का। गुलामी भी हम भोग रहे हैं। वह भी हमारे भाग्य, हमारे कर्मों का फल है।

हमने एक व्याख्या विकसित की, कि जिसमें जिन्दगी जैसी है, हम उसके साथ राजी हो सकते हैं। उस व्याख्या ने भारत को ठहरा दिया, खड़ा कर दिया। वह ठहरा ही रहा, लेकिन दुनिया की हवाएं आयीं, हमारी सब दीवारें टूट गयीं, हमारे सब घेराबन्दी, मोर्चे टूट गये, हमारे सब ज्ञान की व्याख्याएं टूट गयीं। चारों तरफ से दुनिया आयी और हमको बहुत हिला दिया और बहुत तकलीफ में डाल दिया। हम फिर भी आंखें बन्द करने के आदी हैं। अगर दुनिया हमें हिलाती भी हो, तो हम आंख बन्द करके अपनी पुरानी सुरक्षा के घर में पहुंच जाते हैं।

अभी पुरी के शंकराचार्य ने कहा कि चांद पर आदमी पहुंच ही नहीं सकता है, हमारी किताब में लिखा है। तो यह आर्मस्ट्रांग और उसके साथी जो पहुंचे, यह सब झूठी अफवाह है। यह सब चल नहीं सकती। यह आंख बन्द करने की तरकीबें हैं। तो हम आंख बन्द कर लेंगे, सोचेंगे नहीं? और शंकराचार्य ने कहा अगर कोई पहुंच भी गया हो, तो फिर पक्का है कि वह चांद नहीं है, जो हमारे शास्त्रों में लिखा है। वह चांद-सूरज से भी आगे है। ये आंखें बन्द हैं। जिन्दगी के तथ्य अगर उघड़ जायें तो हम फिर आंख बन्द करने की कोशिश करते हैं, कि आंख बन्द कर लो और इन्कार कर दो, कि यह चांद तो चांद ही नहीं है। हम तो दूसरे ही चांद की बात करते हैं। उस चांद पर आदमी का पैर पड़ ही कैसे सकता है?

हम पिछले दो-तीन सौ वर्षों से जब से विश्व सम्पर्क में आये हैं तब से हम इसी तरह निरन्तर इन्कार करने की कोशिश कर रहे हैं, और अपनी आंख बन्द करने की कोशिश कर रहे हैं बहुत। यह हो गयी बात! और इस आंख बन्द

करने में हमने बहुत सी तरकीबें उपयोग की हैं। जैसे अगर हम पिछले तीन सौ वर्षों का भारत का विचार देखें तो अतीत का गुणगान है एक ही रास्ता था आशा का, वह यह, कि हम अतीत का गुणगान करें। तो पिछले दो सौ वर्षों में हमारे अच्छे से अच्छे आदमी से लेकर, बुरे से बुरे आदमी, अतीत के गुणगान में लगे हुए हैं। वे सिर्फ यह कह रहे हैं, कि कभी हम बहुत अद्भुत थे। सब ज्ञान हमारे पास था। अगर लोगों की किताबें हम पढ़ें, तो घबराने वाली होंगी। वे कहते हैं, एटम बम हमारे वेद में लिखा हुआ है। उसी से निकला हुआ है। यहां तक वे कहते हैं कि जर्मनी हमारे ग्रन्थ चले गये, उन्हीं से ही खोज-बीन करके सारे विज्ञान की बात निकली है। हमारे ग्रन्थों में सब है। कभी हम सब जानते थे, सब हमने जान लिया था। हम पीछे की तरफ लौट गये।

ध्यान रहे मनोविज्ञान का एक छोटा सा नियम है और कीमती है भारतीय संस्कृति को समझाने के लिए। फ्रायड ने इसे 'रिडेक्शन' का 'रिग्रेशन' का नियम कहा है। अगर कोई आदमी बहुत मुसीबत में पड़ जाये, एक जवान आदमी अगर बहुत मुसीबत में पड़ जाये, तो फौरन उसका चित्त बचपन में वापस लौट जायेगा। वह रोने लगेगा बच्चों की तरह, और हाथ-पैर पटकने लगेगा और वह बच्चा ही हो जायेगा। वह भूल जायेगा कि वह जवान आदमी है; क्योंकि बचपन में सब सुरक्षा थी, सब खतरा था, कोई चिन्ता न थी। फिर सोचता, वापस बचपन में लौट जायेगा।

यहां तक कि घटनाएं हैं, कि बहुत चिन्ता के दबाव में कई बार आदमी इतने बचपन में उतर जाता है कि चालीस साल के आदमी को भी चम्मच से दूध पिलाना पड़े, तो ही वह खाना खा सकता है; नहीं तो नहीं खा सकता है। वह बिल्कुल बच्चा हो गया है। जब आप भी, हम भी, मुसीबत में होते हैं तो चाहते हैं, कि किसी के गोद में सिर रख लें। वह बचपन में लौट जाने की इच्छा है। कोई सिर पर हाथ फेरे, कोई समझाये—वह बचपन में लौट जाने की इच्छा है।

चिन्ता घबरा देती है, पीछे लौटने को मजबूर कर देती है। भारत चिन्तित हो गया है पूरी तरह से! एक हजार साल की गुलामी, और हजारों साल की बीमारी और दरिद्रता, चिन्ता, और आगे कोई आशा नहीं। क्यों? दरिद्रता और बढ़ेगी, दीनता और बढ़ेगी। वह घबरा गया है, तो पीछे का गुण-गान करने लगा है। वह कहने लगा—अतीत में हमारा 'गोल्डन-एज' था। पीछे हमारा स्वर्ण-युग था, राम-राज्य था। वहां हम बिल्कुल सुख से थे। सब शांति थी। सब आनन्द था।

ये सब बातें सरासर व्यर्थ हैं। पीछे न सुख था, न शांति थी। पीछे और भी दुख थे, और भी अशांतियां थीं; लेकिन उनका हमको पता नहीं चलता।

और न पीछे आदमी अच्छा था, जैसा हमको ख्याल में होता है, कि पीछे सारे लोग अच्छे लोग थे। सतयुग था। यह सब हमारी आज की स्थिति से पीछे भाग जाने की प्रवृत्ति के सिवाय और कुछ भी नहीं है। पीछे अच्छा आदमी क्या? कौन सा सुख था? कौन सी शांति थी? गरीबी इतनी है, कि इससे ज्यादा थी? गरीबी, पीछे जितना हम लौटते हैं, बढ़ती चली जाती है; लेकिन गरीब आदमी का हमने कोई इतिहास नहीं लिखा। हमने कुछ राजाओं की बड़े लोगों की कुछ कहानियां याद कर रखी हैं, उन्हीं को हम दोहराये चले जाते हैं। राम, सुख में होंगे। लेकिन राम के पास विराट मनुष्य का समूह था, उसकी हमें क्या खबर है? राम अच्छे रहे हैं। लेकिन राम के आस-पास जो विराट समूह था, वह अच्छा है, इसकी हमें क्या खबर है? खबर तो नहीं है; बल्कि कुछ उल्टी ही खबर मालूम पड़ती है।

ऐसा लगता है कि बाद में सिर्फ महापुरुष याद रह जाते हैं और सामान्य जन भूल जाते हैं। अभी, अभी हम सब जिन्दा हैं, हम सब आज नहीं कल, 'नहीं' हो जायेंगे। हजार-दो हजार साल बाद इस युग में शायद गांधी का नाम याद रह जायेगा, और तो सब नाम भूल जायेंगे। दो हजार साल बाद लोग सोचेंगे। गांधी का युग 'गांधी-युग' कितना अद्भुत रहा होगा। गांधी कितना अद्भुत आदमी है—कितना अद्भुत युग रहा हो, लेकिन हमारा गांधी से क्या सम्बन्ध है? दो हजार साल बाद गांधी की तस्वीर के आधार पर हमारी धारणा बनेगी और दो हजार साल में गांधी की तस्वीर को बनाते चले जायेंगे, आदमी से भगवान् बनाते चले जायेंगे। वह तस्वीर बिल्कुल झूठी हो जायेगी, बहुत बड़ी हो जायेगी। और तस्वीर के आधार पर हम सोचेंगे दो हजार साल पीछे के आदमी के बाबत, कि क्या सुनहरा स्वर्ण युग रहा होगा?

लेकिन गांधी के जमाने में कौन-सा स्वर्ण युग था? यह तो हो भी सकता है कि हमारा गोडसे से कुछ मेल-जोल हो, गांधी से क्या मेल-जोल है? गांधी के शिष्यों का तो गोड्से से मेल-जोल ज्यादा मालूम पड़ता है। गांधी से कोई मेल-जोल नहीं मालूम पड़ता। लेकिन दो हजार साल बाद गांधी हमारे प्रतीक की तरह बचेंगे, 'रिप्रेजेंटेटिव' रहेंगे। हमारे वह, प्रतिनिधि हो जायेंगे। और उनके आधार पर पूरे युग का नाम होगा—'गांधी-युग'। वह सब नाम झूठा हो जायेगा।

आज राम हमें याद हैं, आम आदमी का हमें कुछ भी पता नहीं है। आज हमें बुद्ध याद हैं। महावीर याद हैं। आम आदमी का कुछ भी पता नहीं है। लेकिन लगता ऐसा है, कि अगर दुनिया बहुत अच्छी होती, तो बुद्ध और महावीर की याद नहीं रह सकती थी। यह ध्यान रहे, एक छोटे प्राइमरी स्कूल का शिक्षक भी जानता है, कि अगर काले तख्त पर सफेद खड़िया से लिखो, तो ही दिखायी पड़ता है। दीवार पर लिखें सफेद खड़िया से, तो दिखायी नहीं पड़ता है। लिख तो

जायेगा, दिखायी नहीं पड़ेगा। अगर महावीर और बुद्ध का जमाना बहुत अच्छे लोगों का जमाना होता तो सफेद दीवार पर महावीर और बुद्ध कभी के सो गये होते, उनका पता नहीं चलता।

दीवार काली थी। उस काली दीवार पर एक महावीर या बुद्ध या राम या कृष्ण जैसा आदमी हो जाता है सफेद रेखायें लिए हुए, वह हजारों वर्ष तक दिखायी पड़ रहा है। दीवार बहुत काली रही होगी। चारों तरफ का समाज बहुत काला रहा होगा। जिस समाज ने बुद्ध को भगवान् कहा होगा, जिस समाज ने कृष्ण को भगवान् कहा होगा, जिस समाज ने राम को कहा होगा, सर्वोत्तम तुम्हीं हो, वह समाज अन्धेरी, काले 'ब्लैक बोर्ड' की तरह रहा होगा। तभी ये सफेद रेखायें उभर आई हैं। अगर समाज भी अच्छा रहा हो, तो अच्छा आदमी खो जायेगा। होगा तो, लेकिन उसका कोई पता नहीं चलेगा। हमें पता है, हमारे सारे महापुरुषों का, दस-पांच महापुरुषों को हम गिनती कर सकते हैं। और पीछे जो समाज है, उस समाज का हमें कोई पता नहीं है, लेकिन अन्दाज हम लगा सकते हैं।

दुनिया की पुरानी से पुरानी किताब, भारत की या भारत के बाहर—कोई किताब यह नहीं कहती, कि आज का जमाना अच्छा है। सारी किताबें यह कहती हैं, पहले के जमाने अच्छे थे। और एक भी किताब ऐसी नहीं है पहले के जमाने की, क्योंकि वह किताब भी मिल जाये, तो वह भी कहती है, पहले के जमाने अच्छे थे। चीन में कोई छः हजार वर्ष पुरानी एक किताब है, जो यह कहती है—अगर उसकी भूमिका पढ़ें तो ऐसा लगता है, कि आज के सुबह के अखबार का 'एडिटोरियल' है। उसकी भूमिका में लिखा हुआ है, आजकल के लोग एकदम पापी हो गये हैं। बेटे, बाप की नहीं सुनते। शिष्य, गुरु की नहीं सुनते। छः हजार साल पुरानी किताब है। कोई किसी की नहीं मानता। पत्नियों की, पतियों में कोई आस्था नहीं रह गयी है। सब तरफ चोरी है, बेईमानी है, भ्रष्टाचार है।

क्या हो गया है जगत् का? जगत् कहां जा रहा है? पहले सब अच्छा था, अब सब खराब हो गया है। छः हजार साल पहले भी अगर यही लिखना पड़ता है, तो वह पहले कब था जब सब अच्छा था? दस हजार साल पुरानी ईंट मिली है बेबीलोन में, किसी मन्दिर के द्वार पर लगी ईंट होगी, जिस पर लिखा हुआ है, सत्य बोलना धर्म है। लोग जरूर असत्य बोलते रहे होंगे। नहीं तो, दस हजार साल पहले मन्दिर के सामने एक पत्थर लगाने की जरूरत नहीं पड़ती, अगर लोग सत्य बोल रहे हों।

जहां लोग असत्य बोलते हैं, वहीं सत्य की शिक्षा देनी पड़ती है। जहां लोग अधार्मिक होते हैं, वहीं धर्म की चर्चा चलती है। धार्मिक लोगों में क्यों चलेगी? बीमार आदमी अस्पताल जाता है, स्वस्थ आदमी तो नहीं जाता है। बुद्ध सुबह उठते

हैं और रात सोते तक लोगों को समझा रहे हैं—झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, संयम ग्रहण करो, व्रत रखो तो ठीक है। सुबह से सांझ तक बुद्ध का दिमाग खराब मालूम होता है। लोग अगर सच बोलते हों, तो बुद्ध किसको समझा रहे हैं? महावीर किसको समझा रहे हैं कि हिंसा मत करो, अगर लोग अहिंसक थे?

निश्चित ही जो शिक्षाएं हैं, वह बताती हैं, कि लोग हिंसक रहे होंगे, इसलिए अहिंसा की शिक्षा देनी पड़ती है। लोग झूठ बोलते रहे होंगे, इसलिए सत्य बोलने को समझाना पड़ता है। लोग बुरे रहे होंगे, इसलिए अच्छे आदमी की—अच्छे आदमी के निर्माण का निरन्तर श्रम करना पड़ता है।

नहीं! अतीत का हमने एक भ्रम पाला है। एक हजार साल की गुलामी ने हमारे मन को ऐसा दलित कर दिया है। ऐसा अपमानित हमने अनुभव किया है, कि हमारे पास कुछ भी नहीं है, और आगे अगर भविष्य में हमें आशा होती, तो हम भविष्य की तरफ देखते। भविष्य में कोई आशा न देखी, क्योंकि हम कोई करने वाले लोग नहीं। भविष्य के प्रति केवल वे आशावान होते हैं, जो पैदा करते हैं, सृजन करते हैं, श्रम करते हैं। हम तो बैठकर जो होता है, उसे झेलने वाले लोग रहे हैं। तो भविष्य की तरफ तो हम देख नहीं सकते थे। इसलिए एक हजार साल की गुलामी में हमें मजबूरी में पीछे की तरफ देखना पड़ा और वर्तमान देखने योग्य नहीं था। छाती पर अंग्रेज के जूते थे या छाती पर किसी और के जूते थे। जूते बदलते चले गये, पैर बदलते चले गये, छाती हमारी वही रही। एक हजार साल तक, किसी न किसी का जूता हमारी छाती पर था। इस तरफ आज देखना कठिन है, क्योंकि सिवाय जूतों के तलुओं के और कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता है।

तो या तो आगे देखो—आगे वह देख सकता है, जो सृजन की चिन्ता रखता हो। या तो पीछे देखो। बच्चे सदा आगे देखते हैं, बूढ़े सदा पीछे देखते हैं। अगर किसी बूढ़े को आराम कुर्सी पर बैठे देखें, तो यह मत सोचना की वह आगे की सोच रहा है। वह हमेशा पीछे की सोच रहा है, जब वह जवान था, जब वह बच्चा था। आगे तो मौत है, आगे तो कुछ है ही नहीं। और अगर कोई बूढ़ा व्यक्ति भी आगे की तरफ देखते मिल जाये, तो फिर कहना कि वह बूढ़ा नहीं है, वह जवान है।

बच्चे पीछे की तरफ नहीं देखते—पीछे क्या देखना है? पीछे कुछ है ही नहीं देखने का। सब आगे है। बच्चे भविष्य की तरफ देखते हैं। बूढ़े अतीत की तरफ देखते हैं। नये समाज भविष्य की तरफ देखते हैं। पुराने समाज अतीत की तरफ देखते हैं। समाज भी बच्चे और बूढ़े होते हैं। एक हजार साल में हम वर्तमान की तरफ देख नहीं सके; क्योंकि बहुत दुखद था। देखने योग्य नहीं था। भविष्य अन्धकारपूर्ण था, कुछ आशा न थी। अतीत ही भर एक उपाय था। एक विकल्प था, कि हम पीछे की तरफ देखें। हमने 'पीछे' के खूब गीत गाये। हमने पीछे की खूब कहानियां—हमने पीछे की 'फिलॉसफी' के, बहुत बड़े-बड़े चित्र बनाये, और उन चित्रों

ने हमें बड़ी दिक्कत में डाल दिया है।

दिक्कत में यह डाल दिया है, कि अब, जब हम उस जगह खड़े हैं, जहां हमें तय करना है कि भारत कहां जाये, तो उन एक हजार वर्ष की गुलामी के दमन के भीतर अतीत की बनायी गयी झूठी स्मृति हमारे मन को कहती है कि पीछे लौट चलो। वही अच्छा था। इसलिए तो हम राम-राज्य की बातें करते हैं कि हम पीछे लौट चलें। राम का राज्य ही अच्छा था। पीछे लौट चलें। राम-राज्य का सवाल नहीं है, वह तो प्रतीक है। पीछे लौटने का हमारा मन है, पीछे सब अच्छा था। बड़े शहर मिटाओ, छोटे-छोटे गांव अच्छे थे। हालांकि जो आदमी यह कहता हुआ मिलेगा, वह रहेगा दिल्ली में, रहेगा अहमदाबाद में, रहेगा बड़ौदा में। वह छोटे गांव में नहीं रहता है। पर वह कहता है बड़े गांव नहीं चाहिए, छोटे-छोटे गांव बड़े सुन्दर थे। उससे कहो, रहो छोटे गांव में।

छोटे गांव गन्दगी के घर हैं। छोटे गांव बीमारी के घर हैं। और छोटे गांव एक बहुत भीतरी गुलामी से पीड़ित हैं। छोटे गांवों में किसी व्यक्ति का कोई व्यक्तित्व नहीं था। किसी व्यक्ति की कोई हैसियत नहीं थी। लेकिन छोटे गांव का हम एक 'पोयट्रिक', एक काव्यात्मक रूप खींच लेते हैं और उस 'पोयट्री' में छोटे गांव की कीचड़ और गन्दगी और बदबू, और बीमारी और गुलामी सब छिप जाती है। सिर्फ हरे वृक्ष और चांद—सब वही, वही रह जाता है कविता में। असली दौड़—असली दौड़ बिल्कुल मिट जाती है।

हम पुराने दिनों की जितनी भी तस्वीरें खींचे हुए हैं, सब कविता से भरी हुई हैं, तथ्यों से नहीं। तथ्य बड़े खतरनाक मालूम पड़ते हैं। तथ्य बहुत ही पीड़ादायी मालूम पड़ते हैं। जब तथ्य बहुत पीड़ादायी होते हैं, तो समाज कविताओं में जीने लगता है। हमने बहुत सी कविताएं कर ली हैं अतीत की। अब जब कि हमें, चुनाव खड़ा हो गया है, तो कहां जायें? कहां है रास्ता? कौन-सी दिशा होगी भारत के लिए? तो हमारा मन कहता है, आगे तो क्या हो सकता है? एक हजार साल की गुलामी ने बताया, कि आगे कुछ भी नहीं है। पीछे ही कुछ हो सकता है। हम पीछे लौट चलें। हम पुरानी व्यवस्था ले आयें। हम बड़े उद्योग न बनायें। बड़ी 'इण्डस्ट्री' न लायें, 'टेक्नोलॉजी' से बचें। हम तो पीछे लौटें। विज्ञान से बचें, हम तो अपने घरों में बैठकर गीता रामायण पढ़ते थे, या बरसात में आल्हा-ऊदल पढ़ते थे मंच पर। पीछे लौटें। आगे जाने में खतरा मालूम पड़ता है।

खतरा क्या है आगे जाने में? खतरा एक ही है कि हमारे पास बूढ़ा चित्त है, जो आगे जाने की हिम्मत नहीं जुटा सकता है। वह कहता है, अतीत ही अच्छा था और जो हो चुका था, वही अच्छा था, उसी में बैठ जायें। लेकिन बूढ़े चित्त के समाज को, अगर पीछे जाने की धुन सवार हो जाये, तो दो परिणाम होते हैं—पीछे जाया नहीं जा सकता—पहली बात। असम्भव है यह। पीछे जाना असम्भव है।

लेकिन जाने की कोशिश में हम जो लोग जा सकते थे, वह भी असम्भव हो जाता है। पीछे जाने की कोशिश तो असम्भव है। यह सम्भव नहीं है कि हम मनुष्य को पीछे ले जायें। यह उतना ही असम्भव है, जैसे किसी व्यक्ति को हम वापस गर्भ में पहुंचा देना चाहें, उतना ही असम्भव है। तो उसे छोटा-छोटा करके, उसे अंग बना लें, और मां के गर्भ में—मां के गर्भ में बड़ी व्यवस्था है, 'सिक्योरिटी' की। उतनी 'सिक्योरिटी' फिर जिन्दगी में कभी भी नहीं हो सकती। बहुत सुरक्षा थी मां के पेट में। न भोजन की चिन्ता है, न नौकरी की, न 'इम्प्लायमेंट' की, न कुछ करना पड़ता है। जीना है सिर्फ। और इतनी सुखद है मां के पेट की व्यवस्था कि हमने बड़ी से बड़ी कीमती कोच बनायी है, गद्दे, तकिये बनाये हैं, लेकिन मां के पेट में जो आराम बच्चे को उपलब्ध होता है, अभी तक हम ऐसी व्यवस्था नहीं कर पाये हैं। अब शायद हम कर पायें। अभी जो आन्तरिक्ष में यात्री जा रहे हैं, उनके लिए जो हमने 'केप्सूल' बनाये हैं, वे शायद मां के गर्भ से मिलते-जुलते हैं। उतना आराम देने की उसमें कोशिश की है।

बच्चा इतने आराम में जिया है मां के गर्भ में, कि कई बार मन हो सकता है, कि वापस लौट जायें। लेकिन क्या वापस लौटा जा सकता है? जिन्दगी पीछे नहीं जाती, जिन्दगी सदा आगे जाती है। गंगा कितनी ही कोशिश करे कि गंगोत्री में वापस चली जाऊं—वही छोटा-सा झरना। वही ऊंचा पहाड़! वही चांद का निकलना! वही सूरज! फिर पीछे वापस लौट जाऊं। लेकिन गंगा पीछे नहीं लौटती। सोचती रहेगी कि पीछे लौटूं, जाती आगे ही है।

जाने का श्रम आगे है। समय की कोई रेखा पीछे नहीं छूटती है। समय सदा आगे है। समय का मतलब है भविष्य। समय का मतलब अतीत नहीं है। समय के साथ एक खूबी है कि जहां से हम गुजर आये, वह मिट गया है, अब कहीं भी नहीं है। न वे रास्ते हैं। न वे ब्रिज हैं। वह पीछे जो था वह गया, खो गया! अब सब आगे है। लेकिन हम यह कह सकते हैं, कि कोई कौम पीछे की तरफ सोचती रहेगी. कि कैसे पीछे जायें? जितनी देर हम यह सोचेंगे, कि कैसे पीछे जायें, और पीछे की असफल कोशिश करेंगे—उतनी देर में जितना आगे जा सकते थे, उसमें अवरोध पड़ेगा, और कुछ भी नहीं होगा।

भारत के मन में पीछे जाने का बड़ा अवरोध है, भारी मोह है पीछे जाने का। एकदम पीछे लौट जाने का। कितनी खतरनाक बात है कि अगर यह हमारे मन से नहीं मिट जाती, तो हम पीछे तो जायेंगे ही नहीं, क्योंकि प्रकृति में उपाय नहीं है पीछे जाने का; लेकिन आगे जाने में हमारे कदम 'हाल्टिंग' हो जाते हैं, बहुत मुश्किल से उठते हैं, मजबूरी में उठते हैं, और आगे जाने में जो आनन्द अनुभव होना चाहिए, उसकी जगह विषाद अनुभव होता है, कि चलना है हमें पीछे और जा रहे हैं आगे। विषाद अनुभव होता है, कुछ मालूम होता है, चिन्ता मालूम

होती है और एक 'कंडमनेशन', एक निन्दा निरन्तर चलती रहती है, कि यह सब क्या हो रहा है? यह सब बुरा हो रहा है! यह सब ठीक नहीं हो रहा है! और धक्के मिलते ही जाना पड़ता है आगे।

जो आनन्द से आगे की तरफ जाते हैं, उनकी गति तीव्र हो जाती है। जो प्रेम से आगे की तरफ जाते हैं, उनकी गति नृत्य बन जाती है। जब दुख से, जबर्दस्ती, परेशानी में आगे जाते हैं, जाना पड़ता है जिन्हें आगे, उनके पैर बोझिल हो जाते हैं। पत्थर हो जाते हैं और हर एक नया कदम उन्हें और दुख से भर जाता है। और ध्यान रहे कि आदमी का जो पुराना मन है, वह नये के हमेशा विरोध में है। और इस भारत में तो पुराना ही मन है। जवान से जवान आदमी के पास भी नया मन मुश्किल से मिलता है। पुराना ही मन मिलता है। 'ओल्ड माइंड', है, वह भीतर बैठा हुआ है।

एक जवान आदमी है, एम० एस-सी में पढ़ता है। आशा करनी चाहिए कि विज्ञान का विद्यार्थी है, तो वह तर्क बुद्धि का प्रयोग करता होगा! करता है; लेकिन परीक्षा के वक्त हनुमान जी के मन्दिर के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करता है। वह जो 'ओल्ड माइंड' है भीतर, वह लौट आता है घबराहट के क्षण में। जब डर लगता है कि परीक्षा सामने आयी है, कहीं मैं असफल न हो जाऊं, तो सोचता है क्या हर्जा है, हनुमान को भी मना लो पता नहीं, हों। एक नारियल फोड़ने में भी क्या हर्जा है? लेकिन हमें पता नहीं कि हनुमान के सामने नारियल फोड़ना रिश्वत का ही एक रूप है, और जो समाज हजारों साल से भगवान् को रिश्वत देता रहा है, वह अगर मिनिस्टरों को देने लगे तो कोई हैरानी की बात नहीं होगी।

हमारा मन नया नहीं है, यद्यपि कि सारे जगत् से नयी हवाएं आयीं। बहुत मुश्किल से हमने आने दीं। हम द्वार दरवाजे बन्द किये रहते हैं, अन्दर न आ जायें वे हवाएं। हम तो अपने मन्दिर में सब तरफ से बन्द करके, धुआं करके, दीप जला कर, घण्टे का नाद करके, हम भीतर बैठे रहना चाहते हैं, बाहर का कुछ सुनायी भी न पड़े। मन्दिर में ही अपने बन्द हैं, बन्द थे हजारों वर्ष तक; लेकिन बन्द नहीं रह सके। जिन्दगी ने चारों तरफ से आकर हमारी दीवारें गिरा दीं, सूरज कई तरफ से झांकने लगा, आकाश दिखायी पड़ने लगा।

बहुत तरफ से हवाएं आयी हैं, वह आ गयी हैं। विज्ञान आया है, विचार आया है, तर्क आया है। सारा तर्क हममें प्रविष्ट हो गया है; लेकिन हमारे पास मन पुराना है। तो हम एक युवक को विज्ञान पढ़ा देते हैं, लेकिन फिर भी हम वैज्ञानिक नहीं कहे जाते हैं। ज्यादा से ज्यादा 'टेकनीशियन' बनकर, वह आदमी बन जाता है। वह जान लेता है। वह जान लेता है कि बिजली कैसे काम करती है? वह सब जान लेता है, लेकिन वह जान लेता है कि बिजली कैसे पैदा की जाये?

'टेकनीशियन' होकर रह जाता है। 'साइंटीफिक माइंड', एक वैज्ञानिक बुद्धि उसमें पैदा नहीं हो पाती। वह हो ही नहीं पाती, क्योंकि पीछे जो मन है।

मैं एक डाक्टर के घर ठहरा हुआ था कलकत्ते में। बड़े डाक्टर हैं। सांझ को मुझे लेकर निकलते हैं—ले जा रहे हैं सभा में, लड़की को छींक आ गयी, कहा, एक मिनट रुक जायें। मैंने उनसे कहा, तुम डाक्टर हो। कहा, हां, मैं डाक्टर हूं। मैंने कहा—"तो फिर आगे बढ़ो, रुकना नहीं, क्योंकि डाक्टर को तो कम से कम जानना चाहिए कि छींक क्यों आती है? और तुम्हारी लड़की को छींक आये, इसमें मेरे रुकने का क्या सम्बन्ध है? तुम्हारी लड़की को छींक आ जाने से मेरे रुकने का क्या सम्बन्ध है?" डाक्टर मुश्किल में पड़ गये। कहा—"कि आप ठीक कहते हैं, छींक आने के तो कारण दूसरे हैं, फिर भी एक मिनट के रुक जाने में हर्ज क्या है?" मैंने उनसे कहा—"हर्ज बहुत ज्यादा है। एक मिनट रुकने का नहीं, मैं दिन भर रुक जाऊं। वह सवाल नहीं है। लेकिन यह जो 'माइंड' हमारा, जो कहता है रुक जाओ, हर्ज क्या है? यह पुराना मन बहुत हर्ज देने वाला है। यह मुल्क की सारी गति को रोक देगा। तुम्हारी लड़की की छींक पर मैं रुकता हूं अगर, तो यह पूरे मुल्क का मन रुकता है। कोई भी तुम्हारी लड़की की छींक पर रुकता है, तो रुकता है, और रुकने वाला मुल्क को हजार तरह की बाधाएं पहुंचाता है।" मैंने कहा, अगर मेरा वश चले तो तुमसे डाक्टरी का 'सर्टिफिकेट' वापस ले लूं। तुम्हारे पास जो मन है वह एक ओझा का है, गांव के बाहर जो भूत-प्रेत झाड़ता है—तुम ओझा बन जाओ, भूत-प्रेत झाड़ो। डाक्टर होने की तुम्हें जरूरत नहीं है, और तुम खतरनाक डाक्टर हो। यह तुम्हारी आस्था अवैज्ञानिक है और काम तुम वैज्ञानिक कर रहे हो। तुम्हारा चित्त विरोध में खड़ा हुआ है। और यह छोटे-छोटे लोगों की बात नहीं है, बड़े-बड़े लोगों के साथ भी यही है।

पिछले कुछ वर्ष पहले आपको पता होगा, आचार्य विनोबा भावे बीमार पड़ गये, उन्होंने दवा लेने से इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा—"दवा मैं नहीं लूंगा।" सारा मुल्क चिन्तित हुआ कि इतना अच्छा आदमी, साधारण से बुखार में मर जाये और बुखार तेज था, बुखार बढ़ता चला गया। मेरे एक मित्र के घर में वह मेहमान हुआ। उस मित्र ने मुझे कहा—"कि मैंने समझाया कि बाबा, आप मकान के भीतर सो जायें आंगन में मत सोयें, इतना तेज बुखार है। दवा आप लेते नहीं, खुला आकाश है, ओस भी पड़ती है। आप भीतर आ जायें।" विनोबा ने कहा—"तुम पक्का विश्वास दिलाते हो, कि भीतर कोई कभी नहीं मरता है! अगर भीतर कोई मर सकता है तो फिर क्या डरने की जरूरत है?" वह मित्र बेचारे चुप रह गये, अभी इसका क्या जवाब दें? भीतर भी आदमी मर तो जाता है। भीतर भी मर जाता है। दवाइयों का आग्रह किया गया। तो उन्होंने कहा—"कि क्या तुम कहते हो कि दवा लेने वाला नहीं मरता? तो फिर क्या फायदा

है दवा लेने से? सारे मुल्क से दबाव आया, मुल्क के सभी लोग चिन्तित हुए, हजारों लोग वहां पहुंच गये। दो पैसे की दवा से ठीक हो सकते थे। लाखों रुपये खर्च हो गये मुल्क के। सारे, सब लोग गये, राष्ट्रपति हैरान हुए, दिल्ली परेशान हुई, पटना परेशान हुआ, कलकत्ता परेशान हुआ, सब राजधानियां डांवाडोल हो गयीं, सारे लोग पहुंच गये। बड़े-बड़े डाक्टरों को लेकर पहुंचे। बंगाल के मुख्यमंत्री थे डाक्टर, उन्होंने जाकर कहा कि यह प्रार्थना करते हैं कि दो पैसे की दवा ले लें। उन्होंने कहा—विनोबा ने—"एक ही शर्त पर ले सकता हूं, कि दवा लेने से अगर मैं बच जाऊं, तो तुम यह नहीं कह सकोगे कि दवा के कारण बचा। बचा तो मैं भगवान् की इच्छा से। अगर यह शर्त मानते हो, तो मैं दवा ले लेता हूं? डाक्टर बेचारे ने शर्त मान ली। जिन मित्र के घर ठहरे थे, उन मित्र ने कहा कि हद का पागलपन है।

हमारी आस्थाएं, हमारा पुराना मन, सब पागलपन से भरा हुआ है। सारी दुनिया आदमी की उम्र बढ़ाये ले रही है और हम कह रहे हैं कि हमारी उम्र भगवान् तय कर रहे हैं। दवाओं ने हजारों बीमारियों को खत्म कर दीं, जो भगवान् ने कभी खत्म नहीं कीं। लेकिन हम यही कहते चले जा रहे हैं कि भगवान् बीमार करेगा या भगवान् ठीक करेगा। बीच में हम किसी को, आदमी को, आदमी की बुद्धि को, विचार को, विकास को स्वीकार करने को राजी नहीं हैं। छोटे आदमी से लेकर बड़े आदमी के मन का जो ढांचा है, वह ढांचा वैज्ञानिक नहीं है। अवैज्ञानिक है। वह ढांचा बहुत पुरानी रूढ़ियों में सोचने का आदी है। वह यही कहता है कि अगर बीमारी भगवान् चाहता है, तो भगवान् ठीक करेगा तो ठीक होगी, नहीं ठीक करेगा तो नहीं ठीक होगी।

बच्चे पैदा हो रहे हैं मुल्क में। जोर से एक ही चीज पैदा होती है हमारे मुल्क में, बच्चे पैदा होते हैं, और कुछ तो पैदा होता नहीं। तो सब कहे चले जा रहे हैं कि भगवान् दे रहा है। हम क्या कर सकते हैं? अब भगवान् अकाल लायेगा दस-पांच साल में, और करोड़ों बच्चे मरेंगे; क्योंकि हम जो बच्चे पैदा कर रहे हैं, उनके लिए भोजन कहां है? उनके लिए वस्त्र कहां है? और परेशानी बढ़ती चली जायेगी, बीमारी, गरीबी बढ़ती चली जायेगी; क्योंकि जिस बड़े पैमाने पर हम बच्चे पैदा कर रहे हैं, उस पैमाने पर तो अब जोतना मुश्किल है। वह तो पुरानी तरकीबें टूट गयी हैं।

बुद्ध के जमाने में हिन्दुस्तान की आबादी दो करोड़ थी। पाकिस्तान बंटा तो हमने सोचा कि बड़ा हिस्सा मुल्क का चला गया, लेकिन सिर्फ जमीन गयी। बीस साल में हमने पाकिस्तान से ड्योढ़े बच्चे फिर पैदा कर लिए। हम कोई खोने देंगे संख्या अपनी? हम तो चालीस कोटि हैं, और वह बढ़ते चले जायेंगे। यह संख्या तो हमने पैदा कर ली। बीमारी हमने रोक ली। मौत को हमने लम्बा

किया है। मौत हमने आगे बढ़ायी है। आज से सौ साल पहले दुनियां में दस बच्चे पैदा होते थे, तो कम से कम सात बच्चे मर जाते थे। आज यह हालत नहीं है। आज गरीब से गरीब मुल्क में दस बच्चे पैदा होते हैं, तो तीन बच्चे मर पाते हैं। सात बच्चे, और कुछ मुल्कों में तो मुश्किल से एक बच्चा मरता है। कुछ मुल्कों में यह अनुपात भी कम हुआ है। और इस बात की आशा है, कि कोई बच्चा पैदा होगा तो मरेगा नहीं। क्यों मरा बच्चा पैदा हो? लेकिन जिस भांति हम पैदा करते हैं। बच्चों को हमने मरने से रोक लिया है, उम्र बढ़ी है।

रूस की औसत उम्र उन्नत्तिस वर्ष थी, जब क्रांति हुई उन्नत्तिस सौ सत्रह में। आज रूस की औसत उम्र बहत्तर वर्ष है। निश्चित ही लम्बी औसत उम्र बढ़ गयी, बीमारियां दूर हो गयीं। कुछ बीमारियां बिल्कुल ही पता नहीं है बच्चों को। अगर रूस में जायें तो उन बीमारियों के बाबत पूछें, तो बच्चे कहेंगे, हां, इतिहास में लिखी हुई बीमारी है। अब इनका कुछ पता नहीं चलता। कुछ बीमारियां विदा हो गयी हैं बिल्कुल। सौ-दो सौ वर्ष बाद आदमी विश्वास न कर सकेगा, कि ये बीमारियां कैसी होती थीं? आदमी स्वस्थ हुआ, बीमारी दूर हुई, आगे उम्र बढ़ी है और वैज्ञानिक कहते हैं, कि अगर कोशिश जारी रही, तो कोई वजह नहीं है, कि हम किसी आदमी को 'इनडिफेनिट' अनिश्चित समय के लिए जिन्दा न रख सकें। कोई कारण नहीं है।

लेकिन भारत का पुरान मन यही कहे चला जा रहा है, जो भगवान् करेगा वह होगा, जो भाग्य करेगा वह होगा। दवा क्या करेगी? डाक्टर क्या करेगा? चिन्तन क्या करेगा? विज्ञान क्या करेगा? कोई कुछ नहीं करेगा। जो होना है सो होगा। यह जो भाव हमारे मन में बैठा हुआ है तो हम भविष्य का निर्माण कैसे करेंगे? फिर भगवान् जो करेगा वह होता रहेगा। हम खड़े होकर देखते रहेंगे। हम तटस्थ, दर्शक की भांति खड़े रहेंगे। यह जिन्दगी जीना है। एक तमाशबीन की तरह हम खड़े हुए हैं? तमाशबीन की तरह खड़े रहने पर भी जिन्दगी तो जीनी ही पड़ती है; लेकिन तब बहुत कष्टपूर्ण हो जाती है, बहुत दुखद हो जाती है।

युवक के पास भी, विज्ञान की शिक्षा देने के बाद भी, हम नया मन पैदा नहीं कर पा रहे हैं, 'यंग माइंड' पैदा नहीं हो पा रहा है। जो सोचे, जो लड़े, जो जिन्दगी को बदले, जो संघर्ष के लिए आतुर हो; कि जिन्दगी जैसी मिलेगी हम उसे वैसा ही नहीं छोड़ेंगे, अच्छा बनायेंगे, बेहतर बनायेंगे। जमीन स्वर्ग बनायी जा सकती है। और आज पहली दफा यह सम्भव है, कि हम जमीन को स्वर्ग बना सकें। भारत भी आज सुखी हो सकता है।

भारत सुखी कभी नहीं है। शायद आपको ख्याल न हो, कि भारत में मोक्ष की और स्वर्ग की जो इतनी चर्चा चलती है, उसका कारण यह नहीं है कि इतने

लोग धार्मिक हैं। लाख-दो लाख आदमियों में मुश्किल से एक आदमी धार्मिक होता है। क्योंकि सत्य की खोज किसकी है? और इतने लोग धार्मिक क्यों मालूम पड़ते हैं? भारत में इतना दुख है और सुख की कोई आशा नहीं है। तो स्वर्ग में सुख की आशा बांधनी पड़ती है। दुख के कारण स्वर्ग की यह आकांक्षा पैदा होती है। और बर्ट्रेन्ड रसल ने कहीं कहा है, और मैं भी सोचता हूं, भारत के लिए तो बिल्कुल लागू होगा—उसने तो पूरी मनुष्यता के लिए कहा है कि अगर आदमी पूरी तरह सुखी हो सके तो धर्म विदा हो जायेगा।

शायद भारत के अभी जो धार्मिक लोग दिखायी पड़ते हैं, ये तो धार्मिक नहीं रह जायेंगे, अगर भारत सुखी हो सके। क्योंकि इनके धार्मिक होने का कुल कारण दुख है। इतना दुख घेरे हुए है कि कोई आशा नहीं दिखायी पड़ती। तो अगले जन्म में आगे पृथ्वी से दूर, मृत्यु के बाद फिर हम सुख की कल्पना करते हैं। हमने कल्पना क्या की है सुख की, वह भी देखने लायक है। स्वर्ग में हमने कल्पना क्या की है? वह भूखे आदमी की खबर है उस कल्पना में, गरीब की खबर है।

अगर आप तिब्बती का स्वर्ग देखेंगे, तो आप हैरान हो जायेंगे। तिब्बती कहता है, स्वर्ग में बड़ी उत्तप्त हवायें बहती हैं। बड़ी गर्मी है, सूरज निकलता है और बड़ा गरम है, उष्ण है। तिब्बत का स्वर्ग उष्ण है क्योंकि तिब्बत में आदमी ठण्ड से पीड़ित है। तो स्वर्ग में भी उसने 'सब्स्टीट्यूट' इधर तो नहीं हो रहा है, इधर तो ठण्ड में मरे जा रहे हैं। तिब्बत के स्वर्ग में है, कि वहां लोग रोज स्नान करते हैं। तिब्बत में एक दिन स्नान करना वर्ष में मुश्किल पड़ जाता है। तो तिब्बत के स्वर्ग के लोग रोज स्नान करते हैं। इतना बड़ा आनन्द है यह। तो हम कहेंगे—यह कैसा आनन्द? यह क्या तुम सोच रहे हो? हम तो दिन में दो बार स्नान यहीं करते हैं। लेकिन तिब्बत के आदमी के मन को इतनी पीड़ा है, इतनी ठण्ड है, कि स्नान भी नहीं कर सकता है। नदी में तैर भी नहीं सकता है। तिब्बती-स्वर्ग में लोग नदियों में घण्टों तैरा करते हैं। बड़ा उष्ण है। सूरज निकलता है और सब तरफ धूप ही धूप है। बर्फ बिल्कुल नहीं है तिब्बत के स्वर्ग में। तिब्बत के नर्क में बर्फ है। और ऐसी बर्फ है जो 'इन्टर्नल' कभी नहीं पिघलती, जमी हुई है। और जो शरारत करेंगे, पाप करेंगे, उनको उस नर्क में डाल दिया जायेगा; जहां वह बर्फ में गलेंगे।

हमारा नर्क बिल्कुल उल्टा है। हमारे नर्क में बर्फ का पता नहीं है। अगर बर्फ मिल जाये, तो मजा आ जाये नर्क के लोगों को। वहां आग ही आग जल रही है हमारे नर्क में। कड़ाहे जल रहे हैं आग के और लोगों को कड़ाहों में डाला जा रहा है। हम गर्मी से पीड़ित लोग हैं, तो नर्क में गर्मी है। हमारा स्वर्ग बिल्कुल 'एयरकण्डीशण्ड' है, बिल्कुल वातानुकूल है। वहां शीतल-मन्द-समीर दिन भर बहा करती है। सूरज उगता है तो भी गर्म नहीं होता है, ठण्डा ही बना रहता है।

हमारे स्वर्ग में, ठण्डक की हमने व्यवस्था की है, क्योंकि हम गर्मी से पीड़ित हैं। स्वर्ग हमारी मनोकामना है, जो हम यहां नहीं पूरा कर पा रहे हैं, वह वहां है।

हमारे स्वर्ग में और क्या-क्या कल्पनायें हैं, वह सोचकर हम समझ ले सकते हैं कि हमारी तकलीफें क्या हैं ? स्वर्ग में वृक्ष हैं—कल्पवृक्ष ! जिनके नीचे बैठकर आप जो भी भोजन बुलाना चाहें, फौरन आ जायेगा। कल्प-वृक्ष के नीचे जो भी कामना करें—यह कपड़े चाहिए आपने कामना की, वे मौजूद हो गये। आपने कहा—यह भोजन चाहिए, कामना की, वह मौजूद हुआ। यह कल्प-वृक्ष क्या है ? यहां न कपड़े मिल रहे हैं, न भोजन मिल रहा है न कोई कामना पूरी हो रही है। अब एक ही उपाय है कि मरने के बाद कल्प-वृक्ष मिल जाये, तो उसके नीचे बैठ जायें। यह कल्प-वृक्ष हमारी भूख, हमारी गरीबी, हमारी परेशानी का सबूत है। इस कल्प-वृक्ष की कल्पना हम इसीलिए कर रहे हैं।

हिन्दुस्तान जैसे मुल्कों में स्त्रियां बहुत जल्दी बूढ़ी हो जाती हैं। हो ही जायेंगी। क्योंकि जो दुर्व्यवहार हम करते हैं, उन्हें बूढ़ा करने वाला है। तीस साल की लड़की है—पांच-सात-आठ बच्चे भी खड़े हो सकते हैं। वह बूढ़ी हो ही जायेगी। तो हमारे स्वर्ग में जो कल्पना है, वह पता है क्या है ? वहां कोई स्त्री कभी बूढ़ी नहीं होती। वहां सोलह साल के ऊपर उम्र बढ़ती ही नहीं। बस सोलह पर एकदम 'डैड-स्टाप' आ जाता है। सोलह के बाद उम्र नहीं बढ़ती, सोलह पर ही ठहरी रह जाती है। वह हमारी कामना है। हम अपने चारों तरफ स्त्रियों को जवानी में बूढ़ा होते देखते हैं। वह हमारी कामना है कि ऐसा होता है, वह यहां तो नहीं हो पा रहा है, तो हम स्वर्ग में कर लेते हैं। वहां हम व्यवस्था कर लेते हैं। स्वर्ग हमारी आकांक्षाओं के सबूत हैं, तथ्यों के नहीं। जो यहां सम्भव नहीं है वह वहां सम्भव बना लिए गये हैं। और उनकी हम आशा कर रहे हैं।

भारत में इतने लोगों के धार्मिक होने के कारण धर्म नहीं है। अगर धर्म होता इतने लोगों के धार्मिक होने कारण, तो जिन्दगी बिल्कुल दूसरी हो जाती। जिन्दगी एक आनन्द होती, एक शांति होती, एक मौज होती, एक परमात्मा का प्रसाद होती। लेकिन जिन्दगी वैसी नहीं है। परमात्मा के प्रसाद में फूल खिलते हैं, सूरज निकलता है, पक्षी गीत गाते हैं। यहां न सूरज निकलता है, न फूल खिलता है, न कोई गीत होता है, सब उदास है।

आदमी धार्मिक नहीं है। आदमी सब दुखी हैं, और दुखी आदमी क्या करे ? दुख को मिटाये—एक रास्ता है। या सुख के किसी सपने में खो जाये—दूसरा रास्ता है। भूखा आदमी रात सोता है, तो आप यह मत सोचना, कि रात में वह लोगों को भोज देने का सपना देखेगा। नहीं, भोज लेने का सपना देखेगा। भूखा आदमी सोता है रात, तो लगता है कि राजा का राजदूत आ गया है, और कहता है, चलिये ! राजा ने आपके लिए आज भोजन का निमन्त्रण भेजा है, वह बैठा है,

राजा की मेज पर भोजन कर रहा है। रात भर भोजन करता है। भूखा आदमी।

अगर आप भूखे न हों, तो एक-आधा दिन उपवास करके देख लें, तो पता चल जायेगा, कि रात भर भोजन ही भोजन का सपना चलता है। उपवास जिसने किया, वह रात भर भोजन में ही जियेगा। साधारण आदमी दो दफे खाना खाता है, उपवास वाला चौबीस घण्टे खाता है, मन ही मन खाता है, बाहर नहीं खाता। बाहर तो उपवास किये गये हुए हैं और प्रतिक्षा करता है, कि कब सुबह हो कि असली भोजन शुरू हो जाये। हमारे भीतर सपने जो हैं ! हम उन्हीं चीजों को देखने लगते हैं, जो बाहर नहीं मिल रहा है। जो बाहर नहीं है।

इसलिए भारत ने स्वर्ग बना लिया है, परलोक बना लिया है। उन स्वर्गों और परलोकों की कोई जरूरत नहीं है। हम इस पृथ्वी को ही स्वर्ग और परलोक बना ले सकते हैं। लेकिन उसके लिए संघर्ष करने का—यह सपना काफी नहीं होगा। उसके लिए किताब में कल्प-वृक्ष बनाना काफी नहीं होगा। कल्प-वृक्ष बनाया जा सकता है और विज्ञान ने करीब-करीब कल्प-वृक्ष लाकर खड़ा कर दिया है। और इस बात की सम्भावना है कि सौ वर्षों में कुछ देश तो निश्चित ही कल्प-वृक्ष के नीचे हो जायेंगे।

अमरीका करीब-करीब कल्प-वृक्ष के आस-पास उसकी गाड़ी पहुंच रही है। वह करीब पहुंच रहा है, जहां जिन्दगी की सारी जरूरतें शायद पूरी हो जायें। अभी बिहार में अकाल पड़ा था तो मैंने एक अखबार में खबर पढ़ी। एक अमरीकी मां ने यह खबर दी थी। एक अमरीकी मां से उसकी छोटी बेटी ने पूछा, कि यह अकाल क्या है ? क्योंकि अकाल अमरीका के नये बच्चों को बिल्कुल ही ऐतिहासिक घटना है, वहां तो नहीं पड़ता है। उसने पूछा कि अकाल क्या है ? उसकी मां ने कहा, "अकाल ?" वहां बिहार में आदमियों के पास खाने को रोटी नहीं है। तो उस लड़की ने कहा, फिर वे पेस्ट्री क्यों नहीं खा लेते ? क्योंकि उस लड़की को पता है कि जिस दिन घर में रोटी वगैरह नहीं बनती, उस दिन केक-पेस्ट्री से काम चल जाता है। उसने कहा "रोटी नहीं है तो केक-पेस्ट्री खा लें।" उसकी मां ने कहा "पागल ! इनके पास केक-पेस्ट्री भी नहीं है, तो फिर कैसे काम चला सकते हैं !" उसकी मां ने कहा—"तुझे पता ही नहीं, उनके पास फल भी नहीं हैं।" उसकी लड़की ने कहा—"उनके पास फ्रीज में क्या है ? उसमें कुछ भी नहीं है ?" तो उसकी मां ने कहा—"कि फ्रीज ही अगर उनके पास होता, तो फिर क्या था ? फ्रीज भी तो नहीं है। उस लड़की को समझाना मुश्किल पड़ गया उसकी मां को, कि अकाल का क्या मतलब है ? 'ओवर फेड', अमरीका तो अतिरिक्त भोजन पा रहा है इसलिए अमरीका में उपवास के कल्ट शुरू हो गये हैं।

जहां भी ओवर फीडिंग हो जाता है, वहां उपवास करवाने की जरूरत

शुरू हो जाती है। बुद्ध के घर में बहुत भोजन रहा होगा, महावीर के घर में बहुत भोजन रहा होगा, 'ओवर फैड' थे। इसलिए उपवास करने का मजा उनको आया। गरीब आदमी को उपवास करवाइये, बड़ी मुश्किल हो जाती है। अमरीका में उपवास की कल्ह चल पड़ी है। नेचरोपैथी है, और होम्योपैथी है, और पच्चीस पैथी और पच्चीस आश्रम हैं, जहां लोग जा-जा कर उपवास कर रहे हैं। उस उपवास से मजा आ रहा है। उसका कारण है शरीर ने बहुत अतिरिक्त इकट्ठा कर लिया है। वे ओवर लोड हो गये हैं, उसको निकालना जरूरी है और ज्यादा खा रहे हैं, ज्यादा खाने को मिल रहा है। यहां बिहार में, हिन्दुस्तान में गरीब आदमी को समझायें कि उपवास बड़ी ऊंची चीज है, तो वह कहेगा, उपवास तो हम रोज ही करते हैं। भोजन ऊंची चीज है, उपवास ऊंची चीज नहीं है।

लेकिन, हमने किया क्या है? हमने किया यह है कि जो हमें करना था संघर्ष, वह संघर्ष न करके हम सपने देखते रहते हैं। हम एक सपना देखने वाली कौम हैं। क्या हम भविष्य में भी सपना ही देखना चाहते हैं? या हम भारत को एक संघर्षशील समाज बनाना चाहते हैं? सपना देखना है, तो फिर अतीत की बातें दोहराये चले जायें और अगर संघर्ष करना है, तो अतीत से मन को मुक्त करें। बहुत कठोर है यह प्रक्रिया! अतीत से मन को मुक्त करने के लिए, लेकिन मुक्त करना पड़ेगा और अगर हमारा मन 'पास्ट' से, अतीत से मुक्त नहीं होगा, तो हम भविष्य को निर्माण करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। अतीत से मुक्त हो जायें। इस पृथ्वी पर अभी जो दो घटनायें घटी हैं, वे इसी बात की खबर लाती हैं।

अमरीका नयी कौम है, तीन सौ वर्ष से पुरानी उसकी कहानी नहीं है। तीन सौ वर्ष पहले यूरोप के कुछ भगोड़े जाकर अमरीका में बस गये। तीन सौ वर्ष की कुल कथा है, कोई इतिहास नहीं है। अगर वे कितने ही पीछे जायें, तो भी बहुत पीछे नहीं जा पाते। तीन सौ वर्ष के पीछे सब खत्म हो जाता है। अमरीकी कौम नयी है। नयी कौम होने की वजह से, अतीत न होने के कारण, अमरीका को भविष्य में देखने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था। इसलिए अमरीका इतनी सम्पत्ति पैदा कर सका। इतनी सुव्यवस्थित व्यवस्था, इतना जीवन को इस लायक बना सका कि वह चांद पर जाने के खेल में भी सम्मिलित हो सके और जीत भी सके।

यह जो तीन सौ वर्षों का नया समाज है, यह नया मन हमारे पास भी हो सकता है। रूस ने उन्नीस सौ सत्तरह में पुराने मन को इन्कार कर दिया। उसने कहा, अब विदा करते हैं। अब एक नयी तारीख शुरू होती है। उन्नीस सौ सत्तरह के पहले, और उन्नीस सौ सत्तरह के बाद! रूस दो दफों में तोड़ दिया उन्होंने। जीसस क्राइस्ट के आगे-पीछे टूटता था इतिहास। रूस ने तोड़ दिया उन्नीस सौ

सत्तरह के पहले और उन्नीस सौ सत्तरह के बाद। पुराने को नमस्कार कर लिया, कि अब नहीं हमें पीछे देखना है, आगे देखना है। तो पचास वर्षों में रूस ने जो काम किया है, वह पुरानी कौमें पांच हजार वर्षों में भी करने में समर्थ नहीं हो पातीं।

अभी हम देख रहे हैं कि चीन हमारे बाद खड़ा हुआ है; लेकिन अतीत को इन्कार करने के कारण आज इतनी बड़ी शक्ति उसने अर्जित कर ली, कि आज बड़ी से बड़ी ताकत को धमकी देने की स्थिति में है। रूस को धमकी देने की स्थिति में हैं। और हम, हम उसके पहले आजाद हुए हैं, बहुत कमजोर हो गये हैं। उन्नीस सौ सैंतालीस में जो हमारी हालत थी, उससे हमारी हालत और नीचे है, पैर डगमगा गये हैं। सारा मुर्दाघर हुआ चला जाता है। हम और अराजक हुए चले जाते हैं। शक्ति पैदा नहीं होती, सम्पत्ति पैदा नहीं होती, भविष्य निर्मित होता दिखायी नहीं पड़ता, तो फिर डर के मारे हम पीछे के घर में लौट जाते हैं। लेकिन पीछे कोई घर नहीं है, सिवाय स्मृति के। वहां कोई घर नहीं है, कहां जायेंगे? भारत बहुत लाचार हालत में है—बहुत आवारा हालत में है।

चीन ने भी अतीत को इन्कार कर दिया है, और नया सृजन शुरू हो गया है। वह ठीक है या गलत! यह दूसरी बात है। रूस ठीक है या गलत, यह दूसरी बात है। मैं जो कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूं कि जिन कौमों ने भी अतीत को इन्कार कर दिया है और नये होकर खड़े हो गये हैं, उनके जीवन में एक ऊर्जा, एक 'एनर्जी' पैदा हुई है जो 'क्रिएटर' है।

इजराइल नये से नया मुल्क है, नयी जमीन मिली है, नया देश बना है, सब नया है। पिछले अरबों के युद्ध में इजराइल ने जो ताकत दिखायी है, वह अभूतपूर्व है। उसका क्या कारण है? उसका कारण है, अरबों के पास पुराना मन है, पुराना! जराजीर्ण चित्त है। और इजराइल के पास युवा चित्त है। युवा चित्त बूढ़े चित्त को हरा, सदा सफल हो जाता है।

हमारे पास युवा चित्त नहीं है। हम अतीत से जकड़े हुए हैं, जब कि हम पीछे और पीछे, सिवाय पीछे देखने के हम आगे देखते ही नहीं। हमारा हाल ऐसा है, वह ऐसा कहो कि फोर्ड ने गाड़ियां बनायीं, कारें बनायीं, बस आगे लाइट लगा दिये। अगर हिन्दुस्तान में हम गाड़ी बनाते तो, हम लाइट पीछे लगाते। गाड़ी आगे, लाइट पीछे। उड़ती हुई धूल दिखायी देती, बड़ा मजा आता। जो छूट गया वह दिखायी पड़ता। और आगे, आगे सिवाय दुर्घटना के और क्या हो सकता था? पूरी कौम के चित्त का प्रकाश जो है, वह पीछे की तरफ लगा हुआ है। गर्दन लकवा खा गयी है। पैरालाइज्ड हो गयी है, पीछे देखती है। आगे देखती ही नहीं। और चलना आगे है। रोज गड्ढे मिल जाते हैं, रोज मुश्किल खड़ी हो जाती है, रोज और बड़ी मुश्किलें खड़ी होंगी। गुलाम कौम को मुश्किलें

ज्यादा नहीं होती हैं, क्योंकि मालिक को मुश्किलों का ध्यान रखना पड़ता है।

स्वतन्त्र कौम की मुश्किलें ज्यादा हो जाती हैं क्योंकि ध्यान उन्हें रखना है, कोई मालिक नहीं है। अगर अब भी हमारी आंख पीछे की तरफ लगी है—रूस में जायें और छोटे बच्चों से पूछें, वह क्या सोच रहे हैं? सोच रहे हैं, मंगल पर कैसे घर बनायें? छोटे स्कूल के बच्चे भी डिजाइन बनाने की कोशिश करते हैं कि चांद पर घर कैसा बने? अमेरिका के बच्चे आन्दोलित हैं कि और अन्तरिक्ष में कैसे प्रवेश कर जायें। वे किसी दूर भविष्य की यात्रा पर निकल रहे हैं।

हमारे बच्चे...? वे सब रामलीला देख रहे हैं, और कुछ भी नहीं। रामलीला बुरी नहीं है। रामलीला बड़ी प्रीतिकर है, लेकिन बार-बार देखना दुखद है, और खतरनाक है। और उसी-उसी को देखे चले जाना अतीत की उड़ती धूल को देखना है। भविष्य के सपने नहीं हैं हमारे मन में, अतीत की राख है। भविष्य का सूरज नहीं है हमारे मन में, बीते हुए सूर्योदय और सूर्यास्त हैं। यह उनकी स्मृति रह गयी है।

भारत कहां जायेगा? भारत कहां जा रहा है? अभी तो कहीं जाता हुआ मालूम नहीं पड़ता है। लेकिन दो विकल्प हैं—या तो भारत लौटकर अतीत में डूबने की कोशिश करे, जो असम्भव होनी निश्चित है। और या अतीत को छोड़े, भविष्य को अंगीकार करें, और नया सोचें और नया बनायें और पुराने ढांचे तोड़ें और पुराने मकान गिरायें और पुरानी जिन्दगी के बहुत बीते सूत्रों को हटायें।

भूल-चूक थोड़ी हो सकती है, लेकिन भूल-चूक से कोई डरने की जरूरत नहीं है। एक ही भूल-चूक दुबारा नहीं होनी चाहिए, बस नयी भूल तो रोज करनी ही चाहिए। नयी भूल कोई रोज करता है, तो सीखता है। फिर पुरानी भूल ही दोहराने लगें, तो नासमझ हैं। लेकिन कोई भूल के डर से कुछ करे ही नहीं, तो इससे बड़ी भूल कोई भी नहीं हो सकती।

भविष्य नया! पुराने को विदा! हमें कोई तारीख तय करनी चाहिए, जिस दिन हम पुराने को नमस्कार कर लें। और कहें कि उसके बाद हम आगे की तरफ देखेंगे। आने वाली पीढ़ी तय कर सकती है, और आने वाली पीढ़ी को तय करना पड़ेगा। लेकिन आने वाली पीढ़ी भी कुछ सोच नहीं रही है।

आने वाली पीढ़ी प्रतिक्रिया में है, सिर्फ 'रिएक्शन' में है। पुरानी पीढ़ी से परेशान हैं, गुस्से में है गुस्सा और परेशानी ठीक है; लेकिन अकेले गुस्से और परेशानी से कुछ भी नहीं होगा। पुरानी पीढ़ी की प्रतिक्रिया से कुछ भी नहीं होगा। थोड़े-बहुत दिन वह यूनिवर्सिटी में पढ़ता रहता है तब तक वह कुछ नयी बातें करता हुआ दिखायी पड़ता है। और फिर घर गया और घोड़े पर सवार होकर शादी करने निकल जाता है। घोड़े पर सवार हो जाता है वह। पहन लेता है वही पुराने कपड़ और किसी लड़की को, जिसे न उसने कभी देखा है और न कभी चाहा, न कभी प्रेम किया, उससे विवाह करने चल पड़ता है।

कैसा नया मन है यह? नया मन नहीं है यह, पुराना ही मन है। वही पुराना ढांचा है। कोई लड़का नहीं कह सकता अपने पिता को कि जिस लड़की को मैंने प्रेम नहीं किया, उसके साथ जीना तो बहुत ज्यादा 'क्रिमिनल' है, अपराध की बात है। कोई लड़की अपने पिता से नहीं कहती, कि जिस युवक को मैंने नहीं देखा, जिसे मैंने कभी चाहा नहीं, जिसने कभी मेरे मन में कोई जगह नहीं बनायी, तुम उसके साथ मुझे बांधे देते हो, इसका कारण क्या है? नहीं, लेकिन हमारे पास चित्त नहीं है। नया चित्त नहीं है। हम पुराने चित्त से ही घिरे हैं। जवानी हमें मिलती है, वह शरीर की है, मन हमारा जवान नहीं हो पाता है।

मैं आप से कहना चाहता हूं कि अगर भारत का कोई भविष्य, कोई सृजनात्मक, कोई आशापूर्ण बनाना हो, तो पुराने को विदा कर दें। कष्टपूर्ण है। पिता मर जाये तो मन यही होता है, कि लाश घर में रख दें। दुख तो भारी होता है। पिता मर गये हों, किसको दुख नहीं होता है। प्राण कंपते हैं विदा देते; लेकिन फिर भी रोते हुए हम मरघट जाते हैं। रोते हैं, दुखी होते हैं, लेकिन क्या उपाय है? मरघट विदा करना पड़ता है।

संस्कृतियां भी मर जाती हैं, सभ्यतायें भी मर जाती हैं। दुख भी होता है। पीड़ा भी होती है। उस दिन उनको मरघट पहुंचाकर जलाने की हिम्मत भी जुटानी चाहिए। अर्थी बांध लें पुरानी संस्कृति की, सभ्यता की! और मरघट में जाकर जला आयें।

एक दफा मुल्क खाली हुए भविष्य को देखें। इतनी ऊर्जा पैदा होगी, इतनी शक्ति, जो सब तरफ से बन्द है, वह मुक्त हो जायेगी। जैसे किसी झरने के ऊपर से पत्थर हट जायें। चाहे वे पत्थर भगवान् की मूर्ति के ही क्यों न रहे हों, क्या फर्क पड़ता है? झरने को रोका है। पत्थर हट जायें, झरना फूट पड़े, उसकी गति शुरू हो जाये।

भारत के जीवन में नये के अंकुर फूटें यह नयी पीढ़ी को सोचना है, लेकिन नयी पीढ़ी क्या सोचती है? वह तो कभी घर के कांच फोड़ देती है। कभी खिड़कियां तोड़ देती है। कभी किसी गरीब मास्टर को, जो वैसे ही बहुत गरीब है, पत्थर मार देती है। नयी पीढ़ी प्रतिक्रिया में है। नयी पीढ़ी सृजनात्मक विचार में नहीं है।

पुरानी पीढ़ी पुराने से चिपकी है। नयी पीढ़ी पुराने पर पत्थर मार कर चुपचाप खड़ी हो जाती है। जैसे कुछ टूट जायेगा। कुछ भी नहीं टूटेगा! कांच तोड़ने से क्या टूटता है? खिड़कियां मिटाने से क्या मिटता है? एक शिक्षक को पत्थर मार देने से क्या होने वाला है? नहीं, बड़े सवाल नहीं हैं। छोटी बातों में

नयी पीढ़ी उलझती है, तो खतरा है।

और मैं आपसे कहना चाहता हूं—हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञ नयी पीढ़ी को इन्हीं बेवकूफी की बातों में उलझाये रखना चाहते हैं। अगर नयी पीढ़ी उन चीजों से उलझी रही, तो भारत का पुराना ढांचा जिन्दा रहेगा, बरकरार रहेगा, वह कभी टूटने वाला नहीं है। क्योंकि नयी पीढ़ी को 'डायवर्ट' किया जाता है। उसे फिजूल की बातें सिखायी जा रही हैं। नये लड़कों को कहा जाता है कि कारखाना बड़ौदा में बने कि अहमदाबाद में। नया लड़का यूनिवर्सिटी में पढ़ रहा है। वह गोली खा रहा है, इसके लिए कि कारखाना बड़ौदा में बने, कि कारखाना अहमदाबाद में! नया लड़का कहेगा—कहीं भी बने, नये लड़के के लिए कारखाना बन रहा है। वह अहमदाबाद का नया लड़का होगा कि बड़ौदा का, यह सवाल नहीं है।

यूनिवर्सिटी कहां खड़ी हो जाये ? गोली चलेगी। एक गांव की रेखा, एक काम की रेखा, कहां खत्म हो ? नये लड़के को इसमें उलझाया जा रहा है। नये लड़के से कोई भी बेवकूफियां करवायी जा रही हैं।

हिन्दुस्तान का राजनीतिज्ञ नये लड़कों का बुरी तरह शोषण कर रहा है। और उससे कुछ भी गलत करवा रहा है। और मचा यह है कि मंच पर खड़े होकर वह गालियां भी देता है कि कांच क्यों तोड़ दी है ? दीवार क्यों फोड़ दी है ? गड़बड़ क्यों की ? और पीछे के रास्ते से वह चाहता है, कामना करता है कि नया लड़का इसमें ही उलझा रहे। जिस दिन नया लड़का इससे मुक्त हो जायेगा, पहला काम उस राजनीतिज्ञ को नीचे उतारने का होने वाला है।

भारत भटक सकता है, अगर नयी पीढ़ी ने थोड़ी भूल-चूक की। नयी पीढ़ी को बहुत सोचने का वक्त है। और एक नया मुल्क और एक नया समाज कैसे निर्मित करें ? एक विश्वविद्यालय चर्चा का, 'डायलाग' का स्थान बन जाना चाहिए। जहां हम मिलकर भविष्य के लिए सोचें, विचार करें। क्या हो सकता है, पुराने को कैसे विदा करें ? कैसे नये को जन्म दें। अगर इसका विचार चल पड़े तो कोई कठिनाई नहीं है। हमारे पास दुनिया में किसी भी युवक से कम ताकत नहीं है। हमारे युवा के पास उतनी ही ताकत, शायद थोड़ी ज्यादा है। ज्यादा इसलिए है, कि जैसे कोई खेत बहुत दिन तक बंजर पड़ा रहे, उसमें कोई खेती न हो। पड़ोस के खेत में खेती होती रहे, तो पड़ोस का बहुत-सा खेत धीरे-धीरे शक्तिहीन हो जाता है। जिस खेत में खेती न हुई हो, उस खेत में आज कोई अगर दाने फेंक दे कि बहुत से खेत झेंपे खड़े रह जायें।

भारत ने तीन-चार हजार वर्षों से चिन्तन नहीं किया है। उसके मन की उर्वर शक्ति बिल्कुल पड़ी हुई है। अगर कहीं हमने चिन्तन किया, तो हम पच्चीस साल के भीतर पृथ्वी पर किसी को भी पीछे छोड़ देने में समर्थ हैं। बड़ी उर्वर-

शक्ति पड़ी है बन्द। उसका उपयोग हो जाये, तो बहुत कुछ हो सकता है। लेकिन भारत कहां जायेगा, यह प्रश्न नहीं है। यह हम पर निर्भर है, कि कहां हम ले जायेंगे ? जो पीछे की तरफ ले जाना चाहते हैं, उनसे बचना। वह हजारों साल से मुल्क को नुकसान पहुंचा रहे हैं। देश को आगे की तरफ, नये की तरफ, नवीन की तरफ, परिवर्तन की तरफ ले जाना है। सोचना, विचार करना, खोजना, मार्ग निकालना। यह हो सकता है। एक बहुत निर्णायक क्षण है, बहुत निर्णायक 'डिसीसिव मूवमेंट' है भारत की जिन्दगी में। अगर हमने उसको खो दिया, तो हो सकता है हजारों साल बाद फिर निर्णायक क्षण आये। लेकिन खोने की कोई जरूरत नहीं है।

यह थोड़ी-सी बातें मैंने इसी आशा में कहीं कि सोचना। मेरी बातें मान लेना जरूरी नहीं है, हो सकता है, मैं जो कह रहा हूं सब गलत हो। हो सकता है, मैं भी जो कह रहा हूं, वह कहीं न ले जाये। मेरी बातें मान मत लेना, सोचना, विचार करना। मुल्क, अगर दस साल सिर्फ विचार करने में लग जाये, सब तरफ संदिग्ध हो जाये, 'डाउटफुल' हो जाये, सोचने लगे, खोजने लगे……। गीता, कुरान, बाइबिल सबको एक तरफ उठाकर रख दें। कृष्ण, बुद्ध, महावीर को कहें नमस्कार ! हमें खुद सोचने दो। बहुत दिन हम तुम्हारी छाया में सोचते रहे, तो शायद कुछ हो सकता है। यह जो मैं कह रहा हूं, इसी आशा में कि आप सोचेंगे। अगर मेरी बातों को गलत पायें, फेंक दें कचरे में। अगर कोई बात ठीक मालूम पड़ जाये, तो वह आपकी अपनी हो जाती है। और जो सत्य अपना हो जाये, वह सक्रिय हो जाता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, इससे बहुत अनुग्रहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

बड़ौदा, दिनांक १७ अगस्त १९६९

नये भारत की दिशा

२२—नये भारत की दिशा

मेरे प्रिय आत्मन्,

प्रश्न—यदि अच्छे लोगों के हाथों में राजनीति आ जाये तो क्या परिवर्तन हो सकता है ?

उत्तर—वे मित्र पूछ रहे हैं कि मैंने अच्छे और बुरे आदमी की बात की। वे पूछते हैं कि अगर अच्छे आदमी के हाथ में राजनीति आ जाये, तो क्या परिवर्तन हो सकते हैं ?

अभूतपूर्व परिवर्तन हो सकते हैं। क्यों ? कुछ थोड़ी-सी बातें हम ख्याल में ले लें। बुरा आदमी बुरा सिर्फ इसलिए है कि अपने स्वार्थ के अतिरिक्त वह कुछ भी नहीं सोचता। अच्छा आदमी इसलिए अच्छा है कि अपने स्वार्थ से दूसरे के स्वार्थ को प्राथमिकता देता है, 'प्रिफ्रेंस' देता है। अच्छा आदमी इसलिए अच्छा है, कि वह अपसे लिए ही नहीं जीता है, सब के लिए जीता है। तो बड़ा फर्क पड़ेगा। अभी 'राजनीति' व्यक्तियों के निहित 'स्वार्थ' बन गयी है, तब राजनीति समाज का स्वार्थ बन सकती है। एक बात !

बुरा आदमी सत्ता में जाने के लिए सब बुरे साधनों का उपयोग करता है और एक बार सत्ता में जाने में, अगर बुरे साधनों का उपयोग शुरू हो जाये, तो जीवन की सब दिशाओं में, सब तरफ जाने में, बुरे साधन प्रयुक्त हो जाते हैं। जब एक राजनीतिज्ञ बुरे साधन का प्रयोग करके मंत्री हो जाये, तो एक गरीब आदमी

बुरे साधनों का उपयोग करके अमीर क्यों न हो जाये ? और एक शिक्षक बुरे साधनों का उपयोग करके वाइस-चांसलर क्यों न हो जाये ? और एक दुकानदार बुरे साधनों का उपयोग करके करोड़पति क्यों न हो जाये ? क्यों ? क्या बाधा है ?

'राजनीति' थर्मामीटर है पूरी जिन्दगी का। वहां जो होता है, वह सब तरफ जिन्दगी में होना शुरू हो जाता है। सब तरफ ! तो राजनीति में बुरा आदमी अगर है, तो जीवन के सभी क्षेत्रों में बुरा आदमी सफल होने लगेगा और अच्छा आदमी हारने लगेगा। और बड़े से बड़ा दुर्भाग्य हो सकता है किसी देश का, कि वहां बुरा होना सफलता लाता हो, भला होना असफलता ले आता हो।

आज इस देश में भला होना असफलता की पक्की 'गारन्टी' है। किसी को असफल होना हो, तो भले होने से अच्छा 'गोल्डन रूल' नहीं है। बस भला हो जाये, असफल हो जायेगा। और जब भला होना असफलता बन जाये, और बुरा होना सफलता की सीढ़ियां बनने लगे, तो जिन्दगी सब तरफ विकृत और कुरूप हो जाये, तो आश्चर्य क्या है ?

राजनीति जितनी स्वस्थ हो, जीवन के सारे पहलू उतने ही स्वस्थ हो सकते हैं। क्योंकि राजनीति के पास सबसे बड़ी ताकत है। ताकत अशुभ हो जाये तो फिर कमजोरों को अशुभ होने से नहीं रोका जा सकता है। मैं मानता हूं कि राजनीति में जो अशुद्धता है, उसने जीवन के सब पहलुओं को अशुद्ध किया है।

राजनीतिज्ञ ! पहले पुरानी कहावत थी—सत्ता जिसके पास है, वह दिखायी पड़ता है पूरे मुल्क को, और जाने-अनजाने हम उसकी नकल करना शुरू कर देते हैं। सत्ता की नकल होती है; क्योंकि लगता है कि सत्ता वाला आदमी ठीक होगा। अंग्रेज हिन्दुस्तान में सत्ता में थे, तो हमने उनके कपड़े पहनने शुरू किये। वह सत्ता की नकल थी। वे कपड़े भी गौरवपूर्ण, प्रतिष्ठापूर्ण मालूम पड़े। अगर अंग्रेज सत्ता में न होते और चीनी सत्ता में होते तो मैं कल्पना नहीं कर सकता, कि हमने चीनियों की नकल न की होती ! हमने चीनियों के कपड़े पहने होते। सत्ता में जो होता है—सत्ता में अंग्रेज था, तो उसकी भाषा हमें ज्यादा गौरवपूर्ण मालूम होने लगी। सत्ता के साथ सब चीजें नकल होनी शुरू हो जाती हैं। सत्ताधिकारी जो करता है, वह सारा मुल्क करने लगता है।

तो राजनीति पर तो अत्यन्त शुद्धि की जरूरत है। वहां सबसे ज्यादा जरूरत है, कि अच्छा आदमी वहां हो; क्योंकि वह हमारे बीच खड़ी होकर नमूना बन जाता है और चारों तरफ लोग उसकी तरफ देखकर वैसा होना शुरू कर देते हैं। और जब एक बार यह पता चल जाये—अनुयायी को यह पता चल जाये, कि सब नेता बेईमान हैं, तो अनुयायी को कितनी देर तक ईमानदार रखा जा सकता है ? नहीं ! अच्छे आदमी के तो आने से आमूल परिवर्तन हो जायेंगे। फिर अच्छे

आदमी की बड़ी से बड़ी जो खूबी है, वह यह है, कि वह कुर्सी को पकड़ नहीं लेगा; क्योंकि अच्छा आदमी कुर्सी की वजह से ऊंचा नहीं हो गया है। ऊंचा होने की वजह से कुर्सी पर बिठाया गया है।

इस फर्क को हमें समझ लेना चाहिए। बुरा आदमी कुर्सी पर बैठने से ऊंचा हो गया है, वह कुर्सी छोड़ेगा, फिर नीचा हो जायेगा। तो बुरा आदमी कुर्सी नहीं छोड़ना चाहता है। अच्छा आदमी, अच्छा होने की वजह से कुर्सी पर बिठाया गया है। कुर्सी छोड़ने से नीचा नहीं हो जाने वाला है। अच्छा आदमी कुर्सी को छोड़ने की हिम्मत रखता है। और जो लोग कुर्सी को छोड़ने की हिम्मत रखते हैं—जो लोग भी—किसी भी चीज को चुपचाप छोड़ सकते हैं, बिना किसी जबर्दस्ती किये उनके साथ। वह मुल्क की जीवनधारा का अवरोध नहीं बनते।

रोज बदलाहट होनी चाहिए। बीस वर्ष में पीढ़ी बदल जाती है। नये बच्चे जवान हो जाते हैं। नयी खबरें ले आते हैं। नयी दुनिया के सपने ले आते हैं। उनको ताकत हाथ में आनी चाहिए, ताकि वे नये-सपने ढाल सकें। पुराना जमाना गया। पुराने जमाने में बूढ़ा आदमी, जवान आदमी से ज्यादा उपयोगी था।

ध्यान रहे ! अब बूढ़ा आदमी, जवान आदमी से ज्यादा उपयोगी नहीं है। उसका कारण है। क्योंकि पुरानी दुनिया का ज्ञान सीमित था। बूढ़ा आदमी जो जानता था, जवान उससे कम जानता था। आज हालत उल्टी है। बूढ़ा आदमी जो जानता है, जवान उससे तीस साल आगे का जानता है। इसलिए बूढ़ा आदमी अब उपयोगी नहीं है। उसको जगह-जगह से विदा होना चाहिए।

अगर आज कोई गणित पढ़कर निकलता है, तो बीस साल पहले जो गणित पढ़कर निकला था, वह उससे ज्यादा जानता है। अगर आज कोई फिजिक्स पढ़कर आया है, तो बीस साल पहले की फिजिक्स से उसका ज्ञान ज्यादा है। तो अब जमाना बदल गया। पुरानी दुनिया का नियम था, कि बूढ़े के हाथ में सारी ताकत हो, अब नियम बदलना पड़ेगा। बूढ़ा आदमी पिछड़ जाता है। गति बहुत तीव्र हो गयी है। नया बच्चा ज्यादा जानकर आता है, नया जानकर आता है। उसको जगह होनी चाहिए। तो अब जवान पर केन्द्रित होनी चाहिए सारी व्यवस्था।

लेकिन वह अच्छा आदमी छोड़ सकता है। बुरा आदमी पकड़ लेता है। छोड़ता नहीं है। अच्छा आदमी जब भी पायेगा, कि मुझसे बेहतर आदमी काम करने आ रहा है, तो वह कहता है, अब आ जाओ, मैं हट जाता हूं। अच्छे आदमी की हटने की हिम्मत, बड़ी कीमत की चीज है। बुरे आदमी की हटने की हिम्मत ही नहीं होती है। वह जोर से पकड़ लेता है। एक ही रास्ते से हटता है वह ! उसको या तो बड़ी कुर्सी दो, तो वह हट सकता है, नहीं तो नहीं हट सकता, और या फिर मौत आ जाये, तो मजबूरी में हटता है। नहीं तो वह वैसे नहीं हटता है। आमूल परिवर्तन हो सकते हैं ! आमूल परिवर्तन हो सकते हैं, और अच्छा

आदमी वहां होगा, तो अच्छे आदमी को पैदा करने की व्यवस्था करेगा। ध्यान रहे, वह बुरा आदमी, अच्छे आदमी को पैदा करने की व्यवस्था नहीं करता। क्योंकि बुरा आदमी जो प्रतिक्रिया पैदा करता है, उससे और बुरे आदमी पैदा होते हैं। और यह भी ध्यान रहे, कि बुरा आदमी जब चलन में हो जाता है, तो अच्छे आदमी को चलन के बाहर करता है, खोटे सिक्के की तरह।

अगर खोटा सिक्का बाजार में आ जाये, तो अच्छा सिक्का एकदम बाजार से नदारद हो जाता है। खोटा सिक्का चलने की कोशिश करता है, अच्छे सिक्कों को हटा देता है। बुरे आदमी जब ताकत में हो जाते हैं, तो अच्छे आदमी को जगह-जगह से हटा देते हैं।

जीसस को किसने मारा? बुरे आदमियों ने, एक अच्छे आदमी की सम्भावना को! सुकरात को किसने जहर दिया? बुरे आदमियों ने, 'पोलिटीशियन्स' ने, एक अच्छे आदमी को। अच्छा आदमी बुरे आदमियों के लिए बहुत अपमानजनक है, उसे बर्दाश्त नहीं करता है। और इसलिए अच्छे की सम्भावना तोड़ता है, जगह-जगह से तोड़ता है। बुरा आदमी अपने से भी बुरे आदमी चाहता है, जिनके बीच वह अच्छा मालूम पड़ सके। और इसलिए बुरा आदमी अपने चारों तरफ, अपने से भी बुरे आदमी इकट्ठे कर लेता है। बुद्धू अपने से ज्यादा बुद्धू इकट्ठा कर लेता है, उनका वह गुरू हो सकता है। तो मैं मानता हूं, कि अच्छे आदमी से तो आमूल परिवर्तन होंगे, हो सकते हैं।

प्रश्न—आपने कहा, व्यक्तिगत चुनाव होना चाहिए, न कि पार्टी के ऊपर जाना चाहिए। क्या यह व्यक्तिगत चुनाव व्यावहारिक है?

उत्तर—समझा! नहीं, किसी देश में आज तक ऐसा नहीं है, कि हम अच्छे और बुरे आदमी को चुनने का विचार करें और इसलिए किसी देश में अभी भी, आज भी ठीक लोकतन्त्र पैदा नहीं हो सका है। लेकिन यह हो सकता है। और सम्भव है, व्यावहारिक भी है। लेकिन एक ख्याल जकड़ जाता है, तो उससे अन्यथा सोचने में हमें कठिनाई मालूम पड़ती है। दल का एक ख्याल पकड़ गया है, कि दल के बिना तो राजनीति हो नहीं सकती। दल तो होना ही चाहिए। और दल अगर होगा, तो अच्छा आदमी कभी प्रवेश नहीं कर सकता। दल प्रवेश करेगा, आदमी का सवाल नहीं है।

सारी दुनिया की तकलीफ है, भारत की नहीं है। भारत की तो बहुत तकलीफ हैं; क्योंकि हम बहुत नये लोकतन्त्र के जगत् में खड़े होकर प्रयोग कर रहे हैं। लेकिन एक अर्थ में हमें सुविधा हो सकती है, कि हम ठीक प्रयोग करने की कोशिश भी कर सकते हैं। क्या हर्ज है, पूरा मुल्क अच्छे आदमियों को चुने? उनके अपने-अपने विचार होंगे, अपनी धारणायें होंगी। हम 'पार्टी बेसिस' पर उन्हें नहीं चुनते। उनके अच्छे होने की वजह से चुनते हैं।

वे पचास आदमी इकट्ठे होकर दिल्ली में निर्णय करेंगे, वे पचास आदमी अपने बीच से चुनेंगे, वे ही निर्णय करेंगे। वहां दिल्ली की उनकी धारा-सभा में पार्टियां हो सकती हैं, लेकि पूरा मुल्क अच्छे आदमी की चिन्ता करके चुनेगा। वे वहां निर्णय करेंगे, उनके वहां दल होंगे। दस अच्छे सोशलिस्ट चुन जायेंगे, दस अच्छे कांग्रेसी चुन जायेंगे। वे ऊपर जाकर निर्णय करेंगे। हमारे चुनाव का आधार पार्टी नहीं होगी, आदमी होगा। ऊपर पार्टियां होंगी, वह अपना निर्णय करेंगी, अपना प्रधान मन्त्री बनायेंगी। वह दूसरी बात है।

लेकिन मुल्क अच्छे आदमी की दृष्टि से चुनाव करेगा, तो बड़ा परिवर्तन हो जायेगा, बड़ी क्रांति हो जायेगी। चूंकि अच्छे आदमियों की बड़ी जमात वहां इकट्ठी हो, तो मैं नहीं मानता हूं, कि कोई पार्टी की सरकार होनी भी जरूरी है। अगर अच्छे लोगों की जमात हो, तो अच्छे लोगों की सरकार हो सकती है। वह मिली-जुली हो सकती है। और मिली-जुली सरकार अच्छे आदमियों की हो सकती है। बुरे आदमी की तो मिली-जुली सरकार नहीं हो सकती, असम्भव है।

यह तो प्रयोग करने की बात है। अव्यावहारिक लग सकता है, लोकतन्त्र भी अव्यावहारिक था। प्रयोग किया है, तो लग रहा है। समानता अव्यावहारिक थी, प्रयोग किया है, तो बढ़ती जा रही है। जिन्दगी तो प्रयोग करने से आगे बढ़ती है। जिन्दगी तो प्रयोग करने से आगे बढ़ती है। मेरा मानना यह है, कि पार्टियों के दल पर देश को चुनाव नहीं करना चाहिए। देश का आम-जन तो व्यक्ति की फिक्र करे, कि कैसा व्यक्ति, कैसे विचार, कैसा व्यक्तित्व, उसको चुने। ऊपर पार्टियां हो सकती हैं, वे मिल-जुलकर ही काम कर सकती हैं, इकट्ठे भी काम कर सकती हैं।

और भारत जैसे देश में मिल-जुलकर ही काम हो तो अच्छा है। क्योंकि भारत जैसे देश में अभी जब तक पार्टियों का रुख पकड़ जाये, तो एक पार्टी अगर मुल्क के अच्छे की भी बात करे, तो दूसरी पार्टी को सिर्फ इसलिए विरोध करना पड़ता है, कि वह विरोधी है। उसे सब बाधाएं खड़ी करनी पड़ती हैं, सब विरोध करना पड़ता है, इन्कार करना पड़ता है। भारत जैसे अविकसित देश को तो सबका साथ मिले, सहयोग मिले, एक को-आपरेटिव।

सारे राजनीतिज्ञ चिल्लाते हैं, लोगों को समझाते हैं 'को-आप्रेशन' चाहिए; लेकिन उनसे पूछना चाहिए कि तुम्हारे बीच कितना 'को-आप्रेशन' है। वहां कितना तुम मिल-जुल कर काम कर सकते हो। अगर कोई बढ़िया आदमी है, और वह दूसरी तरफ से आया है, दूसरी दिशा से, तो तुम कितना उसका उपयोग कर सकते हो। भारत जैसे अविकसित देश में तो मिली-जुली सरकार बड़ी सार्थक हो सकती है। और ध्यान रहे, आपकी पार्टी की सरकारें पन्द्रह साल में

मुसीबत में डाल देंगी । वह तो अब तक एक पार्टी थी कांग्रेस, इसलिए मुश्किल न थी ।

अब पार्टियां बढ़ती जायेंगी । दस साल में या तो डिक्टेटरशिप, या मिली-जुली सरकार के सिवाय कोई विकल्प नहीं रह जायेगा । क्या विकल्प है ? आज भी क्या विकल्प ?—विकल्प तो टूटना शुरू हो गया है । करियेगा क्या, पार्टी कहां ले गयी आपको ? वह तो एक पार्टी थी, तो ठीक था । कोई अव्यवस्था नहीं मालूम पड़ती थी । अब बराबर वजन की दस पार्टियां हो जायेंगी, तो रोज सरकार बदलेगी । और गरीब मुल्क में—भारत जैसे गरीब मुल्क में, रोज सरकार का बदलना बहुत मंहगा है । और रोज सरकार बदलें तो विकास क्या हो ? गति क्या हो ? आज नहीं कल आपको मिली-जुली सरकार पर आना पड़ेगा ।

पार्टियां भारत के लिए गैर व्यावहारिक हैं । 'इमप्रेक्टिकल' हैं, वह प्रेक्टिकल हैं नहीं । लेकिन मेरी दृष्टि यह है कि फिर भी अगर पार्टी के ढंग से आपने चुनाव किया, तो अच्छे आदमी की खोज बहुत मुश्किल है । अच्छे आदमी की खोज के आधार पर चुनाव होने चाहिए, चाहे वह किसी पार्टी का हो । इससे कोई प्रयोजन नहीं होना चाहिए । मुल्क को पार्टी से प्रयोजन छोड़ देना चाहिए और वे अच्छे लोग ऊपर इकट्ठे हों, उनकी पार्टियां हो भी सकती हैं, दस मत हो सकते हैं उनके, लेकिन अच्छे लोग मिलकर काम कर सकते हैं, और भारत के लिए मिली-जुली सरकार के अतिरिक्त आगे कोई विकल्प नहीं है । फिर एक ही विकल्प है, या डिक्टेटोरियल कोई व्यवस्था हो या फिर यह विकल्प है कि रोज सरकारें बदलें ।

तो बहुत धनी मुल्क रोज सरकार बदल सकते हैं, वह खेल बहुत 'लक्जरियस' है, वह बहुत मंहगा खेल है, उनका कोई नुकसान नहीं होता, हम तो मर जायेंगे । हम तो जिन्दा नहीं रह सकते । हमारा तो सारा का सारा काम ठप्प हो जायेगा ! ऐसे ही काम ठप्प है ! रोज सरकार बदल जाये तो ? छः महीने में सरकार बदल जाये तो ?

जिन प्रान्तों में सरकारें बदली हैं, वहां की हालतें देखकर बहुत घबराहट हो गयी है । वहां आज कोई सेक्रेट्री किसी मिनिस्टर का कोई सुनने का सवाल ही नहीं है; क्योंकि वह कहता है कि आप हो कितनी देर ? वह तब तक फाइल ही रखे रहता है, जब तक आप हो । जब आप चले जाओगे, तब देखा जायेगा । जब दूसरा आयेगा, तब वह फाइल विदा कर दी जायेगी । उस फाइल से कोई सम्बन्ध उठाने की कोई जरूरत ही नहीं है । और इतना साफ हो गया है, कि छः महीने में सरकार बदलनी है ।

मामला बहुत अजीब हो गया है । आज नहीं कल, मिली-जुली सरकार पर हमें निर्णय लेना ही पड़ेगा । लेकिन यह मिली-जुली सरकार और अच्छी हो सकती

है, अगर नीचे का चुनाव अच्छ आदमी के ख्याल में हम करें । एक बहुत विभिन्न व्यवस्था हो सकती है, जो नहीं कहीं है, लेकिन नहीं कहीं होने से, यह नहीं है कि नहीं हो सकती है । हो सकती है ।

एम० एस० कालेज, बड़ौदा दिनांक १८ अगस्त १९६९

२३—भारत के निर्णायक क्षण

मेरे प्रिय आत्मन्,

प्रश्न—(अस्पष्ट)

उत्तर—एक तो आजादी के पहले भारत में कोई राजनीतिक दल नहीं था। आजादी की लड़ाई थी और सभी उसमें सम्मिलित हुए थे। सभी विचारों के लोग—आजादी के बाद उस संस्था का विघटन जरूरी था, जो आजादी के पहले लड़ाई लड़ रही थी, क्योंकि वह एक विचार की संस्था न थी। आजादी के पूरे होते ही उसका नाम भी पूरा हो गया था। लेकिन उस संस्था के लोगों को यह अप्रीतिकर लगा बिखर जाना, क्योंकि आजादी की जो लड़ाई लड़ी थी उसका फल भी भोगने का मजा आजादी के बाद आया। तो जबर्दस्ती कांग्रेस को बचाने की और सत्ता पर हावी करने की चेष्टा की गयी। ठीक तो यह था कि कांग्रेस को बिखर जाना चाहिए था। उसके होने का अब कोई अर्थ न था, आजादी के बाद। उसका लक्ष्य पूरा हो गया था। उसका काम भी पूरा हो चुका था।

इधर बीस वर्षों में किसी तरह कांग्रेस को खींचतान कर बांध रखने की कोशिश की गयी है, वह देश के लिए अहितकर है। उसका बिखरना बहुत जरूरी है। उसके बिखराव के बाद ही भारत में राजनीतिक दल जैसी संस्थाओं का अस्तित्व बन सकेगा। उसके पहले नहीं बन सकता है। क्योंकि इतना बड़ा संगठन—जो एक अर्थों में गैर राजनीतिक था—हावी है कि उसके मौजूद रहते हुए नये संगठन,

विचार के आधार पर, आयडियोलॉजी के आधार पर बन सकें और सत्ता के संघर्ष में सफल हो सकें, यह असंभव है। इसलिए कांग्रेस का बिखराव तो बहुत सौभाग्य सूचक है। देर से हो रहा है, बीस साल बाद, जो बीस साल पहले—पहले होना चाहिए। उसके बिखर जाते ही भारत में लोकतान्त्रिक सम्भावना बढ़ जाती। उसके बिखर जाने के बाद ही विचार के आधार पर राजनीतिक दल खड़े हो सकेंगे और उनकी रूपरेखा स्पष्ट हो सकेगी।

कांग्रेस जब तक मौजूद है ताकत में तब तक किसी राजनीतिक दल की विचार-धारा अस्पष्ट नहीं होगी। क्योंकि स्पष्ट विचारधारा का एक राजनीतिक दल हावी है। उसके प्रतिफलन विरोधी पार्टियों पर भी पड़ते हैं। एक स्पष्ट विचार कांग्रेस का अपना हो, भिन्न विचार के लोग अलग हो जायें तो दूसरी पार्टियां भी कन्फ्यूज न रहें और उनको भी अपना विचार साफ करने की सुविधा मिले। और लोकतन्त्र के भविष्य और विकास और कार्य के लिए जरूरी है कि बहुत दल हों और एक दल इतना शक्तिशाली न हो कि विरोधी दल में होने का कोई अर्थ ही न रह जाये। इसलिए कांग्रेस का विघटन अत्यन्त हितकर है।

निश्चित ही दूसरी बात भी आपने पूछी है कि दूसरे दल भी बहुत अर्थों में विघटन के करीब हैं। जैसे ही कांग्रेस विघटित होगी, दूसरे दलों में भी विघटन पड़ेगा। क्योंकि यह सफाई पूरे मुल्क में होगी। कांग्रेस के विघटित होते ही उसमें जो दक्षिणपंथी वर्ग है, उसके अलग होते ही दक्षिणपंथियों के अलग खड़े होने का कोई अर्थ न रह जायेगा। वह दक्षिणपंथी वर्ग के साथ संयुक्त हो जायेंगे। कांग्रेस के भीतर वामपंथियों के अलग होते ही वामपंथियों का भी कोई अर्थ न रह जायेगा। वामपंथी भी इकट्ठे हो जायेंगे और पोलेराइजेशन सम्भव हो पायेगा। और अगर ध्रुवीकरण सम्भव हो जाये तो मुल्क के सामने स्पष्ट विचारधाराओं के दल होंगे जिनको हमें चुनाव करने में सुविधा होगी। अभी चुनाव करना ही मुश्किल है। क्योंकि लेफ्टिस्ट है, वह भी राइटिस्ट भाषा की कुछ बातें बोलता है। जो राइ-टिस्ट है, वह भी लेफ्टिस्ट भाषा की कुछ बातें बोल रहा है। और मुल्क के मत-दाता के सामने स्पष्ट ही नहीं हो पाता कि कौन किस विचारधारा का है? और यह स्पष्ट न होगा तो बहुत कठिन है और हमारे जैसे मुल्क में जहां बहुत शिक्षा न हो, यह अत्यन्त स्पष्ट हो जाना जरूरी है।

जहां चिह्नों के हिसाब से वोट करनी पड़ती हो वहां इतनी कन्फ्यूज्ड पार्टियों का होना, मताधिकारी को सिवाय भ्रम में डालने के कुछ भी नहीं होता है। वह समझ ही नहीं पाता कि कौन समाजवादी है, कौन गैरसमाजवादी है। गैरसमाजवादी भी समाजवादी की भाषा बोलता है, समाजवादी भी गैरसमाजवादी की भाषा बोलता है। और कांग्रेस का कन्फ्यूजन सारे मुल्क की सब पार्टियों में, सब मताधिकारियों के मन में प्रतिध्वनित होता है। इसलिए कांग्रेस के विघटित होते ही दूसरी पार्टियों

में भी विघटन अनिवार्य होगा। उसके भी वे टुकड़े अलग हो जायेंगे जो स्पष्ट न होंगे, या जिनके सम्बन्ध और तरह के होंगे और दूसरों से जिनके सम्बन्ध हो सकते हैं! तो जाने वाले दस वर्षों में यह विघटन साफ-साफ होकर सुनिश्चित विचार के दल खड़े हो जायेंगे, जो कि एक लोकतन्त्र के लिए बहुत जरूरी हैं और मतदाता के मन को स्पष्ट हो सकेगा कि वह किसको चुन रहा है, क्यों चुन रहा है, किस कारण चुन रहा है?

दूसरा फ़ायदा यह होगा कि कांग्रेस के विघटित होते ही कोई भी दण्ड इतना बड़ा नहीं रह जायेगा कि नाम लोकतन्त्र का हो और काम तानाशाही का हो, यह असम्भव हो जायेगा। कांग्रेस के पास इतनी बड़ी ताकत थी कि कि नाम ही लोक-तन्त्र का है, बीस साल हो गये। ताकत में लोकतन्त्र सिर्फ नाम है, पीछे काम बिल्कुल अधिनायकशाही का हो सकता है। वह भी असम्भव हो जायेगा। और यह हो जाना चाहिए। मैं इसको सौभाग्यसूचक मानता हूं और स्वागत योग्य मानता हूं। जिन लोगों ने कांग्रेस निर्माण की थी, उन्होंने जितना बड़ा काम किया है, उतना ही जो आज कांग्रेस को विघटित कर रहे हैं, उतना ही बड़ा काम कर रहे हैं।

जन्म लेना भी बहुत बड़ा काम है और दफनाना भी उतना ही बड़ा काम है। और हर चीज के मरने का वक्त आ जाता है, तब उसको दफनाने वालों की जरूरत पड़ती है। निजलिंगप्पा, इन्दिराजी सब कन्धे मिलाकर उसको दफनाने का काम कर रहे हैं जो कि बहुत ही उचित और देश के हित में है। कांग्रेस के तो अहित में है क्योंकि जो लोग इकट्ठे हैं उनकी शक्ति इसके बाद क्षीण हो जायेगी। लेकिन देश के हित में है। क्योंकि देश में कोई भी दल इतना शक्तिशाली हो, उचित नहीं है; और इतना कन्फ्यूज्ड हो, जिसके सामने कोई स्पष्ट विचार न हो। सब विचारधारा, सब शेड के लोग जिसके भीतर हों और जिसमें तय करना ही मुश्किल होता हो, ऐसे दल का बिखर जाना जरूरी है। क्योंकि इतने बड़े दल का इतना कन्फ्यूज्ड हो जाना भी छोटे दलों को कन्फ्यूज्ड करता है और उनको भी इसी तरह की विचारधारा पकड़ने को मजबूर करता है कि वह सब शेड के लोगों के लिए जगह बना सके।

तो चित्त के साथ देश की चेतना के लिए स्पष्ट करने के लिए बहुत हितकर है। इसमें जितनी देर लगी उतना नुकसान हुआ। अभी जितनी जल्दी हो जाये उतना अच्छा है। मैं समझता हूं कि दस वर्ष में देश के पास अलग आइडियोलॉजी की सब पार्टियां होंगी। इसलिए मैं इसको कुछ अशोभन नहीं मानता हूं और न अशुभ मानता हूं।

प्रश्न—गांधी शताब्दी वर्ष में क्या वे गांधीजी को भूल गये हैं, ऐसा आपको लगता है?

उत्तर—गांधीजी को उन लोगों ने कभी याद किया हो, यह भी बात गलत

है। भूलना तब पड़ता है, जब याद किया हो। गांधीजी से उनका कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा। गांधीजी जब जिन्दा थे, तभी वे भूल गये थे और गांधीजी को खुद ही लगना शुरू हुआ था कि उनके साथी उनको भूल गये। सोचते थे पहले कभी, एक सौ पच्चीस वर्ष जीना, फिर सोचा कि इतना जीना बेकार है। एक सौ पच्चीस वर्ष जीते तो जितनी तकलीफ वे भोगते, दुनिया में दूसरा आदमी शायद ही भोगे। गोडसे तो एक मित्र की तरह आया और उनको विदा कर दिया।

और आजादी के पहले भी गांधीजी के पीछे चलने वाले उनसे सहमत थे, इस भूल में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। गांधीजी भी कांग्रेस के अंग्रेजों से संघर्ष की टैक्टिस में एक हिस्सा थे। गांधीजी के बिना कोई लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती थी। इसलिए गांधीजी की बहुत-सी बातों के लिए राजी होना पड़ता था, जिनसे आज वह राजी नहीं है और हमको परेशानी मालूम पड़ती है।

जैसे गांधीजी की अहिंसा से उनके पीछे चलने वाले बहुत कम लोग सहमत हैं और अगर सहमत थे तो इतना सहमत थे कि एक पालिसी की तरफ इसका उपयोग किया जाये। एक प्रिंसिपल की तरह नहीं। जब आजादी आ गयी तो बात खत्म हो गयी। पालिसी पूरी हो गयी थी और अब अहिंसा की बात को पकड़ रखने का कोई प्रयोजन न था। गांधीजी की सारी व्यवस्था से, उनकी चिन्तना से लोग राजी थे इसलिए कि संघर्ष में यह उपयोगी हो सकती है एक तरकीब, एक टेकनीक की तरह। लेकिन यह कोई जिन्दगी का दर्शन है, इस तरह बहुत लोग राजी नहीं हुए। खुद उनके निकटतम पंडित नेहरू भी उनसे राजी नहीं थे। न उनके ग्रामोद्योग से राजी थे, न उनके चर्खे से राजी थे। न उनकी अहिंसा को सिद्धान्त की तरह राजी थे, न उनके भगवान् और राम से राजी थे, न उनके धर्म से और प्रार्थना से राजी थे।

गांधीजी से बहुत कम लोग राजी थे। अठानबे प्रतिशत उनके पीछे चलने वाला आदमी इसलिए पीछे चल रहा था कि वह अंग्रेजों से संघर्ष में उपयोगी है। उनके बिना संघर्ष को चलाना बहुत कठिन था। लेकिन जब संघर्ष पूरा हो गया, तो गांधीजी का काम भी पूरा हो गया। पीछे चलने वाला आदमी अलग खड़ा हो गया। लेकिन उसके बाद भी वह नाम लेता रहा। क्योंकि एक नया संघर्ष शुरू हुआ जनता से।

एक संघर्ष था जो अंग्रेज से चलता था, जिसमें गांधी को नेता बनाना जरूरी था; फिर एक संघर्ष शुरू हुआ सत्ता में आने से जनता से। और गांधीजी की जय लगाना जरूरी था ताकि जनता उनके साथ खड़ी रहे क्योंकि गांधीजी का नाम बहुत कीमती हो गया था। उसकी बड़ी क्रेडिट थी और उस पुराने साइनबोर्ड को उखाड़ फेंकना गलत था। वह उपयोगी था इसलिए उसका शोर-गुल मचाते चले गये। बल्कि उस बोर्ड को इतना बड़ा बनाया कि उस जयकार

के पीछे सब पाप किये जायें इसलिए गांधी की जय जोर से मनाते चले गये।

सेंटीनरी में क्यों आकर यह बात गड़बड़ हो गयी? बहुत कारण इकट्ठे हैं। एक तो बीस साल में गांधीजी का जितना जोर से नाम चिल्लाया था, सेंटीनरी ने सारी ताकत को लगाकर नाम को चिल्लाया। सेंटीनरी मनायी ही इसलिए गयी कि दस साल कांग्रेस की ताकत और बढ़ जाये। दस साल गांधीजी के नाम पर और फायदा मिल जाये, तो उसको जागतिक पैमाने पर मनाने की कोशिश की और देश में भी इतना पैसा खराब किया उसके ऊपर उसके पीछे राज यह था कि महात्मा गांधी की जय फिर शुरू हो जाये जोर से। महात्मा गांधी के पीछे खड़े जो लोग हैं, छोटी-मोटी जयकार उनकी भी हो जाती है, जब गांधीजी की बड़ी जोर की जय बोली जाती है।

लेकिन जैसे लपट मरने के पहले जोर से भभकती है, ऐसा सेंटीनरी में हो गया। उनकी जयकार भी जोर से भभकी लेकिन तेल भी चुक गया। और एक साथ ही दोनों घटनाएं घट गयीं, उनका विघटन भी घट गया। और एक लिहाज से अच्छा ही है। गांधीजी के सौ वर्ष पूरे होते हैं और शायद अब दुबारा इस तरह की सेंटिनरी इन दुनिया में गांधीजी की मनाना बहुत मुश्किल पड़ेगा। अब कांग्रेस का भी मृत्युचरण उठ गया। ये बीस वर्ष भी बहुत हैं। कांग्रेस ने जो किया है उसे बीस वर्ष भी जिन्दा रहना बहुत है। और उसके जिन्दा रहने में कांग्रेस की शक्ति महत्वपूर्ण नहीं है। भारत की, भारत की जनता का इनशिया या आलस्य महत्वपूर्ण है। हम सहने में समर्थ हैं। हम किसी भी ऐसी बात को सहने में लम्बी देर तक संतोष रख सकते हैं।

दूसरा महायुद्ध हुआ तो चर्चिल को बुला लिया था ब्रिटेन ने, नेतृत्व करने को। और युद्ध विजय हुआ चर्चिल को उतनी ही सरलता से विदा कर दिया, जितनी सरलता से बुलाया था। काम पूरा हो गया था चर्चिल का, अब कोई जरूरत न थी। युद्ध का वह नेता हो सकता था, शांति में उसकी कोई जरूरत न थी। ब्रिटेन से चुपचाप विदा कर दिया जैसे कुछ लेना-देना न था। हमारी कठिनाई है। कांग्रेस को हमें पंद्रह अगस्त उन्नीस सौ सैंतालीस से विदा कर देना था। उसका काम पूरा हो गया था। लेकिन हमको बीस साल लग गये विदाई समारोह आयोजन करने में। और अभी भी कांग्रेस जी सकती है चार-पांच वर्ष; नये नारे देकर जी सकती है। अगर गांधी का नारा झूठा पड़ जाये, तो कुछ नये नारे सोच-कर जी सकती है। लेकिन उसकी मरण प्रक्रिया करीब आ गयी है। भीतर से जो उसमें दरार पड़ी है, वह उसको ले डूबेगी।

इस देश की जनता का आलस्य बहुत प्राचीन है। यानी हमारी संस्कृति का आधार ही हमारा आलस्य है इसलिए स्टेटिक सोसायटी हम बना पाये, डायनमिक सोसायटी नहीं बना पाये। उसका कोई और गुण न था, गुण यह था कि हम

इतने आलसी हैं कि हम कुछ बदलने की इच्छा ही में नहीं रह रहे हैं। जहां तक बिना बदले चले, हम चलाना चाहेंगे। आज भी कांग्रेस टूट रही है तो वह हमारे तोड़ने से नहीं टूट रही है, वह अपने आप टूट रही है। अब हम क्या करें? हम तो उसे बचा सकते थे अभी और। वह टूट ही रही है तो हम क्या करें?

यह बीस वर्ष जो चलना हो सका है वह हमारे आलस्य के कारण, संतोष के कारण, वह जो चुपचाप हो रहा है उसे देखते रहने की प्रवृति के कारण। विद्रोह का रुख नहीं है और चीजों का काम पूरा हो जाये तो उनको विदा करने की क्षमता भी हममें नहीं है। इसलिए कांग्रेस नहीं हजारों चीजें चल रही हैं जो कभी की विदा हो जानी चाहिए। यानी जिनका अब कोई अर्थ ही नहीं रह गया है, लेकिन वे चले चली जाती हैं।

ऐसा लगता है कि दूसरे मुल्क तो एक सदी में जीते हैं, हम दस-पन्द्रह सदी में इकट्ठे जीते हैं। दसवीं सदी के भी अवशेष बाकी हैं और पांचवी सदी के अवशेष बाकी हैं। उनको मानने वाला भी मौजूद है, उनको चलाने वाला भी मौजूद है। तो करीब-करीब हमारा इतिहास का जो विस्तार है, उसको इकट्ठा करके ही हम जीते हैं।

जो पुराना है उसको बचा लेते हैं, उसकी लाश हम बचा लेते हैं और उसको घसीटे चले जाते हैं। लाशें इतनी ज्यादा वजनी हो जाती हैं कि जिन्दा आदमी उनको खींच ही नहीं पाता। तो जिन्दा खड़ा हो जाता है, लेकिन लाशों को नहीं छोड़ता है कि उनको छोड़ दे और आगे बढ़ जाये। तो वह हमारी पुरानी प्रवृति है। उस प्रवृत्ति का फायदा कांग्रेस ने बीस साल उठाया। तो दो-चार-सात साल फायदा और भी उठा सकती है।

लेकिन जो काम कृपा करके कांग्रेस के भीतर के लोग ही कर रहे हैं, वह हमें बहुत पहले कर देना चाहिए था। उससे एक जिन्दा देश का सबूत मिलता। करीब-करीब ऐसा ही हमने आजादी के लिए किया था। हम अभी और गुलाम रह सकते थे, अभी कुछ ऐसी कठिनाई न आ गयी होती। अंग्रेज ही छोड़ देने को राजी हो गये, तो हम क्या कर सकते थे? वही कांग्रेस के साथ हुआ। वही मरने को तैयार हो गयी, तो हम क्या कर सकते हैं? हमने कोई उसकी हत्या नहीं की, वह आत्महत्या करने को तैयार हुई।

लेकिन सच ऐसा है कि जब चीजें पक जाती हैं, तो आप न भी गिरायें तो भी गिर जाती हैं। एक फल पक जायेगा, आपने पत्थर नहीं भी मारा तो भी गिरेगा। सब चीजें पकती हैं और गिरती हैं। कांग्रेस भी पक गयी है, वह गिर जाना बहुत अच्छा है। और हमें जलसा मनाकर उसे विदा कर देना चाहिए बहुत जल्दी। उससे जो वैक्यूम पैदा होगा, वह हितकर होगा। उसमें नये विचारों को पनपने की, नये मतों को पनपने की, नये संगठनों को पनपने की सुविधा

बनेगी।

वैक्यूम तो रह नहीं सकता, वह भर दिया जायेगा। और निश्चित ही अब वह नयी धारणाओं से भरा जायेगा। अब नये सवाल होंगे हमारे सामने। देश की अर्थ रचना को बदलने का सवाल होगा, देश की शिक्षा को बदलने का सवाल होगा, देश के स्वास्थ्य को बदलने का सवाल होगा, देश की जनसंख्या का सवाल होगा, जिन्दा मसले होंगे। अब जो नये संगठन खड़े होंगे, नये मत खड़े होंगे उनके सामने जिन्दा मसले होंगे। कांग्रेस के सामने जिन्दा मसले नहीं हैं। उसके सामने जिन्दा मसले थे, सैंतालीस के पहले। वे मसले भी मर चुके, उनका उत्तर भी हो चुका। अब उसके पास उत्तर भी नहीं है जिन्दगी के। वह पुराने उत्तर के आधार पर जीने की कोशिश कर रही है, तो वह कितनी देर चल सकती है?

प्रश्न—आपने कहा, डायनौमिक सोसायटी हम नहीं बना पाये, अब बन पाये, तो आप डायनैमिक सोसायटी के विकसित होने के बारे में क्या कहते हैं?

उत्तर—इस तरह का समाज तो वह है, जो एक ढांचे को विकसित कर लेता है, और उसे उसी ढांचे के अन्तर्गत जिये चला जाता है। समय बदल जाता है, परिस्थिति बदल जाती है, लेकिन वह अपना ढांचा नहीं बदलता। एक समाज वह है जो ढांचा निर्मित करता है ऐसा नहीं; निर्मित नहीं करता। ढांचा निर्मित करता है, लेकिन परिस्थिति बदलती है, समस्याएं बदलती हैं, तो वह अपने ढांचे को बदलने की तत्परताएं दिखाता है।

अब जैसे कि हम हैं—हमारे समाज का ढांचा पांच हजार वर्ष से करीब-करीब एक जैसा है। उस ढांचे में बुनियादी फर्क नहीं आया। तो उसमें के मूल्य भी वही है, उसमें जरा भी फर्क नहीं आया। और अगर फर्क आ रहा है, तो वह हमारे कारण नहीं आ रहा है, वह ढांचा भी···लेकिन वह खुद ही बिखरने लगता है, यानी इतना जराजीर्ण हो जाता है कि उसके बिखरने की पूरी स्थिति आ जाती है। वह टूट कर गिर जाता है तो मजबूरी हमारी। बाकी वैसे हम पूरी चेष्टा करते हैं आखिरी दम तक कि उसको सम्हाले रहें, सम्हालें रहें, सम्हाले रहें—उसको फीवरें लगा दें, नये प्लस्तर जोड़ दें, नये खम्भों का सहारा दे दें। लेकिन जब तक हमसे बने, हम ढांचे को बचाने की कोशिश करते हैं, उसे मिटा डालने की नहीं।

अब जैसे कोई भी ढांचे की बात हो···मैं जो फर्क कर रहा हूं स्टैटिक सोसायटी और डायनैमिक सोसायटी में, वह पहला फर्क यह कर रहा हूं कि स्टैटिक सोसायटी अपने ढांचे की परिस्थितियों के बावजूद सम्हालने की कोशिश करती है। हमारा ऐसा समाज रहा है। ऐसा मैं नहीं कह रहा हूं कि डायनैमिक सोसायटी ढांचे नहीं बनाती, लेकिन डायनैमिक सोसायटी ढांचों के ऊपर आश्रित नहीं हो जाती, ढांचों को जीती है। और जब समय व्यर्थ हो जाता है, तो उनको फेंक देती है और उनके बाहर हो जाती है।

अब जैसे उदाहरण के लिए—एक हमारी नैतिकता का ढांचा था, वह हमने एक परिस्थिति में विकसित किया था। अब परिस्थितियां बिल्कुल बदल गयी हैं, लेकिन नैतिकता का ढांचा वही है। और परिणाम में कितनी ही अनैतिकता पैदा हो जाये, हम ढांचे को बदलने को राजी नहीं हैं। अनैतिकता हम झेल लेंगे, लेकिन हम ढांचे न बदलेंगे। जैसे, उदाहरण के लिए, बाल-विवाह चलते थे इस देश में। निश्चित ही बाल-विवाह के साथ नैतिकता का ढांचा दूसरा होगा, होना ही चाहिए। छोटे बच्चों की शादी हो जाती थी, इसके पहले कि वे मेच्योरिटी पर आयें। प्रौढ़ हों सेक्स की दृष्टि से, वे विवाहित हो जाते थे। इसलिए कभी इस मुल्क में युवक और युवती के बीच···

प्रश्न—लेकिन आज वह नहीं है।

उत्तर—न, लेकिन हमारे ढांचे का चिन्तन वही है, मूल्य वही है। जैसे कि हमने आज से पांच सौ साल पहले एक युवक और युवती को, जो अविवाहित हो—

प्रश्न—लेकिन युवक और युवती अपने पैरों पर खड़े होकर अपने आपको पसंद कर लेते हैं। आज तो वह ढांचा नहीं है।

उत्तर—न, आपका मूल्यांकन वही है। आपका मूल्यांकन वही है। लड़के ढांचा तोड़ रहे हैं क्योंकि ढांचा अपने आप गिरा जा रहा है। मैं यह कह रहा हूं कि ढांचा अपने आप बिखर रहा है। आप उसको तोड़ नहीं रहे हैं सचेत होकर।

प्रश्न—ढांचा जो बिखर रहा है, वह नया ढांचा आ रहा है।

उत्तर—न ! नया ढांचा आयेगा। अगर पुराना ढांचा बिखरेगा तो नया ढांचा आयेगा, लेकिन स्टैटिक सोसायटी वह है जो पुराने ढांचे को बचाने की अन्तिम चेष्टा करती है। वह उस ढांचे को विदा कर देने के लिए आतुर नहीं होती है। और नये ढांचे को अगर स्वीकार भी करती है तो बड़े बेमन से स्वीकार करती है, मजबूरी में स्वीकार करती है। वह छाती पर आ ही जाता है तो स्वीकार करती है। मैं यह फर्क कर रहा हूं, मैं वह फर्क कर रहा हूं, हमारी तत्परता, हमारी उत्सुकता और आतुरता नये के स्वागत की नहीं है। नया आ ही जाये और मेहमान बन ही जाये तो धीरे-धीरे हम उसके लिए भी राजी हो जायेंगे, हम तो पुराने के लिए भी राजी थे, इसके लिए भी राजी हो जायेंगे।

प्रश्न—आज की सोसायटी में जो आप कह रहे हैं, वह परिस्थिति नहीं है।

उत्तर—न ! यह आप एकदम गलत ही ख्याल में हैं। गलत ख्याल में इसलिए हैं, जो मैं कह रहा हूं मूल्य की...जैसे मैं उदाहरण के लिए, दो-चार उदाहरण दूं तो ख्याल में आ जायें। इसलिए मैं कह रहा हूं, ताकि ख्याल में आ सके कि ढांचा हमारा सोचने का पुराना ही है। नया ढांचा आ रहा है, लेकिन हम ला नहीं रहे। और यह फर्क है स्टैटिक सोसायटी का। डायनैमिक सोसायटी नये ढांचे को लाने के लिए आतुर होती है।

प्रश्न—आपके ख्याल से नये ढांचे सोसायटी अपने आप ला रही है ?

उत्तर—न, अगर यह प्रेस कांफ्रेंस है तो आपको विवाद का सवाल नहीं है। अगर विवाद करना हो तो फिर पूरी बात करनी पड़ेगी न ! यानी मेरा मतलब यह है कि आप सवाल पूछते हैं—मैं समझा तुम्हारी बात—अगर आप पूछ रहे हैं तो मैं उत्तर दे रहा हूं। मेरा उत्तर सही है या गलत है, यह आपकी टिप्पणी अपनी होनी चाहिए, उससे मुझसे कोई सवाल नहीं हैं फिर। मेरा उत्तर गलत है...नहीं-नहीं, मेरी बात नहीं समझे...और अगर उस पर डिस्कशन करना है न, तब तो लंबा वक्त लगेगा; फिर प्रेस कांफ्रेंस का सवाल ही नहीं रह जाता। नहीं होगा न ! क्योंकि क्वेश्चन पूछ लिया है आपने। मैं कह रहा हूं, स्टेटिक सोसायटी मैं उसको कहता हूं, डायनैमिक सोसायटी इसको कहता हूं, और आपकी सोसायटी को मैं डायनैमिक नहीं कहता हूं। आपको ठीक नहीं लगता है तो उसको आप लिखो। समझे न ? फिर उसमें डिस्कशन का उपाय नहीं है।

प्रश्न—आप पॉलिटिकल डिस्कशन को लाइन नहीं करना चाहते। क्या करना चाहते हैं आप ? मैं जानना चाहता हूं कि क्या परपज है आपका ?

उत्तर—मैं जिन्दगी के सारे मसलों पर सोचता हूं। वह मुझे सुनकर आपको तय करना चाहिए। अगर आपको लगे कि डिफरेंस नहीं है...मैं जो कह रहा हूं, अगर आपको लगता हो कि उसमें दूसरे आदमी के और मेरे सोचने में कोई फर्क नहीं है, तो आप लिखिए। अगर लिखने योग्य न लगे तो मत लिखिए। लेकिन यह तो आपको तय करने की बात है। हां-हां बिल्कुल आपको सोचना पड़ेगा। उसमें मैं एडवाइज दूंगा तो क्या मतलब होगा आपके सोचने का ? मैं अपनी बात कहे देता हूं। आपको लगे कि यह लिखने जैसी बात नहीं है, लिखने योग्य नहीं है, मत लिखिए। यह भी लिखने योग्य हो कि यह लिखने योग्य नहीं , तो यह लिखिए। वह आपकी सोचने की बात है। उससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं है।

प्रश्न—एक दूसरा और सवाल है कि मानवीय कुदरत का एक अंश है और उसके ऊपर कुदरती तत्त्वों का असर गिरता है। जैसा समुद्र किनारे रहने वाला आदमी और वहां की जो आबोहवा है, वह आदमी दूसरी तरह का होगा, पहाड़ पर रहने वाला दूसरी तरह का होगा—ऐसा ठण्डी में, गर्मी में। और आप, वह जो डायनैमिक सोसायटी की बात चल रही है, उसके ऊपर कैसे उसकी परिस्थिति को बदला जा सकता है ?

उत्तर—यह बात महत्वपूर्ण है। क्योंकि हम जैसे भी हैं, हमारे चारों तरफ का मौसम, हवा, प्रकृति सबका परिणाम है। लेकिन इसके बावजूद आदमी इतना अवश नहीं है कि सिर्फ प्रकृति का परिणाम ही हो, आदमी भी प्रकृति पर परिणाम-कारी है। जैसे इसी गांव में रहकर एक आदमी परम्परावादी हो जाये, एक आदमी क्रांतिकारी हो सकता है। और दोनों के लिए मौसम एक-सा होगा, धूप भी एक-

सी होगी, वर्षा भी एक-सी होगी, पहाड़ों पर हरियाली भी एक-सी होगी। यह बात बहुत ठीक है कि प्रकृति बहुत दूर तक निर्धारित करती है कि हम कैसे होंगे, लेकिन हम भी बहुत दूर तक निर्धारित करते हैं कि हम प्रकृति को कैसे होने देंगे! यानी प्रकृति और हमारे बीच वन वे ट्रैफिक नहीं है।

प्रश्न—आप क्या ऐसा कहते हैं कि प्रकृति पर आप कन्ट्रोल कर सकते हैं? एक आम का पेड़ आम का पेड़ है और उस पर जो आम का फल लगता है, क्या आप उसको आम का फल आने की हैसियत से रोक सकते हैं?

उत्तर—मैं आपकी बात समझता हूं। पहले तो आप जो कह रहे हैं उसकी पूरी मैं बात कर लूं। फिर आपकी बातें करूंगा।

यह बात बहुत ठीक है कि गर्म मुल्क का आदमी थोड़ा-सा आलसी होता है, थोड़ा-सा आलसी होगा ठण्डे मुल्क की बजाय, क्योंकि ठण्ड एक स्थिति पैदा करती है शरीर में, गर्मी दूसरी स्थिति पैदा करती है। सीमा पर रहने वाला आदमी एक तरह का होगा, देश के मध्य में रहने वाला आदमी दूसरी तरह का होगा। क्योंकि देश के मध्य में रहने वाले आदमी पर मुसीबतें मुश्किल से आयेंगी, सीमा पर रहने वाले आदमी पर मुसीबतें रोज आयेंगी। रोज उनका मुकाबला करना होगा।

एक सुखी देश का आदमी, जहां सामान्यतया जीवन सुख से चल जाता है, एक तरह का होगा, जहां जीवन बहुत कठिनाई से भरा हुआ है वहां आदमी दूसरी तरह का होगा। ये दोनों बातें सच हैं। लेकिन ये बातें इतनी सच नहीं हैं कि इतनी बातें सोचकर कि जो जैसा है वैसा ही रह जाये। तब फिर ये बातें खतरनाक भी हो सकती हैं। तब गर्म मुल्क का आदमी कह सकता है, हम तो आलसी होंगे ही, क्योंकि हमारा मुल्क गर्म है। लेकिन और गर्म मुल्क भी हैं और जरूरी नहीं है कि उन मुल्कों का आदमी उतना ही आलसी हो। और हमारे मुल्क में सभी लोग आलसी हैं, ऐसा भी नहीं है। प्रकृति निर्धारित करती है, लेकिन इतना निर्धारित नहीं करती जितना हम मान लेते हैं। पचास प्रतिशत शायद वह निर्धारित करती हैं और पचास प्रतिशत हमारी धारणाएं निर्धारित करती हैं कि हम क्या होंगे?

और हमारी धारणाएं इतनी महत्वपूर्ण हैं कि प्रकृति को बहुत सीमाओं पर छूती हैं और बदलती हैं। जैसे आपने कहा, निश्चित ही कोई आम को हम इमली नहीं बना सकेंगे, लेकिन छोटा और बड़ा आम हमारे हाथ में निर्भर होगा। और यह भी कौन कह सकता है कि भविष्य में हम आम को इमली नहीं बना सकेंगे? जैसे-जैसे हमारी समझ गहरी होती जा रही है, वैसे-वैसे हम जानते हैं कि आम का जो बीज है उसमें कोबिड फार्मूला है। वह छोटे-से बीज में फार्मूला है छिपा हुआ, जो उसको आम बनाता है। अब जितनी हमारी अणुओं में प्रवेश हो रहा है तो हम यह भी जान रहे हैं कि हम आम के अणु में भी प्रवेश कर सकेंगे और हम यह जान सकेंगे कि कौन-सा खास तत्व इसको आम बनाता है। अगर उसको हम उसके

बीज से अलग कर सकें तो हम आम को दूसरी शक्ल में ले आयेंगे। आम, आम नहीं रह जायेगा।

आज रूस में ऐसे बहुत से फल हैं जो पृथ्वी पर कभी भी नहीं थे। जैसे कि रूस में उन्होंने ऐसे गेहूं की पैदावार भी की है जिसको हर वर्ष काटकर फेंक नहीं देना पड़ता, जो प्रतिवर्ष फसल भी दे सकता है। अब वह बिल्कुल ही नयी आदमी की खोज है। ऐसा पौधा पृथ्वी पर कभी भी नहीं था गेहूं का। जब कि हर वर्ष ही काट देना पड़ता था फसल। लेकिन एक पौधा दस साल तक काम दे जाये और दस साल गेहूं की फसल दे दे, वह बिल्कुल ही नयी खोज है। वह आदमी की ही ईजाद है।

प्रश्न—इसमें कोई फर्क तो नहीं हुआ?

उत्तर—हां, गेहूं में भी बहुत बुनियादी फर्क पड़ेगा। बुनियादी फर्क का मतलब यह है।

प्रश्न—गेहूं बाजरा तो नहीं हो गया?

उत्तर—यह हो सकता है, यह सम्भावना है। यह सम्भावना इसलिए है कि जैसे-जैसे हमारी समझ बढ़ती है, गेहूं के, गेहूं होने का एक प्लान है, उस प्लान को अगर हम कल कभी बदल सकते हैं, तो यह भी सम्भव है। उसमें बहुत कठिनाई नहीं है। जैसे आज तक हमें ख्याल था कि लड़की, लड़की होगी, लड़का, लड़का होगा। लेकिन आज सम्भावना बढ़ गयी है कि हम पेट में लड़के और लड़की में रूपान्तरण कर सकें। अगर लड़का लड़की हो सकती है और लड़की लड़का हो सकता है, तो बहुत कठिनाई नहीं है कि गेहूं कल आम हो सके। निश्चित ही वह और तरह का आम होगा क्योंकि वह गेहूं से आयेगा। आम ही नहीं होगा, लेकिन इसकी सम्भावना रोज बढ़ती जाती है क्योंकि जितनी हमारी समझ बढ़ती है प्रकृति के बाबत, उतना बदलने की सामर्थ्य बढ़ती है।

लेकिन अगर हमने कोई ऐसी धारणा पकड़ ली कि हम प्रकृति को बदल ही नहीं सकते, तो यह धारणा प्रकृति से ज्यादा मजबूत सिद्ध होगी। और इस धारणा को बदलना बहुत कठिन हो जायेगा। प्रकृति को बदलना इतना कठिन नहीं जितना इस धारणा को बदलना कठिन हो जायेगा।

जो मैं कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि हमें प्रकृति निर्धारित करती है, लेकिन हम भी लौटकर प्रकृति को निर्धारित करते हैं। आज जमीन पर जो डायनैमिक सोसायटी है, उन्होंने बहुत दूर तक प्रकृति को निर्धारित किया है। जो स्टैटिक सोसायटीज हैं, वे प्रकृति से निर्धारित होती चली जा रही हैं। क्योंकि पानी नहीं गिरा है तो डायनैमिक सोसायटी फिक्र करेगी कि बादल कैसे लाया जा सके? स्टैटिक सोसायटी सिर्फ प्रार्थना करेगी कि हे भगवान्! बादल ला दे। स्टैटिक सोसायटी और कुछ नहीं कर सकती है, भगवान् से प्रार्थना कर सकती है कि पानी

ला दे। यह सब कर सकती है। लेकिन बादल लाये जायें और गांव पर बादलों के ऊपर बर्फ छिड़का जाये और पानी बरसा लिया जाये। वर्षा अलग हो गयी तो गांव के बादल अलग कर दिये जायें। वह स्टैटिक सोसायटी इसकी फिक्र नहीं कर पायेगी।

स्टैटिक सोसायटी अपने ढांचे में जियेगी। यज्ञ हमेशा होता रहा है, वह यज्ञ करती रहेगी। वह यह भी न पूछेंगी की यज्ञ का अब कोई रेलेवेंस भी रह गया है बादलों से पानी गिराने से, या नहीं रह गया है? इन्द्र का कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है बादलों से कि अब नहीं रह गया है? लेकिन हमारी धारणा में बना है यह सम्बन्ध। इसलिए हम इन्द्र की पूजा कर रहे हैं और प्रार्थना कर लेंगे। स्टेटिक सोसायटी अपने पुराने ढांचे पर पुर्नविचार करने को राजी नहीं होती। रिकंसीडर नहीं करती। जब कि सब ढांचे रोज पुर्नविचार किये जाने चाहिए क्योंकि जिन्दगी रोज बदल रही है और हमारा ज्ञान रोज बढ़ता जा रहा है। नये ज्ञान के संदर्भ में पुराने ज्ञान को रोज करने की हिम्मत दिखानी चाहिए; तो स्टैटिक सोसायटी डायनैमिक सोसायटी हो जायेगी।

प्रश्न—वह नया ज्ञान मानव जाति के उत्थान के लिए आता है कि विनाश के लिए?

उत्तर—ज्ञान न तो उत्थान के लिए आता है, न विनाश के लिए आता है। ज्ञान का हम क्या उपयोग करते है, इस पर निर्भर करता है। हम उसका उत्थान के लिए उपयोग कर सकते हैं और विनाश के लिए भी उपयोग कर सकते हैं। ज्ञान बहुत तटस्थ है। ज्ञान की अपनी आप से कोई खबर नहीं है कि आप क्या करेंगे? ज्ञान सिर्फ ज्ञान है और ज्ञान का उपयोग सदा आप पर निर्भर है—आपके ढांचे पर, सोचने के ढंग पर, परिभाषा पर, विचार पर, मत पर ज्ञान का उपयोग होगा। ज्ञान का उपयोग हमेशा आदमी पर निर्भर है। ज्ञान तो सिर्फ तटस्थ है।

प्रश्न—जो विचार है, वह किस पर निर्भर है?

उत्तर—हम पर निर्भर है।

प्रश्न—हम किस पर निर्भर हैं?

उत्तर—यह अगर हम इस तरह पूछते चले जायें तो क्या मतलब होगा? हम कहते हैं, भगवान् पर निर्भर हैं। आप कहते हैं, भगवान् किस पर निर्भर है? क्या करियेगा?

प्रश्न—आपने कहा कि कांग्रेस वालों ने गांधीजी को एक साधन के रूप में, उनकी विचार धारा को एक साधन के रूप में इस्तेमाल किया, तो मैं पूछता हूं कि गांधीजी ने जो अहिंसा की बात की, जो चर्खे की बात की, और जो भगवान् राम की बात की वह भी एक पॉलिटिकल लीडर की हैसियत से, अपने

पॉलिटिकल हेतु सिद्ध करने के लिए की; नहीं कि इसमें वे मानते थे इसलिए की। इसके बारे में आपका क्या ख्याल है?

उत्तर—मैं समझा नहीं, गांधीजी के किसी विचार से मैं सहमत नहीं हूं लेकिन उनकी नियति पर कभी शक नहीं करता हूं। न गांधीजी के चर्खे से सहमत हूं, न उनके राम से सहमत हूं, न उनके राम-राज्य से सहमत हूं। लेकिन उनकी नियति पर शक नहीं कर पाता हूं—सब तरह से असहमत होते हुए भी। गांधीजी ने जो भी किया, उसका परिणाम कुछ भी हुआ हो, लेकिन वे उसे पूरी अपनी आन्तरिक मान्यता से कर रहे थे। जो गलत था, पूरी निष्ठा से कर रहे थे। न तो उनके लिए पॉलिटिकल एण्ड का सवाल था—क्योंकि ऐसे बहुत-से मौके आये जब कि ऐसा लगा कि वे अपनी बातों के कारण पॉलिटिकल एण्ड खोये दे रहे हैं बजाय बचाने के, लेकिन वे अपनी बातों पर खड़े रहे। ऐसा मुझे नहीं लगता है कि उन्होंने कोई देश के चित्त के शोषण के लिए ये बातें की हों। देश का शोषण हुआ हो, यह बिल्कुल दूसरी बात है; लेकिन गांधीजी सचेत रूप से यह नहीं कर रहे थे। उनको जो ठीक लग रहा था, वे वही कर रहे थे।

लेकिन गांधीजी के पीछे चलने वाले लोग बहुत सचेत रूप से चेष्टा कर रहे थे कि गांधीजी का क्या उपयोग किया जा सकता है? इसलिए गांधीजी के आजादी मिल जाने के बाद गांधी और गांधी के अनुयायी में इतनी बड़ी खाई पड़ गयी कि उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। वह खाई भारी इसलिए पड़ गयी कि काम पूरा हो गया था। गांधीजी तो बाद में भी अपनी बात कहे चले गये। आजादी आ जाने से कोई फर्क नहीं पड़ा उनमें। क्योंकि अगर पॉलिटिकल एण्ड या गांधीजी के विचार का, तो आजादी आ जाने के बाद उनको बदल जाना चाहिए था।

उनको अब बातें और ढंग से करनी चाहिए थीं। नहीं, वह आजादी के बाद भी और आजादी के पहले, गांधीजी जिन्दगी में कोई अभ्यस्त नहीं हैं, कोई डिस्कंटीन्यूटी नहीं है। आजादी आयी या नहीं, गांधीजी एक कंटीन्युअस, एक सतत प्रक्रिया हैं। उसमें कहीं कोई गैप नहीं है।

लेकिन गांधीवादी में आजादी के पहले और पीछे में बहुत बड़ा गैप है। गांधीवादी आजादी के पहले एक तरह का आदमी था और आजादी के बाद बिल्कुल दूसरे तरह का आदमी सिद्ध हुआ। उस दोनों की शक्लों को भी मिलाना मुश्किल है। सिर्फ कपड़े मेल खाते हैं, दोनों की शक्लों में कोई मेल नहीं है। लेकिन गांधी जी की शक्ल वही की वही है। अगर पॉलिटिकल एण्ड था तो गांधीजी की शक्ल में भी परिवर्तन हो जाना चाहिए था, लेकिन वह परिवर्तन नहीं दिखायी पड़ता है।

तो मैं मानता हूं कि उनके लिए तो वह नैतिक विचार और सिद्धान्त की

बात थी। आजादी उससे आ जाये तो ठीक, न आये तो भी वह अहिंसा पर लगे रहने को तैयार हैं। यानी उनकी दृष्टि में स्वराज्य से भी ज्यादा मूल्य अहिंसा का था—उनकी दृष्टि में। वह दृष्टि गलत है या सही, वह दूसरी बात है। उनकी दृष्टि में अहिंसा का मूल्य स्वराज्य से भी ज्यादा था। जिसे वे अहिंसा समझते थे, वे मानते थे, उसके लिए स्वराज्य भी खोया जाये तो हर्ज नहीं है। लेकिन हिंसा के द्वारा स्वराज्य लिया जाये, यह भी वे बर्दाश्त नहीं करते।

और जब किसी आदमी की पालिसीं होती हैं और सिद्धान्त नहीं होता तो वह आदमी हमेशा बदल सकता है, क्योंकि सिद्धान्त का कोई सवाल नहीं है। अगर मुझे ऐसा लगता है कि आपके कारण मेरा काम हो सकता है, तो मैं आपके साथ हूं। और आपके विरोधी के साथ होने से हो सकता है, तो आपके विरोधी के साथ हूं। मेरे लिए सवाल काम के पूरे होने का है। गांधीजी की जिन्दगी में वैसा नहीं दिखायी पड़ता। वे बिल्कुल पागल की तरह जो उन्हें ठीक लगता है, उसे पकड़े हुए हैं। काम बनता हो कि मिटता हो, आता हो कि जाता हो, यह सवाल नहीं है। इसलिए गांधीजी की नीयत पर कोई सवाल नहीं उठता है, मेरी नजर में। हालांकि गांधीजी के किसी सिद्धान्त से मैं सहमत नहीं हूं। न तो मैं यह मानता हूं कि गांधीजी की अहिंसा—अहिंसा है, मैं तो मानता हूं, वह हिंसा का ही रूप है।

प्रश्न—आपने यह कहा कि गांधीजी अहिंसा को स्वातन्त्र्य देवी त्यागना चाहते थे, लेकिन अहिंसा छोड़ने वाले नहीं थे, तो उन्नीस सौ बत्तीस में, जब पहली दफा कांग्रेस ने पावर लिया और कन्हैयालाल मुंशी उनके होम मिनिस्टर थे तब लाल बाग में बम्बई में उन्होंने मजदूरों पर गोलीबार किया, लाठी चलायी और गांधीजी ने उसका बचाव किया था तो वह किस तरह आप योग्य लिख रहे हैं।

उत्तर—गांधीजी की जिन्दगी में एक नहीं बहुत मौके हैं जहां वे हिंसा का बचाव करते हुए मालूम पड़ते हैं, लेकिन गांधीजी की अगर पूरी बात हम समझें तो गांधीजी का सदा ख्याल यह है कि एक चुनाव हिंसा और अहिंसा के बीच है, उस चुनाव में वे हमेशा अहिंसा के साथ हैं। लेकिन जिन्दगी में ऐसा सीधा चुनाव नहीं है। जिन्दगी में सदा चुनाव कम हिंसा और ज्यादा हिंसा के बीच है, तो गांधीजी कम हिंसा के साथ हैं। जिन्दगी में ऐसा चुनाव है ही नहीं। जिन्दगी में इस तरह एब्सलूट नहीं होते कि यह है हिंसा और यह है अहिंसा। जिन्दगी में तो सिचुएशंस होते ही हैं, लेकिन कम हिंसा और ज्यादा हिंसा का सवाल होता है। तो गांधीजी को जब भी ऐसा लगा कि जो हिंसा हुई है, अगर वह नहीं होती है तो ज्यादा हिंसा होगी, तब वह हिंसा के साथ दिखायी पड़ते हैं। लेकिन उसमें भी जो उनकी तौल का ढंग है वह अहिंसा का ही है क्योंकि वे मानते हैं कि कम हिंसा

अहिंसा के ज्यादा निकट है।

ऐसे बहुत मौके हैं······एक मौका नहीं है, बहुत मौके हैं अब वे हिंसा के साथ मालूम पड़ते हैं। लेकिन उनकी दृष्टि वही है सदा। जब वे इंगलैंड के लिए सैनिक भर्ती करवा रहे हैं तो हिंसा की ही बात है। फिर उनको ऐसा लग रहा है कि अगर इंगलैंड हारता है तो दुनिया ज्यादा बड़ी हिंसा में पड़ जायेगी।

इंगलैंड का विरोधी अगर जीतता है। अगर इंगलैंड जीतता है तो दुनिया कम हिंसा में पड़ेगी बजाय जर्मनी के जीतने से, तो वे इंगलैंड के साथ खड़े हो जायेंगे। जिन्दगी में तो शैड थे, जिन्दगी में ऐसी दो चीजें टूटकर नहीं खड़ी हैं कि यह हिंसा है और यह अहिंसा है—हां या ना में जवाब हो जाये।

जहां तक सिद्धान्त में बात करनी है वहां तक हम सीधी बात कर सकते हैं कि अहिंसा को मैं पसन्द करता हूं। लेकिन जहां जिन्दगी के वास्तविक तथ्य को पकड़ना हो वहां सदा यह निर्णय करना पड़ेगा कि कम हिंसा या ज्यादा हिंसा। तो गांधीजी कई बार हिंसा के पक्ष में दिखायी पड़ सकते हैं। लेकिन वे वहां भी कम से कम हिंसा के ही पक्ष में हैं। और अगर उनको ऐसा लगता हो कि गोली चलाने से कम हिंसा होगी और गोली न चलाने से ज्यादा हिंसा होने की सम्भावना है, तो वे शायद गोली चलाने के ही पक्ष में खड़े हो सकते हैं। लेकिन गांधीजी की निष्ठा अहिंसा पर है। पर मेरी जो अपनी दृष्टि है, मैं उससे राजी नहीं हूं। मेरा तो अपना मानना ही यही है कि गांधीजी जिसको अहिंसा कहते हैं, वह भी अहिंसा नहीं है। पर वह दूसरी बात है, उससे गांधीजी का लेना-देना नहीं है।

प्रश्न—आपने कहा, कांग्रेस को हटाने के लिए और दस वर्ष लगेंगे, बीस वर्ष। तो इस ट्रांजिटरी पीरिएड में आप सिंडीकेट और इंडीकेट ग्रुप में, दोनों दल में से कौन-से दल को अच्छा मानते हैं?

उत्तर—कांग्रेस को जितने जल्दी मिटाना हो उतना ज्यादा सिंडीकेट को साथ देना चाहिए कांग्रेस को जितने जल्दी मिटाना हो······मोरारजी, कामराज और पाटिल और उनकी कम्पनी कांग्रेस को जल्दी मरघट पहुंचा सकती है। इन्दिराजी तो तीन-चार साल देर लगायेंगी। ये ही काबिल होंगे और जल्दी पहुंचा देंगे।

प्रश्न—आपने कहा कांग्रेस को खत्म हो जाना चाहिए। और पार्टियां हैं, जनसंघ है, स्वतन्त्र है, कम्युनिस्ट पार्टी है, राइटिस्ट है, तो इसमें से कोई पार्टी खत्म हो जाना चाहिए कि नहीं?

उत्तर—मैं समझा आपकी बात। जैसे ही कांग्रेस खत्म होती है, इसमें से बहुत-सी पार्टियां खत्म हो जायेंगी—कांग्रेस के खत्म होने से इसमें से बहुत-सी पार्टियां टूट जायेंगी।

प्रश्न—कम्युनिस्ट पार्टी भी खत्म होगी क्या?

उत्तर—कम्युनिस्ट पार्टी की ताकत और बढ़ जायेगी, खत्म नहीं होगी।

प्रश्न—मैं सोचता हूं, आपने स्पष्ट अभी कह दिया कि कांग्रेस को खत्म हो जाना चाहिए।

उत्तर—बिल्कुल स्पष्ट कहा।

प्रश्न—तो दूसरी कौन-सी पार्टियां ऐसी हैं जिनको खत्म हो जाना चाहिए?

उत्तर—हां, हां, खत्म हो जाना, जैसे जनसंघ को खत्म हो जाना चाहिए, लेकिन खत्म होगा नहीं। कांग्रेस के खत्म होने से ही जनसंघ की भी ताकत बढ़ेगी, कम्युनिस्ट की भी ताकत बढ़ेगी। कांग्रेस के खत्म होने से ही, कांग्रेस जब बिखराव लेगी, उस बिखराव में इनमें से कुछ पार्टियों की ताकत बढ़ेगी, और कुछ पार्टियां जो बीच में खड़ी हैं, उनके भी बिखराव होंगे और सीधी पोलरेटी हो जायेगी।

हिन्दुस्तान में दो बड़ी पार्टियां हो जायेंगी—एक पार्टी जो साम्प्रदायिक आधार पर खड़ी होगी, एक पार्टी जो समाजवादी आधार पर खड़ी होगी और बाकी शैड बीच में से विदा हो जायेंगे। उन शैड का विदा हो जाना भी अच्छा है। क्योंकि उनकी वजह से कन्फ्यूजन होता है। सीधी साफ बात दो रह जायेगी।

हिन्दुस्तान में आने वाले पन्द्रह वर्षों में धीरे-धीरे-धीरे, एक दल तो वह होगा जो पुरातनपंथी है, जो प्राचीनतावादी है, साम्प्रदायिक आधार पर किसी तरह खड़ा होगा, भारतीय संस्कृति की दोहाई पर खड़ा होगा और भारत को किसी तरह पुराने आदर्शों पर ढालने की कोशिश करेगा। जनसंघ जैसा एक वर्ग खड़ा हो जायेगा। वह बढ़ेगा, उसकी ताकत बढ़ जायेगी क्योंकि कांग्रेस के भीतर बहुत बड़ा हिस्सा है जो जनसंघी है, जो कांग्रेस बिखरने से जनसंघ के करीब जायेगा। उसके सिवाय और कोई रास्ता नहीं है। बहुत-सा हिस्सा है जो समाजवादी है। कांग्रेस के बिखरने से वह समाजवाद की तरफ जायेगा। लेकिन समाजवाद के जो फैक्ट हैं, वे भी कांग्रेस के बिखरने से विदा होंगे। वे भी विदा होंगे।

प्रश्न—अभी हाल में जो देश में पोलिटिकल पार्टी हैं क्या इनमें कोई पार्टी ऐसी है जिसको रहना चाहिए?

उत्तर—हिन्दुस्तान में समाजवादी विचार की? न, कोई भी पार्टी आज मुझे ऐसी नहीं लगती, लेकिन वह पार्टी दस वर्षों में विकसित होगी। ये सभी पार्टियां विदा होने जैसी हैं। इनमें से कोई नहीं रहना चाहिए।

प्रश्न—आपने जो कांग्रेस विसर्जन और कांग्रेस खत्म करने को कहा, यदि कांग्रेस खत्म हो जाती है और देश में एक नयी पार्टी या नया संगठन खड़ा हो जायेगा क्या ऐसी परिस्थिति आ जायेगी कि इस देश में जो दंगे फसादें होते हैं—कम्युनिटी-कम्युनिटी के बीच में फसादें होती हैं, वह बन्द हो जायेगी?

उत्तर—असल में जैसे-जैसे समाजवादी विचार लोगों के मन में गहरा जायेगा, साम्प्रदायिक विचार कम होता चला जायेगा। समाजवादी हुए बिना कोई भी व्यक्ति-सम्प्रदाय से मुक्त न होगा।

प्रश्न—आपने समाजवाद की बात की तो इंडिकेट का समाजवाद, यह सिंडिकेट का समाजवाद, इसे भी स्पष्ट करेंगे। दोनों ही समाजवाद की बातें करते हैं।

उत्तर—पहली बात, जैसी ही समाजवादी विचार लोगों के प्राणों में गहरा उतरेगा, वैसे ही साम्प्रदायिकता विदा होगी। उसके विदा होने का और कोई उपाय नहीं है। समाजवाद का मतलब यह है कि जब हम समाज को एक नये वर्ग में बांटते हैं, तो पुराने वर्गों का वर्गीकरण समाप्त हो जाता है। हम समाजवाद को गरीब और अमीर में बांटते हैं, शोषक और शोषित में बांटते हैं। समाजवाद समाज को वर्गों में बांटता है; न तो वर्णों में बांटता है और न सम्प्रदायों में बांटता है। वह न तो यह कहता है कि हिन्दू-मुस्लिम के बीच संघर्ष है। वह यह कहता है संघर्ष गहरे में अमीर और गरीब के बीच में है।

अगर समाजवाद का चिन्तन ठीक से गहरा हो जाये तो हमारे पुराने सारे वर्गीकरण गिर जाते हैं। संघर्ष हिन्दू और मुसलमान के बीच नहीं है, संघर्ष अमीर और गरीब के बीच है। अगर यह बात बहुत स्पष्ट हो जाये, तो मुसलमान मजदूर हिन्दू मजदूर की छाती में छुरा भोंकने से, या हिन्दू मजदूर मुसलमान की छाती में छुरा भोंकने को अर्थहीन मानता है। बल्कि उसे यह भी दिखायी पड़ने लगता है कि निश्चित ही वह जो अमीर और गरीब के बीच बंटवारा है, वह बंटवारा किसी तरह साफ न हो जाये, इसलिए ये सारे सम्प्रदाय के उपद्रव चलते हैं और चलाये जाते हैं। सिर्फ समाजवादी चित्त ही साम्प्रदायिकता से मुक्त हो सकता है। क्योंकि सम्प्रदाय का विभाजन गिर जाता है। एक नया विभाजन हमें दिखायी पड़ने लगता है।

दूसरी बात—आप यह पूछते हैं कि कौन-सा समाजवाद? यह बड़े मजे की बात है। हमारे मुल्क में जो सवाल खड़ा हो गया है, वह—कौन-सा समाजवाद? यह बड़े मजे की बात है। यह सिर्फ इस बात की सूचना देता है, सिर्फ इस बात की कि समाजवाद की धारणा हमारे सामने साफ नहीं हो पायी है, इसलिए कौन-सा समाजवाद का सवाल उठता है। समाजवाद की धारणा स्पष्ट नहीं है। और प्रत्येक व्यक्ति समाजवाद की बातें कर रहा है। इसलिए तय करना बहुत मुश्किल हो गया है कि कौन-से समाजवाद की बात हो रही है।

समाजवाद की बातें इस बात की सूचना तो है ही कि समाजवाद के अतिरिक्त अब किसी के बचने की उम्मीद नहीं है। समाजवाद के विरोध में जो खड़ा है, वह भी समाजवाद की भाषा में ही बातें करेगा। यह इस बात की तो स्पष्ट

खबर है कि समाजवाद के अतिरिक्त और कोई बच नहीं सकता है। एकमात्र अपील रह गयी है समाजवाद की। अगर लोकमानस में किसी की भी अपील है तो वह समाजवाद की। तो समाजवाद के विरोधी को भी समाजवाद की ही बात करनी पड़ रही है, लेकिन तब पच्चीस तरह के समाजवाद खड़े हो गये हैं।

मेरी अपनी दृष्टि यह है कि पच्चीस तरह के समाजवाद जब तक हैं, उनमें से मैं कोई चुनाव नहीं करता। जब तक ये पच्चीस तरह के समाजवाद हैं, तब तक समाजवाद की ठीक धारणा विकसित न हो पायेगी। इसलिए मैं इन पच्चीस की फिक्र ही नहीं करता। समाजवाद की धारणा कैसे विकसित हो, इसकी चिन्ता मैं रखता हूं। और अगर वह विकसित हो जाये तो ये पच्चीस फैड आउट हो जायेंगे, वे विदा हो जायेंगे। एक दफा हमें समाजवाद की स्पष्ट धारणा हो जाये तो देश में समाजवाद की एक ही चिन्तन पद्धति हो जायेगी। तब ये अपने आप विदा हो जायेंगे। और ये विदा न होंगे, और ये विदा होना भी न चाहेंगे। और ये कन्फ्यूज करते रहेंगे। समाजवाद को हजार अर्थ देते रहेंगे, हजार नाम देते रहेंगे।

प्रश्न—समाजवाद का आगे उत्तर मत दीजिए। मैं बीच में एक सवाल पूछना चाहता हूं कि दुनिया में जो समाजवाद का अभी अच्छा स्वरूप है वह रशिया और चीन इन दोनों देशों में मिलेगा। लेकिन वहां भी हिंसा चलती है। दूसरे देश से भी आक्रमण चलता है और ख्रुश्चेव जैसा आदमी जो समाजवाद की दिशा में आगे काम कर रहा था उसको भी जनता की इच्छा के कारण जाना पड़ा क्योंकि वहां भी जनता सुख और शांति नहीं मानती है। तो आपका समाजवाद क्या रशिया और चीन का जो अभी स्वरूप है उससे आगे जाता है कि उसकी दिशा बदलती है? तो यह जो आपने समाजवाद, तरह-तरह के समाजवाद की बात करते हैं, उसमें से एक विचार का जन्म हो वैसा समाजवाद आप कह रहे हैं। तो ऐसा भी विचार का जन्म होगा तब भी जो पोलिटिकल पार्टीज होंगी वे उनका अपने लाभ के लिए रिहर्सल करेंगे कि नहीं?

उत्तर—पहली बात तो यह है कि चीन में और रूस में समाजवाद नहीं है। चीन और रूस में समाजवाद के नाम पर एक मैनेजेरियल स्टेट पैदा हुई। समाजवाद नहीं है, लेकिन समाजवाद के सहारे जो क्रांति हुई वह है। वह सोशलिस्ट नहीं है, वह क्रांति मैनेजेरियल है। जहां मालिक था, वहां व्यवस्थापक बैठ गया है, और कोई फर्क नहीं पड़ा है। मालिक की जगह मैनेजर बैठ गया है। और जो स्थिति है, उसको अगर ठीक शब्दों में कहें तो वह स्टेट कैपिटलिज्म है। वह समाजवाद नहीं है, राज्य पूंजीवाद है। पूंजीपतियों की सारी सत्ता को राज्य ने हड़प लिया है और राज्य पूंजीपति बन गया है। और जब राज्य के पास सारी शक्ति इकट्ठी हो गयी हो और राज्य पूंजीपति बन गया हो तो पूंजीवादी व्यवस्था से भी बदतर

व्यवस्था पैदा हो जायेगी क्योंकि पूंजीवाद में कम से कम पूंजी बिखरी हुई है, पूंजीवादी बिखरा हुआ है। उसके पास इकट्ठी ताकत नहीं है, कम से कम राज्य की पूरी ताकत उसके पास नहीं है। लेकिन रूस और चीन में जो घटना घटी है, वह घटना यह है कि राज्य के हाथ में सारी ताकत इकट्ठी हो गयी है।

समाजवाद वहां भी नहीं आ पाया। वहां पूंजीवाद ने एक नया रूप लिया है, जो राज्य पूंजीवाद का रूप है। मैं जिस समाजवाद की बात कर रहा हूं, वह समाजवाद न तो पूंजीवाद है और न रूस और चीन का साम्यवाद है। मैं समाजवादी व्यवस्था उस व्यवस्था को कह रहा हूं, जहां व्यक्तिगत पूंजीपति की जगह राज्य पूंजीपति होकर नहीं बैठ जाता है बल्कि, जहां कोई मजदूर नहीं रह जाता। प्रत्येक व्यक्ति पूंजी का भागीदार हो जाता है।

जैसे—उदाहरण के लिए : एक बैंक है, एक तो स्थिति यह है कि एक आदमी का बैंक है, एक पूंजीपति के हाथ में बैंक है, दस पूंजीपतियों के हाथ में बैंक है। यह पूंजीवादी व्यवस्था है बैंक की। बैंक को नेशनलाइज किया। यह स्टेट कैपिटलिज्म की व्यवस्था है। राज्य के हाथ में बैंक चला गया। मैं समाजवादी स्थिति उसको कहता हूं जब बैंक, बैंक से सम्बन्धित सारे लोगों की भागीदारी बन जाये। वह उसके चपरासी की भी उसमें भागीदारी हो। एक फैक्ट्री—जब मजदूर उसमें पूंजीपति, मैनेजर, उन सबकी भागीदारी बन जाती है—भागीदारी राज्य के हाथ में नहीं चली जाती है, मालकियत राज्य के हाथ में नहीं जाती, बल्कि उस यूनिट के भीतर काम करने वाले सारे लोगों में कोई भी मजदूर और मालिक नहीं रह जाता है, वे सभी मालिक हो जाते हैं, वे सभी भागीदार हो जाते हैं।

तो मेरी दृष्टि में एक तरह का जिसको कहना चाहिए सिंडीकेट—एक इस तरह का समूह, जो भीतर से सबको मालिक मानकर जीता है। और मैं राज्य के हाथ में सारी ताकत देने के पक्ष में नहीं हूं। और राज्य के हाथ में सारी ताकत जायेगी तो पूंजीवाद तो मिटेगा और समाजवाद आयेगा नहीं। और एक नयी व्यवस्था आयेगी जो पूंजीवाद से भी मंहगी और खतरनाक सिद्ध हो सकती है। क्योंकि इस नयी व्यवस्था में स्वतन्त्रता का कोई उपाय न रह जायेगा। पुरानी व्यवस्था में स्वतन्त्रता का एक उपाय भी था।

ऐसी समानता का मैं कोई मूल्य नहीं मानता हूं, जो स्वतन्त्रता को खोकर मिलती हो। और ऐसी समानता मंहगा सौदा है, जो स्वतन्त्रता की हत्या पर आये क्योंकि फिर उस व्यवस्था को बदलने की कोई सुविधा न रह जायेगी। आज रूस में व्यवस्था को बदलने का कोई उपाय नहीं रह गया है। आज पृथ्वी पर पूरे मनुष्य जाति के इतिहास में रूस ऐसा मुल्क है, जहां बगावत करीब-करीब असम्भव है। जहां भीतर से बगावत की सब जड़ें काट दी गयी हैं। जहां विद्रोह होना ही मुश्किल हो गया है; जहां विद्रोह हो ही नहीं सकता। तो समानता तो आ जाये,

लेकिन स्वतन्त्रता इतनी नष्ट हो जाये कि समानता अर्थहीन हो जाती है । कोई समानता अर्थपूर्ण तभी है, जब वह स्वतन्त्रता को भी अपने भीतर समाहित करती है ।

तो मेरी दृष्टि में समाजवाद का अर्थ है—न तो सत्ता व्यक्ति के—पूंजीपतियों के—हाथ में रह जाये, और न सत्ता राज्य के हाथ में चली जाये । एक सत्ता एक-एक यूनिट की, एक इंडस्ट्री की, एक गांव की, खेत की, खेत पर काम करने वाले, मजदूर फैक्ट्री में काम करने वाला मजदूर, दुकान में काम करने वाला मैनेजर, न पिओन और चपरासी, ये सब भागीदार होते चले जायें । देश की सारी व्यवस्था भागीदारी की व्यवस्था हो, उस व्यवस्था में राज्य मालिक न बन जाये ।

अगर समाजवाद की यह धारणा विकसित न हो तो पूंजीवाद और साम्यवाद ये दो विकल्प हैं । अगर समाजवाद की यह धारणा विकसित न हो तो तीन विकल्प खड़े हो जाते हैं देश के सामने । और मेरी समझ में दस वर्ष में मुल्क के सामने साफ-साफ तीन विकल्प खड़े हो जाने चाहिए । एक पूंजीवादी विकल्प है, जो पुरानी व्यवस्था को बचाने की चेष्टा करेगा । एक साम्यवादी विकल्प है, जो पूंजीवाद की बुराइयों को दिखाकर राज्य पूंजीवाद का प्रलोभन देने की चेष्टा करेगा । और एक तीसरा समाजवादी विकल्प है—उस तीसरे को मैं समाजवादी कह रहा हूं—वह विकल्प, जो सारे देश की, किसी को शोषित नहीं रखना चाहता और सभी को इकट्ठी मालकियत बांट देना चाहता है । वह बिल्कुल तीसरा विकल्प है । और अगर हम उस तीसरे विकल्प को स्पष्ट मुल्क के सामने रख सकें, तो मेरी समझ यह है कि पोलोराइजेशन साफ हो सकता है, इसमें बहुत कठिनाई नहीं है । तब बहुत तरह के समाजवाद का सवाल नहीं रह जायेगा ।

प्रश्न—ऐसा विकल्प तो रक्तपात से आयेगा न ? या लोकतांत्रिक ढंग से आयेगा ?

उत्तर—अब दुनिया में रक्तपात की बहुत जरूरत नहीं है । इसलिए नहीं है जरूरत, दो कारणों से—अगर रक्तपात से लाना हो तो बहुत सम्भावना इसकी है कि स्टेट कैपिटलिज्म आप ले आयेंगे । असल में तीन ही रास्ते हैं । एक रास्ता तो यह है कि हम जबर्दस्ती आदमी की छाती पर सवार हो जायें । और रक्तपात का सदा मतलब यह होता है कि माइनारिटी मेजारिटी को बदलना चाहती है । रक्तपात का सदा मतलब यही होता है ।

अगर मेजारिटी बदलने को उत्सुक हो तो रक्तपात की कोई जरूरत नहीं रह जाती । लेकिन मैं अकेला आदमी या दस आदमी पूरे गांव को बदलना चाहें तब तो बन्दूक से बदलना पड़ेगा । लेकिन मैं मानता हूं कि ऐसी बदलाहट लाने की बात ही उठानी गलत है, क्योंकि पूरा गांव अभी राजी नहीं है । और हम दस को क्या हक है कि हम ऐसी बदलाहट लायें ?

दूसरा रास्ता यह है कि हम परसुएड करें, हम लोगों को समझायें-बुझायें और एक स्थिति बन जाये कि अधिक लोग राजी हो जायें तो फिर रक्तपात की कोई जरूरत नहीं रह जाती है । असल में रक्तपात का मतलब ही यह है कि छोटा हिस्सा बड़े हिस्से को जबर्दस्ती बदलने के लिए आतुर हो रहा है । लेकिन चाहे वह बदलाहट अच्छी भी क्यों न हो, जब बड़ा हिस्सा राजी नहीं हो तो अलोकतांत्रिक है । बड़े हिस्से को राजी करने को सारे उपाय हैं । परसुएशन के सिवाय कोई रास्ता नहीं है, अगर हम लोगों को राजी कर सकें । फिर मेरा मानना यह है कि अगर समाजवाद रक्तपात से ही आता हो तो ऐसा समझ में पड़ता है कि तो फिर समाजवाद पूरा-पूरा ठीक दर्शन नहीं है । लोग इसके लिए राजी नहीं हो पा रहे हैं ।

प्रश्न—मैं यह पूछना चाहता हूं, जो आप बात कर रहे थे वह पास्ट की आप बात कर रहे थे ?

उत्तर—नहीं, पास्ट की बात करने, परसुएड करने का कोई सवाल नहीं है । असल में क्रांति की दो दिशाएं हैं—एक तो अतीत से मुक्त करना और भविष्य के प्रति उन्मुख करना । ये दोनों एक ही प्रक्रिया के हिस्से हैं । अतीत से मुक्त करना और भविष्य की ओर उन्मुख करना ये एक ही प्रक्रिया के दो हिस्से हैं । क्योंकि जो चित्त अतीत से मुक्त नहीं है, वह भविष्य की तरफ उन्मुख नहीं हो सकता है । इसलिए एक तरफ अतीत से लड़ाई लड़नी पड़ती है और भविष्य का चित्र देना पड़ता है । ये दोनों एक साथ चलेंगे ।

प्रश्न—लेकिन वह तो स्टेटिक सोसायटी अतीत में खड़ी रहती है ।

उत्तर—हम खड़े ही हैं । मैं यही कह रहा हूं कि हम स्टेटिक सोसायटी अभी भी हैं इसलिए अतीत से हमें लड़ना पड़ेगा । जो सोसायटी आज है वह स्टेटिक सोसायटी है ।

प्रश्न—एक बात का मुझे स्पष्टीकरण मांगना है । मेरे पास कुछ लोग आये हैं तो उन्होंने बताया कि आपके प्रवचन के वहां टेप रिकार्ड सुनवाये जा रहे हैं । बाद में ऐसा कहा जाता है आपके सम्प्रदाय द्वारा कि अगर रजनीश जी को आप समझ न सकें तो माओ और मार्क्स को भी पढ़ लें तब रजनीश जी समझ में आ जायेंगे । आपका क्या कहना है ?

उत्तर—मुझे पता नहीं, लेकिन ऐसे भी माओ और मार्क्स को पढ़ना बुरा नहीं है । मुझे समझने के लिए नहीं, अगर हिन्दुस्तान को माओ और मार्क्स से बचाना हो तो भी पढ़ना बहुत जरूरी है ।

प्रश्न—पोलिटिकल सिचुएशन क्या है ? इंदिराजी कब तक सत्ता सम्हाल सकती हैं ?

उत्तर—इंदिराजी साल भर से ज्यादा नहीं टिक सकती हैं । इसलिए नहीं टिक सकती हैं कि जिन लोगों को आज उन्होंने अपने पक्ष में खींच लिया है, वे

सब आश्वासन के आधार पर हैं। कोई सैद्धान्तिक आधार नहीं है। उनको प्रामिसेस दिये हैं। वह छः महीने में मुश्किल पड़ जाने वाली है। सबको आश्वासन पूरे नहीं किये जा सकते हैं। आज कांग्रेस में निजलिंगप्पा या इंदिराजी के बीच जो भी आना-जाना चल रहा है, वह सब आश्वासन के आधार पर चल रहा है। जिन-जिन को आश्वासन दे दिये हैं वे इतने ज्यादा हैं, वे पूरे नहीं हो सकते हैं। छः महीने में मुश्किल शुरू हो जायेगी। और जिनके आश्वासन पूरे नहीं होंगे, वे दूसरे कैम्प में जाना शुरू हो जायेंगे। और मजा यह है, निजलिंगप्पा के पास आश्वासन देने के लिए ज्यादा पद हैं, इंदिराजी के पास तो पद भरे हुए हैं। वह उनके पास ज्यादा पद हैं, खाली पद हैं। तो वे ज्यादा आश्वासन पूरे कर सकते हैं। तो छः महीने में मुश्किल शुरू हो सकती है। अभी नहीं शुरू होगी, छः महीने में मुश्किल शुरू होगी। जो पूरे नहीं हो पायेंगे, वे वहां जाना शुरू हो जायेंगे। और सबके पूरे नहीं हो सकते हैं। और इस वक्त पूरे देश की राजनीति आश्वासन पर चल रही है यह पद देंगे और यह पद देंगे और यह पद देंगे। वह कठिनाई छः महीने में मालूम होगी। साल भर से ज्यादा नहीं चल सकती हैं।

प्रश्न—लेबिल लगाने से······।

उत्तर—बहुत जल्दी लेबिल लगाने से फायदा नहीं है। उसमें रेडिकल कुछ भी नहीं है। खोसला कमेटी में रेडिकल कुछ भी नहीं है, एकदम मानवीय है। यह स्वाभाविक है कि अगर चित्रों में चुम्बन आये तो बड़ा अच्छा है, उचित है। जीवन में जो है चित्र से क्यों बचाना ?

प्रश्न—गांधीवाद और समाजवाद में आप क्या फर्क करते हैं ?

उत्तर—गांधीवाद समाजवाद को बचाने की अंतिम चेष्टा है।

खोसला एक दम पीछे है, लेकिन फिल्म में आयेगा तो पब्लिक में आने में आसानी पड़ेगी।

प्रश्न—क्या गांधीज्म फ्राड है ?

उत्तर—हां, गांधी तो फ्राड नहीं है लेकिन गांधीज्म फ्राड है।

प्रश्न—गांधीज्म फ्राड है तो किसने फैलाये ? किसने प्रचार किया उसका ?

उत्तर—हां, गांधीवादी कर रहे हैं और पूंजीवाद का पूरा समर्थन है ?

प्रश्न—गांधीज्म यदि फ्राड है तो गांधी भी फ्राड हुए ?

उत्तर—नहीं, यह जरूरी नहीं है। यह जरूरी नहीं है। यह जरूरी इसलिए नहीं है मैंने जो पहले बात कही, वह मैं फिर कहूंगा। गांधीजी को जो ठीक लगता है वह उसे कह रहे है, वह फ्राड नहीं है। लेकिन गांधीजी जो कह रहे हैं वह फ्राड सिद्ध होगा सोसायटी के लिए, यह मैं कह रहा हूं। इसलिए गांधीजी का सवाल नहीं है।

प्रश्न—क्या सामाजिक कोई परिवर्तन आयेगा क्या ?

उत्तर—जरूर फर्क पड़ेगा। असल में मेरा मानना यह है कि सेक्स के सम्बन्ध में बहुत टैबूज हैं और वह टैबूज जो हैं समाज को रुग्ण करते हैं, बीमार करते हैं। वह टैबूज उठने चाहिए तो समाज ज्यादा स्वस्थ होगा। असल में सेक्स जीवन का सहज अणु है, यह समाज ने अब तक स्वीकार नहीं किया है। वह स्वीकृत होना चाहिए, और उसे छिपा-छिपा कर और चोरी-चोरी और अन्धेरे-अन्धेरे में डालने की जरूरत नहीं है। वह जिन्दगी का हिस्सा है। और जितना उसको प्रकाश मिलना चाहिए, मिलना चाहिए। उसको अन्धेरे में डालना जरूरी नहीं है। बल्कि अन्धेरे में उसे डालकर हम ही उसे गन्दा और कुरूप कर देते हैं।

चुम्बन का अपना सौंदर्य है। वह कुरूप हो सकता है, लेकिन उसका अपना सौंदर्य है। उसे छिपाना तो कुरूप है ही। हिन्दी फिलम पर क्या हो रहा है ? हिन्दी फिल्म पर यह हो रहा है, ओठ करीब आयेंगे-आयेंगे और छः इंच की दूरी पर रह जायेंगे। अब वह छः इंच की दूरी पर ठहरे हुए हैं और जनता तालियां पीट रही है। यह सब बेहूदगी है। उनको करीब लाना हो तो करीव लाना ही चाहिए। छः इंच की दूरी पर नहीं रोकना चाहिए।

प्रश्न—आपके फालोअर···।

उत्तर—मेरा कोई फालोअर नहीं है। मेरा कोई फालोअर नहीं है। मेरा कोई सम्प्रदाय नहीं है। मेरे मित्र हैं, फालोअर नहीं होने दूंगा। जब तक नहीं होने दूंगा। मेरे मित्र हैं, बस इससे ज्यादा कोई सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न—जैसे गांधीजी के गांधीवादी फालोअर हो गये वैसे आपके फालोअर बन जायें तो क्या होगा ?

उत्तर—गांधीजी तो पूरी चेष्टा में थे कि फालोअर होना चाहिए। मैं पूरी चेष्टा में हूं कि नहीं होना चाहिए। गांधीजी की पूरी व्यवस्था ऐसी थी कि उसमें पीछे चलने का पूरा मामला था। मैं भी मामूली आदमी हूं। मैं कोई बड़ा आदमी नहीं हूं। एक मामूली आदमी भी कर सकता है इस ख्याल से।

प्रश्न—देश का अगर भला होता है तो आप राजी हैं न ?

उत्तर—नहीं, बिल्कुल राजी नहीं हूं। देश का बुरा होता है तो मैं राजी नहीं हूं।

प्रश्न—बुरा नहीं, भला की बात कहता हूं।

उत्तर—हां, भले के लिए राजी हूं।

प्रश्न—राजी हैं ? तो देश के भलाई के लिए आपको एक्टिव भाग लेना जरूरी हो तो आप आ सकते हैं कि नहीं ?

उत्तर—जब ऐसा मुझे लगे कि देश की भलाई के लिए है तो जरूर आ सकता हूं। ऐसा मुझे लगे कि देश की भलाई के लिए है। लेकिन मुझे ऐसा लगता

है कि इस समय जिनको भी देश की भलाई सोचनी हो, उन्हें देश की चेतना को जगाने में लगना चाहिए, एक्टिव पालिटिक्स में नहीं। एक्टिव पालिटिक्स उस जगी हुई चेतना से अपने आप आयेगा। हिन्दुस्तान को कुछ ऐसे लोग चाहिए जिनका एक्टिव पालिटिक्स से कोई सम्बन्ध नहीं है। तो वे ही लोग हिन्दुस्तान की चेतना को जगा सकते हैं। एक्टिव पालिटिक्स से मेरा कोई भी मतलब है तो फिर मेरे वेस्टेड इंटरेस्ट शुरू हो जाते हैं। फिर मैं आपकी चेतना जगाने को उत्सुक नहीं हूं, आपको अनुयायी बनाने को उत्सुक हूं। इसलिए मुझे ऐसा लगता है कि आने वाले बीस-पच्चीस वर्षों में कुछ लोगों को देश की कांसेसनेस कैसे बढ़े, और सब तरह की चेतना कैसे बढ़े, उसमें ही लग जाना चाहिए।

प्रश्न--विनोबाजी तो एक्टिव पालिटिक्स में नहीं हैं, लेकिन उससे भी कुछ हुआ नहीं।

उत्तर--विनोबाजी का मामला ऐसा है···मैं यह कह रहा हूं कि एक्टिव पालिटिक्स में तो मैं नहीं हूं और न होना चाहता हूं क्योंकि मुझे कोई अर्थ नहीं मालूम पड़ता, लेकिन पालिटिक्स के बाहर भी होने के पक्ष में नहीं हूं मैं। विनोबा जी उल्टे हैं मुझसे। वे कहते हैं--पालिटिक्स से बाहर निकलना कोई नैतिक पुण्य है। और उन्होंने हिन्दुस्तान की राजनीति से कुछ अच्छे लोगों को बाहर निकालने का पाप किया है। अब वह बेचारे पाप के पश्चात्ताप के लिए जयप्रकाश जी जैसे लोग वापस लौटने लगे हैं। मैं विरोध में नहीं हूं कि कोई पालिटिक्स के बाहर निकले, मैं इस पक्ष में हूं कि कुछ लोग पालिटिक्स के बाहर भी काम करते हों। ताकि चेतना ज्यादा गहरे अर्थों में विकसित हो सके, उनका अपना कोई स्वार्थ न होगा इसलिए। मैं इस पक्ष में नहीं हूं कि सारे लोग पालिटिक्स के बाहर हो जायें। विनोबा एन्टी-पोलिटिकल हैं, मैं एन्टी-पोलिटिकल नहीं हूं मैं सिर्फ पालिटिक्स में नहीं हूं। इन दोनों में फर्क है बहुत ज्यादा। विनोबाजी तो बहुत बुनियादी रूप से पालिटिक्स के विरोधी हैं।

अहमदाबाद, दिनांक २३ दिसम्बर १९६९

नया भारत

विषय	पृष्ठ संख्या

२४—नया भारत

मेरे प्रिय आत्मन्,

अतीत के इतिहास में क्रांतियां होती थीं और समाप्त हो जाती थीं । लेकिन आज हम सतत क्रांति में जी रहे हैं अब क्रांति कभी समाप्त नहीं होगी । पहले क्रांति एक घटना थी, अब क्रांति जीवन है । पहले क्रांति शुरू होती थी और समाप्त होती थी, अब क्रांति शुरू हो गयी है और समाप्त नहीं होगी । अब आने वाले भविष्य में मनुष्य को सतत् क्रांति और परिवर्तन में ही रहना होगा। यह एक इतना बड़ा नया तथ्य है, जिसे स्वीकार करने में समय लगना स्वाभाविक है ।

यदि हम सौ वर्ष पहले की दुनिया को देखें, तो कोई दस हजार वर्ष के लम्बे इतिहास में आदमी एक जैसा था वैसा ही था । समाज के नियम वही थे, जीवन के मूल्य वही थे, नीति और धर्म का आधार वही था । दस हजार वर्षों में मनुष्य की जिन्दगी के आधारों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ । इस सदी में आकर सारे आधार हिल गये हैं और सारी भूमि हिल गयी है। जैसे एक ज्वालामुखी फूट पड़ा हो मनुष्य के नीचे और सब परिवर्तित होने के लिए तैयार हो गया । अब ऐसा नहीं है कि यह परिवर्तन हम समाप्त कर देंगे । यह परिवर्तन जारी रहेगा और रोज ज्यादा होता चला जायेगा ।

अब तक हमने जिस मनुष्य को निर्मित किया था वह एक स्थायी, सुस्थिर समाज का नागरिक था । अब जिस मनुष्य को हमें निर्मित करना है, वह सतत् क्रांति

का नागरिक हो सके इसका ध्यान रखना जरूरी है । भविष्य के मनुष्य की रूपरेखा, या नये मनुष्य के सम्बन्ध में सोचते समय पहली बात यह सोच लेनी जरूरी है कि परिवर्तन के जगत् में जहां रोज सब बदल जायेगा । हम कैसी नीति विकसित करें, हम कैसा आवरण विकसित करें, मनुष्य को फिर से पुर्नविचार करना जरूरी हो गया है । महावीर ने, बुद्ध ने, मनु ने, कृष्ण ने और क्राइस्ट ने हमें मनुष्य की जो रूपरेखा दी थी, वह रूपरेखा आज आउट-आफ-डेट हो गयी है; समय के बाहर हो गयी है। उसी रूपरेखा को अगर लेकर हम चलते हैं तो अब जिन्दगी ढंग की नहीं हो सकती।

इसलिए पहली बात जो मैं कहना चाहता हूं वह यह, कि अब तक के सारे आदर्श और सारे मूल्य जिस भांति और जिस ढांचे में विकसित किये गये थे, वे भविष्य के मनुष्य के काम के नहीं रह गये हैं । अब तक हमने जिस मनुष्य को बनाने की कोशिश की थी वह भय के ऊपर खड़ा हुआ था । नर्क का भय था, स्वर्ग का प्रलोभन था । और भय और प्रलोभन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मनुष्य बुरा न करे, इसलिए नर्क के भय से हमने पीड़ित किया था और मनुष्य अच्छा कर सके, इसलिए स्वर्ग के प्रलोभन दिये थे । लेकिन आज अचानक हम सदी में आकर स्वर्ग और नर्क दोनों ही विलीन हो गये । उनके साथ ही वह नैतिकता भी विलीन हुई जा रही है जो भय और प्रलोभन पर खड़ी थी । आज जो अनैतिकता का सारे जगत् में विस्फोट हुआ है, उसका और कारण नहीं है । पुरानी नीति के आधार गिर गये हैं ।

मैंने सुना है, एक चर्च के स्कूल में एक पादरी बच्चों को नीति की शिक्षा देने आता था । उसने बच्चों को नैतिक साहस के सम्बन्ध में छोटी-सी कहानी कही, मारल करेज के लिए । उसने बच्चों को समझाने के लिए कहा कि नैतिक साहस मनुष्य के जीवन में बड़ी जरूरी चीज है । वह कहानी बड़ी पुरानी थी। उसने उन बच्चों से कहा कि मैं तुम्हें एक छोटी-सी कहानी से समझाऊं—तीस बच्चे किसी पर्वत पर घूमने के लिए गये । वे दिन भर में थक गये हैं । रात सोने के समय सर्द रात है, ठण्ड लग रही है, बिस्तर तैयार हैं । उन्नति बच्चे सो गये, लेकिन एक बच्चा अपनी रात्रि की अन्तिम प्रार्थना करने के लिए अन्धेरे कोने में ठण्ड से सिकुड़ा हुआ बैठा है । तो उस पादरी ने बच्चों को कहा कि वह जो एक है, उसमें बड़ा नैतिक साहस है उन्नति के विरोध में जाने का । जबकि ठण्ड है और ठण्ड बिस्तर में बुला रही है और दिन भर की थकान है । और जब उन्नति लोग सो गये हैं, तब भी एक बच्चा अपनी रात्रि की अंतिम प्रार्थना पूरा किये बिना नहीं सोता है, उसमें बड़ा नैतिक साहस है । वह सात दिन बाद वापस आया। उसने बच्चों से पूछा, मैंने नैतिक साहस की तुम्हें एक कहानी सुनायी थी। मैं तुमसे पूछना चाहता हूं, तुम समझ सके मेरी बात ? क्या तुम भी मुझे कोई घटना सुनाओगे जो नैतिक साहस को बताती हो ? एक बच्चा खड़ा हुआ । यह बच्चा

बीसवीं सदी के पहले कभी भी खड़ा नहीं हो सकता था । एक बच्चे ने खड़े होकर कहा कि हमने भी एक कहानी सोची है और आपकी बात से उसमें नैतिक साहस ज्यादा है । उस चर्च के पादरी ने कहा, "मैं सुनना चाहूंगा ।" उस बच्चे ने कहा, "आप जैसे तीस पादरी पहाड़ पर गये हुए थे घूमने, भ्रमण करने । वे दिन भर के थके-मांदे वापस लौटे । रात सर्द है, ठण्डी है । बिस्तर उन्हें पुकार रहे हैं, लेकिन उन्नत्तिस पादरी प्रार्थना करने बैठ गये हैं, और एक पादरी सोने चला गया है । और उस एक पादरी में बहुत नैतिक साहस है, उन्नत्तिस पादरियों के विरोध में जाने का ।"

यह बीसवीं सदी से पहले किसी बच्चे ने न सोचा होगा । और यह बात सच है । जब उन्नत्तिस लोग प्रार्थना कर रहे हों और उनकी आंखें यह कह रही हों कि जो प्रार्थना नहीं करेगा वह नर्क भेज दिया जायेगा; और उनके सारे व्यक्तित्व का सुझाव यह कह रहा हो, उनके गैस्चर, उनकी मुद्राएं यह कह रही हों कि नर्क में सड़ोगे, तब एक आदमी का प्रार्थना छोड़कर नींद के लिए बिस्तर पर चले जाना बहुत हिम्मत की बात है ।

लेकिन यह हिम्मत आज की जा सकती है, क्योंकि नर्क और स्वर्ग हवाई कल्पनाओं से ज्यादा नहीं रह गये हैं । लेकिन आज से कुछ सदियों पूर्व वे बड़ी सच्चाइयां थीं । और आदमी उन्हीं से भयभीत होकर जी रहा था । तो हमने आदमी को कहा था कि झूठ बोलोगे तो नर्क में पड़ोगे; सत्य बोलोगे तो स्वर्ग का सुख मिलेगा । हमने बहुत प्रलोभन दिये थे । हमने बहुत भय दिखाये थे । आदमी डरा हुआ था । तो वह नीति को मानकर जी रहा था । लेकिन आज सारे भय गिर गये हैं । आदमी निर्भय हुआ है ।

इस निर्भय आदमी पर पुरानी नीति लागू नहीं हो सकती । पुरानी नीति भी पुराने आदमी के साथ मर गयी है, मर रही है, मर जायेगी ।

लेकिन क्या मनुष्य को अनीति में छोड़ देना है ? क्या मनुष्य के अभय और निर्भय होने का अर्थ यह होगा कि वह अनैतिक हो ? अगर यह होगा तो समाज निरन्तर गहरे खतरों में पड़ जायेगा । क्योंकि नैतिक होने का एक ही अर्थ है कि मैं दूसरे व्यक्ति की भी चिन्ता करता हूं, मैं अकेला नहीं हूं । मैं अकेला नहीं हूं । मैं इस पृथ्वी पर साथियों के साथ हूं । कोई भी अकेला नहीं है । हमारे चारों तरफ पड़ोसियों का बड़ा जाल है और मैं पड़ोसी के लिए भी दायित्वपूर्ण हूं । मैं उसके लिए भी विचार करता हूं । उसे दुख न पहुंचे, इस भांति जीता हूं । नैतिकता का आधार इतना है, लेकिन अब तक हमने भय के आधार इस बात को सम्हाले रखा था । कानून का भय था, पुलिस वाला खड़ा है चौराहे पर । अदालत में मजिस्ट्रेट बैठा है । ऊपर भगवान् बैठा है । वह सुप्रीम कांस्टेबल का काम करता रहा है अब तक । बड़े से बड़ा पुलिस का हवलदार था । वह ऊपर से बैठकर नियन्त्रण कर

रहा है, लोगों को नर्क भेज रहा है, स्वर्ग भेज रहा है । लेकिन वह सब बिदा हो गया है ।

बीसवीं सदी की खोज ने बताया कि भगवान् भी हमने अपने भय से निर्मित कर लिया था और उस भगवान् का तो हमें कोई भी पता नहीं है जो है । और जिस भगवान् को हमने निर्मित कर लिया था, वह हमारे भय का ही आकार था । वह भगवान् भी धीरे-धीरे फैड आउट हो गया है । वह भी विलीन हो गया है । उसके साथ उसके नर्क-स्वर्ग भी विलीन हो गये हैं । उसके पुरोहित-पण्डे, वे भी सब विलीन हो गये हैं । आदमी एकदम वैक्यूम में, खाली जगह खड़ा हो गया है । अब हम उसे डराकर नैतिक नहीं बना सकते ।

तो क्या आदमी का अनैतिक होना ही भविष्य होगा ? लेकिन अनैतिक होकर आदमी एक दिन भी नहीं जी सकता है । अगर एक आदमी झूठ बोलकर भी जी लेता है तो सिर्फ इसीलिए कि कुछ लोग उसके झूठ का विश्वास करते हैं । अगर हम सारे लोग झूठ बोलने की कसम खा लें तो झूठ बोलकर जीना एक क्षण भी सम्भव न रह जायेगा । क्योंकि तब झूठ पर विश्वास करने का कोई उपाय न रह जायेगा । झूठ बोलकर भी एक आदमी इसीलिए जी लेता है कि कुछ लोग अब भी सच बोले चले जाते हैं । बेईमानी इसलिए सफल होती है कि बेईमानी है ? नहीं, बेईमानी इसलिए सफल होती है कि अब भी कुछ लोग ईमानदार हैं । झूठ के अपने पैर नहीं हैं, उसे सत्य के पैर चाहिए और बेईमानी के पास अपनी कोई आत्मा नहीं है, उसे ईमानदारी की आत्मा चाहिए । और अनैतिकता एक इंच नहीं चल सकती है, क्योंकि चलने के लिए भी नैतिकता की श्वांस चाहिए । अगर हम सब एक बारगी तय कर लें अनैतिक होने के लिए, तो अनीति भी नहीं चल सकेगी । हम तत्क्षण गिर जायेंगे । जीवन का सब ढांचा बिखर जायेगा । जिन्दा रहना मुश्किल हो जायेगा । एक क्षण जीना मुश्किल है अनैतिक होकर ।

और आज जीवन में कठिनाइयां शुरू हो गयी है, क्योंकि नीति के आधार गिर गये और नयी नीति का जन्म नहीं हो सका है । पुरानी नीति मर गयी है और नयी नीति का कोई जन्म नहीं हो रहा है । और प्रसव का काल लम्बा होता चला जाता है । वह बहुत पीड़ादायी है, वह बहुत खतरनाक है, बहुत मंहगा पड़ रहा है । सारी पृथ्वी पर वैसा हुआ है । इस देश में भी वैसा हुआ है । क्या होगा ? नयी नीति कैसे पैदा हो सकती है ? पुरानी नीति भय पर खड़ी थी, आज्ञा पर खड़ी थी, आप्तता, अथारिटी पर खड़ी थी । ग्रन्थ कहता था इसलिए सही था । गुरु कहता था इसलिए सही था । पिता कहते थे इसलिए सही था, बुजुर्ग कहते थे इसलिए सही था वह कोई अथारिटी पर खड़ी बात थी । हम सोचते न थे कि वह सही है या नहीं ।

अब बीसवीं सदी में हमने सोचना शुरू किया है तो सब अथारिटी गिर गयी

है । अब कोई अथारिटी नहीं है । अब कोई यह नहीं कह सकता कि मनु महाराज कहते हैं कि यह सच है । जीसस कहते हैं इसलिए सच है । कैसे हम मानें ? जीसस तो यह भी कहते हैं कि जमीन चपटी है और जमीन गोल निकली, और जीसस पर शक पैदा हो गया । पुरानी किताबें कहती हैं, चांद सूरज से बड़ा है लेकिन चांद सूरज से बहुत छोटा निकला । जमीन से बहुत छोटा निकला । तो अब हम पुरानी किताबों पर कैसे भरोसा करें ?

पुरानी किताबें इतने मामलों में गलत सिद्ध हो गयी हैं कि नैतिक मामलों में भी सही होंगी, इसकी अनिवार्यता नहीं रह गयी । वे उसमें भी गलत हो सकती हैं । इसलिए धार्मिक आदमी अपनी किताब में लिखी वैज्ञानिक गलती के लिए भी आखिरी दम तक लड़ता है । उसके लड़ने का कारण है । आज भी, जैन शास्त्रों में लिखा है कि चांद पर कोई पहुंच नहीं सकता तो जैन साधु अभी भी लड़ाई लड़े जा रहा है । वह यह कह रहा है, कोई पहुंचा ही नहीं है, सब झूठी खबरें हैं । यह आर्मस्ट्रांग और ये सारी बातें सब झूठ हैं, कोई कहीं पहुंचा नहीं । पहुंच ही नहीं सकता ।

अभी एक जैन मुनि मुझे मिलने आये । उन्होंने कहा, आप भी क्या इस बात से सहमत हैं कि कोई चांद पर पहुंच गया ? चांद पर कोई पहुंच नहीं सकता । चांद पर देवताओं का निवास है, वहां मनुष्य पैर नहीं रख सकते । तो मैंने कहा । उन्होंने कहा, यह सब गलती हो गयी है कुछ । ऐसा मालूम पड़ता है कि हमारे शास्त्रों में लिखा है कि चांद के चारों तरफ देवताओं के विमान ठहरे रहते हैं बड़ी दूरी पर । तो ये किसी देवता के विमान पर उतर गये हैं और भूल से वापस लौट आये हैं और समझ रहे हैं कि हम चांद पर पहुंच गये हैं ।

यह आखिर क्यों लड़ाई जारी है ? जैन मुनि मानने को तैयार क्यों नहीं होता ? इसके पीछे बहुत गहरा कारण है । सवाल चांद नहीं है । चांद से जैन मुनि को क्या लेना है ? हिन्दू संन्यासी को क्या प्रयोजन है ? ईसाई पादरी को क्या प्रयोजन है ? मुसलमान पंडित को क्या प्रयोजन है ? किसी को कोई चांद से प्रयोजन नहीं है । प्रयोजन दूसरा है । अगर चांद पर आदमी पहुंच जाता है तो फिर महावीर के वक्तव्य का क्या होगा ? और अगर महावीर का एक वक्तव्य गलत होता है तो दूसरे वक्तव्य भी गलत हो सकते हैं, इसकी सम्भावना शुरू हो जाती है ।

अगर महावीर इतनी बड़ी भूल कर सकते हैं, जीसस इतनी बड़ी भूल कर सकते हैं, तो फिर दूसरी भूलें भी हो सकती हैं । इसलिए वह धर्मगुरु पूरी चेष्टा करता है—आखिरी दम तक लड़ने की । लेकिन तथ्यों को झुठलाया नहीं जा सकता है । कितनी देर तक हम लड़ेंगे ? तथ्य तथ्य हैं, और तथ्य सब तरह के झूठों को फाड़कर सिद्ध हो जाते हैं । सब संदिग्ध हो गया, अब कोई अथारिटी नहीं है जगत्

में। यह पहला मौका है, दुनिया में कोई आप्त प्रमाण नहीं रहा। बुद्धि और विवेक के अतिरिक्त अब कोई प्रमाण नहीं है।

क्या हम ऐसी नीति खड़ी कर सकेंगे जो बुद्धि, विवेक और अभय पर खड़ी होती है? निश्चित ऐसी ही नीति खड़ी की जा सकती है। और भविष्य के मनुष्य की रूपरेखा की बुनियाद ऐसी नीति होगी जो विवेक पर निर्भर हो; अन्धविश्वास पर नहीं। अभय पर निर्भर हो, भय पर नहीं। दण्ड और प्रलोभन पर निर्भर न हो, बल्कि मनुष्य के जीवन का स्वास्थ्य, सुख और समृद्धि, इसकी धारणा पर निर्भर हो। यह हो सकता है। और पुरानी नीति ने हमें नुकसान भी बहुत पहुंचाये। बाधाएं भी बहुत पहुंचायीं। क्योंकि एक बड़ी अद्‌भुत बात है कि जो समाज अन्ध-विश्वास को पकड़ लेता है और विवेक का प्रयोग नहीं करता, उसकी बुद्धि विकसित नहीं हो पाती।

पुराना आदमी नैतिक था बुद्धि को खोकर। और बुद्धि को खोकर नैतिक होना अनैतिक होने से भी बदतर है। पुराना आदमी नैतिक था व्यक्तित्व को खोकर। और व्यक्तित्व को खोकर नैतिक होना अनैतिक होने से भी बुरा है। पुराने आदमी के पास कोई व्यक्तित्व, कोई इंडीवीजुअलिटी न थी, यह भी ध्यान में रख लेना जरूरी है। पुराना आदमी समूह का एक अंग था, व्यक्ति नहीं। गांव में एक आदमी था, व समूह का एक अंग था, उसके पास कोई व्यक्तित्व न था। वह अलग से कुछ भी न था। वह भंगी था, ब्राह्मण था, चमार था, बनिया था, एक समूह का हिस्सा था और समूह के ऊपर जिन्दा था। वह समूह के खिलाफ इंच भर चलता तो कुएं पर पानी पीना बन्द था। हुक्का बन्द था, भोजन बन्द था, विवाह बन्द था। वह जिन्दा नहीं रह सकता था।

पुरानी दुनिया में कोई व्यक्ति, व्यक्ति होकर जिन्दा नहीं रह सकता था। उसे समाज का कल-पुर्जा होकर जिन्दा रहना पड़ता था। और अगर वह जरा भी व्यक्ति होने की कोशिश करता, तो अपने आप आत्मघात पर उतर जाता। उसे आत्महत्या के सिवाय कोई रास्ता न रह जाता। पुरानी दुनिया में व्यक्ति का कोई अस्तित्व न था। और इसलिए अनुशासन था। पुरानी दुनिया की जो डिसी-प्लिन थी, वह डिसीप्लिन व्यक्तियों की डिसीप्लिन न थी। वह व्यक्तियों का अभाव था, इसलिए अनुशासन था। अनुशासन का मतलब था, व्यक्ति था ही नहीं। समाज का नियम और कानून चरम था और प्रत्येक व्यक्ति को उसे मानना था, अगर जिन्दा रहना था। अगर मरना था तो उसकी मर्जी थी। और मरने को कोई राजी न था इसलिए सब अनुशासनबद्ध थे।

अनुशासन भी खो गया क्योंकि व्यक्तित्व का जन्म हुआ है। अब एक-एक व्यक्ति अपनी हैसियत से कुछ है। वह किसी समाज का अंग ही नहीं है। वह स्वयं भी कुछ है। पूरी स्थिति बदल गयी। पहले व्यक्ति समाज का अंग था। अब समाज

व्यक्तियों का जोड़ है। इन दोनों बातों में जमीन आसमान का फर्क है। अब समाज व्यक्तियों का जोड़ है, व्यक्तियों के ऊपर निर्भर है। पहले व्यक्ति समाज के ऊपर निर्भर था, इसलिए व्यक्ति की गर्दन घोंटी जा सकती थी। और उसे जो भी करवाना हो, करवाया जा सकता था। अब यह असम्भव हो गया है। अगर हम पुरानी आदत से मुक्त नहीं होते हैं और आज भी हम व्यक्ति की गर्दन को दबाने की कोशिश करते हैं तो बगावत सुनिश्चित है, विद्रोह निश्चित है। सब टूट जायेगा, सब तोड़ दिया जायेगा। लेकिन अब व्यक्तित्व अपने व्यक्तित्व को नहीं खोने को राजी है।

क्या हम ऐसी नीति, और ऐसा अनुशासन, और ऐसी डिसीप्लिन, और ऐसी शिस्त, विकसित कर सकते हैं जिसमें व्यक्ति मरता न हो, पूरी तरह होता हो और फिर जीवन एक नैतिक जीवन बन सके? मेरी दृष्टि में ऐसा विकास हो सकता है। बल्कि सच तो यह है कि व्यक्ति ही नैतिक हो सकता है। पुराने समाजों को मैं नैतिक नहीं मानता। वे मजबूरी में नैतिक थे। क्योंकि व्यक्ति ही न था। पुराने समाज में व्यक्ति का अभाव नीति थी। नये समाज में व्यक्ति का प्रादुर्भाव होगा, व्यक्ति पूरी तरह प्रगट होगा। और नैतिक कैसे वह व्यक्ति हो सके, यह हमें सोचना होगा। दो-तीन बातें मेरे ख्याल में आती हैं जो हम सोचें तो उपयोगी हो सकती हैं।

पहली बात तो हमें यह समझना चाहिए कि नैतिकता न तो किसी स्वर्ग से सम्बन्धित है, न किसी नर्क से। नैतिकता न तो किसी पुण्य से सम्बन्धित है, न किसी पाप से। नैतिकता न तो किसी दण्ड से सम्बन्धित है, न किसी प्रलोभन से। नैतिकता ढंग से जीने की व्यवस्था का नाम है। नैतिकता जीवन को ढंग, विज्ञान और विधि देने का नाम है।

अगर किसी व्यक्ति को अधिकतम जीना हो तो वह नैतिक होकर ही जी सकता है। अगर उसे कम जीना हो तो वह अनैतिक हो सकता है। जितना ज्यादा जीना हो उतना लोगों का साथ जरूरी है। जितना गहरा जीना हो उतना ज्यादा लोगों की शुभकांक्षाएं जरूरी हैं। जितना अधिक जीना हो उतने लोगों का सहयोग और को-आप्रेशन जरूरी है। आने वाली नैतिकता जीवन की एक विधि होगी। जो सुसाइडल हैं, वे अनैतिक हो सकते हैं, जो आत्मघाती है, वे नीति के विपरीत जा सकते हैं। लेकिन जीना है उन्हें तो सबके साथ जीना होगा। सबके साथ जीने का मतलब यह होता है कि मैं सबको साथ देने वाला बन सकूं, तो ही सारे लोग मुझे साथ देने वाले बन सकते हैं।

एक पुरानी व्यवस्था थी—शिक्षक था, क्लास में पढ़ा रहा है। डण्डा है उसके हाथ में और बच्चे चुप हैं। वह चुप होना बड़ा बेहूदा था, अग्ली, कुरूप था। क्योंकि डण्डे के बल पर किसी को चुप करना अनैतिक है। वह अनुशासनबद्ध की

क्लास, एक बच्चा बोल न सकता था क्योंकि बोलना खतरनाक और महंगा पड़ सकता था। वह अनुशासन व्यक्ति को खो कर था। नयी कक्षा में नये बच्चों के बीच डण्डा लेकर शिक्षक अनुशासन पैदा नहीं कर सकता, न करना चाहिए। न वह उचित है। अब नयी कक्षा में कैसे अनुशासन हो ? डण्डा खो गया, शिक्षक की ताकत खो गयी। नयी कक्षा में विद्यार्थी है। उनके बीच अनुशासन कैसे हो ?

अब नयी कक्षा में अनुशासन का एक ही अर्थ होगा कि विद्यार्थी यह समझ पाये कि वहां कुछ सीखने को उपस्थित है। और सीखना केवल सहयोग, शांति और मौन में ही सम्भव है। अगर इतना विवेक हम न जगा पायें तो अब भविष्य में अनुशासन कभी भी नहीं हो सकेगा। अब अनुशासन का एक ही अर्थ होगा कि विद्यार्थी को यह पता चले कि अनुशासन मेरे हित में है। अनुशासन के मार्ग से ही मैं सीख सकूंगा, अनुभव कर सकूंगा, खोज सकूंगा। क्योंकि अनुशासन मुझे दूसरों के अन्तर्सम्बन्ध में प्रीतिकर बना देगा, अप्रीतिकर नहीं। मैं इन तीस लोगों के साथ मित्र होकर ही जीत सकूंगा, अमित्र होकर नहीं। शिक्षक गुरु नहीं है, अब वह मित्र है। और उसके साथ सीखना हो तो मैत्री चाहिए।

शिक्षक को पुराना ख्याल छोड़ देना चाहिए गुरु होने का। गुरुडम की बात अब आगे नहीं चल सकती। और अगर वह गुरुडम स्थापित करने की कोशिश करेगा तो बच्चे उसके गुरुडम को तोड़ने की हर चेष्टा करेंगे। अब उसके गुरुडम को स्थापित करने की कोशिश, गुरुडम को तुड़वाने के लिए चुनौती देने की चेष्टा है। वह उसे छोड़ देनी चाहिए। अब वह मित्र होकर ही जी सकता है और उचित भी है यह कि शिक्षक मित्र हो। वह मित्र है जो हमसे दस साल आगे है। जिसने जिन्दगी को दस साल देखा है, पढ़ा है, सुना है, समझा है और वह हमें भी उस जिन्दगी के रास्ते पर ले जा रहा है, जहां वह गया है।

मेरे एक मित्र रूस गये थे। और एक छोटे से कालेज को देखने गये थे। वहां वे बड़े परेशान हुए। देखा कि एक लड़का सामने की ही बेंच पर दोनों जूते रखे हुए टिका हुआ बैठा है, पैर फैलाये हुए। वह मित्र मेरे शिक्षक हैं, उनके बर्दाश्त के बाहर हो गया। वे पुराने ढंग के शिक्षक हैं। उनको बहुत क्रोध आया। उन्होंने उस कालेज के प्रोफेसर को जो पढ़ा रहा था, बाहर निकलकर कहा कि यह क्या बेहूदगी है, यह कैसी अनुशासनहीनता है ? सामने ही बेंच पर लड़का जूते टिकाये बैठा है और टिका है आराम से। यह कोई आराम की जगह है ? यह कोई विश्राम स्थल है, यह कोई वेटिंग रूम है ? ढंग से बैठना चाहिए। उस शिक्षक ने कहा, आप समझे नहीं। मेरे लड़के मुझे इतना प्रेम करते हैं कि मेरे साथ ऐट इज हो सकते हैं। मेरे लड़के मुझे इतना प्रेम करते हैं, मैं कोई उनका दुश्मन थोड़े ही हूं कि वे मेरे सामने डरे हुए और अकड़े हुए बैठें। मैं उनका मित्र हूं। वे आराम से बैठ सकते हैं। और फिर मुझे उनके बैठने से प्रयोजन नहीं। वे किस तरह बैठ

कर ज्यादा से ज्यादा सीख सकते हैं, यह सवाल है। अगर उस लड़के से इतने आराम से बैठकर सुनने में सुविधा हो रही है, तो बात खत्म हो गयी। उसके बैठने से क्या प्रयोजन है ?

यह एक दूसरा माहौल है, एक मित्रता का माहौल है। जहां हम विद्यार्थी को मित्र मानकर जी रहे हैं और तब एक नये तरह की शिस्त और एक नये तरह का अनुशासन विकसित होगा। क्योंकि शिक्षक यह कह रहा है कि वे इतना प्रेम करते हैं मुझे कि अपने घर में जैसे अपनी मां के पास पैर फैलाकर बैठ सकते हैं, वह मेरे पास भी बैठे हुए हैं। मैं उनका कोई दुश्मन नहीं हूं और मेरा काम यह है कि मैं उन्हें कुछ सिखाने को यहां आऊं। वे कितने आराम में, जितनी सुविधा से बैठ सकें, सीख सकें, वह मेरा फर्ज है। मैं उतनी उन्हें मुक्ति देता हूं। यह एक बुनियादी फर्क है।

रूस में पिछले तीस वर्षों से परीक्षा करीब-करीब विदा हो गयी है। और सारी दुनिया से विदा होनी चाहिए, क्योंकि परीक्षा पुराने तन्त्र से सम्बन्ध है जहां हम डण्डे के बल सिखा रहे थे और डण्डे के बल परीक्षा ले रहे थे। परीक्षा भी बहुत बड़ा टार्चर है, बहुत बड़ा अत्याचार है। और परीक्षा के आधार पर सिखाना एक बहुत भयग्रस्त व्यवस्था थी, फियर पर खड़ी हुई थी क्योंकि लड़का सीख रहा था कि कहीं असफल न हो जाये। असफलता का भय उसे घेरे हुए था। सफलता का प्रलोभन घेरे हुए था। वही स्वर्ग और नर्क की व्यवस्था थी। अगर वह हार जाता, असफल हो जाता तो खो जायेगा। निन्दित, अपमानित, व्यर्थ ! अगर जीत जायेगा, सफल हो जायेगा तो स्वर्ग का पृथ्वी पर अधिकारी हो जायेगा।

परीक्षक भी डण्डे वाला शिक्षक खो गया। डण्डा नहीं है उसके हाथ में। लेकिन शिक्षक भीतर से अभी भी वही है। डण्डा भर उसके हाथ में नहीं है। लेकिन शिक्षक का भीतर से मस्तिष्क अभी भी वही है। वह मित्र अभी भी नहीं हो पाया है। वह पुरानी आकांक्षायें अभी भी कर रहा है। वह पूछ रहा है कि गुरू को आदर देना चाहिए, गुरू को सम्मान देना चाहिए। गुरू के चरण छूने चाहिए। गुरू के साथ वह व्यवहार करना चाहिए। वह अभी पुराने गुरुडम की व्यवस्था की मांग किये जा रहा है। उसे पता नहीं कि सब बदल गया। अब विद्यार्थी मित्र ही हो सकता है। अब गुरू का सम्मान नहीं, मित्र का प्रेम मिल सकता है। और मित्र का प्रेम मांगना हो तो सब बदलना पड़ेगा। परीक्षा पुराने ढंग की अनुशासन-बद्धता थी। परीक्षा के भय से सब चलता था।

लेकिन परीक्षा बड़ी ही जंगली, असभ्य, कुरूप व्यवस्था है। वह व्यवस्था है जबर्दस्ती गर्दन पकड़कर व्यक्ति के परीक्षण करने की। वह अत्यन्त प्रेमपूर्ण नहीं है, अत्यन्त क्रोधपूर्ण है। और तब, जबकि सब बदल गया है और परीक्षा का ढांचा पुराना है तो उस परीक्षा के ढांचे को तोड़ने के सब उपाय चल रहे हैं। चोरी चल

रही है, नकल चल रही है, पेपर चोरी से निकाले जा रहे हैं, खोज की जा रही है । शिक्षकों को पैसे दिये जा रहे हैं, रिश्वत दी जा रही है, सब किया जा रहा है । अब विद्यार्थी पढ़ने में उत्सुक नहीं है, परीक्षा देने में उत्सुक है । और परीक्षा देने में जब विद्यार्थी अकेला उत्सुक रह जाए, शिक्षक तो हमेशा परीक्षा लेने में उत्सुक था । अब पहली दफा विद्यार्थी सिर्फ परीक्षा देने को उत्सुक है । सिर्फ परीक्षा देने में उत्सुकता के मतलब खतरनाक होंगे, महंगे होंगे और तब सब अनुशासन नीचे से टूट जायेगा । परीक्षा विदा होनी चाहिए, शिक्षक पर जोर बढ़ना चाहिए ।

मेरे एक मित्र राहुल सांकृत्यायन रूस में कुछ दिनों के लिए संस्कृत के प्रोफेसर थे । जब वे पहली दफा वहां गये···पहली दफे जब वहां गये तो उनको ख्याल तो हिन्दुस्तान का था । दस विद्यार्थी थे उनकी कक्षा में, जो संस्कृत पढ़ रहे थे । उन्होंने सात को पास कर दिया और तीन को फेल कर दिया । उनके प्रधान ने, तेरवातस्की ने उनको बुलाकर कहा कि तुम यह क्या कर रहे हो ? तीन विद्यार्थी फेल कर रहे हो, तो तुम्हारी तनख्वाह कट जायेगी । क्योंकि तुमने दो साल क्या किया ? ये तीन विद्यार्थी फेल होते हैं तो तुम दो साल क्या करते हो ? तो उन्होंने कहा, नहीं, फेल तो वे नहीं हो रहे थे, मैंने तो यह सोचकर कि मैं सभी को पास कर दूं तो लोग क्या कहेंगे ? मैंने तीन को फेल किया है ।

लेकिन हम हिन्दुस्तान में सोच ही नहीं सकते कि सभी पास हो सकते हैं । कुछ तो फेल होने ही चाहिए । और अगर सभी पास हो सकते हैं तो पास होने का हमें मतलब ही नहीं रह जाता है । पास होने का मतलब क्या रहा ? कुछ फेल हों, उनके दुख पर ही तो पास होने वाले का सुख निर्भर है । उन्होंने कहा, मैंने तो देखा कि सभी पास हो जाते हैं···तो मैंने तो जानकर तीन को कम अंक दिये। पास तो सब होते थे, लेकिन कोई यह न सोचे कि मैंने कहीं अपने विद्यार्थियों को······ ।

और मजा यह है कि रूस में वही शिक्षा परीक्षा भी ले लेता है, जिस शिक्षक ने साल भर पढ़ाया है । क्योंकि वह कहते हैं कि दूसरा शिक्षक कैसे परीक्षा लेगा ? जिसने साल भर, दो साल बच्चों को अनुभव किया, उनके साथ जिया, रहा, वही उन्हें पहचान सकता है । दूसरे शिक्षक कैसे ? दूसरा शिक्षक पांच प्रश्न पूछ सकता है । यह भी हो सकता है कि पांच प्रश्नों के उत्तर किसी व्यक्ति को पता हों और पांच के उत्तर दे दें, पास हो जाये और बाकी उसे कुछ भी पता न हो । और यह भी हो सकता है कि दूसरे विद्यार्थी को सब पता हो, सिर्फ पांच प्रश्न चूक गया तो मर गया । उसकी जिन्दगी खत्म हो गयी । तो वही शिक्षक परीक्षा लेगा जिसने दो साल पढ़ाया है क्योंकि दो साल उसने जाना है कि कौन कहां है, क्या है ।

और शिक्षक पर यह जोर है, कि अगर विद्यार्थी पास न हो पाये तो

जिम्मेदारी विद्यार्थी की कम, शिक्षक की ज्यादा है । क्योंकि पिछली कक्षा से वह पास होकर आया है । तो दो साल में आप क्या कर रहे थे ? तो ऐसे शिक्षक की तनख्वाह कटती है, डिमोशन हो सकता है, नीचे उतारा जा सकता है । लेकिन विद्यार्थी को असफल करने की बात ख्याल से उतर गयी । तो रूस की कक्षा में एक नये तरह का अनुशासन पैदा हुआ ।

यह मैं उदाहरण के लिए कहा । पूरे समाज को भी इस ढांचे में सोचना जरूरी है । भय अलग करें । विवेक और बुद्धि, और मित्रता, और प्रेम लायें और समझें कि पूरे समाज के ढांचे को भी हमें उस तरह बदलना पड़ेगा । पिता है, वह कल तक अथारिटी था, वह अब अथारिटी नहीं हो सकता । कल तक वह कहता था कि मैं तुम्हारा पिता हूं इसलिए जो मैं कहता हूं वह ठीक है । अब यह बड़ा अजीब तर्क है । किसी के पिता होने से कोई बात कैसे ठीक हो सकती है और किसी के बेटे होने से कोई बात गलत कैसे हो सकती है ?

बात का गलत और सही होना, पिता और बेटे होने पर निर्भर नहीं करता। लेकिन कल तक पिता का इतना कह देना काफी था कि मैं पिता हूं और मेरी उम्र साठ साल है, और जो मैं कहता हूं वह ठीक है । कल तक यह बात चलती थी । उम्र एक अथारिटी थी, पिता होना एक बल था, वह सब खो गया । वह सब विदा हो गया । लेकिन हमारी आदत पुरानी है । वह सब विदा हो गया है, लेकिन वही कहे चले जा रहे हैं, किये चले जा रहे हैं । उसे कोई सुनता नहीं, मानता नहीं तो दुख होता है । लेकिन दुख के लिए हम जिम्मेवार हैं । असल में हमें वह कह देना ही छोड़ देना चाहिए ।

पिता भी अब घर में सिर्फ पहले नम्बर का सदस्य है, अथारिटी नहीं रह गयी उसकी । वह सिर्फ नम्बर एक का सदस्य है परिवार में, अथारिटी नहीं रह गयी है वह । नम्बर एक होने से उसकी बातें सही नहीं होंगी अब आगे भविष्य में । पिता को थोड़ा नीचे उतरना पड़ेगा । वह अपने सिंहासन से—उसे थोड़ा नीचे आना पड़ेगा । और सच तो यह है कि पिता अगर सिंहासन पर हो, बेटा सिंहासन के नीचे, तो उनके बीच कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता ।

और मैं आपसे कहता हूं, पुराने बाप और पुराने बेटे के बीच कोई सम्बन्ध नहीं रहा । अथारिटी के बीच सम्बन्ध हो ही नहीं सकता । अगर बाप एक अधिकार के सिंहासन पर बैठा है और मैं बेटा नीचे धूप में खड़ा हूं—अधिकारहीन, तो हमारे बीच क्या सम्बन्ध हो सकता है ? आज भी मैं अनुभव करता हूं, बाप और बेटे के बीच बात नहीं होती, क्योंकि बात उनके बीच हो सकती है जो साथ खड़े हों । सिंहासन पर बैठे हों और सिंहासन से नीचे कहीं बात हो सकती है ?

बाप और बेटे एक दूसरे से बचकर घर में गुजरते हैं । हां, कभी-कभी मिलना होता है । जब बाप को डांटना होता है और बेटे को रुपये लेने होते हैं, तब मिलना

होता है। और कभी मिलना नहीं होता। बाकी दोनों बच कर चलते हैं। दोनों निकलते हैं करीब से, लेकिन मिलना नहीं होता। क्योंकि अधिकार और निराधिकार का मिलना कैसा ? नहीं, पुराने बाप और बेटे के बीच कोई सम्बन्ध न था। सम्बन्ध हो नहीं सकता था। बेटे की कोई स्थिति न थी। बाप की सब स्थिति थी।

स्थितियां बदली हैं अब। अब बेटे और बाप के बीच सम्बन्ध हो सकता है। लेकिन बाप को सिंहासन से नीचे उतर आना पड़े और बेटे के साथ खड़ा हो जाना पड़े। और मैं मानता हूं, यह ज्यादा मानवीय होगा, ज्यादा ह्यूमन होगा। पुराना पिता सिर्फ नैतिक उपदेश देता था। और जो भूलें उसने खुद की थीं, उनकी कभी बात न करता था। वह कुछ ऐसी बातें करता था कि उसने कभी भूल ही नहीं की। सब बेटे भूल कर रहे हैं। वह भी कभी बेटा था, यह बाप भूल ही जाता है।

नये पिता को समझना होगा कि वह भी कभी बेटा था और उसने जो भूलें की हैं, जिन्दगी में जिन गड्ढों में वह गिरा, जिन्दगी में जिन मुसीबतों से वह गुजरा, जिन्दगी में जो कड़वे-मीठे अनुभव हुए, वह अपने बेटे को कह दे। यह प्रेम का तकाजा है। वह अपने बेटे को सिर्फ आदर्शों की बात न करे, वास्तविक जिन्दगी को भी खोल दे कि यह मेरी जिन्दगी थी। और बेटे को वह भी कह दे कि मैं अपने प्रेम में अपना हृदय तुम्हें दे सकता हूं, सब खोलकर, नग्न—यह मैंने भोगा यह मैंने किया, यह भूलें मैंने की, ताकि हो सके तो तुम मेरी भूलों से लाभ ले सको। लेकिन पुराना पिता सिर्फ आदर्श की बातें करता था। उसने कभी कोई भूल की ही न थी। बेटे थोड़ी देर में खोज करके पता लगा लेते थे कि यह सब पाखण्ड है। आज भी पता लगा लेते हैं। लेकिन जिस दिन यह पता चलता है कि यह सब पाखण्ड है, उस दिन बड़ी कठिनाई पैदा हो जाती है। अपने ही हाथों से पिता एकदम अपदस्थ हो जाता है, मां अपदस्थ हो जाती है।

नहीं, मां और बाप को अब समझना होगा कि बेटे खोज लेंगे, बेटे बुद्धिमान हुए हैं, पढ़े हैं। मां-बाप ने ही पढ़ाया-लिखाया। उन्होंने ही पढ़ने-लिखने की सारी व्यवस्था दी है। अब पढ़े-लिखे बेटे के साथ वह पुराना व्यवहार नहीं कर सकते हैं। उन्हें बदलाहट करनी पड़ेगी। पिता को बदलना होगा, गुरू को बदलना होगा, नेता को बदलना होगा और समाज का पूरा ढांचा मित्रता के आधार पर खड़ा करना होगा, अथारिटी के केन्द्र पर नहीं। तब एक नयी नैतिकता, एक नया विकास होना शुरू होगा और एक नये मनुष्य को हम निर्मित कर पायेंगे। पुराना मनुष्य गया, उसका ढांचा भी गया। अब आज्ञा से नहीं चलेगा कि हम आज्ञा दें और वह मान ली जाये। असल में, आज्ञा बहुत खतरनाक बात है। और पुराना युवक आज्ञा मानता रहा इसलिए दुनिया बहुत मुसीबत में पड़ी।

हिरोशिमा पर जिस आदमी ने एटम गिराया और एक लाख आदमियों का

हत्यारा बना, वह जब सुबह उठा सोकर तो किसी ने उससे जाकर पूछा कि रात ठीक से सो सके या नहीं ? उस आदमी ने कहा, बिल्कुल मजे से सोया ! एक लाख आदमियों को आग में भून आया वह आदमी और मजे से सोया ? तो जिसने पूछा उसने कहा, आश्चर्य ! एक लाख लोग आग में भुन गये और तुम मजे से सो सके ? उसने कहा, उसमें मेरा कोई सवाल नहीं है। मुझे आज्ञा दी गयी और मैंने आज्ञा पूरी की। मैंने अपना काम पूरा किया और मैं सो गया। मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। उस आदमी ने उस युवक को पूछा कि तुम एटम बम फेंकते वक्त यह न सोचे कि मैं एक लाख लोगों को मार रहा हूं इसलिए आज्ञा मानूं या न मानूं ? उस आदमी ने कहा, सैनिक की आज्ञा मानूं या न मानूं, ऐसा सोचना ही नहीं पड़ता। सैनिक को आज्ञा माननी ही पड़ती है। सैनिक का मतलब है जो आज्ञा मानता है।

और जो सिर्फ आज्ञा मानता है और सोचता नहीं, उसका मतलब अगर सैनिक है तो सैनिक का मतलब है, जिसकी बुद्धि नष्ट कर दी गयी, भ्रष्ट कर दी गयी; जिसमें अब कोई विचार न रहा। असल में सैनिक की बुद्धि को नष्ट करने का हम उपाय करते हैं। पूरा मनोवैज्ञानिक उपाय करते हैं कि सैनिक के भीतर कोई विवेक न रह जाये। क्योंकि जहां विवेक है, वहां आज्ञा का उल्लंघन सम्भव है। जहां विवेक है, वहां आज्ञा मानी भी जा सकती है, तोड़ी भी जा सकती है। लेकिन दोनों विवेक मौजूद हैं क्योंकि विवेक निर्णय करेगा।

इसलिए हम एक सैनिक की बुद्धि को नष्ट करने की व्यवस्था करते हैं। चार साल, पांच साल तक एक सैनिक को कहते हैं, लेफ्ट टर्न, राइट टर्न, आगे जाओ, पीछे आओ, बैठो, उठो। उसको यह मानना पड़ता है। पांच साल बायें घूमो, दायें घूमो, दायें घूमो, बायें घूमो—घूमता-घूमता पांच साल में उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। उसकी बुद्धि का कोई विचार नहीं रह जाता क्योंकि बायें घूमने में क्या विचार करना है ? घूमना है। दायें घूमने में क्या विचार करना है ? घूमना है। कवायद करने में क्या विचार करना है ? सिर्फ कवायद करनी है। पांच साल कवायद करने के बाद हम कहते हैं, इस आदमी को गोली मारो। वह समझता है, वही बायें और दायें घूमना है, और गोली मार देता है। उसे याद नहीं आता कि सामने जिसे वह गोली मार रहा है, उसकी मां भी होगी। यह सवाल नहीं है। उसे याद नहीं आता, उसकी पत्नी होगी, यह सवाल नहीं है। उसे याद नहीं आता, उसका कोई छोटा बेटा भी होगा, जो उसकी प्रतीक्षा करता, यह सवाल नहीं है। सवाल सिर्फ एक है और वह है कि आज्ञा मानो। आर्डर इज आर्डर। वह आज्ञा मान लेता है।

सारी दुनिया के युवक अतीत में आज्ञा मानते रहे इसलिए चंगेज पैदा हुआ, इसलिए तैमूर पैदा हुआ, इसलिए नादिर पैदा हुआ, इसलिए दुनिया में युद्ध हुए। हिटलर, मुसोलिनी, तोजो, माओ, स्टालिन पैदा हुए। और आगे भी अगर दुनिया

का युवक चुपचाप आज्ञा मानता है, तो युद्धों से मुक्ति नहीं हो सकती। लेकिन मुझे लगता है युवक ने आज्ञा माननी छोड़ना शुरू किया है। युद्धों से बचने की सम्भावना आगे पैदा होती है। एक अच्छी नैतिक दुनिया में युद्ध नहीं होंगे। क्योंकि एक नैतिक दुनिया में कोई किसी मनुष्य को ऐसे ही मारने को तैयार न हो जायेगा।

पिछले युद्ध में कोरिया में एक बहुत अद्‌भुत घटना घटी। अमरीकी सैनिक जो कोरिया में लड़ रहे थे, उनके जनरल ने अमरीकी सीनेट को एक सीक्रेट रिपोर्ट पेश की और इस रिपोर्ट में यह मांग की है कि एक कठिनाई का सवाल खड़ा हो गया है। सौ अमरीकन जवान जब युद्ध पर जाते हैं तो चालीस प्रतिशत गोली का उपयोग हा नहीं करते। वह बन्दूक को लौटाकर घूम-घामकर दिन में वापस लौट आते हैं। और उन युवकों से जब पूछा गया तो उन्होंने कहा, हमें कुछ अर्थ नहीं मालूम पड़ता कि हम क्यों किसी आदमी को गोली मारें? किसी कोरियन की छाती में गोली मारने से हमें कोई सम्बन्ध नहीं है। न हमारा कोई झगड़ा है, न दुश्मनी है। हम भी नौकरी पर चले आये हैं, वे भी नौकरी पर चले आये। उनको भी सिखाया गया है कि आज्ञा मानो, हमको भी सिखाया गया कि आज्ञा मानो, लेकिन ऐसी आज्ञा मानने की इच्छा नहीं होती। इससे अच्छा है कि हम मर जायें, बजाय हम किसी को मारें।

उनके जनरल ने अमरीकी सीनेट को लिखा है कि यह अगर वृत्ति बढ़ती गयी तो अमरीका का सैनिक कहीं भी नहीं जीत सकेगा। क्योंकि अमरीकी जवान अगर यह कहता है कि हम सोचकर गोली मारेंगे कि मारने योग्य आदमी है या नहीं, तो फिर गोली कभी नहीं मारी जा सकती, क्योंकि कोई भी आदमी मारे जाने योग्य नहीं है। कोई भी आदमी मारे जाने योग्य नहीं है। ज्यादा से ज्यादा कुछ लोग सुधारे जाने योग्य हो सकते हैं, लेकिन मारे जाने योग्य कोई भी नहीं है।

अमरीकी जनरल तो घबराया। लेकिन मैं मानता हूं कि धीरे-धीरे दुनिया के सब जनरलों को घबरा जाना पड़ेगा। हिन्दुस्तान में भी, पाकिस्तान में भी, चीन में भी युवकों का समझना होगा कि हम आज्ञा मानें या न मानें? पुरानी दुनिया यह कहती थी, मानो ही। आज्ञा अन्तिम सत्य है। उसे कभी सोचना मत। नयी नैतिकता आज्ञा पर इतना जोर नहीं दे सकती। नयी नैतिकता कहेगी, सोचना, विवेक से विचारना और ठीक लगे तो करना। और गलत लगे तो न करने में मर जाना बजाय गलत करने में जिन्दा रहने में।

एक नयी नैतिकता और तरह से विकसित होगी। पुरानी नैतिकता लोकल थी, स्थानीय थी। नयी नैतिकता जागतिक होगी, यूनिवर्सल होगी। पुरानी नैतिकता एक छोटे-छोटे घेरे में बन्द थी। नयी नैतिकता का कोई घेरा नहीं होगा। पूरी मनुष्यता उसका विस्तार होगी। पुरानी नैतिकता कहती थी तुम्हारी यह चमड़ी है—तुम्हारी काली, तुम्हारी गोरी, तुम अलग, तुम अलग। पुरानी नैतिकता कहती

थी, तुम हिन्दू हो, तुम मुसलमान हो। तुम अलग, तुम अलग। नयी नैतिकता कहेगी मनुष्य-मनुष्य है, और कोई मनुष्य किसी से अलग नहीं है, और सब मनुष्य एक हैं।

असल में मनुष्यों में जातियां नहीं हो सकतीं। जो लोग बायोलाजी पढ़ते हैं वे जानते होंगे कि जाति का क्या मतलब होता है? जाति का सिर्फ एक मतलब होता। जाति का पता लगाने का उपाय क्या है? हम बन्दर को और शेर को दो जातियां कहते हैं। हम कुत्ते को और बिल्ली को दो जातियां कहते हैं, क्यों? कारण हैं। कुत्ते और बिल्ली मिलकर बच्चे पैदा नहीं कर सकते। शेर और बन्दर मिलकर बच्चे पैदा नहीं कर सकते।

जाति का वैज्ञानिक सिर्फ एक अर्थ होता है, जो लोग मिलकर बच्चे पैदा करते हैं, वे एक जाति के हैं। जाति का और कोई अर्थ नहीं होता। अंग्रेज और हिन्दू मिलकर बच्चे पैदा कर सकते हैं। मुसलमान और ईसाई मिलकर बच्चे पैदा कर सकते हैं। काले और गोरे, ब्राह्मण और भंगी मिलकर बच्चे पैदा कर सकते हैं। मनुष्यों की जाति एक है, दो नहीं। जो मिलकर बच्चे पैदा करते हैं उनकी जाति एक है। जाति का दो का कोई अर्थ ही नहीं होता है, दो का एक अर्थ होता है, कि उनके यंत्र इतने भिन्न हैं कि वे मिलकर बच्चे पैदा नहीं कर सकते, बस इससे ज्यादा कोई मतलब नहीं होता है।

आदमी एक है, उसकी जाति एक है। पुरानी नैतिकता आदमी को तोड़कर चलती थी। नयी नैतिकता तोड़कर नहीं, जोड़कर चलेगी। और बड़े आश्चर्य की बात है, पुरानी नैतिकता के कारण आदमी कमजोर हुआ, बीमार हुआ, क्षीर्ण हुआ, दीन हुआ, सब तरह से उसका नुकसान हुआ है। अगर हम जगत् को एक मानकर जियें—जीना ही पड़ेगा, क्योंकि जगत् एक होता चला जा रहा है—तो मनुष्य ज्यादा समृद्ध होगा।

आज हिन्दुस्तान को गरीब होने का कोई कारण नहीं है, सिवाय इसके कि अमरीका अलग और हिन्दुस्तान अलग। आज हिन्दुस्तान को रुग्ण और बीमार होने का कोई कारण नहीं है। कारण सिर्फ एक है कि रूस अलग और हिन्दुस्तान अलग। आज दुनिया के पास इतने साधन हैं कि जमीन पर एक भी आदमी गरीब न हो। आज इतने साधन हैं कि एक भी आदमी को बीमारी में पड़ने की अनि-वार्यता न रहे। आज इतने साधन हैं कि सभी लोग कम से कम सौ की उम्र पा सकें। आज इतने साधन हैं कि सभी लोग ठीक मकानों में रह सकें, भोजन पा सकें, ठीक कपड़े पहन सकें।

लेकिन पुरानी दुनिया के खण्ड कायम हैं। तो उसका परिणाम यह होता है कि एक मुल्क अति गरीब हो और एक मुल्क अति समृद्ध हो। और अति गरीबी भी मुसीबत है और अति समृद्धि भी मुसीबत है। अमरीका समृद्धि से पीड़ित और

परेशान है, हम गरीब से पीड़ित और परेशान हैं। और अगर ये सीमाएं बीच की गिर जायें तो बच जाये और जिन्दगी बराबर तल पर आ जाये, सारी मनुष्यता बराबर तल पर आ जाये। लेकिन यह नहीं हो पा रहा है, क्योंकि पुराने लोकल माइंड, स्थानीय माइंड अब भी हमको घेरे हुए हैं। भारत-माता की जय, पाकिस्तान-माता की जय, जर्मन-माता की जय, अब भी जारी है।

नये मनुष्य को इन सब माताओं को विदा करना होगा। एक ही माता है—पृथ्वी-माता; अलग-अलग बांटने की कोई जरूरत नहीं। और पृथ्वी बंटी हुई नहीं है। पृथ्वी अखण्ड है।

एक अन्तिम बात और कहना चाहूंगा—पुरानी नीति दुख को केन्द्र मानकर चलती है। उसने स्वीकार कर लिया था कि दुख जीवन का केन्द्र है। उसके कारण थे। पुराने आदमी ने सुख बहुत कम जाना। पुराना आदमी दुख में ही जिया। असल में सुख को पैदा करने की व्यवस्था पहली दफा विज्ञान और टेकनोलॉजी से हमें अब उपलब्ध हुई है। अब तक सुख को पैदा करने की व्यवस्था ही न थी। आज के पहले दस बच्चे पैदा होते थे तो आठ बच्चे मर जाते थे। दो बच्चे जीते थे। और जिस समाज में दस बच्चे मरते हों, उसमें दो बच्चे भी मरे-मरे ही जी सकते थे। क्योंकि उनको भी इतना अद्‌भुत स्वास्थ्य नहीं मिल सकता था।

आज से पुरानी दुनिया में आदमी किसी भांति जी रहा था—दुख में, पीड़ा में, बीमारी में, परेशानी में। दुख जीवन का केन्द्र था, इसलिए बुद्ध कह सके कि जीवन दुख है। इसलिए पुराने विचारक कह सके कि जीवन दुख है। दुख को केन्द्र मान कर चले थे हम। और हमने दुख को स्वीकार कर लिया था, दरिद्रता को स्वीकार कर लिया था। इसलिए पुरानी नैतिकता दुख को वरण करने को आदर देती थी कि जो आदमी अपनी तरफ से दुख को वरण करता है, वह बहुत नैतिक आदमी है। वह बहुत सज्जन आदमी है, सन्त है, साधु है, महात्मा है। पुरानी नैतिकता दुख को वरण करने वाले को तपस्वी, त्यागी और महान कहती थी। क्योंकि दुख था और दुख से बचने का कोई उपाय न था। तब फिर दुख को स्वीकार करके ही कन्सोलेशन और सान्त्वना उपलब्ध की जा सकती थी।

अब सब बदल गया है। अब दुख को स्वीकार करने की कोई भी जरूरत नहीं है। अगर दुख है तो हम जिम्मेवार हैं। अगर दुख है तो हम नहीं बदल रहे, इसलिए है। अब दुनिया में दीनता, पीड़ा, परेशानी को स्वीकार करने की कोई जरूरत नहीं है। अब हमें सुख को केन्द्र पर रखना पड़ेगा। और जो आदमी सुखी होने की और सबको सुखी करने की कोशिश में संलग्न हैं, उसे साधु, सज्जन और अच्छा आदमी कहना पड़ेगा। जो आदमी लोगों के दुख बढ़ाने की कोशिश कर रहा है त्याग के, तप के नाम पर, उस आदमी को नैतिकता के दायरे के बाहर करना पड़ेगा। वह आदमी अनैतिक है।

अब नैतिक वह आदमी है, जो जिन्दगी में ज्यादा फूल सुख के खिलाने में संलग्न है। अब वह आदमी नैतिक है, जो जिन्दगी से बीमारियां दूर करने में लगा है। पुरानी नैतिकता बड़ी अजीब है। एक आदमी चोरी न करे, नैतिक हो जाता है। एक आदमी झूठ न बोले, नैतिक हो जाता है। एक आदमी किसी की स्त्री को न भगाये, नैतिक हो जाता है। नैतिकता निगेटिव थी। आपने कभी ख्याल किया? पुरानी नैतिकता कहती थी, 'डू नॉट डू।' यह मत करो। बस, न करो……न करो……न करो—पुरानी सारी नैतिकता निगेटिव थी। वह कहती थी, चोरी मत करो। वह कहती थी, झूठ मत बोलो। वह कहती थी, यह मत करो, यह मत करो, यह मत करो।

अगर बाइबिल के टेन कमांडमेंट्स हम देखें तो वे सब यह कहेंगे कि यह मत करो, यह मत करो, यह मत करो। नयी नैतिकता कहेगी, यह करो, यह करो, यह करो। 'मत करो' अर्थहीन है। आप झूठ न भी बोलें, तो इतना ही है कि आपको झूठ से जो नुकसान पहुंचता है, वह नहीं पहुंच रहा है।

लेकिन इससे जिन्दगी बहुत सुख को उपलब्ध न हो जायेगी। अगर जिन्दगी को सुखी बनाना है तो मारलिटी को पोजिटिव होना पड़ेगा कि यह करो। पुरानी नैतिकता कहती थी कि चींटी को मत मारो, तो बचकर निकल जाओ। और अगर चींटी मर रही हो तो तुम्हें क्या प्रयोजन है? तुम बचकर बाहर निकलो। तुम्हें मारना नहीं है। पुरानी नैतिकता कहती है, अहिंसा। अहिंसा निगेटिव शब्द है—हिंसा मत करो। वह कहती है कि किसी की छाती में छुरा मत मारो। लेकिन वह यह नहीं कहती है कि किसी की छाती में छुरा लगा हो तो निकालो। पुरानी नैतिकता निगेटिव है। वह कहती है, चींटी मरती हैं, तुम्हें कोई मतलब नहीं। तुम अपने रास्ते जाओ। तुम मत मारो। लेकिन तुम्हारे न मारने से भी चींटी मर सकती है। तो उसे बचाने का कोई उपाय पुरानी नीति में नहीं है।

पुरानी नीति का निषेधात्मक रूप दुख के कारण था। नयी नीति का पोजेटिव रूप—अगर हम सुख को केन्द्र पर रखते हैं, सारी मनुष्य-जाति को सुखी होने का अधिकार है। स्वर्ग कहीं और नहीं है। स्वर्ग हमें कहीं और रखना पड़ता था। इसलिए कि पृथ्वी पर बन जाने में हम असमर्थ हो गये थे। पृथ्वी दुख थी तो सुख हमें स्वर्ग में रखना पड़ा था।

अब सुख को स्वर्ग में रखने की कोई जरूरत नहीं। हम उसे पृथ्वी पर ही बसा सकते हैं। इसलिए एक नयी पोजेटिव मारिलिटी, जो कहती हो, यह करो, सुख के साधन बढ़ाओ। अब जैसे समझें; हम एक आदमी को महात्मा कहेंगे, क्योंकि उसने लंगोटी लगा ली है। अब लंगोटी कोई लगा ले, इसकी मौज है। इसमें महात्मा होने की क्या बात है? आपको लंगोटी लगाने का शौक है, मजे से लगाइए। आपको धूप में खड़े होने का शौक है, खड़े हो जाइए। आपको सर्दी में खड़े

होना है, धूप में खड़े हो जाइए। इसमें नैतिक होने का क्या अर्थ है? लेकिन यह आदमी महात्मा है।

लेकिन एक आदमी है दूसरा, जो रात में मरघट से मुर्दे को चुराकर और चीर-फाड़ करके पता लगा रहा है कि आदमी का पेट कैसे काम करता है? यह आदमी महात्मा नहीं था पहले। यह चोर था। इसने मुर्दा चुरा लिया। यह पकड़ा जाये तो इसकी सजा हो जाती। लेकिन इस आदमी ने दुनिया में सुख बढ़ाने में बड़ा काम किया। आज अगर हमारे पेट स्वस्थ हैं तो उन आदमियों की वजह से जिन्होंने मरघट से मुर्दे चुराये। और जिन्होंने मरघट के मुर्दे चुराकर रात के अंधेरे में उसको चीरा और फाड़ा और पता लगायाकि आदमी का पेट कैसे काम करता है। अल्सर कैसे बन जाता है और अपेंडिसाइटिस कहां है और क्यों है और क्या है।

जिन लोगों ने रात के अंधेरे में आदमी के सुख की तलाश की···आदमी के ही विरोध के बावजूद, क्योंकि आदमी चारों तरफ कह रहा था कि यह बात गलत है, यह नहीं होनी चाहिए। आप मुर्दा कैसे चुरा सकते हैं। उन लोगों को हमने अब तक महात्मा नहीं कहा। डीपश्योर को हम महात्मा नहीं कहेंगे। हम एक आदमी को महात्मा कह देंगे जो कि ठण्ड में बैठा हुआ है! बड़े मजे की बात है, ठण्ड में कोई बैठे, बड़े मजे से बैठे। कोई तकलीफ देने की जरूरत नहीं। उसको रोकने की भी कोई जरूरत नहीं क्योंकि किसी को कोई नुकसान नहीं पहुंचा रहा है। लेकिन ठण्ड में बैठना, महात्मा होने का क्या मतलब है? नैतिक होने का क्या अर्थ है?

पोजेटिव मारिलिटी को भी भविष्य की···जो आदमी मनुष्य के सुख को बनाने के लिए कुछ कर रहा है वह आदमी नैतिक होगा। अगर हम एक विधायक नीति की धारणा दे सकें—हम कैसे मनुष्य के सुख को बढ़ायें? और मनुष्य का सुख हजार रास्तों से बढ़ाया जा सकता है। और ध्यान रहे, कोई आदमी अकेला सुखी नहीं हो सकता। हम सब मिलकर अगर चेष्टा करें तो सुख का फूल खिल सकता है। हजार रास्ते हैं। आप रास्ते पर निकलते हैं और अगर उदास चेहरे से निकलते हैं आप, तो मैं आपको अनैतिक कहूंगा।

अगर आप रास्ते से गुजरते हैं और जो भी आदमी मिलता है, उससे आप कहते हैं, बड़ा दुख में हूं, बड़ी परेशानी में हूं, तो आप अनैतिक आदमी हैं। क्योंकि आपका यह दुख दूसरे को दुखी करता है। मैं आपको नैतिक आदमी नहीं कहूंगा। जो आदमी अपने दुख का रोना रो रहा है सुबह से सांझ तक, वह बिल्कुल अनैतिक है। क्योंकि वह दूसरे को भी दुखी करने के उपाय कर रहा है लेकिन जो आदमी मुस्करा रहा है और जो दूसरों को मुस्कराहट के रास्ते बना रहा है वह आदमी नैतिक है। क्योंकि वह आदमी को खुशी की तरफ ले जाने का मार्ग खोज रहा है।

लेकिन हमारे पुराने साधु-संत सब उदास और गंभीर थे। असल में संत

होने के लिए रोती हुई शक्ल लेकर पैदा होना जरूरी है। नहीं तो कोई आदमी संत नहीं हो सकता है। बिल्कुल रोती शक्ल हो कि आंसू अब टपके···अब टपके, तभी कोई संत हो सकता है। संत होने के लिए अगर हंसती हुई स्वस्थ···तो कठिनाई की बात है। आप संत नहीं हो सकते। संत होने के लिए गन्दा होना जरूरी है, इसलिए साधु-संत नहाते नहीं। जैनियों के मुनि नहाते नहीं, स्नान नहीं करते बल्कि जैन शास्त्रों में यह लिखा है कि हाथ पर मैल जम जाये तो उसे पोंछना भी पाप है। उसको जमने देना चाहिए। सब तरह की गन्दगी ओढ़ कर सब तरह की उदासी, बीमारी ओढ़ कर। हिन्दुस्तान से एक आदमी जर्मनी लौटा—काउंट कैसरलिन, तो उसने अपनी डायरी में लिखा कि हिन्दुस्तान में जाकर मुझे पहली दफा पता चला कि स्वास्थ्य एक अनैतिकता है, बीमार होना नैतिकता है। और हिन्दुस्तान में जाकर मुझे पता चला कि अस्वच्छ रहना, गन्दगी से रहना अध्यातम है। स्वच्छ रहना और ताजे रहना, साफ-सुथरे रहना भौतिकवाद है मैटीरियलिज्म है।

नहीं, यह सब हमें बदल देना पड़ेगा। एक नयी नीति—स्वस्थ, सुखी आदमी को, मुस्कराते आदमी को स्वीकार करेंगे। हमें बुद्ध और महावीर की नयी मूर्तियां ढालनी होंगी, जिनमें वे खिलखिला के हंस रहे हों। अब उदास महावीर और उदास बुद्ध नहीं चल सकते हैं। ईसाई तो कहते हैं कि जीसस कभी हंसे ही नहीं क्योंकि हंसने जैसी छोटी-ओछी चीज जीसस कर सकते थे! उनकी किताबें कहती हैं, 'जीसस नैवर लाफ्ड'। हंसे ही नहीं कभी जिन्दगी में। तो उन्होंने जीसस को जैसा बनाया···देखा होगा सूली पर लटके हुए। अगर वे न भी लटकते तो ईसाई उनको लटका देते, क्योंकि गम्भीर आदमी को सूली पर लटका होना चाहिए। लेकिन अब हम जीसस को हंसा के रहेंगे। हमें तो जीसस की नयी तस्वीरें बनानी पड़ेंगी, जिनमें वे हंस रहे हो, फूल के बगीचे में खड़े हों।

नये आदमी को सुखी और स्वस्थ और आनंदित—इस पृथ्वी पर; स्वर्ग में नहीं; इस पृथ्वी पर सुख और स्वास्थ्य को स्वीकार करना पड़ेगा तो हम एक विधायक नीति के आधार रख सकते हैं मुझे कोई कारण नहीं दिखायी पड़ता कि ये आधार क्यों नहीं रखे जा सकते हैं। मैं आपसे इतनी ही प्रार्थना करूंगा, इन दिशाओं में सोचें बड़ा सवाल है, जिन्दगी के सामने बड़ी समस्या है कि हम नयी नीति को कैसे जन्म दें। इन दिशाओं में सोचें। शायद हम सब सोचें तो हम कुछ रास्ते खोज लें।

मैं कोई उपदेश देने वाला नहीं हूं कि आपको उपदेश दूं और आप ग्रहण कर लें। वह मामला छोड़ें, वह गुरु-शिष्य का सम्बन्ध गया। अब कोई उपदेश देगा, कोई ग्रहण करेगा, वह सवाल नहीं है। हम सब इकट्ठे होकर सोच सकें, हम सब मित्र की तरह साथ सोच सकें, और नये मनुष्य की रूपरेखा निर्मित कर

सकें। इस दिशा में मैंने कुछ बातें कहीं। मेरी बातों को इतनी प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुग्रहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अहमदाबाद, दिनांक २४ दिसम्बर १९६९

भगवान श्री रजनीश का उपलब्ध हिन्दी साहित्य

		मूल्य रुपयों में (डीलक्स संस्करण)	मूल्य रुपयों में (सामान्य संस्करण)
उपनिषद			
ईशावास्य उपनिषद		—	१५.००
सर्वसार उपनिषद		६०.००	४०.००
कैवल्य उपनिषद		६०.००	४०.००
अध्यात्म उपनिषद		७५.००	५०.००
कठोपनिषद		७०.००	—
कृष्ण : मेरी दृष्टि में (नया संस्करण)		६५.००	—
कृष्ण			
गीता-दर्शन	अध्याय १,२	६५.००	—
गीता-दर्शन	अध्याय ३	५०.००	३०.००
गीता-दर्शन	अध्याय ४,५	६५.००	—
गीता-दर्शन	अध्याय ८	—	२५.००
गीता-दर्शन	अध्याय १०	५०.००	३५.००
गीता-दर्शन	अध्याय ११	—	२५.००
गीता-दर्शन	अध्याय १२	५०.००	३०.००
गीता-दर्शन	अध्याय १३, १४	८०.००	५०.००
गीता-दर्शन	अध्याय १५,१६	६०.००	४०.००
गीता-दर्शन	अध्याय १७	६०.००	४०.००
गीता-दर्शन	अध्याय १८	१००.००	६०.००
अष्टावक्र			
महागीता	भाग-१	६०.००	३५.००
महागीता	भाग-२	६०.००	३५.००
महागीता	भाग-३	६०.००	३५.००
महागीता	भाग-४	६०.००	३५.००
महागीता	भाग-५	५०.००	—
महागीता	भाग-६	५०.००	—
महागीता	भाग-७		

महावीर : मेरी दृष्टि में		—	४०.००
महावीर या महाविनाश		—	१५.००
महावीर			
महावीर-वाणी	भाग-३	८०.००	५०.००
जिन-सूत्र	भाग-१	८०.००	५०.००
जिन-सूत्र	भाग-२	८०.००	५०.००
जिन-सूत्र	भाग-३	८०.००	५०.००
जिन-सूत्र	भाग-४	६०.००	—
बुद्ध			
एस धम्मो सनंतनो	भाग-१	८०.००	५०.००
एस धम्मो सनंतनो	भाग-२	८०.००	५०.००
एस धम्मो सनंतनो	भाग-३	८०.००	५०.००
एस धम्मो सनंतनो	भाग-४	७५.००	—
लाओत्से			
ताओ उपनिषद	भाग-१	५०.००	४०.००
ताओ उपनिषद	भाग-२	—	४०.००
ताओ उपनिषद	भाग-३	७५.००	४५.००
ताओ उपनिषद	भाग-४	७०.००	—
ताओ उपनिषद	भाग-५	७५.००	—
प्रश्नोत्तर			
नहिं राम बिन ठांव		६०.००	४०.००
झेन, सूफी और उपनिषद की कहानियां			
बिन बाती बिन तेल		७०.००	५०.००
सहज समाधि भली		७५.००	५०.००
दिया तले अन्धेरा		७५.००	५०.००
मेबिल कॉलिन्स			
साधना-सूत्र		६०.००	४०.००
ब्लावट्स्की			
समाधि के सप्त द्वार		६०.००	४०.००
नारद			
भक्ति-सूत्र	भाग-१	५०.००	३०.००
भक्ति-सूत्र	भाग-२	५०.००	३०.००

शिव			
शिव-सूत्र	प्रथम संस्करण	५०.००	—
	द्वितीय संस्करण	४०.००	—
आदि शंकराचार्य			
भज गोविंदम्		५०.००	३०.००
नानक			
एक ओंकार सतनाम		७५.००	५०.००
,, ,, ,,	(प्रथम प्रवचन)	—	१.५०
कबीर			
सुनो भाई साधो		५०.००	३०.००
गूंगे केरी सरकरा		५०.००	३०.००
कस्तूरी कुण्डल बसै		५०.००	३०.००
कहै कबीर दिवाना		५०.००	३०.००
मेरा मुझ में कुछ नहीं		५०.००	३०.००
कहै कबीर मैं पूरा पाया		५०.००	३०.००
दादू			
पिव-पिव लागी प्यास		५०.००	३०.००
सबै सयाने एक मत		५०.००	३०.००
फरीद			
अकथ कहानी प्रेम की		५०.००	३०.००
सहजोबाई			
बिन घन परत फुहार		५०.००	३०.००
दयाबाई			
जगत तरैया भोर की		५०.००	३०.००
मीराबाई			
मैंने रामरतन धन पायो		५०.००	३०.००
झुक आई बदरिया सावन की		५०.००	—
मलूकदास			
कन थोरे कांकर घने		५०.००	३०.००
दरिया			
कानों सुनी सो झूठ सब		५०.००	—
पलटू			
अजहूं चेत गंवार		७०.००	—

चरणदास

नहीं सांझ नहीं भोर		५०·००	—

शांडिल्य

अथातो भक्तिजिज्ञासा	भाग १	७०·००	—

धरमदास

जस पनिहार धरे सिर गागर	५०·००	—
का सोवै दिन रैन	५०·००	—

रज्जब

संतो, मगन भया मन मेरा	६५·००	—

सुन्दरदास

हरि बोलौ हरि बोल	५०·००	—
ज्योति से ज्योति जले	६५·००	—

भगवान श्री की पूर्व प्रकाशित/अप्रकाशित पुस्तकों/प्रवचनों के संकलित नये पेपर-बैक संस्करण :

साधना-पथ (३० प्रवचन)	—	२०·००
संभोग से समाधि की ओर (१८ प्रवचन)	—	२०·००
नेति-नेति (२४ प्रवचन)	—	२०·००

पूर्व-प्रकाशित साहित्य

जिन खोजा तिन पाइयां	—	४०·००
तत्त्वमसि (५२० पत्रों का संकलन)	—	४०·००
मैं कहता आंखन देखी	—	६·००
गांधीवाद : एक और समीक्षा	—	५·५०
समाजवाद से सावधान	—	५·००
सत्य की खोज	—	५·००
सत्य की पहली किरण	—	५·००
शून्य की नाव	—	५·००
शांति की खोज	—	५·००
विद्रोह क्या है ?	—	३·५०
सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	—	२·५०
सूर्य की ओर उड़ान	—	२·००
प्रेम के स्वर	—	२·००
जनसंख्या विस्फोट	—	२·००
	—	१·५०

सम्बोधि-दिवस प्रकाशन २१ मार्च १९७९

एस धम्मो सनंतनो	भाग–४	(बुद्ध)	७५·००
एस धम्मो सनंतनो	भाग–५	(बुद्ध)	७५·००
कहै वाजिद पुकार		(वाजिद)	५०·००
महागीता	भाग–८	(अष्टावक्र)	५०·००
महागीता	भाग–९	(अष्टावक्र)	५०·००
अथाहो भक्ति जिज्ञासा	भाग–२	(शांडिल्य)	७०·००
नाम सुमिर मन बावरे		(जगजीवन)	५०·००
ताओ उपनिषद्	भाग–६	(लाओत्से)	७५·००
मरौ हे जोगी मरौ		(गोरख)	७५·००
सहज-योग		(सरहपा-तिलोपा)	७५·००

पत्र-पत्रिकायें

रजनीश फाउन्डेशन न्यूजलैटर : हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती में प्रकाशित आवृत्ति : पाक्षिक (एक वर्ष में २४ अंक)

सामग्री : प्रत्येक अंक में एक नवीनतम प्रवचन, आश्रम की गतिविधियों एवं रजनीश ध्यान केन्द्रों के समाचार।
हिन्दी, अंग्रेजी एवं गुजराती न्यूजलैटर में भिन्न-भिन्न प्रवचन।
एक वर्ष की सदस्यता शुल्क : रुपये २४·०० (कोई भी एक भाषा में)
नमूनों के लिए एक अंक का मूल्य : रुपये १·२५

संन्यास : हिन्दी एवं अंग्रेजी में प्रकाशित

आवृत्ति : द्वैमासिक (एक वर्ष में छः अंक)
सामग्री : भगवान श्री के महत्त्वपूर्ण प्रवचन, सुन्दर चित्र, दर्शन-संवाद, संन्यास के नये आयाम, ध्यान-विधियां, आश्रम एवं रजनीश ध्यान केन्द्रों के नवीनतम समाचार इत्यादि। हिन्दी एवं अंग्रेजी 'संन्यास' में भिन्न-भिन्न सामग्री।

एक वर्ष का सदस्यता-शुल्क	नमूने के लिए एक अंक का मूल्य
(हिन्दी) रुपये २४·००	(हिन्दी) रुपये ५·००
(अंग्रेजी) रुपये ६०·००	(अंग्रेजी) रुपये १०·००

विशेष :

(१) अर्ध-वार्षिक सदस्यता की सुविधा है।
(२) न्यूजलैटर या संन्यास की सदस्यता वी० पी० पी० द्वारा सम्भव नहीं है।

● **ज्योति-शिखा, रजनीश दर्शन, संन्यास एवं न्यूजलैटर के पुराने अंक निम्न-लिखित घटे मूल्यों में उपलब्ध :**

ज्योति-शिखा (उपलब्ध अंक, डाक-व्यय सहित) — रुपये १०·००

रजनीश-दर्शन वर्ष १६७४ अंक १, २
" " " १६७६ अंक १ से ६ } प्रति अंक मूल्य रुपये ३·००
डाक-व्यय अतिरिक्त

संन्यास वर्ष १६७७ अंक १ से ३
" वर्ष १६७८ अंक १ से ६ — प्रति अंक रुपये ५·०० डाक-व्यय अतिरिक्त

● **रजनीश फाउन्डेशन न्यूजलैटर** (डाक-व्यय अतिरिक्त)

हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती

वर्ष १६७५, १६७६, १६७७ के उपलब्ध अंक } प्रति अंक ७५ पैसे

वर्ष १६७८ के उपलब्ध अंक — प्रति अंक रुपये १·००

● **डायरी व कैलेन्डर**

'माय कम्यून' डायरी १६७६ (अंग्रेजी भाषा में मुद्रित)	रुपये ७५·००
डायरी १६७८ (अंग्रेजी भाषा में मुद्रित)	रुपये ४०·००
डायरी १६७७ राज संस्करण (अंग्रेजी भाषा में मुद्रित)	रुपये १०·००
डायरी १६७७ सामान्य संस्करण (अंग्रेजी भाषा में मुद्रित)	रुपये ५·००
● 'माय पीपुल' कैलेन्डर १६७६	रुपये २५·००
कैलेन्डर १६७८	रुपये ८·००

विशेष :

१. पचास रुपये से अधिक का साहित्य मंगाने पर डाक व पैंकिंग व्यय में छूट।
२. पुस्तकें अनुरोध पर वही० पी० पी० द्वारा भेजी जाती हैं।
३. धनराशि "**रजनीश फाउन्डेशन लिमिटेड**" के नाम से सचिव, रजनीश फाउन्डेशन, १७ कोरेगांव पार्क, पूना ४११००१ (महाराष्ट्र) को भेजें।
४. १५ से २५ पुस्तकें (लगभग १० किलो वजन की) या अधिक रेल अथवा ट्रान्सपोर्ट द्वारा भेजकर आर० आर० बैंक को भेजी जा सकती है।
५. ऑर्डर देते समय स्पष्ट लिखें कि पुस्तकें रेल अथवा ट्रान्सपोर्ट या डाक से भेजी जायें। रेलवे स्टेशन का नाम स्पष्ट लिखें।

ऑर्डर कैसे करें :

संलग्न ऑर्डर फॉर्म में पुस्तक का नाम, संख्या और मूल्य साफ अक्षरों में भरें—

ऑर्डर फॉर्म : कृपया भेजें :

संन्यास (भाषा :) वर्ष ( )
वार्षिक शुल्क (रुपये)
न्यूजलैटर (भाषा :) वर्ष ( )
वार्षिक शुल्क (रुपये)

भेजने वाले का नाम..............................

केन्द्र का नाम..............................

पूरा पता..............................

....

....

पिन कोड..................

प्रतियां	पुस्तक का नाम	मूल्य
....	....	....
....	....	....
....	....	....
....	....	....
कुल पुस्तक संख्या		कुल धनराशि

धनराशि रुपये······का मनीआर्डर/बैंक ड्राफ्ट भेज रहे हैं/संलग्न है।

● सभी ऑर्डर्स का लेन-देन अब रजनीश फाउन्डेशन लिमिटेड द्वारा ही होता है। अतः कृपया पत्र, बैंक ड्राफ्ट इत्यादि रजनीश फाउन्डेशन लिमिटेड के नाम पर ही भेजें।

सभी प्रकाशनों के लिए संपर्क-सूत्र :

सचिव, रजनीश फाउंडेशन लिमिटेड
श्री रजनीश आश्रम
१७, कोरेगांव पार्क
पूना—४११००१ महाराष्ट्र
फोन : २८१२७

भारत के जलते प्रश्न

राष्ट्रों में मेरा भरोसा नहीं है। मैं तो मानता हूं कि राष्ट्रों के कारण ही मनुष्य-जाति पीड़ित है। राष्ट्र मिट जाने चाहिए। हो चुके बहुत राष्ट्रगान, उड़ चुके बहुत झंडे, हो चुकीं बहुत मूढ़ताएं पृथ्वी पर; अब तो मनुष्य की एकता स्वीकार करो। अब तो एक पृथ्वी और एक मनुष्य ...। ये राष्ट्रीय सरकारें जानी चाहिए। और जब तक ये न जायेंगी तब तक मनुष्य की समस्याएं हल न हो सकेंगी, क्योंकि मनुष्य की समस्याएं अब राष्ट्रों से बड़ी समस्याएं हैं।

भारत अपनी ही चेष्टा से इस गरीबी के बाहर नहीं निकल सकेगा, कोई उपाय नहीं है। भारत गरीबी के बाहर निकल सकता है, अगर सारी मनुष्यता का सहयोग मिले।

मेरी सुनी जाये तो मैं कहूंगा कि भारत को पहला देश होना चाहिए जो राष्ट्रीयता छोड़ दे। यह अच्छा होगा कि कृष्ण, बुद्ध, पतंजलि और गोरख का देश राष्ट्रीयता छोड़ दे और कह दे कि हम अन्तरराष्ट्रीय भूमि हैं। भारत को तो संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमि बन जाना चाहिए। कह देना चाहिए, यह पहला राष्ट्र है जो हम संयुक्त राष्ट्र संघ को सौंपते हैं--सम्हालो!

—भगवान श्री रजनीश

इस देश को जरूरत है आंखवालों की। और आंखवाले तुम्हारी मान्यताओं से राजी नहीं हो सकते।

इस देश को समाधिस्थ लोगों का नेतृत्व चाहिए। इस देश को ऐसे लोगों का नेतृत्व चाहिए, जिनकी खुद की कोई समस्या नहीं है।

देश को जगाओ! देश को थोड़ा-सा होश से भरो। समस्याएं बड़ी हैं। तुम्हें बड़े लोग चाहिए, जो तुम्हारी समस्याएं हल कर सकें। दूर-दृष्टि लोग चाहिए। वैज्ञानिक क्षमता, प्रतिभा के लोग चाहिए। सड़े-गले लोगों को, मुर्दों को तुम बिठा दोगे दिल्ली में...इससे सिर्फ समय कटेगा। और समय के साथ समस्याएं बढ़ती चली जाती हैं। अच्छे-अच्छे नाम...परिणाम कुछ भी नहीं है।

मेरा राजनीति से कुछ लेना-देना नहीं है। मैं चाहता भी नहीं कि मेरे संन्यासियों का राजनीति से कोई लेना-देना हो। लेकिन फिर भी मैं कहूंगा कि मेरे संन्यासी को देश में एक जागरूक लोकमत पैदा करने में सहयोगी होना चाहिए, क्योंकि समस्याएं तुम्हारी भी हैं। देश की समस्या तुम्हारी समस्या है। मैं नहीं कहता कि तुम चुनाव लड़ कर और लोकसभा में पहुंच जाओ। नहीं! मगर जहां हो हवा पैदा करो, जागरूकता थोड़ी पैदा करो। लोगों को कहो कि समस्याएं, असली समस्याएं क्या हैं। असली समस्याओं का समाधान क्या हो सकता है। झूठी समस्याओं को बताओ कि ये झूठी समस्याएं हैं; इनमें आदमियों का मन उलझाया जाता है। तुम्हारा मन हटाने के लिए झूठी समस्याएं खड़ी कर दी जाती हैं।